समयसार वैभव

भाग-३

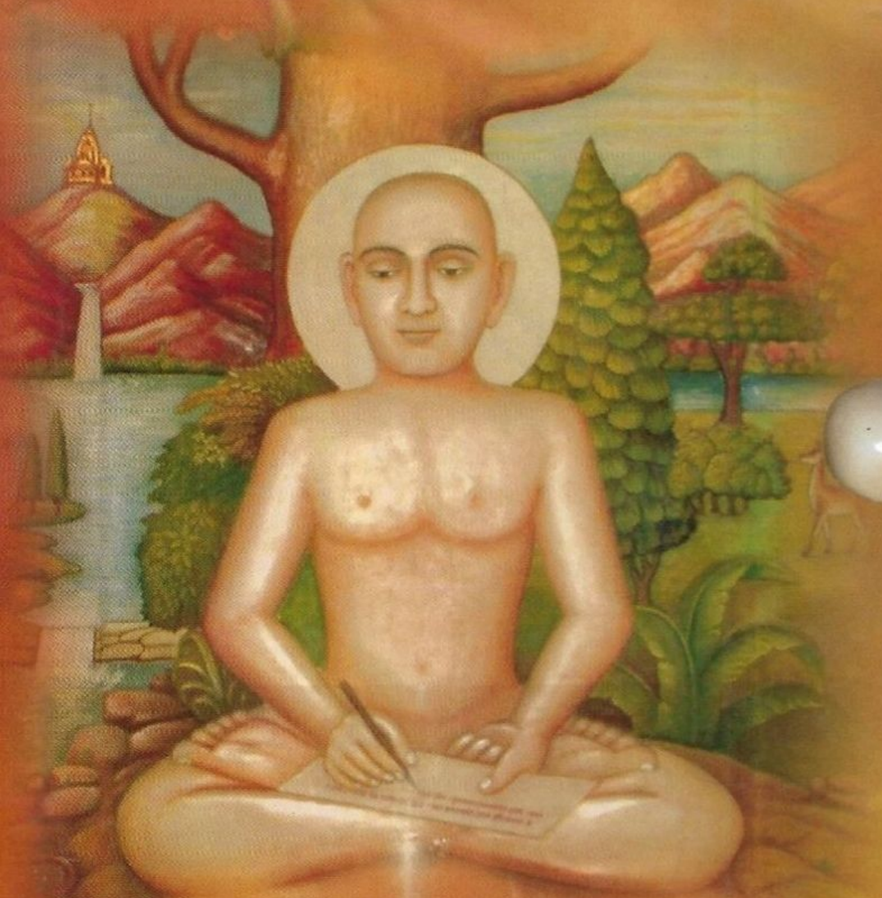

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई

ॐ

परमात्मने नमः

समयसार वैभव

परमपूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित समयसार परमागम पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
15वीं बार के धारावाही शब्दशः प्रवचन
(गाथा 14 से 31, कलश 10 से 26, प्रवचन 63 से 92)
[भाग - 3]

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2082

वीर संवत
2552

ई. सन
2025

—: प्रकाशन :—

पौष कृष्ण अष्टमी,
कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव का
आचार्य पदारोहण दिवस के अवसर पर
दिनांक 12 दिसम्बर 2025

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250   फोन : 02846–244334
2. श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

महाविदेहक्षेत्र में विराजमान त्रिलोकनाथ वीतराग-सर्वज्ञ परम देवादिदेव श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना का अपूर्व संचय करके भरतक्षेत्र में लानेवाले, सीमन्धर लघुनन्दन, ज्ञान साम्राज्य के सम्राट, भरतक्षेत्र के कलिकालसर्वज्ञ, शुद्धात्मा में निरन्तर केलि करनेवाले, चलते-फिरते सिद्ध - ऐसे आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव हुए, जो संवत् 49 में सदेह महाविदेहक्षेत्र में गये और आठ दिन वहाँ रहे थे। महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृतरूपी ज्ञानसरिता का तथा श्रुतकेवलियों के साथ हुई आध्यात्मिक सूक्ष्म चर्चाओं का अमूल्य भण्डार लेकर भरतक्षेत्र में पधारकर पंच परमागम आदि आध्यात्मिक शास्त्रों की रचना की। उनमें से एक श्री समयसारजी, द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म शास्त्र है। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 415 मार्मिक गाथाओं की रचना की है। यह शास्त्र सूक्ष्म दृष्टिप्रधान ग्रन्थाधिराज है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् एक हजार वर्ष बाद अध्यात्म के प्रवाह की परिपाटी में इस अध्यात्म के अमूल्य खजाने के गहन रहस्य को स्वानुभवगत करके श्री कुन्दकुन्ददेव के ज्ञानहृदय को खोलनेवाले श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ने सिद्धपद-साधक मुनिसम्पदा को आत्मसात करके, निजस्वरूप के अलौकिक अनुभव से, सिद्धान्त शिरोमणि शास्त्र समयसार की 415 गाथाओं की टीका करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उन्होंने श्रीसमयसारजी में निहित सूक्ष्म और गम्भीर रहस्य को, अपूर्व शैली से आत्मख्याति नामक टीका बनाकर, स्पष्ट किया है; साथ ही 278 मंगल कलश तथा परिशिष्ट की रचना भी की है।

इस शास्त्र का भावार्थ जयपुर निवासी सूक्ष्म ज्ञानोपयोगी पण्डित श्री जयचन्दजी छाबड़ा ने किया है।

वर्तमान इस काल में मोक्षमार्ग प्राय: लुप्त हो गया था, सर्वत्र मिथ्यात्व का घोर अन्धकार छाया हुआ था, जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त का अभ्यास छूट गया था, परमागम विद्यमान होने पर भी उनके गूढ़ रहस्यों को समझानेवाला कोई नहीं था - ऐसे विषम काल में जैनशासन के गगन मण्डल में एक महाप्रतापी वीर पुरुष, अध्यात्ममूर्ति, अध्यात्मदृष्टा, आत्मज्ञ सन्त, अध्यात्म युगपुरुष, निष्कारण करुणाशील, भवोदधि तारणहार, भावी तीर्थाधिनाथ परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का उदय हुआ। जिन्होंने इन आचार्यों के ज्ञानहृदय में संचित गूढ़ रहस्यों को अपने ज्ञान-वैभव द्वारा

रसपान करके आचार्यों की महा सूक्ष्म गाथाओं में विद्यमान अर्थ गाम्भीर्य को स्वयं के ज्ञान प्रवाह द्वारा सरल सुगम भाषा में चरम सीमा तक मूर्तिवन्त किया।

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिए एक तेजस्वी अध्यात्म दीपक का स्वर्णमय उदय हुआ, जिसने अपनी दिव्यामृत चैतन्य रसीली वाणी द्वारा अध्यात्म सिन्धु के अस्खलित सातिशय शुद्ध प्रवाह को आगे बढ़ाया। आपश्री जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को अति स्पष्टरूप से, अति दृढ़तापूर्वक भवताप विनाशक और परम शान्ति प्रदायक प्रवचन गंगा द्वारा फैलाते रहे; विरोधियों के विरोध का भी, जंगल में विचरते केशरी सिंह की तरह, अध्यात्म के केशरी सिंह बनकर निडररूप से, तथापि निष्कारण करुणावन्त भाव से झेलते रहे। विरोधियों को भी 'भगवान आत्मा' है – ऐसी दृष्टि से देखकर जगत् के जीवों के समक्ष अध्यात्म के सूक्ष्म न्यायों को प्रकाशित करते रहे।

श्री समयसारजी शास्त्र, पूज्य गुरुदेवश्री के कर–कमल में विक्रम संवत् 1978 के फाल्गुन माह में आया था। इस समयसारजी शास्त्र के हाथ में आते ही कुशल झवेरी की पारखी नजर समयसार के सूक्ष्म भावों पर पड़ी और सहज ही अन्तर की गहराई में से भावनाशील कोमल हृदय बोल उठा – 'अरे! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' अनादि का अप्रतिबुद्ध जीव प्रतिबुद्ध कैसे हो? – उसका सम्पूर्ण रहस्य और शुद्धात्मा का सम्पूर्ण वैभव इस परमागम में भरा है।

इस शास्त्र का रहस्य वास्तव में तो अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के हाथ में यह शास्त्र आने के पश्चात् ही चरम सीमा से प्रकाशित और प्रदर्शित हुआ है। पैंतालीस वर्ष तक स्वर्णपुरी / सोनगढ़ में अध्यात्म की मूसलधार वर्षा हुई है जो सर्व विदित है। पूज्य गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1978 से 1991 – इस तरह तेरह वर्षों तक गूढ़ मन्थन करके जिनवाणी का सम्पूर्ण निचोड़ इस शास्त्र में से ढूँढ़ निकाला और फरमाया है कि —

- समयसार तो द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट / सर्वोच्च आगमों का भी आगम है।
- समयसार तो सिद्धान्त शिरोमणि, अद्वितीय अजोड़ चक्षु और अन्धे की आँख है।
- समयसार तो संसार विष–वृक्ष को छेदने का अमोघ शस्त्र है।
- समयसार तो कुन्दकुन्दाचार्य से कोई ऐसा शास्त्र बन गया; जगत् का भाग्य कि ऐसी चीज भरतक्षेत्र में रह गयी। धन्य काल!
- समयसार की प्रत्येक गाथा और आत्मख्याति टीका ने आत्मा को अन्दर से डुला दिया है। समयसार की आत्मख्याति जैसी टीका दिगम्बर में भी दूसरी किसी शास्त्र में

नहीं है। इसके एक-एक पद में इतनी गम्भीरता (कि) खोलते-खोलते पार न आये - ऐसी बात अन्दर है।

- समयसार तो सत्य का उद्घाटक है! भारत का महारत्न है!! समयसार.... जिसके थोड़े शब्दों में भावों की अद्भुत और अगाध गम्भीरता भरी है!
- समयसार तो भरतक्षेत्र का प्रवचन का सर्वोत्कृष्ट बादशाह है, यह सार शास्त्र कहलाता है।
- समयसार तो जगत् का भाग्य.... समयसाररूपी भेंट जगत् को दिया, स्वीकार नाथ! अब स्वीकार! भेंट भी दे वह भी नहीं स्वीकारे?
- समयसार तो वैराग्य प्रेरक परमात्मस्वरूप को बतलानेवाली वीतरागी वीणा है।
- समयसार में तो अमृतचन्द्राचार्य ने अकेला अमृत बहाया है, अमृत बरसाया है।
- समयसार एक बार सुनकर ऐसा नहीं मान लेना कि हमने सुना है, ऐसा नहीं बापू! यह तो प्र... वचनसार है अर्थात् आत्मसार है, बारम्बार सुनना।
- समयसार भरतक्षेत्र की अन्तिम में अन्तिम और उत्कृष्टतम सत् को प्रसिद्ध करनेवाली चीज है। भरतक्षेत्र में साक्षात् केवलज्ञान सूर्य है। समयसार ने केवली का विरह भुलाया है।
- समयसार की मूलभूत एक-एक गाथा में गजब गम्भीरता! पार न पड़े ऐसी चीज है। एक-एक गाथा में हीरा-मोती जड़े हैं।
- समयसार में तो सिद्ध की भनकार सुनायी देती है। यह तो शाश्वत् अस्तित्व की दृष्टि करानेवाला परम हितार्थ शास्त्र है। समयसार तो साक्षात् परमात्मा की दिव्यध्वनि / तीन लोक के नाथ की यह दिव्यध्वनि है।

ऐसे अपूर्व समयसार में से पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने निज समयसाररूपी शुद्धात्मा का अनुभव करके फरमाया कि आत्मा आनन्द का पर्वत है; ज्ञायक तो मीठा समुद्र / आनन्द का गंज और सुख का समुद्र है। न्यायों का न्यायाधीश है, धर्म का धोध ऐसा धर्मी है, ध्रुव प्रवाह है, ज्ञान की धारा है, तीन लोक का नाथ चैतन्यवृक्ष-अमृत फल है, वास्तविक वस्तु है। सदा विकल्प से विराम ही ऐसी निर्विकल्प जिसकी महिमा है - ऐसा ध्रुवधाम ध्रुव की धखती धगश है। भगवान आत्मा चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष और कामधेनु है, चैतन्य चमत्कारी वस्तु है, अनन्त गुणों का गोदाम, शक्तियों का संग्रहालय और स्वभाव का सागर है।

सनातन दिगम्बर मुनियों ने परमात्मा की वाणी का प्रवाह जीवन्त रखा है। जैनधर्म सम्प्रदाय-बाड़ा-गच्छ नहीं; अपितु वस्तु के स्वरूप को जैनधर्म कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्र का अर्थ करने की जो पाँच प्रकार की पद्धति — शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, और भावार्थ है, उसे अपनाकर कहाँ, किस अपेक्षा से कथन किया जाता है – उसका यथार्थ ज्ञान अपने को–मुमुक्षु समुदाय को कराया है। इस प्रवचन गंगा से बहुत से आत्मार्थी अपने निजस्वरूप को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं, बहुत से स्वरूप के निकट आये हैं और इस वाणी के भाव ग्रहण करके बहुत से आत्मार्थी अवश्य आत्मदर्शन को प्राप्त होंगे ही – यह सुनिश्चित है।

पूज्य गुरुदेवश्री समयसार में फरमाते हैं कि समयसार दो जगह है – एक अपना शुद्धात्मा है वह समयसार है और दूसरा उत्कृष्ट निमित्तरूप समयसारजी शास्त्र है। इस शास्त्र में अपना निज समयसाररूपी शुद्धात्मा बतलाया गया है। प्रत्येक गाथा का अर्थ करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ऐसे भावविभोर हो जाते हैं कि उसमें से निकलना उन्हें सुहाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री समयसार पर प्रवचन करते हुए फरमाते हैं कि पंचम काल के अन्त तक जो कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा, उसे यह वीतराग की वाणी निमित्त होगी, यह सीधी सीमन्धर भगवान की वाणी है, इसमें एक अक्षर फिरे तो सब फिर जायेगा।

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन, अपने वचनामृत में पूज्य गुरुदेवश्री के सम्बन्ध में फरमाती हैं कि पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अलौकिक और मंगल है; उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारक है। आपश्री मंगलमूर्ति, भवोदधि तारणहार और महिमावन्त गुणों से भरपूर हैं। उन्होंने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उनका अपार उपकार है, वह कैसे भूला जाये? पूज्य गुरुदेवश्री को तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अन्तर से मार्ग प्राप्त किया, दूसरों को मार्ग बतलाया; इसलिए उनकी महिमा आज तो गायी जाती है परन्तु हजारों वर्षों तक गायी जाएगी।

पूज्य निहालचन्दजी सोगानी, जिनको पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनते हुए भव के अभावरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सोनगढ़ / स्वर्णपुरी में हुई – वे फरमाते हैं कि पूज्य गुरुदेव के एक घण्टे के प्रवचन में पूरी–पूरी बात आ जाती है। सभी बात का स्पष्टीकरण पूज्य गुरुदेवश्री ने तैयार करके दिया है; इस कारण कोई बात का विचार नहीं करना पड़ता, वरना तो साधक हो तो भी सब तैयारी करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने सभा में समयसार उन्नीस बार पढ़ा और एकान्त में तो सैंकड़ों बार पढ़ा है, तो उन्हें इसमें कितना माल दिखता होगा! कभी ड़ेढ़ वर्ष, कभी दो वर्ष, कभी ढाई वर्ष; इस प्रकार उन्नीस बार पैंतालीस वर्षों में सार्वजनिक पढ़ा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्य गुरुदेवश्री के पन्द्रहवीं बार के प्रवचन अक्षरश: प्रकाशित किये जा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री के उपलब्ध 9500 प्रवचनों में समयसार परमागम पर 13, 15, 16, 17, 18, 19वीं बार के प्रवचन उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम तो इन प्रवचनों को रिकॉर्डिंग कराने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई सी. झवेरी, जो कि उस समय सोनगढ़ ट्रस्ट में प्रमुखरूप से थे, उनका बहुत-बहुत आभार मानते हैं। प्रस्तुत 15वीं बार के 591 प्रवचन 21 भागों में प्रकाशित करने की भावना श्री सुधीरभाई शाह (डेलीवाला) परिवार, सूरत को हुई। उनकी भावना अनुसार उन्होंने अक्षरश: प्रवचन कम्प्यूराईज्ड करवाये। इन प्रवचनों को उन्होंने स्वयं निज स्वाध्याय के अर्थ जाँचा और फिर से जाँचने का कार्य सुनीलभाई शाह, भायंदर तथा अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा गुजराती भाषा में किया गया। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का यह तीसरा भाग है।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में अनुवादित करके तथा सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अनादि काल से मोह अग्नि में सुलग रहे जीवों को यह प्रवचन ग्रन्थ के निमित्त से समाधि सुख और शाश्वत् परमानन्द की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो, ऐसी हमारी भावना है। अन्तत: पूज्य गुरुदेवश्री के भवताप विनाशक प्रवचनों का प्रत्येक मुमुक्षु लाभ लेकर आत्महित साधे यही भावना है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ ... www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

निवेदक
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़
एवं
ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव

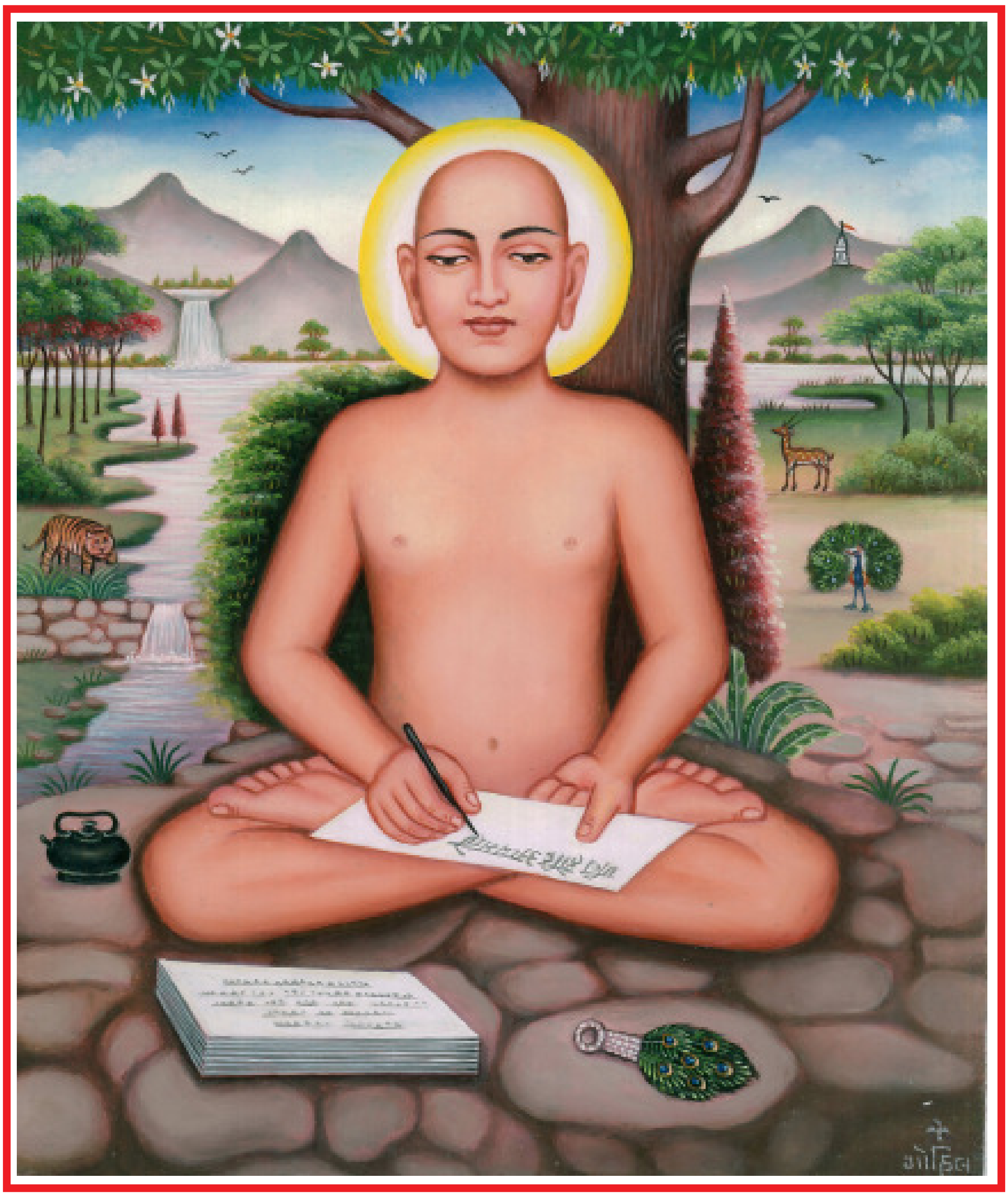

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री समयसार प्रतिष्ठा महोत्सव मंगल दिन

नमः समयसाराय

(संवत् 2001 के ज्येष्ठ कृष्ण 8 रविवार, दिनांक 3-6-1945)

महान परमागम श्री समयसारजी के रचयिता की अन्तरंग दशा तथा श्री समयसारजी स्तुति के अर्थ

आज श्री समयसारजी की प्रतिष्ठा का मांगलिक दिवस है। स्वाध्यायमन्दिर में समयसारजी की विधिपूर्वक श्री चम्पाबहिन के हस्त से प्रतिष्ठा हुई है, उसे आज सात वर्ष पूरे होते हैं। इस परमागम शास्त्र में क्या है, वह तो अनुभव से अन्दर उतरकर देखे तो समझ में आये, ऐसा है। इसमें तो अलौकिक चमत्कारिक मन्त्र हैं।

जैसे तालाब के किनारे पर खड़े रहकर देखने से तालाब का पानी मध्य में और किनारे पर समान दिखता है, ऊपरी दृष्टि से पानी की गहराई का माप नहीं निकलता; तालाब के पानी की गहराई में बीच में और किनारे में अन्तर होता है, जिसे पानी की गहराई का माप करना आता है, वह किनारे से अन्दर उतरे तो उसे पानी की वास्तविक गहराई का ख्याल आता है तथा सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि द्वारा जो द्वादशांगी श्रुत का एक धारावाही प्रपात खिरा, उसमें से यह शास्त्र रचित हैं, उसमें क्या रहस्य भरे हैं, उनका माप ऊपरी दृष्टि से निकालना चाहे तो वह निकले, ऐसा नहीं है। परन्तु यदि अन्दर उतरकर समझे तो उसके मध्य में तो केवलज्ञान के रहस्य भरे हुए हैं।

महाविदेह में वर्तमान जीवनमुक्तदशा में श्री सीमन्धर परमात्मा अरिहन्त पद में विराजमान हैं। भरतक्षेत्र में विक्रम संवत् की पहली शताब्दी में महानिर्ग्रन्थ मुनियों के नायक कुन्दकुन्दाचार्य मुनि हुए; वे महाविदेह में श्री सीमन्धर भगवान के पास गये थे। सहज स्वभाव की अन्तर आनन्ददशा में झूलते थे और बाहर में सहज दिगम्बर दशा— ऐसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव, सीमन्धरभगवान के पास गये थे और वहाँ एक सप्ताह रहे थे।

यह बात तीन काल-तीन लोक में बदले, ऐसी नहीं है। शिलालेख और शास्त्र के पृष्ठों में लिखा है, इसलिए यह कहा जाता है, ऐसा नहीं, परन्तु **यह बात अन्तर से सिद्ध हो गयी है।**

भगवान की वाणी में एकसाथ सब आता है, उसमें भेद नहीं पड़ता, वह निरक्षरी ध्वनि है। भगवान की वाणी में भेद क्यों नहीं होता—इसका स्पष्टीकरण :—

आत्मा में जब तक क्रोधादिवाली हीन-भेदवाली दशा हो, वहाँ तक वाणी भी भेदवाली आती है, परन्तु जब सम्पूर्ण वीतरागदशा हुई और पर्याय में कषाय का भेद टलकर अभेददशा हो गयी, तब उसके निमित्तरूप वाणी में भी अभेद आता है। जब तक क्रोधादि है, तब तक विकार है, आत्मा अनन्त गुण का अखण्ड पिण्ड है, इसलिए किसी गुण में विकार हो, वहाँ अवस्था एकरूप नहीं रहती, परन्तु भेद पड़ते हैं; इसीलिए उसकी वाणी में भी बहुत अक्षरों द्वारा भेद पड़ता है। सर्वज्ञ परमात्मा को सम्पूर्ण दशा प्रगट होने पर पर्याय अभेद हो गयी, इसलिए उनकी वाणी भी अभेद-एकाक्षरी हो गयी, उस वाणी में समस्त भाषायें समाहित हो जाती हैं; वह वाणी सुनने गणधर, इन्द्र, चक्रवर्ती, मनुष्य, पशु, पक्षी सब आते हैं और सब अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं।

भगवान को उपदेश की इच्छा नहीं होती। वे वीतराग हैं, कब, कौन, क्या पूछेगा और उसका क्या उत्तर आयेगा—यह सब एक समय में अपने अक्रम ज्ञान से (केवलज्ञान से) भगवान जानते हैं। वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर परमात्मा जीवन्मुक्तदशा में तीर्थंकरपद में विराजते हैं, उनके पास भरतक्षेत्र के महामुनि श्री कुन्दकुन्दाचार्य गये और वहाँ की मूसलाधार दिव्यध्वनि ले आकर उसके आधार से यह समयसार आदि शास्त्र रचे हैं। उसमें तो दिव्यध्वनि के रहस्य को उतारा है, उसका गूढ़ रहस्य ऊपर से देखने पर समझ में नहीं आता, परन्तु अन्तर से देखो तो उसकी अपार महिमा समझ में आती है। समयसार मध्य में तो कोई अमाप केवलज्ञान भरे हैं, क्या कहें...? यह समयसार की बात शब्द से कही जाये, वैसी नहीं, शब्द से पार है —मन से भी पार है।

गाँव-गाँव में जिसके यहाँ दो सौ-तीन सौ मण अनाज पकता हो, उनके काम करनेवाले को दो-तीन मण अनाज मिलता है, अधिक नहीं मिलता, परन्तु जिसके यहाँ

हजारों मण अनाज पकता हो, उसके काम करनेवालों को पर्याप्त अनाज मिलता है, उसी प्रकार अल्पज्ञ उपदेशक की वाणी में से श्रोताओं को थोड़ा मिलता है और सर्वज्ञदेव की पूर्ण मूसलाधार ध्वनि में से श्रोताओं को श्रुत का प्रपात मिलता है। महाविदेह में सीमन्धर भगवान की मूसलाधार धर्म की पेढ़ी चल रही है। उस मूसलाधार वाणी का साक्षात् लाभ भगवत्कुन्दकुन्द को आठ दिन मिला है और पश्चात् उन्होंने यह समयसार की रचना की है, इस समयसार की गहराई में अमाप... अगाध... अगाध भाव भरे हैं।

अहो! कुन्दकुन्दाचार्य की क्या बात करें! उनकी अन्तर की दशा सम्बन्धी समयसार की छठवीं गाथा में वे स्वयं ही कहते हैं कि —

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव॥६॥

इस गाथा में आचार्यदेव ने अपनी वर्तमान भूमिका से बात रखी है। सीमन्धर भगवान के पास से कुन्दकुन्द आचार्य को पूर्ण आत्मा का स्वरूप अत्यन्त नि:शंकरूप से प्राप्त हुआ। वे कुन्दकुन्दाचार्य मुनियों के नायक थे, भरतक्षेत्र के धर्म के प्रपात बहानेवाले महासन्त थे। अहो! इस छठी गाथा में तो उन्होंने ज्ञायक का ही वर्णन किया है —

'नहीं अप्रमत्त प्रमत्त नहीं जो एक ज्ञायकभाव है;
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो ही है।'

आचार्यदेव सातवें और छठवें अप्रमत्त और प्रमत्त गुणस्थान दशा में झूल रहे हैं। उन दो भंग का निषेध करते हुए कहते हैं कि — मैं अप्रमत्त और प्रमत्त नहीं, मैं ज्ञायक हूँ। 'अप्रमत्त-प्रमत्त नहीं' ऐसा क्यों कहा? 'मैं अकषाय-सकषाय नहीं, अथवा मैं अयोगी-सयोगी नहीं' ऐसा क्यों नहीं आया? '**णवि होदि अपम्मत्तो**' मैं अप्रमादी नहीं तथा '**ण पम्मत्तो**' मैं प्रमादी नहीं। परन्तु इन दो दशा के भेद से रहित मैं ज्ञायकभाव हूँ, ऐसा क्यों आया? आचार्यदेव स्वयं सातवीं-छठवीं भूमिका में झूल रहे हैं, इसलिए गाथा में भी सहजरूप से उस दशा से कथन आया है।

छट्ठी के लेख जैसी छठवीं गाथा टंकोत्कीर्ण है। शास्त्र रचना का विकल्प उठा, परन्तु आत्मा से अक्षर की रचना नहीं होती, तथा विकल्प उठे, वह भी मेरा स्वरूप नहीं,

अरे ! अप्रमत्त-प्रमत्तदशा के भेद भी मैं नहीं; मैं तो ज्ञायक हूँ... इस प्रकार छठवीं गाथा में तो केवलज्ञान की शुरुआत की है। इस गाथा में अपना अन्तरंग उड़ेल दिया है। स्वयं वर्तमान अप्रमत्त-प्रमत्तदशा द्वारा बीच में वर्त रहे हैं, इसलिए गाथा में वे ही शब्द आये हैं। अभी अपने को अकषायदशा प्रगटी नहीं और साधकदशा में अप्रमत्त-प्रमत्तदशा के दो भेद पड़ते हैं, उन भेद का निषेध करते हुए कहते हैं कि मैं अप्रमत्त या प्रमत्त नहीं, मैं अखण्डानन्द ज्ञायक हूँ; ऐसा इस गाथा में आचार्यदेव ने अभेद ज्ञायकभाव का अनुभव उतारा है। अपने अनुभव की जो दशा है, उस दशा से वर्णन रखा है।

अवस्था के दो भेद पड़ते हैं, वे मैं नहीं; मैं तो ज्ञायक ज्योति ही हूँ, आनन्दस्वरूप ही त्रिकाल हूँ। 'आनन्द नहीं था' और 'आनन्द प्रगट करूँ' ऐसे भेदरूप दो पहलुओं का मैं इस समय निषेध करता हूँ; इस समय तो ज्ञायकभाव दर्शाना है, मैं एकरूप ज्ञायकभाव परमपारिणामिकभाव हूँ अर्थात् कि मैं कारणपरमात्मा हूँ। 'मैं कारणपरमात्मा हूँ' ऐसा कहने से अपनी वर्तमान स्वभावसन्मुख ढलती निर्मलदशा भी इकट्ठी आ ही जाती है; क्योंकि कारणपरमात्मा को प्रतीति में लेनेवाली तो वह पर्याय है।

कारणपरमात्मा अर्थात् एकरूप ध्रुव त्रिकाली वस्तु जो कि निर्मल पर्याय प्रगट होने का कारण है, वह कारणपरमात्मा है—वही 'ज्ञायकभाव' है। नियमसार शास्त्र भी कुन्दकुन्दाचार्यदेव का रचा हुआ है, उसकी टीका में अलौकिक गूढ़ बातें हैं। आचार्यों ने धर्म के स्तम्भ जैसा कार्य किया है। वीतरागशासन को टिका रखा है। नियमसारजी की टीका में पद्मप्रभमलधारिदेव ने महागूढ़ रहस्य उतारा है। अहो ! क्या अध्यात्म की बात है... ! कारणपरमात्मा को स्पष्टरूप से दर्शा दिया है। यहाँ छठवीं गाथा में 'ज्ञायकभाव में भी वही ध्वनि है।' कारणपरमात्मा वह मोक्षमार्गरूप तो नहीं, परन्तु मोक्ष भी नहीं। वह तो ध्रुवस्वरूप है और उसके ही जोर से मोक्षदशा प्रगट होती है। मोक्ष का कारण कोई विकल्प तो नहीं, और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप निर्विकार पर्याय भी मोक्ष का कारण व्यवहार से है। क्योंकि केवलज्ञानादि दशा तो अनन्तगुणी शुद्ध है और सम्यग्दर्शनादि तो बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक केवलज्ञान से अनन्तवें भाग अधूरी दशा है। बारहवीं भूमिका के अन्तिम समय में जो ज्ञान, सुख, वीर्य इत्यादि

है, उनकी अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान के पहले समय में अनन्तगुणे ज्ञान, सुख, वीर्य इत्यादि होते हैं, इसीलिए सम्यग्दर्शनादि मोक्ष का कारण व्यवहार से है; मोक्ष का निश्चयकारण तो ऊपर कहा वह ज्ञायकभाव-कारणपरमात्मा है। मोक्ष का कारण क्या? परद्रव्य की तो बात है ही नहीं, क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं है, यह जैन का प्रथम सिद्धान्त मान्य रखने के पश्चात् ही दूसरी बात हो सकती है। देव-गुरु-शास्त्र, वे परद्रव्य हैं, वे कोई तो मोक्ष का कारण है नहीं; शुभविकल्प उठता है, वह भी मोक्ष का कारण नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-वीर्य-आनन्द इत्यादि भी बारहवें गुणस्थान तक अनन्तवें भाग में अधूरी दशा है, इसलिए वह भी परिपूर्ण मोक्षदशा का वास्तविक कारण नहीं। यह तो अभी शास्त्र की बात है। अन्दर का अध्यात्मरहस्य तो अब आता है, ध्यान रखो... ध्यान रखो...! आत्मा क्या चीज़ है, उसे जाने बिना चाहे जितने क्रियाकाण्ड कर-करके सूख जाये तो भी धर्म हो, ऐसा नहीं है, यह कहा जाता है, वह वस्तु का स्वरूप समझे बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आता।

बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक मति-श्रुतज्ञान है, वह केवलज्ञान के अनन्तवें भाग का है, उस अनन्तवें भाग का अधूरा ज्ञान, उसे अनन्त गुणे पूर्ण केवलज्ञान का कारण कहना, वह व्यवहार है। अधूरे ज्ञान में पूर्ण ज्ञान प्रगटाने की सामर्थ्य नहीं, परन्तु जो अधूरा ज्ञान है, वह पूर्ण की जाति का है, इसीलिए उसे व्यवहार से कारण कहा है; अनन्तवें भाग का मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञान का निश्चयकारण नहीं है। पूर्ण ज्ञान का कारण पूर्ण ही चाहिए। केवलज्ञान का निश्चयकारण तो मूल द्रव्य ही है, उस केवलज्ञान के कारणभूत द्रव्य को ही भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने नियमसार में **कारणपरमात्मा** रूप से और समयसार में **ज्ञायकभावरूप** से वर्णन किया है। एक समय में द्रव्य में कितनी सामर्थ्य भरी है, वह बतलाया है। एक-एक गाथा में आचार्यदेव ने अद्भुत रहस्य प्रवाहित किये हैं। चौदह पूर्व के रहस्य को लेती हुई एक-एक गाथा आती है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, वह भी अनन्त केवलज्ञानादि का कारण वास्तव में नहीं होता। अनन्त केवलज्ञानादि का वास्तविक कारण तो एक समय में परिपूर्ण द्रव्य जो त्रिकाल है, वही है। उस परिपूर्ण द्रव्यस्वभाव का वर्णन भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसारजी में अचिन्त्य और अलौकिक रीति से किया है।

मैं सातवें या छठवें गुणस्थानवाला नहीं, मैं तो ज्ञायक हूँ। यद्यपि वर्तमान सातवें-छठवें गुणस्थान में ही हैं परन्तु अखण्ड स्वभाव के जोर से उनका निषेध करते हुए कहते हैं कि मैं अप्रमत्त-प्रमत्त नहीं; मैं ज्ञायक हूँ। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव सम्बन्धी दर्शनसार में श्री देवसेनाचार्य मुनि कहते हैं कि —

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामी दिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।

महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव श्री सीमन्धरस्वामी से प्राप्त दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने (श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?

देवसेनाचार्य स्वयं मुनि हैं, वे कहते हैं कि अहो! कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् भगवान के पास से दिव्यध्वनि के सन्देश का बोध भरतक्षेत्र में नहीं दिया होता तो हमको यह सम्यक् बोध कहाँ से मिलता? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है। ऐसी स्थिति इस महान परमागम समयसार की है, बाहर से इसका माप नहीं निकलता परन्तु गहरे उतरकर अन्तर से समझे तो सच्चा माप निकलता है।

आज समयसारजी शास्त्र की प्रतिष्ठा का मंगल दिवस है। इस समयसारजी की स्तुति हिम्मतभाई ने (समयसार के गुजराती अनुवादक ने बनायी है), उसमें बहुत अच्छे भाव भरे हैं, उनके अर्थ आज होते हैं।

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

हे नाथ! हे कुन्दकुन्द प्रभु! आपने इस समयप्राभृत में अमृत के प्रपात बरसाये हैं। महावीर भगवान से प्रवाहित श्रुतामृत की सरिता शोषित हो रही थी, उसे इस समयसार प्राभृतरूपी संजीवनी द्वारा आपने जीवन्त रखी है।

स्तुति में प्रथम शब्द 'संसारी' है। क्योंकि जीव को अनादि से संसारदशा है। आत्मा की अवस्था में जो पुण्य-पाप के विकारभाव होते हैं—वे भाव मैं—ऐसा मानना, वही संसार है। आत्मा का संसार परवस्तु में नहीं, परन्तु अपने उल्टे भाव में संसार है। पैसा-स्त्री इत्यादि परद्रव्य हैं, उनमें संसार नहीं परन्तु उन परद्रव्य में सुखबुद्धि और उन्हें रखने का भाव, वही संसार है। वह संसारभाव प्रत्येक जीव को अनादि से है। संसारी जीव अपने अज्ञान से क्षण-क्षण में भावमरण में दुःखी हो रहे हैं। कुन्दकुन्द भगवन्त ने उन संसारी जीवों के भावमरण टालने के लिये परम करुणा करके संजीवनी समान समयसार की रचना की है।

भावमरण अर्थात् क्या? आत्मा के क्षणिक विकारभाव हो, उसे अपना मानना और चैतन्यस्वरूप के आनन्द को न मानना, वही भावमरण है। शरीर पृथक् पड़े, उसका दुःख जीवों को नहीं है, परन्तु भावमरणों का ही दुःख जीवों को है। अपना आनन्द पर में मानने से आत्मा का स्वरूपमय जीवन नष्ट हो जाता है, वह आत्मा का भावमरण है। वह भावमरण जो टालता है, वही सुखी है।

भावमरण, वही हिंसा है। समयसार में ही कहा है कि —

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य
पश्यंति ये मरणजीवितदुःख सौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते
मिथ्याद्रशो नियतमात्महनो भवंति॥ १६९॥

इस अज्ञान को पाकर जो पुरुष पर से अपने मरण, जीवन, सुख, दुःख देखते हैं-मानते हैं, वे पुरुष—कि जो इस प्रकार से अहंकाररस से कर्म करने के इच्छुक हैं, वे—नियम से मिथ्यादृष्टि हैं—**अपने आत्मा का घात करनेवाले हैं। 'आत्महनो भवंति'** अर्थात् जो पर को, मैं मारता या जिलाता हूँ ऐसा मानता है, वह महाहिंसक है, अपने आत्मा को ही घातता है—यही भावमरण है।

पर के कर्तृत्व के मिथ्या अहंकार के भार से भावमरण में दुःखी हो रहे हैं, उनसे कहते हैं कि भाई रे! धीर हो... धीर हो। तू पर का क्या कर सकता है? पर का तू कुछ

भी नहीं कर सकता, तू तेरे भाव को करता है, दूसरे का मैं करूँ—ऐसा माने, उसे आचार्यदेव ने नियम से आत्मा का हिंसक मिथ्यादृष्टि कहा है। मिथ्यात्व, वही भावमरण है, वही दु:ख है।

हे नाथ कुन्दकुन्द! आपने दया करके जगत के जीवों के भावमरण टाले हैं। समयसारजी की गाथा-गाथा में अद्‌भुत करुणा के प्रपात बहाये हैं। जिसके अन्तर में यह बीज रोपे गये हैं और यह बात जिसे अन्तर में रुचि है, उसने अपने आत्मा में मोक्ष के बीज बोये हैं। 'मैं पर का कुछ कर ही नहीं सकता, पर मेरा कुछ नहीं कर सकता, मैं सर्व परद्रव्यों से पृथक् हूँ'—ऐसा जिसने माना और प्रतीति की, वह स्वतन्त्र आत्मजीवन जीनेवाला है। और 'मैं पर का करूँ, पर मेरा करे' ऐसा जो मानता है, वह आत्मस्वरूप का घातक हिंसावादी और भावमरण में मर रहे हैं। हे कुन्दकुन्द भगवान! आपने वह भावमरण टालने के लिये जगत पर परम उपकार किया है। इस समयसार में अमृत का प्रपात बहाया है। महाविदेह की दिव्यध्वनि में से श्रुत की विशाल नहरें भरत में बहती हुई की है। **संसार से थके हुए जगत के प्यासे जीव आकर इस ज्ञानामृत को पीवो और प्यास बुझाकर मोक्ष में चले जाओ.... डरो नहीं.... उलझो नहीं। संसार एक समय का ही है।** यह बात जिसे बैठी उसके मोक्षदशा के मण्डप डले, अब एक-दो भव में ही उसकी मोक्षदशा है। उसकी मोक्षदशा वापस फिरती ही नहीं। वह तो एक-दो भव में ही मोक्षदशा की नि:सन्देह श्रद्धा स्वयं से हो जाये, ऐसी बात है।

जब कन्या से विवाह करने जाये, तब साथ में बड़े-बड़े इज्जतदार सेठियों को ले जाते हैं, वहाँ ऐसा हेतु है कि कदाचित् कन्या पक्षवाले बदल जाये और धन माँगे तो उस समय में इज्जत को धक्का न लगे; कन्या वापस न फिरे। साथ में आये हुए सेठ को ऐसा हो जाये कि मैं साथ में आया और कन्या वापस फिरे, उसमें तो मेरी नाक जाती है.... यदि कन्या को मण्डप में आने में पन्द्रह मिनिट की देरी लगे तो हाहाकार हो जाता है और इज्जत जाती है। परन्तु सेठिया तुरन्त ही कन्यापक्ष की माँग को सन्तुष्ट करके कन्या के आने के टाईम में अन्तर नहीं पड़ने दे... उसी प्रकार...

यहाँ स्वरूप लक्ष्मीवन्त श्री कुन्दकुन्द भगवान कहते हैं कि हमारी बात मानकर

जिसने अपने आँगन में मोक्ष परिणति के साथ विवाह का मण्डप डाला, उसे मोक्षदशा वापस फिरती ही नहीं... अल्पकाल में ही मोक्ष होता है। हम साथ में आये हैं और मोक्षदशा को देरी लगे, ऐसा नहीं होता... देरी लगेगी तो हम मोक्ष देंगे...! जगत के जीवों को परम सत्य समझाने का हमको विकल्प उठा और भरतक्षेत्र में समझनेवाले योग्य जीव न हों, ऐसा होता ही नहीं। हमारी वृत्ति खाली नहीं जाती। हमको वृत्ति उठी, यही बताती है कि भरत में भव्य जीव तैयार है... इसलिए तू हाँ ही कर.... तेरी निर्मल मोक्षदशा वापस नहीं फिरेगी।

पुण्य-पाप का विकारभाव हो, वह मेरा स्वरूप नहीं, मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा भान वही आत्मा की दया है, वही सच्ची करुणा है। प्रथम अज्ञानभाव से आत्मा विकार में दब जाता था, अब ज्ञान होने पर आत्मा को विकार से पृथक् प्रतीति में लिया, इसलिए स्वरूप को पृथक् रखा, यही दयाधर्म है।

'सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी' इसमें भगवान महावीर का नाम लिखा है, क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्यदेव के परम्परा गुरुरूप से तो महावीर भगवान ही हैं। महावीर प्रभु के पश्चात् लगभग ५०० वर्ष बाद कुन्दकुन्दाचार्य हुए, तब जो कुछ अधूरा रहा, वह सीमन्धर भगवान के पास जाकर पूरा किया है। भावमरण टालने के लिये संजीवनी औषध है। अपने आत्मा को स्वरूप में सम्यक् प्रकार से जीवन्त रखे, ऐसी श्रद्धा-ज्ञानरूपी जो औषधि, वह संजीवनी है। वह संजीवनी-अमृत की जो सरिता महावीर प्रभु ने प्रवाहित की, तत्पश्चात् कालक्रम से वह कुछ शोषित हो गयी थी, उसे हे कुन्दकुन्दनाथ! आपने समयप्राभृतरूपी संजीवनी द्वारा भर दी है। श्रद्धा-ज्ञानरूपी संजीवनी के प्रवाह इस समयसार की गाथा-गाथा में भरे हैं।

भगवान श्री महावीर प्रभु के पश्चात् जब मार्ग के खण्ड पड़े और भिन्न सम्प्रदाय शुरु हुए, तब सनातन वीतराग जैनमार्ग को आँच न आवे, तदर्थ कुन्दकुन्दभगवान ने समयप्राभृत द्वारा अखण्ड सरिता प्रवाहित की है, साक्षात् भगवान की ध्वनि के अमृत भर-भरकर इस समयसारप्राभृत में भर दिये हैं और सनातनमार्ग को जीवन्त रखा है।

नदी के पानी को भर रखने के लिये कुछ स्थान-पात्र चाहिए, उसी प्रकार भगवान

की दिव्यध्वनि में बरसते अमृत को भरने के लिये यह समयप्राभृतरूपी पात्र है। सनातन जैनधर्म का धोध-प्रवाह तो अनादि से चलता ही आ रहा था, परन्तु हल्का काल आया और जब परमसत्य में विवाद उठा—दो पक्ष पड़े तब कुन्दकुन्द प्रभु ने समयप्राभृतरूपी भाजन द्वारा अमृत भर-भरकर सनातनमार्ग के प्रवाह को जयवन्त रखा है।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

कुन्दकुन्दाचार्य भगवान ने ४१५ गाथा में समयप्राभृत रचा और अमृतचन्द्राचार्यदेव ने उस पर ४००० श्लोक प्रमाण टीका रची—जैसे सोना को ओप चढ़ावे, उसी प्रकार समयप्राभृत पर कलश चढ़ाये। आहाहा! यह टीका!! इस भरतक्षेत्र में इस सयमप्राभृत की टीका की तुलना में आवे, ऐसी किसी ग्रन्थ की टीका वर्तमान में विद्यमान नहीं है। भगवान महावीर के बाद लगभग ५०० वर्ष में कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महान परमागम श्री समयप्राभृत की रचना की, और उस रचना के बाद एक हजार वर्ष में अमृतचन्द्राचार्यदेव महान टीकाकार निकले और जैसे मोती के स्वस्तिक करके चौक पूरते हैं, उसी प्रकार एक-एक गाथा के रहस्य को टीका में खुल्ला किया है।

यह समयप्राभृत तो ग्रन्थाधिराज है। भरतक्षेत्र का अजोड़ चक्षु है। इस समयसार की तुलना में खड़ा रहे, ऐसा वर्तमान जगत में कोई शास्त्र नहीं। अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने टीका में अन्त में (कलश २४५ में) कहा है कि यह एक अद्वितीय जगत्चक्षु है, यह विज्ञानघन आनन्दमय आत्मा को प्रत्यक्ष करता है।

(अनुष्टुप)

इदमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम्।
विज्ञानघनमानंदमयमध्यक्षतां नयत्॥२४५॥

आनन्दमय विज्ञानघन को (शुद्ध परमात्मा को, समयसार को) प्रत्यक्ष करता हुआ यह एक (अद्वितीय) अक्षय जगत् चक्षु (समयप्राभृत) पूर्णता को प्राप्त होता है।

यह समयप्राभृत ग्रन्थ वचनरूप से तथा ज्ञानरूप से दोनों प्रकार से जगत को

अक्षय (अर्थात् जिसका विनाश न हो ऐसा) अद्वितीय नेत्र समान है, क्योंकि जैसे नेत्र घटपदादि को प्रत्यक्ष दिखलाता है, उसी प्रकार समयप्राभृत आत्मा के शुद्धस्वरूप को प्रत्यक्ष अनुभवगोचर दिखलाता है।

यह अक्षय जगत्चक्षु है। इसका कभी क्षय नहीं। इस महान ग्रन्थाधिराज में अजोड़ भाव हैं, चौदह ब्रह्माण्ड के भाव इसमें भरे हुए हैं।

अमृतचन्द्राचार्य ने टीका को नाटकरूप से वर्णन किया है। बनारसीदासजी ने भी कलश के आधार से जो समयसार बनाया है, उसे भी समयसार-नाटक ऐसा नाम दिया है। नाटक अर्थात् क्या? जैसे कोई राजा का जीवन ७२ वर्ष का हो, अब उसका जीवन नाटकरूप से बतलाना हो तो वह नाटक बतलाते हुए ७२ वर्ष नहीं लगते, परन्तु तीन-चार घण्टे में ही नाटक पूरा हो जाता है। और उतने संक्षिप्त समय में राजा के ७२ वर्ष का सम्पूर्ण जीवन बतला दे, उसी प्रकार यह समयप्राभृत नाटकरूप से है, इसकी ४१५ गाथाओं में परिपूर्ण आत्मस्वरूप आचार्यदेवों ने दर्शाया है। एक-एक पद में अनादि-अनन्त आत्मा दर्शा देता है। अनादि-अनन्त आत्मस्वरूप समझने में अनन्त काल नहीं लगता। इस समयप्राभृतरूपी नाटक द्वारा अल्पकाल में जगत के जीवों को आत्मा का पूरा स्वरूप बतला देना है। ज्ञानी का अन्तरंग अलग है। संक्षिप्त में बहुत गूढ़ रहस्य भर दिया है। एक-एक पद-पद में परिपूर्णता बतलायी है, वह जगत की ऊपरी दृष्टि से दिखाई नहीं देती....

यह समयप्राभृत एक बार भी समझने से श्रोता को कुछ अनजाना नहीं रहता। ('श्रोता' शब्द गुरुगम को सूचित करता है। प्रथम, अपने आप सब भाव समझ में नहीं आते, इसलिए यथार्थ ज्ञानी-पुरुषों द्वारा सुनकर समझने से कुछ अनजाना नहीं रहता— इस हेतु से 'श्रोता' शब्द आया है।) अनादि-अनन्त आत्मस्वरूप की पहिचान से, मोक्षमार्ग का स्वरूप, बन्ध-मोक्ष का स्वरूप, उपादान-निमित्त का स्वरूप, निश्चय-व्यवहार का स्वरूप, कर्ताकर्म का स्वरूप यह सब, कुछ भी बाकी रखे बिना अल्पकाल में बतला दिया है। यह सब पंचम काल के श्रोता को पूरा आत्मस्वरूप अल्पकाल में बतलाना है, पात्र होकर समझे तो खबर पड़े... इस प्रकार से कहा कि 'ग्रंथाधिराज तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्यां।'

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

हे नाथ! हे समयसार भगवान! तेरी वाणी कैसी सुन्दर है! आत्मा का उपशमरस—जो पुण्य-पापरहित निराकुल प्रशम आनन्दरस, उसके भाव से तेरी वाणी नितर रही है। तेरी वाणी में आत्मा का शान्तस्वभावरस टपकता है। जैसे घी से भरपूर तपेली में गरम पूरणपोळी डुबोकर फिर उठाये तो वह पूरणपोळी अन्दर में तो घी से भरचक हो जाती है और बाहर में भी घी से नितरती होती है, उसी प्रकार तेरी वाणी अन्दर में तो उपशमरस से भरपूर है, अर्थात् जो समझे उसको अन्तर में तो आत्मा का शान्त अमृतरस अनुभव में आता है और बाहर में भी उसकी दशा अद्‌भुत हो जाती है।

'**मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी**' यह वाणी मुमुक्षु जीवों को अमृतरस पिलानेवाली है। जिसको संसार का आताप-भय लगा हो, प्यास लगी हो, आत्मा की धगश-तृषा जगी हो, ऐसे जीवों को यह समयसारजी की वाणी अमृतरस पिलाती है, वह जिसे रुचेगा, उसकी जन्म-मरण की तृषा टल जायेगी। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव और अमृतचन्द्राचार्य समयप्राभृतरूपी अंजलि भर-भरकर जगत के भव्यात्माओं को कहते हैं कि—लो रे लो! जन्म-मरण की तृषा टालने के लिये इस अमृत का पान करो... ऐसा अवसर बारम्बार नहीं मिलेगा...

इस अमृत का पान करने से क्या होता है—तो कहते हैं कि '**अनादिनी मुर्छा विषतणी त्वराथी उतरती।**' हे नाथ समयप्राभृत! तेरी पवित्र वाणी में ऐसे मन्त्र हैं कि अनादि की विषमूर्च्छा एकदम उतर जाती है, तेरी वाणी के नाद से जो जागृत हुए, उन्हें शीघ्रता से मुक्ति होती है। यह समयसार जिसे रुचा और मैं आत्मा, मेरे आनन्द के लिये परवस्तु की मुझे आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं ही ज्ञानानन्द से भरपूर स्वाधीन तत्त्व हूँ—ऐसे जो अन्तरभान करके जागृत हुए, उन्हें एक-दो भव में ही मुक्ति के कोलकरार हैं; यह तो कुन्दकुन्द भगवान की हुण्डी है—जैसे साहूकार की हुण्डी कभी वापस नहीं

फिरती, उसी प्रकार यहाँ साहूकार अर्थात् स्वरूप की सच्ची लक्ष्मीवाले श्री कुन्दकुन्द भगवान की मुक्ति की हुण्डी इस समयप्राभृत में है, वह कभी वापस नहीं फिरती... जिसने इस समयप्राभृत का अमृत पिया, उसकी विषमूर्च्छा (अज्ञान) उसी क्षण टल जाती है... मूर्च्छा उतरने पर क्या होता है—वह कहते हैं —

विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दौड़े परिणति

अज्ञानभावरूपी विषरूपी विषय मूर्च्छा उतर जाने पर पुण्य-पापरूपी विभावभावों से रुककर परिणति निज स्वरूप सन्मुख दौड़ती है। दौड़ती है, ऐसा कहकर पुरुषार्थ का जोर बतलाया है। समयसार को (शुद्ध आत्मस्वरूप को) सुनने से और पहिचानने से अपनी परिणति-अवस्था चैतन्यज्योति आत्मस्वरूप की ओर शीघ्र-शीघ्र परिणमती है। देरी लगे, वह बात ही नहीं।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

हे ग्रन्थाधिराज! तू निश्चय का ग्रन्थ है, परम शुद्ध आत्मस्वरूप को दर्शानेवाला है। और व्यवहार के अनेक भेद हैं, उन्हें तोड़कर एकरूप अभेद स्वभाव समझानेवाला है। ग्यारहवीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि—

ववहारोऽभूयत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भुयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो॥

व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है, ऐसा ऋषिश्वरों ने दर्शाया है; जो जीव भूतार्थ का आश्रय करता है, वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

व्यवहार अनेक भेदरूप है, उन भेदों को यह निश्चय ग्रन्थ भेदता है। इस कथन में व्यवहार का स्वरूप भी सिद्ध होता ही है। व्यवहार है, तब उसे भेदता है न? यदि व्यवहार हो ही नहीं तो तोड़े किसे? व्यवहार है सही, परन्तु वह भेदरूप होने से उसके लक्ष्य से

अखण्ड स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती। उस भेदरूप व्यवहार को भेदते-भेदते अभेदस्वरूप को पाया जाता है, यह परमागम समयप्राभृत भेद को गौण करके अभेदस्वरूप को समझाता है, इसीलिए निश्चयग्रन्थ है। ज्ञानी को भी साधकदशा में शुभभाव होते हैं परन्तु उसमें वे धर्म नहीं मानते। ज्ञानी हो तो उसी क्षण में सर्वथा शुभभाव टल ही जाये, ऐसा नहीं। साधर्मी के प्रति प्रेम धर्म का अवसर आने पर उछल जाये—ऐसे ज्ञानी होते हैं।

पद्मनन्दि आचार्य दान अधिकार में लोभिया के प्रति कहते हैं कि, कौआ खुरचन (जली हुई रसोई) मिले उसे अकेला नहीं खाता, परन्तु काँव-काँव करके दूसरे जाति-बन्धुओं को इकट्ठा करके खाता है, जली हुई रसोई कौआ भी अकेला नहीं खाता... तूने पूर्व में पुण्य किये और तेरे निर्विकार गुण जले—(पुण्य वह विकार है, उसके द्वारा आत्मा के निर्विकार भाव को हानि पहुँचती है), गुण की हानि हुई और उसके फल में पैसे का संयोग मिला और यदि अकेला खायेगा तो वह कौवे से भी गया-बीता है...! पुण्य हुआ, वह दोष से हुआ है। गुण से हुआ नहीं, उस गुण की हानि में जो पुण्य हुआ, उसके फल में पैसा मिला और यदि राग—तृष्णा घटाकर धर्म प्रभावना इत्यादि में उसे खर्च न करे और अकेला खाये तो तू कौवे से भी गया-बीता है अर्थात् तुझे अत्यन्त लोभ है। यहाँ लोभ के कुएँ में गिरते जीवों को बचाने के लिये कहा है... ज्ञानी को साधर्मी वात्सल्य, धर्म प्रभावना इत्यादि के शुभभाव होते हैं, परन्तु वे शुभभाव में धर्म नहीं मानते... यह ग्रन्थ आत्मा के अभेदस्वरूप को बतलानेवाला निश्चयग्रन्थ है.... और

'**तुं प्रज्ञा छीणी ज्ञानने उदयनी संधि सहु छेदवा**'—हे समयसार! तेरी वाणी स्वभाव और परभाव को भिन्नरूप से बतलाती है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, और रागादिभाव, वे कर्म के निमित्त से होता होने से उदय भाव है, इन दो के बीच भेदज्ञानरूपी छैनी मारकर, दोनों का स्वरूप भिन्न बतलाते हैं। मेरा ज्ञानानन्दस्वरूप बतलानेवाला तू है, तेरा महान उपकार है।

साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो—तू साधक का साथीदार है, जगत का तू सूर्य है। अज्ञान अन्धकार टालने के लिये तू केवलज्ञान दीपक है। तू ही महावीर का सन्देश है। दिव्यध्वनि के रहस्य तुझमें भरे हैं। '**विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्तितणो**' चौरासी के अवतार की जिसे थकान लगी हो, जन्म-मरण

के दु:खों से छूटकर जिसे स्वरूप की शान्ति लेनी हो, उसे, हे समयसार! आप विश्रामरूप हो। संसार से थके हुए जीव तेरे आश्रय से विश्राम करते हैं। और तू ही मुक्ति का पंथ है।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

इस समयसार की—शुद्धआत्मस्वरूप की बात सुनने से कर्मों का रस-बन्धन शिथिल हो जाता है—टल जाता है। इस ग्रन्थ में दर्शाये हुए समयसाररूप शुद्धात्मा को जानते ही ज्ञानियों का अन्तर हृदय ज्ञात हो जाता है। शुद्ध-आत्मा की रुचि होते ही परिपूर्ण आत्मस्वरूप के अतिरिक्त जगत में किसी की रुचि नहीं रहती। और तू रीझने से-प्रसन्न होने से केवलज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा रीझता है, अर्थात् केवलज्ञान प्रगट होता है।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अहो समयसार! तेरा माहात्म्य किस प्रकार करें? अरे! इस चाँदी की तो क्या कीमत? परन्तु सुवर्ण के पत्र बनाकर उसमें रत्नों के अक्षर लिखूँ तो भी तेरा मूल्य नहीं आँका जा सकता... बाहर से किसी प्रकार से तेरी महिमा नहीं आँकी जा सकती, अन्तर स्वरूप में शुद्धात्मारूप समयसार की समझण होने से उसकी जो महिमा जगती है और जो परिपूर्णानन्दी स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और आनन्द में एक-दो भव में ही संसार का अन्त आकर पूर्णानन्दी दशा प्रगटे, ऐसे भगवान समयसार की क्या महिमा हो? अर्थात् आत्मा के स्वरूप की पहिचान हो तो ही उसकी यथार्थ महिमा समझ में आये और तब ही इस समयसार की कीमत समझ में आये....

इस प्रकार समयसार परमागम की स्तुति पूरी हुई।

(आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष 2, अंक 10, आषाढ़ संवत् 2001 दिनांक, 6 जुलाई 1945)

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — '**सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।**' इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्‌चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
६३	०१-१०-१९६६	श्लोक-९, गाथा-१४	००१
६४	०२-१०-१९६६	गाथा-१४	०२५
६५	०३-१०-१९६६	गाथा-१४	०४५
६६	०४-१०-१९६६	गाथा-१४	०६४
६७	०५-१०-१९६६	गाथा-१४	०८०
६८	०६-१०-१९६६	गाथा-१४	०९९
६९	०७-१०-१९६६	गाथा-१४, श्लोक-११-१२	११८
७०	०८-१०-१९६६	श्लोक-११-१२, गाथा-१५	१३६
७१	०९-१०-१९६६	गाथा-१५	१५८
७२	१०-१०-१९६६	गाथा-१५	१७४
७३	११-१०-१९६६	गाथा-१५, श्लोक-१४-१५	१९१
७४	१२-१०-१९६६	गाथा-१६	२११
७५	१३-१०-१९६६	श्लोक-१६ से १९	२३०
७६	१५-१०-१९६६	गाथा - १७-१८	२५१
७७	१६-१०-१९६६	गाथा - १७-१८	२७२
७८	१७-१०-१९६६	गाथा - १७-१८	२९१
७९	१८-१०-१९६६	गाथा - १७-१८, श्लोक-२०	३१०
८०	१९-१०-१९६६	श्लोक-२०, गाथा-१९	३३०
८१	२०-१०-१९६६	गाथा-१९	३५०
८२	२२-१०-१९६६	गाथा-१९ से २२, श्लोक-२१	३६९

८३	२३-१०-१९६६	गाथा-२० से २२	३९१
८४	२४-१०-१९६६	गाथा-२० से २२	४१०
८५	२५-१०-१९६६	गाथा-२० से २५, श्लोक-२२	४२९
८६	२७-१०-१९६६	गाथा-२३ से २५	४५४
८७	२८-१०-१९६६	गाथा-२३ से २५	४७२
८८	२९-१०-१९६६	गाथा-२३ से २५, श्लोक-२३	४८९
८९	३०-१०-१९६६	श्लोक-२३	५०८
९०	३१-१०-१९६६	गाथा-३१	५२७
९१	०१-११-१९६६	गाथा-३१	५४६
९२	०२-११-१९६६	गाथा-३१-३२	५६४

समयसार वैभव

(भाग-3)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम समयसार पर अध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के 15वीं बार के धारावाही प्रवचन)

भाद्र कृष्ण २, शनिवार, दिनांक - ०१-१०-१९६६
श्लोक -१०, गाथा-१४, प्रवचन - ६३

यह समयसार, जीव-अजीव अधिकार की १४वीं गाथा का उपोद्घात है। १०वाँ कलश, १०वाँ कलश है। देखो! क्या कहते हैं? **शुद्धनय...** अर्थात् शुद्ध आत्मा ध्रुव परम ज्ञायकभाव परमपारिणामिकभाव को यहाँ शुद्धनय कहते हैं। अथवा वह शुद्धनय ऐसा परम स्वभाव आत्मा को कहता है, प्रगट करता है, बताता है। **प्रगट करता हुआ उदयरूप होता है।** शुद्धनय आत्मस्वरूप एकरूप बतलाकर एकरूपता को प्रगट करता है। **वह आत्मस्वभाव को कैसे प्रगट करता है?** अन्तर दृष्टि का विषय अथवा वह शुद्धनय अर्थात् आत्मस्वभाव परद्रव्य से आत्मा भिन्न है। कर्म और शरीर से भिन्न है। और **परद्रव्य के भाव...** कर्म आदि का उदय आदि भाव जो पर्याय, उससे भी भिन्न है। परद्रव्य से भिन्न है और परद्रव्य का जो उदय, कर्म का उदय, जो उदय है, वह परभाव है, वह तो कर्म का भाव है। उससे भी भिन्न **तथा परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विभाव...** निमित्त परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले अपनी पर्याय में पुण्य-पाप, शुभाशुभ आदि भाव (होते हैं), वे विभाव हैं। **ऐसे परभावों से भिन्न प्रगट करता है।** इन सबको परभाव में लिया। '**आत्मस्वभावं परभावभिन्न**' परभाव की ऐसी व्याख्या की। समझ में आया?

आत्मा-आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्य से (भिन्न) परभाव। **'आत्मस्वभावं परभावभिन्न'** परभाव में तीन बोल लिये। परद्रव्य, परद्रव्य के भाव और परद्रव्य के निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुए विकारी भाव, इन सबको यहाँ परभाव कहा। कहो, समझ में आया? **'आत्मस्वभावं'** अस्ति **'परभावभिन्न'** नास्ति। समझ में आया? ज्ञायक परिपूर्ण परमात्मस्वभाव पारिणामिकभाव त्रिकाल ज्ञायकभाव, वह **'आत्मस्वभावं'। 'परभावभिन्न'** कर्म, शरीर आदि परद्रव्य से भिन्न और उनकी पर्यायें, परद्रव्य के भाव, उससे कर्म का उदय है, वह परद्रव्य का भाव है, उससे भिन्न। और कर्म के उदय के लक्ष्य से हुए विकारों से भी भिन्न। अर्थात् परभाव में तीन बोल लिये। परद्रव्य, परद्रव्य का भाव और परद्रव्य के निमित्त से होते अपने विकारी भाव। कहो, समझ में आया इसमें? **ऐसे परभावों से भिन्न प्रगट करता है।** अन्तर में परवस्तु से भिन्न शुद्धनय अन्तर्मुख दृष्टि देने से आत्मा अपना ज्ञायकभाव परभाव से भिन्न अनुभव करता है। समझ में आया? प्रगट करता है, इसका अर्थ अन्दर में अनुभव करता है कि मेरा स्वभाव परिपूर्ण पर से भिन्न (है)। ऐसा अनुभव करना, इसका नाम परभावों से भिन्न आत्मा को प्रगट करता है, ऐसा कहा गया है। कहो, समझ में आया?

और वह, आत्मस्वभाव... परभाव से भिन्न कहा। अब, **'आपूर्णम्'** यह विशेषण है। आत्मस्वभाव **'आपूर्णम्'** अनन्त गुण सम्पूर्णरूप से पड़े हैं। **'आत्मस्वभावं परभावभिन्न आपूर्णम्'।** समस्त प्रकार से अनन्त गुणों से परिपूर्ण आत्मा है। समझ में आया? आत्मस्वभाव **'आपूर्णम्'** सम्पूर्ण रूप से पूर्ण। व्याख्या की। **समस्त लोकालोक का ज्ञाता है...** अर्थात् कि सबको जानने-देखने का उसका त्रिकाल स्वभाव, त्रिकाल स्वभाव, उसे शुद्धनय दिखलाता है, प्रगट करता है, अनुभव कराता है। अस्तित्व की बात है न? अस्तित्व। कर्ता-कर्म का अधिकार दोपहर में चलता है। यह तो अस्तित्व। अपना विद्यमानपना आत्मस्वभाव, विद्यमानपना परभाव से भिन्न, विद्यमानपना सम्पूर्ण गुणों से पूर्ण, सम्पूर्ण गुणों से पूर्ण। जीवतत्त्व का वर्णन है न। जीवतत्त्व। जीवतत्त्व का वर्णन है। जीवतत्त्व किसे कहते हैं? जीव स्वभाव परिपूर्ण, परभाव से भिन्न, उसका नाम जीवस्वभाव आत्मतत्त्व कहा गया है। यह आत्मतत्त्व, वही शुद्धनय है और यह आत्मतत्त्व बतलानेवाला भी शुद्धनय है। समझ में आया?

(क्योंकि ज्ञान में भेद कर्म संयोग से हैं, शुद्धनय में कर्म गौण हैं।) यह पर्याय की बात करना चाहते हैं। परन्तु अन्दर में वस्तु में कुछ (भेद नहीं)। **'आपूर्णम्'** वस्तु पूर्ण, गुण से परिपूर्ण, ज्ञान से परिपूर्ण, दर्शन से परिपूर्ण, आनन्द से परिपूर्ण, चारित्र से परिपूर्ण। अनन्त अनन्त गुण **'आपूर्णम्', 'आपूर्णम्', 'आपूर्णम्'।** समस्त प्रकार से पूरा है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मस्वभाव का अनुभव शुद्धनय प्रगट करता है। **और वह, आत्मस्वभाव को...** यह की यह बात है। **'आत्मस्वभावं परभावभिन्न आपूर्णम् आद्यन्तमुक्तमेकम्'।** ज्ञायकभाव एकरूप स्वभाव कैसा है? **आदि-अन्त से रहित...** आत्मस्वभाव एकरूप है। आदि नहीं, अन्त नहीं। ऐसा परिपूर्ण आत्मस्वभाव पर से भिन्न शुद्धनय बतलाता है। **आत्मस्वभाव को आदि-अन्त से रहित प्रगट करता है (अर्थात् किसी आदि से लेकर जो किसी से उत्पन्न नहीं किया गया,...)** किसी से उत्पन्न नहीं किया गया कि कोई ईश्वर कर्ता है द्रव्यस्वभाव का। **(और कभी भी किसी से जिसका विनाश नहीं होता,...)** आदि और अन्तरहित अनादि है। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ज्ञायकस्वभाव आत्मस्वभाव परमभाव ऐसा अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... आदि और अन्तरहित चीज़ है। उत्पन्न हुई नहीं, नाश हुई नहीं, ऐसी वस्तु है। कहो, समझ में आया?

(ऐसे पारिणामिकभाव को प्रगट करता है।) ऐसा ज्ञायकभाव त्रिकाल परमपारिणामिक, जिसमें चार पर्याय—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है—वह भी उसमें है नहीं। कहो, यहाँ उसे जीवतत्त्व कहा गया है। वह खरुं—वास्तविक आत्मतत्त्व है। बाकी सब व्यवहार। पर्याय व्यवहार आत्मा। राग तो कहीं गया। राग, वह अनात्मा, आस्रवतत्त्व है। यह तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की पर्याय, वह वास्तव में व्यवहार है। पर्याय है न! पर्याय व्यवहार, द्रव्य निश्चय। ओहोहो! समझ में आया? यह तो लोग व्यवहार व्यवहार कहते हैं न कि व्यवहार चाहिए, व्यवहार चाहिए। परन्तु वह व्यवहार कौनसा? व्यवहार तो रागादि होते हैं, वह असद्भूतव्यवहार है। और उपशम, क्षयोपशम आदि पर्याय है, वह सद्भूतव्यवहार। वह (रागादि) उपचारिक, यह अनुपचारिक। समझ में आया? हो, परन्तु उससे रहित आत्मा को बतलाता है, उसका नाम शुद्धनय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य, वही शुद्धनय। त्रिकाल द्रव्य, वही शुद्धनय। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। '**भूदत्थो देसिदो**' नहीं कहा था? भूतार्थ त्रिकाल ज्ञायक। अभी १४वीं गाथा लेनी है तो यह बताते हैं। ११वीं में आ गया है। भूतार्थ त्रिकाल एकरूप स्वभाव, वह शुद्धनय। कहो, शुद्धनय। शुद्धनय दूसरा कौनसा? शुद्धनय कौनसा द्रव्य होगा? समझ में आया? यहाँ तो जीव-अजीव अधिकार है न। आत्म अधिकार है न! आत्मा कहो या जीव कहो। जीवतत्त्व निश्चय से—वास्तविकता से किसे कहते हैं?

ज्ञायक त्रिकाल एकरूप पारिणामिकभाव को यहाँ जीवतत्त्व कहा गया है। समझ में आया? शरीर, वाणी तो नहीं; दया, दान के परिणाम नहीं; उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय नहीं। समझ में आया? ऐसा एकरूप अनादि-अनन्त चैतन्यस्वभावभाव को यहाँ शुद्धनय कहा गया है और वही भूतार्थ अर्थात् यथार्थ है। वही भूतार्थ अर्थात् अनुभव करनेयोग्य है। आश्रय करनेयोग्य वही वस्तु है। ओहोहो! अभी तो इस शरीर को चलाना है और शरीर को आहार-पानी से पोसना है। शरीर है न, (इसीलिए) इसके लिये आहार-पानी लेते हैं, बस्ती लें तो इसे कुछ देना पड़े न। किसी से आहार-पानी, वस्ती लेना, वस्त्र,... जरा पर को भी काम करके देना चाहिए। कौन ले और कौन दे? परद्रव्य से तो भिन्न आत्मा तीनों काल में है। भिन्न है, फिर उसे लेना-देना कहाँ रहा? यहाँ तो कहते हैं कि विकार से तीनों काल भिन्न है। लेना-देना क्या? यहाँ तो पर्याय जो निर्मल प्रगट होती है, उससे भी भिन्न आत्मा है। समझ में आया? क्योंकि पर्याय प्रगट होती है, वह तो नयी है। आदि-अन्तरहित वह वस्तु नहीं। आदि-अन्तरहित त्रिकाल... त्रिकाल एकरूप ज्ञायक पारिणामिकभाव को प्रगट करता है। लो। समझ में आया?

मुमुक्षु : भोजन लेता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन लेता है? कोई लेता नहीं, देता नहीं।

मुमुक्षु : पेट को पुद्गल मिलता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ मिलता नहीं। ममता मिलती है। पुद्गल कहाँ मिला?

मुमुक्षु : ममता भी आत्मा में नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता का तो मैंने कहा कि उसमें ममता मिली। ममता स्वरूप में है नहीं। कहो, शोभालालजी!

मुमुक्षु : सेठ यहाँ बैठे हों तो भी रुपये तो आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ रुपये आते हैं? धूल में भी आते नहीं। रुपये रुपये में आते हैं, शरीर शरीर में आता है, दवा दवा में आती है। आत्मा में कहाँ आते हैं?

और वह, आत्मस्वभाव को... अभी आत्मस्वभाव का ही (स्पष्टीकरण चलता है)। आत्मस्वभाव त्रिकाल एकरूप ध्रुव ज्ञायक परमपारिणामिकभाव **एक...** लो। है न? **'आद्यन्तविमुक्तमेकम्।'** एक विशेषण आया। **सर्व भेदभावों से (द्वैतभावों से) रहित एकाकार-प्रगट करता है,...** ओहो! कितने विशेषण दिये! समझ में आया? एकरूप है। पर्याय तो अनेकरूप है। भेद अनेकरूप है, गुण भी अनेकरूप है। (आत्मा स्वभाव) एकरूप, एकरूप त्रिकाल एकरूप शुद्ध चैतन्यधातु अनन्त गुण से परिपूर्ण पर से भिन्न एकरूप, उसकी दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। कहो, समझ में आया? और **'विलीनसङ्कल्प-विकल्पजालं'** यह तीसरा पद आया। कौन? आत्म-स्वभाव। **जिसमें समस्त संकल्प-विकल्प के समूह विलीन हो गये हैं....** देखो! **'विलीनसङ्कल्पविकल्पजालं'।** जाल-जाल कहा न? जाल अर्थात् समूह। संकल्प-विकल्प का समूह आत्मस्वभाव ध्रुव चैतन्य में है ही नहीं। विलय हो गया, इसका अर्थ कि है ही नहीं। समझ में आया? अथवा अनुभव की दृष्टि में, अनुभव की परिणति में वे संकल्प-विकल्प उत्पन्न नहीं होते। संकल्प-विकल्प के जाल का नाश होता है। आहाहा!

और जिसमें समस्त संकल्प-विकल्प के समूह... जाल का अर्थ समूह किया न? **विलीन हो गये हैं...** भगवान आत्मा शुद्ध आत्मस्वभाव में तो संकल्प-विकल्प नहीं, परन्तु उसका अनुभव हुआ, उसमें भी संकल्प-विकल्प का समूह नाश हो गया। क्योंकि वस्तु में नहीं है तो वस्तु के अनुभव की पर्याय में भी वह नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में अनुभव हुआ, तब यह शुद्धनय भूतार्थ है, ऐसा भासन हुआ। समझ में आया? विलय का अर्थ तो यह भी करते हैं। वह तो नियमसार में आता है। परमपारिणामिक विलीन करता है। परमपारिणामिकभाव कर्म के नाश का

कुठार है। कुल्हाड़ा होता है न ? वह तो उपमा (दी है)। द्रव्य है, जैसा है वैसा अनुभव में आवे, तब यह द्रव्य ऐसा है, यह जानने में आया, ऐसा कहते हैं मूल तो। समझ में आया ? उसकी भाषा परमपारिणामिकभाव ज्ञायकभाव संकल्प-विकल्प का नाश करने की वह वस्तु है। क्षयकरणशील आया था न ? आया था या नहीं उसमें ? (कलश ९)। **'अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव'।** क्षयकरणशील है। वह तो द्रव्य भी विकल्प का क्षयकरणशील है और उसका अनुभव भी विकल्प का क्षयकरणशील है। वस्तु ही ऐसी है, ऐसे क्षयकरण, संकल्प-विकल्प का क्षयकरणशील है, ऐसा अनुभव हुआ, तब वस्तु ऐसी है, ऐसा प्रतीति में आया। समझ में आया ? ओहोहो ! कहाँ ले जाना इसे ! अभी तो यहाँ कहे, शुभभाव से यह होता है, दया से यह होता है, व्रत से यह होता है, भक्ति से यह होता है, निर्जरा और संवर होते हैं। लो ! यहाँ तो कहते हैं, व्रत से संवर-निर्जरा (तो नहीं होते, वह तो) राग है, (परन्तु) स्वभाव के आश्रय से संवर, निर्जरा होते हैं, वे भी स्वभाव में नहीं। एकरूप दृष्टि में नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? उसकी—संकल्प-विकल्प की थोड़ी व्याख्या करते हैं।

(द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म आदि पुद्‌गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना, सो संकल्प है,...) वह वस्तु में नहीं है और अनुभव में भी नहीं है। समझ में आया ? द्रव्यकर्म मेरे हैं और उसकी पर्याय मेरी है, उसके निमित्त से हुए विकल्प मेरे हैं, शरीर-वाणी मेरे है और पर्याप्ति... छह पर्याप्ति होती है न ? यह आदि पुद्‌गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा (और मन)। समझ में आया ? उनमें अपनी कल्पना। अपनी कल्पना अर्थात् यह मैं हूँ, ऐसा संकल्प। वह शुद्धनय का विषय आत्मा में है नहीं और अनुभव हुआ, उसमें भी वह है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। द्रव्यकर्म और भावकर्म।

मुमुक्षु : नोकर्म.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। नोकर्म .... नोकर्म में सब आ गया। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा, मन पर्याप्ति।

(आदि पुद्गलद्रव्यों में...) द्रव्यकर्म कर्म है, भावकर्म विकारी पर्याय है, नोकर्म वाणी, आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा, मन, वे सब नोकर्म में जाते हैं। उन पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना। मन... मन पुद्गल का उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? वाणी पुद्गल की है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास, भाषा, मन, वे सब पुद्गल हैं। उनमें अपनी कल्पना (करना कि) मैं उनमें हूँ अथवा वे मेरे हैं। मैं उनमें हूँ अभी तो इतनी बात है। अपनी कल्पना करना, वह संकल्प है। वह संकल्प शुद्ध द्रव्य में है नहीं और अनुभूति में है नहीं। सम्यग्दर्शन की अनुभूति त्रिकाल स्वभाव का आश्रय करने से उसमें ऐसा संकल्प है नहीं। संकल्प का नाश करके पर्याय उत्पन्न होती है। समझ में आया?

विकल्प। **ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद ज्ञात होना...** अनन्तानुबन्धी का विकल्प लिया है। संकल्प मिथ्यात्व का लिया है और यह विकल्प अनन्तानुबन्धी का लिया है। ज्ञान में ज्ञेय के भेद से ज्ञान की पर्याय में भेद मालूम होना। ज्ञेयों की अनेकता से ज्ञान में भेद—अनेकता भासित होना, वह विकल्प है। समझ में आया? यह अनन्तानुबन्धी का विकल्प कहा गया है। ऐसी प्रतीति होना, वह संकल्प है और पर में अस्थिरता, अस्थिर होता है न? अनन्तानुबन्धी। स्वरूपाचरण का अभाव है। अनेक ज्ञेय के ऊपर लक्ष्य जाता है, तो मेरी पर्याय भी अनेक हो गयी। अनेक का लक्ष्य करने से पर्याय अनेक हो गयी, ऐसा मालूम होना, **(उसे विकल्प कहते हैं)।** यहाँ यह व्याख्या है। ऐसा शुद्धनय प्रकाशरूप होता है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान की बात है। सम्यग्दर्शन की बात है। १४ (गाथा) में सम्यग्दर्शन की बात कहेंगे, १५ (गाथा) में सम्यग्ज्ञान की कहेंगे, १६ (गाथा) में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों की इकट्ठी कहेंगे। समझ में आया? सम्यग्दर्शन की बात। अन्त में लेख आयेगा। आगे आयेगा अन्दर। सम्यग्दर्शन की प्रधानता से कहते हैं। अब ज्ञान से आयेगा। ऐसा आगे आयेगा।

मुमुक्षु : सुखी होने का प्रयोजन....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुखी होने का प्रयोजन है। दु:खी हो रहा है अनादिकाल से। यह (१३वें कलश का) भावार्थ है, भावार्थ। **पहले सम्यग्दर्शन को प्रधान करके**

कहा था; अब ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं... भावार्थ है। १५वीं गाथा के ऊपर। १५वीं गाथा शुरु होती है, उसके ऊपर। १५वीं गाथा शुरु होती है, उसके ऊपर दो लाईन का भावार्थ है। पहले सम्यग्दर्शन को प्रधान करके कहा था। किसमें? १४ में। अपने चलेगी यह। **अब ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं कि यह शुद्धनय के विषयस्वरूप आत्मा की अनुभूति है, वही सम्यग्ज्ञान है।** १५ में। समझ में आया? १४ (गाथा) में सम्यग्दर्शन की प्रधानता से कथन है। १५वीं (गाथा) में जैनशासन की सम्यग्ज्ञान से (प्ररूपणा है)। ४२ पृष्ठ पर नीचे। चालीस और दो। १३ कलश का भावार्थ। १४ (गाथा) में सम्यग्दर्शन का विषय है। उसकी यह बात चलती है। समझ में आया? अर्थात् यह संकल्प-विकल्प का अर्थ कैसे किया? यह सम्यग्दर्शन के अर्थ में है।

संकल्प—अपने ज्ञायकभाव को छोड़कर द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म पर्याप्ति, अपर्याप्ति आदि को अपना मानना, वह संकल्प है। वह वस्तु में भी नहीं और अनुभव, सम्यग्दर्शन में भी नहीं। विकल्प। अनन्तानुबन्धी का अभाव है। सम्यग्दर्शन नहीं है तो उस ज्ञेय की अनेकता से ज्ञान में अनेकता—भेद मालूम होना, वह खण्ड-खण्ड हुआ। ऐसे विकल्प से रहित आत्मा की—ज्ञायकस्वभाव की अनुभूति अर्थात् सम्यग्दर्शन में वह संकल्प-विकल्प नहीं। समझ में आया? यहाँ यह अर्थ लिया है। किसी जगह संकल्प-विकल्प का अर्थ दूसरा भी करते हैं। द्रव्यसंग्रह में। यहाँ तो सम्यग्दर्शन की गाथा लेनी है न, इसलिए संकल्प-विकल्प की व्याख्या सम्यग्दर्शन में लागू पड़े, ऐसी ली है। समझ में आया? संकल्प मिथ्यात्व को कहते हैं, विकल्प अनन्तानुबन्धी को कहते हैं। दोनों का अभाव है। कहो, समझ में आया या नहीं?

★ ★ ★

गाथा - १४

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेस-मसंजुत्तं तं सुद्ध-णयं वियाणीहि।।14।।

य: पश्यति आत्मानं अबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतम्।
अविशेष-मसंयुक्तं तं शुद्ध-नयं विजानीहि।।14।।

या खल्वबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूति: स शुद्धनय:, सा त्वनुभूतिरात्मैव। इत्यात्मैक एव प्रद्योतते।

कथं यथोदितस्यात्मनोऽनुभूतिरिति चेद्बद्धस्पृष्टत्वादीनामभूतार्थत्वात्।

तथा हि – यथा खलु बिसिनीपत्रस्य सलिलनिमग्नस्य सलिलस्पृष्टत्व-पर्यायेणानुभूय-मानतायां सलिलस्पृष्टत्वं भूतार्थमप्येकान्तत: सलिलास्पृश्यं बिसिनीपत्रस्वभावमुपेत्यानुभूय-मानतायामभूतार्थम्।

तथात्मनोऽनादिबद्धस्य बद्धस्पृष्टत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां बद्धस्पृष्टत्वं भूतार्थमप्येकान्तत: पुद्गलास्पृश्यमात्मस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्।

यथा च मृत्तिकाया: करककरीरकर्करीकपालादिपर्यायेणानुभूयमानताया-मन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोऽप्यस्खलन्तमेकं मृत्तिकास्वभावमुपेत्यानुभूयमानता-यामभूतार्थम्। तथात्मनो नारकादिपर्यायेणानुभूयमानतायामन्यत्वं भूतार्थमपि सर्वतोऽप्यस्खलन्तमेकमात्मस्वभावमुपेत्या-नुभूयमानतायामभूतार्थम्।

यथा च वारिधेर्वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूयमानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्य-व्यवस्थितं वारिधिस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। तथात्मनो वृद्धिहानिपर्यायेणानुभूय-मानतायामनियतत्वं भूतार्थमपि नित्यव्यवस्थितमात्मस्वभाव-मुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्।

यथा च काञ्चनस्य स्निग्धपीतगुरुत्वादिपर्यायेणानुभूयमानतायां विशेषत्वं भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषं काञ्चनस्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायाम-भूतार्थम्। तथात्मनो ज्ञानदर्शनादिपर्यायेणानुभूयमानतायां विशेषत्वं भूतार्थमपि प्रत्यस्तमितसमस्तविशेषमात्म-स्वभावमुपेत्यानुभूययौष्ण्यमानतायामभूतार्थम्।

यथा चापां सप्तार्चि:प्रत्ययोष्णसमाहितत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थ-मप्येकान्ततः शीतमप्स्वभावमुपेत्यानुभूयमानतायामभूतार्थम्। तथात्मन: कर्मप्रत्ययमोह-समाहितत्वपर्यायेणानुभूयमानतायां संयुक्तत्वं भूतार्थमप्येकान्तत: स्वयं बोधं जीवस्वभावमुपेत्या-नुभूयमानतायाम-भूतार्थम्।।14।।

उस शुद्धनय को गाथासूत्र से कहते हैं :-

अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्म को।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जानजो।।14।।

गाथार्थ : [य:] जो नय [आत्मानं] आत्मा को [अबद्धस्पृष्टम्] बन्ध रहित और पर के स्पर्श से रहित, [अनन्यकं] अन्यत्व रहित, [नियतम्] चलाचलता रहित, [अविशेषम्] विशेष रहित, [असंयुक्तं] अन्य के संयोग से रहित-ऐसे पाँच भावरूप से [पश्यति] देखता है [तं] उसे, हे शिष्य! तू [शुद्धनयं] शुद्धनय [विजानीहि] जान।

टीका : निश्चय से अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त - ऐसे आत्मा की अनुभूति शुद्धनय है, और वह अनुभूति आत्मा ही है; इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है। (शुद्धनय, आत्मा की अनुभूति या आत्मा सब एक ही हैं, अलग नहीं।) यहाँ शिष्य पूछता है कि जैसा ऊपर कहा है वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है? उसका समाधान यह है :- बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ हैं इसलिए यह अनुभूति हो सकती है। इस बात को दृष्टान्त से प्रगट करते हैं - जैसे कमलिनी-पत्र जल में डूबा हुआ हो तो उसका जल से स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि जल से किञ्चित् मात्र भी न स्पर्शित होने योग्य कमलिनी-पत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; इसी प्रकार अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का, पुद्गलकर्मों से बँधने-स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि पुद्गल से किञ्चित्मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तथा जैसे मिट्टी का, ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है-सत्यार्थ है, तथापि सर्वत: अस्खलित (-सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले ऐसे) एक मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व

अभूतार्थ है–असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर (पर्यायों के अन्य–अन्यरूप से) अन्यत्व भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि सर्वत: अस्खलित (सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित् मात्र भेदरूप न होनेवाले) एक चैतन्याकार आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है–असत्यार्थ है। जैसे समुद्र का, वृद्धिहानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर अनियतता (अनिश्चितता) भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि नित्य–स्थिर समुद्रस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है–असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, वृद्धिहानिरूप पर्यायभेदों से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि नित्य–स्थिर (निश्चल) आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है–असत्यार्थ है। जैसे सोने का, चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं ऐसे सुवर्णस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है–असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, ज्ञान, दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है–असत्यार्थ है। जैसे जल का, अग्नि जिसका निमित्त है ऐसी उष्णता के साथ संयुक्ततारूप–तप्ततारूप–अवस्था से अनुभव करने पर (जल का) उष्णतारूप संयुक्तता भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि एकान्त शीतलतारूप जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ) संयुक्तता अभूतार्थ है–असत्यार्थ है; इसी प्रकार आत्मा का, कर्म जिसका निमित्त है ऐसे मोह के साथ संयुक्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थ है–सत्यार्थ है, तथापि जो स्वयं एकान्त बोधरूप (ज्ञानरूप) है ऐसे जीवस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता अभूतार्थ है–असत्यार्थ है।

भावार्थ : आत्मा पाँच प्रकार से अनेकरूप दिखायी देता है:– (1) अनादि काल से कर्मपुद्‌गल के सम्बन्ध से बँधा हुआ कर्मपुद्‌गल के स्पर्शवाला दिखायी देता है, (2) कर्म के निमित्त से होनेवाली नर, नारक आदि पर्यायों से भिन्न–भिन्न स्वरूप से दिखायी देता है – (3) शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद (अंश) घटते भी हैं, और बढ़ते भी हैं–यह वस्तु स्वभाव है इसलिए वह नित्य–नियत एकरूप दिखायी नहीं देता,

(4) वह दर्शन, ज्ञान आदि अनेक गुणों से विशेषरूप दिखायी देता है और (5) कर्म के निमित्त से होनेवाले मोह, राग, द्वेष आदि परिणामों कर सहित वह सुखदु:खरूप दिखायी देता है। यह सब अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप व्यवहारनय का विषय है। इस दृष्टि (अपेक्षा) से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है। परन्तु आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ग्रहण नहीं होता, और एक स्वभाव को जाने बिना यथार्थ आत्मा को कैसे जाना जा सकता है? इसलिए दूसरे नय को – उसके प्रतिपक्षी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को–ग्रहण करके, एक असाधारण ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर, उसे शुद्धनय की दृष्टि से सर्व परद्रव्यों से भिन्न, सर्व पर्यायों में एकाकार, हानिवृद्धि से रहित, विशेषों से रहित और नैमित्तिक भावों से रहित देखा जाये तो सर्व (पाँच) भावों से जो अनेक प्रकारता है वह अभूतार्थ है–असत्यार्थ है।

यहाँ यह समझना चाहिए कि वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है, वह स्याद्वाद से यथार्थ सिद्ध होता है। आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है। उसके कुछ धर्म तो स्वाभाविक हैं और कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं। जो कर्म के संयोग से होते हैं, उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है और तत्सम्बन्धी जो सुखदु:खादि होते हैं उन्हें भोगता है। यह, इस आत्मा की अनादिकालीन अज्ञान से पर्यायबुद्धि है; उसे अनादि–अनन्त एक आत्मा का ज्ञान नहीं है। इसे बतानेवाला सर्वज्ञ का आगम है। उसमें शुद्धद्रव्यार्थिकनय से यह बताया है कि आत्मा का एक असाधारण चैतन्यभाव है जो कि अखण्ड नित्य और अनादिनिधन है। उसे जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है। परद्रव्यों से, उनके भावों से और उनके निमित्त से होनेवाले अपने विभावों से अपने आत्मा को भिन्न जानकर जीव उसका अनुभव करता है तब परद्रव्य के भावोंस्वरूप परिणमित नहीं होता; इसलिए कर्म बन्ध नहीं होता और संसार से निवृत्ति हो जाती है। इसलिए पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके अभूतार्थ (असत्यार्थ) कहा है और शुद्ध निश्चयनय को सत्यार्थ कहकर उसका आलम्बन दिया है। वस्तुस्वरूप की प्राप्ति होने के बाद उसका भी आलम्बन नहीं रहता। इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि शुद्धनय को सत्यार्थ कहा है इसलिए अशुद्धनय सर्वथा असत्यार्थ ही है। ऐसा मानने से वेदान्तमतवाले जो कि संसार को सर्वथा अवस्तु मानते हैं उनका सर्वथा एकान्त पक्ष आ जायेगा और उससे मिथ्यात्व आ जायेगा, इस प्रकार यह शुद्धनय का आलम्बन

भी वेदान्तियों की भाँति मिथ्यादृष्टिपना लायेगा। इसलिए सर्व नयों की कथञ्चित् सत्यार्थ का श्रद्धान करने से सम्यक्दृष्टि हुआ जा सकता है। इस प्रकार स्याद्वाद को समझकर जिनमत का सेवन करना चाहिए, मुख्य-गौण कथन को सुनकर सर्वथा एकान्त पक्ष नहीं पकड़ना चाहिए। इस गाथासूत्र का विवेचन करते हुए टीकाकार आचार्य ने भी कहा है कि आत्मा व्यवहारनय की दृष्टि में जो बद्धस्पृष्ट आदि रूप दिखायी देता है, वह इस दृष्टि से तो सत्यार्थ ही है परन्तु शुद्धनय की दृष्टि से बद्धस्पृष्टादिता असत्यार्थ है। इस कथन में टीकाकार आचार्य ने स्याद्वाद बताया है ऐसा जानना।

यहाँ यह समझना चाहिए कि वह नय है वह श्रुतज्ञान-प्रमाण का अंश है; श्रुतज्ञान वस्तु को परोक्ष बतलाता है; इसलिए यह नय भी परोक्ष ही बतलाता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत, बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित आत्मा चैतन्यशक्तिमात्र है। वह शक्ति तो आत्मा में परोक्ष है ही; और उसकी व्यक्ति कर्मसंयोग से मतिश्रुतादि ज्ञानरूप है, वह कथञ्चित् अनुभवगोचर होने से प्रत्यक्षरूप भी कहलाती है, और सम्पूर्णज्ञान-केवलज्ञान यद्यपि छद्मस्थ के प्रत्यक्ष नहीं है तथापि यह शुद्धनय आत्मा के केवलज्ञानरूप को परोक्ष बतलाता है। जब तक जीव इस नय को नहीं जानता तब तक आत्मा के पूर्णरूप का ज्ञान-श्रद्धान नहीं होता। इसलिए श्रीगुरु ने इस शुद्धनय को प्रगट करके उपदेश किया है कि बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित पूर्णज्ञानघनस्वभाव आत्मा को जानकर श्रद्धान करना चाहिए, पर्यायबुद्धि नहीं रहना चाहिए।

यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि - ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष तो दिखायी नहीं देता और बिना देखे श्रद्धान करना असत् श्रद्धान है। उसका उत्तर यह है - देखे हुए का ही श्रद्धान करना तो नास्तिकमत है। जैनमत में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रमाण माने गये हैं, उनमें से आगमप्रमाण परोक्ष है; उसका भेद शुद्धनय है। इस शुद्धनय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करना चाहिए, मात्र व्यवहार-प्रत्यक्ष का ही एकान्त नहीं करना चाहिए।

गाथा - १४ पर प्रवचन

उस शुद्धनय को गाथासूत्र से कहते हैं :- लो। यही बात अब कुन्दकुन्दाचार्य मूल सूत्र से कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेस-मसंजुत्तं तं सुद्ध-णयं वियाणीहि॥१४॥

नीचे हरिगीत

अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्म को।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जानजो॥१४॥

भाषा तो १५ (गाथा) में भी ऐसी ही आयेगी। अविशेष, असंयुक्त। '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' यह आयेगा परन्तु ज्ञान की प्रधानता से कथन है। सम्यग्ज्ञान, हों! स्व वेदन। यहाँ सम्यग्दर्शन की प्रधानता है। टीका, टीका। शब्दार्थ लो पहले थोड़ा, लो न।

अन्वयार्थ है न अन्वयार्थ? **जो नय...** जो नय अर्थात् जो ज्ञान का अंश त्रिकाल ज्ञायक को पकड़ता है और त्रिकाल ज्ञायक को प्रसिद्ध करता है, वह नय। **आत्मा को बन्ध रहित और पर के स्पर्श से रहित,...** संयोग से रहित। कर्म के बन्धरहित और स्पर्शरहित। जयसेनाचार्य की टीका में स्पर्श विस्रा का लिया है। विस्रा है न? विस्रा... विस्रा। यह कर्मबन्ध और ... विस्रा। पड़े हुए। उनसे रहित है। संयोग से रहित है। संयोग है, उससे रहित है। बद्ध से रहित है। विस्रा है पुद्गल स्कन्ध में। कर्म जो परिणमित हुए हैं, उनके साथ दूसरे भी स्कन्ध विस्रा बहुत है। उनसे भी आत्मा अस्पर्श है। बन्ध से रहित है, स्पर्श से रहित है। ऐसा सम्यग्दर्शन का विषय अबद्धस्पृष्ट, उसे यह शुद्धनय प्रगट करता है।

अन्यत्व रहित... अनेकपने रहित। पहले द्रव्य आया। द्रव्य से रहित—परद्रव्य से रहित। अन्यत्वरहित। भिन्न-भिन्न जो क्षेत्र की, आत्मा की जो व्यंजनपर्याय होती है, उससे रहित है। त्रिकाल एकरूप है। चलायमान—**चलाचलता रहित...** पर्याय में भेद पड़ते हैं—अनियत अनेक प्रकार के, उनसे भी रहित है और **विशेषरहित...** है। गुणभेद। भाव में भेद पड़ते हैं, उनसे भी रहित है। परद्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से (रहित है)। अब अपने में जो विकारादि है, **अन्य के संयोगरहित...** है। विकारादि भाव बतलाये थे। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो... आदि दु:खभाव है न? उस दु:खभाव से

भी रहित है। अन्य के संयोग से जो दुःख के विकल्प (होते हैं), दुःख... दुःख... दुःख, उससे भी आत्मा रहित है।

ऐसे पाँच भावरूप... ऐसे पाँच भावरूप **देखता है...** यह तो समझाते हैं, हों! पाँच भाव एकसाथ नहीं दिखते। परन्तु ऐसा एकरूप, पाँच भावरूप एकरूप। पहले अबद्धस्पृष्ट देखे, पश्चात् अन्यत्वरहित देखे, पश्चात् अनियतपने देखे—ऐसा नहीं है। यह तो समझाते हैं। एक समय में ऐसे पाँच भाव के भेदरहित देखे। समझ में आया? 'ऐसे पाँच भावरूप देखता है...' तो पाँच भाव (कहे वह तो) भेद हो गया। इसका अर्थ कि आत्मा कायम ज्ञायकस्वभाव में परद्रव्य से भिन्न, परक्षेत्र से अन्य-अन्य पर्याय से भिन्न, अन्य-अन्य अवस्था से भिन्न, अन्य गुणभेद से भिन्न, दुःख से भिन्न, संयुक्तभाव से भिन्न। यह सब एक समय में है। समझ में आया? एक समय में है। समझाने में किस प्रकार समझावे? समझावे तो क्रम से। इसके बिना समझावे किस प्रकार? भाषा ऐसी लिखी है। देखो! **ऐसे पाँच भावरूप देखता है...** अर्थात् पाँच पर्याय के भेद से रहित अपने एकाकार को देखता है, ऐसी बात है। कथनशैली तो आवे कैसी? शास्त्र भाषा व्यभिचारी भाषा। चैतन्य वस्तु है, उसे भाषा द्वारा कहना। भाषा में क्रम पड़ता है। समझण में क्रम नहीं, समझण में एकसाथ है। अबद्धस्पृष्ट, अनन्य एकसाथ है। परन्तु यह समझाने में क्रम से कहते हैं कि देख भाई! भगवान आत्मा अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, दुःखरहित, संयुक्त से रहित ऐसा एकरूप स्वभाव, एकरूप स्वभाव, उसे देखना अथवा प्रतीति करना, अनुभव करके प्रतीति करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो सम्यग्दर्शन की व्याख्या कर डाली (कि) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, नौ तत्त्व की श्रद्धा करो। सम्यक् प्रतीति यथार्थ पूरा तत्त्व पूर्णानन्द निश्चय तत्त्व है, वास्तविक है, वह अनुभव करके प्रतीति में आता है, तब उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

उसे हे शिष्य! तू शुद्धनय जान। देखो! लो! उसे शुद्धनय जान। यह तो अर्थ में कहेंगे, हों! शुद्धनय कहो अनुभूति कहो या आत्मा कहो, तीनों एक है। शुद्धनय कहो, अनुभूति कहो या आत्मा कहो। टीका में तीनों एक साथ आयेंगे। टीका में है। यह तो पाठ में है, इसलिए लिया है न। यह आया, देखो न! अब टीका में देखो।

टीका :- निश्चय से अबद्ध-अस्पृष्ट... अबद्ध-अस्पृष्ट। **अनन्य...** अबद्धस्पृष्ट का अर्थ परद्रव्य से भिन्न। अनन्य अर्थात् क्षेत्र के भेद से भिन्न। **नियत...** अर्थात् पर्याय के भेद से भिन्न। **अविशेष...** अर्थात् गुणभेद से भिन्न और **असंयुक्त...** अर्थात् संयुक्त भाव से भिन्न। संयोगी भाव विकारी दु:खरूप से भिन्न। **ऐसे आत्मा की जो अनुभूति...** ऐसे आत्मा की अनुभूति 'वह शुद्धनय है।' टीका है, टीका। कोष्ठक में नहीं, यह तो टीका में ही है। ऐई! **ऐसे आत्मा की अनुभूति शुद्धनय है, और वह अनुभूति आत्मा ही है;...** देखो! क्या कहा? जो कोई भगवान आत्मा को अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष (देखता है).... प्रत्येक का स्पष्टीकरण करेंगे, हों! **ऐसे आत्मा की अनुभूति...** ऐसा आत्मा एकरूप। यह भेद—(पर) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और संयोग से भिन्न, ऐसे आत्मा की अनुभूति-अनुभव होना, वह शुद्धनय है। वह अनुभूति शुद्धनय है। देखो! अब दो आये। और अनुभूति आत्मा है। तीन बातें आयीं। शुद्धनय कहो, अनुभूति कहो या आत्मा कहो। टीका में तीनों आ गये। अमरचन्दभाई! समझ में आया? क्या कहा? देखो!

ऐसे आत्मा की अनुभूति... पाठ है, देखो न! **'चात्मनोऽनुभूतिः स शुद्धनयः सा त्वनुभूतिरात्मैवः'।** तीनों संस्कृत है। अपेक्षा से अभेद कहा है। अनुभूति तो है आत्मा की निर्विकारी पर्याय। समझ में आया? परन्तु अभेद करके अनुभूति को ही आत्मा कहा है। रागादि से भिन्न पड़ गया तो उसे आत्मा कहा। आत्मा तो त्रिकाली है, वह है। और उसे शुद्धनय कहा। आत्मा को शुद्धनय कहा अथवा अनुभूति को भी शुद्धनय कहा। समझ में आया? तो वह अनुभूति है, वही पूरा आत्मा है, ऐसा कह दिया। अनुभूतिसहित आत्मा। शुद्धनय कहो, अनुभूति कहो या अनुभूति को आत्मा कहो। गजब बात, भाई!

अनुभूति तो निर्मल पर्याय है। शुद्धनय का विषय त्रिकाली है। उसका अनुभव हुआ, वह तो पर्याय है। यहाँ तो कहते हैं, **ऐसे आत्मा की अनुभूति शुद्धनय है,...** ऐसा कहा। ऐसे आत्मा की अनुभूति शुद्धनय है, ऐसा कहा भाई! समझ में आया? पहले तो ऐसा कह दिया था कि त्रिकाली आत्मा है, वही शुद्धनय है। ११वीं गाथा में ऐसा कहा था। **'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'।** भूतार्थ त्रिकाल, वह शुद्धनय है। अभेद त्रिकाल

वस्तु वह शुद्धनय है। यहाँ उसकी अनुभूति को अभेद करके शुद्धनय कहा। आत्मा की अनुभूति ही शुद्धनय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोध नहीं। क्यों कहा? वहाँ जो कहा था कि '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' वह तो भूतार्थ वस्तु शुद्धनय है, ऐसा कहा। परन्तु कहते हैं कि वह भूतार्थ कब कही जाती है? उसकी अनुभूति करे, तब भूतार्थ कही जाती है। अकेले भूतार्थ... भूतार्थ करे, उसमें क्या हुआ? ओहो! समझ में आया? ऐसा तो भूतार्थ ही है। परन्तु दृष्टि में आये बिना भूतार्थ उसके लिये कहाँ है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात! पुस्तक रखी है या नहीं? बनारसीदासजी! पुस्तक रखी है न? ठीक! एक-एक शब्द में महा गम्भीरता है। यह तो महान टीका है। अध्यात्म वस्तु।

यहाँ तो कहा कि वास्तव में अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और असंयुक्त भाव। ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा उसका अनुभव। आत्मा आत्मा है, वह शुद्धनय है। परन्तु आत्मा का अनुभव करे, तब यह आत्मा शुद्धनय है, ऐसा भान हुआ। छठवीं गाथा में, भाई! आया था न? परद्रव्य से भिन्नरूप से स्वद्रव्य की उपासना की। परद्रव्य से भिन्न, परद्रव्य से भिन्न उपासित किया अर्थात् सेवा की। सेवा की, तब शुद्ध कहा गया। शुद्ध तो द्रव्य को कहना है। परन्तु उपासना अर्थात् लक्ष्य। पर से लक्ष्य छूटकर (स्व का) लक्ष्य हुआ तो पर्याय में निर्मलता हुई। निर्मलता द्वारा भास हुआ कि यह शुद्ध है। अकेले विकल्प में रहा और यह शुद्ध है, (ऐसा नहीं)।

मुमुक्षु : मार्ग का फल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग नहीं, फल आया, अनुभव हुआ, तब यह शुद्ध है—ऐसा ख्याल में आया। ऐसा ख्याल में कहाँ आया है? शुद्ध तो शुद्ध अनादि से है। द्रव्य तो अनादि से शुद्ध है। अभव्य को भी शुद्ध है। परन्तु ऐसा शुद्ध नहीं। (अनुभव में) आवे, तब वह शुद्ध कहा जाता है। उसके लिये वहाँ शुद्ध है। आहाहा! समझ में आया? सेठ! यह तो सब बहुत समझना पड़ेगा। जिन्दगी सब अन्यत्र गयी। अन्यत्र गयी या नहीं शोभालालजी! यह कमाने में और उसमें जिन्दगी गयी। यह बहुत बोले नहीं। सब भाई

बोले नहीं। परन्तु तुम सब इकट्ठे हो या नहीं? इसमें समय देना पड़ेगा। बहुत समय गया, समय थोड़ा रहा जिन्दगी का और काम करने का बहुत है। आहाहा! वाह!

ऐसे आत्मा की... यहाँ तो शब्द-शब्द के अर्थ हों तो समझ में आया न! वरना तो वाँच जाये। परन्तु क्या उसका अर्थ? यहाँ तो कहा, भगवान अमृतचन्द्राचार्य की टीका। **'खल्वबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूतिः स शुद्धनयः'** पहले कहा था, **'भूदत्थो देसिदो'**। भूतार्थ, भूतार्थ वह शुद्धनय। ११वीं गाथा में तो ऐसा कहा। नय और नय का विषयभेद नहीं। अध्यात्म में नय और नय के विषय का भेद नहीं। यहाँ भी अनुभूति हुई, दृष्टि में अभेद हो गया तो उस अनुभूति को शुद्धनय कहा। शुद्धनय तो द्रव्य है। परन्तु अनुभूति हुई तो उसे भी शुद्धनय कहा। आहाहा! गजब बात, भाई! यहाँ पर्याय को अनुभूति, शुद्धनय कहा। आत्मानुभूति शुद्धनय है, ऐसा कहा। क्यों कहा? कि जो द्रव्य पर से अबद्धस्पृष्ट है। क्षेत्र से अभिन्न है। भिन्न-भिन्न क्षेत्र नहीं, काल से भिन्न नहीं, गुण से भिन्न नहीं—ऐसे अन्तर में अनुभव हुआ तो है तो द्रव्य ही शुद्धनय वस्तु, परन्तु अनुभव में आया तो उसे शुद्धनय कहा। उसमें भान हुआ कि यह आत्मा ऐसा अबद्धस्पृष्ट है। समझ में आया? भारी अलौकिक! समयसार अर्थात्... आहाहा! एक-एक गाथा में गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर... इतने भाव भर दिये हैं कि गागर में सागर!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा न अभी। उतावल क्यों हो गयी? यह तो व्याख्या आ गयी। थोड़ी पहले कही थी। शब्दार्थ में कही थी। आज तो पहले से आ गये हैं। भूल गये? चल गया। अन्वयार्थ में कहा था। सब लिया था। अब आयेगा टीका में विशेष आयेगा। क्या कहते हैं? देखो!

भगवान आत्मा निधान तो है, परन्तु निधान दृष्टि में आये बिना निधान कहना किसे? समझ में आया? घर में पूँजी तो है। स्वामी नहीं। ननिहाल को करोड़ रुपये, पाँच करोड़ रुपये दे दिये थे। मोसाळ समझते हो न? ट्रस्टी बना दिये। मामा को ट्रस्टी बना दिये। उसे सौ रुपये, दो सौ रुपये देते थे। फिर खबर पड़ी कि ओहो! मेरे पास पाँच

करोड़ तेरे पिताजी छोड़ गये हैं। हें! तो उसका स्वामी हुआ—मालिक हुआ। समझ में आया? वरना महीने में दो सौ रुपये का खर्च देते थे। भाई! पूँजी तो तेरी है।

ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु दृष्टि में-अनुभव में आवे, तब उसे शुद्धनय (कहा जाता है)। शुद्धनय तो द्रव्य है। पहले में ऐसा कहा था। यहाँ अनुभव में आया तो उसे भी शुद्धनय कहा। अभेद से उसे शुद्धनय कहा। आहाहा! कोई कहे, वहाँ तो ऐसा कहा था। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। यहाँ और अनुभूति, वह शुद्धनय (है, ऐसा कहा)। सुन तो सही। किस अपेक्षा से कहा है? अनुभूति हुई, वह त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से हुई है, तो है तो वह शुद्धनय, परन्तु अनुभूति को अभेद करके उसे भी शुद्धनय कह दिया। है तो शुद्धनय का विषय द्रव्य ज्ञायक एकरूप त्रिकाल। उसका विषय अनुभूति नहीं। अनुभूति का विषय अनुभूति नहीं। आहाहा! अनुभूति का विषय त्रिकाल। परन्तु त्रिकाल को विषय करके जब अनुभव हुआ तो उसे भी शुद्धनय कह दिया है। आहाहा! समझ में आया? है न? पुस्तक है या नहीं? देखो न! अब तो ठण्डा मौसम हो गया है। यहाँ तो दो दिन रखा था। शनि, रवि यहाँ रखो। वे लड़के आवे तो। फिर बदल डालेंगे। आज और कल यहाँ रखा है। उन लड़कों को अवकाश पड़े और आवे तो। न आवे तो न भी आवे। आठ दिन का पढ़ाई का अवकाश है। अब यहाँ दो दिन (रखते हैं)। भावनगर के कल आये थे। कहो, समझ में आया?

अरे! आहाहा! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र तो कहीं रह गये। सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र भी श्रद्धा का विषय-बाह्य श्रद्धा का विषय कहीं रह गये। ओहोहो! समझ में आया? और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पर से सम्बन्ध और भेदसहित, वह भेद भी कहीं रह गये। और अन्तर का स्वभाव एकरूप की जो अनुभूति हुई, उसे कहते हैं कि हम शुद्धनय कहते हैं। क्योंकि दृष्टि में, अनुभव में वह आत्मा आया। अबद्धस्पृष्ट आदि आत्मा ज्ञायकभाव ज्ञायकभाव की अनुभूति, आत्मा की अनुभूति। वास्तव में त्रिकाली आत्मा है, वह कहीं पर्याय में आता नहीं। आत्मा की अनुभूति। इसका अर्थ... **ऐसे आत्मा की...** कहाँ न इसमें? **ऐसे आत्मा की जो अनुभूति...** आत्मा त्रिकाल ज्ञायक है, वह कहीं अनुभूति की पर्याय में नहीं आता। परन्तु वह त्रिकाली ज्ञायकभाव है, उसका

अनुभव हुआ तो वह आत्मा की अनुभूति हुई, ऐसा कहा गया। जो राग-द्वेष, अज्ञान की अनुभूति थी—अनुभव था, वह इस ओर—सामान्य त्रिकाल की अनुभूति हुई तो वह आत्मा की अनुभूति है, ऐसा कहा गया है। आत्मा द्रव्य अनुभव में-पर्याय में आया है, ऐसा नहीं। पर्याय में तो ख्याल आया कि यह आत्मा शुद्ध और ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया?

राग-द्वेष का जो मिथ्यात्वसहित का अनुभव था, वह संसार था। राग-द्वेष का जो अनुभव जो कर्मचेतन, कर्मफलचेतना... लो, और वहाँ गया। यहाँ ज्ञानचेतना लेनी है न! वे इनकार करते हैं न? चौथे गुणस्थान में ज्ञानचेतना नहीं होती। अरे! सुन तो सही, प्रभु! यह क्या कहता है तू? यहाँ राग करना और राग का फल भोगना, वह कर्म और कर्मफल चेतना से भिन्न भगवान आत्मा है। वह तो भावकर्म से भिन्न कहा। समझ में आया? कर्मफल, कर्मफल शब्द से जड़ की बात नहीं, हर्ष-शोक का भोगना, उसका नाम कर्मफल है। और राग-द्वेष का करना, उसका नाम कर्मचेतना है। वह कर्मचेतना विकल्प में चेत गया, फल में चेत गया, उससे रहित आत्मा है। तो उस आत्मा का अनुभव तो ज्ञानचेतना हो गयी। राग को चेतता था, फल को चेतता था, उसने अब आत्मा को चेता। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसे आत्मा की अनुभूति ज्ञानचेतना प्रगट हुई। उस ज्ञान द्वारा पूरे आत्मा को पकड़ सके, ऐसी प्रगट दशा हुई। पहले तो उपयोगरूप अनुभूति हो गयी। पश्चात् अनुभूति में विकल्प आदि आते हैं, शुभाशुभ परिणाम में उपयोग जुड़ता है। तो लब्धरूप अनुभूति अपने को पकड़ने की सामर्थ्य कायम रहती है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म परन्तु एक-एक बात में। अक्षर-अक्षर में अन्तर। लोग कहे, 'आनन्द कहे परमानन्दा...' आता है न? 'माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे एक त्रांबियाना तेर।' एक पैसे के तेरह मिले बीड़ी आदि। एक लाख रुपया नहीं मिले और एक पैसे के तेरह मिले। उसी प्रकार भगवान कहते हैं, भाई! मुझे और तेरे बात-बात में अन्तर है। सत्य को और असत्य को बोल-बोल में अन्तर है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, यहाँ रोका है। यहाँ तीन बोल में थोड़ा-थोड़ा रोका है। तुम तो पहले

११वीं गाथा से महासिद्धान्त कहते आये हो, '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। शुद्धनय का विषय भूतार्थ है, ऐसा तो यहाँ कहा ही नहीं। भूतार्थ, वह शुद्धनय है और '**भूदत्थमस्सिदो खलु**'। भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। कहते हैं, भाई! हम कहते हैं कि सम्यग्दर्शन उससे होता है तो अनुभूति उसके आश्रय से होती है। तो अनुभूति को भी हम शुद्धनय कहते हैं। यह तो अनुभव ज्ञान का हुआ, आनन्द का हुआ। ज्ञान का अनुभव। राग का और फल का अनुभव था, वह अनुभव छूट गया, व्यय हो गया। ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रहा। उसकी दृष्टि करने से ज्ञानचेतना आनन्दचेतना की प्रगट दशा हुई। आनन्दचेतना, ज्ञानचेतना की अनुभव की पर्याय हुई। उस अनुभूति को शुद्धनय कहते हैं। ओहोहो!

और वह अनुभूति आत्मा ही है;.... लो। पाठ-टीका ही है न! '**आत्मनोऽनुभूतिः स शुद्धनयः, सा त्वनुभूतिरात्मैव; इत्यात्मैक एव प्रद्योतते।**' ओहोहो! अमृत बहाया है, अमृत! अमृतचन्द्राचार्य ने। टीका, वह तो गम्भीर टीका! कहो, समझ में आया? **निश्चय से...** वास्तव में **अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त - ऐसे आत्मा की अनुभूति...** सामान्य की अनुभूति, सामान्यस्वभाव का अनुभव, सामान्यस्वभाव का वेदन ज्ञानचेतना में हुआ, उसे यहाँ शुद्धनय कहा। **और वह अनुभूति आत्मा ही है;...** निर्मल पर्याय आत्मा के साथ अभेद हुई तो उसे आत्मा कह दिया। रागादि आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प अनात्मा है। परन्तु निश्चयरत्नत्रय की पर्याय द्रव्य के आश्रय से अनुभव हुआ, वह आत्मा है। आहाहा! लो। समझ में आया? त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव का अनुभव हुआ, उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों अंश हैं। निश्चय स्वआश्रित... स्वाश्रित। तीनों अंश की अनुभूति को शुद्धनय कहा और उसे आत्मा कहा। व्यवहाररत्नत्रय को अनात्मा कहा। पर में डाल दिया। संयुक्त भाव है, संयुक्त से रहित आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है। लो। इस प्रकार आत्मा शुद्ध ध्रुव भेद से हटकर द्रव्य के लक्ष्य से, सम्बन्ध से, क्षेत्र के भेद से, काल के भेद से, भाव के भेद से और संयुक्त भाव से हटकर। लो, आ गया फिर से। सेठी को कहाँ याद है? सेठी का

लक्ष्य अन्यत्र है। यह आया। तुमने कहा वह बोल आ गया। अभी दो बार कहा। लक्ष्य पृष्ठ में है। समझ में आया? पृष्ठ में सूझ पड़ती नहीं और यहाँ सुनाई दे नहीं। समझ में आया? कहते हैं... आहाहा! **इस प्रकार आत्मा एक ही...** इस प्रकार से कहा न? **'इत्यात्मैक एव प्रद्योतते'।** इस प्रकार भगवान आत्मा एक ही प्रकाशमान है। बस, अनुभव में अकेला आत्मा प्रकाशमान है। जो पर्याय में अनुभव हुआ, उस संवर, निर्जरा की पर्याय को अभेद कर दिया। समझ में आया? अनुभूति संवर, निर्जरा की पर्याय है, शुद्ध पर्याय है—निर्मल पर्याय है। उसे भी यहाँ आत्मा कह दिया। उसे शुद्धनय कह दिया। आहाहा! विषय नहीं, हों! विषय तो अकेला ध्रुव है।

तब कोई कहे, पर्याय विषय आया या नहीं उसमें? शुद्धनय का विषय आया या नहीं? ऐई! वह विषय नहीं आया। विषय तो ध्रुव त्रिकाल है, परन्तु अभेद पर्याय हुई तो उसे शुद्धनय कहा और उसे आत्मा कहा। समझ में आया? गजब बात! अनुभूति आत्मा हुई या नहीं? तो वह पर्याय आत्मा हुई या नहीं? तो वह पर्याय शुद्धनय हुई या नहीं? पर्याय, वह शुद्धनय का विषय हुआ या नहीं? नहीं। वह तो यहाँ भगवान परिपूर्ण द्रव्य का अनुभव कराते हैं और अनुभव करके जो दशा हुई, उसे शुद्धनय कहा। समझे? कहीं शुद्धनय का विषय पर्याय है, ऐसा नहीं। शुद्धनय का विषय तो ध्रुव त्रिकाल है। उसमें पर्याय भी आती नहीं। यह तो कहा, **'आत्मस्वभावं परभावभिन्नं'**। यह उपोद्घात था इस गाथा का। १४वीं गाथा का उपोद्घात था। समझ में आया?

भाई! यह तो अध्यात्म शास्त्र है। अध्यात्म शास्त्र समझने में बहुत धीरज चाहिए और जहाँ जो कहते हैं, जिस प्रकार से कहते हैं, क्या अपेक्षा है, उसका उसमें यथार्थ बोध होना चाहिए। वरना गड़बड़ हो जाये। समझ में आया? वार्ता की बात हो तो भूल जाये, किसी का नाम भूल जाये, उसमें क्या? यह तो वस्तु आत्मा है। एक समय में भगवान आत्मस्वभाव... कहा न? **'आत्मस्वभावं परभावभिन्नं मापूर्णमाद्यन्तविमुक्त-मेकम्'। 'माद्यन्तविमुक्त'** तो वहाँ कहा था। आदि-अन्त से रहित है, वह आत्मा है। समझे? परन्तु ऐसे आत्मा की अनुभूति को भी शुद्धनय कहा। ऐसे आत्मा को पकड़ा तो पर्याय को भी—अनुभूति को भी—शुद्धनय कहा। और अनुभूति को आत्मा कहा।

समझ में आया? ऐसा धर्म समझना कठिन न, इसलिए लोग बेचारे... जय भगवान! चलो। भक्ति, दान, पूजा, दया, दान करें। धर्म होगा। नजर में तो पड़े। कुछ करते हैं। दुकान में बैठना छोड़कर वहाँ मन्दिर में जाये या कोई स्वाध्यायशाला में जाये, लो न। निवृत्ति की। धूल में भी निवृत्ति नहीं, सुन न! आत्मा राग से निवृत्तस्वरूप है, परद्रव्य से निवृत्तस्वरूप है, परन्तु भेद से निवृत्तस्वरूप है। ऐसी दृष्टि किये बिना निवृत्ति आयी कहाँ से? अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : प्रौषध....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रौषध किसका करे? प्रौषध कहना किसे? आत्मा के स्वभाव की पुष्टि हो, उसका नाम प्रौषध। तो आत्मस्वभाव क्या है, उसका भान नहीं तो प्रौषध कहाँ से आया? समझ में आया? चने का दाना हो। चना... चना कहते हैं न? चना। उसे पानी में डाले तो चौड़ा हो। पत्थर की कंकड़ी डाले तो? प्रौषध किसे कहे? वस्तु अभेद दृष्टि में आयी है, उसमें स्थिरता करने से आत्मा की पुष्टि होती है, उसका नाम प्रौषध है। भान नहीं। कंकड़ पानी में डालने से क्या पुष्ट होता है? उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि है, राग को अपना मानता है, उसमें तुझे कहाँ प्रौषध आया? कंकड़ है वह तो। तूने दस दिन खाया नहीं, पीया नहीं। तो भी कहते हैं, क्या नहीं खाया? बहुत खाया है मिथ्यात्व को। आहाहा! मैंने ऐसा खाया नहीं, मैंने ऐसा पीया नहीं, इसका अभिमान, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? और विकल्प आया कि मैंने खाया नहीं, उस विकल्प को अपना मानता है और उसे धर्म मानता है। महा मिथ्यात्व खाता है। मिथ्यात्व का अनुभव है। प्रौषध कैसा? सामायिक कहाँ से आयी उसके पास? ओहोहो! चिल्लाहट मचाये बेचारे। सोनगढ़ के नाम से डाल। भगवान के नाम से कह। भगवान ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो! फिर कोष्ठक में लिया है, वह तो योगफल किया है। पाठ में है, उसका लिया है, हों!

(शुद्धनय, आत्मा की अनुभूति या आत्मा सब एक ही हैं, अलग नहीं।) पृथक् नहीं। समझे? यह तो स्पष्टीकरण किया। टीका में है, उसका (स्पष्टीकरण किया है)। तीनों एक साथ लिये।

अब **यहाँ शिष्य पूछता है...** देखो! अब इतना सुनकर शिष्य को एक प्रश्न उठा। बहुत (अच्छा) प्रश्न उठा। प्रश्न में कितना मर्म है! महाराज! **जैसा ऊपर कहा...** यह शब्द पड़ा है। **जैसा ऊपर कहा...** इतना ख्याल में ले लिया है। **जैसा ऊपर कहा...** जैसा ऊपर कहा है। समझ में आया? ऐसा शिष्य-प्रश्नकार लिया है कि जो कहा कि अबद्ध-अस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष, असंयुक्त नियत वह आत्मा। महाराज! ऐसा आत्मा! आप कहते हो ऐसा ख्याल में आया। ऐसा आत्मा! **जैसा ऊपर कहा वैसा...** समझ में आया? '**कथं यथोदितस्यात्मनोऽनुभूतिरिति**' है न? ओहोहो! शिष्य ऐसा लिया है और ऐसा ही शिष्य यथार्थ समझने के योग्य है कि जो कहते हैं, उसे लक्ष्य में लिया है। लक्ष्य में लिया है, अब उसमें पूछते हैं कि महाराज! **जैसा ऊपर कहा है, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?** समझ में आया? ऐसी अनुभूति कैसे हो सकती है? आप तो इससे रहित, इससे रहित, इससे रहित कहते हो, तो यहाँ सहित दिखता है, सहित दिखता है और रहित अनुभूति कैसे होती है? समझ में आया? आप कहते हो कि अबद्धस्पृष्ट है, अनन्य है, अविशेष है, असंयुक्त है, परन्तु यह है न? सब साथ में है न? बद्ध है, स्पृष्ट है, अन्य अन्य है, अनियत है, विशेष है। है न? देखो! प्रश्नकार के प्रश्न में गम्भीरता है और उत्तर में बहुत गम्भीरता आयेगी। ऐसे आत्मा की (अनुभूति) कैसे हो सकती है? कहो, ऐसा प्रश्न किया है। महाराज! इससे रहित, इससे रहित (कहते हो), परन्तु है क्या अब? अभी तो है न।

यह एक शब्द है, इसका कि **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ...** है, सुन! वे अभूतार्थ हैं, कायम रहनेवाली चीज़ नहीं। इसलिए **यह अनुभूति हो सकती है।** इसका स्पष्टीकरण विशेष आयेगा। इस शब्द में बहुत गम्भीरता भरी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ३, रविवार, दिनांक - ०२-१०-१९६६
गाथा-१४, प्रवचन - ६४

१४वीं गाथा। देखो! टीका। टीका फिर से लेते हैं। देखो! यह आत्मा कैसा देखने से यथार्थ देखा, ऐसा कहा जाये? आत्मा किस प्रकार से अनुभव करने में 'यह आत्मा है' ऐसा जानने में आता है? उसकी बात है। सम्यग्दर्शन का विषय कैसा है? यह सब अनजाने हैं। यह गुजराती कहाँ समझते हैं? शोभालाल का लड़का है। समझ में आया? यह सब पहले हिन्दी चला, तब आवे नहीं, हिन्दी हो जाने के बाद आये सब। हिन्दी में बहुत चल गया। क्या कहा? आत्मा कैसा है? कि जिसके ऐसे देखने से सम्यग्दर्शन होता है? धर्म की शुरुआत होती है अथवा वास्तविक निश्चय आत्मा की प्रतीति, यथार्थ आत्मा की (प्रतीति) करने से सच्ची प्रतीति होती है, उस आत्मा की बात करते हैं।

निश्चय से अबद्ध-अस्पृष्ट... है। देखो! पहली लाईन। पहली पंक्ति। निश्चय अर्थात् यथार्थरूप से देखने से आत्मा कर्म आदि से, परद्रव्य से बद्ध और स्पर्शित है नहीं। वस्तु जो है, वस्तु चैतन्यमूर्ति दल आनन्दकन्द विज्ञानघन, वह आत्मा परद्रव्य से बद्ध-स्पर्शित है नहीं। समझ में आया? अभी कहेंगे धीरे-धीरे। पर्याय में पार्यय के लक्ष्य से बद्ध है, ऐसा दिखाई देता है। द्रव्य की दृष्टि से देखो तो बद्ध-स्पृष्ट है नहीं। वर्तमान अवस्था कर्म के सम्बन्ध के ऊपर लक्ष्य है, ऐसा लक्ष्य करने से बन्ध-वर्तमान समय का सम्बन्ध इतना है, वह व्यवहारनय से है। निश्चय दृष्टि करने से वह व्यवहार बन्ध है नहीं। निश्चय से आत्मा अबद्धस्पृष्ट है। समझ में आया? सभी के दृष्टान्त देंगे, हों!

अनन्य... है। क्षेत्र से नारकी की पर्याय, देव की पर्याय क्षेत्र से भिन्न-भिन्न दिखती है। वह वास्तविक नहीं। वह तो अनन्य एकरूप इसका क्षेत्र है। आत्मा असंख्य प्रदेश एकरूप क्षेत्र है। उसकी अन्य-अन्य गति की दशा समय-समय की दिखती है, वह वास्तविक त्रिकाली नहीं, एक समय की है, परन्तु वह छूट सकती है। समझ में आया?

नियत... पर्याय में हीनाधिकता-अवस्था में हीनाधिकता दिखती है। परन्तु वह शाश्वत् चीज़ नहीं है। उससे रहित नियत एकरूप, काल एकरूप त्रिकाल है, ऐसे आत्मा को देखना, उसका नाम सम्यक् श्रद्धा और सम्यक् देखना, ऐसा कहा जाता है।

अविशेष,... इसमें गुणभेद, पर्याय के लक्ष्य से, वर्तमान भेद के लक्ष्य से देखो तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे भेद हैं। स्वभाव की दृष्टि से देखो तो अविशेष अर्थात् सामान्य है, भेद है नहीं। जरा सूक्ष्म बात है।

असंयुक्त... वर्तमान के लक्ष्य से विकार और सुख-दु:ख दिखता है। परन्तु वह सुख-दु:ख वर्तमान क्षणिक है। त्रिकाल की दृष्टि से देखने से उस दु:ख-सुख का सम्बन्ध आत्मा को है ही नहीं। सुख का अर्थ संयोग की बात नहीं, सुख-दु:ख की कल्पना। समझ में आया? उससे रहित आत्मा है। **ऐसे आत्मा की अनुभूति...** ऐसे आत्मा का अनुभव। अन्तर्मुख एकरूप अबद्धस्पृष्ट आदि सामान्य स्वभाव का पर्याय में अनुभव होना। सामान्य दृष्टि में आना। उसकी अनुभूति तो पर्याय है। समझ में आया? आत्मा की अनुभूति, **ऐसे आत्मा की अनुभूति...** एकरूप। (पर) द्रव्य से सम्बन्ध नहीं, क्षेत्र से अन्य-अन्य नहीं, काल से पर्याय की वृद्धि-हानि नहीं, भाव से गुणभेद नहीं और राग सुख-दु:ख की कल्पना का सम्बन्ध नहीं। ऐसे आत्मा को देखने से आत्मा की अनुभूति **वह शुद्धनय है,...** बराबर ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। माणेकचन्दजी! बहुत सूक्ष्म बात है। वहाँ तम्बाकू में नहीं। वहाँ पिता-पुत्र के बीच ऐसी (बात) चलती न हो। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु है या नहीं आत्मा? पदार्थ है या नहीं? और अनादि-अनन्त नित्य है या नहीं?

मुमुक्षु : निर्णय करना बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करना क्या बाकी है? है त्रिकाल अनादि-अनन्त वस्तु। ध्रुव है, ज्ञायक है, स्वभावस्वरूप एकरूप है। उसकी दशा में अनेकता दिखती है, वह क्षणिक है। तो क्षणिक की बुद्धि तो अनादि की पर्यायबुद्धि है, वह अज्ञानबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े, परन्तु अब गाथा ऐसी है न। क्या करे?

वस्तु है या नहीं, वस्तु? पदार्थ है या नहीं? यह देह तो हड्डियाँ पर हैं, वाणी पर है। यह तो जड़ मिट्टी-धूल है, पर है। उन्हें जाननेवाला चैतन्य भगवान तो त्रिकाल भिन्न है।

मुमुक्षु : यह तो जीव चला जाये तब।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव कहाँ चला गया? शरीर में से जीव चला ही गया है। वयो गयो समझते हो? चला गया है। शरीर में जीव है ही नहीं। जीव तो जीव में है। जीव शरीर में है ही नहीं। आहाहा! वह तो मुर्दा है, मिट्टी-धूल है। उसमें चैतन्य के एक अंश की सत्ता भी उसमें नहीं। द्रव्य-गुण की सत्ता तो नहीं, परन्तु एक अंश की सत्ता भी द्रव्य में नहीं। ऐसा शरीर से भिन्न, विकार से भिन्न, अनेकता से भिन्न, एकरूप स्वभाव का अन्तर में अनुभव करने से... अनुभव पर्याय है, परन्तु उस एकरूप की दृष्टि करने से सामान्य स्वरूप पूरा पूर्ण अन्तर में... अन्तर में दृष्टि करने से जो अनुभूति हुई, उसे यहाँ शुद्धनय कहते हैं। शुद्धनय अर्थात् सच्चे स्वरूप का अनुभव हुआ और वह सच्चा स्वरूप उसे कहते हैं। समझ में आया?

और वह अनुभूति आत्मा ही है;... अन्तर एक स्वभाव शुद्ध चैतन्य अनन्त आत्म विज्ञानघन दल, विज्ञानघन दल... दल समझे? दल के लड्डू होते हैं, खबर है? उसे हिन्दुस्तान में नहीं हो। दल के लड्डू होते हैं। दल... दल—मजबूत—लठ्ठ। ऐसे आत्मा विज्ञानघन दल है। अरूपी परन्तु पदार्थ है न! पदार्थ है न! अस्ति है न! असंख्य प्रदेशी पिण्ड दल है। आहाहा! समझ में आया? यह दिखता है, वह तो धूल, अनेक द्रव्य दिखते हैं। वह तो एक ऐसा है। यह तो अनेक रजकण हैं। वह तो एक ऐसा है, एक चीज़ ऐसी है। विज्ञानघन दल अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप। भेदरहित एकरूप स्वभाव, उसकी अन्तर में दृष्टि करने से अनुभूति होती है, उसे ही सच्ची अनुभूति अथवा सच्चे आत्मा का भान कहा जाता है।

और वह अनुभूति आत्मा ही है;... यह निर्मल दशा स्वभाव के साथ अभेद हुई, जैसा शुद्धस्वभाव एकरूप है, वैसी अनुभूति हुई तो उस अनुभूति को ही आत्मा कहा है। समझ में आया? यह पाँच इस अपेक्षा से अनात्मा है और यह अनुभूति आत्मा है, ऐसा

कहते हैं। **इस प्रकार...** अभी इसका स्पष्टीकरण आयेगा, हों! यह तो अभी सामान्य बात है। प्रत्येक के दृष्टान्त देंगे। **इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान...** देखो! आत्मा परद्रव्य से भिन्न एकरूप, क्षेत्र की अन्य-अन्यता से भिन्न एकरूप, काल की वर्तमान अवस्था की अनेकता से भिन्न एकरूप, भाव के गुणभेद की अनेकता से (भिन्न) एकरूप और सुख-दुःख की कल्पना से भिन्न एकरूप। समझ में आया? ऐसे आत्मा की प्रथम दृष्टि हुए बिना, उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं और सम्यग्दर्शन बिना धर्म होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार आत्मा एक ही... देखो! **एक ही प्रकाशमान है।** अन्तर स्वभाव परद्रव्य से भिन्न देखने से एक ही प्रकाशमान है। क्षेत्र से भिन्न-भिन्न दशा—नारकी, मनुष्य की अवस्था—दशा, हों! शरीर की नहीं, दशा से भिन्न देखने से एकरूप प्रकाशमान है। काल की पर्याय में—वर्तमान अवस्था में हीनाधिक अनेक अवस्थाएँ हैं, परन्तु उन्हें छोड़कर एकरूप देखने से, अन्तर में एकरूप देखने से एक ही प्रकाशमान है। गुणभेद के अनेक प्रकार नहीं देखकर एकरूप देखने से एक ही प्रकाशमान है। और विकार के सुख-दुःख की कल्पना का लक्ष्य वर्तमान क्षणिक है, उसे नहीं देखने से अन्तर में एकरूप देखने से आनन्दरूप एक ही प्रकाशमान है। आहाहा! समझ में आया? पुस्तक है या नहीं सामने? देखो! शब्द का क्या अर्थ होता है, उसका तो ख्याल आना चाहिए न! क्यों शोभालालजी! देखता है न? नामा मिलता है या नहीं, नामा करे तब? बीड़ीवाले और वड़ोदरा के पास और फलाना के पास और सर्वत्र चारों ओर जाते होंगे। यह कानपुर जाये और यह वड़ोदरा जाये। नामा लिखो। करो भाई, तुम्हारे पास कितने हैं? लेना-देना सब मिलावे। यहाँ कहते हैं कि मिला तो सही तेरे आत्मा के साथ! पोपटभाई! आहाहा! **(शुद्धनय, आत्मा की अनुभूति या आत्मा सब एक ही हैं, अलग नहीं।)** इतनी बात की। अब शिष्य ने इतनी बात पकड़ ली।

यहाँ शिष्य पूछता है कि जैसा ऊपर कहा है वैसे... देखो! उसके ख्याल में आ गया कि जैसा ऊपर कहा है वैसे। आपने कहा कि ऐसा आत्मा परद्रव्य से भिन्न, अनेकता के क्षेत्र की व्यंजनपर्याय-अनेकता से भिन्न, पर्याय की अनेकता दूसरे गुण की।

वह क्षेत्र की थी। ज्ञान, दर्शन की अनेक पर्याय से भिन्न, गुणभेद से भिन्न, दुःख-सुख की कल्पना से भिन्न। ऐसा ऊपर कहा है वैसे। शिष्य को ऐसा तो लक्ष्य में आया। आप जो कहते हो, **वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?** महाराज! यह प्रत्यक्ष दिखता है न! परद्रव्य का सम्बन्ध दिखता है, पर्याय में अनेकता दिखती है, गुणभेद दिखता है, क्षेत्र में नारकी, मनुष्य आदि अनेक व्यंजनपर्याय दिखती हैं, सुख-दुःख की कल्पनासहित दिखती हैं। इसमें ऊपर कहा, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है? समझ में आया? यह प्रथम धर्म-सम्यग्दर्शन की बात है। आहाहा! यह प्रश्न समझ में आया? प्रश्न। बाद में उत्तर। प्रश्न का रूप समझ में आया? प्रश्नकार का रूप।

प्रश्नकार के प्रश्न का रूप ऐसा है कि आपने कहा, ऐसा एकरूप, अबद्ध ऐसे आत्मा की अनुभूति किस प्रकार होती है? कैसे हो सकती है? यह सब दिखता है न? इस शरीर का, कर्म का सम्बन्ध दिखता है। राग का सम्बन्ध दिखता है, सुख-दुःख की कल्पना दिखती है। गुणभेद की अनेकता दिखती है (तो) एकरूप का अनुभव कैसे हो सकता है? मूलचन्दभाई! समझ में आया?

उसका समाधान :- यह है। देखो! अब उत्तर। **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ हैं...** क्या कहते हैं? कर्म, परद्रव्य का सम्बन्ध वास्तविक नहीं, असत्यार्थ है। कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। और क्षेत्र में जो अन्य-अन्य नारकी, देव की पर्याय दिखती है, वह अभूतार्थ अर्थात् कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। असत्यार्थ है। कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं, इस अपेक्षा से (असत्यार्थ है)। वर्तमान अपेक्षा से है। कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। काल में भी पर्याय में अनियतता अनेक प्रकार की वृद्धि-हानि भासित होती है, वह कायम रहनेवाली चीज़ नहीं। गुणभेद भी कायम रहनेवाली चीज़ नहीं। ऐसे सुख-दुःख की कल्पना भी कायम रहनेवाली चीज़ नहीं। **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** पहले कहा अबद्धस्पृष्ट आदि। तब शिष्य ने पूछा कि तुम कहते हो ऐसे आत्मा का अनुभव कैसे होता है? तो कहते हैं कि यह बद्धस्पृष्ट आदि जो भाव हैं, वे अभूतार्थ हैं, कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं; इसलिए **यह अनुभूति हो सकती है।** देखो उत्तर।

फिर से। आत्मा एक समय में वस्तुरूप से—पदार्थरूप से परपदार्थ से भिन्न है। तो कहते हैं कि परपदार्थ का सम्बन्ध है न! वह सम्बन्ध सत्यार्थ नहीं। एक समय का सम्बन्ध है। वह अभूतार्थ है, कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। छूट जायेगा। तेरे अबद्धस्पृष्ट (स्वभाव की) दृष्टि करने से वह छूट जायेगा। वह कायम रहनेवाली चीज़ है नहीं। समझ में आया? ऐसे क्षेत्र से नारकी, देव, मनुष्य आदि की पर्याय क्षेत्र अर्थात् अन्दर आत्मा के प्रदेश में अन्य-अन्य व्यंजनपर्याय—आकृति दिखती है, वह कायम रहनेवाली चीज़ नहीं। समझ में आया? अभूतार्थ है, कायम रहनेवाली चीज़ नहीं, छूट जायेगी। समझ में आया या नहीं? और काल में अनियत पर्याय, जो वृद्धि-हानि पर्याय में दिखती है, वह कायम की चीज़ नहीं। एकाकार होने से वृद्धि-हानि की पर्याय छूट जायेगी। इस अपेक्षा से उसे अभूतार्थ—नहीं है, नहीं है, अविद्यमान है, ऐसा कहा गया है। पर्याय है, परन्तु पर्याय कायम टिकनेवाली नहीं, इसलिए उसे असत्यार्थ कहकर, इसे (स्वभाव को) सत्यार्थ कहकर (कहते हैं कि) वह छूटे ऐसी चीज़ है। गजब बात, भाई! समझ में आया? देखो! यह तो अन्दर की क्रीड़ा है।

जब तक पर्याय अर्थात् वर्तमान अंश के ऊपर, राग के ऊपर, सम्बन्ध के ऊपर लक्ष्य है, तब तक, वे हैं सही, वह चीज़ है सही, परन्तु अन्तर दृष्टि से देखने से वह सम्बन्ध क्षणिक था। विकार क्षणिक था। तो अन्तर दृष्टि से देखने से वह अभूतार्थ होने से अनुभूति अन्तर की अबद्धस्पृष्ट की हो सकती है। वल्लभदासभाई! आज तो रविवार आया है न! भावनगरवाले आवें तब कुछ नया आवे न! ऐ... जयन्तीभाई! आहाहा!

भाई! तू एकरूप प्रभु है न! अन्दर एकरूप तेरा तत्त्व पूरा है न! एकरूप तत्त्व महान प्रभु, उसमें अनेकरूप का सम्बन्ध दिखता है, वह वर्तमान व्यवहार से है। यह आगे कहेंगे। परन्तु अन्तर दृष्टि से देखने से वह अभूतार्थ है, वह छूट जायेगा। सम्बन्ध रहे, ऐसी चीज़ नहीं, शाश्वत् चीज़ नहीं। समझ में आया? यह किसी के साथ मित्रता नहीं करते? फिर कट्टी करे तो छूट जाये। कट्टी करे न कि तुम्हारे और मेरे कोई सम्बन्ध नहीं। गोठिया की गोठ नहीं चाहिए। गोठिया नहीं अर्थात् मित्र नहीं। गोठिया अर्थात्

मित्र। गोठ होती है न? गोठ। माल लावे न खाने का? गोठिया हो तो गोठ दे। उस गोठिया के साथ कट्टी हो तो कहे, तुझे नहीं, इसको दूँगा। फिर दोनों को विवाद उठे। यहाँ कहते हैं, कर्म का सम्बन्ध है, वह वर्तमान है। हम द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि से कट्टी करते हैं कि वह हमारे में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बद्धस्पृष्ट आदि भाव... अर्थात् भगवान आत्मा अनन्त गुण का एकरूप पिण्ड प्रभु वस्तु है। तो परद्रव्य का एक समय का सम्बन्ध अभूतार्थ—कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। ऐसे उससे लक्ष्य छोड़कर आत्मा सामान्य के ऊपर लक्ष्य करने से अबद्धस्पृष्ट की अनुभूति होती है। समझ में आया? धर्मचन्दजी! गजब बात! ऐसा धर्म भारी सूक्ष्म, इसकी अपेक्षा यह बाहर का करे न... बेचारे फिर भटके ऐसे के ऐसे।

मुमुक्षु : उपाय न हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय नहीं मिलता, यह उपाय ले, इसमें से आत्मा हाथ कहाँ से आवे?

वस्तु एक समय में पूर्ण अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष—सामान्य, असंयुक्त—राग-द्वेष, सुख-दुःख की कल्पना के सम्बन्ध से रहित। वह है, परन्तु वह एक समय का सम्बन्ध है; इसलिए अभूतार्थ है। कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। कहो, समझ में आया या नहीं? अतुलभाई! ऐ... भरतभाई! यह दो व्यक्ति आये हैं न मुम्बई से। सुनने के लिये आये हैं। अवकाश लिया है न। उसको ... समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा... एक स्फटिक रत्न (आता है) स्फटिक रत्न। स्फटिक रत्न नहीं आता? स्फटिक। एक बार हमने देखा था। वहाँ बताया था। जामनगर। जामनगर है न? भाई डॉक्टर है न? क्या कहा? प्राणजीवन डॉक्टर। हम जब (संवत्) १९९१ में गये थे (तब) यह समयसार की १००वीं गाथा चली थी। १००वीं की पहली शुरुआत। ९९ गाथा तो वहाँ राजकोट में हो गयी थी। १९९१, कार्तिक। मगसिर में वहाँ गये थे। ९१, ९१ समझे? ९० और १। फिर यहाँ आये। १००वीं गाथा चली। डॉक्टर आये थे, बड़े डॉक्टर हैं। वहाँ छह लाख रुपये का एक, उस जमाने में छह लाख का एक

सोलेरियम था। पूरा छह लाख रुपये का। उसमें से किरणें दे रोग को। फिर यहाँ १००वीं गाथा बतायी तो कहे, महाराज! हमारे घर में देखने आना। हमारे भी ऐसा है। सूर्यकिरण का सम्बन्ध होता है न? फिर लाल ताँबे के उसमें से किरण निकले। उस रोगी के ऊपर डाले। रोग हो न, उसके ऊपर। कहा, यह बात कहीं इसके साथ मिले, ऐसा नहीं है। यह तो दूसरी चीज़ है।

आत्मा एकरूप स्वरूप... १००वीं गाथा है न? पर का कर्ता-हर्ता नहीं, ऐसी गाथा है न। निमित्त भी नहीं। पर के कर्ता में आत्मा निमित्त भी नहीं। विकारी पर्याय और योग का जो कर्ता है, वह जीव की पर्याय, दूसरे कर्ता में कार्य होता है, उस समय उसे निमित्त कहा जाता है। अज्ञानी के योग और विकल्प निमित्त कहे जाते हैं। ज्ञानी के योग और विकल्प निमित्त है नहीं। क्योंकि ज्ञानी योग और विकल्प के कर्ता नहीं। समझ में आया? ज्ञानी परद्रव्य की पर्याय में निमित्तकर्ता भी नहीं। आहाहा! यह बात चली थी। (संवत्) १९९१, मगसिर महीना। सूक्ष्म बात है। बहुतों का परिचय हो गया। यह ३२वाँ वर्ष चलता है। यहाँ साढ़े इकतीस वर्ष पूरे हुए। भाद्र कृष्ण तीज। साढ़े इकतीस तो यहाँ पूरे हुए। फाल्गुन कृष्ण तीज को आये हैं। तो बहुत परिचय है, बहुत वाँचते हैं तो बहुत आते हैं। साढ़े इकतीस वर्ष हुए।

कहते हैं कि जो भगवान आत्मा वर्तमान द्रव्य (और) परद्रव्य का सम्बन्ध जो एक समय का दिखता है, वह कायम रहनेवाली चीज़ नहीं है। अभूतार्थ है। इसलिए आत्मा का—अबद्धस्पृष्ट का अनुभव हो सकता है। समझ में आया? ओहोहो! क्षेत्र से अन्य-अन्य जो पर्याय होती है, वह भी क्षणिक है। वह स्वभाव की दृष्टि से, भूतार्थ की दृष्टि से, स्वभाव की दृष्टि से वह अभूतार्थ होने से भिन्न पड़ जाती है। इस प्रकार काल में हुआ। इसलिए **वह अनुभूति हो सकती है।** देखो! शिष्य के प्रश्न के सामने उत्तर। बहुत संक्षिप्त प्रश्न और बहुत संक्षिप्त उत्तर। भगवान! तुम कहते हो कि आत्मा तो अत्यन्त पर से निराला है। कर्म से निराला, विकार से निराला, भेद से निराला। बस, इसमें आ गया। क्षेत्र, काल और गुणभेद। समझे? कर्म से निराला, विकार से निराला, भिन्न-निराला और भेद से भिन्न। वर्तमान में यह सब दिखता है। वर्तमान भेद दिखते हैं,

सुख-दु:ख दिखते हैं, कर्म का सम्बन्ध दिखता है न? भगवान! सुन तो सही! शिष्य को कहते हैं कि वह अभूतार्थ है। कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। तेरी दृष्टि पर्याय के ऊपर है, वहाँ तक है। स्वभाव के ऊपर दृष्टि करने से वे टिक नहीं सकते। समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : सोना जैसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोना जैसी बात? सोने में भी अन्तर पड़े, इसमें तो अन्तर पड़ता ही नहीं। यह तो त्रिकाल वस्तु वस्तु सत्य है।

सच्चिदानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु (में) तीन भेद भी नहीं। एकरूप स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, ऐसी दृष्टि किये बिना एकाग्रता होती नहीं और एकाग्रता स्व में एक के ऊपर गये बिना होती नहीं। और एक के ऊपर दृष्टि हुए बिना अनुभूति होती नहीं। और अनुभूति (होने पर) वे पाँच बोल अभूतार्थ हैं। अभूतार्थ अर्थात् कायम रहनेवाली चीज़ नहीं। क्षणिक है, संयोगी है, उपाधिभाव है तो क्षणिक है तो छूट जायेंगे। इसलिए तू कहता है कि अनुभूति कैसे हो सकती है? तो हम कहते हैं कि ये पाँचों ही भाव असत्यार्थ हैं। कायम टिक नहीं सकते। तो कायमी (चीज़) के ऊपर दृष्टि देने से असत्य हो जायेंगे। तुझे अबद्धस्पृष्ट की अनुभूति होगी। शशीभाई! अरे... अरे..! गजब बात!

मुमुक्षु : योगफल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : योगफल में अन्दर में आनन्द है। अन्दर में अबद्धस्पृष्ट देने से आनन्द आता है, ऐसा कहते हैं। अनुभूति क्या? अनुभूति अर्थात् आनन्द का अनुभव। आहाहा! समझ में आया?

वर्तमान अवस्था और कर्म का सम्बन्ध। वह अवस्था के साथ सम्बन्ध है। एक समय की अवस्था के साथ सम्बन्ध है, वह तो अभूतार्थ है। यहाँ त्रिकाल के ऊपर दृष्टि देने से वह छूट जाता है। समझ में आया? और सुख-दु:ख की कल्पना क्षणिक है। सुख-दु:ख की कल्पना, हों! संयोगी चीज़ नहीं। संयोग द्रव्य में आये, कर्म में। सुख-दु:ख की कल्पना, वह पाँचवें बोल में आयी। कल्पना तो क्षणिक है। त्रिकाल आनन्दकन्द

एकान्त बोधबीज, आगे आयेगा न ? एकान्त बोधबीजरूप स्वभाव। एक ज्ञायकस्वभाव। एकान्त बोधबीज का अर्थ—एक धर्म जो चैतन्यस्वभाव बोधबीज। केवलज्ञान जिसमें से प्रगट हो, ऐसा बीज। केवलज्ञान का बीज। ऐसा एक बोधबीज स्वभाव देखने से विकार अभूतार्थ हो जाता है और स्वभाव की एकता से उसे पर्याय में आनन्द आता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया ?

यह तो समयसार इसमें भी पहली १५ गाथायें तो बहुत गम्भीर और गूढ़ हैं। पश्चात् सब विस्तार किया है। समझ में आया ? बहुत ही शान्ति से मस्तिष्क में दूसरे विकल्प आदि घटा देने से बराबर लक्ष्य करे तो यह समझ में आता है। ऐसा नहीं कि यह समझ में नहीं आता, ऐसा नहीं। और ऐसा का ऐसा समझ में आ जाये साधारण पकड़ से, ऐसा भी नहीं। आहाहा! यह बादशाह का इक्का है। इक्का आता है न ? क्या कहलाता है ? हुकम का इक्का। तुम्हारे खेल में आता है या नहीं ? हुकम का इक्का। ऐसे एक प्रकाशमान हुकम का इक्का। भगवान आत्मा परद्रव्य का स्पर्श नहीं, वही वास्तविक है। स्पर्श है, वह अवास्तविक है। क्षेत्र से अन्य-अन्य पर्याय—व्यंजन—आकृति होती है, वह त्रिकाल की अपेक्षा से अवास्तविक है। पर्याय की अपेक्षा से भले वास्तविक हो, त्रिकाल की अपेक्षा से अवास्तविक है। तो छूट जाती है। समझ में आया ? सुख-दुःख का वेदन, आनन्द से विरुद्ध सुख-दुःख की कल्पना अभूतार्थ है, क्षणिक है। एक समय की पर्याय में वह दिखती है। पर्याय अंश बुद्धि काल में दिखता है। स्वभाव बुद्धि—दृष्टि करने से अभूतार्थ है। वह टिक सकता नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ? भारी सूक्ष्म! ऐसा सूक्ष्म किसलिए किया होगा ? परन्तु ऐसा है। किया होगा क्या ? आहाहा! इसने कभी धर्म कैसे होता है, इसकी खबर नहीं होती और ऐसा का ऐसा बाहर से मानो धर्म होगा। दया पालन की और व्रत पालन किये और भक्ति की, पूजा की और यात्रायें की। धूल में भी धर्म नहीं, वह तो शुभभाव है। ऐ... सेठ! मानते थे, पाठशाला बना दी। दस हजार दे दिये, पन्द्रह हजार दे दिये। बहुत लोग... जाओ! लो, भाई! एक पच्चीस हजार देते हैं।

मुमुक्षु : कितने अधिक लोग पढ़ें।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे पढ़े, उसमें तुझे क्या है? पैसे कहाँ इसके थे? उसमें विकल्प होता है, वह भी भूतार्थ नहीं, ऐसा कहते हैं। वह भूतार्थ नहीं, शाश्वत् चीज़ नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा एक स्वभावी वस्तु एकरूप इक्का पर दृष्टि देने से, वे अभूतार्थ हो जाते हैं। पर्याय अभूतार्थ है, वह कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। आहाहा! भारी परन्तु टीका! अमृत के रस प्रवाहित किये हैं अकेले, हों! ओहो! ऐसा देख न भाई! एक समय का वर्तमान अन्तर्मुख को छोड़कर बहिर्मुख लक्ष्य से जो पर्याय के साथ कर्म का सम्बन्ध तुझे दिखाई देता है अथवा है, ऐसी तेरी मान्यता है, रागादि हैं, वे दिखते हैं और है तेरी मान्यता में वह शाश्वत् चीज़ है (परन्तु) वह शाश्वत् चीज़ नहीं। वह तो अभूतार्थ है। झूठी अर्थात् कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। कायम टिक नहीं सकती, रह नहीं सकती। अन्तर में स्वरूप की दृष्टि करने से वह अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ हो जायेगी। नास्ति हो जायेगी। और शुद्ध आनन्द के अनुभव की अस्ति होगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : धर्म करे तो सुखी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह धर्म करेगा तो सुखी होगा, बाकी मर जायेगा तो भी नहीं होगा। वे मैले कागज में लिखते हैं न? मैला। मर जाये, तब (लिखते हैं), धर्म करेगा तो सुखी होगा। परमेश्वर की मर्जी कि यह मर गया। ऐसा लिखते हैं न? समझे न? परमेश्वर के आगे अपनी नहीं चलती। वरना इसे परमेश्वर के सामने पड़ना है। परमेश्वर दूसरा कौन सा? मरण की स्थिति है, वह पूरी होती है। इसलिए धर्म करेगा, वह सुख होगा। मुझे कुछ लेना-देना नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! धर्म कैसे होता है? कि तेरी अवस्था में कर्म का सम्बन्ध कायम का नहीं और विकार भी कायम की चीज़ नहीं। तो कायमी चीज़ के ऊपर दृष्टि देने से वे अभूतार्थ हो जायेंगे, झूठे हो जायेंगे, नाश हो जायेगा। इसलिए अबद्धस्पृष्ट का अनुभव हो सकता है। आहाहा! पहले इसका ज्ञान तो करे कि क्या कहते हैं, कैसी पद्धति है, कैसी विधि है।

शिष्य ने पूछा था, प्रभु! अनादि से कर्म का सम्बन्ध चला आता है। आप कहते

हो कि अनुभूति होती है। पर से भिन्न होता है। परन्तु यह कर्म का सम्बन्ध अनादि से चला आता है न ? एक समय का है ? एक समय का है, सुन तो सही ! एक समय का तेरा लक्ष्य अन्तर में से छूटकर पर के ऊपर गया है। इतना सम्बन्ध अनादि का नहीं, एक समय की दशा का है। प्रवाहरूप से भले अनादि हो। एक समय जितना तेरा लक्ष्य पर के ऊपर गया है और विकार के सुख-दुःख की कल्पना भी एक समय में दिखती है। वह कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। तो उससे रहित एकरूप स्वभाव का अनुभव असत्यार्थ पर्याय है वह भेद; इसलिए अबद्धस्पृष्ट आत्मा का अनुभव हो सकता है। शशीभाई ! समझे ? समझ में आया या नहीं ? कहो, समझ में आया ? कहाँ गये प्रवीणभाई ? समझ में आता है या नहीं यह ? पुस्तक है ? ठीक। आज सूक्ष्म आया है। वे वेदान्त आदि कहते हैं कि पर्याय है नहीं, राग है नहीं। ऐसा नहीं। है, (परन्तु) अन्तर दृष्टि की अपेक्षा से अभूतार्थ कहा गया है। अभूतार्थ अर्थात् कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। छूट जाती है और एक समय की चीज़ है। यह आयेगा, अभी आयेगा। दृष्टान्त देंगे। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ था ? कपड़े की गाँठ छूटी, कहाँ गयी ? कहाँ गयी ? कहो। कपड़ा होता है या नहीं ? गाँठ पड़ी है या नहीं ? देखो ! कहाँ गयी ? छूट जाती है। राग के साथ एकत्व सम्बन्ध था, स्वभाव के साथ एकत्व हुआ तो छूट जाता है। समाप्त हो गया। छूट गया, दूसरा क्या है ? इसकी पद्धति की खबर नहीं, वह प्रयोग करे किस प्रकार ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक समय का ग्रन्थी रहित है। ग्रन्थीभेद, जो ग्रन्थी है, वह कर्म के सम्बन्ध में जो राग है, ऐसा जो मानता है, वह ग्रन्थी है—वह मिथ्यात्व है। उस ग्रन्थी का भेद कब होगा ? वह अभूतार्थ (अर्थात्) कायम की चीज़ नहीं। कायम का मैं द्रव्य स्वभाव अखण्ड एकाकार हूँ, ऐसी दृष्टि से ग्रन्थीभेद हो सकता है। वह कायम की चीज़ नहीं, इसलिए ग्रन्थी का नाश हो जाता है। ओहोहो ! समझ में आया ? भाई ! लड़के को समझ में आये। कितने ही लड़के कहते हैं कि हमको समझ में नहीं आता। परन्तु ध्यान

रखना चाहिए न! कुछ कहते हैं, ऐसा तो ध्यान रखना चाहिए। कहीं मुफ्त का जाता है यह? समझ में आया? इसका प्रोफेसर बोले तब कैसा ध्यान रखता है। वह तो सब पापबन्धन की कथायें हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बड़े ही हैं सब भगवान। सब आत्मा समान हैं। प्रभु आत्मा हैं, भाई! स्त्री की चेष्टा से, यह स्त्री है, ऐसा न देख, ऐसा यहाँ कहते हैं। इस शरीर की चेष्टा से इस शरीर की चेष्टा जो ऐसे-ऐसे होती है, वह क्षेत्र तेरा, ऐसा न देख। और दूसरे को भी ऐसा न देख। स्त्री के शरीर के रजकण ऐसे-ऐसे होते हैं, ऐसे-ऐसे होते हैं, वे आत्मा के नहीं, वह तो जड़ की चेष्टा है। आहाहा! समझ में आया? स्त्री का देह, वह आत्मा नहीं। उसका आत्मा तो वर्तमान पर्याय सम्बन्ध है, उससे रहित वह आत्मा है। ऐसा तू तुझे देख, दूसरे को भी ऐसा देख। समझ में आया? आहाहा! पर्यायबुद्धि—राग के साथ सम्बन्ध, कर्म के साथ सम्बन्ध, वह पर्यायबुद्धि है। छूट जायेगा। क्योंकि क्षणिक सम्बन्ध है। त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि करने से छूट जायेगा। तो जैसी तेरी दृष्टि हुई, उस दृष्टि से सबको देख। यह आत्मा है, अबद्धस्पृष्ट आत्मा है। उसकी पर्यायबुद्धि भले हो, परन्तु तेरी पर्यायबुद्धि छूट गयी और अबद्धस्पृष्ट दृष्टि में आया तो यह भी पर्याय से रहित अबद्धस्पृष्ट है। शरीर-फरीर की चेष्टा-फेष्टा वह आत्मा नहीं। इसमें राग होता है। विषय वासना का विकल्प, वह आत्मा नहीं। ऐसा तू देख। आहाहा! समझ में आया? हावभाव और चेष्टा। भगवान! वह तो जड़ की पर्याय है। उसका सम्बन्ध जीव के साथ एक समय का सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध कायम रहनेवाला है, ऐसा न देख। वह सम्बन्ध आत्मा के साथ सदा ही है, ऐसा न देख। समझ में आया? ऐसे हिले और ऐसे-ऐसे हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा, बँगला उसके घर में रहे। यहाँ कहा आत्मा में घुस गये थे। ऐ... सेठ! संगमरमर। बड़ा मकान। हजीरा समझ में आता है? बड़ा महल-मकान। हमारे यहाँ हजीरा उसे कहते हैं, लोटिया वोरा मरे, फिर जिसमें दबावे उसे हजीरा कहते

हैं। जामनगर में बड़ा हजीरा है। जामनगर में यह लोटिया वोरा होते हैं न? वोरा, वे मर जाये तब उस हजीरा में गाड़ते हैं। बड़े-बड़े हजीरा होते हैं। कब्रिस्तान। यह तो बड़ा मकान हो। जमीन में गाड़े परन्तु बड़े-बड़े मकान करे। कब्रिस्तान बड़ा। जामनगर में नदी के किनारे है न।... नदी के किनारे गये तो... ओहो! क्या है? हजीरा है। यह सब हजीरा ही है। आत्मा के भान बिना मुर्दे दस-दस लाख के मकान में बैठे हैं, वे हजीरा में पड़े हैं।

मुमुक्षु : सुख कितना!

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुख नहीं। मूढ़ है। आहाहा! विष्टा को चाटकर आनन्द माने, ऐसा सुख है।

मुमुक्षु : कब्रिस्तान में मकान बनावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कब्रिस्तान में नहीं। अन्यत्र आसपास। वोरा लोगों को। वहाँ जामनगर और सब जगह (होते हैं)। हळवद गये थे, वहाँ भी है। हळवद भी एक बड़ा है। हम गये थे तब हळवद में उनका बड़ा मुल्ला आया था। बड़ा मुल्ला। वे बेचारा व्याख्यान में आया था। बड़ा मुल्ला आया था। तब कुछ रोजा चलते थे। नाम बाहर प्रसिद्ध है न, इसलिए सब आवे। व्याख्यान सुने तो सही। तुम आत्मा हो। मुल्ला-फुल्ला... मुल्ला का आत्मा, ढेढ़ का आत्मा, नागर का आत्मा और बनिया के आत्मा में अन्तर है? आत्मा में अन्तर है? भगवान है आत्मा अन्दर। आहाहा! एक समय की पर्याय को न देखो। शरीर तो... आहाहा! देखो!

शिष्य ने प्रश्न किया था। उसका ही उत्तर चलता है, हों! धीरे-धीरे। 'जैसा ऊपर कहा है, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?' महाराज! ओहोहो! ऐसी बड़ी बात! परन्तु यह सब लोचा दिखता है न? कर्म का सम्बन्ध और राग-द्वेष और सुख-दुःख। आप कहते हो, ऐसा अनुभव किस प्रकार से हो? भाई! यह शाश्वत् चीज़ नहीं। यह टिकनेवाली चीज़ नहीं। तेरी दृष्टि अबद्ध के ऊपर जायेगी तो उसका नाश हो जायेगा। तेरी दृष्टि में रहेगा नहीं। आहाहा! 'उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार।' श्रीमद् ने अन्तिम वाक्य कहा। श्रीमद्।

उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार।
अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार॥

विलय कहो या अभूतार्थ कहो। आता है या नहीं? भाई! श्रीमद् में अन्त में आता है न? 'उपजे मोह विकल्प से'। मोह का विकल्प कि यह है और यह है और यह है। 'समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकते...' अभूतार्थ होते, 'विलय होत नहीं वार।' आहाहा! अन्त में पीछे आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब आवे, संयोग की बात करे। व्यवहारनय का कथन बहुत होता है। परन्तु उसका फल संसार है। समझ में आया? आहाहा! किस चीज़ का सम्बन्ध है? छोड़ना है तो उसका ज्ञान तो करावे या नहीं? ज्ञान कराये बिना क्या छोड़ना है और क्या ग्रहण करना है, (यह खबर कैसे पड़ेगी?) समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : हेय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय परन्तु ज्ञेयरूप से है न। ज्ञान करनेयोग्य है या नहीं? कि कोई चीज़ ही नहीं? ऐसा नहीं, वेदान्त जैसा नहीं कि कुछ है ही नहीं। ऐको अहं। सब ब्रह्म है। ऐसा नहीं। आत्मा एक ब्रह्म है और जगत मिथ्या है, ऐसा नहीं। अपने स्वरूप की अपेक्षा से जगत मिथ्या है। जगत की अपेक्षा से जगत है। समझ में आया? अन्तर दृष्टि से देखने से राग अभूतार्थ है, राग की दृष्टि से देखने से पर्याय है, राग है। राग है तो निषेध करके अराग दृष्टि होती है। समझ में आया? अलौकिक बात की है! आगे कहेंगे, व्यवहारनय से पाँच भूतार्थ हैं। निश्चयनय से अभूतार्थ है। आहाहा!

बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव अभूतार्थ हैं, इसलिए यह अनुभूति हो सकती है। भाई! तेरे घर में वह कायम की चीज़ नहीं। तो घर की दृष्टि करने से वे असत्य-झूठे हो जायेंगे। तूने मान रखा है, मुझमें कर्म का सम्बन्ध है, मुझमें दुःख है। यह मान रखा है, वह छूट जायेगा। कायम की चीज़ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म कैसा? दया पालने का कहे, पैसा खर्च करने का कहे, अपवास कर डालने का कहे। अपवास

कर डालें, लो। दस अपवास, पच्चीस अपवास। शरीर अच्छा हो, वह अपवास में उतर जाये। लक्ष्मीवाले दान में उतर गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करते हैं न स्वयं। यह अनुभूति की क्रिया, वह धार्मिक क्रिया है। आहाहा!

बद्धस्पृष्टत्व आदि वर्तमान में होने पर भी त्रिकाल एकरूप स्वभाव का अनुभव करने से वे अभूतर्थ हो जाते हैं। ऐसी बात है। **इस बात को दृष्टान्त से प्रगट करते हैं** - लो। अब दृष्टान्त से एक-एक बात को प्रगट करते हैं, हों! दृष्टान्त तो समझ में आये, हों! ऐई! लड़कों! दृष्टान्त तो उन्हें समझ में आये या नहीं? कल एक लड़का कहे कि इसमें हमको कुछ समझ में नहीं आता। नहीं समझ में आये परन्तु ध्यान दे तो समझ में आये या नहीं? गुण की व्याख्या करते हैं या नहीं? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में। गुण किसे कहते हैं? आता है या नहीं? ऐ... लड़कों! गुण किसे कहते हैं? उसकी व्याख्या क्या? द्रव्य के सम्पूर्ण भाग और उसकी प्रत्येक अवस्था में रहनेवाली शक्ति को गुण कहते हैं। लो, इसका अर्थ क्या? कि आत्मा जो वस्तु है, उसमें जो गुण है, आनन्द या ज्ञान, ज्ञान... ज्ञान। तो ज्ञान जो त्रिकाल द्रव्य में कायम रहनेवाला है। द्रव्य के पूरे भाग में। पूरा भाग अर्थात् पूरा क्षेत्र। पूरा क्षेत्र अर्थात् असंख्य प्रदेश में। और सर्व हालत। प्रत्येक दशा में वह गुण रहता है। प्रत्येक दशा में और प्रत्येक क्षेत्र में। द्रव्य आया, गुण आये, भाव आये। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हो गये। एक प्रश्न में तो इन्होंने इतना लिखा है। गुण किसे कहते हैं? कि गुण, द्रव्य के पूरे भाग में—द्रव्य के पूरे क्षेत्र में, पूरे क्षेत्र में और द्रव्य की सभी अवस्थाओं में (रहे, उसे गुण कहा जाता है)। तो द्रव्य तो वस्तु हुई, उसका ज्ञान गुण हुआ, पूरा क्षेत्र वह क्षेत्र हुआ, प्रत्येक हालत में, यह काल हुआ। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानगुण त्रिकाल रहता है। त्रिकाल रहता है तो एक समय की पर्याय है, इतने में गुण आ गया? पूरा गुण इतने में आ गया? वह तो प्रत्येक अवस्था में वर्तता है। परन्तु पूरा इतने में आता नहीं। एक समय की अवस्था दृष्टि करने से पूरे गुण

की दृष्टि नहीं होती। समझ में आया? वह गुण पूरे द्रव्य में रहता है, एकरूप। पूरे भाग में रहता है, इसका अर्थ क्या? द्रव्य के पूरे भाग में, पूरे क्षेत्र में, पूरे स्थान में। पूरे आत्मा में वह ज्ञान पूरे में रहता है। ऐसी एक समय की अवस्था का लक्ष्य छोड़कर, रहता है उसमें, बतलाना यह है कि तेरी अवस्था पर से नहीं होती, तुझसे होती है। इतना बतलाना है। अवस्था के अंश में पूरे द्रव्य-गुण नहीं आये। इतनी एक समय की अवस्था में पूरे द्रव्य-गुण आये नहीं। पूरे द्रव्य-गुण की प्रतीति किये बिना एक अंश की प्रतीति करे, उसमें पूरा आत्मा नहीं आता। इसलिए एक समय की अवस्था का लक्ष्य छोड़कर शाश्वत् द्रव्य और गुण जो है एकाकार, उसकी दृष्टि करने से तेरी सत्य-सम्यक्दृष्टि होती है। और वह शक्य है और हो सकती है। पर्याय को एक समय में कायम रखे तो हो सकती नहीं। समझ में आया? इसमें भी बहुत है थोड़ा समझे तो। अब अबद्धस्पृष्ट का दृष्टान्त देते हैं। पहला बोल है न? अबद्धस्पृष्ट।

जैसे कमलिनी-पत्र... कमलिनी का पत्र। कमलिनी होता है न? वेल... वेल। पानी में होता है न, पानी में? उसका पत्र। उसका स्वभाव ऐसा है, रूखा स्वभाव, रूखा। कमलपत्र का रूखा (स्वभाव)। पानी उसे स्पर्शता ही नहीं ऐसा। वह पत्र **जल में डूबा हुआ हो...** पानी में डूबा हुआ दिखता हो, **उसका जल से स्पर्शित होनेरूप...** स्पर्शित अर्थात् संयोगरूप। संयोगरूप। पत्र का जल के संयोगरूप अवस्था से **अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना भूतार्थ है...** जल से पत्र के संयोगरूप, यह वर्तमान संयोग है, वह है, वर्तमान देखने से है, डूबा हुआ देखने से है। पानी में कमलिनी का पत्र डूबा हुआ है, ऐसा संयोग से देखने से संयोगरूप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... कहाँ कहा इसमें?

मुमुक्षु : पानी से स्पर्शनेरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्शित नहीं, ऐसा कहते हैं। स्पर्शित व्यवहार संयोगरूप है, ऐसा कहते हैं। स्पर्शित अर्थात् ऐसे संयोगरूप है। संयोग बतलाना है न। कर्म का भी आत्मा के साथ संयोग बतलाना है न! स्पर्शे क्या? तीन काल में स्पर्शता नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार स्पर्श।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस व्यवहार स्पर्श का अर्थ संयोग। पानी में संयोगदृष्टि से डूबा हुआ देखो तो संयोग है, संयोग है। पानी से देखते हैं न, पानी से देखते हैं तो संयोग है, पानी से देखे तो संयोग है। उस संयोग अपेक्षा से, व्यवहार की अपेक्षा से भूतार्थ है अर्थात् है। संयोग अपेक्षा से वर्तमान है। समझ में आया?

तथापि जल से किञ्चित्मात्र भी न स्पर्शित होने योग्य... देखो! परन्तु यह वेल का पत्ता ऐसा है, कमलिनी का पत्र रूखा... रूखा है। ऐसे उठाओ तो पानी का एक बिन्दु उसे स्पर्शा न हो। ऐसा रोम (हो)। रोम कहते हैं? बारीक-बारीक ऐसी सूखी... सूखी... सूखी। कहीं पानी स्पर्शा ही नहीं। फिर पानी को पोंछना नहीं पड़ता। स्पर्शा ही नहीं न! क्या पोंछे? लुवे समझे? पोंछना। पत्ता पानी में था, अब पोंछ डाले। ऊपर लेप है ही नहीं। समझ में आया? पहले दृष्टान्त समझो, दृष्टान्त। आहाहा! वेदान्त में भी आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय डूबा हुआ संयोग से दिखता है। स्वभाव दृष्टि से देखो तो उसमें संयोग-फंयोग है ही नहीं।

मुमुक्षु : उस समय देखो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय। उस समय की बात है न। ऐसे देखो तो संयोग है, ऐसे देखो तो संयोग है नहीं। दोनों अवस्थादृष्टि से अवस्था है, स्वभावदृष्टि से नहीं। यह सिद्ध करना है। एक समय की अवस्था भूतार्थ है। बिल्कुल सम्बन्ध ही नहीं, पर्याय में निमित्त का व्यवहार सम्बन्ध एक समय का नहीं है, ऐसा नहीं। ऐसा है। त्रिकाल दृष्टि की अपेक्षा से सम्बन्ध नहीं। अथवा पत्र का स्वभाव देखने से जल का सम्बन्ध है ही नहीं। किसका सम्बन्ध करे? रूखा। उसके रोम पत्ते के नीचे ऐसे रूखे होते हैं, रूखे। बारीक... बारीक... बारीक। पत्ते के नीचे (होते हैं)। पानी उसे कभी स्पर्शा ही नहीं। पानी स्पर्शता ही नहीं। उठावे तो समाप्त। एक बिन्दु निकले नहीं। संयोग से देखो तो एक

समय का है। एक समय का। परन्तु उसके स्वभाव से देखो (स्पर्श हुआ ही नहीं)। समझ में आया?

जल से किञ्चित्मात्र भी न स्पर्शित होने योग्य... देखो! किंचित्मात्र भी। **न स्पर्शित (संयोग) होने योग्य कमलिनी-पत्र के स्वभाव के समीप जाकर...** स्वभाव का लक्ष्य करने से, ऐसा। यह कमलिनी का स्वभाव तो ऐसा है कि पानी को स्पर्शता ही नहीं। ऐसे स्वभाव का ज्ञान करने से, अनुभव अर्थात् ज्ञान। यहाँ कुछ उसका अनुभव करना नहीं। **कमलिनी-पत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना अभूतार्थ है-असत्यार्थ है;...** जल से एक संयोग देखते हैं, वह झूठा है। जल से पत्ते का संयोग दिखता है, वह स्वभाव देखने से झूठा है। संयोग है नहीं, स्पर्श हुआ नहीं। समझ में आया? वेदान्त (में) भी कमल का दृष्टान्त आता है। कमलिनी के पत्ते का आता है। वहाँ अकेला बतलाना है। वह तो है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो है, पर्याय में है। यहाँ दोनों बतलाना है। पर्याय में भी है। पानी ऐसे संयोगरूप से है। संयोग, संयोग की दृष्टि से है। स्वभाव की दृष्टि से देखो तो जल में कमलिनी का स्वभाव किंचित्मात्र स्पर्शा ही नहीं। यह तो दृष्टान्त हुआ। यह तो पहले अबद्धस्पृष्ट का दृष्टान्त हुआ। अब अबद्धस्पृष्ट का सिद्धान्त सिद्ध करते हैं।

इसी प्रकार अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का,... लो। **अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का,...** पर्याय से लक्ष्य कतरे हैं न यहाँ कर्म का। **पुद्गलकर्मों से बँधने-स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर...** ज्ञान करने से वह **बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है...** एक समय की दशा में कर्म का सम्बन्ध है, है। बिल्कुल समय की अवस्था है ही नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? दूसरे तो कहे कि नहीं, कर्म का सम्बन्ध एक समय में है नहीं। (-ऐसा नहीं)। एक समय में है। पर्यायदृष्टि से बन्ध है, बन्ध पर्यायदृष्टि से बन्ध है। समझ में आया? जल में डूबा हुआ कमलिनी का पत्र देखने से जल में (डूबा हुआ है)।

पुद्गल से किञ्चित्मात्र भी स्पर्शित न होनेयोग्य... अब जहाँ द्रव्यस्वभाव देखो, वस्तु ज्ञायक चैतन्य, जैसे जल से भिन्न (कमलिनी पत्र है), वैसे भगवान आत्मा कर्म के

सम्बन्धरहित अकेले चैतन्यद्रव्य से देखो तो **स्पर्शित न होनेयोग्य आत्मस्वभाव के समीप जाकर...** आत्मा का स्वभाव ज्ञायक चैतन्यमूर्ति, उसका स्वभाव कर्म के सम्बन्ध में एक समय में रहना, ऐसा स्वभाव है ही नहीं। **अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।** व्यवहार से एक समय का स्पर्श दिखता था। त्रिकाल दृष्टि से देखो तो बद्धस्पृष्ट है नहीं। इसलिए अबद्धस्पृष्ट का अनुभव हो सकता है। ऐसा कहा। शिष्य ने प्रश्न किया था कि यह अनुभव हो सकता है ? हो सकता है। पर्याय का सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध का लक्ष्य छोड़ दे और यहाँ सम्बन्ध करे तो छूट जायेगा। आत्मा का अनुभव हो सकता है। एक बोल हुआ। दूसरा कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ४, सोमवार, दिनांक - ०३-१०-१९६६
गाथा-१४, प्रवचन - ६५

यह समयसार जीव-अजीव अधिकार चलता है, १४वीं गाथा। देखो! यहाँ आया। पहला दृष्टान्त। आत्मा बद्धस्पृष्टरहित है। उसमें जल, कमलिनी के पत्र का दृष्टान्त दिया। कमलिनी पत्र जल में डूबा हुआ देखने में आने पर उसे संयोगरूप सम्बन्ध है, ऐसा दिखता है। समझ में आया? ....क्या कहा, समझ में आया? कमलिनी का पत्र जल में डूबा हुआ देखने से मानो डूबा हुआ है, ऐसा संयोग से दिखता है। इस अपेक्षा से सत्यार्थ है। परन्तु पत्र का (स्वभाव) देखने से जल को स्पर्शता नहीं, ऐसा देखने से वह पर का सम्बन्ध अभूतार्थ-असत्यार्थ है।

इसी प्रकार अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का,... यहाँ आया है। **पुद्गलकर्मों से बँधने-स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है-सत्यार्थ है,...** देखो! यहाँ तक आया है। वस्तु आत्मा अनादि कर्म के निमित्त की अपेक्षा लेकर देखने से जो बन्ध अवस्था में संयोग सम्बन्ध दिखता है, उस दृष्टि से देखो तो सम्बन्ध व्यवहार से है। व्यवहार से है, वह भूतार्थ है। समझ में आया? भूतार्थ का अर्थ, है।

तथापि पुद्गल से किञ्चित्मात्र भी स्पर्शित न होनेयोग्य... भगवान आत्मा आत्मस्वभाव के समीप जाकर, चैतन्यस्वभाव शुद्ध ज्ञायक की अन्तर दृष्टि करने से, स्वभाव के समीप जाने से **अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।** कर्म का सम्बन्ध वह वास्तविक तत्त्व की दृष्टि में आत्मा के स्वभाव का अनुभव करने से (भूतार्थ) है नहीं। समझ में आया? देखो, व्यवहार है —ऐसा बतलाया है। परन्तु आत्मा के शुद्धस्वभाव की दृष्टि करने से, जो व्यवहार भूतार्थ संयोग था, वह अभूतार्थ हो जाता है—झूठा हो जाता है। समझ में आया? ऐसे व्यवहार वर्तमान भूतार्थ है, इस अपेक्षा से निश्चय अभूतार्थ हो जाता है। है या नहीं? ऐसा नहीं। वह तो पहले कह दिया है कि बद्धस्पृष्ट आदि अभूतार्थ होने से अनुभूति हो सकती है। क्या कहा?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं न विशेष।

कर्म का सम्बन्ध आदि पाँच बोल जो है, वह वास्तविक कायम की चीज़ नहीं, वह तो क्षणिक सम्बन्ध है। तो स्वभाव की अनुभूति करने से वह भाव अभूतार्थ है तो छूट जाता है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार भूतार्थ है तो उसका आश्रय करने से निश्चय जो भूतार्थ है, वह अभूतार्थ हो जाता है—ऐसा कभी नहीं होता।

मुमुक्षु : अनेकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त कहते हैं न। इसीलिए तो यहाँ कहा। अनेकान्त ऐसा करो। परन्तु उसके उत्तर में है कि बद्धस्पृष्ट आदि भाव अभूतार्थ होने से अनुभूति हो सकती है। प्रश्न में सब स्पष्टीकरण है। क्या कहा?

आत्मा अनन्त शुद्ध आनन्दकन्द आदि स्वभाव है। उसमें वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था में कर्म का सम्बन्ध वर्तमान व्यवहारनय से सम्बन्ध है, वह भूतार्थ है। भूतार्थ अर्थात् है। परन्तु आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव अन्तर्मुख अन्तर स्वभाव समीप जाने से वह व्यवहार का सम्बन्ध छूट जाता है तो वह असत्यार्थ है, झूठा है। समझ में आया? ऐसे व्यवहार भूतार्थ है तो निश्चय अभूतार्थ हो जाता है, ऐसा नहीं बनता। व्यवहार भूतार्थ है तो निश्चय का नाश हो जाता है, (ऐसा नहीं बनता)। भाई! उसमें डाला है, बहुत प्रश्न करते हैं कि तुम कहते हो कि निश्चय की अपेक्षा से निज स्वभाव शुद्ध है, उसकी दृष्टि करने से व्यवहार जो भूतार्थ था, वह अभूतार्थ हो गया, सच्चा था वह झूठा हो गया। तो यह कहते हैं कि व्यवहार की दृष्टि से है, भूतार्थ है। इस अपेक्षा से निश्चय असत्यार्थ है। परन्तु इसका अर्थ क्या? क्या निश्चय नाश हो जाता है? समझ में आया? आहाहा! गजब! ऐसे तर्क उठाते हैं .... अब तो। दृष्टि की खबर नहीं होती।

इसीलिए तो शिष्य ने यहाँ प्रश्न किया, प्रभु! यह बद्धस्पृष्ट दिखता है न! कर्म का सम्बन्ध दिखता है, भेद दिखते हैं, विकार दिखता है। आत्मा की अनुभूति किस प्रकार होती है? तो कहा कि वे बद्धस्पृष्ट आदि भाव कायम रहनेवाले नहीं। वह क्षणिक सम्बन्ध है। आत्मा में विकार भी क्षणिक है, कर्म का सम्बन्ध क्षणिक है। आत्मा में

भेद-ज्ञान, दर्शन आदि क्षणिक है। वह असत्यार्थ—शाश्वत् वस्तु नहीं होने से आत्मा का अन्तर स्वरूप अनुभूति करने से छूट जाते हैं, और वे छूट जाते हैं तो अनुभूति हो सकती है। समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं कि जब तुम ऐसा कहो कि व्यवहार अभूतार्थ-झूठा है निश्चय की अपेक्षा से, तो हम कहते हैं कि व्यवहार की अपेक्षा से निश्चय झूठा है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... निश्चय का अभाव हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव हो? इसीलिए तो यह प्रश्न लिया है। निश्चय का अभाव हो सकता है? व्यवहार का अभाव हो सकता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात।

वस्तु जो आत्मा है, वह एक समय में अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड है। वस्तु ध्रुव नित्य ज्ञायकस्वभाव अनादि-अनन्त। उसकी अपेक्षा से वर्तमान जो कर्म का सम्बन्ध आदि विकल्प, रागादि है, वह तो क्षणिक है। वह है, इस अपेक्षा से भूतार्थ है परन्तु अपने स्वभाव की दृष्टि, अनुभव करने से वह अभूतार्थ है तो छूट जाता है। समझ में आया? यह कायम रहनेवाली चीज़ नहीं। समझ में आया? व्यवहार (भूतार्थ) है तो व्यवहार की अपेक्षा से निश्चय अभूतार्थ है। क्या व्यवहार की अपेक्षा से निश्चय का नाश हो जाता है? क्या कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य से और राग है, उसके लक्ष्य से आत्मा अविनाशी त्रिकाल ज्ञायक है, उसका अभाव हो जाता है? अमरचन्दभाई! आहाहा! निश्चय-व्यवहार में यह बड़ी गड़बड़ है। व्यवहार भूतार्थ है या नहीं? व्यवहार, व्यवहार से भूतार्थ है या नहीं? तो इस अपेक्षा से निश्चय अभूतार्थ है, निश्चय है ही नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? व्यवहार वर्तमान कर्म के सम्बन्धरूप और विकार की पर्यायरूप दिखता है; है सही। बिल्कुल नहीं है—ऐसा नहीं। खरगोश सींग हों, ऐसी चीज़ नहीं। परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि वह कायम रहनेवाली चीज़ है, ऐसा नहीं। क्षणिक है। ऐसा जहाँ स्वभाव-सन्मुख दृष्टि की तो व्यवहार असत्यार्थ है, वह छूट जाता है। और व्यवहार से रहित बद्धस्पृष्टरहित आत्मा की अनुभूति होती है। समझ में आया?

निश्चय भूतार्थ, व्यवहार अभूतार्थ, ऐसा हो सकता है। परन्तु व्यवहार भूतार्थ तो निश्चय अभूतार्थ, ऐसा नहीं हो सकता। क्यों नहीं? कि निश्चय तो त्रिकाली ज्ञायक चीज़

है। उसका अभाव किस प्रकार हो? समझ में आया या नहीं? यह अनेकान्त करने के लिये ऐसा लिखते हैं। तुम कहते हो कि व्यवहार असत्यार्थ है तो हम कहते हैं कि व्यवहार की अपेक्षा से निश्चय असत्यार्थ है। तुम कहते हो कि निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार झूठा है, तो हम कहते हैं कि व्यवहार की अपेक्षा से निश्चय झूठा है। ऐसा कहते हैं, लो! रामस्वरूपजी! कहते हैं न, हमने तो सुना है न, पत्रिका में आया था। पत्र में भी है। समझे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, यह बात। यहाँ आत्मा ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप अखण्डानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप ज्ञायक है, उसका तो कीाी नाश होता नहीं। वह तो सत्... सत्... सत्... है। परन्तु पर्याय की एक क्षण की विकृत अवस्था और कर्म का सम्बन्ध तो एक क्षण का है। तो है, इस अपेक्षा से सत्यार्थ है। परन्तु स्वभाव की दृष्टि करने से वह असत्यार्थ हो जाता है अर्थात् छूट जाता है। समझ में आया? ऐसे व्यवहार की दृष्टि करने से व्यवहार भूतार्थ है तो निश्चय छूट जाता है, इसलिए असत्यार्थ है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो प्रश्न बाँधा है उसमें ही विशिष्टता है। **जैसा ऊपर कहा है, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?** शिष्य ने प्रश्न किया कि महाराज! आप कहते हो कि भगवान आत्मा कर्म के सम्बन्धरहित है, अबद्धस्पृष्ट है, भेदरहित अभेद है, विकाररहित आनन्दरूप त्रिकाल है, विकार का संयुक्त भाव सम्बन्ध नहीं। महाराज! यह चीज़ दिखती है न! कर्म का सम्बन्ध दिखता है, विकार दिखता है, दु:ख दिखता है। तो ऊपर आत्मा कहा बद्धस्पृष्ट रहित, ऐसी चीज़ का अन्तर अनुभव किस प्रकार हो? है न? भाई! है, परन्तु उसका अभाव हो सकता है। समझ में आया? वस्तु स्वभाव कायमी अखण्डानन्द प्रभु की अन्तर दृष्टि करने से—अनुभव करने से संयोगभाव का अभाव हो जाता है। परन्तु वहाँ संयोगभाव भूतार्थ है, इस अपेक्षा से वह वास्तविक तत्त्व अभूतार्थ अर्थात् नाश हो जाता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म है। माणेकचन्दजी! अभ्यास करना पड़ेगा। ऐसा का ऐसा नहीं चलेगा। अभी तक पैसे में घुस गये। पैसे में

कुछ मेहनत है ? पूर्व के पुण्य के कारण आवे और फिर माने कि हम होशियार सेठिया हैं, होशियार हैं तो मिलते हैं। सेठ! होशियारी कुछ धूल में भी काम नहीं आती।

यहाँ तो आत्मा में पुरुषार्थ करना पड़ता है। समझाने की पद्धति को पहले यथार्थ पकड़ना पड़ता है। फिर उसका प्रयोग होकर उसका अनुभव होता है। समझ में आया ? यहाँ तो मस्तिष्क में जरा यह चला, व्यवहार भूतार्थ तो कहा है। ऐसा कहते हैं कि देखो! व्यवहार भूतार्थ कहा है या नहीं ? तो इस अपेक्षा से निश्चय अभूतार्थ है। अरे! परन्तु निश्चय का नाश कभी होता ही नहीं। अभूतार्थ कैसे हो ? समझ में आया ? शुद्ध चिदानन्दमूर्ति अनादि-अनन्त आनन्दकन्द वस्तु ध्रुव है। व्यवहार भूतार्थ और यह अभूतार्थ कैसे हो ? यह तो शाश्वत् चीज़ है। शाश्वत् चीज़ पर दृष्टि देने से व्यवहार का जो सम्बन्ध है, वह छूट जाता है। तो इस भूतार्थ की अपेक्षा से वह अभूतार्थ हो जाता है, ऐसा है। अमरचन्दभाई !

भूतार्थ तो क्यों कहा ? कि वेदान्त आदि मानते हैं कि पर्याय में कोई विकार है ही नहीं। कर्म का सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा मानते हैं। यह बताने के लिये (कहा कि) है। निमित्त सम्बन्ध है। राग आत्मा में है, दुःखपर्याय है। इस अपेक्षा से, है (इस) अपेक्षा से सत्य है। सत्य अर्थात् है, है, इस अपेक्षा से। और शाश्वत् चीज़ जो अखण्डानन्द ज्ञायकमूर्ति है, वह तो है अपेक्षा से सत्य है और आश्रय लेने में वह चीज़ त्रिकाल रहती है; इसलिए वास्तव में तो वह ही भूतार्थ है। आहाहा! समझ में आया ?

अनादि काल से बँधे हुए आत्मा का, पुद्गलकर्मों से बँधने-स्पर्शित होनेरूप अवस्था से अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता भूतार्थ है... कर्म का सम्बन्ध व्यवहार से है, निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है, विकार है, **तथापि पुद्गल से किञ्चित्मात्र भी स्पर्शित न होनेयोग्य...** राग और सम्बन्ध का लक्ष्य छोड़कर, अकेला भगवान चैतन्यस्वभाव की दृष्टि करने से भगवान आत्मा के स्वभाव के **समीप जाकर अनुभव करने पर...** यह संयोगीभाव और संयोग, संयोगीभाव और संयोग। संयोगीभाव कौन ? विकार परिणाम। दुःखरूप दशा विकारी भाव संयोगीभाव है और कर्म संयोग है। स्वभाव त्रिकाल है, उसका आश्रय करने से दोनों का नाश हो जाता है। समझ में आया ? पोपटभाई! परन्तु

संयोग और संयोगीभाव का आश्रय करने से वास्तविक स्वभाव का कभी नाश होता है? वह भूतार्थ है, यह अभूतार्थ है। एक समय का भूतार्थ है और यह त्रिकाली भूतार्थ है। तो त्रिकाली भूतार्थ तो भूतार्थ ही रहेगा। और एक क्षणिक भूतार्थ है, वह त्रिकाल भूतार्थ का आश्रय करने से अभूतार्थ हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

'किंचित्मात्र भी नहीं स्पर्शनेयोग्य ऐसे आत्मस्वभाव के...' भगवान आत्मा ध्रुव, शुद्ध ध्रुव सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् स्वरूप के स्वभाव पर दृष्टि करने से किंचित्मात्र राग का और कर्म का सम्बन्ध, उसे है ही नहीं। समझ में आया? किंचित्मात्र नहीं स्पर्शनेयोग्य। जरा भी विकार होनेयोग्य आत्मा है ही नहीं। और कर्म का सम्बन्ध होनेयोग्य वस्तु का स्वभाव है ही नहीं। गजब बात! १४वीं गाथा तो साधारण है, परन्तु इसमें बहुत भर दिया है। समझ में आया? यह एक बोल हुआ।

'आत्मस्वभाव के समीप जाकर...' समीप जाकर इसका अर्थ—जो दृष्टि वर्तमान कर्म के निमित्त की पर्याय का सम्बन्ध देखती है और जो दृष्टि राग को, दुःख को, वर्तमान दशा को देखती है, उस दृष्टि को छोड़कर त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा पर दृष्टि देने से अर्थात् उसके समीप जाने से वह अभूतार्थ हो जाता है। राग और सम्बन्ध छूट जाता है। पोपटभाई! समझ में आया? कहो, धर्मचन्दजी! ऐसे व्यवहार भूतार्थ है। तो भूतार्थ का लक्ष्य करने से त्रिकाली भूतार्थ जो है, वह अभूतार्थ हो जाता है? नहीं। किस अपेक्षा से बात है। कहाँ का कहाँ लगा दिया। जो त्रिकाल सत्य वस्तु है, ज्ञायक आनन्दकन्द वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु सत्य परमेश्वर स्वभावभाव, वही त्रिकाल सत्य रहता है। उसके आश्रय से व्यवहार असत्य हो जाता है, परन्तु व्यवहार के आश्रय से निश्चय असत्य हो जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा! अनेकान्त करो। ऐसा लगाओ तो ऐसा भी लगाओ। तुम कहते हो कि निश्चय की अपेक्षा से व्यवहार असत्य है, तो हम कहते हैं कि व्यवहार की अपेक्षा से निश्चय असत्य है। ओहो! बड़ी बात है। हम अनेकान्त करते हैं। समझ में आया? अरे! कठिन बात, भाई! पत्र में आता है, एक पुस्तक में प्रकाशित किया है। पुस्तक में भी प्रकाशित किया है। हम देखते तो हैं सबका, हों! कि क्या कहते हैं? यहाँ समय-बहुत समय है। क्या कहते हैं? समझ में आया?

पहले यह बात निश्चित करो कि यह किसलिए क्या लिया है ? कि शिष्य प्रश्न ने किया कि महाराज! आप आत्मा को अबद्धस्पृष्ट कहते हो। कर्म का सम्बन्ध नहीं, कर्म का स्पर्श अर्थात् संयोग ही नहीं। समझ में आया ? और उसमें यह नारकी, मनुष्य, देव आदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रपर्याय—व्यंजनपर्याय होती है न ? नारकी की व्यंजनपर्याय—आकार। तो भिन्न-भिन्न आकार है, उनसे रहित है, ऐसा बतलाया, और एक-एक समय की पर्याय में हानि-वृद्धि होती है, उससे रहित बतलाया और गुणभेद से रहित अभेद बतलाया और विकार के दुःख से आनन्दमूर्ति भिन्न बतलाया। महाराज! यह सब दिखता है और आप कहते हो कि अनुभूति होती है, वह किस प्रकार ? जो दिखता है, उसका क्या करना ? कि दिखता है, वह आत्मा की अनुभूति होने से असत्यार्थ हो जाता है। क्योंकि असत्यार्थ है। कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। समझ में आया ?

यह तो इसमें सब भरा है। 'जैसा ऊपर कहा, वैसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है ?' शिष्य का प्रश्न है। १४ और १५ दोनों एक प्रकार की गाथायें आयेंगी। यह दर्शन की—सम्यग्दर्शन की गाथा है। १५वीं ज्ञान की गाथा है। सम्यग्दर्शन की, सम्यग्ज्ञान की, हों! अभी चौथे गुणस्थान की गाथा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन की बात है। सम्यग्दर्शन में जो कर्म का संयोग वर्तमान ज्ञान में दिखता है और विकार दिखता है और गुणभेद जो लक्ष्य में आता है, उस एकरूप स्वभाव की दृष्टि करने से वे शाश्वत् चीज़ नहीं। तो झूठी है, नाश हो जाती है तो अनुभूति होती है। समझ में आया ? रतिभाई! कठिन बात परन्तु! ओहोहो! यह तो पन्द्रहवीं बार चलता है, इसलिए फिर सामने जितनी बात आयी हो, उसके सामने (स्पष्टीकरण आता है)।

इस प्रश्न में ही सब बात है। भगवान आत्मा वस्तु, ऐसे वर्तमान कर्म का वर्तमान एक समय का सम्बन्ध, वर्तमान विकार, वर्तमान भेद, वर्तमान पर्याय में हीनाधिकता, वर्तमान आकृति में भिन्न-भिन्न आकृति—यह सभी चीज़ें असत्यार्थ हैं, शाश्वत् रहनेवाली नहीं। इस आत्मा के स्वभाव की अनुभूति होने से असत्यार्थ है, छूट जाती है और

अनुभव हो सकता है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार का अनुभव करने से निश्चय त्रिकाल है, वह छूट जाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ईश्वरचन्दजी! बहुत गड़बड़ है तुम्हारे गाँव में। सनावद। बहुत गड़बड़ चलती है सामने। ऐ... इनका एकान्त है। अरे! सुन तो सही, तुझे भान नहीं। वीतराग क्या कहते हैं, तूने सुना ही नहीं। एकान्त है, अभी कहेंगे सम्यक् एकान्त। सम्यक् एकान्त। एकान्त अर्थात् एक धर्मस्वभाव। एक धर्मस्वभाव बोधबीज स्वभाव, वह वस्तुस्वभाव है—ऐसा कहेंगे। पाँचवें बोल में कहेंगे। समझ में आया?

भगवान आत्मा में दो भाग। एक भाग कर्म के सम्बन्धवाला अथवा विकार के सम्बन्धवाला एक भाग। एक भाग त्रिकाल शुद्धभाव। तो कहते हैं कि वर्तमान संयोग और राग होने पर भी स्वभाव के समीप जाने से संयोग और संयोगीभाव छूट जाते हैं। तो वह अभूतार्थ है, कायम रहनेवाली चीज़ नहीं तो छूट जाती है। त्रिकाल शुद्ध चैतन्यप्रभु के समीप जाने से वह क्षणिकभाव है, त्रिकाली का आश्रय करने से वे छूट जाते हैं। परन्तु वर्तमान राग का—शुभराग का और कर्म के सम्बन्ध का लक्ष्य करने से और उसे भूतार्थ मानने से वह त्रिकाली चीज़ असत्य हो जाती है, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? अमरचन्दभाई! इसलिए इन दो बोल पर पूरा विस्तार है। ऊपर कहा वैसा भगवान आत्मा आप कहते हो कि अबद्धस्पृष्ट है, उसका अनुभव कहाँ से हो सकता है? यह सब दिखता है न? कर्म का वर्तमान सम्बन्ध है, ज्ञान का सम्बन्ध है, ज्ञान हीन है तो कर्म के निमित्त से सम्बन्ध है, विकार है, दु:ख है। है या नहीं? है तो उससे रहित अनुभव है तो उनसे रहित अनुभव किस प्रकार होता है? वह है तो उससे रहित अनुभव किस प्रकार होता है? ऐसा शिष्य ने पूछा। है, वह आत्मा का अनुभव करने से नहीं—असत्यार्थ हो जाता है। समझ में आया? रतिभाई! अरे... अरे... गजब परन्तु!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्य अर्थात् क्षणिक है। क्षणिक संयोग है, वह तो स्वभाव के आश्रय से छूट जाता है। क्षणिक का आश्रय करने से कहीं त्रिकाली वस्तु छूट जाती

है और अभूतार्थ हो जाती है, ऐसा अनेकान्त करने जाये तो ऐसा है ही नहीं।

मुमुक्षु : वह तो अनादि का पर का ही आश्रय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया, समाप्त, वस्तु छूट गयी। वस्तु रही ही नहीं, वस्तु का नाश हो गया। दृष्टि में तो तुझे त्रिकाल वस्तु का अभाव है। दृष्टि में तो त्रिकाल वस्तु का अभाव है। इतना अभाव तो है, अब तुझे कितना अभाव करना है? उसका नाश कर डालना है? समझ में आया? आहाहा!

दृष्टि जो है, वह तो वर्तमान कर्मसम्बन्ध और राग को अनादि से स्वीकारती है। अनादि से। अब वह तो है। परन्तु है, वह कायम की चीज़ है? तो दृष्टि को जब स्वभाव का शरण मिला, समझ में आया? स्वभाव का शरण लिया, दृष्टि समीप गयी—शरण लिया तो वह संयोग रहा नहीं। संयोग छूट गया। इसलिए व्यवहार अभूतार्थ होने से अनुभूति—आत्मा का अनुभव हो सकता है। परन्तु निश्चय अभूतार्थ होने से व्यवहार का अनुभव हो तो निश्चय अभूतार्थ हो जाता है, परन्तु अभूतार्थ कैसे हो? क्या निश्चय वस्तु चली जाती है? आहाहा! गजब भाई! समझ में आया? पूरी वस्तु परमानन्द की मूर्ति पड़ी है। उसके समीप जहाँ आया, वहाँ व्यवहार-फ्यवहार रहा कहाँ? उड़ गया। समझ में आया? वह तो क्षणिक था तो उड़ गया। एक समय का सम्बन्ध था। त्रिकाल सम्बन्ध की दृष्टि हुई तो छूट गया। परन्तु व्यवहार का सम्बन्ध है, ऐसा कहा तो उसका सम्बन्ध करने से त्रिकाली चीज़ असत्यार्थ अभूतार्थ हो जाती है? तीन काल में नहीं। भूतार्थ तो भूतार्थ ही त्रिकाल रहेगा। समझ में आया? और जो व्यवहार अभूतार्थ है, वह अभूतार्थ हो जायेगा। परन्तु निश्चय भूतार्थ है, वह कभी अभूतार्थ हो जायेगा, (ऐसा है नहीं)। समझ में आया? क्यों, बराबर है न? अमरचन्दभाई! आहाहा!

भगवान आत्मा पूरा शुद्ध चैतन्यप्रभु वर्तमान में कर्म का सम्बन्ध एक समय का है, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। राग की-दुःख की उत्पत्ति होती है। है। अनेक आकृति है। पर्याय की हानि-वृद्धि एक समय में है। समझे? गुणभेद है। ज्ञान जानता है, श्रद्धा, श्रद्धा करती है, ऐसे भेद दिखते हैं। कहते हैं कि वह भेद व्यवहार से दिखते हैं, वह निश्चयस्वभाव की दृष्टि करने से उस भेद का नाश हो जाता है। शाश्वत् चीज़ नहीं तो

वह रहती नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु व्यवहार भूतार्थ है, उसकी अपेक्षा से निश्चय असत्यार्थ हो जाता है, ऐसा तीन काल में नहीं होता। तो पर्याय कहाँ रही? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब परन्तु। आचार्य ने वस्तु की स्थिति... कायम रहनेवाली (वस्तु को) जहाँ सत्य कहा तो उस अपेक्षा से (व्यवहार को) असत्य कहा। और व्यवहार है, इस अपेक्षा से सत्य कहा। वह है तो यह भी है। यह भी है और यह भी है, परन्तु वह तो उड़ जाता है। निश्चय कभी उड़ता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : चारों गति का अभाव हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों गति, विकल्प आदि सबका अभाव हो जाता है। वस्तु में कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? इस प्रश्न में क्यों रुके? वाँचने से पहले उठते ही मस्तिष्क में आया था कि यह कहते हैं न? महाराज! आपने अबद्धस्पृष्ट, अनन्य आदि कहा, नियत, अविशेष, असंयुक्त, ऐसे आत्मा की अनुभूति को शुद्धनय कहा, उसे आत्मा कहा, उसे आत्मा कहा। महाराज! परन्तु ऐसा आत्मा कहाँ है? यह बद्धस्पृष्ट दिखता है न, संयोग दिखता है न? तो कहाँ रहा तुम्हारा आत्मा अबद्धस्पृष्ट? सुन तो सही। यह बद्धस्पृष्ट असत्यार्थ शाश्वत् चीज़ नहीं। इसलिए आत्मा अबद्धस्पृष्ट की अनुभूति करने से अनुभूति हो सकती है। समझ में आया? आहाहा! अभी पद्धति क्या है और किस प्रकार से वाक्य कहा गया है, इसकी खबर नहीं, वह अन्दर प्रयोग में ज्ञायक में किस प्रकार उतरे? वह भी सत्य और यह भी सत्य। यह भी सत्य और यह भी सत्य। दो नय हैं या नहीं? दोनों नय सत्य हैं। यह अन्दर आयेगा, हों! अर्थ में आयेगा। समझ में आया? कथंचित् सब सत्यार्थ है, ऐसा कहेंगे। समझ में आया? भावार्थ में आयेगा। देखो!

इसलिए सर्व नयों की कथञ्चित् सत्यार्थ का श्रद्धान करने से सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है। यह अर्थ में आयेगा। १४ के अर्थ में अभी आयेगा, हों! यहाँ तो अभी लम्बी बात है। **इसलिए सर्व नयों के...** है न? **यहाँ यह समझना चाहिए कि वह नय है, वह श्रुतज्ञान-प्रमाण का अंश है;...** इसके ऊपर। **सर्व नयों के...** यह शब्द आया है, भाई! यह उन लोगों ने रखा है। एक व्यक्ति ने रखा है न? वह इन्दौरवाला कौन है? मित्र... मित्र। ... रामजी। उसने रखा है। यह शब्द रखा है। देखो! **इसलिए सर्व नयों**

के... हिन्दी में ४०वें पृष्ठ पर है। **सर्व नयों की कथञ्चित् सत्यार्थ का श्रद्धान करने से...** अर्थात् व्यवहार व्यवहार से सत्यार्थ है, इतना। समझ में आया? अभी आयेगा, इसमें तो बहुत सब भरा है। टीका भी बहुत सरस! भावार्थ भी ऐसा। भावार्थ पण्डित (जयचन्द्रजी ने किया हुआ है)। यह एक बोल आया।

अनुभव करने पर बद्धस्पृष्टता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। ज्ञायकस्वभाव चैतन्यप्रभु कायम की असली चीज़, उसके समीप अर्थात् दृष्टि करने से संयोग की दृष्टि उठ गयी, संयोग रहा नहीं। विकार के ऊपर से दृष्टि उठ गयी, विकार रहा नहीं। विकाररहित चिदानन्द की दृष्टि (हुई तो) ऐसा अनुभव सम्यग्दर्शन हो सकता है। आहाहा! है, पीछे है। यह आया है न उसमें, पत्रिका में आया है। कथंचित् का अर्थ व्यवहार है। बिल्कुल नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार है सही, परन्तु निश्चय के आश्रय से उसका नाश होता है। व्यवहार है, इसलिए व्यवहार के आश्रय से निश्चय प्रगट होता है, ऐसा सत्यार्थ का अर्थ नहीं। व्यवहार है, तो व्यवहार के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, ऐसा नहीं। परन्तु व्यवहार है, उसे नहीं है—ऐसा स्वीकार करे कि बिल्कुल है ही नहीं (तो ऐसा नहीं)। नहीं है तो फिर निश्चय कहाँ रहा? समझ में आया? देखो! एक बोल हुआ। कौनसा बोल हुआ? अबद्धस्पृष्ट। पाँच बोल में से एक बोल हुआ।

अबद्धस्पृष्ट—भगवान आत्मा कर्म वस्तु से बद्धस्पृष्ट नहीं। बद्धस्पृष्ट नहीं—बँधा हुआ और संयोग में आत्मा है ही नहीं। बन्ध में और संयोग में है ही नहीं। क्यों? कि बन्ध और संयोग जो क्षणिक है, वह त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव का अनुभव करने से वह बोल असत्यार्थ हो जाता है, झूठा हो जाता है। समझ में आया? अब दूसरा बोल। पहला द्रव्य का आया। अब क्षेत्र का आता है, क्षेत्र।

तथा जैसे मिट्टी का, ढक्कन , घड़ा, झारी, रामपात्र इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है-सत्यार्थ है,... मिट्टी है न? मिट्टी। मिट्टी में उसके ढक्कन घड़ा, झारी आदि भिन्न-भिन्न आकार होते हैं। तो इस अपेक्षा से वह बात—अन्यत्व भूतार्थ है। मिट्टी में अन्य-अन्य पर्याय जो होती है, वह है। समझ में आया? अब क्षेत्र का दृष्टान्त देते हैं। **मिट्टी का, ढक्कन...** ढक्कन करते हैं न, ढाँकणा? **घड़ा, झारी,**

रामपात्र इत्यादि पर्यायों से... भिन्न पर्याय से **अनुभव करने पर...** अर्थात् ज्ञान करने पर **अन्यत्व...** अन्यपना—भिन्न-भिन्नपना, ढक्कन आदि की भिन्न-भिन्न पर्याय है, है।

तथापि सर्वतः अस्खलित (-सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले ऐसे) एक मिट्टी के स्वभाव के... मिट्टी का स्वभाव देखने से। शीतल... शीतल... शीतल... एकरूप स्वभाव देखने से **समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व...** अन्यत्व—अन्य-अन्य मिट्टी में जो झारी आदि की, ढक्कन आदि की पर्याय थी, वह एकरूप मिट्टी के स्वभाव में है ही नहीं। अनेक प्रकार की आकृति मिट्टी की स्वभावदृष्टि करने से वह है ही नहीं। मिट्टी मिट्टी है। तो इस ओर आया—स्वभाव सन्मुख आया। समझ में आया? यह दृष्टान्त क्षेत्र के ऊपर देंगे। **एक मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर...** अर्थात् ज्ञान करने पर **अन्यत्व...** मिट्टी में जो अन्य-अन्य बर्तन की पर्याय भिन्न-भिन्न है, वह एक स्वभाव देखने से असत्य हो जाती है। वह चीज़ कायम नहीं रहती।

उसी प्रकार... उसी प्रकार मिट्टी के दृष्टान्त से **आत्मा का, नारक आदि पर्यायों से अनुभव करने पर...** नारकी का देह है, पाँच सौ धनुष का क्षेत्र व्यंजनपर्याय। नारकी होता है न? पहले नरक से पौने सात धनुष वहाँ रहता है। सातवें नरक में पाँच सौ धनुष। तो उस आकार आत्मा होता है। पर्याय में, हों! क्षेत्र, क्षेत्र आकार। शरीर भिन्न। आत्मा की आकृति होती है। कहते हैं, **नारक आदि...** ऐसे देव, ऐसे मनुष्य, ऐसे पशु, कीड़ी। देखो! कीड़ी का आत्मा अन्दर शरीरप्रमाण आकृति हो जाती है। आकृति। हाथी में हो तो हाथी प्रमाण आकृति (हो जाती है), पाँच सौ धनुष का नारकी हो तो तत्प्रमाण आकृति। समझ में आया? एक हजार योजन का मच्छ हो तो तत्प्रमाण आकृति (होती है)। भिन्न-भिन्न आकृति है न। पर्याय में क्षेत्र में व्यंजनपर्याय में भिन्न-भिन्न आकृति है। तो उन पर्यायों में भिन्न-भिन्न आकृति का ज्ञान करने से अन्य-अन्यपना भूतार्थ है। भिन्न-भिन्न आकृतिरूप से (सत्यार्थ है)। नारकी की आकृति लो, अरे! अभी वर्तमान शरीर लो तो शरीर मोटा हो, फिर क्षय रोग हो तो आत्मा की आकृति बदल जाती है। पहले मोटा शरीर था तो तत्प्रमाण आत्मा की आकृति थी। अपने कारण से आकृति होती

है, हों! पर के कारण से नहीं। और शरीर कृष हो जाये तो आत्मा के प्रदेश की आकृति भी इतनी हो जाती है। अन्य-अन्य आकृति, अन्य-अन्य आकृति—भिन्न-भिन्न आकृति की दृष्टि से वर्तमान पर्याय की दृष्टि से देखो तो वह भिन्न-भिन्न आकृति है। समझ में आया? नारकी लो। देव। एक हाथ, सात हाथ। ऐसी आत्मा की—द्रव्य—वस्तु की आकृति क्षेत्र में ऐसी भिन्न-भिन्न पर्याय हो जाती है। कंथवा में आत्मा देखो तो वह आकृति तत्प्रमाण—शरीरप्रमाण आत्मा की आकृति स्वयं के कारण से है, हों! पर के कारण से नहीं। हाथी में हो तो तत्प्रमाण आकृति। भिन्न-भिन्न है। एक ही शरीर में अन्तर पड़ता है। जन्मते समय अँगुली छोटी थी तो वह आकार था। अब आकृति बदल गयी। वह आकृति क्षणिक आकृति है। क्षणिक आकृति की अपेक्षा से भूतार्थ है।

सर्वत: अस्खलित (सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्मात्र भेदरूप न होनेवाले) एक चैतन्याकार... वह आकृति अब नहीं लेना। चैतन्य असंख्य प्रदेशी एकरूप आकार। चैतन्य प्रदेशी असंख्य प्रदेश एकाकार **आत्मस्वभाव के समीप जाकर...** स्वरूप भगवान असंख्य प्रदेशी एकस्वरूप से आकार है, (उसका) **अनुभव करने पर...** उस आकृति की भिन्न-भिन्नता आत्मा के स्वभाव का अनुभव करने पर रहती नहीं। समझ में आया? यह क्षेत्र का बोल है। पहले द्रव्य का (था), द्रव्य से भिन्न बतलाया। यह अपनी क्षेत्र की भिन्न-भिन्न आकृति से अकेले चैतन्याकार की दृष्टि करने से भिन्न-भिन्न आकृति नहीं रहती। परन्तु भिन्न-भिन्न आकृति की दृष्टि करने से असंख्य प्रदेशी वस्तु चली जाये, यह सत्य है तो वह चली जाती है, ऐसा नहीं है। फिर से।

फिर से। जैसे मिट्टी है तो उसमें ढक्कन, झारी, कलश, लोटा आदि भिन्न-भिन्न आकृति होती है। परन्तु उस मिट्टी का एक स्वभाव देखो तो भिन्न-भिन्न आकृति का नाश होता है, ऐसा है। परन्तु मिट्टी की भिन्न-भिन्न आकृति है, इस अपेक्षा से मिट्टी का एकाकार स्वभाव नाश हो जाता है, ऐसा नहीं। (एकाकार मिट्टी का नाश हो जाये) तो मिट्टी की पर्याय कहाँ से हुई?

उसी प्रकार भगवान आत्मा शरीरप्रमाण आकार (होता है)। शरीर भिन्न है, हों! यहाँ शरीर की बात नहीं। शरीरप्रमाण आत्मा की आकृति है। अन्दर असंख्य प्रदेश की

आकृति हुई है। पतला शरीर, जाडा—स्थूल शरीर, चींटी, कंथवा, जूं... जूं, समझे न ? ... होते हैं न ? कानखजूरा होता है न ? कानखजूरा नहीं ? कितने पैर ! तो उस प्रमाण आत्मा के प्रदेश ऐसे आकार हो गये हैं। उस पैर में भी आत्मा के प्रदेश भिन्न-भिन्न आकृति हो गयी है। वह समय-समय की आकृति है। उस आकृति की अपेक्षा से (सत्य है)। आत्मा, हों ! शरीर नहीं लेना। अपनी वह भिन्न-भिन्न आकृति है। प्रदेश की अपेक्षा से वर्तमान पर्याय अपेक्षा से आकृति है। बिल्कुल है ही नहीं, शून्य है—ऐसी चीज़ नहीं। देखो ! यह सिद्ध करते हैं। वह वेदान्त तो कहता है, कुछ नहीं, बिल्कुल नहीं, जाओ ! ऐसा नहीं। वह आश्रय नहीं, कायम की चीज़ नहीं। वे तो कहते हैं, आकार-फाकार कुछ है ही नहीं। आकार क्या ? सर्वव्यापक एक ही है। ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! बद्धस्पृष्ट भी सिद्ध किया और उड़ा दिया। आकृति सिद्ध की और उड़ा देंगे। समझ में आया ? परन्तु भिन्न-भिन्न आकृति है। देखो न ! नाक, आँख, तत्प्रमाण आत्मा के प्रदेशों की आकृति अन्दर हो गयी है या नहीं ? देखो ! यह नाक। किसी का यहाँ चिपटा हुआ है। तो आकृति आत्मा के प्रदेश का आकार ऐसा हो गया। यहाँ से खुल्ला है तो खुल्ले की आकृति ऐसी हो गयी है। समझ में आया ? किसी का ऐसा है, किसी का ऐसा है। एक-एक नाक में भी ऐसा है। सबके नाक देखो तो सबमें अन्तर है। सबमें अन्तर। तो उसमें आत्मा के प्रदेश की रचना हुई है, उन सबमें अन्तर है। समझ में आया ? तत्प्रमाण आत्मा के असंख्य प्रदेश की वर्तमान पर्याय की भिन्न-भिन्न आकृति की अपेक्षा से आकृति है। है ही नहीं और आकृति थी ही नहीं, आकाश के फूल थे, ऐसा नहीं। इस अपेक्षा से आकृति भूतार्थ कही गयी है। समझ में आया ?

नारक आदि पर्यायों से... नारक आदि अर्थात् चारों गति। उसकी **पर्यायों से अनुभव करने पर...** भिन्न-भिन्न आकृति का ज्ञान करने पर पर्यायों का अन्यपना—भिन्न-भिन्न आकृति का अस्तित्व है। अन्यत्वपना अन्य-अन्य आकृति है। समझ में आया ? **तथापि सर्वतः अस्खलित (सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित् मात्र भेदरूप न होनेवाले) एक चैतन्याकार...** ज्ञानमूर्ति भगवान में यह पर्याय—भिन्न-भिन्न आकृति का अभाव है। समझ में आया ? यह क्षेत्र का दृष्टान्त है। यह तो अन्य अज्ञानी एकान्त आत्मा को सर्वव्यापक कहते हैं और आकृति में अन्तर भी नहीं और कर्म का संयोग भी नहीं और

पर्याय में अशुद्धता भी नहीं। तो यह सिद्ध करते हैं कि है। अशुद्धता है, आकृति में अन्तर है। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा अन्तर चैतन्यस्वरूप असंख्य प्रदेशी एकरूप स्वभाव के ऊपर दृष्टि देने से पर्याय की अनेकता आकृति की है, वह झूठी हो जाती है, आकृति रहती नहीं। समझ में आया? परन्तु आकृति सत्यार्थ है तो त्रिकाल असंख्य प्रदेशी चैतन्य असत्यार्थ हो जाता है, ऐसा नहीं। प्रवीणभाई! समझ में आया या नहीं? यहाँ तो समय-समय की भिन्नता सिद्ध की है और त्रिकाल सिद्ध किया है। दोनों सिद्ध किया है। लोग ऐसा माने बस, आत्मा शुद्ध है, शुद्ध है। बस, आत्मा एक शुद्ध है, अभेद है। ऐसा नहीं चलता। शुद्ध है तो अशुद्धता बिना शुद्धता कहाँ से आयी? पर्याय में आशुद्धता है। इस अपेक्षा से सत्यार्थ है। देखो! कर्म के कारण से है, ऐसा यहाँ सिद्ध नहीं किया। अशुद्धता है, आकृति अपने में है, ऐसा सिद्ध किया है, भाई! पर्यायदृष्टि से भिन्न-भिन्न आकृति अपने में होने की योग्यता है। आहाहा! कितना सिद्ध करते हैं! परन्तु एक चैतन्यप्रभु एकाकार स्वरूप में दृष्टि देने से भिन्न-भिन्न आकृति का लोप हो जाता है। क्योंकि वह कायम की चीज़ नहीं। परन्तु क्षण-क्षण में आकृति का लक्ष्य करने से पूरी असंख्य प्रदेशी एकरूप वस्तु है, उसका अभाव हो जाता है, ऐसा कभी नहीं होता। उसकी दृष्टि में भले अभाव हो जाये, परन्तु वस्तु का नाश नहीं होता। ओहोहो! बहुत सीखना पड़े इसमें। एकान्त (करे कि) देखो! आत्मा को कर्म के साथ व्यवहार से भी सम्बन्ध नहीं। विकार भी नहीं। भाई! उसमें न हो तो विकाररहित और सम्बन्धरहित किसमें करना रहा? करना किस प्रकार रहा? समझ में आया?

जिसका निषेध करना है, वह कोई चीज़ है या नहीं? समझ में आया? व्यवहारनय परिषेधो, निश्चयनय प्रतिषेधक। प्रतिषेधक निश्चय सही, परन्तु व्यवहारनय का विषय है, उसका प्रतिषेध करता है न? है ही नहीं? आकाश के फूल हैं? समझ में आया? गजब बात, भाई! समय-समय की नाड़ी पकड़ी है और फिर स्वभाव के आश्रय से उड़ा दिया है।

तथापि सर्वतः अस्खलित... अस्खलित अर्थात् स्खलना न हो। एक में स्खलना क्या? चैतन्यस्वरूप आकार असंख्य प्रदेशी स्वरूप, उसमें स्खलना अर्थात् दूसरा क्या

रहे ? **आत्मस्वभाव के समीप जाकर...** भगवान आत्मा, जिसमें एकरूप क्षेत्र की दृष्टि...

यह समझाया है क्रम से, हों! पहले अबद्धस्पृष्ट का अनुभव होता है, पश्चात् क्षेत्र से रहित एकाकार का अनुभव होता है, ऐसा है नहीं। समझाने में कैसे समझाना? इन पाँच बोल का अनुभव तो एक समय में होता है। यह तो समझाने की पद्धति कहते हैं कि पहले अबद्धस्पृष्ट हुआ, पश्चात् क्षेत्र की आकृति से रहित हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? पहले—बाद में पाँच बोल लिये हैं या नहीं? अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त। पहले अबद्धस्पृष्ट होता है, पश्चात् क्षेत्र से अन्य-अन्य नहीं, अनन्य होता है, ऐसा है नहीं। यहाँ तो एक समय में पाँच बोल रहित है। उसमें कहा था न? **ऐसे आत्मा की जो अनुभूति, वह शुद्धनय है...** देखो! एकसाथ। देखो! निश्चय से अबद्धस्पृष्ट ऐसे आत्मा की। एक समय में ऐसे आत्मा की **अनुभूति, वह शुद्धनय है, और वह अनुभूति आत्मा ही है; इस प्रकार आत्मा एक ही प्रकाशमान है।** एक समय में है। आहाहा! अभी तो शास्त्र के उकेल की खबर न हो। यह उकेल के बिना व्यवहार किस प्रकार से है, निश्चय किस प्रकार से है... आहाहा! समझ में आया? गड़बड़... गड़बड़ फिर। व्यवहार भूतार्थ है, निश्चय भूतार्थ है। दोनों है। कथंचित् वह भी सत्यार्थ है, कथंचित् यह भी सत्यार्थ है। किस अपेक्षा से? वह तो ज्ञान करने का है। आश्रय करने में व्यवहार अभूतार्थ है। है की अपेक्षा से है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? प्रवीणभाई! समझ में आता है? पर्याय है, आकृति है। यह शरीर नहीं। आत्मा का असंख्य प्रदेशी आकार समय-समय में आकृति-व्यंजनपर्याय भिन्न-भिन्न होती है। उस आकृति की अपेक्षा से पर्याय, पर्याय है। परन्तु चैतन्याकार असंख्य प्रदेश की दृष्टि करने से आकृति उड़ जाती है। स्वभाव में रहती नहीं। अरे! यह क्या? गजब बातें! है और नहीं, है और नहीं। फिर एक पण्डित (थे)। मैंने कहा, यह जड़ है या नहीं? तुम्हारे चन्द्रकान्त थे या नहीं पहले? चन्द्रकान्त। (संवत्) १९९२ के वर्ष में। चन्द्रकान्त आते थे। बेचारे सरल थे। कहा, इस जैनदर्शन में जड़ जगत में है या नहीं? चन्द्रकान्तजी! कहे, मानो तो है और न मानो तो नहीं है। ऐसा जैन कहता है। जैन अनेकान्त कहता है। अरे! एक अपेक्षा से जड़ है, एक अपेक्षा से नहीं। किस अपेक्षा से जड़ है? ऐसे जड़ कहो तो है, न कहो तो नहीं है। ऐसा नहीं, कहा। मनुष्य बेचारा बहुत

नरम था, हों! छोटी उम्र में गुजर गया। छोटी उम्र में गुजर गया। आचार्य था पहले। बहुत बुद्धिवाला था, हों! व्याख्यान में सुनने आता बेचारा। वरना तो आर्य समाज में... व्याख्यान सुनने आता। कहा, ऐसा नहीं, चन्द्रकान्त। तब (क्या है)? आत्मा की अपेक्षा से जड़ नहीं। परन्तु जड़ की अपेक्षा से जड़ है। ऐसे नहीं कि माने तो है और न माने तो नहीं, ऐसा नहीं। वह वाँचा हो न? कथंचित् सत्य और कथंचित् असत्य। वाँचा हुआ बहुत।

फिर वह एक था न? मुनि था। देवराजजी, नहीं? शरीर की ओली के लिये बिच्छू को पैर कटवाता था। बिच्छू हो न? बिच्छू निकले न? तो पैर कटवाता। करडावे समझे? कटवाते थे। शरीर की सहनशीलता मुझे कितनी है? ऐसा एक था। देवराजजी आर्यसमाज का था। त्रिलोकचन्द के बहनोई। मुनि हुआ था। फिर देवराजजी को मैंने पंचाध्यायी दिया। वहाँ उनके मकान में रहते थे न। बेचारा बहुत भद्रिक था, ऐसे वैराग्यी बहुत, वैरागी बहुत। परन्तु वस्तु की खबर नहीं होती। बिच्छू निकले तो ऐसे पैर छुआवे। काटता है या नहीं? कहा, अरे! यह हठ नहीं। यह तो सब हठ है। पहले मार्ग समझो। तो कहे, ऐसा कौनसा शास्त्र है? पंचाध्यायी बड़ा शास्त्र है, कहा। पंचाध्यायी दिया परन्तु उसमें कुछ समझे नहीं। थोड़े दिन रखा और फिर वापस देने आया। मैं तो इसमें कुछ समझता नहीं। पंचाध्यायी में वस्तु की स्थिति तर्क-लॉजिक से बहुत सिद्ध की है। साधारण जनता को पण्डित को, बुद्धिवालों को लॉजिक से सिद्ध किया है। मैं कुछ समझता नहीं। मैंने कहा, हमको भी यहाँ समय नहीं कि तुमको पंचाध्यायी समझायें। बेचारे बहुत भी समझते नहीं यह चीज़। अभी जैनवाले जैन को समझते नहीं। वाडा में पड़े हुए। ५०-५०, ६०-६० वर्ष के पड़े हों तो किस अपेक्षा से व्यवहार, किस अपेक्षा से निश्चय, क्या सत्य है, क्या आश्रय करनेयोग्य है, व्यवहार व्यवहार से है या नहीं, किस प्रकार से है? (कुछ खबर नहीं होती)। ऐसा भी है और ऐसा भी है— ऐसा नहीं।

यहाँ कहते हैं कि आकृति अपेक्षा से समय-समय की पर्याय पर्यायदृष्टि से है। स्वभावदृष्टि से है नहीं। आकृति की दृष्टि से त्रिकाल स्वभाव नहीं, ऐसा नहीं है। वह तो

त्रिकाल है, वह कहाँ जाये? वस्तु सत् है, त्रिकाल एकरूप है, वह कहाँ जाये? वह आकृति तो क्षण-क्षण में भिन्न-भिन्न होती थी, वह स्वभाव की दृष्टि में रहती नहीं। परन्तु आकृति जाये तो त्रिकाल स्वभाव जाता रहे? वह कभी अभूतार्थ नहीं होता। समझ में आया? ओहोहो! कथन पद्धति...

दो बोल कहे। दो बोल कहे—कौन से दो बोल? क्या दो बोल आये? ऐ... धर्मचन्दजी! धर्मचन्दजी उलझन में आ जाते हैं। हम पूछते हैं न तब उलझन में आ जाते हैं। दो बोल कौनसे आये? अबद्धस्पृष्ट में क्या आया? द्रव्य से भिन्न। यह क्षेत्र की आकृति से भिन्न। ऐसा आया। ... बीच में आ जाता है। ...दो बोल आये। एक भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड (को) कर्म के निमित्त का सम्बन्ध है, वह अपेक्षा से है। स्वभाव की दृष्टि अनुभूति करने से (वह सम्बन्ध) नहीं। क्षेत्र का दूसरा बोल आया। क्षेत्र में आकृति भिन्न-भिन्न अपने कारण से है, हों! पर के कारण से कोई बात है ही नहीं। अपने कारण से आकृति भिन्न-भिन्न है। असंख्य प्रदेश की भिन्न-भिन्न आकृति होती है न! नारकी, मनुष्य, देव। देखो! साढ़े तीन हाथ का शरीर हो, मरकर स्वर्ग में जाये तो सात हाथ हो जायेगा। समझ में आया? सात हाथ। आकार, हों! रास्ते में तो ऐसा रहेगा, जैसा यहाँ है। कहाँ सात हाथ की आकृति, नीचे साढ़े तीन हाथ की आकृति। तो आकृति से अन्तर हो, क्षणिक पर्याय की अपेक्षा से। असंख्य प्रदेश चैतन्य भगवान की दृष्टि से देखो तो आकृति-फाकृति सब उड़ गयी। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार पर्याय सत्यार्थ है, परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से वह असत्यार्थ हो जाती है। ऐसे अनेकान्त को भगवान इस प्रकार से सिद्ध करते हैं।

अब तीसरा काल, काल। द्रव्य आया, क्षेत्र आया, अब काल। बाद में भाव। बाद में असंयुक्त। पाँच बोल आयेंगे। **जैसे समुद्र का,...** समुद्र। **वृद्धिहानिरूप...** है, भैया! माणेकचन्दजी? उसमें है? कहाँ है? **जैसे समुद्र का,...** निकालो कहाँ है? वरना बिना भान के चला जायेगा। **जैसे समुद्र का,...** वह मिट्टी का दृष्टान्त पूरा हुआ। **जैसे समुद्र का,...** हिन्दी है? हिन्दी? हिन्दी हो तो पृष्ठ ३८ है, ३८ पृष्ठ। **जैसे समुद्र का,...** बताओ नीचे है। यह पेराग्राफ, यह पेराग्राफ मुझे ख्याल तो आया था कि यह पेराग्राफ भूल गये

हैं। ३८ पृष्ठ। ३० और ८। **जैसे समुद्र का,...** यह पहले आ गया। क्षेत्र का और द्रव्य का। पुस्तक रखी है या नहीं? पूछे तो जवाब दोगे या नहीं? बीड़ी की तम्बाकू कैसी है, यह सब पूछो तो कह दे। अब काल का दृष्टान्त।

काल का अर्थ क्या? एक-एक समय की पर्याय में हानि-वृद्धिरूप पर्याय दिखाई देती है। ज्ञान की, दर्शन की, अगुरुलघुगुण की एक-एक समय की दशा में हानि-वृद्धि दिखती है। हानि-वृद्धि यथार्थ में त्रिकाल के ऊपर दृष्टि देने से हानि-वृद्धि नहीं रहती, यह बतलाना है। **जैसे समुद्र का, वृद्धिहानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर...** समुद्र के किनारे हानि-वृद्धि होती है न? कांठे को क्या कहते हैं? किनारे। **अनियतता (अनिश्चितता) भूतार्थ है-सत्यार्थ है,...** हानि-वृद्धि पर्याय में—किनारे पर होती है, वह सत्यार्थ है। अनियतपना-अनिश्चितपना। देखो! अनियतपना अर्थात् अनिश्चितपना। वह कहता है कि अनियत अर्थात् अक्रम और नियत अर्थात् क्रम। जहाँ शब्द आवे वहाँ भड़के। यहाँ ऐसा नहीं है। ५५वीं गाथा में डाला है। नियत स्वभाव और अनियत स्वभाव डाला है न? पंचास्तिकाय। वह भी इसमें डाला है। वहाँ तो आत्मा का नियत स्वभाव शुद्ध है, उसे नियत कहते हैं; विकार को अनियत कहते हैं। ऐसा कहते हैं। यहाँ भी यह कहा, देखो!

समुद्र का, वृद्धिहानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर अनियतता... अर्थात् एकरूप नहीं रहती। हानि-वृद्धि होती है या नहीं? सिर के ऊपर पानी चला जाये, हों! पहले। पोरबन्दर है न? और घट जाये। अनिश्चितता सत्य है। समुद्र इस ओर आ जाता है, और चला जाता है। ज्वार-भाटा आता है, वह सत्य है। इस अपेक्षा से अनियतपना अनिश्चितपना है।

तथापि नित्य-स्थिर समुद्रस्वभाव के समीप जाकर... स्थिर मध्यबिन्दु में ... **अनुभव करने पर अनियतता (अनिश्चितता) भूतार्थ है-सत्यार्थ है,...** अनिश्चितता झूठी है। त्रिकाल समुद्र का शाश्वत् स्वभाव देखने से हानि-वृद्धि अनियतपना झूठा है। पर्याय की अपेक्षा से है। समुद्र में अनियतपना नहीं। वह तो मध्य में स्थित है। उसका सिद्धान्त आत्मा के ऊपर घटित करेंगे। यह दृष्टान्त हुआ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक - ०४-१०-१९६६
गाथा-१४, प्रवचन - ६६

शुद्धनय से यहाँ अभेदपना बतलाया है, आत्मा में। १४वीं गाथा। पाँच बोल क्या? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और दु:खदशा रहित। द्रव्य में-आत्मा (को) पर कर्म का सम्बन्ध व्यवहार से है। अन्तर स्वभाव देखने से वह व्यवहारिक सम्बन्ध अभूतार्थ है। समझ में आया? शिष्य ने प्रश्न किया था कि महाराज! आप आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, संयुक्तता से रहित बतलाते हो तो ऐसे आत्मा की अनुभूति कैसे हो? क्योंकि दिखते हैं, बन्ध आदि तो स्पष्ट दिखते हैं। कर्म से बद्धरूप, भेदरूप, अनेकरूप, विकाररूप दिखते हैं। उसमें आत्मा का अनुभव कैसे हो? ऐसा शिष्य का प्रश्न था।

कहते हैं कि भाई! ये पाँच बोल हैं, वे कायम टिकनेवाली चीज़ नहीं। वे असत्यार्थ है। कर्म का सम्बन्ध असत्यार्थ है, दु:खरूप दशा असत्यार्थ है, अनेकरूप अवस्था में अनेकपना भासित होता है, वह असत्यार्थ है। वह असत्यार्थ है तो छूट जाता है और त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेकर अनुभूति आनन्द का वेदन हो सकता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अधिक स्पष्टीकरण करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक स्पष्टीकरण कल बहुत आ गया है। कहा न? पहले कहा, देखो!

यह आत्मा पर्याय में—अवस्था—दशा में कर्म का सम्बन्ध वर्तमान-वर्तमान व्यवहार से है। वर्तमान है, उसका ही नाम व्यवहार है। परन्तु उसमें एकस्वरूप आत्मा का ग्रहण नहीं होता। और एक स्वरूप ग्रहण हुए बिना यथार्थ आत्मा ज्ञात नहीं होता। यथार्थ जाने बिना उसे आनन्द की अनुभूति नहीं होती। सूक्ष्म है। ...चन्दभाई! समझ में

आया ? आत्मा... उसमें पाँच बोल कहे। अबद्धस्पृष्ट-कर्म के सम्बन्ध के संयोगरहित। अनन्य अर्थात् क्षेत्र में आत्मा की नारकी, देव आदि की व्यंजनपर्याय—द्रव्य की आकृति अनेक-अनेक होती है, उससे रहित और पर्याय में हानि-वृद्धि होती है, उससे रहित और गुणभेद के अनेकपने से रहित और दुःख की दशा जो विकल्प रागादि है, उससे रहित। ऐसे आत्मा का अनुभव करने से यथार्थ आत्मा जाना गया कहा जाता है। समझ में आया ? ऐसे आत्मा को जानने से आत्मा जाना कहा जाता है। तब आत्मा का अनुभव और आनन्द की दशा उत्पन्न होती है।

शिष्य ने प्रश्न किया कि (अनुभव) किस प्रकार हो ? बद्धस्पृष्ट तो दिखता है न ? कर्म का संयोग दिखता है, रागादि का दुःख दिखता है। भाई ! वह असत्यार्थ है। कायमी स्वभाव की अनुभूति करने से वह छूट जाता है। वह कायम की चीज़ नहीं। कर्म का सम्बन्ध कायम की चीज़ नहीं, विकार का दुःख जो है, वह कायम की चीज़ नहीं, गुणभेद की अनेकता, वह कायम की चीज़ नहीं, पर्याय में हीनाधिक वृत्ति दिखती है, वह कायम की चीज़ नहीं। समझ में आया ? इसलिए पाँच बोल असत्यार्थ होने से स्वभाव-सन्मुख में अनुभूति हो सकती है। क्योंकि वे असत्यार्थ हैं। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय का संयोग है, परन्तु स्वभाव दृष्टि से असत्यार्थ-झूठ हो जाता है। समझ में आया ? एक समय की पर्याय की अपेक्षा से भूतार्थ है, है। परन्तु स्वभाव का अनुभव करने से असत्यार्थ हो जाता है, संयोग छूट जाता है। आहाहा ! पर्याय में राग-द्वेष दुःख है, दुःख है। आहाहा !

रात्रि में कहा था न ? सातवें नरक का दुःख लोग संयोग से देखते हैं। संयोगी दुःख नहीं। समझ में आया ? एक मनुष्य को शूली में पिरोवे, शूली... शूली में, तो लोग संयोग का दुःख देखते हैं। ऐसे आलू-बटाटा। आलू होता है न ? आलू। उसमें सुई धगधगती करके घुसावे तो वह माने तो सही कि जीव तो है। तो उसे दुःख होता है। तो लोग संयोग से दुःख देखते हैं। दुःख की व्याख्या यह है ही नहीं। यह दुःख ही नहीं।

दुःख, आत्मा का आनन्दस्वरूप को चूककर आकुलता उत्पन्न करता है, वह दुःख है। समझ में आया? ऐसा दुःख अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया तो भी वहाँ राग का दुःख था। और सातवें नरक में गया तो भी राग का दुःख था। कहीं सुख नहीं था।

निज आनन्दस्वरूप को भूलकर विकार की दशा का परिणमन, वह स्वर्ग में हो, नरक में हो, निगोद में हो, वह दुःखरूप दशा है—ऐसा पहले सिद्ध करते हैं कि है। परन्तु वह कायम की चीज़ नहीं। अन्तर्मुख आनन्द एकस्वभावी आत्मा दृष्टि में लेने से वह दुःख कृत्रिम संयोग क्षणिक असत्यार्थ होने से नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? दो बोल तो हो गये।

पहले जल का दृष्टान्त दिया न? जल में कमलिनी का पत्र जल के संयोग से देखो तो डूबा हुआ है, संयोगरूप से है। परन्तु उसका स्वभाव देखने से संयोगपना अभूतार्थ है—झूठा है। भगवान आत्मा कर्म का निमित्त और वर्तमान अवस्था का सम्बन्ध पर के ऊपर है, ऐसी दृष्टि से देखने से वह है। स्वभाव में एकाकार अनुभव करने से झूठ है। समझ में आया? दुःख दशा में है। पाँचवें बोल में आयेगा। क्षेत्र में अनेक-अनेक अवस्था आत्मा की व्यंजनपर्याय-आकृति हीनाधिक (होती है)। एक शरीर में हीनाधिक अपने कारण से होती है और एक शरीर को छोड़कर दूसरे में जाये तो भी हीनाधिक आकृति होती है। वह आकृति का होना है। परन्तु एकरूप चैतन्य आकार का अनुभव करने से वह असत्यार्थ हो जाता है। समझ में आया? इसमें समझना... अमृतलालभाई! ऐसा है। परन्तु यह समझे बिना इसे कहीं शान्ति है नहीं। तीन काल में है नहीं।

मुमुक्षु : संक्षिप्त में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संक्षिप्त में कहते हैं, क्या कहते हैं? धीरे-धीरे कहते हैं, संक्षिप्त-संक्षिप्त में कहते हैं, सार-सार कहते हैं। पण्डितजी कहते हैं, इससे अधिक कितना संक्षिप्त हो? बराबर है। इससे अधिक संक्षेप कितना करना? सेठ! आहाहा! भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण द्रव्य है। वस्तु है न? वस्तु। वस्तु है न? पूर्ण वस्तु। उसे कर्म का संयोग है या नहीं? संयोग न हो तो संयोग आश्रय से विकार

और परिभ्रमण नहीं हो सकता। संयोग है, दूसरी चीज़ का संयोग है। तो संयोग की अपेक्षा से देखो तो वर्तमान संयोग है। परन्तु द्रव्यस्वरूप जहाँ त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि हो तो संयोग-बंयोग है ही नहीं। आहाहा!

ऐसे २५-२५ वर्ष के राजकुमार जवान, हों! हजारों रानियाँ हो। ऐसा कहे, माता! अब नहीं, आज्ञा दो। अपने चरणानुयोग में आता है न? प्रवचनसार में चरणानुयोग की शुरुआत में। हे शरीर की जनेता! हे शरीर की जनेता! जन्म देनेवाली। शरीर को। मुझे दिया नहीं। मुझे आज्ञा दे, माँ! मुझे आज्ञा दे। मेरे आनन्दस्वरूप को साधने के लिये मैं निवृत्ति लेता हूँ। आहाहा! माता! यह दुःख अब सुने जाते नहीं। सहे कैसे होंगे? प्रभु! आहाहा! माता! यह दुःख नरक के, चार गति के, निगोद के, माता! सन्त बात करते हैं। सुने नहीं जाते। अरेरे! उस समय कैसे सहन किये होंगे? माता! यह दुःख अब मुझे नहीं चाहिए। आहाहा! माता! आज्ञा दे न, माँ! फिर से दूसरी माँ नहीं करूँगा, हों! आहाहा! हे माँ! फिर से मैं दूसरी माँ नहीं करूँगा, हों! दूसरा अवतार नहीं करूँगा। यह जन्म कलंक... कलंक... कलंक... कलंक... कलंक (है)। आहाहा! माता! एक तुझे रूलाता हूँ, हों! फिर से माँ नहीं करूँगा, माँ! मेरा आत्मा त्रास पाया है। मेरा चित्त कहीं लगता नहीं। समझ में आया?

ऐसे मणिरत्न के पाट हो मकान में, हों! ऐसी शिला न हो। यह क्या कहलाती है तुम्हारे पत्थर की? टाईल्स। उसकी टाईल्स पाँच-पाँच, दस-दस मण की नीलमणि की पाट हो। ऐ... सेठ! तुम्हारे वहाँ तो वे क्या कहलाये? संगमरमर है। संगमरमर है मकान में। वह तो पाँच-पाँच मण की पाट नीलमणि की। जिसमें एक-एक टुकड़े के लाख - लाख रुपये इतने टुकड़े के। ऐसी नीलमणि की पाट मकान में। रानियाँ देखो तो पद्मिनी जैसी, मकान देखो तो अरबों-अरबों रुपये के एक-एक स्तम्भ। माता! मुझे कहीं चित्त लगता नहीं। मैंने चार गति के दुःख प्रभु के निकट सुने। सन्तों के पास मैंने दुःख सुने। माँ! यह दुःख मैंने कृत्रिमरूप से (भोगे), आनन्द का उफान मैंने नहीं लिया और आनन्द से उल्टी दशा की, माँ! मैंने दुःख भोगे, हों! अब मुझे आज्ञा दे। आहाहा! चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में पहले शुरुआत में कुन्दकुन्दाचार्य ने वर्णन किया है, हों! आहाहा!

आज्ञा दो तो संयम आदरूँ, हे माँ! आज्ञा दो तो संयम आदरूँ। हमारा आनन्दस्वभाव हमको बैठा-देखा है। अब हम स्वरूप में स्थिर होने के लिये संयम अंगीकार करेंगे। रानी को कहता है, हे शरीर को रमानेवाली स्त्री! शरीर को रमानेवाली, हों! मुझे नहीं। अब तू आज्ञा दे। हमारी अनादि आनन्द की अनुभूतिरूपी रमणी, उसमें हम रमने जाते हैं। आहाहा! हमारी अनादि अनुभूतिरूपी स्त्री आनन्द, उसकी हम भेंट करने जाते हैं। स्त्री! छोड़ मुझे, आज्ञा दे। आहाहा! समझ में आया? आत्मा आनन्दमूर्ति और उसके विरुद्ध के दुःखों से चार गति के दुःख से उकताया है। समझ में आया? योगसार में आता है न? चार गति के दुःख से डरी। स्वर्ग का भी दुःख है। उस स्वर्ग के संयोग के ऊपर लक्ष्य जाना, वह आकुलता है, माता! आहाहा! संयोग के ढ़ेर पर लक्ष्य जाता है, वहाँ आकुलता उत्पन्न होती है। हमारे भगवान अन्दर है। उसमें लक्ष्य जाने से हमको आनन्द होता है, ऐसी चीज़ मेरी है। आहाहा! समझ में आया? यह चक्रवर्ती के छह खण्ड के राज हो, (जैसे) कफ छोड़े, वैसे छोड़कर जंगल में चले जाते हैं। आहाहा! हमारा भगवान हमारे पास है। हम उसे भूले थे। हम उसे भूले थे। कोई भुलानेवाला भी नहीं। आहाहा! कहो, रतिभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भाई! तेरे क्षेत्र की आकृति के अनेक भाव पर्याय में नारकी में, देव में (हुए)। भाई! तू पौने सात धनुष में जहाँ पहले नरक में उत्पन्न हुआ तो आत्मा की आकृति की वह दशा, सातवें नरक की वह दशा, स्वर्ग की वह दशा, वह सब आकृति वर्तमान क्षणिक है। उसका आश्रय करने से, लक्ष्य जाने से दुःख होता है। इसलिए आत्मा एक चैतन्याकार कायमी एकरूप जिसका स्वभाव, उसके समीप अर्थात् दृष्टि देने से उस कृत्रिम अवस्था की अनेकता है, वह असत्यार्थ होने से नाश हो जाती है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

अब तीसरा बोल अपने काल का आया है। काल का दृष्टान्त दिया था। **जैसे समुद्र का, वृद्धिहानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर...** समुद्र की पर्याय में हानि-वृद्धि, ज्वार-भाटा होता है न? भरती-ओट को तुम्हारे क्या कहते हैं? बाढ़ आती है। पर्याय में ऐसे बढ़-घट, बढ़-घट (हुआ करे)। ऐसे देखने से **अनियतता (अनिश्चितता)**

भूतार्थ है... समुद्र के किनारे ऐसी अनिश्चितता है। **तथापि नित्य-स्थिर...** 'व्यवस्थित' शब्द का अर्थ किया है। पण्डितजी! टीका में नित्य व्यवस्थित शब्द पड़ा है। नित्य व्यवस्थित, नित्य व्यवस्थित। समुद्र का नित्य व्यवस्थित स्वभाव देखो, नित्य स्थिर... स्थिर देखो तो 'समुद्रस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता...' अनिश्चितपना वृद्धि-हानि झूठी है। यह दृष्टान्त हुआ।

इसी प्रकार आत्मा का, वृद्धि-हानिरूप पर्यायभेदों से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है... पर्याय में अनेकता अवस्था उत्पन्न होती है, वह है। परन्तु उसमें पूरा आत्मा पकड़ में नहीं आता। क्या कहते हैं? ओहो! शरीर, कर्म, स्त्री, पुत्र, परिवार तो कहीं रह गये, परन्तु भगवान इस आत्मा में पर्याय की अनियतता—अनिश्चितता है, वह शरणभूत नहीं। क्योंकि अनिश्चितता (एक) समय की पर्याय में पूरा आत्मा आता नहीं और पूरा आत्मा आये बिना यथार्थ अनुभव होता नहीं। समझ में आया?

इसकी पद्धति, इसकी विधि ख्याल में आये बिना भगवान आत्मा का अन्तर प्रयोगरूपी आजमाईश कैसे करे? समझ में आया? यह चीज़ कैसी है पर्याय में, द्रव्य में कैसी है, ऐसा लक्ष्य हुए बिना अनियतता में से लक्ष्य छोड़कर कायम (स्वभाव के ऊपर दृष्टि कैसे करेगा?) **नित्य-स्थिर, नित्य-स्थिर (निश्चल) आत्मस्वभाव के समीप जाकर...** भगवान आत्मा... यह त्रिकाली की बात है, हों! काल की अपेक्षा से। त्रिकाल एकरूप स्वभाव, भगवान एकरूप स्वभाव का आश्रय करके, समीप जाकर—दृष्टि वहाँ लगाकर आत्मा का अनुभव करने पर पर्याय की हानि-वृद्धि अनिश्चितता झूठी है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई!

बापू! तेरे दुःख और तेरे आनन्द की क्या बात करना? परन्तु इसने कभी आत्मा क्या चीज़ है, पर्याय में कितनी और द्रव्य में कितनी, इसका ख्याल किया नहीं। पर की बात तो एक ओर रखो। यह तो शरीर, वाणी, मन, वह तो बाहर कहीं उसके कारण से बहिर लुटंति। वे तो उसके कारण से पलटा करते हैं। भगवान! तेरी पर्याय और तेरा द्रव्य, दो में सब क्रीड़ा है। आहाहा! शरीर, वाणी में तेरा अस्तित्व नहीं तो उसकी बात किसलिए करें? तेरी मौजूदगी पर्याय में क्षणिक में है, परन्तु क्षणिक की मौजूदगी के

आश्रय से पूरा आत्मा तो पकड़ में आता नहीं। पूरा आत्मा पकड़ में आये बिना सत्यता उत्पन्न होती नहीं। सत्यता उत्पन्न अर्थात् सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता नहीं। सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुए बिना आनन्द होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द कहाँ है, इसकी खबर बिना आनन्द कहाँ लूटे? जाये कहाँ? यह स्त्री, पुत्र, परिवार, धूलधमाल। एक क्षण में चलो, उठो।

'चलो काया हमारे संग' ... कहते हैं, 'चलो काया हमारे संग'। तुझे बहुत रखा। आता है न? आनन्दघनजी में कहा था? समझ में आया? है या नहीं यह? आनन्दघनजी में कहीं है। लो, यही आया। 'अब चलो संग हमारे काया, अब चलो संग हमारे...' यह दूसरा तो नहीं हमारे, परन्तु यह तेरी रक्षा की पूरे दिन, नहलाया, खिलाया और सुलाया, खिलाया और पिलाया... आहाहा! अमरचन्दजी! 'अब चलो संग हमारे काया, अब चलो संग हमारे, तोहि बहुत यतन कर राखी, काया अब चलो संग हमारे...' कहो, चन्दुभाई! बहुत यतन किया। दवायें-बवायें की। डॉक्टर है न। हमारे सेठ की बहुत दवा करते हैं। ... क्या कहलाये वह? 'तोहि कारण में जीव सम्हारै बोले झूठ अपारे, चोरी कर परनारी सेवी, झूठ परिग्रह धारे।' यह परिग्रह, झूठ, मुफ्त के पकड़े। यह तेरे नहीं, प्रभु! माणेकचन्दजी! चलो काया साथ अब। कभी देखा है, हम साथ (आये हों)? भान नहीं तुझे? वह काया तो अनन्त छोड़ी। चलो कहाँ? चला जा।

'पट आभूषण... अषनपान नित न्यारे, तेर दिन षट् रस सुन्दर ते सब मल कर डारे।' अच्छे-अच्छे मैसूर खिलाये परन्तु विष्टा हुइ उसमें तो। विष्टा हुई। 'पाट आभूषण... ... अषनपान नित न्यारे, तेर दिन षट् रस सुन्दर, ते सब मल कर डारे काया चलो संग हमारे।' 'जीव सुणो आ रीत अनादि, हे जीव! सुणो यह रीत अनादि, का कहत बारंबारे, मैं न चलूंगी तोरे संग चेतन, पाप-पुण्य दो लारे ... काया चलो संग हमारे...' तेरे साथ तेरे भाव किये, ... मुफ्त का... हम कहाँ चिपटे थे? हम तो भिन्न-भिन्न रहे थे। तेरे साथ चिपका है विकार। समझ में आया? तेरी पर्याय में विकार तेरे साथ चिपका है। चोंट्या को क्या कहते हैं? चिपक गया है। हम तो चिपके ही नहीं, हम तो भिन्न के भिन्न रहे

हैं। पोपटभाई! आहाहा! 'जिनवर नाम सार भज आतम कहा भ्रम संसारे, सुगुरु वचन प्रतीत भई तब आनन्दघन उपकारे' सुगुरु ने कहा, अरे! भगवान! काया तेरी नहीं। बाह्य चीज़ तो नहीं, परन्तु यह पुण्य-पाप की अस्थिरता, यह भी तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा! पर्याय में-अवस्था में हानि-वृद्धिरूप एक है। शरीर, वाणी, कर्म है, वह तो नहीं; अब पर्याय में हीनाधिक दशा है, ज्ञान-दर्शन इत्यादि, तो है। परन्तु उसका लक्ष्य करने से दुःख ही होता है, राग ही उत्पन्न होता है। पर्याय का लक्ष्य करने से, आश्रय करने से तो राग और दुःख ही उत्पन्न होता है। अपना अस्तित्व एक समय का है, एक समय का है, उसका आश्रय करने से दुःख ही उत्पन्न होता है। क्योंकि पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। राग उत्पन्न होता है। कहते हैं कि छोड़ दे पर्याय का लक्ष्य। देखो! समझ में आया?

नित्य-स्थिर (निश्चल) आत्मस्वभाव के समीप जाकर... भगवान आत्मा... आहाहा! शरीर, कर्म, स्त्री, पुत्र, परिवार तो परद्रव्य कहीं रह गये। तेरी पर्याय की मौजूदगी में अनियतता अनिश्चितता की दशा की भी रुचि छोड़। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ दे। कहते हैं कि तेरी इतनी पर्याय का आश्रय करने से दुःख होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कौन पहुँचता है? कोई पहुँचता नहीं। कौन पहुँचता है? शरीर। यह तो एक समय की अवस्था दूसरे समय में आती नहीं। पहुँचे कहाँ? एक समय की अवस्था दूसरे समय में आती नहीं। कहाँ जाये? आहा! समझ में आया? एक समय की अवस्था तेरी तुझमें होने पर भी उसके आश्रय से वह पर्याय दूसरे समय में रहती नहीं। दूसरे समय में (रहती नहीं) तो तुझे क्या करना है? किसका आश्रय लेना है? वह पर्याय है, कौन इनकार करता है? उसमें पूरा आत्मा आया? पूर्ण ज्ञानघन उसमें आ गया? एक समय का आया। तो एक समय में तो पलट जाता है। तो उसका आश्रय

छोड़कर एक स्वभाव शुद्धचैतन्य में दृष्टि लगाने से एक समय की अवस्था झूठ हो जाती है। अन्दर में आती नहीं, अभेद में आती नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! शरीर का शरण नहीं, देव-गुरु का शरण नहीं, मन्दिर का शरण नहीं, भगवान का शरण नहीं, अपनी पर्याय का शरण नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

भगवान आत्मा के अन्तर स्वभाव समीप जाने से अनियतता अभूतार्थ है। वह हानि-वृद्धि की पर्याय एक समय रहेगी, दूसरे समय में नहीं रहेगी। अपने स्वभाव को देखने से वह असत्यार्थ हो गयी। यह द्रव्य की अपेक्षा से। इसमें है नहीं, इस अपेक्षा से। पर्याय पर्यायरूप से भले हो। यह काल का बोल आया। द्रव्य, क्षेत्र, काल। अब भाव।

जैसे सोने का,... सोना... सोना-स्वर्ण। **चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है...** यह गुणभेद है। सोना में गुणभेद है। यह भाव की बात है। गुणभेद है। **तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं, ऐसे स्वर्णस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषणपना अभूतार्थ है...** अभी दृष्टान्त देते हैं, हों! समझ में आया? इसमें भी एक दृष्टान्त दिया है, हों! भाई! अरनाथ का। लो, यही पृष्ठ निकला, यही पृष्ठ निकला। अरनाथ का।

धरम परम अरनाथनो, किम जाणुं भगवंत रे;
स्वपर समय समझावीये, महिमावंत महंत रे। धरम। १.

शुद्धातम अनुभव सदा, स्व समय अेह विलास रे;
परवडि छांहडि जे पडै, ते पर समय निवास रे। धरम। २.

राग और विकल्प में पड़े, वह दु:ख। वह पर की छाया दु:खरूप है। समझ में आया? पश्चात्, ऐसा लिखा, 'भारी, पीला, चिकना...' अपने यहाँ आया है, 'चिकनापन, पीलापन, भारीपन...' आनन्दघनजी अरनाथ की स्तुति करते हैं। चौबीस तीर्थंकर की स्तुति है। उसमें (कहते हैं)।

भारी पीलो चीकणो, कनक अनेक तरंग रे;
परजाय दृष्टि न दीजिये, एक ही कनक अभंग रे। धरम। ४.

अमरचन्दभाई! सोना पीला, चिकना, भारी, वह तो पर्याय अर्थात् भेददृष्टि है,

भेददृष्टि है। भगवान! सोना तो देख, सोना। उसमें भेद है ही नहीं। 'परजाय दृष्टि न दीजिये, एक ज कनक अभंग रे' यह दृष्टान्त। अब यहाँ सिद्धान्त।

इसी प्रकार आत्मा का, ज्ञान, दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है... गुणभेद है। भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण पीकर बैठा है, अभेद चीज़ है। परन्तु उसमें भेद लक्ष्य करने से (अर्थात्) यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह आनन्द है—ऐसे भेद लक्ष्य से भेद पर्यायदृष्टि से है। **तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं...** समझ में आया? **ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है...** भगवान आत्मा में ज्ञान भिन्न, दर्शन भिन्न, आनन्द भिन्न—ऐसा नहीं है। वह तो विकल्प से भिन्न करता था कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह आनन्द है। वस्तु देखो तो भगवान आत्मा भाव का सारा-पूरा भण्डार है। एकरूप भगवान आत्मा की दृष्टि करने से आनन्द की अनुभूति होती है, तो यह भेददृष्टि वहाँ छूट जाती है। गजब बात, भाई! समझ में आया? विशेष विलय... कल कहा था न?

उपजे मोह विकल्प से... यह श्रीमद् का वाक्य है। उनके—श्रीमद् के भी कहाँ अर्थ समझते हैं? ऐसे के ऐसे हाँक रखते हैं सब। ऐई! न्यालभाई!

मुमुक्षु : वह तो भक्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भक्ति कहने पर भक्ति किसकी? आत्मा की या पर की? पर की भक्ति तो राग है। गुरु तो अपना आत्मा निज स्वरूप है। देव आत्मा अपना स्वरूप है। धर्म का भण्डार भी आत्मा है। वस्तु सहावो धम्मो। समझ में आया?

उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार,
अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार।

आहाहा! विकल्प उठावे, अनेक भेद दिखाई दे। पूरा संसार दिखाई दे। ओहोहो! कितना चौड़ा और लम्बा हो गया आत्मा! 'अन्तर्मुख अवलोकते...' भगवान आत्मस्वभाव के समीप जाने से 'विलय होत नहीं वार।' भेद, विकल्प और पूरा संसार नाश हो जाता है। स्वभाव में है नहीं। समझ में आया? यहाँ सम्यग्दृष्टि होने के काल में कहते हैं। आहाहा!

यह भी यहाँ (अरनाथ की स्तुति में) कहा, हों! 'दरसण ज्ञान चरण थकी, अलख सरूप अनेक रे' यह बात ली है। अलख अर्थात् आत्मा। 'निरविकल्प रस पीजिये, सुद्ध निरंजन एक रे'। भेद का लक्ष्य छोड़कर अकेला निर्विकल्प अभेद स्वरूप की दृष्टि करने से निर्विकल्प आनन्द का रस पीना, इसका नाम आत्मा का यथार्थ बोध हुआ कहा जाता है। आहाहा! तब तूने तुझे जाना। तब तूने तुझे जाना। तब तूने तुझे जाना। आहाहा! समझ में आया? यह शब्द आता है न?

परमारथ पंथ जे कहै, ते रंजे इक तंत रे;
व्यवहारे लखि जे रहै, तेना भेद अनन्त रे। धरम। ६

व्यवहार के भेदों का पार नहीं। पर्याय और गुणभेद और राग निमित्त और संयोग और... ओहोहो!

परमारथ पंथ जे कहै, ते रंजे इक तंत रे;
व्यवहारे लखि जे रहै, तेना भेद अनन्त रे। धरम। ६

व्यवहारे लखि दोहिलो, कांई न आवे हाथ रे।

निमित्त का लक्ष्य कर और राग का कर और पुण्य के विकल्प का लक्ष्य कर और पर्यायभेद का लक्ष्य कर।

व्यवहारे लख दोहिलो, कांई न आवै हाथ रे।
शुद्धनय थापन सेवतां, नवि रहै दुविधा साथ रे। धरम। ७

समझ में आया? श्वेताम्बर में हुए हैं। वे भी फिर जरा... वैरागी बहुत थे, तो ऐसे सिद्धान्त को पकड़ लिया था थोड़ा। समझे? कुन्दकुन्दाचार्य की बात अलग है। श्रीमद् ने कहा है कि सैद्धान्तिक ज्ञान आनन्दघनजी और कुन्दकुन्दाचार्य को था। कुन्दकुन्दाचार्य तो आत्मा में बहुत स्थित थे बहुत। आत्मा में बहुत स्थिर थे। श्रीमद् ने लिखा है। श्रीमद् ने इन दो के बोल लिये हैं। कहीं है अवश्य अब। एक लाईन-पंक्ति है। समझे? सिद्धान्तबोध इनको बहुत था। कुन्दकुन्दाचार्य तो आत्मा में बहुत स्थिर थे। ऐसी बात है। आगे कहीं होगा। कुन्दकुन्दाचार्य तो अलौकिक योगी! वे तो जैनदर्शन में ऐसा कोई हीरा पका! ओहो! जैनदर्शन की वस्तुस्थिति जैसी है, वैसी (कही है)। धर्मधुरन्धर

आचार्य! धर्म के स्तम्भ (खड़े) रखे हैं। यह मार्ग है। निश्चय ऐसा है, व्यवहार ऐसा है, निमित्त ऐसा है। सबकी बात (की है)। उन्होंने जो स्पष्टीकरण किया, ऐसी बात अलौकिक है!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा... ओहोहो! गुणभेद के लक्ष्य से भी दुःख उत्पन्न होता है। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु से एक स्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड है। उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे भेद डालने से, भेद का लक्ष्य करने से भी दुःख होता है, विकल्प उत्पन्न होता है, आकुलता होती है। आहाहा! अभी तो वे (कहते हैं), शुभभाव से धर्म होता है। कषाय की मन्दता से धर्म होता है। भगवान! कहाँ रह गयी तेरी चीज़? अरे! तुझे कौन समझावे? तू समझ तो समझे, भाई! कौन समझावे? तीन लोक के नाथ की सामर्थ्य नहीं कि किसी की पर्याय को बदल सके। अनन्त काल में से निकलकर मुश्किल से ५०-६०-७० वर्ष मिले। कहाँ चौरासी के अवतार! कहाँ चींटी, कौआ, कंथवा, वनस्पति, थोर कहाँ था? कहाँ आया? यह बीच में थोड़ा समय है, उसमें यदि आत्मा का कार्य नहीं किया तो कहाँ जायेगा, तेरा पता नहीं लगेगा। समझ में आया? उसमें ऐसे रुक गया और ऐसे रुक गया। अभी तो बाहर में रुक गया। यहाँ तो कहते हैं कि गुणभेद में रुकने से भी आत्मा का पता नहीं लगता। आहाहा!

मुमुक्षु : बाहर की वस्तु तो दूर रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर रह गयी। कैसे भाई? बाहर की (वस्तु) तो दूर रह गयी। आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ ने जैसा शुद्ध देखा, उसमें भेद डालने से गुण का अनेकपना भी देखना, उसमें भी राग की उत्पत्ति होती है। स्वभाव का पता नहीं लगता। स्वभाव क्या है, उसका अनुभव नहीं होता। और दुःख होकर चार गतियों में (भटकता है)। उसमें भी पुण्य बाँधता है। गुणभेद के लक्ष्य से पुण्य बाँधता है। विकल्प है न? ऐसा है, ऐसा है। पुण्य बाँधे। परन्तु मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधता है। आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई! मिथ्यात्व का गधा बड़ा चला। उसके ऊपर इसे बैठाया, फिर शृंगार किया।

.... कुन्दकुन्दाचार्य, पृष्ठ ६६६। 'आनन्दघनजी को सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान तीव्र

था। कुन्दकुन्दाचार्यजी तो आत्मस्थिति में बहुत स्थित थे।' चिह्न किये हैं, लाईन की है। उसमें ६६६ होगा ? उसमें ६६६ पृष्ठ है ? 'कुन्दकुन्दाचार्य और आनन्दघनजी को सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान तीव्र था। निश्चय निर्णय क्या चीज़ होती है। कुन्दकुन्दाचार्यजी तो आत्मस्थिति में बहुत स्थित थे।' जाना जा सकता है या नहीं शास्त्र देखने से ? दूसरे का कुछ निश्चित कर सकते हैं या नहीं ? नहीं किया जा सकता ? नाम का जिसे दर्शन हो, वह सब सम्यग्ज्ञानी नहीं कहे जा सकते। जाओ ! इसमें हाथनोंध होगी न ! हाथनोंध इसी में और इसी में। आनन्दघनजी को सिद्धान्त बहुत तीव्र था। वे श्वेताम्बर सम्प्रदाय में थे।

भगवान आत्मा... कहाँ आया ? देखो ! शरीर, वाणी, मन नहीं, कर्म नहीं, संयोग नहीं, कुछ नहीं। आते-आते गुणभेद रह गये अन्दर विचार में। तो कहते हैं कि आत्मा गुणभेद के विचार में रुकने से पूरा गुणी दृष्टि में आता नहीं। और पूरा गुणी दृष्टि में आये बिना एकरूप स्वभाव की प्रतीति नहीं होती। एकरूप स्वभाव की प्रतीति हुए बिना आनन्द और सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा ! समझ में आया ? यह चार बोल हुए।

पाँचवाँ बोल। **जैसे जल का, अग्नि जिसका निमित्त है...** जल में अग्नि निमित्त है। **ऐसी उष्णता के साथ...** उष्णता के साथ जल का **संयुक्ततारूप-तप्ततारूप-अवस्था से अनुभव करने पर (जल का) उष्णतारूप संयुक्तता भूतार्थ है...** पानी को उष्णता अपनी पर्याय में हुई है, अग्नि निमित्त है। उष्णता वर्तमान देखने से तो संयुक्तता, शीतलता के साथ उष्णता संयुक्त है। शीतलता के साथ संयुक्तता है। इस अपेक्षा से भूतार्थ है एक समय की अवस्था। **तथापि एकान्त शीतलतारूप...** पानी का एक धर्म शीतल है। एक धर्म तो शीतल-ठण्डा है। पानी की शीतलता, एक धर्म **शीतलतारूप जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ) संयुक्तता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है;...** उष्णता है नहीं। यह जल का दृष्टान्त दिया। समझ में आया ? जल में अग्नि का निमित्त। उसकी अवस्था में उष्णता, शीतल स्वभाव के साथ, एकरूप शीतल स्वभाव के साथ उष्णता की पर्याय के सम्बन्ध से संयुक्तपने दिखाई देता है। पर्याय में संयुक्तपने है। परन्तु एकरूप शीतलस्वभाव देखने से वह संयुक्तपना झूठा है। यह दृष्टान्त हुआ। शीतल पड़ा ही है। त्रिकाल शीतल है। समझ में आया ?

एकान्त शीतलतारूप जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर... समीप का अर्थ—वहाँ घुस जाना है ? परन्तु शीतलता पानी का शीतल स्वभाव है, ऐसा लक्ष्य करने से उस उष्णता के साथ संयुक्तता झूठ हो जाती है तेरे ज्ञान में, ऐसा। पानी-जल है। तो जल तो शीतल है। तो शीतल का ज्ञान करने से उष्णता के साथ एक समय की जो संयुक्तता दिखती थी, पानी शीतल है, ऐसा ख्याल करने से उष्णता झूठ हो जाती है। ज्ञान में वह झूठ हो जाती है कि वह संयुक्तता है ही नहीं। समझ में आया ? यह दृष्टान्त (हुआ)।

इसी प्रकार आत्मा का, कर्म जिसका निमित्त है... उसमें (पानी में) अग्नि निमित्त थी। यहाँ कर्म निमित्त है। निमित्त, हों! नैमित्तिक अपना। **ऐसे मोह के साथ...** देखो! मोह। दुःखरूप दशा। मोह-पर में सावधानी का भाव। कर्म निमित्त। अग्नि निमित्त—उष्ण पर्याय। कर्म निमित्त—विकारी पर्याय दुःखरूप। **आत्मा का, कर्म जिसका निमित्त है...** कर्म जिसका, जिसका निमित्त है, **ऐसे मोह...** मोह अपनी पर्याय में उत्पन्न हुआ है, उसमें निमित्त कर्म है। बस। 'मोह के साथ संयुक्ततारूप... पर में सावधानी का भाव, पर में सावधानरूप मोहभाव, संयुक्तता एक समय की पर्याय की अपेक्षा से है। **संयुक्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थ है-सत्यार्थ है,...**

तथापि जो स्वयं एकान्त बोधरूप (ज्ञानरूप) है, ऐसे जीवस्वभाव के... देखो! अब। भगवान तो स्वयं एक धर्म बोधबीजरूप स्वभाव। एक ही स्वभाव उसका। बोधबीज अर्थात् जिसमें से पूर्ण केवलज्ञान प्रगट हो, ऐसा बोधबीज स्वभाव पूरा त्रिकाल एकरूप है। समझ में आया ? जल में अग्नि निमित्त है। उष्णता नैमित्तिक उससे उत्पन्न हुई है। उस क्षणिक अवस्था का उस दृष्टि से व्यवहार से देखो तो उष्णता का संयुक्तपना है। पानी का शीतल स्वभाव देखो तो पानी है, वह तो पदार्थ है। पानी पदार्थ है। अग्नि पदार्थ नहीं, कोयला (पदार्थ) नहीं। उसके शीतल स्वभाव की दृष्टि करो तो उष्णता झूठ है।

इसी प्रकार आत्मा में कर्म जिसका निमित्त है, ऐसा मोह। पर का लक्ष्य करने से, पर में सावधानी होने से जो दुःखरूप राग-द्वेष, मोहदशा हुई, उसमें कर्म निमित्त है।

उपादान अपनी पर्याय में अशुद्धता है, वह है। वह एक समय की दुःखदशा है। समझ में आया? आहाहा! यह दुःख, हों! संयोग नहीं, संयोग नहीं। मार, त्राड़ करे तो उसका दुःख आत्मा को है ही नहीं। मात्र पर में सावधानी की पर्याय, वह दुःखरूप है, बस! भाई! मोह शब्द से इतना बतलाना है। ऐसे सावधान है। ऐसे सावधान नहीं, ऐसे सावधान है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय की दशा में वर्तमान कर्म का जिसे निमित्त है, ऐसा जो मोहभाव, पर में सावधानी, ऐसी दशा—मोह और क्षोभ परिणाम है, पर्याय में है। दुःख है, आकुलता है। परसन्मुख की सावधानी का भाव—एक समय की दशा है। समझ में आया? कर्म से नहीं। कर्म तो निमित्त है। नैमित्तिक तेरी अवस्था तुझमें है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह हो तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो तो हो, इसका प्रश्न ही कहाँ है? यहाँ तो इसके अस्तित्व में होता है, उसमें निमित्त है। क्योंकि उसका स्वभाव मोह—पर में मोह करना, राग-द्वेष करना इसका स्वभाव नहीं। स्वभाव नहीं, इसलिए निमित्त का लक्ष्य करने से सब विकार उत्पन्न होता है। समझ में आया?

मोह के साथ संयुक्ततारूप... जुड़ान **अवस्था से अनुभव करने पर...** है। **तथापि जो स्वयं...** एक धर्म। एक धर्म बोधबीज। समझ में आया? बोधबीजरूप स्वभाव। एक धर्मरूप बोधबीजरूप स्वभाव। एक बोधबीजरूप स्वभाव, एक धर्म बोधबीजरूप स्वभाव। त्रिकाल, हों! आहाहा! जैसे बीज फटकर प्रसव होता है न? फाटे को क्या कहते हैं (हिन्दी में)? बीज फाटे। फटकर। वृक्ष होता है न? भगवान आत्मा केवलज्ञान का बोधबीज स्वभाव एक धर्मरूप है। उसमें से केवलज्ञान फटता है—निकलता है। समझ में आया? एकान्त—एक अन्त—एक धर्म, एक धर्म, एक धर्म। कौनसा एक धर्म? बोधबीजरूप स्वभाव। कैसा है धर्म? बोधबीजरूप स्वभाव। बोधबीजरूप स्वभाव-पिण्ड। चैतन्य बोधबीजरूप स्वभाव है वह तो। पर्याय में पर की सावधानी करके मोह उत्पन्न होता है। एक बोधबीज स्वभाव-समीप जाने से... समझ में आया? उसके

चैतन्यभाव के समीप। वह चैतन्यभाव। वह एक धर्म बोधबीज स्वभाव अर्थात् चैतन्यभाव। समझ में आया ? **जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है।** दु:ख— परसन्मुख की सावधानी, स्वभाव की सावधानी में जाने से झूठ है। आहाहा! समझ में आया ? यथार्थ रखना भी तेरे अधिकार में है और उसे झूठ करना भी तेरे अधिकार में है, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! पर की सावधानी में रहना, उसे यथार्थ रखना, वह भी तेरा अधिकार है और उसे यथार्थ बनाना, वह तेरा अधिकार है। द्रव्यस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने से वह छूट जाता है, असत्यार्थ हो जाता है। ऐसा दोनों में तेरा अधिकार है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? विशेष कहेंगे, समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक - ०५-१०-१९६६
गाथा-१४, प्रवचन - ६७

जीव अधिकार की १४वीं गाथा पूरी हुई। इसका भावार्थ चलता है। देखो! भावार्थ है न? यह जीव अधिकार है। वास्तविक जीव निश्चय कैसा है और उसकी श्रद्धा, अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? वास्तविक। वास्तविक कहने से नित्य। ज्ञायक ध्रुव शुद्ध एक स्वरूपी जो आत्मा, उसे वास्तविक आत्मा कहते हैं। वास्तविक कहो या उसे यथार्थ जीव कहो। ऐसे अन्तर आत्मा की अन्तर्मुख होकर दृष्टि करना, वही प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म की शुरुआत है।

भावार्थ :- आत्मा पाँच प्रकार से अनेकरूप दिखायी देता है :- पहले पाठ में अबद्धस्पृष्ट है, यह बताते हैं। यह एक आत्मा वस्तु है अन्दर तो वह पर्याय में पाँच प्रकार से अनेकरूप भिन्न-भिन्न रूप दिखाई देती है। किस प्रकार से भिन्न-भिन्न? **(१) अनादि काल से कर्मपुद्गल के सम्बन्ध से...** कर्म के परमाणु के निमित्त सम्बन्ध से **बँधे हुए...** निमित्त बँधा हुआ और **कर्मपुद्गल के स्पर्शवाला...** संयोग से संयोग दिखता है। कर्मपुद्गल से बँधा हुआ और उसका संयोग। स्पर्शवाला, उसका अर्थ कि संयोगरूप दिखता है। क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा अनादि काल से उसके—कर्म के सम्बन्ध से दिखता है और कर्म के संयोग से दिखता है।

(२) कर्म के निमित्त से होनेवाली नर, नारक... देवादि भिन्न-भिन्न आत्मद्रव्य की व्यंजन—आकृति पर्याय से भिन्न-भिन्न स्वरूप दिखता है। समय-समय की द्रव्य आकृति पर्याय शरीरप्रमाण अपनी आकृति होती है, वह समय-समय में भिन्न-भिन्न चार गति में दिखती है। **(३) शक्ति के अविभाग प्रतिच्छेद (अंश) घटते भी हैं, और बढ़ते भी हैं...** वर्तमान ज्ञान, दर्शन आदि अवस्था जो है—पर्याय, उसमें-उस पर्याय में शक्ति का अंश घटता भी है और बढ़ता भी है, **यह वस्तु स्वभाव है,...** समझ में आया?

इसलिए वह नित्य-नियत एकरूप दिखायी नहीं देता,... इसलिए वह आत्मा नित्य निश्चय एकरूप नहीं दिखता। समझ में आया? बात तो तीन-चार दिन से चलती है। **(४) वह दर्शन, ज्ञान आदि अनेक गुणों से विशेषरूप दिखायी देता है...** आत्मा दर्शन है, ज्ञान है, आनन्द है, ऐसे अनेक गुणों के विशेषरूप दिखता है। चार बोल (हुए)। **(५) कर्म के निमित्त से होनेवाले मोह, राग, द्वेष आदि परिणामों कर सहित वह सुख-दुःखरूप दिखायी देता है।** यह पाँच बोल हुए। समझ में आया?

यह सब अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप... क्या कहते हैं? आत्मा जो द्रव्य है, वस्तु... वस्तु, उसकी वर्तमान पर्याय में—अवस्था में—होनेवाली दशा अशुद्धद्रव्यार्थिकनय (का विषय है)। क्योंकि द्रव्य ही पर्याय में अशुद्ध होता है। समझ में आया? अशुद्ध पहले कहकर उसे व्यवहारनय कहा। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है, वह वर्तमान कर्म के सम्बन्ध से संयोगरूप दिखता है, आत्मा की आकृति भिन्न-भिन्न दिखती है, अवस्था में हानि-वृद्धि दिखती है, गुणभेद दिखते हैं और सुख-दुःख की कल्पना आदि से दुःखी दिखता है। **यह सब अशुद्धद्रव्यार्थिक...** अवस्था में द्रव्य ही अपनी पर्याय में अशुद्धरूप हुआ है। आत्मा ही अपनी पर्याय में, अशुद्ध द्रव्य अपनी पर्याय में अपराध से ऐसा हुआ है। यह बतलाने के लिये अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा। कर्म के कारण से नहीं। वह तो निमित्त है। अशुद्ध द्रव्य। वस्तु जो त्रिकाल शुद्ध द्रव्य है, वही वर्तमान पर्याय में अशुद्ध द्रव्यरूप से पर्यायपने (परिणमा है), उसे यहाँ अशुद्धद्रव्य कहा। वह **व्यवहारनय का विषय है।** वह तो व्यवहारनय का वर्तमान विषय है। कर्म का सम्बन्ध, आकृति का अनेकपना, पर्याय का हीनाधिकपना, गुण का विशेषपना, सुख-दुःख की कल्पनापना, वह तो वर्तमान अवस्था, व्यवहारनय वर्तमान जो ज्ञान जाने, ऐसे व्यवहारनय का विषय है।

इस दृष्टि (अपेक्षा) से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है। पर्याय में यह सम्बन्ध आकृति, हीनाधिकता, गुणभेदता और सुखदुःखता, इस वर्तमान अवस्था से देखो तो यह बात अवस्थारूप से सत्यार्थ है। समझ में आया? **परन्तु आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ग्रहण नहीं होता,...** यह सिद्धान्त है अब। भगवान आत्मा एक समय में एक स्वभावरूप

दिखता है, वह वर्तमान खण्ड व्यवहारनय से ऐसा दिखता नहीं। व्यवहारनय से तो खण्डरूप, विकाररूप, संयोगरूप दिखता है। वह कहीं उसका वास्तविक स्वरूप नहीं। **परन्तु आत्मा का एक स्वभाव...** एक स्वभाव, शुद्ध स्वभाव, ध्रुव स्वभाव, ज्ञायकभाव, परममूर्ति चैतन्यस्वरूप भाव, **इस नय से...** इस नय से अर्थात् व्यवहारनय से अथवा वर्तमान नय के लक्ष्यवाली दृष्टि से पूरा एकरूप स्वभाव दृष्टि में नहीं आता। समझ में आया? यह सिद्धान्त है यहाँ अब। **परन्तु आत्मा का एक स्वभाव...** वास्तविक ध्रुव चैतन्य नित्य आनन्दकन्द ऐसा एकरूप स्वभाव 'इस नय से...' (अर्थात्) व्यवहारनय से अथवा वर्तमान अशुद्धरूप से द्रव्य परिणमा है, इस दृष्टि से त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव पूर्ण आनन्द व्यवहारनय से ज्ञात नहीं होता।

और एक स्वभाव को जाने बिना... देखो अब सिद्धान्त! भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन चैतन्यबिम्ब ऐसे एक स्वभाव को जाने बिना **यथार्थ आत्मा को कैसे जाना जा सकता है?** भाषा यहाँ यह है। **यथार्थ आत्मा को कैसे जाना जा सकता है?** निश्चय जो आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, इस वर्तमान अवस्था का लक्ष्य करनेवाले व्यवहारनय से उसका शाश्वत् एकरूप स्वभाव ज्ञात नहीं होता। और जब तक यथार्थ ज्ञात नहीं हो, तब तक आत्मा की यथार्थ प्रतीति नहीं होती। समझ में आया? यह बात तो तीन-चार दिन से चलती है। माणेकचन्दजी! समझ में आता है थोड़ा? थोड़ा कहते हैं, हों! आहाहा!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण पूर्ण पूर्ण वस्तु स्वभाव है। वस्तु स्वभाव, ध्रुव स्वभाव। जैसे शीतल बर्फ की शिला है, एकरूप शीतल बर्फ की शिला। उसी प्रकार भगवान आत्मा अविकारी आनन्दरूपी शान्त स्वभाव से एकरूप स्वभाव की शिला आत्मा है। वह पूरी अखण्ड शिला, व्यवहारनय का जो भेदरूप लक्ष्य है, उस नय से ज्ञात नहीं होता। समझ में आया? और एक स्वभाव को जाने बिना वस्तु अखण्ड ज्ञायक चैतन्यस्वरूप है, उसे जाने बिना वास्तविक आत्मा, सत्य आत्मा, निश्चय आत्मा कैसे जाना जा सकता है? समझ में आया? शोभालालजी! समझ में आया या नहीं? सेठ! क्या करे? हाँ करना चाहिए। न समझ में आवे तो भी हाँ करना चाहिए। प्रयत्न तो कभी किया नहीं, दरकार तो की नहीं कि क्या आत्मा? और व्यवहारनय से

ज्ञात नहीं होता, यथार्थ न जाने तो आत्मा जाना कहलाता नहीं। यह क्या है ? क्या कहते हैं यह ?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक देखने में आये। उन भगवान ने यह आत्मा दो नय से जाना और दुनिया को कहा। उस आत्मा में वर्तमान जितना कर्म का सम्बन्ध है, संयोग है, पर्याय-अवस्था में एक आकृति की पर्याय है और एक अर्थपर्याय ज्ञान, दर्शन की हीनाधिक पर्याय है। और गुण का भेद—ज्ञान, दर्शन भेद और सुख-दुःख की कल्पना, उसे भगवान व्यवहारनय से यह है, ऐसा कहा है। क्योंकि वह कायम की चीज़ नहीं। समझ में आया? वह कायम की चीज़ नहीं। कायमी चीज़ की दृष्टि हुए बिना यथार्थ आत्मा प्रतीति में आता नहीं और यथार्थ प्रतीति में आये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई! बराबर है ? यह तो सादी भाषा में रखा है। उसमें गूढ़ है न, तो पण्डित जयचन्द्रजी ने प्रचलित भाषा में भावार्थ (लिखा है)।

परन्तु... वर्तमान पर्याय... शरीर, वाणी, मन नहीं। वह तो मिट्टी-धूल है। उसके साथ कुछ (सम्बन्ध) नहीं। वह तो मिट्टी है। आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में जो अंश है, दो अंश है, दो। उनमें एक वर्तमान अंश जो है, कर्म के सम्बन्ध और राग-द्वेष का अंश है, उसे जाननेवाले नय को व्यवहारनय, वर्तमान नय वर्तमान जाने उसे व्यवहार कहते हैं। उस नय से—उस ज्ञान के अंश से त्रिकाली एकरूप यथार्थ आत्मा जानने में, देखने में, प्रतीति में नहीं आता। और उस नय से ज्ञात नहीं होता तो एक स्वभाव को जाने बिना वास्तविक आत्मा, अखण्ड आत्मा, एकरूप भगवान आत्मा की प्रतीति नहीं होती।

इस कारण... इसलिए **दूसरे नय को...** दूसरे नय अर्थात् व्यवहार से दूसरा नय—व्यवहारनय से दूसरा नय निश्चयनय। **दूसरे नय को - उसके प्रतिपक्षी...** देखो! भगवान आत्मा की एक समय की वर्तमान हालत-दशा के पाँच प्रकार। उन्हें देखनेवाला वर्तमान व्यवहार-व्यवहारनय है। तो उस नय से पूरा पूर्ण आत्मा प्रतीति में आता नहीं। तो उस व्यवहारनय को बतलाया, परन्तु उससे प्रतिपक्ष—व्यवहारनय से विरोधी पक्ष—दूसरा नय। देखो! उसका विरोधी है, प्रतिपक्ष है। व्यवहार से यह नय जो ज्ञान है, शुद्धनय, वह

व्यवहारनय से विरोधी है, प्रतिपक्षी है। **प्रतिपक्षी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को...** भगवान आत्मा एक स्वरूप चैतन्य है, ऐसा पकड़नेवाला, शुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन है, ऐसे नय को **ग्रहण करके...** ऐसे नय को जानकर **एक असाधारण ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर,...** भगवान आत्मा असली अनादि-अनन्त—आदि-अन्तरहित चैतन्यबिम्ब एक असाधारण। उसमें भाग नहीं, भेद नहीं। ज्ञायकमात्र, चैतन्यमात्र प्रभु आत्मा है। ज्ञायकमात्र आत्मा। पहले पर्यायमात्र आत्मा था। समझ में आया ? यह ज्ञायकमात्र आत्मा। आहाहा ! समझ में आया ? शब्द शब्द में बहुत (अर्थ भरा है) । पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। पाठ के अनुसार प्रचलित भाषा में स्पष्टीकरण किया है।

भगवान आत्मा... शरीर, वाणी का लक्ष्य छोड़ दो। वे तुझमें है ही नहीं। तेरी चीज़ वर्तमान दशा में विकार और कर्म के संयोग आदि की अनेकता वर्तमान नय से देखने में आती है, वह तो वर्तमान जितना अंश हुआ। उसमें त्रिकाली एकरूप ज्ञायक दृष्टि में आया नहीं। तो वर्तमान नय से प्रतिपक्ष—विरोधी जो शुद्धनय, जो शुद्धद्रव्यार्थिकनय त्रिकाल ज्ञायक को बतलानेवाला ज्ञान का अंश, जिसे शुद्धद्रव्यार्थिक कहते हैं। समझ में आया ? उसे **ग्रहण करके, एक...** भगवान आत्मा **असाधारण...** दूसरे भेद नहीं **ज्ञायकमात्र आत्मा का भाव लेकर,...** आत्मा का शाश्वत् एकरूप स्वभावभाव लेकर। आत्मा का एकरूप स्वभावभाव के कारण। आत्मा की पर्याय में अनेकरूप भावों को दिखलानेवाला व्यवहारनय है। उससे विरुद्ध शुद्धनय आत्मा के ज्ञायकमात्र एकरूप भाव को लेकर **उसे शुद्धनय की दृष्टि से सर्व परद्रव्यों से भिन्न,...** भाई ! तेरा आत्मा तो सर्व कर्म आदि द्रव्य से भिन्न—पृथक् है। तेरी चीज़ भिन्न है, वहाँ दृष्टि करने की है। सम्बन्ध है, वहाँ दृष्टि करना, वह तो अनादि से करता आया है। कर्म का सम्बन्ध है, ऐसा व्यवहार सम्बन्ध व्यवहार दृष्टि अनादि से करता आया है। उसमें तेरा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। शान्ति हुई नहीं, सम्यग्दर्शन हुआ नहीं। आहाहा !

सर्व परद्रव्यों से भिन्न,... भगवान आत्मा सर्व कर्म आदि द्रव्य से भिन्न, **सर्व पर्यायों में एकाकार,...** चैतन्य असंख्य प्रदेशरूप एकाकार। जो आकृति की भिन्न-भिन्न पर्याय गति में दिखती है, वह तो व्यवहारनय का विषय हो गया। उससे प्रतिपक्ष

त्रिकाली ज्ञायक को बतलाकर **हानि-वृद्धि से रहित,...** उसमें—पर्याय में हानि-वृद्धि थी, व्यवहारनय से। उस हानि-वृद्धिरहित त्रिकाल। **विशेषों से रहित...** गुण का भेद। यह आत्मा है और यह ज्ञान है, दर्शन है, ऐसे भेदरहित। **नैमित्तिक भावों से रहित...** सुख-दुःख की कल्पना कहा था न? कर्म के निमित्त से नैमित्तिक जो विकारी पर्याय राग-द्वेष, सुख-दुःख होते थे, उनसे भी रहित। **देखा जाये...** इस प्रकार से भगवान आत्मा को पाँच भाव से पर से भिन्न देखा जाये तो 'सर्व पाँच भावों से जो अनेकाकारपना है, वह अभूतार्थ है—असत्यार्थ है।' वह झूठ हो गया। आहाहा! समझ में आया? भाई! अन्तर की सम्यग्दर्शन की चीज़ क्या है और उसका विषय क्या, यह इसने कभी सुना नहीं, समझा नहीं। खबर नहीं। ऐसे का ऐसे धर्म हो गया। धर्म कहाँ से हो? धूल में हो? समझ में आया?

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त चैतन्य ज्ञायकभाव परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर ऐसा एकरूप स्वभाव, उसकी दृष्टि करने से वह परद्रव्य से भिन्न आत्मा की क्षणिक आकृति से भिन्न, पर्याय की हीनाधिकता से भिन्न, गुणभेद से भिन्न, विकार-नैमित्तिक विकारी भाव से भिन्न। समझ में आया? गजब! कितनी बात याद रखना इसमें? सेठी! सब याद रखना? हीरा-माणेक की कितनी बात याद रखता होगा? दुकान में चारों ओर की बात। इतने भाव में आया और इतने भाव में बेचा और इतने (रहे)। आत्मा कहीं ऐसी चीज़ नहीं।

अनेक प्रकारता है,... निज स्वरूप शुद्ध एक असाधारण ज्ञायकमात्र भाव को दृष्टि में लेने से वह सत्यार्थ हुआ और पाँच भाव में संयोगीभाव असत्यार्थ हो जायेंगे। यह सम्बन्ध छूट जायेगा। तेरी दृष्टि का विषय रहेगा नहीं। समझ में आया? गजब बात, भाई! ऐसा धर्म होगा? सीधे वह हो तो भक्ति कर लें, यात्रा कर लें, चलो धर्म हो जाये, लो। धूल में भी धर्म नहीं। सुन न अब। लाख यात्रा कर तो शुभभाव है, धर्म नहीं। ऐई! शोभालालजी! दया पाल ले, दान कर दें लाख-करोड़ का। राग मन्द हो तो पुण्य होगा। साथ में मिथ्यात्व है। क्योंकि दृष्टि राग के ऊपर है, निमित्त के ऊपर है, संयोग के ऊपर है, खण्ड के ऊपर है। अखण्ड ज्ञायक चैतन्यदृष्टि क्या है, उसकी दृष्टि हुए बिना उसे

कभी सम्यग्दर्शन की उत्पत्तिरूप धर्म नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन।

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में ऐसा फरमाते थे। यह कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि २००० वर्ष पहले यहाँ भरतक्षेत्र में हुए। संवत् ४९। भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे। समझ में आया? सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ वर्तमान (में) महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। उनके पास गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से यह लाये। अन्दर में बात थी तो सही। परन्तु बहुत निर्मलता हुई (तो) समयसार बनाया। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ बनाये। भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ऐसा कहते हैं, फरमाते हैं, ऐसा है। समझ में आया?

कहते हैं कि पाँच भाव जो बद्धस्पृष्ट आदि संयोग से अनेक प्रकार के दिखते थे, वे एकरूप ज्ञायक चैतन्य पूर्णानन्द प्रभु अनन्त गुण का एकरूप स्वभाव त्रिकाल रहनेवाली चीज़, उसकी दृष्टि करने से, वे पाँच भाव क्षणिक थे, ऊपर तैरते थे, अन्दर प्रवेश नहीं करते थे, वे अभूतार्थ हो गये, झूठे हो गये। समझ में आया? यह वह धर्म की कैसी बात होगी! सेठी!

अब कहते हैं, थोड़ा विशेष स्पष्ट करते हैं। **यहाँ यह समझना चाहिए कि...** पण्डित जयचन्द्रजी, शास्त्र के मूल पाठ में है, उसे प्रचलित भाषा में लोगों को ख्याल में आवे, ऐसी भाषा में अर्थ करते हैं। अमृतचन्द्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य के पाठ में तो गूढ गम्भीर भाव भरे हैं। परन्तु पण्डित जयचन्द्रजी.... पहले टीका की... समझ में आया? परन्तु फिर संस्कृत में से हिन्दी किया। उसका भाव प्रचलित भाषा, लोगों की भाषा में समझाने के लिये उस भाषा में अर्थ करते हैं। 'वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मात्मक है...' एक शब्द। भगवान आत्मा वस्तु, वस्तु है। वह वस्तु है तो अनन्त धर्मात्मक है। वस्तु है तो उसमें अनन्त धर्म बसे हुए हैं, रहे हुए हैं। वस्तु है आत्मा... यह शरीर-बरीर जड़ भी वस्तु है परन्तु भिन्न कहो अभी। भगवान आत्मा अन्दर चैतन्यबिम्ब प्रभु वस्तु है। तो वस्तुस्वरूप अनन्त धर्मस्वरूप है। वस्तु है, उसमें अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण हैं। वस्तु एक है। (उसमें) रहनेवाले अनन्त धर्म, गुण अनन्त हैं।

आत्मा एक है, परन्तु उसमें रहनेवाले गुण, धर्म कहो या स्वभाव कहो, अनन्त हैं। समझ में आया?

वह स्याद्वाद से यथार्थ सिद्ध होता है। अपेक्षा से ज्ञान करने से अनन्त धर्मों का वास्तविक ख्याल हो सकता है। स्याद्वाद-अपेक्षा से। क्या अपेक्षा? देखो! 'आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है।' पहले सामान्य बात की थी। प्रत्येक द्रव्य की, हों! आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है। अनन्त धर्म अर्थात् गुणवाला है, अनन्त स्वभाववाला है, अनन्त पर्यायवाला है। उसमें पर्याय और गुण दोनों लेना। 'आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है।' अनन्त धर्म शब्द से स्वभाव। धर्म शब्द से यह जैन धर्म और अन्य धर्म, ऐसा नहीं। आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रभुत्व ऐसे सामान्य गुण से अनन्त है, विशेष गुण से अनन्त है, पर्याय में भी अनेकता से अनन्त है। समझ में आया? उसकी भूमिका में। द्रव्य-गुण-पर्याय। आत्मा में... वस्तु एक। अनन्त धर्म अर्थात् गुण स्वरूप आत्मा है।

उसके कुछ धर्म तो स्वाभाविक हैं... अब देखो! भगवान आत्मा में कितनी ही शक्तियाँ तो स्वाभाविक शाश्वत् है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व ऐसी शक्तियाँ गुणधर्म तो स्वाभाविक है। **और कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं।** कोई कर्म के निमित्त से अपनी पर्याय में विकारी भाव (होते हैं), वह भी निज धर्म है। धर्म शब्द से आत्मा ने वर्तमान दशा में विकार धारण किया है, इसलिए उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द और उसकी निर्मल आदि पर्याय तो स्वाभाविक है और कितने ही पुद्गलकर्म के संयोग से होते हैं। राग-द्वेष हीनाधिकता, विकारता, सुख-दुःख की कल्पना, वह कर्म के निमित्त से अपनी पर्याय में अपनी मौजूदगी में स्वयं धर्म धारण किये हैं। विकारीरूप धर्म भी आत्मा ने धारण किया है। इसलिए अनन्त धर्मात्मक विकार भी अपना धर्म है। धर्म शब्द से (आशय यह कि) धारण किया है। समझ में आया? परन्तु अन्तर यह कि **जो कर्म के संयोग से होते हैं,...** भगवान आत्मा में कर्म के निमित्त से नैमित्तिक अपनी पर्याय राग-द्वेष, पुण्य-पाप, काम, क्रोध की कल्पना **उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है...** वह तो संसारी

प्रवृत्ति होती है, स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं। क्या कहते हैं, समझ में आया? भगवान आत्मा में कितने ही तो अनादि-अनन्त स्वभाव हैं, कितनी ही निर्मल पर्यायें भी हैं, अपनी पर्याय में अस्तित्व आदि की पर्याय है, वह सब धर्म है, वह स्वाभाविक है। और कितनी ही वर्तमान पर्याय में—अवस्था में कर्म के संयोग से दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के विकल्प शुभाशुभ उत्पन्न होते हैं, सुख-दुःख की कल्पना होती है, इससे आत्मा में संसारी प्रवृत्ति होती है। वह संसारी प्रवृत्ति है। संसारी शब्द से... शोभालालजी! तम्बाकू का व्यापार हो, वह (संसारी प्रवृत्ति)? क्या है? संसारी प्रवृत्ति का क्या अर्थ हुआ? अर्थात् राग-द्वेष। वह प्रवृत्ति। तम्बाकू-बमाकू की नहीं। राग-द्वेष क्या है? राग-द्वेष दुःख है या क्या है? भाई! माणेकचन्दजी! बड़े बापू ऐसे-ऐसे हो जाते हैं। संसारी प्रवृत्ति का अर्थ क्या? कहो।

कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं। कौन? अपने आत्मा में धर्म। धर्म शब्द से विकारी पर्याय। विकारी पर्याय अपने में धारण की है। वह पुद्गलकर्म के संयोग से उत्पन्न हुआ भाव है। **जो कर्म के संयोग से होते हैं, उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है...** अर्थात् वह राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव संसारी प्रवृत्ति है। पर की प्रवृत्ति करते हैं, वह तो बात है ही नहीं। वह तो जड़ है। यहाँ तो उसकी पर्याय में, उसके गुण में और उसके द्रव्य में क्या है, यह बात चलती है। समझ में आया? मोटर-बोटर लेकर ऐसे दबाता है और चलता है, वह प्रवृत्ति संसार नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या (कहा)? वह नहीं। उसमें जो राग-द्वेष (होते हैं), कर्म के निमित्त से राग-द्वेष (होते हैं) वह संसार की प्रवृत्ति है। उसे होता है या नहीं?

यहाँ तो कहना है कि वस्तु है, वह अनन्त धर्मस्वरूप है और वह स्याद्वाद से अपेक्षा से यथार्थ सिद्ध होता है। 'आत्मा भी अनन्त धर्मवाला है। उसके कितने ही धर्म तो स्वाभाविक हैं और कितने ही पुद्गल के संयोग से होते हैं।' अपनी पर्याय में, हों! **जो कर्म के संयोग से होते हैं,...** अपनी पर्याय में। वह तो निमित्त से विकारी बतलाना है, उपाधिक भाव। **उनसे आत्मा की...** उनसे (अर्थात्) पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया-दान, व्रत-भक्ति, सुख-दुःख की कल्पना, कर्म के निमित्त से अपनी पर्याय में-हालत में

ऐसा धर्म अर्थात् विकारी दशायें उत्पन्न होती हैं, वह संसारी प्रवृत्ति है। आहाहा! वह विकारी प्रवृत्ति है, वह संसारी प्रवृत्ति है। तम्बाकू-बमाकू का धन्धा और... ऐई! सेठी! हीरा-माणेक का धन्धा, वह संसारी प्रवृत्ति नहीं, वह तो जड़ की प्रवृत्ति है। जड़ पदार्थ है तो उसकी पर्याय, उसकी प्रवृत्ति व्यवहार है। परमाणु है, वह शाश्वत् चीज़ है। और उसकी पर्याय जो ऐसे-ऐसे होती है, वह उसकी प्रवृत्ति, पर्याय-व्यवहार प्रवृत्ति उसमें है। परमाणु की पर्याय हो—व्यवहार प्रवृत्ति जड़ में है। और आत्मा में पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ, सुख और दुःख की कल्पना, वह सांसारिक प्रवृत्ति आत्मा की पर्याय में है। समझ में आया? है या नहीं उसमें? लिखा है या नहीं? ऐई! प्रवीणभाई! संसार की प्रवृत्ति किसकी? यह क्या लिखा है?

आत्मा अनन्त धर्मवाला है। उसमें है या नहीं? उसमें है या पर में है। **कुछ धर्म तो स्वाभाविक हैं और कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं। जो कर्म के संयोग से होते हैं,...** पहले पुद्गल के कहा था, यहाँ कर्म के संयोग से कहा। **उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है और तत्सम्बन्धी जो सुख-दुःखादि होते हैं, उन्हें भोगता है।** देखो! कर्ता-भोक्ता दो लिये। भगवान आत्मा अनन्त स्वभाव जो त्रिकाली पड़ा है, वह तो त्रिकाली है। उसकी वर्तमान पर्याय में-अवस्था में कितने ही निर्मल है। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि गुण की अवस्था निर्मल है, स्वाभाविक है। और उसकी कितनी ही वर्तमान दशायें विकारी है। दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, पुण्य, पाप, सुख, दुःख, हर्ष, शोक वह विकारी प्रवृत्ति है, वह अपने में अपनी पर्याय में है। अपने धर्म में है। अपने द्रव्य में वह पर्याय धार रखी है। कर्म को आत्मा ने धारा है और कर्म से वह धर्म है, ऐसा नहीं। कर्म से यह धर्म होगा? अपना धर्म कर्म से है? और कर्म का धर्म अपने से है? यह बात तो स्पष्ट करते हैं। इतना तो स्पष्ट करते हैं।

पाँच पर्याय, वह तेरा धर्म है। वर्तमान पर्याय में, हों! परन्तु इतना कि जितनी विकारी पर्याय होती है, वह संसारी प्रवृत्ति तेरी पर्याय में होती है। क्या (कहा)? पैसा-बैसा का काम किया और मकान किया, वह प्रवृत्ति तुम्हारी नहीं।

मुमुक्षु : तो किसकी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ की।

मुमुक्षु : माना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने तो कौन इनकार करे? मकान-बकान बनाये संगमरमर के और ऐसा किया, वह तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं, वह तुमने तीनों काल में किया नहीं। माणेकचन्दजी! सच्ची बात है? यह बड़ा संगमरमर का मकान बनाया न? संगमरमर का।

मुमुक्षु : किसने बनाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ ने। वह जड़ की प्रवृत्ति है।

मुमुक्षु : जड़ को कुछ खबर पड़ती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर का क्या काम है? खबरवाला ही द्रव्य है? और खबर बिना का पदार्थ है ही नहीं? जिसे खबर पड़े, उतने ही द्रव्य हैं और ज्ञान न हो, वह द्रव्य ही जगत में नहीं? ज्ञान नहीं, ऐसे द्रव्य तो आत्मा से अनन्तगुणे हैं। जिसमें ज्ञान नहीं, ऐसे आत्मा से (भिन्न) तो अनन्तगुणे द्रव्य हैं। ज्ञानवाले तो अनन्त द्रव्य है। जिसमें ज्ञान नहीं, ऐसे द्रव्य तो अनन्ताअनन्त गुणे हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कितना स्पष्टीकरण किया है! उस पर्याय की बात बतलानी है न! विकारी पर्याय जो है, कर्म के संयोग से पुण्य-पाप है, अनेकता भासित होती है, वह विकल्प है, राग है। समझ में आया? वह है तो तेरी पर्याय में। धारण तो तूने किया है। भले निमित्त कर्म हो। परन्तु तूने किया है और तुझमें है। यह राग-द्वेष और पुण्य-पाप के परिणाम, वही संसारी प्रवृत्ति है। उससे संसारी प्रवृत्ति होती है, दुःखरूप दशा होती है। समझ में आया? मोटर-बोटर चला नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। माणेकचन्दजी! क्या? चलाते नहीं तुम?

मुमुक्षु : यहाँ नहीं चलाता, सागर में चालाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सागर में चलाता है। सच्चा है? धूल भी नहीं। सच्चा है ही नहीं। कहा न? मोटर के रजकण-रजकण द्रव्य-गुण हैं, वह निश्चय है और उसकी वर्तमान पर्याय है, वह व्यवहार है। वह व्यवहार प्रवृत्ति परमाणु की है, तेरी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ की मोटर पेट्रोल से नहीं चलती और दूसरे की पेट्रोल से चलती है, और एक व्यक्ति ऐसा कहता था। भगवान जाने, भाई! ऐसे गप्पे मारे। एक व्यक्ति ऐसा कहता था, सोनगढ़ की मोटर बिना पेट्रोल के चलती है और मेरी मोटर पेट्रोल से चलती है। अरे! प्रभु! रहने दे ऐसा उल्टा मारना। जगत के परमाणु कायम रहकर, द्रव्य-गुण तो कायम रहते हैं, वह निश्चय है और उसकी पर्याय खण्ड-भेद होती है, वह व्यवहार द्रव्य का है। वह परमाणु का व्यवहार है। वह परमाणु का व्यवहार परमाणु में परमाणु से होता है। आहाहा! समझ में आया? यह अँगुली हिलती है न? अँगुली। देखो! यह होंठ हिलते हैं न? तो यह रजकण है, वह शाश्वत् चीज़ है और ऐसे कंपते हैं, ऐसे होते हैं, वह उसकी पर्याय है। पर्याय, वह परमाणु का व्यवहार है, आत्मा का नहीं।

मुमुक्षु : जीवित आत्मा का....

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवित आत्मा का नहीं। और जीवित (आत्मा) तो सदा जीवित है। शरीर तो सदा ही मुर्दा है। यह तो मुर्दा है, मिट्टी है, मृतक कलेवर है। समझ में आया? तम्बाकू हो न ऊँची? क्या कहते हैं तुम्हारे? सिगरेट। अच्छी में अच्छी तम्बाकू पीवे। क्या कहलाता है खोटी साधारण पीवे वह? ऐसे रखते होंगे, ऐसे रखते होंगे। कहते हैं कि वह अँगुली की प्रवृत्ति है, वह परमाणु की है। और सिगरेट सुलगी, वह परमाणु की प्रवृत्ति है। तेरी नहीं। तुझमें नहीं, तेरी नहीं। तुझमें तो उसका लक्ष्य करके जो राग उत्पन्न हुआ या द्वेष हुआ, वह कल्पना हुई कि ठीक है, उस कल्पना की प्रवृत्ति तुझमें तुझसे होती है। समझ में आया? अरे... अरे...! बड़ा चतुर का पुत्र हो, बड़ा कमा दे कितना ही। ऐ... पोपटभाई! यहाँ कहते हैं कि वह प्रवृत्ति कर नहीं सकता। परमाणु की प्रवृत्ति का व्यवहार परमाणु की पर्याय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! तीनों काल, तीन लोक में। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' दूसरी जगह दूसरा और तीसरी जगह तीसरा, ऐसा होगा? गंगा किनारे

गंगादास, जमुना किनारे जमुनादास होगा ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दास तो हूँ वह हूँ। परन्तु यह तो यहाँ नाम पड़ा, ऐसा कहते हैं। दूसरा कहे तो तुम्हारी सच्ची, यहाँ कहे तो तुम्हारी सच्ची। सच्ची कहाँ हुई ? तुझे भान तो है नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो कितना लिखा है! देखो! भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु अनन्त धर्मात्मक। अनन्त धर्मात्मक में तो गुण और पर्याय दोनों आये। अनन्त धर्मात्मक में तो गुण आये, निर्मल पर्याय अस्तित्व आदि आये और विकारी पर्याय सबको अनन्त धर्मात्मक कहा गया है। अब उसमें जो स्वाभाविक गुण और स्वाभाविक पर्याय है, उसकी तो बात नहीं। **और कुछ पुद्गल के संयोग से होते हैं... उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है और तत्सम्बन्धी जो सुख-दुःखादि होते हैं, उन्हें भोगता है।** संयोग का सुख-दुःख भोगता है, ऐसा नहीं। समझे ? मकान का सुख-दुःख, मकान को भोगना आत्मा में नहीं। मकान को भोगने की पर्याय तो मकान की पर्याय में है। जड़ का भोगना और जड़ का उत्पाद होना और कार्य होना, वह जड़ में प्रवृत्ति होती है। परन्तु उसमें यह मैंने ठीक किया, मैंने ठीक भोगा, ऐसे जो दुःखरूप परिणाम, दुःखरूप परिणाम को आत्मा भोगता है। मकान को नहीं, पैसे को नहीं, स्त्री को नहीं, तम्बाकू को नहीं। समझ में आया ? निज धर्म की बात करनी है न यहाँ ?

कर्म के संयोग से, जो कोई अनन्त धर्मवाले में होता है, अनन्त धर्मवाला आत्मा है, उसमें कर्म के संयोग से अपने में होता है, उसे वह भोगता है। पर को तीन काल में भोगता नहीं। अज्ञानी भी कर्म को और पर को तो भोगता है नहीं। लोग कहते हैं न कि पाँच-पचास लाख मिले, भगवान ने दिये तो भोगते भी हैं। समझ में आया ? मिले तो भोगते हैं। क्या धूल मिले ? मिले हैं कहाँ ? तेरे पास कहाँ है ? वह तो पर में आये हैं। तेरे पास आयी, 'ये मेरे हैं' ऐसी ममता। वह तेरी नैमित्तिक पर्याय, तूने धर्म धारा है। धर्म अर्थात् उस प्रकार का विकारी स्वभाव। और उसका भोक्ता तू है। आहाहा! समझ में आया ? यह, **इस आत्मा की अनादिकालीन अज्ञान से पर्यायबुद्धि है;...** देखो! आत्मा

की अनादि काल से अज्ञान से—निज शुद्ध ज्ञायक आनन्द के भान के अभाव से पर्यायबुद्धि है, अंशबुद्धि है। यह मैंने खाया, यह मैंने पीया। यह क्रिया खाया-पीया तो नहीं, परन्तु उस सम्बन्ध में राग-द्वेष को खाया-पीया। वह पर्यायबुद्धि है।

मुमुक्षु : राग-द्वेष को खाने से पेट भरता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पेट कहाँ भरता था? किसका? पेट ही जड़ है। भरे किसका और डाले किसमें? वह तो मिट्टी है, धूल है। भरे किसका? और खाये कौन? आहाहा!

इस आत्मा को... उस कर्म के संयोग से उत्पन्न हुआ जो विकार, उसकी प्रवृत्ति करता है, उसमें उस सम्बन्धी, उस सम्बन्धी सुख-दुःख का वेदन है; यह अनादि काल के अज्ञान से पर्यायबुद्धि है। यह संसार सिद्ध किया। अज्ञानी पर्याय में ऐसे कर्ता-भोक्ता होता है, वह अज्ञानी का संसार सिद्ध किया। कहो, समझ में आया? उसे अर्थात् ऐसे आत्मा को **अनादि-अनन्त एक आत्मा का ज्ञान नहीं है।** देखो! उसे अनादि-अनन्त भगवान आत्मा एकरूप चिदानन्द का भान नहीं। बस, यह पर्याय में राग करना, राग भोगना, हर्ष करना, हर्ष भोगना, संसार की विकारी परिणति को करना और विकारी को भोगना। यह पर्यायबुद्धि अनादि से यह कर रहा है। ओहोहो!

इसे बतानेवाला सर्वज्ञ का आगम है। इसको बतलानेवाला सर्वज्ञ भगवान, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए। परमात्मा परमेश्वर तीर्थंकरदेव के आगम। सर्वज्ञ के आगम। देखो! सर्वज्ञ के मुख से वाणी निकली, उससे रचित आगम। उसका ज्ञान हो, वह आगमज्ञान। समझ में आया? क्या कहा?

उसे अनादि-अनन्त एक आत्मा का ज्ञान नहीं है। एकरूप चैतन्य हूँ, ऐसी उसकी अनादि से दृष्टि नहीं। अनादि से वर्तमान विकारी और संयोगी सुख-दुःख की कल्पना का भाव है। वह अनादि अज्ञान पर्यायबुद्धि है। वही संसार है और उसमें परिभ्रमण करता है। अनादि-अनन्त एक स्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान नहीं। **इसे बतानेवाला सर्वज्ञ का आगम है। उसमें शुद्धद्रव्यार्थिकनय से यह बताया है कि आत्मा का एक असाधारण चैतन्यभाव है...** देखो! आगमज्ञान में वह ज्ञान ऐसा बतलाया कि आत्मा का एक असाधारण चैतन्यभाव है। भाई! असाधारण भेद बिना एकाकार

चैतन्यस्वभाव त्रिकाल ध्रुव **वह अखण्ड है,...** ज्ञायकभाव त्रिकाल अखण्ड है, जो कायम रहनेवाला है, **नित्य और अनादिनिधन है। उसे जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है।** आहाहा! समझ में आया? ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल एकरूप है, ऐसी दृष्टि करने से एक समय के अंश में सुख-दुःख की कल्पना से प्रवृत्ति थी, वह संसार पर्यायबुद्धि, स्वभावबुद्धि से मिट जाती है। समझ में आया? तेरा स्वभाव अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्य असाधारण नित्य अखण्ड के ऊपर दृष्टि कर। उस आगमज्ञान का शुद्धनय एक भेद है। आगमज्ञान का एक भेद है, वह व्यवहारनय को जानता है। परन्तु उसमें से एक नय इसे जानता है। आगमज्ञान दो नय बताता है। समझ में आया? आहाहा! कितना सरस! स्पष्ट भी कितना सरस!!

बराबर शान्ति से वाँचे नहीं। ऐसा का ऐसा ऊपर-ऊपर से वाँच लिया। व्यवहारनय से ऐसा है और ढींकणा ऐसा है। लो, व्यवहारनय कहा है या नहीं इसमें? परन्तु किस प्रकार से कहा है, सुन तो सही! यह कहेंगे, नीचे कहेंगे। व्यवहार नहीं? व्यवहार नहीं, ऐसा किसने कहा? लाभ कैसे होता है? स्याद्वाद व्यवहारनय है, निश्चयनय की दृष्टि से व्यवहारनय का नाश होता है, ऐसा बताते हैं। उसका नाम स्याद्वाद है। व्यवहारनय से लाभ है और निश्चयनय से लाभ है, ऐसा स्याद्वाद कहता है? तो दो नय कहाँ से पड़े? दो नय से लाभ हो तो दो नय पड़े कहाँ से? दोनों हेय और दोनों उपादेय हो तो दो नय पड़े कहाँ से? एक उपादेय और एक हेय तो दो नय रहे। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारनय है। स्याद्वादरूप से व्यवहारनय है। हेय है। निश्चयनय उससे प्रतिपक्ष है। अखण्ड ज्ञायकभाव की दृष्टि करना, वह उपादेय है। दो नय का विषय है, दो नय है परन्तु एक हेय और एक उपादेय है। उसका ऐसा अर्थ है। दोनों उपादेय हो तो दो हुए कैसे? आहाहा! नय का भिन्नपना रहता नहीं। सर्वसंकरदोष आ जायेगा। दो नय भिन्न-भिन्न रहते नहीं। एक नय दूसरे में मिल जायेगा, एक नय दूसरे में मिल जायेगा। तत्त्व का नाश हो जायेगा। ऐसा होता ही नहीं। दो नय है तो एक हेय है और एक उपादेय है। समझ में आया? अपनी पर्याय में सुख-दुःख की कल्पना, राग-द्वेष होता है, वह है। है, परन्तु ज्ञेय करके हेय करना है। त्रिकाली एकरूप स्वभाव है, उसे ज्ञेय करके उपादेय करना है। ज्ञेय तो दोनों हैं। नय है या नहीं? नय है तो विषय दोनों का है। समझ में

आया? आज तो बहुत अधिकार आया इसमें। कथन बहुत आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। दोनों ज्ञेय। एक हेय, एक उपादेय। नय है न? नय है तो जानने का नहीं? आदरने का एक, छोड़ने का एक। आहाहा! वरना तो विरोध पक्ष का नय किस प्रकार से? व्यवहारनय से प्रतिपक्ष जो शुद्धनय, ऐसा तो पहले कहा? भगवान आत्मा एक समय में परिपूर्ण प्रभु की दृष्टि करना, वह निश्चयनय है। वर्तमान पर्याय के पाँच प्रकार से भेद जानना, वह व्यवहार है। निश्चय से व्यवहार प्रतिपक्ष है, व्यवहार से निश्चय प्रतिपक्ष है। यह एक हेय है तो एक उपादेय है। जाननेयोग्य दोनों हैं। यह स्याद्वाद है। समझ में आया? आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी ने ऐसा स्पष्टीकरण लिखा है। पण्डित का आधार... घर का कहाँ कहते हैं वे? है उसका स्पष्टीकरण करते हैं। पण्डित अपनी बात करते हैं? उसमें क्या कहा है, वह सामान्य में संक्षेप में न समझ सके, इसलिए खोलकर खिलावट करके कहते हैं कि यह चीज़ है अन्दर। समझ में आया?

उसे जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है। देखो! क्या कहते हैं? पर्याय चली जाती है, ऐसा नहीं। रागादि भले चले जायें, परन्तु पर्याय जो अवस्था है, वह अवस्था चली जाती है, ऐसा नहीं। परन्तु पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है। क्या कहा? रागादि है, पुण्य-पाप है, वह (स्वभाव का) आश्रय करने से वे टल जाते हैं, परन्तु वर्तमान पर्याय जो है, वह नाश नहीं होती। पर्यायबुद्धि का—अंशबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है। समझ में आया? इतना अंश मात्र आत्मा है, ऐसा पक्षपात मिटता है। पर्याय तो रहती है अनादि-अनन्त। सिद्ध भी पर्याय है। सिद्ध भी पर्याय है, दूसरा क्या है? केवलज्ञान पर्याय है। केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। पर्याय ठेठ तक अनादि-अनन्त है।

एक व्यक्ति कहता था, पर्याय अभी पीछे कहाँ तक लगेगी? कुछ खबर नहीं... खबर नहीं। जैनदर्शन का परिचय नहीं। तारणस्वामी में भी जैनदर्शन क्या कहता है, इसका परिचय नहीं। ऐसा तारणस्वामी का है। ऐई! शोभालालजी! क्या कहलाता है उसका नाम? डेरियाजी। वे कहे, यह पर्याय की कहाँ तक लप लगेगी? वह मानो कि

पर्याय अर्थात् कोई लप होगी। और बड़े भाषण हजारों लोगों में करे। यह सब सुननेवाले समझे नहीं। उसे कुछ खबर नहीं, कौन जाने क्या होगा? ऐ... सेठ! पर्याय तो अनादि-अनन्त रहती है। सिद्ध में भी पर्याय रहती है। भाषा क्या की? पर्याय का कब पीछा छूटेगा? पर्याय कभी पीछा छोड़ती नहीं? कहे। अरे भगवान! अभी यह जैन में आये, परन्तु द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? (इसकी खबर नहीं होती)। पर्याय का पीछा कब छूटेगा? कहा नहीं, कभी नहीं छूटेगा। सिद्ध में भी पर्याय है, सिद्ध स्वयं पर्याय है। सिद्ध गुण-द्रव्य नहीं। द्रव्य-गुण तो त्रिकाली है। मोक्षपर्याय, वह तो मोक्ष तो पर्याय है। पीछा क्या छूटे? वह तो पर्याय का धर्म है।

यहाँ तो पर्याय का पक्ष अर्थात् निचली दशा में जो संयोगी विकारी पर्याय या निर्मल आदि है, उसके ऊपर जो दृष्टि है, वहाँ से हटाकर त्रिकाल द्रव्य पर ले जाने की है। तो विकार मिट जायेगा और पर्याय का पक्षपात मिट जायेगा। अंश-इतना ही आत्मा है, वह मिट जायेगा। अंश तो है। नय कहाँ चले जायें? विकार मिट जायेगा, परन्तु पर्याय मिट जायेगी? समझ में आया? कितना लिखा है, देखो इन्होंने! पर्याय मिट जायेगी? पर्याय का पक्षपात पहले नीचे दशा में विकार और भेद पड़ते हैं न! उसे मिटाकर यहाँ ले जाये। पर्याय तो सदा रहेगी। उस समय पर्याय को गौण किया है। पर्याय का अभाव कर डाला है? अरे! मुख्य-गौण का कथन समझे नहीं और दोनों में एकान्त ले जाये। इसलिए स्याद्वाद से समझो।

परद्रव्यों से, उनके भावों से... उनके भावों अर्थात् परद्रव्य के। **और उनके निमित्त से होनेवाले अपने विभावों से...** देखो! विकारी पर्याय अपने में होती है। 'अपने आत्मा को भिन्न जानकर...' देखो! पर से भिन्न, कर्म के उदय के भाव से भी भिन्न और अपने में विकार होता है, उससे भी मैं भिन्न हूँ। तीन बोल ले लिये हैं। **परद्रव्यों से, उनके भावों से...** उनके अर्थात् परद्रव्य के भावों से। **और उनके निमित्त से होनेवाले अपने विभावों से...** विकारी पर्याय। **अपने आत्मा को भिन्न जानकर जीव उसका अनुभव करता है,...** आत्मा का अनुभव परद्रव्य से भिन्न, परद्रव्य के भाव से भिन्न और विकार से भिन्न ज्ञायकभाव का अनुभव करता है। **परद्रव्य के भावोंस्वरूप परिणमित**

नहीं होता;... परद्रव्यों के भावोंस्वरूप परिणमता नहीं। अर्थात् विकाररूप परिणमता नहीं। विकाररूप परिणमता नहीं, **इसलिए कर्म बन्ध नहीं होता...** देखो! यह परद्रव्य के भाव, वहाँ विकारी लेना। विकाररूप परिणमता नहीं तो कर्मबन्ध होता नहीं। ऐसे तो पहले तीन लिये। परद्रव्य, परद्रव्य के भाव और परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले भाव। आत्मा इन तीनों से भिन्न है। ऐसी दृष्टि करने से परद्रव्य के भावों स्वरूप, कर्म के निमित्त का लक्ष्य करके जो विकारी भाव होते थे, उसरूप होता नहीं तो कर्मबन्धन होता नहीं। स्वभाव चैतन्यमूर्ति प्रभु का आश्रय करने से, उसका आश्रय करने से विकारी भाव उत्पन्न नहीं होते। विकारी भाव उत्पन्न नहीं होते तो कर्मबन्धन नहीं होता।

और संसार से निवृत्ति हो जाती है। यह परद्रव्य की प्रवृत्ति पहले कहा था न? **संसार से निवृत्ति हो जाती है।** संसार से निृवत्ति का अर्थ विकार से निवृत्ति। पहले कहा था। **आत्मा को संसार की प्रवृत्ति होती है।** यह संसार की निवृत्ति हो जाती है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा... स्त्री, पुत्र, परिवार संसार नहीं। अपनी पर्याय में-अवस्था में राग-द्वेष पुण्य-पाप, काम, क्रोध, मिथ्या भ्रान्ति, यह संसार है। इस पर्यायबुद्धि में-अंशबुद्धि में मिथ्यात्व और राग-द्वेष की प्रवृत्ति होती है। द्रव्यबुद्धि होने से उस विकार की प्रवृत्ति का अभाव हो जाता है। समझ में आया?

इसलिए पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके... देखो! इस कारण वर्तमान अवस्थारूप व्यवहारनय का अभाव करके नहीं, अभाव करके नहीं, गौण करके। अभाव कहाँ से हो? पर्याय तो सदा रहती है। और लक्ष्य करनेवाली भी पर्याय है। **पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके अभूतार्थ (असत्यार्थ) कहा है...** अपना स्वरूप शुद्धस्वभाव का आश्रय लेने से शुद्धता उत्पन्न होती है तो अशुद्धता आदि जो पर के निमित्त से होती थी, उसे असत्यार्थ कहा, 'नहीं' ऐसा कहा। स्वभाव में नहीं और पर्याय में रहेगी नहीं। विकारी पर्याय स्वभाव का आश्रय करने से रहेगी नहीं, छूट जायेगी। समझ में आया? **और शुद्ध निश्चयनय को सत्यार्थ कहकर उसका आलम्बन दिया है।** त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप एकरूप है, वही सत्यार्थ, वही सच्चा है, वही नय सच्चा है, (ऐसा करके अवलम्बन लिवाया है)। पर्याय सच्ची तो है, ऐसा कहा था परन्तु उसमें

प्रवृत्ति करने से राग-द्वेष होता है। पर्यायबुद्धि मिटती है तो द्रव्यबुद्धि होती है। इसलिए द्रव्यबुद्धि में उसे सत्यार्थ कहा और उसका अवलम्बन लिया। शुद्ध का अवलम्बन ले। ध्रुव का अवलम्बन ले तो तुझे धर्म होगा। वरना धर्म होगा नहीं। पर्याय को गौण किया है, पर्याय का अभाव नहीं किया। **वस्तुस्वरूप की प्राप्ति होने के बाद उसका भी आलम्बन नहीं रहता।** वस्तु के स्वभाव-सन्मुख ढलने से जो निर्मलदशा हो गयी, पश्चात् (उसका भी) अवलम्बन रहता नहीं। पूर्ण हो जाने के बाद अवलम्बन कहाँ रहा? जब तक पूर्ण नहीं, तब तक स्वभाव की ओर का झुकाव कराया है। पर्यायबुद्धि का पक्षपात नाश करके त्रिकाल स्वभाव का आश्रय कराया है। पूर्ण हो जाने के बाद स्वभाव का अवलम्बन, एकाग्रता करने का रहता नहीं। फिर शुद्धनय या व्यवहार ऐसा कुछ रहता नहीं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक - ०६-१०-१९६६
गाथा-१४, प्रवचन - ६८

१४ (गाथा की) टीका में ऐसा कहा था कि यह आत्मा है, वह त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव जो ध्रुवस्वभाव है, उसे ही सत्यार्थ-भूतार्थ कहा गया है और पर्याय, भेद को अभूतार्थ असत्यार्थ कहा गया है। समझ में आया? इन दो के बीच की सब चर्चा है। आत्मा, आत्मा में एक समय में दो भाग है। एक पर्याय विकारी, कर्म का संयोग सम्बन्ध आदि और एक त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुव। शुद्ध ध्रुव एक समय का सामान्य ज्ञायकभाव को यहाँ सत्यार्थ और है, ऐसा कहा है और पर्याय के पाँच बोल के भेद नहीं है। निश्चय से नहीं है, व्यवहार से है। पर्याय के लक्ष्य से वे हैं। त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि में वे भेद नहीं। तो नहीं, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? समझ में आता है? हाँ करनी पड़ती है। क्या करे परन्तु पकड़ में नहीं आये तो। प्रयत्न कभी किया नहीं।

मुमुक्षु : अब करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब करेंगे, लो! यह तो सादी भाषा से बात चलती है। ऐसी कोई गूढ़ नहीं।

यह आत्मा शरीर, वाणी तो नहीं। आत्मा में दो भाग—एक सामान्य और एक विशेष। विशेष का अर्थ वर्तमान दशा, वर्तमान हालत। कर्म का सम्बन्ध और विकाररूप भेद आदि वर्तमान दशा। वह वर्तमान दशा व्यवहारनय का विषय है, ऐसा कहा। और त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप है, उसे सत्यार्थ कहकर, वे नहीं है - ऐसा कहा। गौण करके 'नहीं है' —ऐसा कहा।

फिर से, यह तो बहुत ध्यान रखे तब समझ में आये ऐसी चीज़ है। ऐसी नहीं कि झट देकर पैसे मिल गये। यह चीज़ तो ऐसी है (कि) अनन्त काल में इसकी वास्तविक चीज़ की रुचि की नहीं। एक समय में भगवान पूर्ण आनन्दकन्द शक्ति का पूरा सत्त्व।

उसे यहाँ भूतार्थ अर्थात् सच्चा आत्मा कहा है। और पर्याय को व्यवहारनय से वर्तमान की अपेक्षा से है, ऐसा कहा। परन्तु त्रिकाल स्वभाव का अवलम्बन लेने के लिये, उसके अवलम्बन से अपने आत्मा में अनुभूति और सम्यग्दर्शन आदि होते हैं। इसलिए त्रिकाली ज्ञायकभाव को सत्यार्थ कहकर वर्तमान दशा भाव होने पर भी उसे गौण करके 'स्वरूप में है नहीं' ऐसे अविद्यमान कह दिया है। कहो, माणेकचन्दभाई! समझ में आया? यह समझना पड़ेगा, हों! आत्मा का हित करना हो तो। यह दुःखी हो रहा है सर्वत्र भटकने में। समझ में आया? शोभालालजी!

आत्मा का हित करना हो तो यह समझना पड़ेगा। वरना तो अनादि से अहित कर रहा है। भटकता है नरक, निगोद में। आहाहा! वे दुःख सहे कैसे गये? इसने कभी विचार किया नहीं। चौरासी लाख (योनि) में नरक के दुःख। ओहोहो! नारकी को जन्म से सोलह रोग। ३३ सागर की स्थिति सातवें नरक में, हों! और ऐसा बाँधे... यह तो पहले तीन नरक तक। जम... जम परमाधामी। सोया डाले, यहाँ सोया डाले। लोहे के सरिया द्वारा... ऊपर घन मारे। यह संयोग का दुःख लोग देखते हैं। संयोग नहीं परन्तु उसे स्वरूप का भान नहीं तो रागादि में एकत्वबुद्धि है, इसलिए वहाँ दुःखी है। समझ में आया? इसी समय में, ऐसी स्थिति में भी किसी प्राणी ने पूर्व में सुना हो और अन्दर में याद कर ले। वर्तमान अवस्था को गौण करके, लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली ज्ञायक को पकड़कर कोई ऐसी दशा में भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। समझ में आया? और न समझे तो साक्षात् समवसरण में सर्वज्ञ भगवान की वाणी-दिव्यध्वनि इन्द्रों और वह समवसरण और वह पुण्य ऐसा ठाठ तो कभी कहीं होता नहीं। ऐसी वाणी को वे भगवान। वाणी सुनता है। समवसरण में परन्तु मिथ्यादृष्टि रहता है। समझ में आया? बाहर की सुविधा से धर्म प्राप्त करता है, ऐसा नहीं, तथा असुविधा से धर्म रुक जाता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! इसने तो असुविधा, सुविधा में एकताबुद्धि से आकुलता का ही वेदन किया है। समझ में आया? चौरासी लाख अवतार में चाहे तो संयोग की अनुकूलता हो या चाहे तो संयोग की प्रतिकूलता हो, निज स्वभाव अनाकुल आनन्द को भूलकर उसने उसकी पर्याय में आकुलता का—दुःख का ही वेदन किया है।

चौरासी (लाख योनि के) अवतार में। उस दुःख से मुक्त होना हो तो क्या उपाय है, यह बताते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवन्! पर्याय में इतने रागादि आकुलता आदि हो और त्रिकाली ज्ञानानन्द स्वरूप में तो उस आकुलता की गन्ध नहीं। त्रिकाल चैतन्यस्वभाव शुद्ध पदार्थ ध्रुव है, उसमें वह आकुलता और भेद है ही नहीं। तो उसे हम सत्यार्थ कहकर अवलम्बन लिवाते हैं। समझ में आया? भगवान एकरूप ध्रुवस्वरूप, उसका तुम अवलम्बन लो। क्योंकि वह कायम की परिपूर्ण चीज़ है। उसके अवलम्बन से तुझे सुख का पंथ, सुख का रास्ता हाथ आयेगा। समझ में आया?

इसलिए यहाँ ऐसा कहा कि, भाई! प्रभु! तुझमें दो अंश तो हैं। यह शरीर, कर्म-फर्म तो है ही नहीं, वे तो परद्रव्य हैं। तेरी वर्तमान दशा अर्थात् हालत में कर्म के सम्बन्धरूप निमित्त दिखता है, भेद भी है, उस ओर का लक्ष्य (जाता है), आकृति की पर्याय भी समय-समय में भिन्न होती है। पर्याय की हानि-वृद्धि का भाव भी एक समय में होता है, गुणभेद भी दिखता है यह ज्ञान, दर्शन आदि का लक्ष्य करने से। समझ में आया? और दुःख भी मोह-पर की सावधानी में दिखता है। इस अपेक्षा से वर्तमान है। पर्याय की वर्तमान अंश की दृष्टि से है, परन्तु त्रिकाल की दृष्टि कराने के लिये (उसे 'नहीं'-ऐसा कहा)। क्योंकि त्रिकाल एकरूप स्वभाव ध्रुव आनन्दकन्द है। उसका आलम्बन लिवाने को उसे सत्य कहा और पर्याय को गौण करके असत्यार्थ, अभूतार्थ, 'नहीं है'—ऐसा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... है ही नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें नहीं, इस अपेक्षा से। पर्याय में पर्याय है। परन्तु पर्याय का लक्ष्य छुड़ाने के लिये, त्रिकाल का अवलम्बन लेने के लिये, त्रिकाल को सत्यार्थ कहा, वर्तमान को असत्यार्थ कहा। समझ में आया? भाई!

मुमुक्षु : .... इसमें समझ में आये ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बराबर ध्यान रखते हैं। सुनने में ध्यान रखते हैं। यह तो धीरे-धीरे समझ में आये न! और ऐसी कोई भाषा नहीं, यह तो बहुत सादी भाषा है।

वस्तु है न? वस्तु। समझ में आया? पूरा पदार्थ एक समय में अनादि-अनन्त शक्ति का सत्त्व ध्रुव है न। और उसकी समय-समय की वर्तमान अवस्था—हालत—दशा है। तो दशा में भेद, राग, कर्म का सम्बन्ध दिखता है और है। परन्तु वह है, उसके आश्रय से आत्मा का हित (होता) नहीं। समझ में आया? उसका ज्ञान करने से भी हित नहीं। भाई! यह और याद आया। नमः समयसाराय। एक समय की पर्याय का जानना हुआ या उसका आश्रय लिया, उसमें सुख नहीं, उसका ज्ञान भी नहीं। वह ज्ञान, ज्ञान नहीं अकेला। अकेला भेद का ज्ञान, वह ज्ञान ही नहीं। शुद्ध ज्ञायकमूर्ति आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव का ज्ञान करने से ज्ञान भी यथार्थ है और उसका आश्रय करने से सुख भी यथार्थ मिलता है। आहाहा! गजब बातें, भाई! उसे पर्याय में भी ज्ञान नहीं और सुख नहीं। और उसका ज्ञान करनेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं। ओहोहो! पहली गाथा में बहुत आया था, कलशटीका में। समझ में आया? भगवान आत्मा... एक समय की वर्तमान दशा के भेद का, अनेकता का लक्ष्य छुड़ाने के लिये और त्रिकाल एकरूप स्वभाव का आलम्बन और आश्रय कराने के लिये त्रिकाल वस्तु सत्य है, ऐसा कहा और उस पर्याय का अभाव करके 'नहीं' परन्तु लक्ष्य छुड़ाने के लिये गौण करके, 'नहीं' ऐसा कहा गया है। कहो, समझ में आया या नहीं? आहाहा!

देखो! यहाँ तक आया है। **वस्तुस्वरूप की प्राप्ति होने के बाद उसका भी आलम्बन नहीं रहता।** यहाँ तक आया है। क्या कहते हैं? कि भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य आदि-अन्त रहित चैतन्यधातु धारक, आनन्द को धरनेवाला त्रिकाल स्वरूप का आलम्बन, उस ओर का झुकाव पूर्ण दशा न हो, तबतक झुकाव कराया है। समझ में आया? और जितना एकाग्र हुआ, उतना आलम्बन छूट गया। आलम्बन छूट गया अर्थात् प्रगट हो गया। और प्रगट पूर्ण हो गया, फिर आलम्बन रहा नहीं। अन्तर में आनन्द की ओर का झुकाव करने से।

इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि... है? भाई! सेठ! कहाँ आया बताओ, इनको बताओ। **इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिए...** यही बात आयी है। आहाहा! **कि शुद्धनय को सत्यार्थ कहा है, इसलिए अशुद्धनय सर्वथा असत्यार्थ ही है।**

ऐसा नहीं समझना। इसका अर्थ क्या? **इस कथन से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि शुद्धनय को...** तब बताया था। **शुद्धनय को सत्यार्थ कहा है...** एक स्वरूप ज्ञायक ध्रुव आनन्दकन्द रूपी सामान्य स्वभाव को सत्यार्थ कहा। **इसलिए अशुद्धनय सर्वथा असत्यार्थ ही है**—ऐसा नहीं समझना। वर्तमान दशा में मलिनता है, पर्यायभेद है, वे सर्वथा झूठ है, ऐसा नहीं समझना। है ही नहीं, ऐसा नहीं समझना। समझ में आया? अमरचन्दभाई! आहाहा!

ऐसा मानने से वेदान्तमतवाले जो कि संसार को सर्वथा अवस्तु मानते हैं... वेदान्तमतवाले एक ही आत्मा ध्रुव शुद्ध है। बस। पर्याय, राग, कर्म का सम्बन्ध, इन सबको अवस्तु मानते हैं, शून्य मानते हैं, है नहीं—ऐसा मानते हैं। ऐसा जैनदर्शन में हम त्रिकाली शुद्धात्मा का आलम्बन-आश्रय लिवाने के लिये व्यवहार की पर्याय को झूठी-असत्यार्थ कहा, परन्तु सर्वथा असत्यार्थ नहीं मान लेना। उस पर्याय में अशुद्धता नहीं है, भेद नहीं है, कर्म के निमित्त का सम्बन्ध नहीं है—ऐसा नहीं मान लेना। है। समझ में आया? वेदान्त सर्वथा अवस्तु मानता है, उसका सर्वथा एकान्त पक्ष आ जायेगा। बस, अकेला ध्रुव ही है। अशुद्धता, पर्याय का भेद, गुण का भेद है ही नहीं, ऐसा मानने से अकेले शुद्धनय के विषय का एकान्त मिथ्यात्व हो जायेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार ही न हो तो निषेध करना किसका? आहाहा! यदि कर्म के साथ सम्बन्ध न हो तो सम्बन्ध तोड़ना किसके साथ? समझ में आया? पर्याय में अंश में सम्बन्ध है, विकार है। वह तो त्रिकाली सत्य वस्तु की दृष्टि कराने के लिये, क्योंकि उसके आश्रय से स्वयं को शान्ति और आनन्द होता है। इस शान्ति और आनन्द की प्रयोजन की सिद्धि के लिये त्रिकाली चीज़ को सत्य कहा और वर्तमान पर्याय को गौण करके, 'नहीं है'—ऐसा कहा। परन्तु बिल्कुल नहीं है—ऐसा मान ले तो वेदान्त मत जैसा हो जायेगा। कहो, समझ में आया या नहीं? रतिभाई!

उनका सर्वथा एकान्त पक्ष आ जायेगा... क्या एकान्त? कि पर्याय है ही नहीं, अशुद्धता है ही नहीं, निमित्तरूप सम्बन्ध में आत्मा की पर्याय निमित्त के सम्बन्ध में है,

वह है ही नहीं। ऐसा हो जाये तो एकान्त मिथ्यात्व हो जायेगा। क्योंकि है। अपनी दशा में विकार है, दु:ख है। निमित्त के सम्बन्ध की पर्याय में हीनता आदि है। कठिन बात भाई! **और उससे मिथ्यात्व आ जायेगा, इस प्रकार यह शुद्धनय का आलम्बन भी वेदान्तियों की भाँति मिथ्यादृष्टिपना लायेगा।** समझ में आया? एकान्त शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध और अशुद्धता है ही नहीं, पर्याय है ही नहीं, निमित्त है ही नहीं, सम्बन्धरूप, हों! तो एकान्त वेदान्त जैसा मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। समझ में आया? आहाहा! फिर कहे, देखो! तुम कहते हो कि निमित्त नहीं। तो वेदान्त जैसी दृष्टि हो गयी। ऐसा नहीं। यहाँ निमित्त है, राग के सम्बन्ध में है, परन्तु निमित्त से राग होता नहीं। होता है स्वयं से, तब निमित्त है। निमित्त को ऐसा माने कि निमित्त है तो राग होता है। तो निमित्त को माना ही नहीं। आहाहा! गजब! हम तो निमित्त को मानते हैं, इसलिए हम वेदान्ती नहीं। इसमें से निकालते हैं। वरना वेदान्त हो जाता है। अरे! भगवान! सुन तो सही! तेरी लाईन की पद्धति की तुझे खबर नहीं।

यहाँ तो भगवान आत्मा आनन्द का सरोवर, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर-समुद्र प्रभु है। उसकी दृष्टि कराने के लिये पर्याय, राग से और निमित्त से लक्ष्य छुड़ाने के लिये राग और निमित्त सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया? त्रिकाल चैतन्य भगवान स्तम्भ आनन्द का स्तम्भ पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्तम्भ है। उसके ऊपर दृष्टि देने से स्वयं को सम्यग्दर्शन की और शान्ति की—हित की सिद्धि होती है। आहाहा! समझ में आया? समझण घट गयी। द्रव्य-गुण-पर्याय का बोध घट गया, स्वतन्त्र चीज़ क्या है, वह घट गया, फिर यथार्थ धर्म किस प्रकार करना, वह छूट गया। ओहोहो! समझ में आया?

(इस प्रकार यह) **शुद्धनय का आलम्बन भी वेदान्तियों की भाँति मिथ्यादृष्टिपना लायेगा।** इसका अर्थ ऐसा नहीं कि पर्याय में अशुद्धता है तो आत्मा को लाभकारक है। अशुद्धता में निमित्तकर्म है तो कर्म से अशुद्धता हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? अमरचन्दभाई! गड़बड़ सब। अर्जुन का आता है न? अर्जुन मत्स्यवेध करता है न? नीचे नजर करना, तेल में नजर करना और ऊपर मछली घूमती हो, उसे बाण

मारना। वहाँ ऊपर चक्र घूमता हो और वह मछली लोहे की या सोने की, उसकी एक आँख फूटी हो। वह घूमती हो और ऐसे तेल में नजर करके वह जहाँ हो वहाँ लगाना, एकदम। अन्धी आँख के ऊपर। उसमें कुछ पुरुषार्थ नहीं, हों! जड़ की क्रिया होने की हो तो होती है। ऐसे अनन्त गुण आत्मा में पुरुषार्थ करने की कला है। आहाहा!

भगवान आत्मा, उसमें वर्तमान अशुद्धता है, अशुद्धता का निमित्त कर्म भी उसके सामने है, गुणभेद भी है। विकल्प उठता है, यह ज्ञान है, यह दर्शन है, ऐसे भेद भी दिखते हैं। परन्तु इनके आश्रय से, इतने अस्तित्वमात्र से पूरा आत्मा पूर्ण प्रतीति में आया नहीं। और पूरा प्रतीति में आये बिना पूरी सम्यक्... सम्यक् सत् प्रतीति होती नहीं। और सम्यक् सत्य पूरी प्रतीति हुए बिना आनन्द आता नहीं। आहाहा! यह तो न्याय वस्तुस्थिति ऐसी है, इसमें कौन पुकार करे? क्या करे? समझ में आया?

यदि पर्याय में अशुद्धता बिल्कुल है ही नहीं, ऐसा माने तो एकान्त मिथ्यात्व है और अशुद्धता है, व्यवहार है, वह मुझे लाभदायक है, (ऐसा माने) वह भी मिथ्यादृष्टि है। यहाँ तो अशुद्धता और कर्म के निमित्त का सम्बन्ध और भेद है, इतना स्वीकार। व्यवहारनय इतना विषय करता है, उसका स्वीकार है, बस इतना। उसे असत्यार्थ कहने में त्रिकाल के ऊपर दृष्टि कराने और उसके (विकार-भेद की) ऊपर से दृष्टि उठा लेना और त्रिकाल द्रव्य में दृष्टि कराने को, वे असत्यार्थ है, (उन्हें) गौण करके झूठा कह दिया है। और त्रिकाल ज्ञायक को मुख्य करके सत्य कहने में आया है। सेठी!

ओहोहो! देखो! **इसलिए...** अब यहाँ आया। बहुत पत्रों में इसका आधार देते हैं। **इसलिए सर्व नयों की कथञ्चित् सत्यार्थ का श्रद्धान करने से सम्यक्‌दृष्टि हुआ जा सकता है।** यह आधार देते हैं। अरे! सोनगढ़ी व्यवहार को मानते नहीं। अरे! भगवान! सुन तो सही। तुझे व्यवहार और निश्चय की खबर नहीं। समझे? ऐसा कि अकेला शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध है और अशुद्धता है ही नहीं। परन्तु अशुद्धता नहीं, ऐसा कौन कहता है? तू तो कहता है कि व्यवहार है, वह लाभदायक है, उसे तू व्यवहार मानता है। ऐसा नहीं। समझ में आया? यह शब्द रखते हैं। अभी आया था। वह है न दौलतराम कोई इन्दौर का। पण्डितजी उसके साथ थे न! मित्र है न? यह प्रश्न रखा था। देखो! इसलिए

सम्यग्दृष्टि अकेला शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध माने, ऐसा नहीं। अशुद्धता भी मानता है। परन्तु अशुद्धता तो पर्याय में है, ऐसा जानता है। समझ में आया? जानना छोड़ दे, ऐसा नहीं। जानना छोड़े तो... वस्तु है तो सही, अशुद्धता है। उसका लक्ष्य छोड़कर द्रव्य के ऊपर लक्ष्य देना है, इस कारण से पर्याय को अशुद्धता को गौण करके असत्यार्थ कहा है। भारी झगड़े जगत के। शास्त्र में वाद... आहाहा!

इसलिए सर्व नयों के... अर्थात् व्यवहारनय, निश्चयनय, शुद्धनय, अशुद्धनय, अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय **कथंचित् प्रकार से सत्यार्थपने का...** किसी अपेक्षा से सत्य है। व्यवहारनय का विषय भी सत्य है। पर्याय के लक्ष्य में जानने की अपेक्षा से सत्य है। आदरने की अपेक्षा से सत्य नहीं। ईश्वरलालजी! ईश्वरलालजी के गाँव में भी बड़ी गड़बड़ है। गाँव-गाँव में गड़बड़ खड़ी हुई है। बेचारे जिस मार्ग में चलते थे, उसमें बीच में पड़े या नहीं, ऐसा मार्ग नहीं। एक व्यक्ति कहता था यहाँ कि हम जिस मार्ग में चलते थे, उसमें बीच में कहे, ऐसा नहीं। अमरचन्दभाई! यहाँ तो बहुत लोग आते हैं न। अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तू चलता था, वह उल्टा रास्ता था। आहाहा! भगवान! तेरी मुडी-पूँजी तो अनन्त आनन्द से भरपूर अन्दर है। वस्तु के स्वभाव में दृष्टि देने से आनन्द की, शान्ति की, श्रद्धा की, चारित्र की, ध्यान की और केवलज्ञान आदि की सब पर्यायें त्रिकाली द्रव्य में से आती है। इसलिए त्रिकाल द्रव्य को सत्यार्थ कहकर आलम्बन लिवाया है। और पर्याय को असत्यार्थ कहकर गौण करके, 'नहीं' ऐसा कहा है। परन्तु है ही नहीं, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? सर्वथा नहीं। त्रिकाल सत्य की अपेक्षा से उसे असत्य कहा। स्वयं की अपेक्षा से सत्य है। ओहोहो!

अपने द्रव्य की अपेक्षा से अपना द्रव्य है। अपने द्रव्य की अपेक्षा से दूसरा (द्रव्य) अद्रव्य है। उसके द्रव्य की अपेक्षा से वह द्रव्य है। इसकी अपेक्षा से वह अद्रव्य है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा की वर्तमान दशा में रागादि, दुःख आदि है। बिल्कुल शुद्ध है... शुद्ध है, केवलज्ञान है, ऐसा नहीं। समझ में आया? पर्याय में केवलज्ञान है, शुद्ध है, निर्लेप है—ऐसा है नहीं। पर्याय तो संसारी विकारी पर्याय अशुद्ध है। परन्तु उस अशुद्ध का लक्ष्य करने से अशुद्धता ही उत्पन्न होती है, दुःख ही उत्पन्न होता है। विकल्प

उत्पन्न होता है, ऐसा कहो या दु:ख उत्पन्न होता है, ऐसा कहो। यह तो अनादि काल का प्रवाह है। उस अशुद्धता के एक अंश को, त्रिकाल द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेने के लिये उसे (त्रिकाल को) ही सत्य कहकर, उसे असत्यार्थ गौण करके, 'नहीं' ऐसा कह दिया है। पूर्ण स्वभाव का आलम्बन हो गया, प्राप्ति (हो गयी) पश्चात् यह असत्यार्थ है और यह सत्यार्थ है, ऐसा रहता नहीं। ओहोहो! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? प्रवीणभाई! है न पुस्तक? समझ में आया?

देखो! यह वेदान्त के सामने भी सब बात है इसमें। वेदान्त बिल्कुल पर्याय मानता नहीं, अशुद्धता मानता नहीं, भेद मानता नहीं, गुणभेद मानता नहीं, सर्वव्यापक मानता है। एकदम एकान्त मिथ्यादृष्टि है। इस अपेक्षा से यहाँ असत्यार्थ नहीं कहा है। पर्याय में है, राग है, अशुद्धता है, निज क्षेत्र प्रमाण आत्मा है। निज क्षेत्र प्रमाण आत्मा है, सर्वव्यापक नहीं। परन्तु उसके त्रिकाली शुद्धस्वरूप की दृष्टि करने से सम्यक् सत्य पूर्ण सत्य प्रतीति में आता है। पूर्ण सत्य प्रतीति में आने पर सत्य जहाँ पूर्ण प्रतीति में आया तो साथ में आनन्द का अनुभव भी आया। समझ में आया? पूर्ण सत्य का दृष्टि में स्वीकार हुआ तो अतीन्द्रिय आनन्द की व्यक्तता, आनन्द की दशा का अनुभव भी हुआ। वह द्रव्य के आश्रय से होता है, पर्याय के आश्रय से ऐसा नहीं होता। इस कारण से पर्याय को, अशुद्धता को गौण करके अशुद्ध कहा।

सर्व नयों की कथञ्चित् सत्यार्थ का... व्यवहारनय भी सत्यार्थ है। व्यवहार सत्यार्थ है, इसका अर्थ, व्ययहार से निश्चय होता है, ऐसा इसका अर्थ नहीं। यह गड़बड़ी इसमें है। व्यवहार को भी सत्यार्थ इसमें कहा है, देखो! व्यवहार सत्यार्थ नहीं? पर्याय नहीं? अशुद्धता नहीं? राग-कषाय की मन्दता सत्यार्थ नहीं? है। परन्तु 'है' इतना सत्यार्थ मानना। परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं कि व्यवहार से आत्मा का निश्चय होता है और व्यवहार से धर्म होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! भारी गड़बड़! नय के ज्ञान के डोरियाँ छूटने के लिये कहे, वहाँ बन्धन में पड़ गये। श्रीमद् ने एक पत्र में लिखा है। श्रीमद् के पत्र में लिखा है, हों! नयों का ज्ञान छूटने के लिये कहा है, वहाँ गले में फाँस दोरडा (लगा लिया)। व्यवहार सत्यार्थ है, ऐसा कहा तो उसे पकड़ लिया।

इसलिए सर्व नयों की... सर्व नय शब्द से व्यवहार भी आया। कथंचित् सत्यार्थ है। पर्याय अपेक्षा से सत्यार्थ है। राग राग है, कर्म का निमित्त सम्बन्ध भी है, व्यवहारनय से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध व्यवहारनय का विषय है। परन्तु है तो आश्रय करनेयोग्य है और उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अकेले अंश की आस्था करे तो मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि पूर्ण सत्य दृष्टि में आया नहीं। अंश को पूरा माना तो मिथ्यादृष्टि हुआ। समझ में आया?

करने से सम्यक्‌दृष्टि... देखो! यहाँ वजन है। प्रत्येक को सच्चा मानने से सम्यग्दृष्टि होता है। प्रत्येक को अर्थात् व्यवहार भी है, निश्चय भी है, भेद भी है, अभेद भी है, एक भी है, अनेक भी है, पर्याय भी है, द्रव्य भी है—ऐसा सत्यार्थ अर्थात् प्रत्येक है, ऐसा जानना। आदरणीय है या नहीं, ऐसा प्रश्न नहीं। वह अलग विषय है। समझ में आया? आदरणीय तो व्यवहारनय का विषय हेय है और त्रिकाल का विषय उपादेय है। परन्तु हेय भी ज्ञेयरूप से है या नहीं? इस अपेक्षा से सत्यार्थ कहा है। आदरणीय अपेक्षा से सत्यार्थ नहीं। कितना याद रखना इसमें? इसकी अपेक्षा तो पचास हजार, लाख और पाँच लाख दान में दे देना। जाओ, भाई! करोड़ रुपये हैं, उसमें से पचास लाख दे दो। ऐसा तो कुछ दे नहीं एकदम। क्योंकि लड़के इनकार करें, इसका आत्मा इनकार करे। आहाहा! परन्तु वे किसके बाप के? वह तो जड़ दशा है। जड़ को दूँ तो जड़ का स्वामी हुआ। मैं देता हूँ। तो क्या तेरी चीज़ है कि मैं देता हूँ (कहता है)? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! तेरी कायम की शक्तिरूप सत्त्व एक भाग में पड़ा है—ध्रुव। वह त्रिकाली। और एक भाग में वर्तमान दशा में रागादि, अशुद्धता आदि सम्बन्ध आदि है। उन्हें भी सत्यार्थ है, ऐसा जानना। है ही नहीं पर्याय, अशुद्धता है ही नहीं, कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी नहीं, ऐसा नहीं। विकार करता है नैमित्तिक तो कर्म का निमित्त है। बस, इतना। परन्तु निमित्त से होता है, ऐसा नहीं और विकार हुआ तो व्यवहार सत्यार्थ है तो उसके आश्रय से धर्म होता है, ऐसा भी नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

इसलिए सर्व नयों की कथञ्चित्... अर्थात् किसी अपेक्षा से। पर्याय से पर्याय है, द्रव्य से द्रव्य है, अशुद्धता से अशुद्धता है, शुद्धता से शुद्धता है। ऐसा है, वैसा श्रद्धान करने से 'सम्यग्दृष्टि हुआ जा सकता है।' पर्याय है नहीं, अशुद्धता है ही नहीं, तो उसका लक्ष्य छोड़ना और कहे कि है ही नहीं, तो वह तो दृष्टि मिथ्या हो गयी। **इस प्रकार स्याद्वाद को समझकर...** देखो! इस अपेक्षा से स्याद्वाद, हों! उसकी कल्पना का स्याद्वाद नहीं कि व्यवहार भी आदरणीय है, और निश्चय भी आदरणीय है। तथा कर्म से भी विकार होता है और अपने से भी होता है, यह स्याद्वाद। ऐसा स्याद्वाद नहीं। यह तो अज्ञान हुआ। अभी स्याद्वाद को समझते नहीं। **इस प्रकार स्याद्वाद को समझकर...** यहाँ विशिष्टता लेंगे। **जिनमत का सेवन करना चाहिए,...** देखो! अब कहते हैं।

मुख्य-गौण कथन को सुनकर... यह सार आया। ध्रुव ज्ञायक भगवान को मुख्य, है—ऐसा सुनकर और पर्याय, भेद नहीं—ऐसा सुनकर, **गौण कथन को सुनकर सर्वथा एकान्त पक्ष नहीं पकड़ना चाहिए।** सर्वथा ध्रुव ही है, पर्याय है ही नहीं। पर्याय ही है, ध्रुव सर्वथा है ही नहीं, ऐसा नहीं पकड़ना। आहाहा! भारी स्पष्ट किया है! बहुत सरस है! पण्डितजी ने जैसा भाव है, वैसा ही स्पष्ट किया है। लोग, पण्डितजी का लेखन है न, (ऐसा करके निकाल डालते हैं)। वह तो अन्दर में भाव (भरे हैं, उन्हें स्पष्ट किया है)। पाँच भाव को असत्यार्थ कहा, एक न्याय से पर्याय से बद्धस्पृष्ट को सत्यार्थ कहा। अबद्धस्पृष्ट की अपेक्षा से असत्यार्थ कहा। तो इसका स्पष्टीकरण करना चाहिए या नहीं कि किस अपेक्षा से यह बात है? समझ में आया? **मुख्य-गौण...** मुख्य-गौण अर्थात् क्या कहा? त्रिकाल अबद्धस्पृष्ट को मुख्य सत्य है, (ऐसा कहा) और पर्याय अशुद्ध है, उसे गौण करके असत्य है, ऐसा कहा। **मुख्य-गौण कथन को सुनकर सर्वथा एकान्त पक्ष नहीं पकड़ना चाहिए।** पर्याय है ही नहीं, अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिए। और अशुद्धता है तो त्रिकाल शुद्धता है ही नहीं, ऐसा नहीं पकड़ना चाहिए।

इस गाथासूत्र का विवेचन करते हुए टीकाकार आचार्य ने भी कहा है कि आत्मा व्यवहारनय की दृष्टि में जो बद्धस्पृष्ट आदि रूप दिखायी देता है, वह इस दृष्टि से तो सत्यार्थ ही है... आया न? पहले आ गया या नहीं? जल में डूबा हुआ कमलिनी का

पत्र, ऐसे संयोग से देखो तो है। उसी प्रकार कर्म के निमित्त का सम्बन्ध अनादि से है तो है। पर्याय में उसका सम्बन्ध है, निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। **परन्तु शुद्धनय की दृष्टि से बद्धस्पृष्टादिता असत्यार्थ है।** अपने ज्ञायक-सन्मुख झुकने से जिस चीज़ की अपने लक्ष्य में आवश्यकता नहीं, जिस चीज़ की अपने लक्ष्य में आवश्यकता नहीं, जिस चीज़ की अपने लक्ष्य में आवश्यकता है, उसे सत्यार्थ कहकर, बद्धस्पृष्टादि असत्य कह दिये। **इस कथन में टीकाकार आचार्य ने स्याद्वाद बताया है, ऐसा जानना।** ओहो! भारी स्पष्ट कथन! समझ में आया? अब अज्ञान के ऊपर बात आती है। ... पाँच बोल में ली।

यहाँ यह समझना चाहिए कि वह नय है... नय... नय। नय है, वह ज्ञान का अंश है। श्रुतज्ञान जो अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है, वह प्रमाण है। प्रमाण का अर्थ क्या? पूरा द्रव्य त्रिकाली और वर्तमान पर्याय, दोनों को जाननेवाली वर्तमान ज्ञान की पर्याय को प्रमाण कहा जाता है। फिर से, पूर्ण द्रव्यसामान्य और विशेष अवस्था—निर्मल या अशुद्ध, दोनों को एकसाथ जानना, उसे प्रमाणज्ञान (कहा जाता है)। उस ज्ञान की-श्रुतज्ञान की पर्याय को, वह है पर्याय, प्रमाणज्ञान है तो पर्याय। क्या कहते हैं? यह द्रव्य है त्रिकाली ध्रुव शुद्ध को जानना, यह शुद्धनय का विषय हुआ। वर्तमान भेद रागादि को जानना अशुद्धनय (का विषय हुआ) एकसाथ दोनों को जानना, वह प्रमाण हुआ। तो प्रमाणज्ञान चीज़ क्या है? प्रमाणज्ञान, वर्तमान ज्ञानगुण जो त्रिकाल है, उसकी वर्तमान पर्याय है। क्या (कहा)? प्रमाणज्ञान पर्याय है। प्रमाणज्ञान श्रुतज्ञान की पर्याय है। है पर्याय, एक अंश है। त्रिकाली ज्ञानगुण प्रमाण है, वह तो त्रिकाली चीज़ रही। द्रव्य त्रिकाली है। वह ज्ञानगुण और द्रव्य का आश्रय करके जो ज्ञान सम्यक् हुआ, वह पर्याय में सम्यक्ज्ञान श्रुतज्ञान हुआ। वह प्रमाणज्ञान पर्याय का अंश है। जो प्रमाण अंश है, वह सामान्य और विशेष दोनों को जानता है। और प्रमाण का भेद है, उसे नय कहते हैं।

पहले तो ऐसा है कि इसे रस आना चाहिए कि यह मुद्दे की बात करते हैं, यह कहीं मुफ्त में नहीं करते। आचार्य जंगल में रहते हैं, ऐसी बात करते हैं, वह कोई मुद्दे की रकम की बात हैं। वह कहीं बात की बात नहीं। अन्तर के रहस्य को किस प्रकार समझना, ऐसी चीज़ कहते हैं। तो ऐसा समझना कि **वह नय है, वह श्रुतज्ञान-प्रमाण का**

अंश है;... क्या कहा? भगवान आत्मा अनन्त गुण का एकरूप ध्रुव और एक समय की विशेष अवस्था। चाहे तो मलिन हो या निर्मल हो, दोनों। वह पर्याय का और द्रव्य का एकसाथ ज्ञान करे तो श्रुतज्ञान प्रमाण कहा जाता है। यहाँ नय लेना है न? केवलज्ञान में नय नहीं। अवधि, मन:पर्यय में नय नहीं। मति (ज्ञान) में नय नहीं। मात्र श्रुतज्ञान में ही नय पड़ते हैं। यह मूल तो बात नय, निक्षेप, प्रमाण और द्रव्य-गुण-पर्याय के यथार्थ बोध बिना सब गड़बड़ खड़ी हुई है।

यहाँ कहते हैं कि 'यह नय है वह...' शुद्धनय कहा था न यहाँ? शुद्धनय। त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य को शुद्धनय कहा है। उसे विषय करो तो शुद्धनय को विषय कहा है। अभेद से तो उसे ही शुद्धनय कहा है। यहाँ भेद पाड़कर कथन करना है। शुद्धनय है, वह त्रिकाल द्रव्य को बतलाता है। नय क्या है? श्रुतज्ञान प्रमाण का एक भाग है। एक भाग। अंश है न? श्रुतज्ञान प्रमाण का एक अंश है—एक भाग है। श्रुत विकल्पा नया। श्रुतज्ञान के भेद को नय कहते हैं। समझ में आया? ऐ... जयन्तीभाई! ऐसे अद्धर से चले, ऐसा नहीं। वहाँ प्रमुखपना हो गया। यह सब समझना पड़ेगा। इसके बिना यह सब गड़बड़ चली या नहीं? वहाँ भी जाओ सुनने और यहाँ भी जाओ सुनने। अब महिलायें कहे कि नहीं, महाराज के पास निर्णय कराओ। वहाँ भी सच्चा लगता है महाराज जैसा। वहाँ गये थे, तुम्हारे रजनीश के पास। गये थे और बैठ गया था न कि यह तो बहुत ऊँची बात है। महिलायें कहे, नहीं। महाराज के पास स्वीकार कराओ। मुझे दूसरा कहना है। इस अपेक्षा से निश्चय-व्यवहार आदि का ज्ञान क्या है, इसके ज्ञान बिना लोग एकान्त में उलझ जाये। विकल्प शून्य करो, विकल्प शून्य करो। शून्य करो परन्तु अस्ति कैसी है? यह तो ला। विकल्प से शून्य हो जाओ, विचार से शून्य हो जाओ। परन्तु विचार से शून्य होकर कहाँ जाना? चीज़ कैसी है वह? यह सर्वज्ञ परमेश्वर के मत में ऐसी बात है, दूसरे में ऐसी होती नहीं। शून्य हो जाओ। शून्य होकर भी लक्ष्य कहाँ करना और कहाँ से हटना? तू पर से हटने का कहता है परन्तु कहाँ जाना है? वह चीज़ कैसी है? अस्ति है, एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड अभेद अखण्डानन्द अपने क्षेत्र में व्यापक है, ऐसा अस्तित्व है, उसमें दृष्टि दे तो पर से शून्य हो जायेगा। यह वस्तु है। ऐसी वस्तु (जाने बिना) ध्यान करो। मूढ़ हो जायेगा। सुन न अब! मूढ़ हो जायेगा, मूढ़। तुझे ऐसा

लगेगा कि अपने को विकल्प उठते नहीं। मूढ़ हो जायेगा। समझ में आया ? आहाहा !

एक समय में सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने एक-एक आत्मा जैसा देखा है, वैसा है। ऐसी अन्तर दृष्टि करने से पर से शून्य हो जाता है। समझ में आया ? ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त तीन काल-तीन लोक में अन्यत्र हो सकती नहीं। रामस्वरूपजी ! सब बातें करते हैं, वेदान्ती और वे, फलाना... शून्य हो जाओ। अभी आया है। है न तुम्हारा नन्दा ? नन्दा है न ? गृहपति, क्या कहलाता है ? स्वामीनारायण ने पहले नीति सिखायी। जो नीति नहीं समझते थे, उन्हें नीति सिखायी। नीति समझते थे और भक्ति नहीं समझते थे तो उन्हें भक्ति समझायी। भक्ति समझते थे, उन्हें स्वामीनारायण का आत्मा का स्वरूप समझाया। इसलिए यह पहले होना चाहिए, ऐसा लिखा है। समझ में आया ? छोटाभाई कहते थे। हाँ, हाँ यह है। उसे पक्ष है न। काठी लोगों को... परन्तु वास्तविक तत्त्व क्या है ? स्वामीनारायण कोई आत्मा जगत में कर्ता नहीं। स्वामीनारायण यह आत्मा एक-एक है। अपना सहजात्म स्वामीनारायण भगवान आत्मा है। समझ में आया ? सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी यह। कर्ता-बर्ता कोई है नहीं जगत में। '...होवे सो कर्ता कहा, कर्ता हो तहाँ ... रहा कहाँ ?' समझ में आया ? है, उसमें कर्ता कौन ? कर्ता है वहाँ, है ऐसा कहाँ रहा ?

यहाँ तो भगवान आत्मा एक-एक महासत्ता आनन्दकन्द अनन्त गुण महा पिण्ड है। उसके आश्रय से पर्याय का लक्ष्य छूटता है। दोनों को जानना, वह श्रुतज्ञान प्रमाण है। दो में से एक को जानना, वह नय है। समझ में आया ? **वस्तु को परोक्ष बतलाता है;...** श्रुतज्ञान जो है, वह कहीं (वस्तु को) प्रत्यक्ष नहीं बतलाता। ऐसे असंख्य प्रदेश और एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण को, ऐसा कहीं श्रुतज्ञान नहीं बतलाता। वह तो केवलज्ञान बतलाता है। परन्तु श्रुतज्ञान वस्तु को—भगवान आत्मा को परोक्ष (बतलाता है) । समझ में आया ? जैसे एक अन्धा हो और शक्कर खाता हो, शक्कर। शक्कर का स्वाद तो जैसे देखनेवाला खाता है, वैसा ही स्वाद तो उसे समान है। परन्तु शक्कर की सफेदाई और आकृति उसके ख्याल में नहीं। समझ में आया ? ऐसे श्रुतज्ञान में आत्मा के आनन्द का स्वाद तो प्रत्यक्ष है परन्तु यह आत्मा असंख्य प्रदेश है, अनन्त गुण है, वह परोक्ष है।

आहाहा! समझ में आया? वह भी कथंचित् प्रत्यक्ष और कथंचित् परोक्ष। वेदन अपेक्षा से प्रत्यक्ष, देखने की अपेक्षा से परोक्ष। आहाहा! समझ में आया?

वह **वस्तु को परोक्ष बतलाता है;...** कौन? श्रुतज्ञान। श्रुतज्ञान प्रमाण का अंश। जो प्रमाण का अंश है, वह द्रव्य को और पर्याय को दोनों को बताता है। और उसका भेद जो नय है, वह भी श्रुतप्रमाण का अंश है। श्रुतप्रमाण परोक्ष है, इसलिए नय भी परोक्ष है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। शुद्धनय भी परोक्ष बतलाता है। ऐसे प्रत्यक्ष उसका विषय यहाँ नीचे है नहीं। **शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत,...** शुद्ध द्रव्यस्वरूप का प्रयोजन जिसे है, ऐसा नय **बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित...** शुद्धनय त्रिकाल को (छद्मस्थ को) **पाँच भावों से रहित आत्मा चैतन्यशक्तिमात्र है।** चैतन्यशक्तिमात्र है, उसे बतलाता है। कौन? शुद्ध द्रव्यार्थिकनय। पर्याय को गौण करके अकेला चैतन्यशक्ति, चैतन्य सत्त्व, चैतन्य सत्त्व, चैतन्य ध्रुवता, आत्मा का चैतन्यपना जो ध्रुव, उसे शुद्ध द्रव्यार्थिकनय बतलाता है। समझ में आया? सब विषय जरा स्पष्ट किया है न, इसलिए उसे छोड़ कैसे दिया जाये? क्या कहा?

आत्मा त्रिकाली वस्तु। उसमें ज्ञान त्रिकाली गुण। उसमें वर्तमान श्रुतप्रमाण पर्याय। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गये। द्रव्य त्रिकाली वस्तु, ज्ञान त्रिकाली वस्तु, उसकी पर्याय में श्रुतप्रमाण वह पर्याय आ गयी। श्रुतप्रमाण। प्रमाण का अर्थ जो त्रिकाली को जाने और वर्तमान को जाने। है पर्याय, है अंश। परन्तु अंश त्रिकाली अंशी को जाने, वह अंश वर्तमान पर्याय को जाने, उसका नाम प्रमाण। वह प्रमाण अंश परोक्ष है। श्रुतज्ञान परोक्ष है। तो उसके नयभेद भी शुद्धनय को जाने और व्यवहार को जाने। शुद्धनय को जाने, परन्तु श्रुतप्रमाण (परोक्ष है) तो उसका नय भी परोक्ष है। श्रुतप्रमाण परोक्ष है तो नय भी परोक्ष है। ओहोहो! भीखाभाई! यह तो अभी पण्डितजी के कथन का स्पष्टीकरण होता है। यहाँ आवश्यकता थी, इसलिए डाला है। आहाहा! सेठी! पढ़ा है या नहीं तुमने वहाँ? बात ऐसी सूक्ष्म बात है! ऐसे के ऐसे वाँच जाये, ऐसी चीज़ नहीं। यह तो महान तत्त्व को (बतलाते हैं)। आहाहा!

श्रुतज्ञान का एक भाग, वह नय। श्रुतज्ञान पूरा, वह प्रमाण। दो आँखें है या नहीं?

ऐसे एकसाथ देखे, वह प्रमाण। एक आँख को बन्द करके—एक को गौण करके देखे, वह नय। प्रमाणज्ञान जो अन्दर अंश है। वह अंश सामान्य और विशेष दोनों को जाने, वह प्रमाण। उसमें से एक पर्याय को गौण करके द्रव्य को जाने, वह नय-शुद्धनय। उसका लक्ष्य छोड़कर यहाँ पर्याय को जाने, वह अशुद्धनय। श्रुतप्रमाण परोक्ष है तो उसका भाग नय भी परोक्ष है, इतना यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! है या नहीं पुस्तक सामने? देखो न! यह अर्थ होता है, इसका ख्याल तो करो, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ सामने देखो तो पोसावे, ऐसा नहीं, कहते हैं।

यहाँ क्या कहते हैं? पहले तो यह कहा कि नय है, वह श्रुतप्रमाण का भाग है और श्रुतज्ञान जब परोक्ष है तो उसका भाग भी परोक्ष है। इसलिए **शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत, बद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावों से रहित आत्मा चैतन्यशक्तिमात्र है। वह चैतन्यशक्ति तो आत्मा में परोक्ष है ही;...** देखो! भाई! यह शक्ति तो परोक्ष है। पूरी शक्तिरूप पूरा सत्त्व वह कहीं अन्दर नय में प्रत्यक्ष नहीं होता। आहाहा! अब लेते हैं।

और उसकी व्यक्ति... प्रगटता। शक्ति का सत्त्व जो सर्वज्ञ स्वभाव। ज्ञ-स्वभाव। आत्मा अर्थात् ज्ञ-स्वभाव। स्वभाववान स्वभाव। ज्ञ-स्वभाव, ज्ञ-स्वभाव। वह ज्ञ-स्वभाव तो (छद्मस्थ को) शक्तिमात्र है। शक्तिमात्र तो नीचे परोक्ष है। व्यक्ति-शक्ति की प्रगटता का अंश कर्म संयोग होने पर भी **मति-श्रुतादि ज्ञानरूप है,...** प्रगट में मति-श्रुत आदि। अर्थात् अवधि, मनःपर्यय आदि कुछ नहीं। मति-श्रुत आदि प्रत्यक्ष अंश प्रगट होता है। **वह कथञ्चित् अनुभवगोचर होने से प्रत्यक्षरूप भी कहलाती है,...** देखो! मति-श्रुत का जो अंश प्रगट-व्यक्त हुआ, वह अपने अनुभव की अपेक्षा से; राग की अपेक्षा नहीं लेना, राग की अपेक्षा बिना, मति-श्रुत अपने को देखता है, इस अपेक्षा से प्रत्यक्ष है और पर को जानने में मति-श्रुत परोक्ष है।

फिर से। यहाँ तो शक्तिरूप जो त्रिकाल ध्रुव सत्त्व है, ज्ञ-वान का ज्ञ-स्वभाव, ज्ञ-वान—ज्ञ जिसका रूप है, भगवान आत्मा का ज्ञ रूप है। तो ज्ञ-स्वभाव पूर्ण पूरा शक्तिरूप पड़ा है। वह तो परोक्ष है। क्योंकि प्रत्यक्ष नहीं दिखता। शुद्धनय में भी प्रत्यक्ष

नहीं दिखता, क्योंकि शुद्धनय परोक्ष है। परन्तु कर्मसंयोग से, कर्म का निमित्त होने पर भी अपनी पर्याय में कर्म का बिल्कुल अभाव हो जाये, तब तो केवलज्ञान (हो जाये)। शक्ति में तो कर्म का अभाव-अभाव है नहीं, वह तो शक्तिरूप त्रिकाल है। मति-श्रुत आदि ज्ञान की प्रगट पर्याय जो है, वह कथंचित् अनुभवगोचर होने से प्रत्यक्ष वेदन में ज्ञान आता है कि यह ज्ञान मैं हूँ, ज्ञान मैं हूँ। समझे? उस ज्ञान के साथ आनन्द भले लो, वरना यह ज्ञान है—ऐसा ख्याल में आता है या नहीं? यह ज्ञान राग की अपेक्षा से मन की सहायता बिना ज्ञान का ख्याल आता है। समझ में आया?

पण्डितजी कितना काम करते हैं! देखो! पण्डित जयचन्द्रजी। उनके लिये ऐसा कहते हैं कि आर्षप्रमाण नहीं, फलाना नहीं। अब सुन तो सही। ठीक पड़े तो उनका डाले, न ठीक पड़े तो दूसरे का डाले। ऐसा चलता है? भाई! प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई! ऐसा अभिमान नहीं चलता। आहाहा! पहले के जो पण्डित थे, वे तो भवभीरु थे। और उन्होंने पूर्वापर विरोधरहित लिखा है। आहाहा! ऐसी बात है। क्या करे? अपने अभिमान में सबको तुच्छ (गिने)। और शास्त्र के अर्थ वापस अपनी कल्पना से करना। पण्डितों ने किये वह नहीं, अपने अर्थ करना। भगवान! बहुत विरोध होता है, भाई! और समुदाय बेचारा साधारण प्राणी। समाज को खबर नहीं होती। ऐसे के ऐसे पड़े हैं। मूढ़, महा मूढ़ की भाँति। मार्ग की क्या व्यक्तता, क्या शक्ति, क्या परोक्ष, क्या प्रत्यक्ष, क्या निमित्त (उसकी खबर नहीं होती)।

कहते हैं, **अनुभवगोचर होने से प्रत्यक्षरूप भी कहलाती है,...** प्रत्यक्ष है तो परोक्ष भी है। अपनी अपेक्षा से ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... राग की अपेक्षा बिना प्रत्यक्ष है और पर को जानने में परोक्ष है। **और सम्पूर्णज्ञान-केवलज्ञान यद्यपि छद्मस्थ के प्रत्यक्ष नहीं है....** केवलज्ञान की पर्याय का छद्मस्थ को ख्याल नहीं। **तथापि यह शुद्धनय आत्मा के केवलज्ञानरूप को परोक्ष बतलाता है।** पूरा आत्मा शुद्ध है तो उसकी पर्याय भी पूर्ण शुद्ध है, ऐसा शुद्धनय ख्याल कराता है। शक्ति पूर्ण है तो उस शक्ति की प्रतीति हुई तो व्यक्त में भी उसकी पर्याय पूर्ण होती है, ऐसा शुद्धनय केवलज्ञान को भी परोक्ष बतलाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .... अनुभव होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव मति-श्रुत से होता है। यह बात तो पहले कह गये। अब दूसरी बात कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रतीति कराते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतीति कराते हैं परन्तु वह शुद्धनय कैसे प्रतीति कराता है? कि पूर्ण शुद्धस्वभाव है न, तो पर्याय भी पूर्ण शुद्ध पर्याय हो, तब उसे केवलज्ञान कहा जाता है। तो वह शुद्धनय भी ऐसी प्रतीति कराता है कि यह आत्मा ऐसा पूर्ण शुद्ध है तो पर्याय पूर्ण हो सकती है, उसका शुद्धनय विश्वास कराता है। शुद्धनय केवलज्ञान का विश्वास कराता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों आये। यहाँ भी परोक्ष है। केवलज्ञान भी छद्मस्थ को तो परोक्ष ही है न! प्रत्यक्ष अभी उघड़ा हुआ है नहीं। आहाहा! अनुभव में मति-श्रुत प्रत्यक्ष। केवलज्ञान तो है ही कहाँ? मति-श्रुत प्रत्यक्ष। मति-श्रुत अनुभव में प्रत्यक्ष और पर की अपेक्षा से परोक्ष। केवलज्ञान तो वर्तमान परोक्ष ही है। शुद्धनय... भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानमय है, ऐसी प्रतीति हुई, उस शुद्धनय में पूर्ण पर्याय कैसी होती है (वह भी ज्ञात हो जाती है)। क्योंकि शुद्ध पूर्ण है तो पर्याय भी पूर्ण होती है, ऐसा शुद्धनय प्रतीति कराता है। अपूर्ण नहीं, पूर्ण है—ऐसी प्रतीति कराता है। परन्तु वह परोक्ष कराता है। समझ में आया? आहाहा! अभी यह विवाद ही केवलज्ञान के, भाई! देखो! इसमें तो केवलज्ञान की पर्याय शुद्धनय प्रतीति कराता है। एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे। ऐसी मेरी पर्याय पूर्ण होगी। शक्ति है। ऐसे वर्तमान विद्यमान नहीं होने पर भी शक्ति की श्रद्धा में शुद्धनय केवलज्ञान ऐसा होता है, ऐसी प्रतीति होती है। ओहोहो! आया न? यह जयधवल में आया है कि अंश की प्रतीति अंशी के ख्याल बिना होती नहीं। केवलज्ञान को अवयवी गिना है, मति-श्रुत को अवयव कहा है। स्तम्भ का दृष्टान्त दिया है वहाँ जयधवल में। स्तम्भ होता है न? स्तम्भ। स्तम्भ का एक थोड़ा भाग देखा तो वह अंश है, पूरे अंशी की दृष्टि बिना उसका वह अंश कहाँ से आया? ऐसे

केवलज्ञान पूरा अवयवी है, मति-श्रुत अवयव है। अवयव का ज्ञान अवयवी की प्रतीति कराकर अवयव उत्पन्न होता है। ऐसा जयधवल में लिया है। आहाहा! यह तो अकेले न्याय के विषय, इसलिए जरा व्यापारी लोगों को तो मस्तिष्क (चलाना पड़े)। वे ना करते हैं। मैं ना करूँ तो वे भी ना करे। मैं तो महँगा है, ऐसा करके ना करता हूँ। वे ना करते हैं कि हमारे लिये ऐसा है। उनके व्यापार का समझे, इसमें क्या समझे? इसके लिये इसमें बहुत ध्यान रखना चाहिए, ऐसा कहा। समझ में आया? यह तो मानो, विषय होगा किसी का—वकालत का। ऐसा नहीं, यह तो भगवान आत्मा का व्यापार है। भाई! आत्मा, वह सब समझ सकने की सामर्थ्य धराते हैं। केवलज्ञान की प्रतीति करावे, ऐसी सामर्थ्य रखते हैं तो मति-श्रुत से आत्मा की प्रतीति करे, ऐसी सामर्थ्य नहीं उसमें?

तथापि यह शुद्धनय आत्मा के केवलज्ञानरूप को परोक्ष बतलाता है। लो, केवलज्ञान छद्मस्थ को प्रत्यक्ष नहीं। परन्तु केवलज्ञान की पर्याय... में है, अन्दर में है। ऐसी पर्याय मुझे प्रगट होगी, ऐसी प्रतीति कराते हैं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ८, शुक्रवार, दिनांक - ०७-१०-१९६६
गाथा-१४, श्लोक-११, १२, प्रवचन - ६९

समयसार का जीव-अजीव अधिकार चलता है। १४वीं गाथा का भावार्थ अन्त में (आया है)। **यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि - ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष तो दिखायी नहीं देता...** है? कहाँ है? सेठ! **यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे...** अन्तिम पाँच लाईनें हैं। पहले ऐसा कहा कि आत्मा अनन्त गुणसागर प्रभु को कर्मबन्ध के स्पर्श से रहित, अनेकता से रहित, भेद से रहित और विकार से रहित ऐसे आत्मा का अनुभव करना, देखना, प्रतीति करना, वही वास्तविक आत्मा की प्रतीति और सम्यग्दर्शन कहा जाता है। तो शिष्य ने कहा कि (ऐसा आत्मा) तो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता। आप तो कहते हो कि ऐसे आत्मा को कर्म के सम्बन्ध से रहित देखो और ऐसा देखो और ऐसा देखो। समझ में आया? ऐसा आत्मा प्रत्यक्ष तो दिखता नहीं। प्रत्यक्ष तो देखने में आता नहीं। **और बिना देखे श्रद्धान करना असत् श्रद्धान है।** शिष्य का प्रश्न है। देखे बिना श्रद्धान करना, यह चीज़ क्या है, उसे देखे बिना श्रद्धान करना, वह तो असत् श्रद्धान हो जाता है। शिष्य का प्रश्न है पहले। समझ में आया प्रश्न क्या है यह?

आप कहते हो कि भगवान आत्मा अन्दर अनन्त गुणसागर शुद्ध आनन्दकन्द है। उसे कर्म के सम्बन्धरहित, भेदरहित श्रद्धान करो, अनुभव करो तो तुमको आत्मा का यथार्थ अनुभव (होगा) और आनन्द आयेगा। तो कहते हैं कि ऐसा तो प्रत्यक्ष दिखता नहीं। और देखे बिना श्रद्धान करना, दिखे नहीं और श्रद्धान करना, वह तो असत् श्रद्धान है। ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

उसका उत्तर यह है - देखे हुए का ही श्रद्धान करना तो नास्तिकमत है। हम तो देखते हैं, उतना मानते हैं, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? समुद्र का यह तट दिखता है और वह तट दिखता नहीं। तो कहता है, इतना हम देखते हैं। पूरा तट कितना, वह हम मानते नहीं। वह तो नास्तिक है। देखे हुए का ही श्रद्धान करना, और देखे बिना की

चीज़ क्या है, उसका श्रद्धान नहीं करना, वह तो नास्तिक मत है। **जैनमत में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रमाण माने गये हैं,...** वीतराग भगवान के ज्ञान से वीतराग अभिप्राय में प्रत्यक्ष ज्ञान भी है और परोक्ष ज्ञान भी है। दोनों को प्रमाण माना है। ऐसा नहीं कि प्रत्यक्ष देखे, वही प्रमाण है और परोक्ष देखे, वह अप्रमाण है। समझ में आया? **दोनों प्रमाण माने गये हैं,...** दोनों सत्य माने गये हैं। प्रत्यक्ष प्रतीति करना, वह प्रमाण भी यथार्थ है। और परोक्ष से प्रमाण करना, वह भी यथार्थ है। इस प्रकार भगवान के मार्ग में दो प्रमाण माने गये हैं। **उनमें से आगमप्रमाण परोक्ष है;...** आगम अर्थात् श्रुतज्ञान। उस श्रुतज्ञान से आत्मा को मानना, वह परोक्ष है। समझ में आया? आगमज्ञान अर्थात् श्रुतज्ञान। वह परोक्ष है। ज्ञान अन्तर से कहीं असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण प्रत्यक्ष नहीं दिखते। परन्तु उस श्रुतज्ञान द्वारा यह आत्मा है, पूर्ण है, एक समय की प्रगट अवस्था है, इतना नहीं। पूरा पूर्ण है, अनन्त गुणस्वरूप है, वह वस्तु है। वह दुःखरूप नहीं हो सकती। ऐसे श्रुतज्ञानप्रमाण से आनन्दरूप है, कर्म से रहित है, ऐसे एकरूप स्वभाव का श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण से भी अनुभव हो सकता है। समझ में आया?

उसका भेद शुद्धनय है। श्रुतज्ञान भले है तो परोक्ष (रीति से) आत्मा को देखता है, परन्तु वह प्रमाणज्ञान है। श्रुतज्ञान कहीं अप्रमाण नहीं। श्रुतज्ञान (अर्थात्) भावश्रुतज्ञान, हों! और उसका भेद एक शुद्धनय है। एक पर्याय को देखे, वह व्यवहार। उसका भेद त्रिकाल एकरूप वस्तु है तो पूर्ण एकरूप शुद्ध अनन्त गुणरूप एकरूप है। ऐसा श्रुतज्ञान का एक भाग शुद्धनय है। **इस शुद्धनय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करना चाहिए,...** इस शुद्धनय की दृष्टि से, यह शुद्ध भगवान पूर्ण आत्मा है, आनन्द है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए। समझ में आया? **मात्र व्यवहार-प्रत्यक्ष का ही एकान्त नहीं करना चाहिए।** मात्र व्यवहार प्रत्यक्ष। ऐसा कहे, प्रत्यक्ष दिखाई दे, उसे ही मानते हैं। ऐसे तो प्रत्यक्ष में क्या दिखाई देता है? कहो, समझ में आया? बाँस का भाग प्रत्यक्ष दिखता है? पिता के पिता हैं, वे दिखते हैं? आठ पेढ़ी के पिता हैं, वे दिखते हैं? तो नहीं थे? दिखाई दे उतना ही है और नहीं दिखता वह नहीं, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? समुद्र का पूरा पट दिखता है। यह भाग किनारा दिखता है, वह (पट) नहीं दिखता। परन्तु कुछ होगा या नहीं? कुछ है या ऐसा का ऐसा चलता जाता है आकाश

की भाँति ? आकाश तो ऐसा का ऐसा अमाप चलता जाता है। ऐसे समुद्र में अमाप चला जाता है, ऐसा नहीं। दूसरा किनारा है। कांठो कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? किनारा है। यह किनारा है तो दूसरा किनारा है ही। ऐसे परोक्ष है, परन्तु वह यथार्थ प्रमाण है। उसमें कुछ झूठ नहीं। समझ में आया ? हम तो दिखाई दे, उतना मानते हैं। दिखता क्या है ? कितना दिखता है तुझे ? कुनैन आदि दवा लेता है तो उसकी श्रद्धा नहीं करता ? कि इस कुनैन से बुखार उतर गया। दिखता है ? इस कुनैन ने क्या काम किया, वह दिखता है ? प्रतीति करता है या नहीं ? अन्दर जाकर क्या काम करती है, खबर पड़ती है ? कुनैन। कुनैन नहीं आती ? बुखार की दवा। अन्दर में क्या पड़ा, क्या हुआ। एकदम बुखार उतर जाता है। भले उसकी उतरने की योग्यता से उतरता है, तथापि ख्याल तो आता है या नहीं कि अन्दर कुछ काम होता है। दिखता है। दिखाई दे, न दिखाई दे, (उसका) क्या काम है ? समझ में आया ?

उसी प्रकार भगवान आत्मा व्यवहार से देखे, व्यवहार में तो एक समय की अवस्था दिखती है। परन्तु एक समय की अवस्था है, तो त्रिकाली चीज़ बिना अवस्था किसकी ? त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यमूर्ति है, ऐसा शुद्धनय से-श्रुतज्ञानप्रमाण के एक भाग से मैं परमात्मस्वरूपी हूँ, अकेला शान्त अनाकुल आनन्द हूँ, ऐसा अनुभव करना। ऐसी श्रद्धा करके अनुभव करना, उसका नाम धर्म है।

★ ★ ★

कलश - ११

यहाँ इस शुद्धनय को मुख्य करके कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,
स्फुटमुपरितरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्।।11।।

श्लोकार्थ : [जगत् तम् एव सम्यक्स्वभावम् अनुभवतु] जगत के प्राणियों! इस सम्यक स्वभाव का अनुभव करो कि [यत्र] जहाँ [अमी बद्धस्पृष्टतभावादय:] यह बद्धस्पृष्टादिभाव [एत्य स्फुटम् उपरि तरन्त: अपि] स्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं, तथापि वे [प्रतिष्ठाम् नहि विदधति] (उसमें) प्रतिष्ठा नहीं पाते, क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है, एकरूप है और यह भाव अनित्य हैं, अनेकरूप हैं; पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती, ऊपर ही रहती हैं। [समन्तातद्योतमानं] यह शुद्धस्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान है। [अपगतमोहीभूय] ऐसे शुद्धस्वभाव का, मोहरहित होकर जगत अनुभव करे; क्योंकि मोहकर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी अज्ञान जहाँ तक रहता है, वहाँ तक यह अनुभव यथार्थ नहीं होता।

भावार्थ : यहाँ यह उपदेश है कि शुद्धनय के विषयरूप आत्मा का अनुभव करो।।11।।

कलश - ११ पर प्रवचन

यहाँ इस शुद्धनय को मुख्य करके कलशरूप काव्य कहते हैं :- लो!

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,
स्फुटमुपरितरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥११॥

जगत के प्राणियों! पाठ तो जगत है। '**जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्**' हे जगत! इसका अर्थ कि हे जगत के जीवो! जगत का अर्थ जगत में रहनेवाले जीव। जड़ को कहते हैं यहाँ? यह आया है, टीका में लिया है। टीका में भी ऐसा लिया है। यह माळव देश आया, यह काठियावाड़ आया, यह सौराष्ट्र आया। सौराष्ट्र कभी आता है? सौराष्ट्र की जनता आवे तो बोले कि सौराष्ट्र आया। ऐसा कहते हैं या नहीं? टीका में ऐसा लिया है, हों! इस जगत के अर्थ में। (परमाध्यात्म) तरंगिणी में ऐसा लिया है। समझ में आया? लो, यह काठियावाड़ आया, काठियावाड़ आया ऐसा कहते हैं या नहीं? यह

भावनगर आया। कल नहीं कहते थे ? ऐई ! भावनगर। भावनगर यहाँ आया है ? भावनगर की जनता आयी।

उसी प्रकार जगत के प्राणियों। जीव, हों ! यहाँ जगत अर्थात् जड़ और धर्मास्तिकाय को नहीं कहते। जगत शब्द लिया है। जगत तो छह द्रव्य का पूरा विश्व है। परन्तु उसमें प्राणी **इस सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो...** भगवान चैतन्यस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शुद्धभाव अनन्त गुणसागर प्रभु, है पदार्थ, उसका अन्तर्मुख होकर उसका स्पर्श करो– अनुभव करो–उसका प्रत्यक्ष आस्वादन करो। समझ में आया ? **इस सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो कि जहाँ यह बद्धस्पृष्टादिभाव स्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं,...** जहाँ वे बद्धस्पृष्ट आदि भाव। क्या कहते हैं ? कर्म का सम्बन्ध और विकृत भाव, अनेक अवस्था स्वभाव के ऊपर तैरते हैं। त्रिकाली चैतन्य ज्योति स्वभाव के ऊपर वे तैरते हैं। जैसे जल में तेल की बिन्दु ऊपर तैरती है, वह जल में प्रवेश नहीं करती। समझ में आया ? उसी प्रकार भगवान ध्रुव चैतन्यस्वभाव ज्ञान का पिण्ड आनन्द समुद्र ऐसा अपना सम्यक् स्वभाव के ऊपर बद्धस्पृष्ट और अनेकता की पर्याय ऊपर तैरती है, ऊपर रहती है, अन्दर प्रवेश नहीं करती। आहाहा ! समझ में आया ? ऊपर तैरती है का अर्थ (यह है कि) एक समय की अवस्था ऊपर रहती है। द्रव्य में–ध्रुव में प्रवेश नहीं करती।

मुमुक्षु : दब जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दब क्या जाये ? एक समय की पर्याय ऊपर–ऊपर लोटती है। ध्रुव स्वभाव में प्रवेश नहीं करती। समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक समय का ध्रुव बिम्ब, ध्रुव बिम्ब चैतन्यस्वभाव, अकेला ज्ञायकभाव, उसमें ऊपर की एक समय की जो अवस्था–पर्याय है, कर्म का सम्बन्ध, दु:ख—वह वस्तु के स्वभाव में उस पर्याय का प्रवेश नहीं। ऊपर एक समय रहती है। अन्तर त्रिकाल स्वभाव (में) प्रवेश नहीं करती। समझ में आया ?

बद्धस्पृष्टादिभाव... पाँच बोल आये न ? कर्म के सम्बन्धरूपी निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध द्रव्यस्वभाव में नहीं। विकृत अवस्था की अनेकता, व्यंजनपर्याय स्वभाव में है नहीं। एक समय की हीनाधिक अवस्था एक समय में है, वस्तु में है नहीं। भेद, विकल्प

से गुण का भेद पर्याय में है, एक समय में है, त्रिकाल में नहीं। सुख-दुःख की कल्पना एक समय की पर्याय-अवस्था में है, वस्तु में नहीं। समझ में आया? गजब बात, भाई! **बद्धस्पृष्टादिभाव...** भाव अर्थात् वह पर्याय **स्पष्टरूप से...** प्रगटरूप से, प्रगटरूप से **उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं,...** प्रगटरूप से है सही, है सही। स्पष्ट है, वापस ऐसा कहा, भाई! पर्याय है। स्पष्टरूप से पर्याय अन्दर भेद और कर्म का सम्बन्ध है। स्वभाव के ऊपर तैरती है। अन्तर ध्रुव में प्रवेश नहीं करती।

मुमुक्षु : अन्दर में पाँच है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में पाँच कहाँ है? अन्दर में एक है। पाँच के सामने एक ही अबद्धस्पृष्ट आदि एक ही स्वरूप है। पाँच तो कहने में आये हैं। एक ही स्वरूप अन्दर में है। बद्धस्पृष्ट तो संयोगरूप पर्याय की बात की। अन्दर एकरूप अबद्धस्पृष्ट है। आकृति की अनेकता है, अन्दर एकरूप स्वभाव है। सब एक साथ है। अन्दर में पाँच प्रकार नहीं। समझ में आया? अभी तो तेरा आत्मा क्या है, उसकी बात चलती है। सेठ! इसकी खबर नहीं। दुनिया हिला डाली। दुनिया डहोळी समझते हो? पूरी दुनिया... हिन्दी में ऐसा चलता होगा। हमारे डहोळी डाले (कहते हैं)। पूरी दुनिया हिला दी। तू कौन? अपने को कुछ खबर नहीं। मूढ़ है। सेठ! मूढ़। खबर नहीं तो मूढ़ है।

मुमुक्षु : वह तो पर्याय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ पर्याय में है परन्तु क्या चीज़ है, इसकी खबर नहीं तो मूढ़ है न पर्याय में। चीज़ क्या है, इसकी तो खबर नहीं। पूरी दुनिया में चतुराई... चतुराई (करे)। देव का पुत्र मानो उतरा बातें करने बैठे तो। यह हीरा-माणेक की बातें करें, यह तम्बाकू की, बीड़ी की बातें करे, यह और दूसरे की करे—मोटर पार्ट्स की। यह वकीलात की करे, लो न! रामजीभाई! कहो, सेठी! परन्तु तू कौन, कितने में, क्या है? कायम की चीज़, हों! एक समय की एक अवस्था तो लक्ष्य में आती है। वह तो है, है प्रत्यक्ष इतना ज्ञान में आता है। ऐसा नहीं। ज्ञान का अंश है, राग का अंश है, यह है, यह है, ऐसा नहीं। आत्मा अन्दर एकरूप स्वभाव ध्रुव चैतन्यमूर्ति बद्धस्पृष्ट आदि स्वभाव के ऊपर तैरते हैं। भाषा कैसी ली? बद्धस्पृष्ट आदि नहीं, ऐसा नहीं। प्रगट है, एक समय

की अवस्था में बद्धस्पृष्ट, राग-द्वेष, सुख-दुःख है। अपनी पर्याय में है, हों! परन्तु स्वभाव के ऊपर तैरते हैं। एक समय की पर्याय स्वभाव के ऊपर रहती है, अन्दर प्रवेश नहीं करती। आहाहा!

जल का दल होता है न? पानी का दल। तेल डालो तो ऊपर-ऊपर रहेगा। अन्दर प्रवेश नहीं करेगा। तेल अन्दर प्रवेश नहीं करेगा। ओहो! यह एक बार वहाँ वाँचा था तब विरोध किया था। स्वभाव के ऊपर तैरते हैं। तब वे कहे, नहीं। अन्दर है। क्या है? एक समय की पर्याय है। कर्म के सम्बन्ध में एक समय की अवस्था है, विकार एक समय का है, बाकी पूरा आत्मा शुद्ध है। उसी समय पूरा शुद्ध चैतन्यघन, आनन्दघन, आनन्ददल है। आहाहा! ऐसे स्वभाव के ऊपर बद्धस्पृष्ट आदि पाँच बोल कहे न? वे ऊपर रहते हैं। अन्दर प्रवेश नहीं करते, क्योंकि पर्याय है। एक समय की अवस्था त्रिकाल ध्रुव में कैसे प्रवेश करे? समझ में आया? आहाहा! अभी तो आत्मा कैसा है, उसके दो बोल में, एक बोल कैसा है और दूसरा बोल ऊपर तैरता है। एक बोल कायम रहता है और एक बोल ऊपर-ऊपर की एक समय की अवस्था है। समझ में आया?

तथापि वे (उसमें) प्रतिष्ठा नहीं पाते,... क्या कहते हैं? कि आत्मा ध्रुव वस्तु सत्... सत्... सत्... शाश्वत् ज्ञायकमूर्ति है। उसमें ऊपर पर्याय एक समय की दशा में है। परन्तु वह पर्याय अन्दर में शोभा नहीं पाती। वह द्रव्य को शोभाकारक नहीं है अथवा वह अन्दर में शोभा नहीं करती, अन्दर में प्रवेश नहीं करती, प्रतिष्ठा नहीं पाती अथवा अन्दर में स्थिति नहीं पाती। समझ में आया? **तथापि वे (उसमें) प्रतिष्ठा नहीं पाते,...** कौन? आत्मा वस्तु जो ध्रुव चैतन्यमूर्ति है, उसकी एक समय की वर्तमान पाँच बोल की दशा, वह उसमें स्थिति नहीं पाती। ध्रुव में स्थिति (नहीं पाती), ध्रुव में टिकती नहीं, ध्रुव में जाती नहीं। समझ में आया या नहीं? क्या कहते हैं? तथापि क्यों कहा? **यह बद्धस्पृष्टादिभाव स्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं,...** है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

यह शरीर तो मिट्टी, धूल पर की है। यह कहाँ आत्मा में है? यह तो पर का-मिट्टी का पिण्ड है। दाल, भात, रोटी का बना हुआ है यह तो। यह आत्मा नहीं, यह तो

मिट्टी का पिण्ड बना हुआ है। तू आत्मा है। कर्म भी पुद्गल से बने हुए हैं, वे तू नहीं। तू है वह तो दो प्रकार का है। एक ऊपर-ऊपर अवस्था-पर्याय है। बाह्य, प्रगट, स्पष्ट एकरूप। अवस्था है। कर्म का सम्बन्ध है, विकार है, दुःख है, अनेकता है, वह एक समय की दशा और त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव वस्तु जो अनादि-अनन्त नित्य सामान्य गुण स्वभाव में वह प्रवेश नहीं करती, प्रतिष्ठा नहीं पाती। ध्रुव में पर्याय की शोभा नहीं है, ध्रुव में पर्याय की स्थिति नहीं है, ध्रुव में पर्याय की महिमा नहीं। ध्रुव में पर्याय की महिमा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब भाई!

यह चीज़ जो वस्तु है, उस चीज़ की अन्तर दृष्टि अनुभव किये बिना उसका कभी कल्याण होता नहीं। मर जाये पंच महाव्रत पालकर और क्रियाकाण्ड करके और दान, दया करते-करते पूरी जिन्दगी पूरी हो जाये। अनन्त बीत गयी, परन्तु यह एक समय का भगवान पूर्ण, उसमें शरीर, वाणी, कर्म तो प्रवेश करते नहीं। समझ में आया? एक समय भी कर्म, शरीर, वाणी उसकी एक समय की पर्याय में भी प्रवेश नहीं करते। क्या कहा? भगवान आत्मा के दो अंश हैं। एक सामान्य त्रिकाल ज्ञायक ध्रुव (और) एक समय की अवस्था—वर्तमान पर्याय। कर्म, शरीर, वाणी, यह दाल, भात, सब्जी, यह बाह्य चीज़ एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भी वे पर्याय में प्रवेश नहीं करते। पर्याय में प्रवेश नहीं करते। और वह एक समय की पर्याय है, वह ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। समझ में आया? समझना भी कठिन। कभी विचार किया नहीं। अमरचन्दभाई! पैसा कमाना और खाना और गहलपन-पागलपन। ऐ... शोभालालभाई! कहलाये वहाँ चतुर। लौकिक पागल के अस्पताल में-पागल के अस्पताल में पागल चतुर। डाह्या को क्या कहते हैं, समझे? शयाणा। आहाहा!

यह तो कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही! तेरे आत्मा में दो भाग। एक कायम की चीज़ रूप ध्रुव स्वभाव, एक समय की अवस्थारूप अध्रुव भाव, अनित्य भाव। यह कर्म, शरीर आदि तो अध्रुव भाव को भी स्पर्श नहीं करते। कर्म, शरीर, वाणी, स्त्री, परिवार आदि एक समय की तेरी अवस्था को भी स्पर्श नहीं करते और तेरी अवस्था पर को कभी स्पर्शी नहीं। परन्तु एक समय की जो रागवाली, दुःखवाली अवस्था है, वह

त्रिकाल द्रव्य को स्पर्शी नहीं—प्रवेश करती नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा यह कैसा उपदेश! वे कहें, व्रत करना, यह करना, यह करना (समझ में तो आये)। सुन तो सही। चीज़ क्या है, उसकी प्रतीति किये बिना तेरा स्थिर होना कहाँ होगा? समझ में आया?

पूरी चीज़ एक समय में भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव वस्तु है, गुण का दल है, गुण का दल है। समुद्र में ऊपर की सपाटी के ऊपर जितनी तरंगें उठती हैं, वे तरंगें समुद्र के अन्तर दल में प्रवेश नहीं करती। करती हैं? अन्तर समुद्र जो दल बड़ा पड़ा है, वह तो असंख्य योजन में (पड़ा है)। यह तो अनन्त-अनन्त गुण भले इतने क्षेत्र में (रहे हैं), अनन्त सागरवर गम्भीरा, अनन्त गुण गम्भीर भगवान। अनन्त गुण गम्भीर भगवान। एक गुण में अनन्त गम्भीरता। ऐसी अनन्त गुण की अनन्त गम्भीरता। ऐसे अनन्त गुणरूप एक द्रव्य की अनन्त गम्भीरता। ओहोहो! सुना नहीं, सुनी नहीं अपनी चीज़ की कीमत। घर में सब कीमत आँके। यह पाँच लाख का गहना है, इतनी पूँजी है, इतने पैदा किये न दीवाली में इतने अस्सी लाख हुए और दीवाली में पाँच लाख बढ़ गये। पिच्यासी लाख हो गये। धूल के ढ़ेर के सब अंक।

भगवान आत्मा अनन्त गुण गम्भीर प्रभु। जैसे सागर के पानी की गम्भीरता अनहद है। समझ में आया? अथवा उस समुद्र की इतनी मर्यादा है न, अमुक भले पानी जाये परन्तु वह पानी इतना उछलकर जगत को डुबोवे, इतनी मर्यादा में नहीं जाता, इतना अमर्यादित नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! उसी प्रकार भगवान आत्मा इतना अमर्यादित गुण का पिण्ड, सागर-समुद्र है कि पूरा स्वभाव एक समय की पर्याय में आता नहीं और एक समय की पर्याय अन्दर प्रवेश करती नहीं। आहाहा! समझ में आया? शरीर, कर्म, वाणी, तैजस (शरीर), वे तो नजदीक एकक्षेत्रावगाह में हो। एक क्षेत्र में होने पर भी एक समय की आत्मा की वर्तमान प्रगट स्पष्ट जो अवस्था है, उसे भी वह स्पर्शता नहीं। और वह चीज़ यहाँ स्पर्शती नहीं और वह अवस्था उसे स्पर्शती नहीं। भिन्न-भिन्न है। परन्तु भगवान आत्मा जो स्वभाव—सम्यक् स्वभाव, त्रिकाली स्वभाव ज्ञान, आनन्द दलरूप सदृश्यरूप स्वभाव के ऊपर बद्धस्पृष्ट आदि स्पष्ट भाव, रागादि

स्पष्ट प्रगट भाव अन्दर में प्रवेश नहीं करते। ऊपर-ऊपर तैरते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तथापि... वापस ऐसा लेते हैं, भले प्रगट हो, स्वभाव के ऊपर तैरते हैं, तो भी वे स्वभाव में प्रतिष्ठा, स्थिति को, महिमा को, प्रवेश को प्राप्त नहीं होते। समझ में आया? ऐसे सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो कि जिसमें वे पाँच पर्यायें अन्दर प्रवेश नहीं करती। ऐसा भगवान ज्ञानानन्द गम्भीर आनन्दस्वभाव से गम्भीर, श्रद्धास्वभाव से गम्भीर, अनन्त गुणगम्भीर भगवान आत्मा सम्यक् स्वभावस्वरूप, उसमें बद्धस्पृष्ट आदि भाव, वर्तमान एक समय की दशारूप प्रगटरूप वर्तने पर भी ऊपर तैरते हैं, अन्दर प्रविष्ट नहीं करते। आहाहा! इससे अधिक स्पष्टता कितनी करे? आचार्य कितना कहें?

भाई! तेरे अस्तित्व के दो अंश। शरीर, कर्म का अस्तित्व—मौजूदगी में तो तेरा एक भी अंश नहीं। शरीर, कर्म आदि परद्रव्य की पर्याय के अस्तित्व में तेरा अंश नहीं और उसके अस्तित्व का अंश तुझमें नहीं। समझ में आया या नहीं? भगवान आत्मा, उसकी मौजूदगी—अस्ति उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत् है। समय-समय की पर्याय उत्पन्न-व्यय, त्रिकाली ध्रुव। तो कहते हैं कि उत्पाद-व्यय की जो पर्याय है—यह पाँच बद्धस्पृष्ट आदि—इनमें कर्म, शरीर की अवस्था एक समय में भी नहीं आती। और तेरी रागादि, दु:ख आदि पर्याय शरीर को, कर्म को स्पर्शती नहीं। अब तेरी पर्याय, पर्यायनय से तुझे स्पर्शी है। समझ में आया? अशुद्धता, मलिनता, दु:खरूप दशा, वह एक समय में एक समय की अवस्था से पर्याय से स्पर्शी है। परन्तु वह त्रिकाली द्रव्य को स्पर्शी नहीं और उसमें प्रवेश करती नहीं। आहाहा!

क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है,... भगवान आत्मा अनादि-अनन्त नित्य है। वस्तु सहज... सहज... सहज सत् है... है... है। वह त्रिकाल द्रव्य वस्तुस्वभाव। वह कौन सा द्रव्य होगा? पैसा? तब कौनसा द्रव्य? यह कौनसा द्रव्य? भाई! माणेकचन्दजी! यह द्रव्य पैसा? नहीं। यहाँ तो आत्मद्रव्य की बात की है। पैसा भी द्रव्य है, परमाणु द्रव्य है। परमाणु द्रव्य है और उसकी पैसा आदि की वर्तमान पर्याय, वह पर्याय है। वह पर्याय भी वास्तव में उसके परमाणु ध्रुव में प्रविष्ट नहीं होती। परमाणु है न? देखो! यह

अवस्था है, यह अवस्था है-पर्याय है। रजकण ध्रुव है, उसमें प्रवेश नहीं करती। वह भी एक समय की अवस्था है। आहाहा! वह द्रव्य रजकण अचेतन द्रव्य है और उसकी एक समय की पर्याय अचेतन है। परन्तु एक समय की अवस्था। दाल की अवस्था थी, भात की अवस्था थी, वह रक्त की अवस्था हुई। पहले दाल की थी न? वह अवस्था पलट गयी, परन्तु रजकण तो वह के वह हैं। रजकण वह के वह हैं, समय की अवस्था पलट गयी। वह समय की अवस्था अन्दर प्रवेश नहीं करती। वह समय की अवस्था आत्मा को स्पर्श नहीं करती। आत्मा की पर्याय उसे स्पर्श नहीं करती। आहाहा!

यहाँ तो अपने में सत् का पूर्ण अंश। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्, उसमें उत्पाद-व्यय की पर्याय ध्रुव को स्पर्श नहीं करती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाषा भी सुनी न हो। उत्पाद-व्यय, ध्रुव को स्पर्शती नहीं। अब यह क्या? कभी सुना है ६८ वर्ष में? सुनानेवाले नहीं मिले। शोभालालजी! भाई तो ऐसा कहते हैं। परन्तु दरकार कहाँ की है? संसार की सम्हाल कितनी रखता है? इतना है, कितने बालक, पुत्र के पुत्र, उनके पुत्र। तीन काल में इसके पास कोई नहीं। एक समय भी वह चीज़ अपने को स्पर्शती नहीं और उस चीज़ को यह आत्मा स्पर्शता नहीं। एक समय की अवस्था भी (स्पर्शती नहीं)। अरे... अरे! धर्म भी गजब!

यहाँ तो इस बात को पर में डाल दिया। तेरी दशा में तेरे अस्तित्व में उत्पाद-व्यय में जो पर्याय विकार, दुःख आदि है; वह द्रव्य अर्थात् शाश्वत् असली स्वभाव वस्तु ध्रुव को स्पर्शती नहीं, प्रवेश नहीं करती, स्थिति नहीं पाती। कायमरूप ध्रुव स्थिति को प्राप्त, उसमें एक समय की स्थिति को प्राप्त पर्याय ध्रुव में किस प्रकार स्थिति पावे? समझ में आया? एक समय की अवस्था है। वह ध्रुव में कैसे स्थिति पावे? वह तो एक समय की अवस्था है। सामान्य तो त्रिकाली अवस्था है—त्रिकाली वस्तु-त्रिकाली चीज़ है। ओहोहो! ऐसा द्रव्यस्वभाव तो नित्य है, एकरूप है। देखो!

यह भाव अनित्य हैं,... राग-द्वेष, पुण्य-पाप, दया-दान विकल्प आदि अनित्य भाव है। **द्रव्यस्वभाव तो नित्य है, एकरूप है और यह भाव...** भाव अर्थात् पर्याय। कर्म के सम्बन्ध की पर्याय, राग-द्वेषरूप आदि भेद अनित्य हैं, यह (द्रव्यस्वभाव) अनित्य

है। भगवान एकरूप है, पर्याय अनेकरूप है। **पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती,...** ओहोहो! यहाँ तो मेरे घर में तू घुस गया है और तेरे घर में मैं प्रविष्ट हो गया—घुस गया। भगवान! घर तेरा है, उसमें तेरी पर्याय घुसती नहीं, वहाँ दूसरा घुसे कौन? आहाहा! समझ में आया? **पर्यायें...** भगवान आत्मा की एक समय की अवस्था—हालत—अंश—दशा द्रव्यस्वभाव—वस्तुस्वभाव—ध्रुवस्वभाव—ज्ञायकस्वभाव—नित्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती। **ऊपर ही रहती हैं।** ऊपर-ऊपर ही रहती है। समझ में आया?

यह शुद्धस्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान है। भगवान आत्मा सर्व दशा में ज्ञाता ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... दर्शन... दर्शन... दर्शन... वीर्य... वीर्य... वीर्य... आनन्द... आनन्द... आनन्द... प्रत्येक अवस्था में वस्तु शुद्ध चैतन्य भगवान प्रकाशमान है। आहाहा! अभी पहले उसकी समझण किये बिना ऐसे ध्यान करे तो कहाँ से अन्दर मिले? समझ में आया? चीज़ क्या है, उसकी तो खबर नहीं। कैसी है, उसकी खबर नहीं। कैसे करना, कहाँ से हटना, कहाँ जाना है, इसकी खबर नहीं होती। कहते हैं, पहले समझण करना चाहिए। ऐसी समझण भी जैसी चीज़ है, एक समय की अवस्था, कायम की चीज़ जैसे है, वैसे भाव में-ज्ञान में भासन होना चाहिए। समझ में आया?

यह शुद्धस्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान है। ऐसे शुद्धस्वभाव का, मोह रहित होकर... भ्रान्तिरहित होकर। मोहरहित अर्थात् राग की एकता, शरीर की एकता, एक समय की अवस्था जितना आत्मा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, ऐसे मोह से रहित होकर **जगत (के जीव) अनुभव करे;...** जगत अनुभव करो, ऐसा है न? जगत के जीवो, हे जीव! बापू! शरण ले, शरण। भाई! दूसरा कहीं शरण नहीं मिलेगा। गोते खाये मरते।... लोग, सगे-सम्बन्धी और आड़तिया बड़े-बड़े कीर्ति हुई हो न! सब बड़े लोग इकट्ठे हो। सेठ को कैसे है? सेठ को कैसे है? सेठ उठे अब। डबल निमोनिया। डॉक्टर आये, कहे, देखो! अब कुछ करने जैसा नहीं, हों! एकान्त में कहते हैं। कुछ करने जैसा नहीं। देखो अब। अर्थात् कि अभी निपट जायेगा। चारों ओर सब सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हुए हों। तब कहा था। अमुलखभाई गुजर गये न। राजकोट। परिवार में सब करोड़पति। नानालालभाई, बेचरभाई, मोहनभाई सब पूरा घर इकट्ठा। वह दिये जाये। मरने की

तैयारी। क्या करे सब इकट्ठे होकर? अमुक की ममता (बढ़ावे)। अरे! इससे जायेगा? इससे छूटेगा, इससे छूटेगा। अब छूटा हुआ ही है। क्या छूटेगा, छूटेगा मुफ्त का लगा है। आहाहा! और ऐसे बँगला ऐसा देखा हो न! कोमल कोमल... क्या कहलाये? पॉलिस। लकड़ी को पॉलिस। उसमें से निकलना। समझ में आया? यह तो हो उसकी बात है न। ऐसे... आहाहा! कमरे में सगे-सम्बन्धी चारों ओर खचाखच भरे हों। कमरा छोटा और सगे-सम्बन्धी बहुत। मरने की तैयारी। डबल निमोनिया। भाई! उसे चैन नहीं मिलता वहाँ। इसके अतिरिक्त कौन है अलग, (उसे) कभी जाना नहीं। समझ में आया? जाना नहीं, अन्दर माना नहीं कि यह क्या चीज़ है? आहाहा! ऐसा का ऐसा झंझट लेकर चला गया चौरासी के अवतार में। जाओ, चौरासी के अवतार में अब। कहीं कोई शरण नहीं, कोई गोशाला नहीं कि तुझे पूछने आवे वहाँ। आत्मा क्या चीज़ है, अपनी चीज़ की सम्हाल कभी की नहीं। आहाहा!

ऐसे शुद्धस्वभाव का,... 'अपगत' है न? **'अपगतमोहीभूय' मोह रहित होकर...** तू होकर, ऐसा। कर्म मार्ग दे, ऐसा नहीं। मोहरहित होकर—तू भ्रान्ति छोड़कर। तेरे अधिकार की बात है। एक समय की दशा में रुचि पड़ी है, वह मिथ्यात्वभाव है। पर मेरा तो कहीं रहा, एक समय की अवस्था जितना मैं हूँ, यह मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव है। तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं,... यह मूल श्लोक में से टीका (बनायी) और फिर कलश बनाये हैं। ओहोहो! दिगम्बर सन्तों ने काम किये हैं! गजब काम किये हैं! पाँचवें काल में चौथे काल जैसे काम किये हैं। ऐसे एक-एक श्लोक, एक-एक श्लोक / गाथा।

भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर पूर्णानन्द है न। भाई! तू मोहरहित अर्थात् मोह तो है, ऐसा तो कहते हैं। तेरी पर्यायबुद्धि है, एक अवस्था के अंश के ऊपर बुद्धि है और पर मेरा, ऐसी तेरी बुद्धि है। वह मोह छोड़। **अनुभव करो...** भगवान आनन्द का आस्वाद लो। आहाहा! उस आनन्द की गुल्ली पड़ी है आत्मा। अतीन्द्रिय आनन्द को चूस। अतीन्द्रिय आनन्द का निर्विकल्प अनुभवरस पी, ऐसा कहते हैं। यह पुण्य-पाप के विकार में जहर पीता है। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प में जहर पीता है। इन पुण्य-

पाप के विकल्प से रहित भगवान ज्ञायकस्वभाव का अनुभव अतीन्द्रिय आनन्द की चूसनी चूस। निर्विकल्परस पी, तुझे आनन्द होगा। आहाहा! समझ में आया?

हे जगत्! जगत के प्राणियों! शुद्धस्वभाव का... भगवान शुद्धस्वभाव है न, प्रभु। उसकी महिमा को, केवली की वाणी महिमा पूरी कह सके नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ की वाणी (पूरा कह नहीं सके), परन्तु वाणी जड़, चैतन्य आनन्दकन्द अरूपी भिन्न। अरूपी भगवान आनन्द दल का दुश्मन। आत्मा से वाणी तो दुश्मन (अर्थात्) जड़, विरोधी है। वह विरोधी आत्मा की कितनी बात कर सके? समझ में आया? आहाहा!

मोहकर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी अज्ञान जहाँ तक रहता है,... वह तो '**अपगतमोहीभूय**' का स्पष्टीकरण किया। जब तक कर्म के निमित्त में एकत्वबुद्धि है, शरीर में एकत्वबुद्धि है, राग में एकत्वबुद्धि है, तब तक अज्ञान रहता है। **वहाँ तक यह अनुभव यथार्थ नहीं होता।** वहाँ तक भगवान आत्मा का अनुभव अर्थात् यह आत्मा है, ऐसी प्रतीति करके आनन्द का स्वाद, जब तक मिथ्यात्व, अज्ञान है, तब तक नहीं आता। समझ में आया? श्वास चढ़ा हो चारो ओर। फिर ऐसे नजर डाले। कोई डॉक्टर, कोई इंजेक्शन। धूल में भी नहीं वहाँ मर जाये नहीं। समझे न? इंजेक्शन दिया और वह मर गया। खबर है न? पटेल। बेचारे को बहुत दुःख होता था तो इंजेक्शन देने गये। जहाँ इंजेक्शन दिया वहाँ फू...! वह तो होने का था, वह (हुआ) यह तो बात है। वह ऐसा कहे, यहाँ शिवलाल पटेल थे न? ४८ घण्टों से... कोई रोग नहीं, कुछ नहीं। मूँगफल खायी होगी। शींग को क्या कहते हैं? शींग—मूँगफली। सेंककर कच्ची खाये। खाये और ऊपर खायी रोटी। समिति की गर्म-गर्म रोटी। उसमें केला खाया साथ में श्वास उठा... समाप्त! निरोग शरीर, हों! खाया वहाँ यहाँ से श्वास अटका। डुंटी से—नाभि से श्वास ऊपर आ गया एकदम। कुछ नहीं था, कुछ नहीं, हों! मूँगफली दाने तो निमित्त हुए। परन्तु वह खाने के बाद न हो विष्टा, न हो उल्टी। ऐसे बैठे थे, नीचे बैठे थे। यों ही नीचे बैठे थे। वह कमरा है न? पटेल! क्या है? उठे। अन्तिम (स्थिति) है। परन्तु बैठे हो न, कुछ नहीं न! उन्हें लग गया था कि श्वास यहाँ नहीं बैठता। खाकर आये और कुछ नहीं, हों! कुछ नहीं। शरीर निरोग। शिवलाल पटेल थे। पटेल नहीं? विट्ठल

पटेल, उनके कुटुम्बी, यहाँ रहते थे। खाकर आये वहाँ नीचे बैठे थे। पटेल! कैसे है? अन्तिम क्रिया, ऐसा बोले। क्या परन्तु अन्तिम? यहाँ बैठे हो न? उसे लगा कि यहाँ से श्वास छूट गया है। चाहे जो कारण हो। नाभि से श्वास हट गया था। आगे नहीं चलता था। चौबीस घण्टे रहा, छत्तीस घण्टे रहे। फिर यह डॉक्टर मिले। यह दुःखी होता है। दिया इंजेक्शन। निपट गया। देह छूट गयी। परन्तु उसके समय में (होनेवाला हो), उसे कौन बदले? डॉक्टर स्वयं मर जाते हैं। उन्हें भान नहीं होता। ऐं... ऐं... ऐं... (हो जाये)। प्राणजीवन डॉक्टर है, भाई! है न? ढाई हजार वेतन। ढाई हजार वेतन। जामनगर। उसकी लड़की को बिच्छू ने काटा या सर्प-पडकुं (छोटा बच्चा)। स्वयं उलझन में आ गया। बहुत करे तो भी दवा से मिटे, यह मान्यता तो छूट गयी। तो भी उलझन में पड़े हुए। इस दवा से मिटे तो सबको मिटना चाहिए। परन्तु मिटता तो नहीं। एक ओर कुर्सी में पड़े थे। डॉक्टर दूसरे डॉक्टर को कहे, तुम करो, मैं तो नहीं करूँ। परन्तु तुम्हारी लड़की है। मेरा मस्तिष्क काम नहीं करता। पडकुं समझते हो? छोटा सर्प। मैं नहीं कर सकूँगा। परन्तु ढाई हजार वेतन, २५०० वेतन। ३२ वर्ष का हुआ। क्या करे? उस समय की पर्याय जड़ की, उसमें तो तेरा किंचित् अधिकार नहीं। यहाँ तो तेरी पर्याय में तेरा अधिकार है। एक समय की दशा में विकार, भेद करना, वह तेरा अधिकार है। परन्तु उस अधिकार में तुझे जहर का पीना होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी श्रद्धा। एक समय की पर्याय का श्रद्धान। पर मेरा है, ऐसा माने वह तो एकदम विपरीत है, परन्तु एक समय की अवस्था का श्रद्धान। पूरा परमेश्वर ज्ञायकस्वभाव तो रह गया। समझ में आया? ऊपर कहा था न? पर्यायबुद्धि नहीं रहना चाहिए। ऊपर कहा था। आहाहा! तेरी वर्तमान प्रगट अवस्था के ऊपर लक्ष्य नहीं रखना चाहिए। त्रिकाल ज्ञायक भगवान पर दृष्टि देनी चाहिए और उससे तुझे आनन्द का अनुभव होगा। वरना जहर का प्याला है। आहाहा! पर्याय एक समय की अवस्था की बुद्धि, वह जहर का पीना है। शरीर मेरा, पैसे मेरे, धूल मेरी और कर्म मेरे। जहर का प्याला है। आहाहा! मिथ्यात्व की भ्रान्ति का जहर तुझे चढ़ गया है।

हे जीवों! '**अपगतमोही**' ऐसा कहते हैं न? भगवान! उस जहर को छोड़ न अब तो! आहाहा! उस पर्यायबुद्धि को छोड़ न, प्रभु! उसमें तो अनन्त काल से बहुत जहर पीये। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' नौवें ग्रैवेयक, दिगम्बर साधु, अट्ठाईस मूलगुण—सब पर्यायबुद्धि जहर का प्याला। जहर का अनुभव। समझ में आया? कहते हैं, शुद्धस्वभाव भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर शुद्धस्वभाव; मोहरहित होकर, पर्यायबुद्धि की रुचि छोड़कर त्रिकाल स्वभाव-सन्मुख होकर आत्मा का आनन्द, प्रगटरूप पर्याय ज्ञान की है, अशुद्ध दशा में आनन्द का अनुभव है नहीं। जब शुद्धस्वभाव का अनुभव हो, तब पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आता है। वह अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आया, उसे आत्मा की प्रतीति कहा जाता है। तब आत्मा की प्रतीति हुई कि पूरा आत्मा ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर ऐसी वाणी फरमाते हैं। खबर नहीं उसे, वीतराग क्या कहते हैं और वीतराग की चीज़ क्या है। माने कि हम वीतराग को मानते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- यहाँ यह उपदेश है कि शुद्धनय के विषयरूप आत्मा का अनुभव करो। त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव वह शुद्धनय का ध्येय है-विषय है, ऐसे आत्मा का अनुभव करो। ऐसे आत्मा की स्वसन्मुख होकर प्रतीति, ज्ञान वेदन करके करो। आहाहा! सब जन्म, जरा, मरण छूट जायेंगे। इसके बिना जन्म-मरण छूटेंगे नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

कलश - १२

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य पुन: कहते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि ऐसा अनुभव करने पर आत्मदेव प्रगट प्रतिभासमान होता है:-

(शार्दूलविक्रीडित)

भूतं भान्तमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बन्धं सुधी-
र्यद्यन्त: किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।

आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं,
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देव: स्वयं शाश्वत: ।।12।।

श्लोकार्थ : [यदि] यदि [क: अपि सुधी:] कोई सुबुद्धि (सम्यग्दृष्टि) [भूतं भान्तम् अभूतम् एव बन्धं] जीव भूत, वर्तमान और भविष्य – तीनों काल में कर्मों के बन्ध को अपने आत्मा से [रभसात्] तत्काल–शीघ्र [निर्भिद्य] भिन्न करके तथा [मोहं] उस कर्मोदय के निमित्त से होनेवाले मिथ्यात्व (अज्ञान) को [हठात्] अपने बल से (पुरुषार्थ से) [व्याव‌हत्य] रोककर अथवा नाश करके [अन्त:] अन्तरङ्ग में [किल अहो कलयति] अभ्यास करो–देखे तो [अयम् आत्मा] यह आत्मा [आत्म–अनुभव–एक–गम्य–महिमा] अपने अनुभव से ही जाननेयोग्य जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा [व्यक्त:] व्यक्त (अनुभवगोचर), [ध्रुवं] निश्चल [शाश्वत:] शाश्वत, [नित्यं कर्म–कलंक–पंक–विकल:] नित्य कर्मकलंक–कर्दम से रहित [स्वयं देव:] स्वयं ऐसा स्तुति करने योग्य देव [आस्ते] विराजमान है।

भावार्थ : शुद्धनय की दृष्टि से देखा जाये तो सर्व कर्मों से रहित चैतन्यमात्र देव अविनाशी आत्मा अन्तरङ्ग में स्वयं विराजमान है। यह प्राणी–पर्यायबुद्धि बहिरात्मा – उसे बाहर ढूँढ़ता है, यह महा अज्ञान है।।12।।

कलश - १२ पर प्रवचन

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य पुनः कहते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि ऐसा अनुभव करने पर आत्मदेव प्रगट प्रतिभासमान होता है :- पहले अनुभव करो, ऐसा कहा। अब यहाँ देव प्रगट होता है, (ऐसा कहते हैं)। देहदेवल में विराजमान भगवान देव त्रिकाली ज्ञायकप्रभु देव, ऐसा अनुभव करने से पर्याय में देव प्रगट होता है।

भूतं भान्तमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बन्धं सुधी-
र्यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं,
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥१२॥

यह जीव अधिकार। जीव, वह देव प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं।

श्लोकार्थ :- यदि कोई सुबुद्धि (सम्यग्दृष्टि)... जीव **भूत, वर्तमान और भविष्य - तीनों काल में कर्मों के बन्ध को अपने आत्मा से तत्काल...** एक स्वभाव, वस्तु स्वभाव पर दृष्टि देने से तीन काल के कर्म बँधे, बँधते हैं और बँधेगे, वे उसमें है ही नहीं। तीन काल के कर्मों के बन्ध को—सम्बन्ध को **अपने आत्मा से तत्काल-शीघ्र भिन्न करके...** भगवान आत्मा को राग और विकल्प से भिन्न करके। तो कर्म से भिन्न हुआ, ऐसा कहा। अध्यात्म की बात ऐसी गुम हो गयी, उसके कारण से धर्म जो है, वह धर्म गुम हो गया। बस, यह बाहर की प्रवृत्ति। और यदि प्रवृत्ति में धर्म न कहो तो... निश्चयाभासी हो गये, ऐसा कहे। आहाहा! भगवान! क्या कहें? तेरी चीज़ की दृष्टि बिना तेरी प्रवृत्ति चाहे जितनी हो, मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधेगा। मिथ्यात्वसहित पापानुबन्धी पुण्य बँध जाए, उसमें तो तुझे नया पाप (बँधेगा)।

भगवान आत्मा अपने आत्मा को भूत, वर्तमान, भविष्य के कर्म से भिन्न... यहाँ तो वर्तमान से भिन्न किया तो त्रिकाल से भिन्न हो गया। समझ में आया? सुबुद्धि—उसे सुबुद्धि कहते हैं। है न? '**सुधीः**' '**सुधीः**' बड़ा चतुरपना संसार का हो और बड़ा पढ़ा हुआ हो, वह '**सुधीः**' नहीं। उसमें धूल भी '**सुधीः**' नहीं। '**कुधीः**' है। बड़े बैरिस्टर, दो-दो हजार एक दिन के लेनेवाले। '**कुधीः**' है—मूर्ख है।

मुमुक्षु : आप मूर्ख कहते हो, दुनिया तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया तो पागल हो तो कहे ही न! ऐई! देने जाये वहाँ। देखो! रामजीभाई को देने जाते थे वहाँ। काम करो, काम करो।

'**सुधीः**' शब्द है न? '**सुधीः**' उसे कहते हैं कि कर्म से आत्मा को भिन्न करने की क्रिया करे, उसका नाम '**सुधीः**' है। आहाहा! विशेष बात है....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ९, सोमवार, दिनांक - ०८-१०-१९६६
श्लोक-१२-१३, गाथा-१५, प्रवचन - ७०

समयसार जीव-अजीव अधिकार। १४वीं गाथा का कलश चलता है। १२वाँ कलश चलता है। देखो! यहाँ सम्यग्दर्शन की व्याख्या है। सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन कैसे होता है, यह बात करते हैं। **यदि कोई सुबुद्धि...** यहाँ सम्यग्दृष्टि से पहले बात ली है। इस आत्मा को **भूत, वर्तमान और भविष्य - तीनों काल में कर्मों के...** सम्बन्ध से रहित। बद्धस्पृष्ट रहित है न पहले? आत्मा कर्म के सम्बन्ध से रहित ही है। तीनों काल रहित है। कर्म, वह परपदार्थ है। परपदार्थ से भगवान आत्मा वस्तु अत्यन्त रहित, पर से भिन्न है। ऐसे निज आत्मा को, बन्ध रहित निजात्मा को अबद्धस्पृष्ट **तत्काल-शीघ्र भिन्न करके तथा उस कर्मोदय के निमित्त से होनेवाले मिथ्यात्व (अज्ञान) को...** दोनों में पाँच बोल समाहित कर दिये हैं। कर्म के निमित्त से होनेवाले अपने में स्वरूप के बोधरहित भाव। **अपने बल से (पुरुषार्थ से) रोककर...** समझ में आया? अबद्धस्पृष्ट में भी समा दिया था, यहाँ दो बोल में समा दिया।

बद्ध से रहित और निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुए भ्रमणा अज्ञान से रहित। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु एक समय में शुद्ध चैतन्य आनन्द ध्रुव पिण्ड की दृष्टि करने से कर्मबन्ध से रहित और विकार से रहित। मिथ्याभ्रमणा—राग, वह मैं हूँ, शरीर मैं हूँ और अल्पज्ञ अवस्था में दृष्टि रखकर इतना मैं हूँ, ऐसी मान्यता है, वह मिथ्यात्व है। बद्धस्पृष्ट से रहित और मिथ्यात्व से रहित। भ्रान्ति को छोड़कर अपने बल से रोककर। अज्ञान (को) भी अपने बल से रोककर। ऐसा नहीं कि कर्म का उदय मिट जाये तो अपना पुरुषार्थ जगे। अपना चैतन्यस्वरूप शुद्ध वस्तु, उसमें पुरुषार्थ से एकाग्र होकर अज्ञान को पुरुषार्थ से रोका, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

अथवा नाश करके अन्तरङ्ग में अभ्यास करो... अथवा आत्मा अन्तर में अभ्यास

करे। मैं ज्ञानानन्द स्वरूप शुद्ध ध्रुव कौन हूँ, ऐसा अन्तर सन्मुख होकर अभ्यास, एकाग्रता करे **तो यह आत्मा अपने अनुभव से ही जानने‌योग्य....** तो वह आत्मा अपने अनुभव से भी जानने‌योग्य **जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा व्यक्त (अनुभवगोचर),...** है। भगवान कोई राग की मन्दता या निमित्त या पर की अपेक्षा से स्वयं अनुभवगोचर है, ऐसी वह चीज़ ही नहीं। समझ में आया? आत्मा अपने अनुभव से ही जानने‌योग्य है। अपने अन्तर्मुख शुद्ध स्वभाव-सन्मुख अभ्यास करने से अन्तर के अनुभव से जानने‌योग्य **जिसकी प्रगट महिमा है...** अन्तर अनुभव से जानने‌योग्य जिसकी प्रगट महिमा है। कोई राग से या निमित्त से जानने‌योग्य उसकी महिमा नहीं। देखो! समझ में आया? निरपेक्ष, निरपेक्ष कहा, निरपेक्ष। सेठी! क्या कहा?

भगवान आत्मा का ऐसा शुद्ध स्वरूप है कि जिसमें कर्म और कर्म के निमित्त की अपेक्षा, विकल्प आदि से रहित आत्मा अनुभव में आवे, ऐसा आत्मा है ही नहीं। वह तो अन्तर्मुख पर की अपेक्षा छोड़कर निरपेक्ष अन्तर दृष्टि में होकर अपने स्वभाव-सन्मुख अभ्यास करे तो अपने अनुभव से प्रगट होने‌योग्य उसकी महिमा है। समझ में आया? कोई मदद-बदद कुछ करे नहीं जरा भी। यह तो मदद करे नहीं परन्तु उस ओर का जो विकल्प है, उससे मदद हो, ऐसा आत्मा है नहीं। आत्मा ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया? '**आत्म-अनुभव-एक-गम्य-महिमा**' स्वभाव-सन्मुख चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द का रसरूप समुद्र, अन्तर्मुख अभ्यास से अनुभवगम्य उसकी महिमा है। वह दूसरे किसी लक्ष्य से, पक्ष से (गम्य नहीं होता)। कोई लक्ष्य से, पक्ष से, आधार से—आश्रय से आत्मा का अनुभव हो, आत्मा की प्राप्ति हो—ऐसा आत्मा में नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बहिर्मुख में कुछ महिमा रह जायेगी तो अन्तर्मुख की महिमा नहीं आयेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कुछ भी महिमा रह गयी कि मैंने राग मन्द किया, ज्ञान का बहुत क्षयोपशम हुआ, इतने शास्त्र वाँचन किये, ऐसी कुछ भी यदि बाहर की महिमा रह जाये तो अन्तर्मुख में यह आत्मा अन्तर अनुभव

गम्य महिमा उसे प्राप्त नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मैंने बहुत शास्त्र वाँचे हैं। समझ में आया? मेरी पक्की श्रद्धा देव-गुरु-शास्त्र में है और पूरी जिन्दगी मैं बालब्रह्मचारी हूँ, मेरी कषाय की मन्दता बहुत है। इस अपेक्षा से आत्मा अनुभवगम्य है, ऐसा आत्मा का स्वभाव ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष कहाँ है? वस्तु में दोष ही नहीं, दोष ही नहीं। अभी होता नहीं, ऐसा कहाँ? दोष कब दिखता है? कि अपना दोषरहित स्वभाव अनुभवगम्य है, तब रागादि है, वे ज्ञात होते हैं कि हैं, बस। इसके बिना रागादि हैं, उसका ज्ञान भी यथार्थ नहीं। गजब बात, भाई!

यह जीव अधिकार है। जीव अर्थात् आत्मा। आत्मा ऐसा है, यह आत्मा ऐसा है कि अपने अनुभवगम्य से ही उसकी महिमा है। उसका आत्मा ही ऐसा है। ऐसा बतलाना है। आत्मद्रव्य बतलाना है न? समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार पहले हो तो होता है, राग की मन्दता करे तो होता है, शुभ उपयोग... शुभ उपयोग... शुभ उपयोग... गले पड़ा है। शुभ उपयोग हो तो आत्मा का भान होता है। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा की महिमा ही नहीं। इस महिमा में घात हो जाता है। महिमा उसकी आ गयी।

अन्तरंग में अभ्यास करे। भगवान आत्मा आनन्द का पूरा गोला है। ज्ञान का पूरा चैतन्यबिम्ब है। चैतन्यबिम्ब है। उसका अन्तर्मुख अभ्यास करे तो आत्मा अपने अनुभव से ही, **आत्मा अपने अनुभव से ही...** ऐसे शब्द पड़े हैं। है? समझ में आया? **आत्मा अपने अनुभव से ही जाननेयोग्य जिसकी प्रगट महिमा है, ऐसा व्यक्त (अनुभवगोचर),...** ऐसा अनुभवगम्य। बस, 'अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई! दूसरे को समाज को ऐसा लगे कि अर र! तब अब हम यह व्यवहार करते हैं वह? परन्तु कहाँ तेरा व्यवहार है अभी, सुन तो सही! निश्चय के भान बिना राग को व्यवहार कहे कौन? समझ में आया? राग तो अन्ध है। वह तो अनादि से मन्द-तीव्र, मन्द-तीव्र करता आया है, अनादि से करता आया है।

रावग और बन्ध दोनों से अबन्धस्वरूप अपना स्वभाव अबद्धस्पृष्ट है, यह सिद्ध करते हैं। अबद्धस्पृष्ट स्वभाव अनुभव, उसकी महिमा से प्रगट होता है, ऐसी उसकी महिमा है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग अभी पूरा राग और अज्ञान मार्ग में वीतराग मार्ग माना है। समझ में आया? धमाधम। पूजा, भक्ति, यात्रा, उपदेश, दया, दान, व्रत, खाना-पीना, लेना-देना ऐसे क्रियाकाण्ड, उसमें पूरा वीतराग धर्म माना है। वह है नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? वह राग होता है। कब? कि जब राग से और पर से भिन्न अनुभवगम्य आत्मा है, ऐसी उसकी अनुभव महिमा है, ऐसा भान हुआ। राग बीच में आता है, पूर्ण न हो तब तक (आता है)। उस राग को व्यवहार कहते हैं अथवा पर कहते हैं। समझ में आया?

कैसा है भगवान आत्मा? **निश्चल, शाश्वत, नित्य कर्मकलंक-कर्दम से रहित...** कर्म के कादव से भगवान चैतन्यज्योति निराला चैतन्य तैरता है। राग, विकल्प और कर्म से निराला चैतन्यबिम्ब ध्रुव स्वभाव निराला है। **स्वयं ऐसा स्तुति करनेयोग्य...** अपने से स्तवन करनेयोग्य, गुणगान करनेयोग्य ऐसा देव—तेरा आत्मा **विराजमान है।** यह स्तुति करनेयोग्य तू है, ऐसा कहते हैं। सेठ! आहाहा! भगवान और परमात्मा और वे सब स्तुति करनेयोग्य है, वह तो विकल्प है और व्यवहार है। देखो! यह अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक के स्पष्टीकरण में टीका में ऐसा बनाया है। इस टीका का ही कलश है।

स्वयं स्तुति.... देखो! स्वयं स्तुति करनेयोग्य। निज शुद्ध चैतन्य की एकाग्रता होना, वही उसकी स्तुति है। वह स्वयं आत्मा स्तुति करनेयोग्य है। पर की स्तुति करनेयोग्य आत्मा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? सेठ! वह स्वयं देव है।

मुमुक्षु : गुरु रास्ता तो बतावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु रास्ता बतावे, वह तो स्वयं रास्ते चले तो बताते हैं, ऐसा कहा जाता है। उनसे पता नहीं लगता, ऐसा है। पराधीन, पराधीन... पामर, पामर, पामर। सेठ! अभी तक पामरता स्वीकार की है। सेठ ने, सेठ के बाप ने और सबने। यह

सब इनके पुत्र हैं न, देखो न! यह तो एक दृष्टान्त है, सेठ सामने (बैठे हैं, इसलिए), बाकी तो सबने ऐसा ही माना है। सेठ! एक व्यक्ति ने प्रश्न किया था कि अभी इतने प्रश्न चलते हैं कि आत्मा उपादान से प्रगट होता है, निश्चय से प्रगट होता है, व्यवहार से ऐसा है। ऐसी बात तो अपने बाप-दादा तो नहीं जानते थे। ऐसा प्रश्न हुआ। तो अपने बाप-दादा को धर्म होता था या नहीं? भगवान के दर्शन करने जाते थे। ऐसा प्रश्न चांपा में हुआ। क्या कहलाये? चांपा में। प्रश्न हुआ। प्रश्न का उत्तर देनेवाले मिले कि अपने बाप-दादा, भगवान हैं—ऐसा तो जानते थे या नहीं? तो उनकी भक्ति करते थे तो धर्म होता था। धूल में भी नहीं था। तुझे भान नहीं होता। ऐसे के ऐसे। ऐई... सेठी! यह सेठी वहाँ बड़े हैं इन्हें कुछ भान नहीं था। यहाँ आये तब तो यहाँ मश्करी की कि ऐसा धर्म? लोप करते हैं, लोप हो जाता है। ऐसा कहते थे। वरना जयपुर में फिर खानदान घर, बड़ा घर। पुराना घर हो तो कुछ नहीं? वह तो और महेन्द्रभाई यहाँ... पिताजी साहेब, पिताजी साहेब! तुम आओ तो सही, सुनो तो सही। ऐसा करके मुश्किल मुश्किल से आये, हों! पहले तो अन्दर से... इनके पिता ने कहाँ से सुना हो? सेठी!

यहाँ तो यह कहते हैं कि सुना सब दूसरी वस्तु है। परम्परा से जो माना है कि ऐसे प्रगट हो और राग से, पुण्य से, निमित्त से और व्यवहार। तो आत्मा ऐसा है नहीं, ऐसा भगवान कहते हैं। आत्मा ऐसा है नहीं। यहाँ जीवतत्त्व कहा जाता है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में दिव्यध्वनि द्वारा फरमाते थे। वह यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं। समझ में आया? दिगम्बर मुनि सन्त भगवान सीमन्धर प्रभु के पास गये थे। यह मुनि दो हजार वर्ष पहले। आठ दिन रहे थे। यह वहाँ से आकर बनाया है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान **कर्मकलंक-कर्दम से रहित...** जैसे जल में कादव के मैल से रहित को जल कहा जाता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य जल ज्ञानानन्द आनन्द अतीन्द्रियस्वरूप, वह कादव-कर्म और राग से भिन्न भगवान अपना देव, अपने योग्य स्तुति करनेयोग्य आत्मा है। अर्थात् अपने स्वभाव-सन्मुख होकर एकाग्र होनेयोग्य आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ (द्वारा प्ररूपित) ऐसा मार्ग तीन काल में अन्यत्र कहीं नहीं होता। तीन काल में सर्वज्ञ जैन परमेश्वर के अतिरिक्त किसी जगह यह मार्ग नहीं होता। समझ में आया?

स्वयं ऐसा स्तुति करने योग्य... भाषा तो देखो! 'स्वयं' शब्द है न? '**नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः**' आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्य के सन्मुख होकर। उसकी स्तुति का अर्थ उसके सन्मुख होना, वह स्तुति करनेयोग्य भगवान देव है। जिसके सन्मुख होना है, वही देव स्तुति करनेयोग्य है। पर से तो विमुख होना है। समझ में आया? **देव विराजमान है।** देखो! देव स्वयं देव है। आहाहा! 'तू ही देव का देव।' तू ही देव है स्वयं, कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया? ऐसे बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, दवा बिना चले नहीं, सवेरे चाय बिना चले नहीं, उसे कहे कि यह ऐसा आत्मा है। ऐई! माणेकचन्दजी! सवेरे बराबर तलप लगी हो न ... बराबर, डालो अन्दर चाय बराबर। सुनने जाते हैं तो मस्तिष्क तर रहे। आहाहा! नहीं पीकर आये हों तो झोंका आवे। झोंका आवे। क्या कहलाता है? स्फूर्ति क्या कहते हैं? सुस्ती। सुस्ती हुई, भाई! सुस्ती है। यह तेरा चाय का प्याला सुस्ती उड़ाता होगा?

मुमुक्षु : दिखता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी दिखता नहीं। मूर्ख मानता है।

मुमुक्षु : .... यहाँ तो देव कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ देव (प्रतीति में) होवे तो न। ऐसे हो मूर्ख है। इस स्वरूप की कीमत करे तो देव है, पर की कीमत करे तो मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कहाँ भव? कितने भव? आज दिशा को जाकर रास्ते में आते थे न। एक गिरगिट, गिरगिट। हम यहाँ थे उससे दो हाथ दूर। गिरगिट दौड़कर (आया)। ऐसे जाता था उस ओर। वहाँ ऊपर बस (घूम गयी)। तड़फन भी नहीं, सिर चूरा (हो गया)। हम दो-चार हाथ दूर (थे)। भाई थे या नहीं? नहीं थे? गिरगिट था न? गिरगिट। (गुजराती में) काचीडो कहते हैं न? काचीडो कहते हैं। इतना। ऐसे नजर में पड़ा, हों! यह जाता है। अरे! जाता है वहाँ तो बस आयी। अन्दर थोड़ा तो घुसा, अन्दर बीच में।

एक पहिया रह गया, दूसरा पहिया (फिर गया)। दूसरा अवतार, दूसरा अवतार। तड़फने का समय नहीं मिला। ऐसा तड़पे न? वह भी नहीं। देखो! यह अवतार। गिरगिट की काण कौन मांडे? कहा। गिरगिट कहते हैं? क्या कहते हैं तुम्हारे? डॉलर... डॉलर कहते हैं? गिरगिट। आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तो दूसरा भव। पर्दा बन्द हो गया एक भव का, दूसरा पर्दा। भाई! ऐसे अनन्त भव किये, प्रभु! कहा। इस गिरगिट की काण... काण समझे? कौन रोवे उसके पीछे? है कोई रोनेवाला? यहाँ तो हमारा बाप मर गया, हमारा पुत्र मर गया। कहाँ तेरा बाप था? आहाहा!

चैतन्य भगवान अपने अन्तर स्वरूप की कीमत करनेयोग्य हो, स्तुति करनेयोग्य हो, अनुभव करनेयोग्य हो तो यह आत्मा है। ऐसी स्तुति करनेयोग्य का जब भान हो तो अपने आत्मा से भिन्न की स्तुति अपने से अधिक करने में आती नहीं। सबकी कीमत घट जाती है। समझ में आया? चैतन्य की कीमत में पुण्य-पाप के परिणाम और उनके फल और संयोग सबकी कीमत घट जाती है। जब तक पर की कीमत अधिकरूप से है, तब तक अपनी कीमत आती नहीं। यह शब्द शास्त्रकार ने ऐसे कहे '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' ३१ गाथा। '**जो इंदिये जिणित्ता णासहावाधियं मुणदि आदं**' ऐसा कहा। भगवान आत्मा को, ज्ञानानन्दस्वभाव पर से भिन्न अनुभव करे, कीमत करे तो सबकी कीमत उड़ जायेगी, महिमा उड़ जायेगी। तेरे शुभभाव हों (उनकी) महिमा उड़ जायेगी। शुभभाव से बन्ध पड़ता है, महिमा उड़ जायेगी। उसका फल मिला, महिमा उड़ जायेगी। सब तुच्छ हो जायेगा। समझ में आया? इन्द्र के इन्द्रासन अपने स्वभाव की दृष्टि की महिमा में तुच्छ हो जाते हैं। और जब तक पर की महिमा अतिशय विशेषता भासित होती है, तब तक अपनी महिमा का खून करता है। अपने स्वभाव की महिमा अधिक नहीं लगती।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा की पर्याय में ज्ञान का क्षयोपशम विशेष हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग हो और राग की मन्दतारूप क्रिया का आचरण हो, उससे आत्मा प्रगट हो, ऐसा आत्मा ही नहीं। समझ में आया? वह तो अपने अनुभवगम्य एक ही स्वभाव से अनुभवगम्य आत्मा, जिसकी महिमा प्रगट है।

भावार्थ :- शुद्धनय की दृष्टि से देखा जाये तो सर्व कर्मों से रहित चैतन्यमात्र देव अविनाशी आत्मा अन्तरङ्ग में स्वयं विराजमान है। स्वयं अस्ति, मौजूदगी धराता है। भगवान आत्मा चैतन्य अरूपी परन्तु महान पदार्थ है या नहीं? अरूपी महान, महात्मा महात्मा मह-आत्मा। समझ में आया? ... इतने नित्य के शब्द प्रयोग किये। ... नित्य की व्याख्या की। समझ में आया? **अविनाशी आत्मा अन्तरङ्ग में स्वयं विराजमान है। यह प्राणी...** देखो! **पर्यायबुद्धि बहिरात्मा - उसे बाहर ढूँढ़ता है,...** राग में खोजता है, निमित्त में खोजता है, ज्ञान के परलक्ष्यी क्षयोपशम में आत्मा को खोजता है। उसकी महिमा गाकर उसमें खोजता है। लो, अमरचन्दभाई! आहाहा! पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि, रागबुद्धि, विकल्पबुद्धि, एक अंश के प्रगट में महिमावन्त बुद्धि बाहर खोजता है। उसकी महिमा बाहर में आती है। **यह महा अज्ञान है।** जहाँ है, वहाँ महिमा आती नहीं; जहाँ नहीं, वहाँ महिमा आती है, यही अनादि का महान अज्ञान है। समझ में आया? आहाहा!

★ ★ ★

कलश - १३

अब, 'शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है' इस प्रकार आगे की गाथा की सूचना के अर्थरूप काव्य कहते हैं:-

(वसन्ततिलका)

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या,
ज्ञानानुभूति-रिय-मेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मान-मात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात्।।13।।

श्लोकार्थ : [इति] इस प्रकार [या शुद्धनयात्मिका आत्म-अनुभूतिः] जो पूर्वकथित शुद्धनयस्वरूप आत्मा की अनुभूति है [इयम् एव किल ज्ञान-अनुभूतिः] वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है, [इति बुद्ध्वा] यह जानकर तथा [आत्मनि आत्मानम् सुनिष्प्रकम्पम्

निवेश्य] आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके, [नित्यम् समन्तात् एकः अवबोध–घनः अस्ति] 'सदा सर्व ओर एक ज्ञानघन आत्मा है' इस प्रकार देखना चाहिए।

भावार्थ : पहले सम्यग्दर्शन को प्रधान करके कहा था; अब ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं कि शुद्धनय के विषयस्वरूप आत्मा की अनुभूति ही सम्यक्ज्ञान है।।13।।

कलश - १३ पर प्रवचन

अब, 'शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है'... क्या कहते हैं ? देखो ! यह शुद्धनय का विषय जो आत्मा अबद्धस्पृष्ट शुद्ध ध्रुव चैतन्यकन्द आत्मा का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव है। क्या कहते हैं ? सुनो ! आत्मा का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव है। शास्त्र पढ़ना, वह कोई ज्ञान का अनुभव नहीं। आहाहा ! इस १५वीं गाथा में यह कहेंगे। उसका उपोद्घात है। जो शुद्धनय अथवा शुद्धनय का विषय लो, आत्मा शुद्ध ज्ञायक का अनुभव, वही ज्ञान की अनुभूति है। ज्ञान अर्थात् क्या ? ज्ञान शब्द से आत्मा का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव है। आत्मा का अनुभव और ज्ञान का अनुभव अलग है, ऐसा नहीं। नामभेद है। आत्मा का अनुभव अलग और शास्त्रज्ञान का बहुत क्षयोपशम का अनुभव अलग, वे दोनों एक हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया ? इसलिए यह १५वीं गाथा ली है। १४वीं गाथा में दर्शनप्रधान कथन है, १५वीं में ज्ञानप्रधान कथन है।

ज्ञान शब्द से श्रुतज्ञान से आत्मा का अनुभव करना—भाव, वही अनुभूति—ज्ञान की अनुभूति। आत्मा का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव। ज्ञान के अनुभव से रहित भिन्न चीज़ का अनुभव, वह ज्ञान का अनुभव नहीं। **इस प्रकार आगे की गाथा की सूचना के अर्थरूप काव्य कहते हैं :-**

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या,
ज्ञानानुभूति-रिय-मेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मान-मात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात्॥१३॥

श्लोकार्थ :- इस प्रकार जो पूर्वकथित... १४वीं गाथा में जो कहा वह। **शुद्धनयस्वरूप आत्मा...** देखो! यहाँ एकमेक कह दिया। '**शुद्धनयात्मिका आत्म-अनुभूति**' ऐसा कहा न वापस? अभेद कर दिया। ऊपर ऐसा कहा था, शुद्धनय का विषय। यह तो शुद्धनयस्वरूप ही भगवान, जो १४वीं में कहा वह। **जो पूर्वकथित शुद्धनयस्वरूप आत्मा...** सुनो! यह शुद्धनय अभेद, अबद्धस्पृष्ट अभेदस्वरूप आत्मा का अनुभव, **वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है,...** वह ज्ञान की अनुभूति। यहाँ यह बतलाना है कि बाह्य आदि का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया?

टीका में लिखा है। उसमें टीका में (-कलशटीका में) लिखा है। उसमें लिखा है कि कोई ऐसा माने, यह कारण है न? आत्मा का अनुभव, वह ज्ञान का अन्तर अनुभव, वह ज्ञानानुभव। कोई कहे कि .... बारह अंग का ज्ञान कोई अपूर्वलब्धि है। नहीं। बारह अंग का ज्ञान तो परलक्ष्यी ज्ञान है, अपूर्व लब्धि नहीं। समझ में आया? वहाँ डालने का यह कारण है। ज्ञान की अनुभूति कहा है न? इसलिए डाला है। **इस प्रसंग में कोई दूसरा भी संशय होता है कि, कोई जानेगा कि द्वादशांग ज्ञान कोई अपूर्व लब्धि है।** आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग का ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, नदी के पूर की भाँति क्षयोपशम (हुआ तो) वह कोई अपूर्वलब्धि है, ऐसा कोई जानेगा। **उसका समाधान ऐसा है कि द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है।** वह अपूर्व बात नहीं। अपना अनुभव-ज्ञान का अनुभव हुआ, वह ज्ञानानुभूति अपूर्व है। यह कलशटीका में है। क्योंकि ज्ञानानुभूति कहा न? ज्ञानानुभूति वह आत्मानुभूति। आत्मा का अनुभव, शुद्ध ध्रुव का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव। क्षयोपशम ज्ञान हुआ तो ऐसा कि ज्ञान का बहुत क्षयोपशम हुआ, बारह अंग का विकास हुआ तो, अपूर्वलब्धि है। नहीं। कौन कहता है? आहाहा! आत्मा की अन्तर ज्ञानानुभूति। आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव है। उसमें बारह अंग का अनुभव अथवा विकास, वह अपूर्व है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे बारह अंग के क्षयोपशम की अधिकता रहेगी... यद्यपि बारह अंग का ज्ञान सम्यग्दृष्टि को ही होता है। समझ में आया? दूसरे को होता

नहीं। तथापि बारह अंग के ज्ञान की अधिकता नहीं, उसकी महिमा उसे होती नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह आ गया न? विज्ञानघन में आ गया या नहीं अपने ऊपर? कर्ता-कर्म। विज्ञानघन हुआ। ज्ञान चैतन्य में एकाग्र हुआ, बस, वही विज्ञानघन। विकास थोड़ा हो, अरे! ज्ञान का जवाब देना न आवे, प्रश्न-उत्तर न आवे, समझाना न आवे। भले न आवे। परन्तु निज आत्मा ज्ञानानन्द का अनुभव है, उसे ही ज्ञान की अनुभूति कही जाती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे का क्या काम है यहाँ? दूसरा समझता है कहाँ उससे? दूसरे से दूसरा समझता ही नहीं। आहाहा! गजब बात भाई! समझाने में विकल्प है, उससे भी आत्मा को क्या लाभ? विकल्प है। और उससे पर को क्या लाभ? पर को कुछ लाभ नहीं। वह पर तो अपने पुरुषार्थ से काम करता है, तब वाणी को निमित्त कहा जाता है। ऐसी बात है। प्रभु! यह तो वीतरागमार्ग ऐसी कोई चीज़ है। लोग तो एकान्त... एकान्त है, ऐसा ले जाते हैं। सम्यक् एकान्त का नाम ही अनेकान्तस्वरूप है। समझ में आया?

कोई जानेगा कि आत्मानुभव ही मोक्षमार्ग है, आत्मानुभूति ही मोक्षमार्ग है, ज्ञानानुभूति ही मोक्षमार्ग है। आत्मा पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, ऐसा लेकर ज्ञानानुभूति कहा। आत्मा का अनुभव, वह मोक्षमार्ग है। राग व्यवहारनय। और ज्ञानानुभूति ही आत्मानुभूति है। और आत्मानुभूति-ज्ञानानुभूति, वही मोक्षमार्ग है। बारह अंग का ज्ञान कोई मोक्षमार्ग है, परमार्थ है—ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन बात! रामस्वरूपजी!

कोई जानेगा कि द्वादशांगज्ञान कोई अपूर्वलब्धि है। यह बराबर कारणसहित रखा है। बहुत मर्म है। यहाँ अनुभूति ज्ञान की अनुभूति कहनी है न! आत्मा का अनुभव, आत्मा का अनुभव... अज्ञान भले न हो, समझे? परन्तु बारह अंग का व्यवहारिक ज्ञान है। वह वास्तविक ज्ञानानुभूति नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु की अन्तर सन्मुख होकर राग से भिन्न, कर्म से भिन्न अनुभव करना, वही मोक्षमार्ग है। वह दर्शन का विषय तो पहले १४वीं गाथा में कहा। १५वीं (गाथा) में कहना है, उसका

उपोद्घात करते हैं। आत्मानुभूति कहो या ज्ञानानुभूति कहो, इन दो में अन्तर है नहीं। तो ज्ञानानुभूति कहो या आत्मानुभूति कहो। परन्तु ज्ञानानुभूति में ऐसा नहीं आना चाहिए कि बारह अंग का क्षयोपशम हुआ, वह ज्ञानानुभूति है। आहाहा! समझ में आया? देखो!

मुमुक्षु : दोनों हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो से कुछ नहीं होता। यह एक ही अनुभूति मोक्षमार्ग है। बारह अंग का क्षयोपशम तो बीच में एक वैभव है। वैभव, वैभव। वह मुक्ति का मार्ग नहीं। अन्तर में शुद्ध चैतन्य में एकाग्रता होना, वही मुक्ति का मार्ग है—अनुभूति। आहाहा!

कोई जानेगा कि द्वादशांगज्ञान कोई अपूर्वलब्धि है। बहुत पढ़ा, गुना, बारह अंग पढ़ा तो ओहो! **उसका समाधान इस प्रकार है कि द्वादशांगज्ञान भी विकल्प है। उसमें भी ऐसा कहा है...** अब देखो! बारह अंग में भी ऐसा कहा है कि **शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है।** ऐसा कहा है, उसमें ऐसा कहा है। बारह अंग में ऐसा कहा है। भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति का अनुभव करो, ऐसा बारह अंग में कहा है। समझ में आया? आहाहा! बारह अंग में ऐसा नहीं कहा कि व्यवहार, वह मुक्ति का मार्ग है। ऐसा बारह अंग में ऐसा नहीं कहा। हमारा बारह अंग का ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग, ऐसा बारह अंग में नहीं कहा—ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! समझ में आया? बारह अंग कोई अपूर्वलब्धि नहीं। बारह अंग का ज्ञान सम्यग्दृष्टि को ही होता है, तथापि वह इस अनुभूति की अपेक्षा से अपूर्व नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान चैतन्यस्वरूप पूरा आनन्द की डली, गाँठ, उसमें एकाकार होकर आत्मा का अनुभव होना, वही ज्ञानानुभूति है, वही ज्ञानानुभूति। आत्मानुभूति और ज्ञानानुभूति कोई अलग चीज़ है, (ऐसा नहीं)। ज्ञानानुभूति में ज्ञान की विशेषता हुई तो ज्ञानानुभूति है, (ऐसा नहीं)। ज्ञान की विशेषता क्षयोपशम में हुई तो ज्ञानानुभूति है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे... भगवान! तेरे ज्ञान की अन्तर महिमा की बात करते हैं। समझ में आया? भगवान चैतन्यप्रभु को अन्तर स्पर्श करके अनुभव करे, बस, यही एक मोक्षमार्ग है, और इसे ही ज्ञानानुभूति कहते हैं। आत्मानुभूति—आत्मा का अनुभव रागरहित,

पररहित का अनुभव मोक्षमार्ग है, उसे ज्ञानानुभूति कहते हैं। ज्ञानानुभूति, वह मोक्षमार्ग। बारह अंग की अधिकता हुई तो यहाँ अनुभव में विशेषता हुई, ऐसा है नहीं। समझ में आया? हिम्मतभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? देखो यह! यह कलशटीका में आया है। कलशटीका की बात चलती है। देखो! **उसमें भी ऐसा कहा है...** गजब परन्तु! बनारसीदास ने कहा न? 'पांडे राजमल जैनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी।' मर्म खोला है। आत्मानुभूति अर्थात् ज्ञानानुभूति। और ज्ञानानुभूति अर्थात् बारह अंग का ज्ञान, वह ज्ञानानुभूति नहीं। बारह अंग का जो व्यवहारिक ज्ञान हो, उसमें भी ऐसा कहा है कि आत्मा का अनुभव, वह ज्ञानानुभूति, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। द्वादशांग में ऐसा कहा है कि हमारा ज्ञान, वह मोक्षमार्ग नहीं। और शुभराग हमारी ओर उठे, वह भी मोक्षमार्ग नहीं। द्वादशांग में ऐसा कहा है। भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा देवाधिदेव ने बारह अंग में ऐसा फरमाया है कि भगवान शुद्ध चैतन्यप्रभु... एक मेंढ़क-मेंढ़क भी ज्ञानानुभूति करता है। नौ तत्त्व के नाम भी न आवे। ओहोहो! ज्ञानानुभूति मोक्षमार्ग है, ऐसा यहाँ बताते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो, शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है? उसे उघाड़ हो तो उसके साथ क्या सम्बन्ध है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। इसलिए शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पठन की कोई अटक (बन्धन) नहीं। कोई प्रतिबन्ध नहीं उसे कि वाँचना। सब सार आ गया। समझ में आया? आहाहा! सेठी! क्या है? कड़क कहते हैं। निकाल डालो यह फेरफार है। अब निकाल डालेगा तू, सुन न! आत्मा निकल जायेगा। यह तो वस्तु की स्थिति कहते हैं। **शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पठन की कोई अटक (बन्धन) नहीं।** इस श्लोक का अर्थ है न कलशटीका में? कलशटीका तो तुम ले गये हो। तुम वाँचते नहीं। वाँचे कहाँ? समय कहाँ मिले? घर में कोई वाँचता है या नहीं? डालचन्दजी या कोई? दाँत निकालते (हँसते) हैं, लो। वहाँ संग्रह कर रखना? पैसा संग्रह कर रखे, वैसे यह पुस्तकें संग्रह कर रखना? पृष्ठ खोलकर वाँचना। यह समझ में

नहीं आता। यहाँ आवे तो (खबर पड़े कि) इसका अर्थ तो दूसरा हुआ, अपने तो दूसरा कुछ समझते थे। ऐसी तुलना हो तो कुछ महिमा आवे। कहो, अमरचन्दभाई! अमरचन्दभाई वहाँ से—घर से वाँचकर आते हैं, हों! आहाहा!

भाई! प्रभु! तेरा मार्ग कोई अलौकिक है! उसमें पर की अपेक्षा रागादि, उघाड़ आदि की, वह कहीं मोक्षमार्ग है? कहते हैं। द्वादशांग में भगवान ने, श्रुतकेवली के ज्ञान में भी ऐसा कहा है। समझ में आया? भाई! बारह अंग का सार और बारह अंग में कहा कि तू भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यज्योति का अनुभव, ज्ञान की अनुभूति, (वह मोक्षमार्ग है)। क्षयोपशम भले पर को जानने का थोड़ा हो, परन्तु अपने ज्ञान का अनुभव करता है, वही मोक्षमार्गी है। समझ में आया? यह तो कोई आत्मा के अनुभव बिना ज्ञान के क्षयोपशम में अधिक मान ले, उसे तो बारह अंग का ज्ञान होता नहीं, परन्तु नौ पूर्व और ग्यारह अंग हो और मान ले कि अपने को तो बहुत ज्ञान हुआ, बहुत ज्ञान हुआ। मिथ्यादृष्टि है। यह महिमा, बाह्य लक्षी क्षयोपशमज्ञान की महिमा आयी, ऐसा कहते हैं। ऐ... नेमचन्दभाई! नेमचन्दभाई क्या समझे? आहाहा!

ज्ञान का क्षयोपशम विशेष हो, इसलिए वह आत्मार्थी है और ज्ञान का धर्म उसे प्रगट हुआ है, ऐसा है नहीं। और ज्ञान का क्षयोपशम थोड़ा परन्तु अनुभूति है तो मोक्षमार्ग है, मोक्षमार्गी है। आहाहा! अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करेगा। आहाहा! यह तो अभी जैसे पैसे की महिमा, स्त्री, पुत्र की महिमा (आवे), वैसे यहाँ क्षयोपशम की महिमा उड़ा देते हैं। परलक्ष्यी क्षयोपशम की महिमा उड़ा देते हैं। समझ में आया? (परलक्ष्यी क्षयोपशम की) महिमा उड़ा देते हैं।

मुमुक्षु : शास्त्र का अभ्यास....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र का अभ्यास करे, वह तो करे। नहीं किया, इसकी अपेक्षा करे। वह आवे, वह अलग बात है, परन्तु उससे आत्मा अनुभव और मोक्षमार्ग है, ऐसी बात नहीं है। क्या है?

मुमुक्षु : पहिचानना....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहिचानना कहा न यहाँ? अभी ७५वीं गाथा में दोपहर में क्या

आता है ? कल से तो अभी आये हैं। कहो, समझ में आया ? बराबर ७५ में आये हैं। गाथा ऊँची है। उसमें सब गाथा ऊँची है। ७५, ७६ बहुत अच्छी है। बराबर (आये हो)। यह चार गाथा, पाँच गाथा तो ऐसी आयेगी... ओहोहो! समझ में आया ?

पूर्वकथित शुद्धनयस्वरूप आत्मा की अनुभूति है, **वही वास्तव में ज्ञान की...** यहाँ वजन यह देना है। '**आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।**' आहा! यह तो आत्मा का अन्तर अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव है। ज्ञान की अनुभूति कही, इसलिए क्षयोपशमज्ञान की महिमा कराते हैं, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यह जानकर तथा आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके,... देखो! यह जानकर '**आत्मानमात्मनि**' आत्मा में आत्मा को। आत्मा में आनन्दकन्द शुद्ध में आत्मा को—निर्विकल्पदशा को स्थिर करके। **स्थापित करके, 'सदा सर्व ओर एक ज्ञानघन आत्मा है'....** सदा सर्व ओर एक ज्ञानघन आत्मा है... **इस प्रकार देखना चाहिए।** सदा सर्व ... एक ज्ञानघन आत्मा है, ऐसा अनुभव करना। देखने का अर्थ अनुभव करना। ऐसे अन्तर में एक ज्ञानघन चैतन्यस्वरूप चैतन्यसूर्य ज्ञानघन विज्ञानघन है, उसे अनुभव करना, इसका नाम ही आत्मा की अनुभूति कहते हैं। इसका नाम ज्ञानानुभूति कहते हैं। समझ में आया ? समझ में आया या नहीं ? जयन्तीभाई! वहाँ तो व्याख्यान करते थे, शीघ्र बोलते थे। भारी व्याख्यानी! आहाहा! व्याख्यान करना न आवे तो उसे आत्मा की अनुभूति हो तो वह नहीं ? व्याख्यान करता वह तो दूसरी चीज़ है, विकल्प है और वाणी की लीला है। आत्मा की लीला कहाँ उसमें आयी ? समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाख, पाँच-दस लाख आवे, उसमें आत्मा में क्या (आया) ? दस लाख लोग सुनें। ढाई-ढाई लाख, तीन-तीन लाख लोग सुनें, यहाँ जवाहरलालजी आते थे तब। जवाहरलाल का क्या, समझने जैसा था। परलोक को मानते थे या नहीं, समझने जैसा था। लोग तो सब भेड़ सब इकट्ठे हों। घेटा समझे न ? भेड़चाल से, उसमें क्या है ? पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख लोग। गाँधीजी की सभा में कहते हैं कि

दस-दस लाख (लोग)। यह तुम्हारे क्या कहलाता है? आजाद मैदान अपने था न? अपने व्याख्यान करते थे वह। दस-दस लाख लोग। लालबहादुर (शास्त्री) आये, तब अभी आये थे, कहते हैं। गुजर जाने से पहले। दस लाख लोग। परन्तु उसमें क्या हुआ? है उसमें क्या? और बोलना आया, उसमें क्या? वह तो झूठी लौकिक लाईन है, परन्तु शास्त्र वाँचकर बोलना आवे, उसमें क्या? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जिसे आत्मा के अनुभव से अधिक बाह्य क्षयोपशम की महिमा लगती है, उसे आत्मा की अनुभूति की महिमा है ही नहीं। अन्दर में उसकी महिमा है नहीं। वह तो बाहर की महिमा गाता है। समझ में आया? अपने **आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके,...** बस, यह अनुभूति वह आत्मा। यह बारह अंग के ज्ञान में कहा हुआ भाव। **'सदा सर्व ओर एक ज्ञानघन आत्मा है' इस प्रकार देखना चाहिए।**

भावार्थ :- पहले सम्यग्दर्शन को प्रधान करके कहा था;... १४वीं में। **अब ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं...** बस, बात तो एक ही है। सम्यग्दर्शन को मुख्य करके १४वीं गाथा में कहा, यह **ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं कि शुद्धनय के विषयस्वरूप आत्मा की अनुभूति ही सम्यक्ज्ञान है।** यह १५वीं गाथा में कहेंगे।

★ ★ ★

गाथा - १५

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं[1] पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।15।।

य: पश्यति आत्मानं अबद्धस्पृष्टमनन्यमविशेषम्।
अपदेशसान्तमध्यं पश्यति जिनशासनं सर्वम्।।15।।

येयमबद्धस्पृष्टस्यानन्यस्य नियतस्याविशेषस्यासंयुक्तस्य चात्मनोऽनुभूति: सा खल्व-खिलस्य जिनशासनस्यानुभूति: श्रुतज्ञानस्य स्वयमात्मत्वात्, ततो ज्ञानानुभूतिरेवात्मानुभूति:।

किन्तु तदानीं सामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यामनुभूयमानमपि ज्ञानम-बुद्धलुब्धानां न स्वदते।

तथा हि – यथा विचित्रव्यञ्जनसंयोगोपजातसामान्यविशेषतिरोभावा-विर्भावाभ्या-मनुभूयमानं लवणं लोकानामबुद्धानां व्यञ्जनलुब्धानां स्वदते, न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजात-सामान्यविशेषाविर्भावतिरोभावाभ्यां, अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं लवणं तदेव सामान्याविर्भावेनापि।

तथा विचित्रज्ञेयाकारकरम्बितत्वोपजातसामान्यविशेषतिरोभावाविर्भावा-भ्यामनुभूयमानं ज्ञानमबुद्धानां ज्ञेयलुब्धानां स्वदते, न पुनरन्यसंयोगशून्यतोपजात-सामान्यविशेषाविर्भाव-तिरोभावाभ्यां, अथ च यदेव विशेषाविर्भावेनानुभूयमानं ज्ञानं तदेव सामान्याविर्भावेनापि। अलुब्धबुद्धानां तु यथा सैन्धवखिल्योऽन्यद्रव्यसंयोग-व्यवच्छेदेन केवल एवानुभूयमान: सर्वतोऽप्येकलवणरसत्वाल्लवणत्वेन स्वदते, तथात्मापि परद्रव्यसंयोगव्यवच्छेदेन केवल एवानुभूयमान: सर्वतोऽप्येकविज्ञान-घनत्वात् ज्ञानत्वेन स्वदते।।15।।

अब, इस अर्थरूप गाथा कहते हैं :-

अनबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जो अविशेष देखे आत्म को,
वो द्रव्य और जु भाव, जिनशासन सकल देखे अहो।।१५।।

---

1. पाठान्तर – अपदेससुत्तमज्झ।

गाथार्थ : [यः] जो पुरुष [आत्मानम्] आत्मा को [अबद्धस्पृष्टम्] अबद्धस्पृष्ट, [अनन्यम्] अनन्य, [अविशेषम्] अविशेष (तथा उपलक्षण से नियत और असंयुक्त) [पश्यति] देखता है, वह [सर्वम् जिनशासनं] सर्व जिनशासन को [पश्यति] देखता है – जो जिनशासन [[1]अपदेशसांतमध्यं] बाह्य द्रव्यश्रुत तथा अभ्यन्तर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है।

टीका : जो यह अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे पाँच भावस्वरूप आत्मा की अनुभूति है, वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है, क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है। इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है। परन्तु अब वहाँ, सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना) और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव (आच्छादन) से जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है, तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है, तथापि जो अज्ञानी हैं – ज्ञेयों में आसक्त हैं, उन्हें वह स्वाद में नहीं आता। यह प्रगट दृष्टान्त से बतलाते हैं :

जैसे – अनेक प्रकार के शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव और विशेष लवण के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला जो (सामान्य के तिरोभावरूप और शाकादि के स्वाद भेद से भेदरूप–विशेषरूप) लवण है, उसका स्वाद अज्ञानी, शाक लोलुप मनुष्यों को आता है; किन्तु अन्य की सम्बन्धरहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला जो एकाकार अभेदरूप लवण है, उसका स्वाद नहीं आता; और परमार्थ से देखा जाये तो, विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण ही सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण है। इस प्रकार – अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव और विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (विशेषभावरूप, भेदरूप, अनेकाकाररूप) ज्ञान वह अज्ञानी, ज्ञेय–लुब्ध जीवों के स्वाद में आता है किन्तु अन्य ज्ञेयाकार की संयोग रहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला एकाकार अभेदरूप ज्ञान स्वाद में नहीं आता, और परमार्थ से विचार किया जाये तो, जो ज्ञान विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आता है, वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है। अलुब्ध ज्ञानियों को तो, जैसे सैंधव की डली, अन्य द्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके केवल सैंधव का ही अनुभव किये जाने पर, सर्वतः

1. अपदेश = द्रव्यश्रुत; सान्त=ज्ञानरूपी भावश्रुत।

एक क्षाररसत्व के कारण क्षाररूप से स्वाद में आती है, उसी प्रकार आत्मा भी, परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके केवल आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर, सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण ज्ञानरूप से स्वाद में आता है।

भावार्थ : यहाँ आत्मा की अनुभूति को ही ज्ञान की अनुभूति कहा गया है। अज्ञानीजन ज्ञेयों में ही–इन्द्रियान के विषयों में ही–लुब्ध हो रहे हैं; वे इन्द्रियज्ञान के विषयों से अनेकाकार हुए ज्ञान को ही ज्ञेयमात्र आस्वादन करते हैं, परन्तु ज्ञेयों में भिन्न ज्ञानमात्र का आस्वादन नहीं करते। और जो ज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त नहीं हैं, वे ज्ञेयों से भिन्न एकाकार ज्ञान का ही आस्वाद लेते हैं – जैसे शाकों से भिन्न नमक की डली का क्षारमात्र स्वाद आता है, उसी प्रकार आस्वाद लेते हैं, क्योंकि जो ज्ञान है, सो आत्मा है और जो आत्मा है, सो ज्ञान है। इस प्रकार गुण–गुणी की अभेद दृष्टि में आनेवाला सर्व परद्रव्यों से भिन्न, अपनी पर्यायों में एकरूप निश्चल, अपने गुणों में एकरूप, परनिमित्त से उत्पन्न हुए भावों से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव, ज्ञान का अनुभव है; और यह अनुभवन भावश्रुतज्ञानरूप जिनशासन का अनुभवन है। शुद्धनय से इसमें कोई भेद नहीं है।

गाथा – १५ पर प्रवचन

अब, इस अर्थरूप गाथा कहते हैं :-

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

आहाहा! जिसने आत्मा ऐसा अनुभव किया, उसने पूरा जैनशासन देखा, कहते हैं। पूरा जिनशासन देखा। समझ में आया? ओहोहो! कथन की पद्धति, वह भी मूल मार्ग को टच करे ऐसी कुन्दकुन्दाचार्य की पद्धति!

अनबद्धस्पृष्ट, अनन्य, जो अविशेष देखे आत्म को।
वो द्रव्य और जु भाव, जिनशासन सकल देखे अहो॥१५॥

पाठ में... देखो! पहले अर्थ लेते हैं। क्योंकि (टीका) में द्रव्यश्रुत नहीं आता। टीका में तो अकेला भावश्रुत ही आयेगा। अन्वयार्थ लो।

गाथार्थ :- जो पुरुष आत्मा को अबद्धस्पृष्ट,... १४वीं में कहे थे, वे ही शब्द हैं।

अनन्य,... आकृति का अन्यपना नहीं। **अविशेष (तथा उपलक्षण से नियत और असंयुक्त)...** ले लेना। इस गाथा पर बड़ी चर्चा हुई थी। इसमें तीन बोल हैं तो कुछ विशेषता है, फलाना है... फलाना है —ऐसा चलता था। विशेषता कुछ नहीं। वह तो दूसरा '**अपदेससंत**' शब्द आया है तो दूसरे दो बोल समेट लिये हैं। वरना पाँच बोल हैं। १४वीं गाथा में जैसा कहा था, वैसे पाँचों ही हैं। अमृतचन्द्राचार्य की टीका में है। टीका में आयेगा, देखो! अमृतचन्द्राचार्य की टीका में है।

भगवान आत्मा... पहले दर्शन प्रधानता से कहा था। कर्म के सम्बन्धरहित, आकृति द्रव्य की व्यंजनपर्याय अनेक अनेकता से रहित, अर्थपर्याय की हीनाधिकता से रहित, गुणभेद से रहित सामान्य और आकुलता से रहित अनाकुल, इतना। ऐसे आत्मा की अनुभूति को सम्यग्दर्शन कहा था। जो ऐसे पाँच को देखता है, वह सर्व जिनशासन को देखता है, लो। समझ में आया? **कि जो जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत तथा अभ्यन्तर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है।** जैनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत में भी ऐसा कहा है। द्रव्यश्रुत में ऐसा कहा है। भावश्रुत तो जो अनुभव है, वह भावश्रुत है। क्या कहते हैं यह शब्द रखकर? '**अपदेस**' नीचे अपने किया है। '**अपदेससुतमज्झं**'। द्रव्यश्रुत, '**सान्त**' ज्ञानरूप भावश्रुत। द्रव्यश्रुत में भी यह कहा है। भगवान की वाणी में। यहाँ बारह अंग में आया न? बारह अंग में द्रव्यश्रुत में भी यह कहा है कि तेरा अनुभव, वही आत्मानुभूति, वह मोक्षमार्ग और ज्ञानानुभूति। और अनुभूति, वह भावश्रुत, यह जैनशासन प्रत्यक्ष है। क्या कहा?

शास्त्र जो द्रव्यश्रुत है, उसमें आत्मा की अनुभूति-ज्ञानानुभूति को अनुभव कहा, मोक्षमार्ग कहा। उस द्रव्यश्रुत में निमित्त में कथन भी अन्दर में ऐसे आये हैं। ऐसा वाच्य प्रगट हुआ, उसे भाव जैनशासन कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यश्रुत कहाँ से बड़ा आया? यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार द्रव्यश्रुत जो आया उसमें भी क्या कहा? कि आत्मा की अनुभूति करना, ऐसा द्रव्यश्रुत में कहा। यह जो कलशटीका में अनुभूति आ गयी वह। यह तो इन्होंने बराबर मेल मिलाया है। गजब टीका! मर्म की टीका की है!! वर्तमान अपने अभिमान के कारण,

पहले के पण्डित का जो मर्म है, उसकी महिमा आती नहीं। समझ में आया? पहले से इन्होंने ले लिया। बारह अंग में ऐसा कहा है। ऐसा यहाँ '**अपदेस**' शब्द में बारह अंग में ऐसा कहा। कथन में यह आया है। अन्तर अखण्ड अबद्धस्पृष्ट का अनुभव, वह ज्ञानानुभूति। उससे समस्त जिनशासन भावश्रुत प्रगट हुआ। भावश्रुत से ऐसा जाना। वह भावश्रुत जैनशासन है। समझ में आया? जैनशासन कोई द्रव्य नहीं, हों! द्रव्य तो ऐसा देखा। परन्तु देखा ऐसा जो भावश्रुतज्ञान, वही जैनशासन है। भावश्रुतज्ञान वीतरागी ज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। द्रव्यश्रुतज्ञान में ऐसा कहा था कि तेरा आत्मा पूर्णानन्द अखण्ड अभेद का अनुभव करो। वह अनुभव हुआ, भावश्रुत हुआ, वह जैनशासन है। समझ में आया? और द्रव्यश्रुत में उसी जैनशासन का कथन है। आहाहा! देखो! कोई कहे कि जैनशासन में करणानुयोग में अलग कथन है और चरणानुयोग में अलग है, द्रव्यानुयोग में अलग है और कथानुयोग में अलग है (तो) ऐसा नहीं।

द्रव्यश्रुत—चार अनुयोग में ऐसा कहा है कि भगवान आत्मा के सन्मुख होकर अनुभव करो, वही मोक्षमार्ग है। बारह अंग में चार अनुयोग में यह कहा गया है। बारह अंग में दूसरे कोई अनुयोग रह जाते हैं? आहाहा! समझ में आया? अभी कहते हैं न? पहले प्रथमानुयोग में ऐसा है। उसमें यह कहा है। '**अपदेससंत**' वीतराग की जो बारह अंग की वाणी आयी, दिव्यध्वनि में ऐसा आया। त्रिलोकनाथ परमेश्वर। समझ में आया?

'**अपदेस**' कथन द्रव्यश्रुत वीतराग की वाणी ऐसी आयी और उसके शास्त्र की रचना हुई। गणधर ने उन बारह अंग में ऐसा कहा है। अनुभव आत्मा अन्तरस्वरूप राग से रहित, भेद से रहित स्वभाव का अनुभव चैतन्यमूर्ति की अनुभूति करो। इसका नाम भावश्रुत, इसका नाम भाव जैनशासन है। ऐसे भाव जैनशासन का कथन द्रव्यश्रुत में यह कथन आया है। चाहे जितनी द्रव्यश्रुत की वाणी हो। कथा की, करणानुयोग की... समझ में आया? चरणानुयोग की, परन्तु उसमें यह आया है। आहाहा! चाहे कोई भी शास्त्र हो, उसमें से यह निकालना चाहिए और किसी भी शब्द में, शास्त्र के शब्द में, अनुभूति करना, यही उसमें आया है। कोई कहा हो कि यह राग है। परन्तु वह राग समझाया है तो उस राग से हटकर अनुभूति करना, उसके लिये राग समझाया है। कोई भी सूत्र, कोई भी गाथा, कोई भी शास्त्र, कोई भी वार्ता। समझ में आया? उसमें यह

कहा है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, द्रव्यश्रुत में चारों ही अनुयोग में, दिव्यध्वनि की वाणी की रचना में और वाणी में। समझ में आया? भगवान आत्मा का अनुभव करो। यही मोक्षमार्ग है, यह एक ही मोक्षमार्ग है, यही मोक्षमार्ग है, ऐसा वाणी में आया है।

देखो! कोई कहते हैं न कि टोडरमलजी ने दो मोक्षमार्ग कहे हैं। यहाँ इनकार करते हैं। खोटा है। परन्तु यह बारह अंग में एक ही मोक्षमार्ग (कहा है), भाई! यह क्या कहते हैं? आहाहा! अरे! भगवान! बापू! तुझे अभी बाहर की बात ही ऐसी जहाँ अन्तर की आवे वह सुहाती नहीं, रुचती नहीं, वहाँ अन्दर नहीं पहुँच सकेगा, भाई! आहाहा! ऐसे के ऐसे अवतार करके मर गया। शास्त्र के बहाने थाप-उत्थाप करके खो गया। खोवाई गया को क्या कहते हैं? खो दिया, आत्मा को खो दिया। समझ में आया? खो दिया। आहाहा!

१५वीं गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के श्रीमुख से ऐसी वाणी आयी कि जो द्रव्यश्रुत है, हम जो श्रुत कहते हैं, भगवान ने जो श्रुत कहा, चार अनुयोग कहे, तो उसमें बारह ही अंग में मूलभूत सारभूत ऐसा आया है कि भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करो। द्रव्यश्रुत को छोड़ो, विकल्प छोड़ो, उसका लक्ष्य छोड़ो। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब हुई रामायण गया। हो गयी रामा रामड़ी। समझ में आया? वह कहे कि कितनी रामायण वाँची? खबर नहीं? कि रावण ने ली रामड़ी, यह राम ने तोड़ी गामड़ी, हो गयी रामा रामड़ी। इतने में रामायण आ गयी? इतने में आ गयी। यह लंका में ली रामड़ी। रामड़ी अर्थात् सीता। रावण ने ली रामड़ी, राम ने मारी गामड़ी, हो गयी रामा रामड़ी। राम रामड़ी (सीता) इकट्ठे हो गये। सीता और राम। ऐ... सेठ! पूरी रामायण में ऐसा कहना था। शोभालालजी! भाषा वापस ऐसी है, रावण ने ली रामड़ी। रामड़ी अर्थात् सीता। यह राम ने मारी गामड़ी। लंका तोड़ी। हो गयी रामा रामड़ी। सीता राम के पास आ गयी, जाओ। रामायण पूरी हो गयी। समझ में आया?

इसी प्रकार बारह अंग में भगवान आत्मा की एकाग्रता करना। हो गया सब शास्त्र का सार। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १०, रविवार, दिनांक - ०९-१०-१९६६
गाथा-१५, प्रवचन - ७१

देखो! क्या कहते हैं? इस आत्मा को कर्म के बन्ध के सम्बन्ध से भिन्न और विकार के परिणाम से भी भिन्न, आकृति-द्रव्य के पर्याय की अनेक आकृति होती है, उससे भी भिन्न और पर्याय में-अवस्था में हीनाधिकता होती है, उससे भिन्न (और) एकरूप, ऐसे आत्मा को अन्तर में दृष्टि करके अनुभव करे, उसका नाम अनुभूति-भावश्रुत और जैनशासन कहा गया है। समझ में आया? शास्त्र में भी यह कहा है। चार अनुयोग में भी यह कहा है। चाहे तो करणानुयोग हो। '**अपदेससंत**' शब्द है। चाहे तो करणानुयोग हो, चरणानुयोग हो, कथानुयोग हो, द्रव्यानुयोग हो, भगवान की वाणी में जो अनुयोग आये, उनमें साररूप यह कहा है कि यह भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त बेहद अपरिमित ज्ञान-दर्शन के सागरस्वरूप है। पर्याय के भेद से, संयोग के सम्बन्ध से रहित अभेद चैतन्य का अनुभव करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन। यह तो १४वीं (गाथा) में कहा। यहाँ तो कहते हैं, अनुभूति का नाम ही भावश्रुत, शुद्धउपयोग और वही जैनशासन, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। समझ में आया? यह ज्ञानप्रधानता से कथन है। अनुभूति।

शास्त्र में भी यह कहा और वाच्य में भी यह आया। समस्त जैनशासन का सार (यह है)। तो जैनशासन क्या? जैनशासन कोई द्रव्य-गुण नहीं, जैनशासन कोई राग नहीं, जैनशासन किसी संयोग में नहीं रहता। जैनशासन व्यवहार राग का विकल्प (नहीं)। देखो! व्यवहाररत्नत्रय, वह जैनशासन नहीं, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! यह प्रतिमा और यह मूर्ति और यह सब पूजा, दान और दया, यह भाव जैनशासन नहीं। यह रागादि आते हैं, उन्हें उपचार से व्यवहार से जैनशासन कहा जाता है। व्यवहार से यह ... और डाला है न वापस। समझ में आया? शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि, दया, दान या पंच महाव्रत आदि के परिणाम या देव-

गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, ज्ञान और महाव्रत—इन सबको उपचार, व्यवहार आरोपित जैनशासन कहा गया है। कब? कि यदि निश्चय जैनशासन प्रगट हुआ हो तो। समझे? बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है, हों! माणेकचन्दजी! यह बीड़ी में तो कुछ ध्यान न रखे तो भी समझ में आये। उसमें कुछ (नहीं), वह की वह बात पूरे दिन। बीड़ी इतने लेने के और इतने देने के। उसमें कुछ मस्तिष्क का काम है? उसमें कुछ धूल जैसा मस्तिष्क नहीं। गिनती की बातें करे। ऐसा हुआ और पाँच लाख आये और दस लाख आये और धूल लाख आये।

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त वीतरागस्वभाव से भरपूर पूर्ण है। अब यह अबद्धस्पृष्ट की व्याख्या आयी। कर्म के सम्बन्ध से रहित, पुण्य-पाप के रागरहित, भेदरहित, पूर्ण वीतराग अविकारीस्वभाव समभावीस्वभाव से भरपूर आत्मा का अनुभव। उसका अनुभव, यह वीतरागी पर्याय श्रुतज्ञान और उसे जैनशासन कहा जाता है। समझ में आया?

जो यह अबद्धस्पृष्ट,... भगवान कर्म के बन्ध और स्पर्श से रहित है। **अनन्य...** अन्य-अन्य नारकी, देवादि की जो पर्याय-व्यंजनपर्याय द्रव्य की दिखती है, उससे रहित अनन्य एकरूप। **नियत...** पर्याय में ज्ञानादि की, दर्शनादि की हीनाधिकता दिखती है, उससे रहित नियत अर्थात् एकरूप। **अविशेष...** गुणभेद विकल्प में आते हैं कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है—ऐसे भेद से रहित अविशेष सामान्यरूप। **और असंयुक्त...** विकल्प की आकुलता-दु:ख से रहित। **ऐसे पाँच भावोंस्वरूप...** ऐसे पाँच भावोंस्वरूप। पाँच भावोंस्वरूप (कहा), परन्तु है एक स्वरूप, हों! वापस पाँच भाव प्रकार (ऐसा नहीं)। यहाँ तो पाँच भावोंस्वरूप एक समय में एकरूप (कहना है)। समझ में आया?

ऐसे पाँच भावस्वरूप आत्मा की अनुभूति... अर्थात् भगवान आत्मा कर्म सम्बन्ध से रहित—एक बोल। भेद से रहित—दूसरा बोल। परन्तु एक समय में साथ में है, हों! क्रम नहीं। नियत अर्थात् अनियत से रहित नियत, विशेषरहित सामान्य, संयुक्तपना से रहित असंयुक्त। है एक समय में पाँच बोल। पर से रहित एक स्वरूप भगवान आत्मा, एकस्वरूपी आत्मा की अनुभूति—उसका अनुभव। यहाँ ज्ञानप्रधान कथन है न! उसका

भावश्रुतज्ञान में अनुभव। शास्त्रज्ञान पर से हो, वह नहीं। सम्यग्ज्ञान, जो भावश्रुत, जो समाधिरूप, शान्तिरूप है, ऐसे भावश्रुत द्वारा त्रिकाल चैतन्य को अनुभव में-अनुभूति में लेना, वह अनुभूति **निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है,...** वह अनुभूति... भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप अभेद है, उसका अभेद अनुभूति का भाव—भावश्रुतज्ञान, वह निश्चय से **अनुभूति है, वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है,...** समझ में आया? अन्दर आओ, धूप में बैठे हैं....

देखो! सम्पूर्ण जिनशासन किसे कहते हैं? जैनशासन वह पर्याय है, वीतरागी पर्याय है। समझ में आया? जैनशासन कहीं बाहर नहीं रहता। आत्मा में जो अनन्त शुद्धता, आनन्द है, पूर्णानन्द प्रभु के आश्रय से पर के भेद से रहित, अभेद अनुभूति भाव-चैतन्यस्वभावभाव का भावश्रुत में अनुभूति होना, अनुभव करना, वीतरागी पर्याय का शान्ति का श्रुतज्ञान की पर्याय में वेदन करना, उसका नाम जैनशासन, जैनधर्म कहा जाता है। समझ में आया?

आत्मा की अनुभूति। भगवान आत्मा कौन तब? यहाँ दो शब्द पड़े हैं न? आत्मा की अनुभूति। भगवान आत्मा अकेला समस्वभाव शान्त समाधि स्वरूप से पूर्ण भरपूर है। उसके सन्मुख, रागादि भेद से विमुख, स्वभाव के एकत्व से आत्मा का अनुभव करना, वेदन में शान्ति का आना और शुद्ध उपयोग (होना), अन्तर द्रव्य में लग जाना, उसकी अनुभूति है, वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति, वह समस्त जिनशासन की दशा है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : जिनशासन....

पूज्य गुरुदेवश्री : जिनशासन अर्थात् वीतरागी भाव। जिनशासन अर्थात् वीतरागी भाव। जिनशासन, जिन की शिक्षा, जिन का ज्ञान, वीतरागी ज्ञान। समझ में आया? बात जरा सूक्ष्म है, अभी आयेगा।

आत्मा ही, जैनशासन की पर्याय का—अनन्त पर्याय का पिण्ड ही आत्मा है। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया? यह तो भावश्रुत की प्रगट पर्याय को ही जैनशासन कहते हैं। परन्तु ऐसी-ऐसी भावश्रुत पर्याय आत्मा में बहुत पड़ी है। और

केवलज्ञान की पर्याय उसमें पड़ी है। यहाँ तो अभी शासन भावश्रुत को कहते हैं। साधकदशा में लेना है न! समझ में आया? अपना ज्ञान उपयोग जो परसन्मुख अनादि से झुका हुआ है, उस ज्ञान को अन्तर में झुकाकर शुद्ध ध्रुव में एकत्व का होना, वह पर्याय जो प्रगट होना, उसका नाम आत्मा की अनुभूति, आत्मा को अनुसरकर होनेवाली वीतरागी ज्ञान और वीतरागदशा। वह वास्तव में समस्त जिनशासन की अनुभूति है। वीतरागी ज्ञान और वीतरागीदशा। भावश्रुत वीतरागी ज्ञान है। द्रव्यश्रुत है, वह विकल्पात्मक रागादि है। आहाहा! विशिष्टता तो यह कहते हैं, यहाँ व्यवहार है, वह जैनशासन नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाव व्यवहार हो, परन्तु वह व्यवहार उपचार से, व्यवहार से, अभूतार्थनय से उसे शासन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो पर्याय में दो भेद बताते हैं। वस्तु तो भूतार्थ है।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त श्रद्धा, स्थिरता समाधिस्वरूप है। उस ओर का आदर करना, वह तो महान भावश्रुत की अनन्त अपरिमित, पर्याय में भी अनन्त पुरुषार्थ गति है। समझ में आया? सूझ कुछ पड़ती नहीं कि यह क्या करने का है? बाहर का करना नहीं, राग का करना नहीं, द्रव्यश्रुत का पढ़ना, वह भी नहीं, पंच महाव्रत के विकल्प, वे जैनशासन नहीं। सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव सीधा आता है, द्रव्यश्रुत पढ़े बिना। ऐसा है। समझ में आया? द्रव्यश्रुत का जो लक्ष्य हुआ, वह लक्ष्य छोड़कर, लक्ष्य छोड़कर, स्व का लक्ष्य करे तो भावश्रुत होता है। उसे साथ लेकर भावश्रुत होता नहीं। सेठी! गजब बात, भाई!

वह निश्चय से समस्त... समस्त जिनशासन... इतनी भाषा है न। समस्त शब्द पड़ा है न? '**जिणसासणं सव्वं**' समस्त जिनशासन। ओहोहो! पर्याय भावश्रुत और रागरहित समाधि और शान्ति। स्वभाव-सन्मुख से वह अनुभव उत्पन्न हुआ, वही अनुभव जैनशासन की अनुभूति है। समस्त जैनशासन उसमें आ जाता है। समझ में आया? क्यों? **क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।** भाव अनुभव हुआ, श्रुतज्ञान हुआ—भावश्रुतज्ञान हुआ, उस

भावश्रुतज्ञान से आत्मा का अनुभव हुआ, वह भावश्रुत आत्मा ही है। देखो! यहाँ भावश्रुत की पर्याय को अभेद करके आत्मा कह दिया है। आहाहा! १४वीं गाथा में भी आया था न? अनुभूति कहो, आत्मा कहो या शुद्धनय कहो। तीनों आये थे। पाठ में आया था। धीरे से समझने की चीज़ है। यह १५वीं गाथा तो ऐसी सूक्ष्म है। पहले से पन्द्रह, हों! यह पन्द्रहवीं अन्त में आयी है।

क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है। और श्रुतज्ञान जैनशासन की अनुभूति और श्रुतज्ञान, वह निश्चय से आत्मा का अनुभव, श्रुतज्ञान आत्मा का—मोक्ष का मार्ग, वही जैनशासन। स्वयं, **श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।** क्या कहते हैं? उस द्रव्यश्रुत से उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। द्रव्यश्रुत से भावश्रुत उत्पन्न नहीं हुआ। कारण कि वह (भाव) श्रुत स्वयं आत्मा है। द्रव्यश्रुत स्वयं आत्मा नहीं। ओहोहो! समझ में आया? **इसलिए ज्ञान की अनुभूति वही...** इस कारण से ज्ञान का अनुभव **वही आत्मा की अनुभूति है।** वही आत्मा का अनुभव है। ज्ञान का अनुभव, ज्ञान का अनुभव, वही आत्मा का अनुभव है। कहो, समझ में आया? इतना तो पाठ का अर्थ कहा। समझ में आया? '**अपदेससंत**' को याद नहीं किया। कारण नहीं। कारण कि वह तो शास्त्र में ऐसा कहा है, उस भाव की बात की है। बस, एक निश्चय की बात की। '**अपदेस**' शास्त्र में क्या कहा, यह बात नहीं ली। यह भाव है, वह शासन है, ऐसा कहा। उसका अर्थ ही यह हुआ न कि वाणी में यही आया। दिव्यध्वनि में यह आया। समझ में आया?

परन्तु... है तो ऐसा, होना तो ऐसा चाहिए। **परन्तु अब वहाँ, सामान्यज्ञान के आविर्भाव...** क्या कहते हैं? शान्तिभाई! शान्तिभाई ने ध्यान रखा, क्या शब्द आया और? वकील है न, वकील। **सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना) और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव...** अर्थात् सामान्य ज्ञान का आविर्भाव की व्याख्या—आत्मा जो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप सामान्य है, उस ओर लक्ष्य करके, ज्ञेय की ओर का लक्ष्य छोड़कर, इन्द्रियज्ञान का लक्ष्य छोड़कर, पर का–भेद का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की ओर का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान हुआ, उसे सामान्य ज्ञान कहते हैं। यहाँ सामान्य त्रिकाली की बात नहीं।

मुमुक्षु : फिर से।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं न! छोड़ नहीं देंगे एकदम।

अब वहाँ, सामान्यज्ञान के आविर्भाव... सामान्यज्ञान का अर्थ, त्रिकाली ध्रुव स्वभाव का प्रगटपना, वह नहीं। समझ में आया? सामान्य का अर्थ कि अपना जो शुद्ध चैतन्य ध्रुवस्वरूप है, उसके आश्रय से, इन्द्रिय के लक्ष्य से, पर से छूटकर, पर से, इन्द्रिय से, इन्द्रिय के भेदज्ञान—भेद अर्थात् भिन्न-भिन्न, उनसे छूटकर निज ज्ञायकस्वरूप की ओर एकाकार होकर जो पर्याय प्रगट हुई, उसे यहाँ सामान्यज्ञान, पर्याय को कहते हैं। कान्तिभाई! वीतरागी पर्याय। क्या कहते हैं, समझ में आया?

वहाँ, सामान्यज्ञान के आविर्भाव... अर्थात् निज द्रव्य शुद्ध चैतन्य के आश्रय से—अवलम्बन से—अभेद से जो पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय को यहाँ सामान्यज्ञान, वीतरागी पर्याय, भावश्रुतज्ञान कहा गया है। समझ में आया? **सामान्यज्ञान के आविर्भाव...** क्या धर्मचन्दजी! आविर्भाव ज्ञायकभाव प्रगट हुआ? वह नहीं। सामान्यज्ञान, वह यह सामान्य शब्द ही नहीं। यह सामान्यज्ञान का आविर्भाव, वह तो इन्द्रिय की लोलुपता से अनेकपने का ज्ञान था, उससे छूटकर, वह विशेष ज्ञान है, विशेष अर्थात् इन्द्रिय लोलुपता के साथ में रागमिश्रित ज्ञान—विशेष-ज्ञान, जहर ज्ञान—विकारी ज्ञान है। उसे छोड़कर आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप है, उस अतीन्द्रिय के अवलम्बन से अतीन्द्रिय ज्ञान की पर्याय में प्रगट होना, उसका नाम सामान्यज्ञान का प्रगट होना, पर्याय में प्रगट होना, उस पर्याय को सामान्यज्ञान कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

पाँच इन्द्रियों की ओर का जो ज्ञान... यह कहते हैं, देखो! **विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव...** अर्थात् पाँच इन्द्रिय की ओर के ज्ञेय से भेद करके जो अवस्था का होना, वह विशेष ज्ञेयाकार, रागमिश्रित ज्ञान ज्ञेयाकार, इन्द्रियमिश्रित ज्ञान, इन्द्रिय के अवलम्बन से (होता) ज्ञान, ऐसे विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव—उसका ढँक जाना। नहीं होना, ढँक जाना। इन्द्रिय की ओर का विशेष ज्ञान, रागमिश्रित खण्ड ज्ञान, भेद ज्ञान, उसका नाम यहाँ विशेष ज्ञान कहते हैं। वह विशेष ज्ञेयाकार, ज्ञेयाकार। यहाँ ज्ञानाकार नहीं हुआ। उस ज्ञेय के आकार के अवलम्बन से, इन्द्रिय के अवलम्बन से, लक्ष्य से जो

खण्ड-खण्ड ज्ञान हुआ, उस ज्ञेयाकार ज्ञान को ढँक जाना, उसका तिरोभूत हो जाना, उसका अभाव हो जाना। सूक्ष्म बात है ! समझ में आया ?

तिरोभूत का अर्थ वर्तमान ज्ञेयाकार हुआ है और फिर ढँक जाता है, ऐसा नहीं। पहले था। परन्तु वर्तमान में... समझ में आया ? आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप, अतीन्द्रियस्वरूप है, उसका ज्ञान इन्द्रिय के अवलम्बन से ज्ञेय को खण्ड-खण्ड देखकर खण्ड-खण्ड ज्ञान जो होता है, उसे ज्ञेयाकार विशेष ज्ञान, खण्ड ज्ञान कहा जाता है। वह तिरोभूत (हो जाना), अर्थात् वह उत्पन्न हुआ नहीं। आत्मा त्रिकाल ज्ञायक अबद्धस्पृष्ट, उसके अवलम्बन से अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय पदार्थ के अवलम्बन से एकरूप ज्ञान, अभेदरूप ज्ञान, सामान्य ज्ञान, खण्ड बिना का जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसका नाम सामान्य ज्ञान प्रगट हुआ और उस समय में विशेष ज्ञेयाकार भाव उत्पन्न नहीं हुआ। उसे तिरोभूत हुआ कहा जाता है। समझ में आया ? ज्ञानचन्दजी !

मुमुक्षु : इन्द्रिय की ओर लक्ष्य ही नहीं गया...

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रिय का लक्ष्य छूट गया। इन्द्रिय के लक्ष्य से होता ज्ञान, वह विशेष ज्ञान। विशेष ज्ञान है, वह दु:खरूप ज्ञान है, जहर ज्ञान है।

मुमुक्षु : उत्पन्न नहीं होना....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उत्पन्न नहीं होना, इसका नाम तिरोभूत। पूर्व में था, अभी कहाँ है ? अभी तो यहाँ है और हुआ है और फिर तिरोभूत करे, ऐसा कहाँ से हो ? समझ में आया ? धर्म समझने के लिये बहुत मेहनत करनी पड़ती होगी, नहीं ? सेठ ! कि मेहनत किये बिना माल मिल जाता है ? आहाहा ! जैनशासन क्या है, खबर नहीं सम्प्रदाय में और मान बैठे कि हम धर्म करते हैं, लो। ओहो !

भाई ! जैनशासन तो आत्मा वस्तु है, वीतरागी चैतन्यपिण्ड समस्वभावी वस्तु है, समस्वभावी वस्तु। वस्तु ज्ञान, आनन्द आदि समस्वभावी वीतराग का पिण्ड अनादि-अनन्त समस्वभावी चीज़ आत्मा है। समरस स्वरूप आत्मा है। त्रिकाल आत्मा समरस, वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्दकन्द आत्मा है। उसे जो ज्ञान इन्द्रिय के अवलम्बन से, ज्ञेय के लक्ष्य से, खण्ड-खण्ड होकर जो ज्ञान विशेषपने का, अनेकपने का ज्ञान होता था,

वह ज्ञान दु:खरूप है, वह बन्धरूप है, वह संसाररूप है। आहाहा! समझ में आया? यह इन्द्रिय की ओर का लक्ष्य और ज्ञेय की ओर का खण्ड-खण्ड ज्ञान का उत्पन्न नहीं होना अर्थात् स्वरूप चैतन्यमूर्ति ज्ञायक आत्मा भगवान स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव-सन्मुख होकर अतीन्द्रिय ज्ञान की उत्पत्ति एकरूपता की, अभेदता की उत्पत्ति होना, वह सामान्य प्रगट हुआ। विशेष के भंग भेद से उत्पन्न नहीं हुआ तो उसे सामान्यज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? उसमें तो ज्ञायकभाव का कहा है, ज्ञानभाव प्रगट हुआ। ११वीं गाथा में कहा था। यहाँ यह बात नहीं, यह बात नहीं। वहाँ से ऐसा ले, सामान्य ज्ञान का आविर्भाव। जैसे वह ज्ञायकभाव प्रगटा न! समझ में आया? समझ में आया या नहीं? आज तो बहुत गाँवों के लोग हैं। मोरबी, वींछिया, जामनगर और... दिल्ली। दिल्ली तो यों ही आये हैं। कहो, समझ में आया?

यह ज्ञान की अनुभूति, वह आत्मा की अनुभूति है। **परन्तु अब वहाँ,...** वहाँ अर्थात् इस वस्तु की स्थिति में **सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना)...** भगवान आत्मा इन्द्रिय की ओर का लक्ष्य और पर ज्ञेय की ओर का लक्ष्य का खण्ड-खण्ड विशेष ज्ञान की ओर का लक्ष्य छोड़कर, अपना ज्ञायकस्वभाव शुद्ध ध्रुव, उस ओर का अतीन्द्रिय लक्ष्य करके जो पर्याय शान्ति की, अतीन्द्रिय की, शुद्धभाव की जो वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, वह सामान्यज्ञान प्रगट हुआ। भेद बिना, पर के आश्रय की अनेकता बिना एकता रूप ज्ञान प्रगट पर्याय में हुआ, उसे सामान्यज्ञान प्रगट हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

और विशेष ज्ञेयाकार... विशेष शब्द से यहाँ सामान्य त्रिकाल और पर्याय विशेष, यह बात नहीं है। यहाँ तो निर्विकल्प शुद्ध अतीन्द्रिय भावश्रुत की पर्याय को सामान्य कहा है और इन्द्रिय के अवलम्बन से होनेवाले खण्ड-खण्ड ज्ञान को विशेष कहा है। समझ में आया? विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के विशेष भेद ज्ञेय, इन्द्रिय के अवलम्बन से खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से ज्ञेय के आकार से होनेवाली खण्ड-खण्ड ज्ञान की दशा तिरोभूत-ढँक गयी, प्रगट नहीं हुई।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ ही नहीं, उत्पन्न ही नहीं हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से हो? समझ में आया?

यह १५वीं गाथा में पूरा जैनशासन बताया है। ओहोहो! समझ में आया? जैनशासन अपनी शुद्ध स्वभाव-सन्मुख की एकता की ज्ञान और शान्ति की दशा को जैनशासन कहते हैं। कहो, जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : जैनं जयतु शासनं यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जैनं जयतु शासनं। पहाड़े तो तुम कितने वर्ष से बोलते हो। सव्वे धर्मे मंगल... कुछ आता है न? सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारकं, प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयतु शासनं। वह यह।

मुमुक्षु : भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के पास रहा। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तेरा स्वरूप तो तेरे पास पूर्ण है न! वह पूर्ण (अर्थात्) यहाँ सामान्य त्रिकाल की अपेक्षा से बात नहीं। यहाँ तो त्रिकाली सामान्य के अवलम्बन से भेदरहित, विशेषरहित, ज्ञेयाकाररहित, इन्द्रियज्ञान के खण्ड-खण्डपने से रहित अतीन्द्रिय ज्ञान अपने स्वभाव के आश्रय से भावश्रुतज्ञान आदि उत्पन्न हुए—वीतरागी पर्याय, उसे सामान्य प्रगट हुआ, विशेष प्रगट नहीं हुआ। खण्ड-खण्ड ज्ञान प्रगट नहीं हुआ। बस, इतनी बात है। खण्ड-खण्ड ज्ञान प्रगट नहीं हुआ, अखण्ड पर्याय में ज्ञान प्रगट हुआ, वह अखण्ड ज्ञान प्रगट हुआ, वह सामान्य। खण्ड ज्ञान प्रगट नहीं हुआ, तिरोभूत हो गया अर्थात् ढँक गया अर्थात् उत्पत्ति नहीं हुई। कहो, अमरचन्दभाई! आहाहा! कहाँ खोजने जाये जैनशासन? सम्मेदशिखर में होगा जैनशासन, शत्रुंजय में होगा?

मुमुक्षु : अन्तर में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में मन के विकल्प में भी नहीं। भगवान का स्मरण (करे) णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं... लो, भाई अपने भगवान की प्रतिमा नहीं,

वह कहे। शुभभाव हो उसमें सब आता है। स्मरण भी आता है, प्रतिमा भी आती है, पूजा आती है। परन्तु सब शुभभाव है। समझ में आया? यह व्यवहार धर्म कब? कि यह अनुभूति निश्चय की जैनशासन हुआ हो तो। तो उसे व्यवहार कहा जाता है। वरना व्यवहार-ब्यवहावर कहते नहीं। आहाहा! गजब बात! कहो, सेठी! दसलक्षणी पर्व में कितनी धमाधम चलती हो। खचाखच लोग भरे और खूब हा... हा... हो। जैनशासन की बहुत प्रभावना हुई।

मुमुक्षु : वे तो पत्र लेकर आये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो कहते हैं, उत्तर देते हैं। दो बार आये थे। कल तो बाबूभाई का आया है, उनका नहीं आया। महेन्द्रभाई के बाबूभाई। अरे! भगवान! बापू! देह की क्रिया भिन्न है। वह और वाणी भिन्न चीज़ है। उपदेश का ठाठ जमना और सभा जमना, वह अलग चीज़ है। उसमें राग होना, वह भी कोई अलग चीज़ है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय प्रभु आत्मा, उसका ज्ञान इन्द्रियज्ञान के अवलम्बन से काम करे तो वह खण्ड-खण्ड ज्ञान, जहरज्ञान, दुःखरूप ज्ञान है। आहाहा! अरे! कोई जीव को मारे नहीं... समझ में आया? अरे! भगवान! कहते हैं कि कोई जीव को मारे नहीं... आहाहा! दया पाले इतनी। लगे कि... आहाहा! परन्तु भगवान तेरा चैतन्य शुद्ध ज्ञायकप्रभु के अवलम्बन से शान्तिरूप श्रुतज्ञान की उत्पत्ति हो, वही भावश्रुत और जैनशासन है। इन्द्रिय ज्ञान से खण्ड-खण्ड ज्ञान से ज्ञेयाकार ज्ञान होना, वह तो खण्ड ज्ञान है, वह वास्तविक ज्ञान नहीं, वास्तविक मार्ग नहीं, वह वास्तविक जैनशासन नहीं। समझ में आया?

परन्तु अब वहाँ, सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना)... भगवान आत्मा पर के खण्ड-खण्ड के लक्ष्य से विमुख होकर इन्द्रिय के ज्ञान से ज्ञेय को जानने के भंग से, खण्ड से विमुख होकर... विमुख होकर, यह भी नास्ति से बात है। समझ में आया? वह वस्तु चैतन्यस्वभाव वस्तु की ओर भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव होना, वह ज्ञान है। यहाँ ज्ञान कहना है न? पहले दर्शन कहना था। यह ज्ञान, वह ज्ञान और वह ज्ञान, वह जैनशासन और वह ज्ञान, वह जैनदर्शन। आहाहा! प्रवीणभाई! उसमें तो कुछ

नहीं, बस, करो। जाप जपो... राम... राम... राम... राम... राम जपते-जपते आत्मा का साक्षात्कार हो गया, एक व्यक्ति ऐसा कहता था। धूल में भी नहीं होगा। यहाँ तो वीतराग जपते आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। राम तो अभी कर्ताबुद्धि में (गये)। वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... वह विकल्प है। उससे भी आत्मा की दृष्टि नहीं होती। शोभालालजी! मार्ग ऐसा है। ऐसे जैन में जन्मे, लो, हम जैन हैं।

जैन किसे कहना? जिसमें खण्ड-खण्ड रागमिश्रित ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होना... आहाहा! जिसमें भगवान आत्मा इन्द्रियज्ञान से खण्ड-खण्ड ज्ञान से हटकर अतीन्द्रिय ज्ञायक की ओर का झुकाव करके अनुभूति करता है। उस अनुभूति को यहाँ ज्ञान कहा, भावश्रुत कहा, उसे जैनशासन कहा, सर्व जिनशासन उसमें समाहित हो जाता है। फिर वह ज्ञान हुआ और राग बाकी है, यहाँ तो व्यवहार की बात की ही नहीं। क्यों? कि ऐसा ज्ञान हुआ, राग बाकी है, सम्बन्ध है, वह स्व-परप्रकाशक ज्ञान में जानने का रहा, परन्तु जानने का रहा, इतनी बात भी यहाँ नहीं की। क्या कहा, समझ में आया? यहाँ तो उसे जो आत्मा स्वरूप शुद्ध है, उसका अनुभव करना, वही अनुभूति, भावश्रुतज्ञान है।

इस गाथा के ऊपर बहुत समय पहले प्रश्न उठे थे। इस गाथा के ऊपर व्याख्यान हुए (संवत्) २०१० के पहले। फिर १२वीं गाथा चली है, उसकी बहुत चर्चा हुई। क्या जैनशासन इतने में समाहित हो गया? क्या कर्म का सम्बन्ध है या नहीं? पूरा गोम्मटसार उड़ जाता है। और चरणानुयोग का राग उड़ जाता है। चरणानुयोग में राग का कथन है, गोम्मटसार में ज्ञानावरणी के क्षयोपशम के कथन है, कथा में पुण्य से ऐसा हुआ और पाप से ऐसा हुआ, ऐसे कथन हैं, वे सब खोटे हो गये। जैनशासन में इतने में समाहित हो गया? वे तीन अनुयोग जैनशासन नहीं? ऐसा कहते थे। भाई! बहुत चर्चा आयी है। समझ में आया? भाई! आत्मा का अपना स्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल है, उसके आश्रय से अतीन्द्रिय ज्ञान की पर्याय हुई, वह जैनशासन है। फिर भावश्रुतज्ञान की बात है न? कहीं केवलज्ञान की बात नहीं है। केवलज्ञान की बात नहीं है। ज्ञान में पूर्ण हो गया, ऐसी दशा नहीं। समझ में आया? पूर्ण का आश्रय लिया है, पर्याय में पूर्ण हुआ नहीं। वह श्रुतज्ञान ऐसी शक्ति धार रखता है, स्वभाव की अनुभूति हुई हो, रागादि

सम्बन्ध हो, वह अपना ज्ञान करने में उसका ज्ञान आ जाता है। नया करना नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ, सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना)... व्यक्तपना, विशेष ज्ञान का अव्यक्तपना अर्थात् प्रगटपना नहीं, ऐसा **जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है,...** देखो! जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है... अकेला ज्ञानस्वभाव, 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान।' प्रवीणभाई! यह आता है। किसमें? श्रीमद् में अपूर्व अवसर में आता है। यह भाषा भी संक्षिप्त की है। देह भिन्न केवल चैतन्य, अकेला चैतन्य। ऐसे चैतन्य का ज्ञान **जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है,...** अकेली ज्ञान की दशा भावश्रुत का अनुभव करता है। **तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है...** तब ज्ञान शुद्ध चैतन्य प्रगट ज्ञान की दशा में अनुभव में आता है। कहो, समझ में आया? जिसने कभी सुना न हो, उसे तो ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? भाई! हम तो अभी तक भक्ति करो, यात्रा करो, पूजा करो, दया करो, दान करो, भगवान का स्मरण महावीर... महावीर... महावीर... महावीर... (करो), अकेले बैठे माला गिनो, ऐसी बात तो इसमें कुछ आयी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करे कौन? होवे उसे जाने। ऐसे विकल्प हों, उन्हें जाने। समझ में आया? यह दलाल है न। करे, फिर समझकर करना। करना वापस। कर्तृत्वबुद्धि से करना। कर्तृत्वबुद्धि से करे, वहाँ तो वस्तु का निश्चय रहा नहीं और व्यवहार भी रहा नहीं। उसे व्यवहार भी नहीं कहा जाता। समझ में आया? कर्तृत्वबुद्धि हो, तब तो स्वभाव के ऊपर से दृष्टि हट गयी। विकार की दृष्टि हो गयी उसकी।

यहाँ तो कहते हैं, **जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है, तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है...** बराबर समझे? इतनी लाईन में बहुत आ गया। कितनी है? पाँच लाईनें हो गयी, लो। पाँच हुई न? पाँच। है तो ऐसा। **तथापि...** अब कहते हैं। होना तो ऐसा चाहिए। समझ में आया? होना तो ऐसा चाहिए और होता है तो ऐसा। यथार्थरूप से हो तो ऐसा कि स्वरूप का शुद्ध चैतन्य के सन्मुख होकर भावज्ञान प्रगट हुआ, वह

सामान्य। इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्ड उत्पन्न नहीं हुआ। वह तो वस्तु, ऐसी वस्तु है। **तथापि...** ऐसा होता है, ऐसा होना चाहिए, तथापि **जो अज्ञानी हैं,...** अब लेते हैं। **जो अज्ञानी हैं,...** अर्थात् **ज्ञेयों में आसक्त हैं,...** यह व्याख्या। ... जो चीज़ देखता है, उसमें लीन है। रागादि परवस्तु जो ज्ञेय, उसमें लीन है, आसक्त है। इन्द्रिय विषय—शब्द, रूप, रस, गन्ध—चार यह। चाहे तो वीतराग की वाणी सुने तो वह विषय है। सुनो! वह ज्ञेयों में इन्द्रियज्ञान से जानता है, उसमें जो आसक्त है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? होना तो ऐसा चाहिए। क्योंकि वस्तु ऐसी है, ऐसा कहते हैं। तथापि अनादि से कैसे हो रहा है अज्ञानी को? अज्ञानी ज्ञेयों में आसक्त है। विकल्प आया, इन्द्रिय के जानने में जो चीज़ आयी, उस ओर के उसके झुकाव में एकाकार है। समझ में आया? चाहे तो वाणी हो, चाहे तो भगवान हो, चाहे तो शास्त्र हो। परन्तु अन्तर में लक्ष्य नहीं रहकर, अकेले पर के लक्ष्य में पर में आसक्त हुआ, ज्ञेयों में आसक्त हुआ। ओहोहो! समझ में आया? वह इन्द्रिय से हुए ज्ञान में आसक्त हुआ।

ज्ञेयों में आसक्त हैं, उन्हें वह स्वाद में नहीं आता। स्वाद में अर्थात् आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं आता। खण्ड-खण्ड ज्ञान ज्ञेय में आसक्त है। विकल्प और इन्द्रियज्ञान जो परलक्ष्य से हुआ, उसमें जो आसक्त है, उसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद नहीं आता। समझ में आया? दु:ख का स्वाद आता है। समझ में आया? ओहोहो! गजब बात परन्तु भाई! ऐई! भगवान की वाणी सुने वहाँ सुख का स्वाद होगा? भाई! अकेला ज्ञायकस्वरूप है, उसकी सन्मुखता छोड़कर, अकेले ज्ञेय की ओर के पाँच इन्द्रिय के विषय शब्द से शुभाशुभ कोई भी (विषय) शब्द, रूपादि हो, वह ज्ञेय में और ज्ञेय की ओर के इन्द्रियज्ञान में आसक्त है। समझ में आया? तीन लोक के नाथ परमेश्वर समवसरण में हों, परन्तु जो इन्द्रियज्ञान से उन्हें देखता है, ज्ञेय में देखकर आसक्त है, अपना स्वभाव-सन्मुख का भान-भास नहीं। समवसरण में अनन्त बार गया तो वह ज्ञेय में आसक्ति का ज्ञान उसे हुआ है। क्यों बराबर है? अमरचन्दभाई! ऐई! वकील। वरना तो... नहितर तो उसे क्या कहते हैं? नहीं तो। भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया। गया तो वहाँ क्या हुआ? हुआ क्या? कि वे ज्ञेय पर हैं। इन्द्रियज्ञान से देखा और

इन्द्रियज्ञान उसे उसे ज्ञान में गृद्धि हुई है। अपना आत्मा उससे भिन्न है, ऐसा भास हुआ नहीं। गजब बात, भाई! बापू! वीतराग मार्ग...

तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी, शास्त्र भी इन्द्रिय के लक्ष्य से उनको जानता है। कहते हैं न कि वाणी से ज्ञान होता है या नहीं? ऐई... सेठ! नहीं? तो चैत्यालय क्यों कराया? आहाहा! वीतरागमार्ग... भाई! वह अकेला राग हो और पर की आसक्ति हो तो वह तो ज्ञेय में आसक्त है। बाद में आत्मा का भान होकर फिर जो रागादि आते हैं, और परलक्ष्य है तो उसे वहाँ व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? कोई ऐसा जोर दे कि भगवान की प्रतिमा से कुछ लाभ नहीं, वाणी से लाभ (होता है)। दोनों बात समान हैं। किसी को खबर नहीं। सेठ! दोनों ही पर हैं। ज्ञान ज्ञेयों में आसक्त है। अज्ञानी है, उसका तो अकेला ज्ञेय के ऊपर ही लक्ष्य है, वहाँ ही उसका झुकाव है। उस ओर उसके शुभ रागादि का उत्पन्न होना होता है। **उन्हें वह स्वाद में नहीं आता।** उसे इन्द्रियज्ञान में आसक्ति रहित अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप में लीन होने से स्वाद आना चाहिए, वह स्वाद उसे आता नहीं। आहाहा!

कोई कहे कि तो फिर युद्ध क्यों किया? समकिती युद्ध क्यों करता है? बाहुबली और भरत। एक ओर ऐसा कहना और एक ओर ऐसा करे तो उसे तुम ज्ञानी है, (ऐसा कहो)। अरे! सुन तो सही। अरे! भाई! समझ में आया? भारी कठिन। जगत को बाह्य की क्रियाकाण्ड की मन्दता के ऊपर इतनी महिमा है कि जिसे ऐसी क्रिया में ज्ञान सम्यक् है, उसे देख सकता नहीं। समझ में आया? उसे तो अन्तर स्वभाव-सन्मुख का काम करता है, उतना मोक्षमार्ग जैनशासन में तो सदा चलता ही है। आहाहा! समझ में आया? और समवसरण में अनन्त बार गया, स्वर्ग में गया, मेरुपर्वत पर अनन्त बार गया परन्तु ज्ञेयों में आसक्त है।

मुमुक्षु : वहाँ की विभूति को ही देखता रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस विभूति में ही एकाकार हो गया। अपनी विभूति चैतन्य भेद से रहित अभेद है, उसकी ओर लक्ष्य किया नहीं। समझ में आया? जैनशासन, बापू! आहाहा! वे चिल्लाहट मचाते हैं कि अररर! भगवान को देखने से राग? सुन तो

सही! उनको देखने से राग नहीं हुआ। राग तो हुआ है तुझसे। उनको देखने से ज्ञान नहीं हुआ, ज्ञान तो हुआ है तुझसे। परन्तु इन्द्रियज्ञान पर में आसक्त है तो उसमें अपने स्वभाव के स्वाद का अभाव है। समझ में आया? ओहोहो! शास्त्र भी पूरे दिन पढ़ा-पढ़ा करे। पृष्ठ... पृष्ठ... पृष्ठ। वह तो परवस्तु है। उपदेश भी पर, भगवान पर, सब पर। आहाहा! यहाँ तो परद्रव्य में अर्थात् ज्ञेयों में आसक्त है। आहाहा! यह शास्त्र के पृष्ठ में भी आसक्त है। इन्द्रियज्ञान में अन्दर लक्ष्य है।

अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त हैं, उन्हें वह स्वाद में नहीं आता। उनको आत्मा का अनुभव, आनन्द का भावश्रुत का अनुभव नहीं। भावश्रुत उसमें है ही नहीं। ज्ञेयों में आसक्त हुआ। ओहोहो! यह कहाँ चर्चा से पार पड़े? वाद-विवाद से चर्चा से (पार पड़े नहीं)। वह ऐसा कहे, निमित्त चाहिए, निमित्त बिना होता नहीं। वह कहे, व्यवहार चाहिए, व्यवहार बिना होता नहीं। ठीक है, भगवान! सब ठीक है, है। उसके बिना होता है, उसका नाम ज्ञेय की आसक्ति का त्याग है। समझ में आया? निमित्त और व्यवहार की आसक्ति की एकता का त्याग हो, तब स्वभाव-सन्मुख की एकता का भाव प्रगट होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यहाँ तो अकेले खण्ड-खण्ड ज्ञान की बात करते हैं। फिर साधारण व्यवहार परावलम्बी, वह भी व्यवहार है। समझ में आया? जयकुमारजी! आया बराबर? ठीक अच्छा। १५वीं गाथा में पहुँच गये न। आहाहा!

प्रभु तेरे पास रे, प्रभु नहीं वेगळा। वेगळा अर्थात् दूर से अकेले दूर पदार्थ में तू लीन होता है तो आत्मा का स्वाद नहीं आता। इन्द्रिय के ज्ञान में लुब्ध होकर परज्ञेय में आसक्त रहा, उसे अपना ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा दूर रह गया, दूर रह गया। और भगवान आत्मा को ज्ञेय करके जो ज्ञान हुआ तो इन्द्रियज्ञान की आसक्ति दूर हो गयी। समझ में आया?

'जो इंदिये जिणित्ता' कहेंगे वहाँ ३१ गाथा में। **'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं'** भिन्न-भिन्न। खण्ड इन्द्रिय, द्रव्य इन्द्रिय और विषय। विषय शब्द से

चाहे जो पदार्थ परज्ञेय। इन तीनों को इन्द्रिय कहा है। समझ में आया? भावेन्द्रिय को इन्द्रिय कहा, जड़ इन्द्रिय को इन्द्रिय कहा और भगवान को भी इन्द्रिय कहा। इन्द्रियज्ञान से लक्ष्य हुआ तो उसे भी इन्द्रिय कहा। ३१वीं गाथा। वह जब आयेगी, तब विशेष आयेगा। आहाहा! पाठ इतना ही है, '**जो इंदिये जिणित्ता**' इन्द्रिय को जीता। ज्ञानस्वभाव भिन्न। अपने स्वभाव का अनुभव करे, उसे सम्यग्दर्शन (कहते हैं)। इन्द्रिय के विषय में कितना लिया? खण्ड-खण्ड ज्ञान भावेन्द्रिय, यह जड़ द्रव्येन्द्रिय और सामने सब पदार्थ—सब इन्द्रिय। क्योंकि इन्द्रिय की ओर का झुकाव सब इन्द्रिय। उसे जीतकर। ओहोहो! अपना ज्ञानस्वभाव अधिक अर्थात् भिन्न। वे सब परपदार्थ, राग, खण्ड इन्द्रिय अथवा जड़, उससे भिन्न अपना पदार्थ अखण्ड का अन्तर बोध होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभूति और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। ३१ गाथा में लिया। ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य की टीका। पाठ में इन्द्रिय को जीतना (इतना है)। सामने जितने ज्ञेय हैं, उनके ऊपर की आसक्ति घटाना, उनका लक्ष्य छोड़ना। समझ में आया? ऐसी टीका की।

यहाँ भी यह कहते हैं। उठाते-उठाते यहाँ ले जाते हैं और फिर आगे ले जाते हैं। भगवान आत्मा अकेले परज्ञेय, चाहे तो सर्वज्ञ परमेश्वर हो, चाहे तो सम्मेदशिखर हो, चाहे तो सन्त-मुनि भावलिंगी कुन्दकुन्दाचार्य आदि हों, परन्तु उस पर के लक्ष्य में इन्द्रियज्ञान से खण्ड-खण्ड में आसक्त है, वह प्राणी उसका लक्ष्य करता है, उसे निज ज्ञानस्वभाव का स्वाद नहीं आता। उसे सामान्यज्ञान उत्पन्न नहीं होता। उसे विशेष खण्ड-खण्ड ज्ञान, रागवाला ज्ञान उत्पन्न होता है, वह बन्ध का कारण है, आत्मा को दुःख का कारण है। यह दृष्टान्त से कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक - १०-१०-१९६६
गाथा-१५, प्रवचन - ७२

समयसार जीव अधिकार की १५वीं गाथा चलती है। देखो! इस १५वीं गाथा में क्या कहते हैं? थोड़ा वाँचन हो गया है परन्तु फिर से (लेते हैं)। आज तो गुजराती है न! टीका फिर से।

जो यह अबद्धस्पृष्ट,... आत्मा। कर्म का संयोग और निमित्त से भिन्न आत्मा **अनन्य...** एकरूप असंख्य प्रदेशी स्वभाव जिसका एकरूप है। **नियत...** हीनाधिक पर्याय से रहित एकरूप त्रिकाल स्वभाव है। **अविशेष...** सामान्य जिसका स्वभाव है, गुणभेद नहीं ऐसा। गुणभेद नहीं कि यह ज्ञान, दर्शन आदि, ऐसा अविशेष अर्थात् सामान्य। **और असंयुक्त...** विकारी परिणाम के सम्बन्ध से संयुक्तपने से रहित। **ऐसे पाँच भावस्वरूप...** ऐसे पाँच भावस्वरूप एकरूप **आत्मा की अनुभूति है, वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है,...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द स्वभाव से एकरूप तत्त्व है। जो संयोग और विकारी के परिणाम से रहित अन्तर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन हो और उसकी अनुभूति की बात है अभी। ऐसे पर से रहित, पाँच भाव—अबद्धस्पृष्ट से रहित अबद्धस्पृष्टरूप ऐसे आत्मा का अनुभव श्रुतज्ञान में शान्ति के वेदनसहित की अनुभूति, वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है। कल सवेरे नहीं थे? दोपहर में आये। कहो, समझ में आया इसमें?

चारों अनुयोगों में सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा वीतरागी समरस स्वरूपी प्रभु की अन्तर में रागरहित होकर शान्ति के वेदन में श्रुतज्ञान के उपयोग में रमणता (होना), उसे भगवान जैनशासन कहते हैं। समझ में आया? निश्चय से समस्त जैनशासन का यह अनुभव है। यहाँ पर्याय को ही जैनशासन कहा है। त्रिकाल द्रव्य-गुण तो त्रिकाल पड़े हैं। समरसस्वभावी आत्मा के सन्मुख का अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के वेदनसहित के भावश्रुत का उपयोग, उसे यहाँ जैनशासन की अनुभूति अथवा जैनशासन कहा गया है।

समझ में आया? चारों अनुयोगों में यह कहा है।

पहले कहा था, ८९ गाथा में। भावपाहुड़ में ८३ गथा में है न? कि जैनशासन में व्रत और पूजा वह जैनशासन में धर्म नहीं। भावपाहुड़ की ८३ गाथा में। समझ में आया? लौकिकजन कितने ही ऐसा कहते हैं... ऐसी बात है। भावपाहुड़ की ८३ (गाथा)। '**पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।**' जिनशासन में तो यह कहा है कि पूजा, भगवान की पूजा, भगवान की भक्ति, भगवान को वन्दन, भगवान, देव-गुरु आदि की वैयावृत्य, यह आदि और देव-गुरु-शास्त्र से होता भाव या उपवासादि भाव—वह सब भगवान के शासन में पुण्य कहा है।

मुमुक्षु : धर्म नहीं कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जैनशासन नहीं, उसे धर्म नहीं कहा। सेठी! अभी गुजराती, कल किया नहीं था न! दोपहर में वापस हिन्दी चलेगा, हों! उलझन में मत आना वापस। यह तो कल गुजराती नहीं हुआ था न, इसलिए अभी गुजराती (लिया)। दोपहर में हिन्दी चलेगा। अभी यह गुजराती। सेठ उलझन में हैं, वापस सब गुजराती हो गया। यह तो कल हिन्दी में लिया था न, इसलिए अभी गुजराती में लेते हैं। कहो, समझ में आया?

पूजा, व्रत,... **जिनशासन में जिनेन्द्रदेव ने इस प्रकार कहा है कि - पूजा आदिक में और व्रतसहित होना, वह तो पुण्य ही है...** पाठ में है।

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो॥८३॥ (भावपाहुड़)

मोह के क्षोभ से रहित जो आत्मा के परिणाम, वह धर्म है। समझ में आया? और फिर अर्थ में कहा, **लौकिक जन तथा अन्यमति कोई कहते हैं कि पूजा आदिक में शुभक्रिया और व्रतक्रियासहित है, वह जिनधर्म है। परन्तु ऐसा नहीं।** कोई कहे कि पूजा, व्रत, भक्ति, दया, दान, व्रत, उपवास, वह धर्म है। तो वह धर्म नहीं। **जिनमत में जिन भगवान ने इस प्रकार से कहा है कि - पूजा आदिक में और व्रतसहित होना, वह तो पुण्य है। उसमें पूजा और आदिक शब्द से भक्ति, वन्दना, वैयावृत्य इत्यादि समझना।**

वह तो देव-गुरु-शास्त्र के लिये होते हैं और उपवास आदिक व्रत है, वह शुभक्रिया है। उसमें आत्मा के रागसहित शुभ परिणाम हैं, उनसे पुण्यकर्म होता है। इसलिए उन्हें पुण्य कहते हैं। उसका फल स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति है। है ? कहो, समझ में आया ? समझ में आता है ?

जैनशासन में आत्मा अबद्धस्पृष्ट आदि का अन्तर अनुभव, रागरहित शुद्ध चैतन्य की अनुभूति, उसे जैनशासन में जैनशासन कहा जाता है। आहाहा! बड़ा विवाद उठाते हैं न अभी यह। भगवान का स्मरण करना, वह सब जैनधर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। वह शुभभाव है। आहाहा! परद्रव्य की ओर के झुकाववाला भाव, वह विशेष भाव है। विशेष, ऐसा कहा है न ? प्रवचनसार में। विशेष के फिर दो प्रकार कहे—पुण्य और पाप। और अविशेष परिणाम सामान्य स्व चैतन्यमूर्ति भगवान के आश्रय से पर से भिन्न जो धर्म की पर्याय प्रगट होती है, उसे वहाँ अविशेष परिणाम अर्थात् सामान्य परिणाम-खास परिणाम कहा गया है। वह यह अनुभूति, वह खास आत्मा का अनुभव, उसे जैनशासन और जैनधर्म कहा जाता है। समझ में आया ?

क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है। मगनभाई! लोगों को बहुत कठिन बात पड़ती है। वस्तु ऐसे चैतन्यघन आनन्दकन्द है न! सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ स्वभाव है। उस स्वभाव को अवलम्बकर जो अनुभूति हो, वह भावश्रुत उपयोग, उसे जैनशासन कहा जाता है। समझ में आया ? क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा है। उस निर्मल पर्याय को यहाँ संवर-निर्जरा की पर्याय गिनी। भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर बहिर्मुख के लक्ष्य और परिणाम को छोड़कर अन्तर्मुख के अनुभूति के परिणाम को प्रगट करे, उस परिणाम को यहाँ आत्मा कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा!

रात्रि में तो थोड़ा सा कहा था कि शुभाशुभ परिणाम का वेदन, वह दु:खवेदन; वह आत्मा नहीं। पर, शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, पैसा, दाल, भात, सब्जी को तो वेदन कर सकता नहीं। वेदन में इसे अनादि से शुभ और अशुभभाव के परसन्मुख के विकल्पों का वेदन है, वह दु:खवेदन है। उस दु:खवेदन को भगवान, आत्मा कहते नहीं; उसे अनात्मा कहते हैं। श्रीपालजी! कठिन बात, भाई! समझ में आया ?

यहाँ आत्मा कहा न? श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा है। अर्थात् कि शुभ और अशुभराग, वह आत्मा नहीं, उसका वेदन आत्मा नहीं। शुभाशुभ परिणाम का वेदन, वह दु:ख है। दु:ख, वह आत्मा नहीं; वह अनात्मा है। क्योंकि शुभ-अशुभभाव अचेतन है, अचेतन है, जड़ है। उनमें चैतन्य के प्रकाश के प्रभाव का अभाव है। आहाहा! इसलिए पुण्य-पाप के भाव, वे अचेतन अर्थात् चैतन्यस्वभाव के आनन्द और ज्ञान से भिन्न विपरीत, उनका अनुभव अर्थात् कि जड़ का अनुभव। समझ में आया? आहाहा! वह आत्मा नहीं। आहाहा! अनन्त काल निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक गया, कहते हैं कि उसे वेदन दु:ख का ही रहा। शुभभाव भले चाहे जितने हुए, परन्तु वह दु:ख का ही वेदन उसे था। और दु:ख के वेदन को आत्मा कैसे कहा जाये? वह तो आस्रवतत्त्व है, वह आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा! मगनभाई!

यहाँ तो श्रुतज्ञान आत्मा का जो अनुभव, उसे जैनशासन कहा, उसे श्रुतज्ञान कहा, उसे आत्मा कहा। समझ में आया? गिरधरभाई! इसमें कहाँ तुम्हारी सेवा-बेवा रह गयी। नहीं? सेवाभावी मनुष्य है न सेठिया। यहाँ तो कहते हैं, पंच महाव्रत के परिणाम (जिन्हें) जैनदर्शन में व्यवहार कहा है, समझ में आया? पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, वे आत्मा नहीं। विकार, वह आत्मा नहीं। आस्रव, वह दु:खरूप वेदन, आत्मा नहीं। आहाहा! कहाँ गये जयकुमारजी?

श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है। भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वभाव में एकाकार होकर जो निर्मल अनुभूति शुद्ध उपयोगरूप निर्मल ज्ञान शुद्ध हुआ, उस उपयोग को अथवा उस ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं, उसे जैनशासन कहते हैं, उसे जैनधर्म कहते हैं, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया? **इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है।** लो। इसलिए ज्ञान का—शुद्ध चैतन्य के परिणमन का अनुभव, शुद्ध ज्ञानानन्द की परिणति का अनुभव अर्थात् शुद्ध चैतन्य पदार्थ, उसके सन्मुख का निश्चय सम्यग्दर्शन, स्वसंवेदनज्ञान, स्वरूप में स्थिरतारूप आचरण, वह जैनशासन है और वह ज्ञान की अनुभूति है अर्थात् कि विकार की अनुभूति नहीं, वह ज्ञान की अनुभूति है, वही आत्मा की अनुभूति है। आहाहा! यह तो वस्तुस्वरूप ऐसा है। जैनदर्शन अर्थात् कोई सम्प्रदाय नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा समस्वभावी चैतन्यसूर्य है। समस्वभावी। जो पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह कहीं उसका मूल स्वभाव नहीं। तथा द्रव्य-गुण की सामर्थ्य नहीं कि उनमें से विकार उत्पन्न हो। यह व्रत, पूजा, भक्ति, दान, दया, वह तो पर्याय के अंश में उत्पन्न होती उपाधि का भाव है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि ज्ञान की अनुभूति है, वही आत्मा की अनुभूति है। भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वभाव सन्मुख और विभाव से विमुख (हो)। समझ में आया? परपदार्थ से विमुख और स्वपदार्थ से सन्मुख, ऐसी जो आत्मा की परिणति—अवस्था—दशा—भाव—ज्ञान की अनुभूति, वह आत्मा की अनुभूति है। आहाहा! कहो, अमरचन्दभाई! आहाहा! यह जैनशासन। शोभालालजी! सुना नहीं इतने वर्ष में कभी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोटा घुस गया। पानी में लोटा घुस गया। पानी निकालने का था तो गया पानी में, ऐसा। पानी भरकर निकालना (चाहिए)। ऐसी कहावत आती थी। नहीं? जैन की खबर कहाँ है इसे। जैन किसे कहना, (इसकी खबर नहीं)। आहाहा! ऐ... सेठ! यह सब तुमने ऐसे ही व्यतीत किया है न, अभी तक क्या किया है? माणेकचन्दजी! आहाहा!

यह तो सिद्धान्त कहा। इतना गाथा का अर्थ कहा। समझ में आया? अब इसे जरा स्पष्ट करते हैं। **परन्तु अब...** होवे तो ऐसा। होना तो चाहिए ऐसा, **परन्तु अब वहाँ, सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना) और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव (आच्छादन) से...** अर्थात्? कि आत्मा शुद्ध ज्ञायक चैतन्य है, उसके सन्मुख परिणाम का प्रगटपना और ज्ञेयाकार—इन्द्रिय के लक्ष्य से अनेकाकाररूप जहर के परिणमन का अनेक ज्ञेयाकार के परिणमन से विकल्प का उठना, उसके ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव। अनेकाकार खण्ड-खण्ड ज्ञान का उत्पन्न नहीं होना और सामान्य स्वभाव सन्मुख के ज्ञान का उत्पन्न होना। समझ में आया? बहुत ऐसी भाषा नहीं कुछ, हों! गुजराती बहुत सादी सरस है। सेठी! सेठी ने तो अब यहाँ पड़ाव डाला है न! आहाहा!

कहते हैं, सामान्य ज्ञान का प्रगटपना। प्रश्न कल उठा था। वह आता है न? यहाँ

तो परिणाम की विशेषता कहनी है। परिणाम स्वयं जैनशासन कहना है न! श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान शुद्ध उपयोग। रागरहित, विकल्परहित, निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान की दशा, वह सामान्य परिणाम का प्रगटपना अर्थात् कि जैनशासन का प्रगटपना और ज्ञेयाकार में ज्ञान खण्ड-खण्ड होकर रुकता था, उसका अनुत्पन्नपना अर्थात् उसका तिरोभाव। **जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है,...** अकेला भगवान चैतन्यस्वभाव, अन्तर में अकेला ज्ञानसूर्य प्रभु, अन्तर में पकड़कर अनुभव किया जाये, तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है। तब भगवान आत्मा ज्ञान की अनुभूति में यह आत्मा, ऐसा प्रगट अनुभव में आता है। गाथा भी बहुत सूक्ष्म आयी, तुम सब आये न! समझ में आया?

ऐसे ज्ञान अर्थात् आत्मा, यहाँ ज्ञानप्रधान का कथन है न! पहला दर्शनप्रधान का कथन तो १४वीं गाथा में आ गया। देखो! यहाँ सम्यक् श्रुतज्ञान की बात है, हों! केवलज्ञान की बात नहीं यह। और कोई कहे कि ऐसा हो, वह केवलज्ञानी को होता है और आठवें गुणस्थान में होता है। यहाँ तो अभी श्रुतज्ञान की बात है। अरे भगवान! क्या करे? यहाँ तो श्रुतज्ञान-भावश्रुतज्ञान के उपयोग को जैनशासन का धर्म कहा जाता है। आहाहा! यह तो आठवें गुणस्थान में होता होगा?

मुमुक्षु : तो मुनियों को भी नहीं होता न?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो अभी के मुनि को भी नहीं होता। कुन्दकुन्दाचार्य को नहीं हो तब तो। इसका अर्थ यह हुआ। कुन्दकुन्दाचार्य को आठवाँ गुणस्थान नहीं था। छठवाँ-सातवाँ था। समझ में आया?

अरे! चैतन्य के आराम भगवान स्थान पूरा, उसमें जिसे बैठक अन्दर आसन की मिली... समझ में आया? जो अनादि से राग और विकल्प में आसन डालकर पड़ा था, अनादि से पुण्य और पाप के ध्येय में, लक्ष्य में, वेदन में आसन डालकर पड़ा था। वह संसार था, वह दु:खरूप दशा थी। चाहे तो दिगम्बर मुनि हुआ हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, आत्मा के अन्तर अनुभव बिना अकेली दु:खदशा है। वह भी दु:ख का वेदन करता था। इसीलिए कहा है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' नौवें ग्रैवेयक गया, वहाँ तक मिथ्यादृष्टि को आत्मा

का आनन्द नहीं आया, हों! सम्यग्दृष्टि कोई गया हो, वह तो अलग वस्तु है। समझ में आया?

अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि—असत्य दृष्टि, त्रिकाल चैतन्य के स्वभाव के अनुभव की दृष्टि रहित, अकेले शुभराग के वेदन की दृष्टिवाला, दुःख के वेदन में उसे शुक्ललेश्या का वेदन, उसमें वह नौवें ग्रैवेयक में गया। परन्तु भगवान आत्मा उस शुक्ललेश्या के परिणाम से रहित, वह शुक्ललेश्या के परिणाम, वह जैनशासन नहीं। आहाहा! अनात्मा, अनात्मा, अनात्मा। भाई! महा भगवान विराजता है न, प्रभु! आहाहा! उसकी अनुभूति का स्वाद, अतीन्द्रिय आनन्द, उसे भगवान ने आत्मा कहा है। यहाँ कहा न? श्रुतज्ञान, वह आत्मा है। आत्मा के आनन्द का वेदन, वह आत्मा। दुःख का वेदन, वह आत्मा नहीं। आहाहा! उसके स्वभाव में क्या दुःख पड़ा है? दुःख तो एक समय की अवस्था में नया उत्पन्न करता है। पर्यायबुद्धि से या अस्थिरता से। वस्तु के स्वरूप में दुःख है नहीं। भगवान आत्मा, आत्मा के आनन्दस्वरूप के सन्मुख होकर आनन्द के वेदन की भूमिका में भावश्रुतज्ञान का वीतरागी परिणमन होना, उसे यहाँ ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

तथापि... वस्तु तो ऐसी होनी चाहिए। समझ में आया? भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का रसकन्द सच्चिदानन्द सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसके आनन्द के स्वाद को, जो ज्ञान सम्यग्ज्ञान और जो श्रद्धा अन्तर में (हुई), श्रद्धा-गुण है, उसकी सम्यक् श्रद्धा का परिणमन (हुआ), वह ज्ञान का अनुभव और ज्ञान का प्रगटपना हुआ, ऐसा कहा जाता है। वह राग प्रगट था। पर के लक्ष्य से, पर्याय के लक्ष्य से राग, दुःख उत्पन्न होता था। वह द्रव्य के अनुभव से आनन्द का अनुभव (हुआ), ज्ञान प्रगट हुआ। पहले अज्ञान प्रगटता था। राग की एकताबुद्धि में चैतन्य का अभाव, ऐसे राग की उत्पत्ति थी। उस राग के भावरहित, ऐसा भगवान आनन्दसहित, उसके सन्मुख की दृष्टि करने से जो वस्तु स्वयं ज्ञान प्रगटरूप से पर्याय में आया, अनुभव में आया, वह वस्तु का स्वरूप। उसे आत्मा कहते हैं, उसे जैनशासन कहते हैं, उसे अनुभूति कहते हैं, उसे वीतरागीदशा कहते हैं, उसे भावश्रुत उपयोग कहते हैं, उसे

निर्विकल्प शान्ति कहते हैं। समझ में आया? ऐसा होना चाहिए और ऐसा होने पर भी, **जो अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त हैं,...** भगवान ज्ञानमूर्ति में लीन नहीं और ऐसे लीन हो तो उसे ज्ञान ही, शान्ति ही प्रगट होनी चाहिए। परन्तु ऐसे प्रगट न करके जो ज्ञेयों अर्थात् पाँच इन्द्रिय के विषयों में आसक्त है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में जो आसक्त है, अर्थात् वहाँ परज्ञेय को ज्ञान में जानकर परज्ञेय के ज्ञान को अनुभवता था, वह वास्तव में परज्ञेय को अनुभवता हुआ (परिणमता है)। आहाहा! समझ में आया?

जो अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त हैं,... निमित्त में आसक्त है। ओहो! नौवें ग्रैवेयक में गया जैन साधु, कहते हैं कि वह ज्ञेयों में आसक्त है। आहाहा! तीन लोक के नाथ के समवसरण में गया, परन्तु भगवान को देखकर ज्ञेय में आसक्त, तल्लीन (होकर) ज्ञान की अनेकाकार खण्ड-खण्ड बुद्धि करके जो ज्ञेय में आसक्त है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो वह परज्ञेय के लक्ष्य से राग की मन्दता और खण्ड-खण्ड ज्ञान, वह वास्तव में परज्ञेय है, परज्ञेय है। भगवान या प्रतिमा या वाणी या देव-गुरु-शास्त्र या सम्मेदशिखर या शत्रुंजय या शास्त्र के पृष्ठ, उनके ऊपर लक्ष्य करके ऐसे ज्ञायक की ओर के आश्रय की दृष्टि नहीं; इसलिए ऐसे परज्ञेय में आसक्त होकर उस सम्बन्धी के ज्ञान के क्षयोपशम में और उस सम्बन्धी के राग में और उस सम्बन्धी में खण्ड-खण्ड ज्ञान जो ज्ञेय में आसक्त हुआ वह, उसे वेदता है। उसे परज्ञेय का वेदन है, उसे स्वज्ञेय का वेदन नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

इसका अर्थ हुआ या नहीं? नौवें ग्रैवेयक दिगम्बर मिथ्यादृष्टि साधु समवसरण में गया था या नहीं? समवसरण में गया था तो वहाँ ज्ञान-आसक्त था या ज्ञेय-आसक्त (था)? मिथ्यादृष्टि है, इसलिए वह पर में ही आसक्त है। भगवान को देखा, विभूति देखी, समवसरण देखा, वाणी सुनी। और उस ओर के हुए विकार, वह भी वास्तव में परज्ञेय है। आहाहा! ऐई! पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जानेवाला विचार करता है, रुकता है, वही परज्ञेय में आसक्त है। पश्चात् उसके कारण से नहीं। बापू! यह तो मार्ग तलवार की धार जैसा है,

भाई! वीतरागमार्ग है। आहाहा! ऐसा कि जायेगा, सुनेगा, तब वह ऐसे जायेगा न! यह बात खोटी है, ऐसा कहते हैं। परसन्मुख में ज्ञेय में आसक्त होगा तो उसे ज्ञान की ओर की लीनता होगी न? तुम्हारी व्याख्या प्रमाण ऐसा हुआ कि पहले परज्ञेय में आसक्त हो, फिर स्वज्ञेय में लीन होगा न? सीधे किस प्रकार होगा? परन्तु यह कहाँ हुआ? यह तो परज्ञेय में आसक्त है। उसमें फिर कहाँ हुआ। उसका अभाव करे तो होता है। यह तो फिर उसके कारण से हुआ नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा!

अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में... इतने की व्याख्या चलती है। **जो अज्ञानी हैं,...** अर्थात् कि **ज्ञेयों में आसक्त हैं,...** अर्थात् कि जो आत्मा के ज्ञानस्वरूप सन्मुख की दृष्टि नहीं मात्र, भगवान, वाणी और देव-गुरु और पर के ऊपर एकाकार होकर पड़ा है। भले उसे शुभराग हो, उस सम्बन्धी का भगवान को पहिचानने का, वाणी को पहिचानने का ज्ञान का विकास भी हुआ हो, परन्तु वह सब परज्ञेय में एकाकार है। समझ में आया? इसलिए **उन्हें वह स्वाद में नहीं आता।** देखो! वह परज्ञेय में आसक्त है, इसलिए भगवान आत्मा के ज्ञान का स्वाद आता नहीं। स्वाद अर्थात् अनुभव-वेदन। अर्थात् कि पहले इस ज्ञेय में आसक्तपना हो तो फिर आत्मा का स्वाद आवे, ऐसा है नहीं। गिरधरभाई! गजब बात, भाई! आहाहा! जैन सम्प्रदाय में जन्म, परन्तु जैन क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती और हम जैन हुए, जैन हुए, जैन हुए। समझ में आया?

कहते हैं कि वस्तु तो भगवान ऐसा आत्मा, उसका तो सामान्य ज्ञान ही प्रगट होना चाहिए। यही वस्तु की स्थिति है, यही जैनशासन, यह भावश्रुत। तथापि अज्ञानी पर में आसक्तता के कारण... जब तक वह निमित्त और निमित्त की ओर के राग की मन्दता और राग की मन्दता में होता क्षयोपशमभाव... समझ में आया? वह पर में आसक्त है, ज्ञेय में आसक्त है। क्या कहा? बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये, ऐसा है। अभी तक सुना हो तो सब (शून्य लगाने जैसा है)। आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य के आनन्द की मूर्ति, पर से भिन्न पड़कर उसका अनुभव (होना), वह तो वास्तविक श्रुतज्ञान का प्रगट होना, अनुभव का प्रगट होना, आनन्द का आना और जैनशासन का होना। परन्तु कहते हैं कि होना चाहिए ऐसा,

तथापि अनादि से वह परज्ञेय में आसक्त है। स्वदशा सन्मुख ढलने का उसने प्रयत्न ही नहीं किया। समझ में आया? स्त्री, पुत्र, परिवार तो एक ओर रह गये। वे तो कहीं पाप के परिणाम निमित्त, वे तो एक ओर रह गये। समझ में आया? परन्तु नग्न मुनि दिगम्बर, हजारों रानियों का त्याग और चौबीस घण्टे शास्त्र की स्वाध्याय, पठन-पाठन, निद्रा छोड़ दे, महीने-महीने अपवास (करे) परन्तु वह सब परज्ञेय में आसक्त हैं। आहाहा! क्योंकि उसके लक्ष्य का डोर निमित्त के ऊपर और उसके लक्ष्य से होनेवाले क्षयोपशमभाव और उसके लक्ष्य में होता शुभविकल्प... समझ में आया? उसमें वह आसक्त है। आहाहा! तो वह जहर को पीता है। कठिन कहा। समझ में आया?

उन्हें वह स्वाद में नहीं आता। इसका अर्थ हुआ कि उन्हें जहर का अनुभव है, आत्मा के आनन्द का नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खड़ा रखे क्या?

मुमुक्षु : .... उसे लगता नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे लगता नहीं आत्मा का अन्दर में। गुरु कहना चाहते हैं कि हमारे सामने देखना छोड़ दे और अन्दर सन्मुख देख, उसे मानता नहीं। पहले कहा न? शासन कहा न? जैनशासन ऐसा कहता है कि चार अनुयोग में तो गुरु भी ऐसा कहते हैं उपदेश में, शास्त्र भी कथन में या लेखन में ऐसा कहते हैं। क्या? कि यह आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, इसके सन्मुख होकर बद्धस्पृष्ट से रहित होकर, राग के विकल्प के दुःख के संयुक्तपने से रहित होकर आत्मा का अनुभव कर, वह जैनशासन है। ऐसा उनका हुकम है, वह हुकम मानता नहीं। चिमनभाई! ऐसा उनका हुकम है।

एक शब्द रखा कि **तथापि...** ऐसा है, अज्ञानी है अर्थात् कि ज्ञेयों में आसक्त है, उसकी व्याख्या इतनी। ज्ञेयों में आसक्त है, उसकी व्याख्या इतनी कि चाहे तो भगवान का समवसरण हो और दिव्यध्वनि हो, परन्तु वह परज्ञेय है। उसकी ओर लक्ष्य (करके) एकाकार (हो)। उसमें से कदाचित् अपने परिणाम राग की मन्दता हुई, निमित्त से नहीं, स्वयं से हुई और उसके काल में अपने को क्षयोपशम ज्ञान का विकास हुआ, पर के

लक्ष्यवाला, पर को जाननेवाला, वह सब ज्ञान और राग और निमित्त तीनों ज्ञेय है। परज्ञेय हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : तत्त्व की विराधना करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तत्त्व का विराधन करके, अतत्त्व का आराधन करता है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये लोग। फिर कहे न? सोनगढ़ ऐसा (कहता है)। अरे! सोनगढ़ नहीं, भगवान को कह न तू जाकर। श्रीपालजी! सोनगढ़ व्यवहार का लोप करता है। प्रभु! तुझे खबर नहीं, भगवान! सही समय पर तुझे कठोर पड़ेगा, भाई! यह अभी खबर नहीं पड़ती। क्योंकि संयोग बिना दुःख देखता नहीं। क्योंकि संयोग को देखनेवाला। अन्दर में आकुलता हो, उसे दुःख देखता नहीं। संयोग ऐसे आवे, बाघ आवे... आहाहा! संयोग को देखनेवाला संयोग से त्रास पाता है। वास्तव में दुःख तो अन्दर स्वभाव-सन्मुखता छोड़कर ज्ञेय में आसक्त होकर पड़ा, वही दुःख का भाव है। आहाहा! समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता। अरे! सुन न! भगवान की दिव्यध्वनि और भगवान से भी परसन्मुख का ज्ञान भी उनसे नहीं होता। वह भी अपने उस प्रकार की क्षयोपशमदशा से होता है। परन्तु वह क्षयोपशमदशा और वह राग और निमित्त सब परज्ञेय में जाते हैं। आहाहा! ऐ... मगनभाई! मुश्किल से किसी दिन आये। सवेरे, दोपहर का दोनों ऐसा (आता है)।

भाई! यह तो स्थिर होने के स्थान हैं, भाई! आहाहा! भगवान आत्मा... कहते हैं कि ग्यारह अंग का, नौ पूर्व का ज्ञान, राग की मन्दता और पर के लक्ष्य से अपने में क्षयोपशम हुआ होने पर भी वह परज्ञेय है, वह वास्तव में स्वज्ञेय नहीं। उसमें आसक्त है, इसलिए उसे दुःख का ही वेदन है। आहाहा! किसका अर्थ चलता है यह? **जो अज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त हैं,...** इतने की व्याख्या चलती है। **उन्हें वह स्वाद में...** वह अर्थात् ज्ञान भगवान आत्मा। ऐसे (पर) सन्मुख में पड़ा, इसलिए ऐसे सन्मुख का स्वाद उसे आता नहीं। आहाहा! कथनी सन्तों की, दिगम्बर मुनियों की पद्धति, गजब! कहने की पद्धति... ऐसी पद्धति अन्यत्र नहीं मिलती। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञेयों में आसक्त हैं,... (अर्थात्) नौवें ग्रैवेयक में मिथ्यादृष्टि गया, तब नौ पूर्व का

ज्ञान था और शुक्ललेश्या थी और शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो भी क्रोध न करे इतनी तो बाह्य कषाय की मन्दता थी। ग्यारह अंग का ज्ञान था। समवसरण में हमेशा भगवान के पास जाता। अपने भगवान के पास नहीं गया, वह साक्षात् भगवान के पास गया तो भी ज्ञेय में आसक्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : निज भगवान सन्मुख की महिमा ही नहीं आयी। वहाँ महिमा (आयी)। आहाहा! या भगवान की महिमा, या राग की मन्दता की महिमा, या राग की मन्दता से क्षयोपशम हुआ, उसकी महिमा, वह सब मिथ्यादृष्टि की महिमा है। समझ में आया?

उन्हें... अर्थात् ज्ञेयों में आसक्त है, उन्हें **वह स्वाद में नहीं आता...** वह अर्थात् आत्मा के आनन्द का स्वाद-अनुभूति नहीं होती। ज्ञेय में आसक्त है, उसे अनुभूति नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही समझाया है, इन्होंने कि तू अनुभूति कर, तब हमने तुझे समझाया, ऐसा निमित्तरूप से कहा जाता है। एक वीतराग ही ऐसा कहे, हमारे सामने देखना छोड़ दे, तेरे सामने देख तो तुझे लाभ होगा। वीतराग स्वयं कहे। दूसरे तो कहे, हमको दे और पात्र भर और हमको आहार-पानी दे या हमको दान दे, हमारी सेवा कर, जा! तेरा कल्याण होगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मुनि ऐसा कहे कि हमको आहार-पानी दे तो तेरा कल्याण हो जायेगा, ऐसा नहीं। आहाहा! वह राग है, हमको आहार देने में। (ऐसा भाव) आवे (वह) अलग बात है, परन्तु तू जाने कि उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र (होगा), हमको आहार देने की वृत्ति तुझे हुई, इसलिए तुझे मोक्षमार्ग प्रगट होगा, उससे प्रगट होगा, ऐसा नहीं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि ने आहार-पानी दिये नहीं अनन्त बार? दिगम्बर साधु भावलिंगी साधु को आहार-पान दिये थे। समझ में आया? परन्तु वह ज्ञेय में आसक्ति की क्रिया थी। ऐसा जिसके ज्ञान में मुनि तैरते हैं और वहाँ... राग, उसमें हुआ

उघाड़... ऐसे उघाड़... उघाड़... आहाहा! कहते हैं कि उसकी ओर के माहात्म्य में पड़ा हुआ, उसे भगवान आत्मा की अनुभूति का स्वाद नहीं आता। कहो, समझ में आया इसमें? यह बात तो हुई थी कल दोपहर में। यहाँ से अब बाकी है। इतनी बात तो कल हुई थी। **यह प्रगट दृष्टान्त से बतलाते हैं :-**

जैसे - अनेक प्रकार के शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव... देखो! क्या कहते हैं? यह सब्जी में नमक डाले, रोटी में नमक डाले, खिचड़ी में नमक डाले। डालते हैं न? रोटी में नमक होता है। कहीं तो और चावल में भी नमक डालते हैं। **शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से...** भोजनों के सम्बन्ध से **उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव...** वहाँ खारेपन का ख्याल नहीं। खारेपन का ख्याल नहीं। सब्जी द्वारा जाने, सब्जी द्वारा खारा है, (ऐसा जाने) तो उसके स्वाद में सब्जी खारी है, वह आता है। शाक समझते हो न? **शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से...** उसमें नमक डाला हो न? लवण। उससे **उत्पन्न सामान्य लवण...** अर्थात् अकेला खार, उसका स्वाद ढँककर, ढँककर **विशेष लवण के आविर्भाव से...** अर्थात् कि सब्जी द्वारा नमक का अनुभव। सब्जी द्वारा नमक का खण्ड-खण्ड अनुभव। **आनेवाला जो (सामान्य के तिरोभावरूप और शाकादि के स्वाद भेद से भेदरूप-विशेषरूप)...** सब्जी आदि। करेला खारा, रोटी खारी, खिचड़ी खारी, रोटला खारा, यह खारा—ऐसा बोलते हैं। ऐसा बोलते हैं न? रोटी खारी, खिचड़ी खारी। खारी रोटी हो? खारा तो नमक होता है। मीठुं समझे? लवण, नमक। हमारे (गुजराती में) मीठुं कहते हैं। रोटी खारी, रोटला खारा, खिचड़ी खारी, पूड़ी खारी, सब्जी खारी, करेले की सब्जी खारी ढूँढवा, ऐसा नहीं कहते? हमारी काठियावाड़ी भाषा। यह खारा ढुढवा सब्जी है। खारा ढुढवा अर्थात् बहुत खारा हो। एक धोवा डाला एक बाई ने, दूसरी बाई आई उसे खबर नहीं इसलिए डाला दूसरा थोड़ा। परन्तु नमक खारा है या सब्जी खारी है? परन्तु सब्जी के लोलुपी... आलू और... समझे न? दूध और करेले ऐसे फर्स्ट क्लास। होते हैं न करेले? करेला कहते हैं न? मसाला भरा हो। उसके स्वाद में तो मानो करेला से ही खारा हुआ, ऐसा दिखता है उसे। वह करेला में लीन है न! कडुवा, कडकडिया हो वापस, कडकडिया। घी में तला हुआ। उसमें नमक का स्वाद लगे, वह मानो करेले का स्वाद है। करेले के

स्वाद में मस्त गृद्ध हो गया, उसे नमक का स्वाद भिन्न न दिखकर सब्जी द्वारा सब्जी ही खारी दिखती है। समझ में आया?

लवण है, उसका स्वाद अज्ञानी,... अज्ञानी अर्थात् यहाँ सब्जी के लोलुपी, ऐसा। सब्जी के लोलुपी को ऐसे **मनुष्यों को आता है...** किसे? उस सब्जी को ही खारा (मानते हैं), सब्जी ही खारी, खण्ड-खण्ड खारा (मानते हैं उन्हें)। समझ में आया? **शाकादि के स्वाद भेद से भेदरूप-विशेषरूप...** ऐसा। सब्जी के भेदरूप से भेदरूप खारा दिखता है उसे। भेदरूप दिखता है, परन्तु अकेला अभेदरूप खारा नहीं दिखता। समझ में आया? **लवण है, उसका स्वाद अज्ञानी, शाक लोलुप मनुष्यों को आता है किन्तु अन्य की सम्बन्धरहितता से...** अन्य के सम्बन्धरहित (अर्थात्) सब्जी, रोटी, दाल, खिचड़ी से रहित। **सम्बन्धरहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव...** अकेले नमक के खारापन का ही वेदन खारा। **विशेष के तिरोभाव से...** शाक द्वारा की विशेषता का ढँक जाना। ऐसा **एकाकार अभेदरूप लवण...** वह भेद... भेद... था, यह एकाकार अभेद **लवण है, उसका स्वाद नहीं आता;...** अज्ञानी अर्थात् लवण के अज्ञानी, सब्जी के, हों! यह तो दृष्टान्त है न अभी। समझ में आया?

श्रीमद् आये थे। यहाँ राणपुर के पास हरमताळु है। राणपुर का गाँव हरमताळु। २५-५० लोग इकट्ठे हुए। फिर खाने बैठे। लड्डू और सब्जी होगी लौकी की। लौकी की सब्जी आयी जहाँ कटोरे में... वे तो खाने के लोलुपी, इसलिए सब्जी आयी और अब लड्डू आयेगा। ऐसे जहाँ श्रीमद् ने नजर डाली, सब्जी में नमक अधिक है। बिना चखे? चखे क्या? सब्जी की गृद्धि (वाला), सब्जी आयी, सब्जी आयी, सब्जी आयी। समझ में आया? लौकी की सब्जी, फलाने की सब्जी। इसमें नमक अधिक है। मीठुं समझे न? लवण। लवण अधिक है। क्यों? देखो! जो लौकी के टुकड़े हों, लौकी... लौकी, टुकड़े किये हों न? पानी से बाफकर जो टुकड़े किये हों, उनमें नमक अधिक पड़े, तब उनके रेशा टूट जाते हैं। उनके रेशा हो न समान। अधिक नमक पड़े तो उनके टुकड़े हो न? लौकी के कटका—टुकड़ा बफे तो समान रहे। उनमें नमक (अधिक) पड़ जाये तो रेशा टूट जाते हैं। ऐसे रेशा टूट गये देखे (तो कहा), इसमें नमक अधिक है। समझ में आया? रेशा समझते हो? सब्जी होती है न?

मुमुक्षु : उसमें हल्कापना आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हल्का नहीं, ऐसे चूँथ जायें, छिद जाये। नमक पड़ा न, इसलिए खार के कारण व्यवस्थित न रहे। खार बिना यदि पानी से अकेला बफा हो तब तो टुकड़े समान रहे। भले चढ़ गये हों परन्तु समान रहे। नमक अधिक पड़े तो छिद जाये। छिद जाये को क्या कहते हैं? खड्डे पड़ जायें, टुकड़े हो जाये, ऐसे जरा-जरा बारीक खींच जायें दोनों ओर। उसमें नमक अधिक है। दूसरे ने जहाँ चखा,... हाँ, नमक अधिक है। अरे! यह क्या? इन्होंने तो देखकर कहा, अपने को चखने के बाद खबर पड़ी। क्योंकि वे तो खाने के गृद्धि थे। एकदम सब्जी आयी, अब लड्डू आयेंगे, यही देखने का रहा। उन्हें कुछ है नहीं (कहीं नहीं)। इनको हुआ, परन्तु यह खारा है। ऐसे सब्जी के लोलुपी सब्जी द्वारा खारापन को अनुभव करते हैं, वे सब्जी को ही अनुभव करते हैं। मानो यह सब्जी ही ऐसी है, ऐसा जानते हैं। उन्हें सब्जी के अतिरिक्त नजर पड़ती नहीं। उनकी नजर खारा के ऊपर जाती ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं पड़ती। समझ में आया?

और परमार्थ से देखा जाये... अभी दृष्टान्त चलता है, हों! **तो, विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण ही सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला...** उस द्वारा जो आता था, वही विशेषपने को छोड़ दो तो सामान्यपने खारापन इस प्रकार ही आता है। बस लक्ष्य बदल जाता है। समझ में आया? सब्जी के लक्ष्य से जो खारापन आता था, उस खारापन के लक्ष्य से, अकेले खारा के लक्ष्य से वही सामान्य ख्याल में आता है। ख्याल तो पर्याय में वही आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब परन्तु! दृष्टान्त देकर कितना स्पष्ट करते हैं! आचार्य को पड़ी होगी यह? अनुकम्पा से विकल्प आया तो समझाते हैं, भाई! लवण के स्वाद, सब्जी के स्वादिया, सब्जी का स्वादिया तुझे लवण का स्वाद नहीं आता। स्वादिया समझे? सब्जी का स्वादिया हमारी काठियावाड़ी भाषा है। आहाहा! सब्जी का स्वादिया, ऐसा कहे। सब्जी का स्वादिया बहुत है। सब्जी अधिक चाहिए है, रोटी खाये तीन और सब्जी खाये पूरा कटोरा इतना।

यहाँ भगवान कहते हैं, ... सब्जी के स्वादिया! तुझे नमक का स्वाद कहीं नजर पड़ता नहीं। वास्तव में तो सब्जी द्वारा जो खारा आता है, वही खारा तेरे ख्याल में इस ओर आवे तो वही खारा ख्याल में आता है। समझ में आया? **विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला लवण ही सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला...** लवण है। लवण तो वही है। सब्जी द्वारा ख्याल आवे, वह ख्याल छोड़कर अकेले लवण का ख्याल कर तो लवण सामान्यरूप से तुझे भिन्न ही दिखाई देगा। समझ में आया? ऐसे सब्जी के लक्ष्य से खारा ख्याल आता है, परन्तु खारा के लक्ष्य से देखे तो वही खारा है। यह लक्ष्य में वह है, खारा के लक्ष्य से वह है। समझ में आया? लक्ष्य बदलने से तुझे ख्याल आवे, ऐसा कहते हैं।

उसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त कहा। अब सिद्धान्त। **अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ...** देखो! **अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों...** परज्ञेयों के आकार से विशेषता के साथ। **मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव...** अकेला ज्ञान परिणाम, रागमिश्रित बिना, परज्ञेय के मिश्रित बिना अनुभव में आना चाहिए, उसका ढँक जाना। **और विशेष के आविर्भाव से...** अकेले ज्ञेय आसक्तवाले को उससे—ज्ञेय से, राग से, क्षयोपशम ज्ञान, उससे **अनुभव में आनेवाला (विशेषभावरूप अर्थात् भेदरूप, अथवा अनेकाकाररूप)...** तीन अर्थ किये। **ज्ञान व अज्ञानी, ज्ञेय-लुब्ध जीवों के...** उसमें था न? जो अज्ञानी ज्ञेयों में आसक्त हैं। **ज्ञेय-लुब्ध जीवों के...** समझ में आया? उसकी व्यवहारिक श्रद्धा निश्चय बिना की, व्यवहारिक ज्ञान निश्चय बिना का, व्यवहारिक राग की मन्दता निश्चय बिना की, अकेली परज्ञेय में लीनता... कहते हैं कि **ज्ञेय-लुब्ध जीवों के...** वे ज्ञेय-लुब्ध हैं। अकेली पर्यायबुद्धि में लीन हो गया है। आहाहा! समझ में आया? **स्वाद में आता है...** ज्ञेय-लुब्ध जीवों को स्वाद में क्या आता है? राग और ज्ञान की विशेषता का स्वाद उसे आता है। आत्मा का स्वाद उसे आता नहीं। समझ में आया? मिश्रपना कहा न? है तो अपना ज्ञान का उघाड़ न? उसके साथ राग, निमित्त में एकाकार। आहाहा! मान्यता में करके और मिश्रपने को वेदन करता है। वह स्वयं नहीं, हों! मिश्र में। थोड़ा ऐसा और थोड़ा ऐसा, ऐसा नहीं यहाँ कहीं। थोड़ा ऐसा और थोड़ा

ऐसा, ऐसा यहाँ मिश्र का अर्थ नहीं। यहाँ तो ज्ञान को अन्तर में नहीं झुकाकर बाहर ज्ञेय में आसक्त हुआ, उसे मिश्र ज्ञान कहा जाता है।

अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव... ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वापस कोई कहे न ? कि श्रिम में थोड़ा सा तो स्वाद होगा न ? मिश्र हुआ या नहीं ? मिश्र अर्थात् मिलावट कर डाला। वह तो अपने नहीं आता ? हाथी में नहीं ? हाथी स्वाद लेता है। मिश्र स्वाद। वहाँ भी मिश्र शब्द पड़ा है। हाथी को घास दे, गेहूँ दे, अनाज दे। साथ में लड्डू दे तो लड्डू के साथ मिश्र करके खाता है। उसी प्रकार अज्ञानी आत्मा मिश्र करके खाता है। मिश्र अर्थात् वहाँ ऐसा नहीं लेना कि लड्डू—आनन्द का स्वाद है और घास का स्वाद है। वह तो दृष्टान्त दिया था वहाँ। समझ में आया ? वहाँ भी मिश्र शब्द पड़ा है, हों! कर्ता-कर्म अधिकार में है न यह। मिश्रपना। मिश्रपना अर्थात् भगवान ज्ञानस्वरूपी ज्ञानरूप से तो ऐसा का ऐसा रहा है, परन्तु पर में लुब्ध हुआ तो मिश्रित बना दिया। राग मिश्रित, परज्ञेय मिश्रित। परज्ञेय का ज्ञान, उसे मिश्रित कर दिया। उसका स्वाद लेने से उसे सामान्य का अनुभव नहीं आता। समझ में आया ? **परन्तु...** यह विशेष लेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक - ११-१०-१९६६
गाथा-१५, श्लोक- १४-१५, प्रवचन - ७३

यह जीव-अजीव अधिकार समयसार का चलता है। १५वीं गाथा की टीका चलती है, टीका। यहाँ आया है न? **अलुब्ध ज्ञानियों को तो,... जो ज्ञान विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आता है, वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है।** यहाँ तक आया है। इसका अर्थ क्या? कि यह ज्ञानपर्याय ज्ञेय, खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और उसका विषय, उनकी आसक्ति में जो ज्ञान की आविर्भाव दशा विकार की उत्पत्ति होती है, ज्ञान में मिश्रपना अर्थात् अकेला ज्ञान स्वाद में नहीं आता। ज्ञान पाँच इन्द्रियों के विषय में शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में उस ओर के राग में खण्ड-खण्ड इन्द्रिय में आसक्त है, वह विशेष आविर्भाव अनुभव में आता है। उस समय ज्ञान की पर्याय जो खण्ड-खण्ड में जो ख्याल में आती है **वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है।** वही ज्ञान, स्वभाव-सन्मुख देखने से ज्ञान में अनेकाकार खण्ड-खण्डपना छूट जाना और अपने ज्ञान में एकता (-एकरूपता का) होना, ऐसी अपनी ज्ञानपर्याय प्रगट शुद्ध होती है। १५वीं गाथा बहुत सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

यह ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्य निज ज्ञायक सन्मुख की दृष्टि से जो एकरूप ज्ञान का एकाकार होना, वह तो अपने स्वरूप का स्वाद शान्ति का—भावश्रुत का ज्ञान है। वह ज्ञान राग में, शब्द, रूप, रस, गन्ध में अपने ज्ञेय स्वभाव को छोड़कर अकेले परज्ञेय में लीन होता है, उसे खण्ड-खण्ड ज्ञान अनुभव में आता है। उसे दु:ख अनुभव में आता है, दूसरे अर्थ में (कहें तो)। समझ में आया? वही ज्ञान जब खण्ड-खण्ड का लक्ष्य छोड़कर निज स्वभाव-सन्मुख ज्ञान होता है तो वही ज्ञान जो खण्ड-खण्ड ज्ञान में (अनुभव में) आता था, वही पर्याय अखण्ड ज्ञान में अखण्ड वेदन में आती है। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, जो ज्ञानस्वरूपी आत्मा है, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है। वह ज्ञान इन्द्रिय की ओर के लक्ष्य के झुकाव से चाहे तो शब्द, रूप, रस, गन्ध अनुकूल-प्रतिकूल हो, शुभ या अशुभ हो, उसमें आसक्त अर्थात् अकेला लीन होता है तो खण्ड-खण्ड ज्ञान—मिथ्याज्ञान-विपरीत ज्ञान, दुःखरूप खण्ड-खण्ड अनुभव में आता है। समझ में आया? वही ज्ञान, वही ज्ञान की पर्याय जो ऐसे खण्ड-खण्ड (अनुभव में आती) थी, उस ज्ञानपर्याय को अन्तर में झुकाने से उसी पर्याय में ज्ञानाकार की परिणति का अनुभव होता है। समझ में आया? परन्तु इसमें क्या समझना? इसमें तो धर्म कैसे होता है और अधर्म कैसे होता है, यह बात है। पर की कोई बात, पर मरे—हिंसा (हो), वह कुछ प्रश्न नहीं। आहाहा! अपनी ज्ञानपर्याय पर में आसक्त (होती है)—निमित्त में, राग में खण्ड-खण्ड होकर जो आसक्त है, वही आत्मा की हिंसा है। समझ में आया? उसे आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं आता, दुःख का स्वाद आता है। आहाहा! समझ में आया?

वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से... वही पर्याय जो ज्ञान के साथ एकत्व हुई तो उस पर्याय में ज्ञान का आनन्द का अनुभव होता है, उसका नाम धर्म कहा जाता है। समझ में आया? कहो, दरबार! समझ में आया या नहीं? बहुत सूक्ष्म परन्तु ऐसा। ऐसा यह धर्म कैसा होगा? वाणी, शरीर, देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब परिवार, सम्मेदशिखर या शत्रुंजय आदि तीर्थ, वे सब परद्रव्य हैं। वह ज्ञान परद्रव्य में एकाकार होकर अपनी ज्ञानपर्याय में खण्ड-खण्डपना उत्पन्न करके अनेकाकार—विषय के भेद से अनेकाकार ज्ञान का भेद होकर अनुभव करता है, वह मिथ्यात्व है, अधर्म है, हिंसा है, दुःख है। आहाहा! समझ में आया? वह ज्ञान अपने में एकाकार होता है, वह अहिंसा है, भावश्रुतज्ञान है, जैनशासन है, वीतरागी मार्ग है।

अलुब्ध ज्ञानियों को तो,... (अर्थात्) ज्ञेय में आसक्त नहीं है—ऐसा शब्द लिया है। ज्ञेय अर्थात् परपदार्थ में एकाकार होकर लुब्ध नहीं है अर्थात् अलुब्ध है, ऐसे धर्मी को **जैसे सैंधव की डली, अन्य द्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके...** नमक की डली—नमक। सब्जी आदि के संयोग का अभाव करके **केवल सैंधव का ही अनुभव किये जाने पर,...** अकेले खार—लवण—नमक का अनुभव किये जाने पर **सर्वतः एक**

क्षाररसत्व के कारण क्षाररूप से स्वाद में आती है,... उस डली में क्षाररस का स्वाद आता है, अकेला क्षार देखे तो।

उसी प्रकार आत्मा भी, परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके... परद्रव्य का लक्ष्य ज्ञेयाकार की आसक्ति छोड़कर **केवल आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर,...** अपनी ज्ञान की पर्याय आत्मा की ओर ढलकर आत्मा का अनुभव किये जाने पर **सर्वतः...** चारों और **एक विज्ञानघनता के कारण ज्ञानरूप से स्वाद में आता है।** अन्तर ज्ञानानन्दस्वरूप में ज्ञान की पर्याय को एकाकार करने से विज्ञानघन ज्ञान एकाग्र हुआ, वह विज्ञानघन हुआ। **ज्ञानरूप से स्वाद में आता है।** अमरचन्दजी! समझ में आया? लड्डू-बड्डू का स्वाद कब आता है उसमें? आज है तुम्हारे नहीं? जामुन और बर्फी का स्वाद। उनका स्वाद तो आत्मा को आता ही नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। उस ओर की आसक्ति में ज्ञान को रोककर खण्ड-खण्ड करके राग उत्पन्न होता है, उसका स्वाद आता है। समझ में आया?

वस्तु चैतन्यस्वभावी सूर्य, वह अपने एक स्वरूप का आश्रय छोड़कर अनेक ज्ञेयों की आसक्ति में रुककर जो ज्ञान की पर्याय में खण्ड-खण्ड, खण्ड-खण्ड, भेद... भेद... भेद... भेद... भेद (होता था), उस आसक्ति में भेद का अनुभव करना, वह स्वभाव से विरुद्ध भाव है। आहाहा! बहुत (सूक्ष्म)। कहो, सेठी! हीरा और माणेक देखते-देखते ऐसे एकाकार हो जाना... निज चैतन्यहीरा की ओर का आश्रय नहीं, जिसका वह ज्ञान है, उस ओर एकाग्रता नहीं, जिसमें वह ज्ञान नहीं, ऐसे परज्ञेय में आसक्ति अर्थात् एकाकार होकर निमित्त और परज्ञेय की मैत्री बाँधकर अपनी ज्ञान की दशा में खण्ड-खण्डपना होना, इसका नाम मिथ्यात्व का ज्ञान वेदन में आता है। दुःखरूप ज्ञान वेदन में आता है, ऐसा कहते हैं।

परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके... अर्थात् परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर **केवल आत्मा का...** आहाहा! ऐसे आत्मा का **अनुभव किये जाने पर, सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण...** ज्ञानस्वरूप चैतन्य की ओर में ज्ञान की एकाग्रता के कारण से ज्ञानरूप से स्वाद में आया। राग और खण्ड-खण्ड का स्वाद था, वह यहाँ ज्ञान का,

शान्ति का, आनन्द का–अनाकुलता का स्वाद आया, उसका नाम जैनशासन कहा जाता है। उसका नाम जैनशासन। आहाहा! कहो, मगनभाई! उसका नाम जैन की शिक्षा का धर्म। आहाहा! वह जैनधर्म। अभी तो बाहर में झगड़े। शुभभाव से धर्म होता है या नहीं? शुभभावभाव से परम्परा से मुक्ति होती है या नहीं? कहाँ ले गये? समझ में आया? यहाँ तो शुभभाव का ज्ञेय पर है, उसमें आसक्ति होकर लीन होता है तो ज्ञान खण्ड–खण्ड होता है, उसका नाम दु:ख की दशा कही जाती है। वह जैनदर्शन नहीं, वह जैनशासन नहीं। शुभभाव भी परज्ञेय है, स्वज्ञेय चैतन्य नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- यहाँ आत्मा की अनुभूति को ही ज्ञान की अनुभूति कहा गया है। यह १४वीं (गाथा) के साथ तुलना की। भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव—वस्तुस्वभाव का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव, वही ज्ञान का अनुभव। अर्थात् राग का अनुभव नहीं अर्थात् ज्ञान का अनुभव। **अज्ञानीजन ज्ञेयों में ही...** ज्ञेयों में ही अर्थात्? अर्थात् **इन्द्रियज्ञान के विषयों में ही...** ऐसा। ज्ञेयों में ही, इसकी व्याख्या। **इन्द्रियज्ञान के विषयों में...** पाँच इन्द्रिय के शब्द आदि के लक्ष्य में लुब्ध हो रहे हैं। ओहोहो! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की प्रतिमा हो या भगवान साक्षात् हो या स्त्री, कुटुम्ब–परिवार हो, सब परद्रव्य है। उन **इन्द्रियज्ञान के विषयों में ही–लुब्ध हो रहे हैं;...** उसी ओर के अकेले झुकाव से लीन हो रहे हैं, वे **इन्द्रियज्ञान के विषयों में...** उस **इन्द्रियज्ञान के विषयों से अनेकाकार हुए ज्ञान को ही..** देखो! क्या कहते हैं? अनेकाकार खण्ड–खण्ड हुए ज्ञान को ही **ज्ञेयमात्र...** ज्ञान को ही ज्ञेयमात्र—परवस्तु को ही ज्ञान मानकर, उसे **आस्वादन करते हैं...** समझ में आया?

परइन्द्रिय के विषयों में अनेकाकार हुए ज्ञान को ही, अनेकाकार हुआ वह वास्तव में खण्ड–खण्ड परज्ञेय है। इन्द्रियज्ञान के विषयों में—चाहे तो भगवान की वाणी सुनते हों, भगवान को समवसरण में देखते हों, परन्तु वह इन्द्रिय का विषय है। बराबर है? मगनभाई! इन्द्रिय का विषय होगा या अतीन्द्रिय? भगवान को तो अतीन्द्रिय का विषय है। परन्तु पर्याय वर्तमान इन्द्रिय के लक्ष्य से ऐसा देखती है और अपनी अनेकाकार ज्ञान की दशा हुई, उसमें भी ऐसा मानता है कि वह अनेकाकार ज्ञान की

पर्याय पर से हुई, ऐसा तो है ही नहीं। यह तो पर के लक्ष्य से अपने में ज्ञान की अनेकता उत्पन्न हुई, उसे ज्ञेयमात्र आस्वादन करते हैं। वह तो ज्ञान को ही ज्ञेयमात्र (अर्थात्) ज्ञान की दशा (जो) अनेकाकार (हुई), उसे ही आस्वादन करते हैं। वास्तव में तो वह परज्ञेय है। ज्ञान में अनेकाकारपना होना, खण्ड-खण्ड होना, वह वास्तव में तो परज्ञेय है, स्वज्ञेय नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म!

ज्ञेयमात्र आस्वादन करते हैं परन्तु ज्ञेयों में भिन्न... परद्रव्य से भिन्न, परद्रव्य के लक्ष्य से हुए ज्ञान के खण्ड-खण्डपने से भिन्न **ज्ञानमात्र का आस्वादन नहीं करते।** भगवान चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द में एकाकार होकर आत्मा का-ज्ञान का स्वाद नहीं लेते, उन्हें जैनधर्म नहीं होता। ओहोहो! समझ में आया? नेमिचन्दजी! दिल्ली में तो यह बहुत सूक्ष्म पड़े। अरे! भगवान! आहाहा! स्वतन्त्र वस्तु। चैतन्यस्वरूपी सूर्य द्रव्य-स्वद्रव्य की वर्तमान दशा में अकेले परद्रव्य में लीन होकर ज्ञान की दशा में खण्ड-खण्ड में—भावेन्द्रिय में खण्ड-खण्ड करके साथ में राग हुआ, (उसमें) लीन होकर, उसे अनुभव करता है, वह जैनशासन नहीं, मिथ्यादर्शन राग का शासन अनादि से करता है, वह भाव है। ओहोहो! पकड़ना मुश्किल पड़े।

मुमुक्षु : उसमें लुब्ध क्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : लीन हो गया। कहा न? चाहे तो भगवान तीर्थंकर हो या प्रतिमा हो, परज्ञेय है। इस ज्ञान की पर्याय अपने ज्ञेय में लीन नहीं होकर, वह पर्याय परद्रव्य में एकाकार होकर चाहे तो ज्ञान में अनेकता खण्ड-खण्ड उत्पन्न (होकर) शुभराग हो, परन्तु वह ज्ञेय में आसक्त-लुब्ध है। समझ में आया? वह मिथ्यादृष्टि है। भारी कठिन, भाई! जैनदर्शन जगत को समझना (बहुत कठिन)। 'वाडा बाँधकर बैठे रे, अपना पंथ करने को।'

वस्तु भगवान वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने कहा कि प्रभु! तू ज्ञायक चैतन्यज्योति है न! तेरे स्वभाव-सन्मुखता की दशा को छोड़कर, दशा को छोड़कर (इसका अर्थ) दशा कहीं उत्पन्न नहीं हुई, उस ओर ढलना छोड़कर। यह पहले आया था न? वह अपेक्षा ली। भगवान चैतन्यज्योति सूर्य प्रभु चैतन्य की अन्तर्मुख की

एकाकार दशा उत्पन्न नहीं करके, ज्ञान की वर्तमान दशा में भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय—चाहे तो भगवान की वाणी हो, भगवान हो, सम्मेदशिखर हो या शत्रुंजय हो, या स्त्री हो, पुत्र हो—परसन्मुख के ज्ञेय में जितना राग हुआ और ज्ञान में खण्ड-खण्डपना हुआ, वह यथार्थ में परज्ञेय है। उसमें एकाकार है, उसे यहाँ मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भक्ति-बक्ति का शुभराग है, परन्तु उस राग में एकाकार होकर पर में लीन होता है, वह मिथ्यात्व है, जैनदर्शन नहीं, जैनशासन नहीं। कहो, नेमिचन्दजी! क्या है ? राजारामजी! कहो, भाई! क्या है ? भक्ति दो प्रकार की। निज ज्ञानानन्दस्वरूप में लीन होना, वह निश्चयभक्ति और भगवान की ओर का राग होना, वह व्यवहारभक्ति। अकेले निश्चय के भान बिना मात्र उसमें लीन हो जाये तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। निज स्वरूप का राग से भिन्न भान होकर स्वरूप में एकाग्र होकर फिर शुभ आता है तो व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है, ऐसा कहा जाता है, मिथ्यात्व नहीं। परन्तु अपने ज्ञायकस्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता को छोड़कर अकेले परद्रव्य में एकाकार होकर राग और शुभ और खण्ड-खण्ड ज्ञान को अनुभव करता है, वह तो मिथ्यादृष्टि, अजैन शासन, अजैन धर्म को अनुभव करता है, मिथ्यात्व को अनुभव करता है। समझ में आया ? जैन वाडा हो, इसलिए जैन हो गया, ऐसा नहीं। ऐसा जैन वाडा तो अनन्त बार मिला। ओहोहो!

और जो ज्ञानी हैं,... देखो! जो धर्मी है, वह **ज्ञेयों में आसक्त नहीं हैं,...** वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, राग और निमित्त में लीनता नहीं। परद्रव्य में एकाग्रता नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव है—धर्मी चौथे गुणस्थानवाला, हों! अभी चौथा गुणस्थान, अविरति, वह ज्ञेयों में आसक्त नहीं। चाहे तो भगवान त्रिलोकनाथ हों, वाणी हो, देव, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार हो, वह सब परद्रव्य है। उसमें आसक्त नहीं, उसमें एकाकार नहीं। **वे ज्ञेयों से भिन्न...** वह ज्ञेयों से भिन्न **एकाकार ज्ञान का ही आस्वाद लेते हैं...** आहाहा! परज्ञेयों से भिन्न, स्वज्ञेय को दृष्टि में लेकर जो ज्ञान की दशा हुई है, उसके आनन्द का आस्वाद लेता है, उसका नाम भगवान जैनशासन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

जैसे शाकों से भिन्न... सब्जी... सब्जी। **नमक की डली का क्षारमात्र स्वाद आता है,...** सब्जियों से भिन्न अकेला नमक, उसकी डली-पिण्ड। **क्षारमात्र स्वाद आता है, उसी प्रकार आस्वाद लेते हैं,...** अर्थात् भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप निजस्वरूप सन्मुख की एकता है, तो उसके स्वभाव का स्वाद ही समकिती को—धर्मी को आनन्द का स्वाद आता है, उसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **क्योंकि जो ज्ञान है, सो आत्मा है...** लो, यह ज्ञान का अनुभव हुआ, वह आत्मा है। राग और खण्ड-खण्ड ज्ञान का अनुभव, वह आत्मा नहीं। **और जो आत्मा है, सो ज्ञान है।**

इस प्रकार गुण-गुणी की अभेद दृष्टि में... गुणी द्रव्य और गुण अर्थात् पर्याय। **अभेद दृष्टि में आनेवाला सर्व परद्रव्यों से भिन्न,...** अबद्धस्पृष्ट (आदि) पाँच बोल लिये वापस। **परद्रव्यों से भिन्न,...** अबद्धस्पृष्ट (आदि) पाँच बोल लिये न? अपनी पर्यायों में **एकरूप निश्चल....** अपनी पर्याय में दोनों ले ली—व्यंजन और हानिवृद्धिवाली। **एकरूप निश्चल, अपने गुणों में एकरूप,...** यह चौथा बोल। और **परनिमित्त से उत्पन्न हुए भावों से भिन्न...** यह असंयुक्तभाव। समझ में आया? वापस पाँच बोल लिये। गुण-गुणी अर्थात् गुण अर्थात् पर्याय, गुणी अर्थात् द्रव्य। **अभेद दृष्टि में....** अर्थात् अभेद हो गया। **आनेवाला सर्व परद्रव्यों से भिन्न,...** अभेद दृष्टि में आनेवाला ऐसा आत्मा, ऐसा। गुण-गुणी की एकरूप दृष्टि में, अभेद दृष्टि में। पर्याय निज द्रव्य में अभेदरूप होने से सर्व परद्रव्यों से भिन्न। अबद्धस्पृष्ट (बोल) आये।

अपनी पर्यायों में एकरूप... आकृति और अनियत पर्याय से भिन्न। **अपने गुणों में एकरूप,...** गुण के भेद नहीं, सामान्य गुणी के प्रति एकाकार पर्याय। **परनिमित्त से उत्पन्न हुए...** विकल्प जो है दुःखरूप, शुभ या अशुभ दुःखरूप विकल्प है। उसके सहितपने से रहित। सहितपने से रहित। **भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव,...** भगवान आत्मा आनन्द, आनन्द और अनन्त गुणगम्भीर प्रभु ऐसे स्वरूप का अनुभव। पर्याय में—अवस्था में ऐसे स्वरूप का अनुभव, वह ज्ञान का अनुभव है। वह आत्मा का अनुभव है, वह ज्ञान की दशा का अनुभव है। **और यह अनुभवन भावश्रुतज्ञानरूप जिनशासन का अनुभवन है।** ओहोहो! यह अनुभवन, वह भावश्रुतज्ञान (रूप अनुभवन

है)। देखो! यह कहीं केवली की बात नहीं। यह तो चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को भावश्रुतज्ञान (हुआ, उसकी बात है)। जो आत्मा ज्ञायक-सन्मुख के झुकाव से मात्र ज्ञान का स्वाद आना, उसका नाम भावश्रुतज्ञान उपयोग है, उसका नाम जैनशासन है। वह जैनशासन का अनुभव है। समझ में आया? ऐसा वह जैनधर्म कैसा? ऐसा जैनधर्म? जैनधर्म तो विशाल मन्दिर बनाये, पूजा करे, यात्रा दस-दस लाख की निकाले, (वह जैनधर्म)। नेमिचन्दजी! दस लाख की निकाले। बड़े-बड़े ऐसे... क्या कहलाते हैं वह? झांझर-बांझर (लगावे)। आहाहा! वाह भगत, वाह भगत, ऐसा कहे वापस। ऐसा जैनधर्म हो, भाई! ढोलक बजावे, ढोल बजावे, कूदे, और झांझर डालकर ऐसा करे। वाह... वाह... वाह! भगवान का भगत! यह तो कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! यह हो, परन्तु धर्मी की दृष्टि ज्ञायक के ऊपर होने से ज्ञान में एकाकार है, इतना जैनधर्म है। बीच में जो राग आया, वह जैनधर्म नहीं, परन्तु पुण्य-पाप से बचने अथवा उस काल में ऐसा (भाव) आये बिना रहता नहीं। ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ढोल और उसका क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ढोल की पर्याय ढोल में रही। ढोल की पर्याय मैं करता हूँ, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। मैं ऐसा करता हूँ, (ऐसा माननेवाला) मूढ़ जड़ की पर्याय का स्वामी होता है। वह तो परज्ञेय में एकाकार होकर, राग में एकाकार होकर मिथ्यात्व का ही वेदन करता है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐई! हाथी के होदे बैठा हो... मुम्बई में। ऐसे सूट पहना था और ऐसे कोट पहना था।

भाई! तू प्रभु! परद्रव्य से व्यवच्छेद कहा न यहाँ तो? परद्रव्य का व्यवच्छेद करके, ऐसा आया न? संयोग का व्यवच्छेद करके। व्यवच्छेद। टीका की दूसरी लाईन। आहाहा! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ हो या वाणी हो या परमात्मा की प्रतिमा हो या शत्रुंजय या सम्मेदशिखर हो, सब परद्रव्य है। परद्रव्य के लक्ष्य में राग होता है और उसमें अकेले ज्ञान में आत्मा ज्ञायक की एकाग्रता छोड़कर अकेले खण्ड-खण्ड ज्ञान का अनुभव करता है, तो वह मिथ्यादृष्टि जैनशासन से बाहर है। समझ में आया? और आत्मा ज्ञायकस्वरूप में एकाकार होकर आत्मा की ज्ञान की एकता का अनुभव है और फिर

शुभभाव आया, परन्तु उसमें आसक्ति नहीं, उसे भिन्न रखता है। धर्मी उस राग को, निमित्त को अपनी ज्ञानपर्याय में से भिन्न रखता है। अपने में एकत्व करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? बराबर क्या, यह सब उड़ जाता है। आहाहा!

अकेला... अकेला परद्रव्य। आत्मा के अतिरिक्त इन्द्रिय के ज्ञान से मात्र परद्रव्य में लक्ष्य करके जो ज्ञान खण्ड-खण्ड हुआ, शुभराग हुआ, इसमें एकाकार है, लीन है, वह मिथ्यादृष्टि मात्र राग को, दुःख को अनुभव करता है। समझ में आया? यह भक्ति करने के काल में भी उसे मात्र दुःख का अनुभव है। परन्तु अपने ज्ञायकस्वभाव-सन्मुख की एकाग्रता की परिणति है, उतना भावश्रुत, शान्ति है। उसमें जब एकाकार शुद्ध उपयोग न हो, तब ऐसा शुभराग आता है, तब लक्ष्य भगवान के ऊपर, भक्ति आदि का भाव आता है। परन्तु वे राग और शुद्ध परिणति को एक नहीं करते। क्योंकि परद्रव्य के व्यवच्छेद-संयोग से रहित होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? देखो! है या नहीं उसमें ऐसा?

शुद्धनय से इसमें कोई भेद नहीं है। कहते हैं कि आत्मा अखण्डानन्द का लक्ष्य करके जो अनुभव हुआ, उसे आत्मा की अनुभूति कहो, ज्ञान की अनुभूति कहो या शुद्धनय कहो, दोनों में कोई अन्तर नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह तो पहले १४वीं गाथा में आ गया था न? वह यहाँ फिर से लिया। समझ में आया? आनन्दघनजी भी इसमें कहते हैं।

व्यवहारे लख दोहिलो, कांई न आवे हाथ रे,
शुद्ध नय थापन सेवतां, नवि रहै दुविधा साथ रे।
व्यवहारे लखि जे रहै, तैना भेद अनन्त रे।
परमारथ पद जे कहै, ते रंजे इक तन्त रे.

कितने ही सिद्धान्त तो इन्होंने... समझ में आया?

भगवान आत्मा... फिर सर्वज्ञ हो या वाणी हो या सम्मेदशिखर हो। वह तो परद्रव्य है, परन्तु परद्रव्य का लक्ष्य करने से अकेला शुभराग होता है। और अपनी ज्ञान की पर्याय अकेले पर सन्मुख का खण्ड का ज्ञान करती है तो भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड

ज्ञान हुआ। और वही मेरा है और उतना मैं हूँ, ऐसी मिथ्यात्व की मान्यता, वह मिथ्यात्व का-दु:ख का वेदन है। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा अपना ज्ञायक चैतन्यप्रभु शुद्ध की एकाग्रतासहित अपने स्वद्रव्य के आश्रय से शुद्धता का, भावश्रुतज्ञान का, शान्ति का, जैनशासन का, रागरहित का जो अनुभव है, वह जैनशासन। फिर उसमें से जो शुभराग आया, वह निश्चय जैनशासन नहीं, परन्तु व्यवहार जैनशासन का आरोप आता है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि उस भूमिका में सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर, वाणी आदि का, भक्ति का राग उस भूमिका के योग्य ऐसा आता है। उस कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की भक्ति का राग होता नहीं। समझ में आया? तो उस प्रकार के शुभराग की भूमिका वहाँ उत्पन्न होती है तो निश्चय आत्मा ज्ञायकस्वभाव का, जैनशासन का अनुभव है। जैनशासन अर्थात् वीतरागी दृष्टि, वीतरागी पर्याय, वह जैनशासन। उसके साथ जो राग आया, उस राग के साथ एकत्व नहीं करते, परन्तु भिन्न रखकर उसे व्यवहारधर्म, व्यवहार जैनशासन, पुण्यधर्म कहा जाता है। समझ में आया? वह जाननेयोग्य एक चीज़ रह गयी। आहाहा! गजब परन्तु... लोगों को तो (ऐसा लगता है कि) यह तो जैनधर्म का लोप हो जाता है। जैनधर्म का लोप कर डाला अज्ञानी ने। राग और परद्रव्य में लक्ष्य करके धर्म माननेवाले ने जैनधर्म का लोप कर दिया। शोभालालजी! आहाहा! वे लोग कहे, अररर! यह भगवान ऐसे तीन लोक के नाथ परमेश्वर! परन्तु परमेश्वर, वे परद्रव्य हैं या तू है? सुन न अब। तेरा भगवान तो यहाँ है, वे भगवान तो उनके हैं।

मुमुक्षु : अपने भगवान को डुबा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निज भगवान को डुबा दिया, पर भगवान को अधिक रखा। आहाहा! गजब गाथा, हों! जैनशासन उसे कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥१४॥

पाँचों ही बोल लेकर ....

अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

ऐसी वीतरागी पर्याय में समस्त जिनशासन आ गया। चारों अनुयोग में यह कहना था, भगवान की वाणी में यह आया था, भगवान का निश्चय स्वभाव का आश्रय होकर वीतरागी पर्याय जो सम्यग्दर्शन, आनन्द (प्रगट) हुआ, वही जैनशासन है, दूसरा कोई जैनशासन यथार्थता में नहीं। और यह बात जैन वीतराग के अतिरिक्त दूसरे अन्यमति में कहीं तीन काल में है नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग के अतिरिक्त अन्य कल्पित अनेक अनन्त मार्ग हैं, उसमें ऐसा सत्य निश्चय या व्यवहारमार्ग कभी एक भी होता नहीं। कहो, जयन्तीभाई! बराबर है? आहा! देखो न! अन्तिम यह ही कहा है न?

★ ★ ★

कलश - १४

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(पृथ्वी)

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते,
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम्।।14।।

श्लोकार्थ : आचार्य कहते हैं कि [परमम् महः नः अस्तु] हमें वह उत्कृष्ट तेज-प्रकाश प्राप्त हो [यत् सकलकालम् चिद्-उच्छलन-निर्भरं] कि जो तेज सदाकाल चैतन्य के परिणमन से परिपूर्ण है, [उल्लसत्-लवण-खिल्य-लीलायितम्] जैसे नमक की डली एक क्षार रस की लीला का आलम्बन करती है, उसी प्रकार जो तेज [एक-रसम् आलंबते] एक ज्ञानरसस्वरूप का आलम्बन करता है; [अखण्डितम्] जो तेज अखण्डित है-जो ज्ञेयों के आकाररूप अखण्डित नहीं होता, [अनाकुलं] जो अनाकुल है-जिमसें कर्मों के निमित्त से होनेवाले रागादि से उत्पन्न आकुलता नहीं है, [अनन्तम् अन्तः बहिः ज्वलत्] जो अविनाशीरूप से अन्तरङ्ग में और बाहर में प्रगट दैदीप्यमान है-

जानने में आता है, [सहजम्] जो स्वभाव से हुआ है–जिसे किसी ने नहीं रचा और [सदा उद्विलासं] सदा जिसका विलास उदयरूप है–जो एकरूप प्रतिभासमान है।

कलश - १४ पर प्रवचन

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :- लो! बोलो।

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते,
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम्॥१४॥

वाह! इस गाथा का (कलश) है। यह तो शान्ति से समझने की चीज़ है। बाकी कोई वाद–विवाद और यह और वह, ऐसी चीज़ नहीं, बापू! प्रभु आत्मा अकेला समरस स्वभाव से समभावी समरस स्वभाव से पूर्ण भरपूर है। भगवान आत्मा का स्वभाव ही वीतराग–विज्ञानघन है। आत्मा का त्रिकाली स्वभाव वीतराग–विज्ञानघन है। त्रिकाल वीतराग–विज्ञानघन। उसके विज्ञानघन में एकाग्रता होना, पर्याय में वीतरागी–विज्ञानघन की पर्याय (हो), उसे जैनशासन कहते हैं। आहाहा! कल्पना, कल्पना जाल में सुलगता, जलता, अशुभ कल्पना के जाल में सुलगता। सळगतो को क्या कहते हैं? जलता। ऐसी शुभ कल्पना हो—राग—दया, दान, व्रत, भक्ति, वह शुभकल्पना भी सुलगता, वह भी जलता अंगारा, दुःख है। ओहोहो! उस दुःख का अनुभव, वह जैनशासन है? शुभाशुभभाव का अनुभव, वह दुःख का अनुभव है। दुःख का अनुभव, वह जैनशासन है? आहाहा!

कहते हैं कि अकेले परज्ञेय में, परद्रव्य में आसक्त होकर अपनी चीज़ राग से, खण्ड ज्ञान से भिन्न अखण्ड है, ऐसी अन्तर अनुभवदृष्टि—द्रव्य का आश्रय है नहीं, वह अकेले परज्ञेय में आसक्त चाहे तो परमेश्वर में हो, तो भी मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। जैनशासन नहीं। आहाहा! अरे! राग और खण्ड–खण्ड ज्ञान में कहीं जैनशासन होता है? और राग और खण्ड–खण्ड ज्ञान से जैनशासन उत्पन्न होता है? समझ में आया?

चैतन्य वस्तु परमात्मस्वरूप परमात्मा—अप्पा सो परमप्पा—वह आत्मा ही परमात्मस्वरूप अपना पूर्णानन्द भगवान है, उस ओर एकाकार होना, भावश्रुतपने की पर्याय होना; जैसे अकेले क्षार का स्वाद आना, वैसे अकेले आत्मा के आनन्द का भावश्रुतज्ञान में स्वाद आना, उसका नाम रागरहित दशा, रागरहित ज्ञान, रागरहित श्रद्धा, रागरहित आनन्द के साथ आचरण, उसे यहाँ जैनशासन कहा गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वीतरागदशा....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागदशा करना है न, यह कहते हैं। नहीं है तो क्यों नहीं? दृष्टि करना, ऐसा कहते हैं। नहीं तो क्या करना? दृष्टि करना, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन का अर्थ, निश्चयस्वरूप का अनुभव करके राग आता है, उसे जानना कि पृथक् है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। रहने-फहने की बात नहीं। ध्येय दृष्टि में अनुभव करना। ध्येय क्या रखे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो इसका अर्थ क्या हुआ? राग से भिन्न पहले दृष्टि और अनुभव करना। दृष्टि के अनुभव बिना राग को व्यवहार कहा ही नहीं जाता, वह जैनशासन है ही नहीं। वह जैनशासन की गड़बड़ी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, नहीं, शुद्ध की दृष्टि करना। स्थिर होना, वह दूसरी बात है। पहली शुद्ध की दृष्टि किये बिना उसे धर्म का अंश प्रगट नहीं होता, तीन काल-तीन लोक में। अकेला व्यवहार, व्यवहार, वह व्यवहार ही है नहीं। निश्चय दृष्टि अन्तर में राग से भिन्न एकाकार ज्ञान का अनुभव करके शान्ति का वेदन करना, वह पहला निश्चय और पहला सम्यग्दर्शन और जैनशासन है। पश्चात् स्थिर नहीं हो सके, इसलिए राग आता है

तो जानना कि वह है, है। व्यवहारधर्म का आरोप उसे दिया जाता है, वास्तव में वह धर्म है नहीं। और निश्चय में लक्ष्य नहीं और करना व्यवहार, इसका अर्थ क्या? व्यवहार करना, कर्तृत्वबुद्धि (हुई), वहाँ तो निश्चय लक्ष्य ही नहीं। राग को करना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? कठिन बात है, भाई! जैन की बात जैन को खबर नहीं होती। वह बेचारा ऐसा का ऐसा जैन के नाम से गाड़ी हाँक रखी। अपने भगवान की आज्ञा प्रमाण करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यमत में बात ही कहाँ है? जैन के अतिरिक्त अन्य में तो बात ही कहाँ है तीन काल में? यह तो जैन में जैन की खबर नहीं। जैन किसे कहना? राग और विकल्प से भिन्न पड़कर ज्ञायक में एकाकार होना, उसका नाम तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन—जैन, सम्यग्दृष्टि जैन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निर्विकल्प दृष्टि है। सम्यग्दर्शन...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रहना-फहना पड़े नहीं। शुभ में रहता हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व की है। शुभ तो राग है। मैं राग में रहता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। राग से भिन्न होकर अपनी दृष्टि हुई है, पश्चात् राग आता है, उसे जानता है, रहता नहीं। रहता है तो अपनी दृष्टि में रागरहित में रहा है, आता है, उसे जानता है। वहाँ रहे, तब तो मिथ्यादृष्टि है। राग में रहे, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह तो अनादि से रहा है। रहना क्या पड़े? सूक्ष्म बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म बात है। हमको तो पूरे समाज की खबर है न! पूरा समाज उल्टे रास्ते पर है। उपदेशक को खबर नहीं और स्वयं को भी खबर नहीं। हमको तो पूरे समाज की खबर है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह वस्तु जैनशासन ऐसा है। यह तो लोग तो अभी

ऐसा कहते हैं कि निश्चय को लक्ष्य में रखकर व्यवहार करना। अर्थात् व्यवहार करना, व्यवहार में खड़े रहना, अर्थात् राग में खड़े रहना, विकार में खड़े रहना। राग का कर्ता होना। तो जैसे-जैसे परभाव का कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐई... नेमिचन्दजी!

मुमुक्षु : .... कि सम्यग्दर्शन तो होता नहीं ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता नहीं, ऐसा मानते थे। हो गया, तो धर्म ही नहीं। सम्यग्दर्शन बिना तीन काल में धर्म नहीं। यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात चलती है। है कठिन बात। प्रत्येक सम्प्रदाय में यही चली है। यह बात ही नहीं, नहीं, नहीं। सब माने भले कि हम जैन हैं। जैनपने की खबर नहीं कि जैन किसे कहना? आहाहा! स्वरूप में रह सके नहीं, वह अलग बात है, परन्तु पहले स्वरूप की दृष्टि का अनुभव हो गया है। उसके बिना राग को व्यवहार नहीं कहा जाता। ऐसी चीज़ है, भाई! झगड़ा उत्पन्न करे ऐसा है, बाहर निकलेगा तो। सामने प्रश्न बहुत होते हैं। सुनो, यह तो हम एक निकले हैं, बापू! बैठाना हो तो बैठाओ, खबर है दुनिया की।

श्लोकार्थ :- आचार्य कहते हैं कि हमें वह उत्कृष्ट तेज-प्रकाश प्राप्त हो कि जो तेज सदाकाल... भगवान त्रिकाल आत्ममूर्ति **चैतन्य के परिणमन से परिपूर्ण है,...** परिणमन शब्द से शक्ति से परिपूर्ण है। भगवान आत्मा ज्ञानरस से परिपूर्ण, सर्वज्ञस्वभाव से परिपूर्ण त्रिकाल पड़ा है। **जैसे नमक की डली एक क्षार रस की लीला का आलम्बन करती है,...** नमक अर्थात् मीठुं (लवण)। उसकी कंकड़ी एक क्षाररस की लीला का, क्षार ही, उसमें कोई दूसरी चीज़ मिली हुई नहीं।

उसी प्रकार जो तेज एक ज्ञानरसस्वरूप का आलम्बन करता है;... देखो! चैतन्य भगवान ज्ञानतेज का जो अवलम्बन करता है, दृष्टि करता है, ज्ञायक में एकाकार होता है। **जो तेज अखण्डित है...** भगवान आत्मा का तेज अखण्डित है। **ज्ञेयों के आकाररूप अखण्डित नहीं होता,...** लो! यहाँ पर्याय में। अखण्ड ज्ञायक चैतन्य... अभी उसका ज्ञान करे, निश्चय करे, श्रद्धा तो करे कि मैं राग के विकल्प से भिन्न चीज़ हूँ। ऐसी दृष्टि हुए बिना कभी धर्म की शुरुआत नहीं होती, तीन काल-तीन लोक में (नहीं होती)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार नहीं, वह विकल्प है। उससे भिन्न दृष्टि करने की बात है, विकल्प की बात नहीं। समझ में आया?

जो तेज अखण्डित है... अर्थात् **ज्ञेयों के आकाररूप खण्डित नहीं होता,...** राग और परद्रव्य के लक्ष्य से जो ज्ञान खण्डित है, वह अपने ज्ञायकस्वरूप में एकाकार होने से उन ज्ञेयों के आकार से खण्डित नहीं होता। यहाँ पर्याय लेनी है, हों! **जो अनाकुल है...** जो अनाकुल है। भगवान आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप में शुद्धता में एकाकार होता है, वह ज्ञान की दशा अनाकुल है, शान्ति है। राग का मिश्रितपना उसमें नहीं से। **जिसमें कर्मों के निमित्त से होनेवाले रागादि से उत्पन्न आकुलता नहीं है,...** यह व्याख्या की, यह अनाकुलता की व्याख्या की। अनाकुलता की व्याख्या क्या? जिसमें कर्म के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले शुभाशुभराग, ऐसा राग है वह आकुलता है। ओहोहो! चाहे तो शुभराग (हो) परन्तु आकुलता है और अशुभराग भी आकुलता है, दोनों दुःख हैं। आहाहा! वह दुःख करते-करते आत्मा का आनन्द आयेगा, ऐसी जगत की दृष्टि है। शुभराग वह दुःख है, आकुलता है। अशुभराग तीव्र आकुलता है और शुभराग मन्द आकुलता है, परन्तु हैं दोनों आनन्दस्वरूप से (विपरीत) दुःख। दुःख करना और फिर आनन्द की प्राप्ति होगी—आस्रव से संवर होगा, ऐसा है नहीं। बड़ा शल्य। श्रद्धा में श्रद्धा को खण्डित कर डाला।

कर्मों के निमित्त से होनेवाले... देखो! रागादि अर्थात फलाना राग, ऐसा नहीं। शुभ-अशुभराग दोनों। **उत्पन्न आकुलता नहीं है,...** परन्तु अभी स्वभाव-सन्मुख का प्रयोग करने की आवश्यकता है, इसके अतिरिक्त धर्म नहीं, यह बात रुचे भी नहीं। यह तो ठीक, यह करो, यह करो, यह करो। परन्तु क्या करे? यह तो अनादि काल से करते हैं। समझ में आया? इसकी आवश्यकता है और इस ओर झुकाव करने से ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि प्राप्त होंगे, जैनशासन की प्राप्ति भेद से (या) पर के लक्ष्य से नहीं होगी। क्योंकि भगवान आत्मा अखण्डानन्द वीतराग समरसस्वभावी है, उसमें एकाग्र होने से ही जैनशासन की प्राप्ति होती है।

जो अविनाशीरूप से अन्तरङ्ग में और बाहर में प्रगट दैदीप्यमान है-जानने में

आता है,... लो, समझ में आया? नाश बिना की चीज़ अन्तरंग में चैतन्यभाव से दैदीप्यमान त्रिकाल और बाह्य वचन, काय की क्रिया से प्रगट दैदीप्यमान अर्थात् शान्ति दिखती है, ऐसा। **जानने में आता है, जो स्वभाव से हुआ है...** भगवान आत्मा... अध्यात्म चीज़ सम्यग्दर्शन चीज़ ऐसी है। उसे छोड़कर सब बात। पहले ऐकड़ा छोड़कर बात। मात्र शून्य। गजब किया है! लोगों को बेचारों को... वाड ने बेल खायी। उपदेशक ने मार डाला। खड़ा होने देते नहीं उसे खड़ा। ऊभा समझे या नहीं? खड़ा नहीं होने देते। सुन तो सही। यह करने का है। करने में पहले में पहले ज्ञायक-सन्मुख एकाकार होकर ढलना, वही तेरा पहले में पहला कर्तव्य है। कहो, बालचन्दभाई! .... तो दुनिया पूरी करती है।

स्वभाव से हुआ है... देखो! पर्याय स्वभाव से हुई है। वह राग से हुई, पुण्य-पाप से हुई, वह तो विकल्प और दुःखरूप भाव है। अभी वह भाव ऐसा है, उसकी प्रतीति, रुचि में भी आवे नहीं और आत्मा में वह पोसाये नहीं, तब तक वह आत्मा की ओर ढलने का प्रयत्न करेगा कहाँ से? मूल बात है। परन्तु अनन्त काल में यह इसे ख्याल में आयी नहीं। अवसर आया तब ऐसा घुमाया कि ऐसा होता है और वैसा होता है, ऐसा करके गया अनन्त काल। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया।

किसी ने नहीं रचा और सदा जिसका विलास उदयरूप है-जो एकरूप प्रतिभासमान है। भगवान ज्ञायकस्वभाव एकरूप प्रतिभासमान है। वे अनेकरूप हैं, विकार की दशा अनेकरूप है। खण्ड-खण्ड राग, शुभ निमित्त से खण्ड-खण्ड ज्ञेय में आसक्त है। यहाँ ज्ञान में आसक्त होने से एकरूप की दशा प्रगट होती है। क्योंकि स्वभाव एक है तो एकरूप दशा अनेकता को तोड़कर एकता उत्पन्न होना, इसका नाम जैनशासन कहा जाता है। भिन्न-भिन्न भाषा की है। एक और अनेक, ज्ञेय में आसक्त और यह ज्ञान में लीन। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- आचार्यदेव ने प्रार्थना की है कि यह ज्ञानानन्दमय एकाकार स्वरूप-ज्योति हमें सदा प्राप्त रहो। राग आता है, वह हमको प्राप्त न रहो। यह लिखने का विकल्प आया है, वह हमको प्राप्त न रहो। है तो शास्त्र लिखा है न? परोपकार है या

नहीं ? परन्तु राग है, बन्ध का कारण है। शास्त्र रचने में भी जो विकल्प आया है, वह दु:खरूप है। आहाहा! हमारे तो ज्ञानानन्दमय... भाषा ली है न? ज्ञान और आनन्दमय एक आकार, एक आकार—स्वरूप की एक दशा। यह खण्ड-खण्ड राग और शुभ आदि की अनेक दशा से रहित **स्वरूप-ज्योति हमें सदा प्राप्त रहो।** हमको तो स्वरूप में स्थिरता सदा रहो, ऐसी प्रार्थना आत्मा के प्रति की है। लो, यह ज्ञान की गाथा पूरी हुई। १४वीं गाथा में सम्यग्दर्शन की बात की थी। १५वीं में ज्ञान की बात की।

★ ★ ★

कलश - १५

अब, आगे की गाथा का सूचनारूप श्लोक कहते हैं :-

(अनुष्टुप्)

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम्।।15।।

श्लोकार्थ : [एषः ज्ञानघनः आत्मा] यह (पूर्वकथित) ज्ञानस्वरूप आत्मा, [सिद्धिम् अभीप्सुभिः] स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक पुरुषों को [साध्यसाधकभावेन] साध्यसाधकभाव के भेद से [द्विधा] दो प्रकार से, [एकः] एक ही [नित्यम् समुपास्यताम्] नित्य सेवन करने योग्य है; उसका सेवन करो।

भावार्थ : आत्मा तो ज्ञानस्वरूप एक ही है परन्तु उसका पूर्णरूप साध्यभाव है और अपूर्णरूप साधकभाव है; ऐसे भावभेद से दो प्रकार से एक का ही सेवन करना चाहिए।।15।।

कलश - १५ पर प्रवचन

अब, आगे की गाथा का सूचनारूप श्लोक कहते हैं –

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम्॥१५॥

देखो! साधक भी यह और साध्य भी यह। आहाहा!

श्लोकार्थ :– यह (पूर्वकथित) ज्ञानस्वरूप आत्मा,... अकेला ज्ञान का सूर्य है। पुण्य–पाप शुभाशुभराग से तो भिन्न तत्त्व है। क्योंकि शुभाशुभराग आस्रवतत्त्व है। कर्म, शरीर अजीवतत्त्व है। भगवान चैतन्यज्योति तत्त्व भिन्न है। नहीं तो जीव, आस्रव और अजीव तत्त्व एक हो जायेंगे। समझ में आया? तो अजीव भिन्न है और शुभ–अशुभराग आस्रव भिन्न है, ज्ञायक भिन्न है। तो आस्रव की भावना करने से आत्मा की भावना होती है? आस्रवतत्त्व तो विरुद्ध है। आहाहा! अरे! कुछ लक्ष्य भी नहीं अभी तो। समझ में आया? **ज्ञानस्वरूप आत्मा है वह, स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक...** भगवान आत्मा की शुद्धि की प्राप्ति की अभिलाषावाला **साध्यसाधकभाव के भेद से दो प्रकार से,...** क्या कहते हैं? चैतन्यस्वरूप जो ज्ञायक है, उसके दो भेद करना। राग विकल्प, वह नहीं। ज्ञानस्वरूप जो आत्मा, उस स्वरूप की प्राप्ति के अभिलाषी, जिसे आत्मा चाहिए, शुद्धस्वरूप चाहिए। **साध्यसाधकभाव के भेद से...** पूर्ण स्वरूप साध्य है। वह स्वभाव की निर्मल निर्विकल्प पर्याय, वह साधक है।

एक ही नित्य सेवन करने योग्य है;... एक ही। राग, विकल्प सेवन करनेयोग्य नहीं। वह बात तो पूरी दुनिया को बैठी ही है न! लाखों, करोड़ों को। अनादि से बैठी है। उसमें नयी बात कहाँ है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। देवचन्दजी कहते हैं न? 'द्रव्यक्रिया रुचि जीवड़ा भाव धर्म रुचि विहीन, उपदेशक भी वैसे ही क्या करे जीव नवीन?' ऐसी रुचिवाला और उसे उपदेशक ऐसे मिले। रोती थी और पिहरवाले मिले, दोनों का हो गया मेल। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आचार्य एक स्वरूप ज्ञानमूर्ति के दो भेद। अपूर्ण ज्ञान, श्रद्धा, स्थिरता, वह साधक और पूर्ण दशा, वह साध्य। उसी और उसी में दो भेद करना, राग का साधन-फाधन है नहीं। आहाहा! यह लिखा है अन्दर, हों! देखो! **उसका सेवन करो।**

भावार्थ :- आत्मा तो ज्ञानस्वरूप एक ही है, परन्तु उसका पूर्णरूप साध्यभाव है... केवलज्ञान, वह साध्यभाव है। **और अपूर्णरूप साधकभाव है;...** ज्ञान का अपूर्ण रूप साधक। ज्ञान की श्रद्धा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी पर्याय, वह साधक। **ऐसे भावभेद से दो प्रकार से एक का ही सेवन करना चाहिए।** इसकी व्याख्या विशेष आयेगी.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।16।।

दर्शनज्ञानचरित्राणि सेवितव्यानि साधुना नित्यम्।
तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यप्यात्मानं चैव निश्चयत:।।16।।

येनैव हि भावेनात्मा साध्य: साधनं च स्यात्तेनैवायं नित्यमुपास्य इति स्वयमाकूय परेषां व्यवहारेण साधुना दर्शनज्ञानचारित्राणि नित्यमुपास्यानीति प्रतिपाद्यते। तानि पुनस्त्रीण्यपि परमार्थेनात्मैक एव वस्त्वन्तराभावात्। यथा देवदत्तस्य कस्यचित् ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं च देवदत्तस्वभावानतिक्रमाद्देवदत्त एव न वस्त्वन्तरम्। तथात्मन्यप्यात्मनो ज्ञानं श्रद्धानमनुचरणं चात्मस्वभावानतिक्रमादात्मैव न वस्त्वन्तरम्। तत आत्मा एक एवोपास्य इति स्वयमेव प्रद्योतते।।16।।

अब, दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप साधकभाव है, यह इस गाथा में कहते हैं:-

दर्शनसहित नित ज्ञान अरु, चारित्र साधु सेवीये।
पर ये तीनों आत्मा हि केवल, जान निश्चयदृष्टि में।।16।।

गाथार्थ : [साधुना] साधु पुरुष को [दर्शनज्ञानचारित्राणि] दर्शन, ज्ञान और चारित्र [नित्यम्] सदा [सेवितव्यानि] सेवन करनेयोग्य हैं; [पुन:] और [तानि त्रीणि अपि] उन तीनों को [निश्चयत:] निश्चयनय से [आत्मानं च एव] एक आत्मा ही [जानीहि] जानो।

टीका : यह आत्मा जिस भाव से साध्य तथा साधन हो, उस भाव से ही नित्य सेवन करनेयोग्य है, इस प्रकार स्वयं विचार करके दूसरों को व्यवहार से प्रतिपादन करते हैं कि 'साधु पुरुष को दर्शन-ज्ञान-चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।' किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही हैं, क्योंकि वे अन्य वस्तु नहीं - किन्तु आत्मा की ही पर्याय हैं। जैसे किसी देवदत्त नामक पुरुष के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण देवदत्त

के स्वभाव का उल्लंघन न करने से (वे) देवदत्त ही हैं – अन्य वस्तु नहीं; इसी प्रकार आत्मा में भी आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से आत्मा ही हैं–अन्य वस्तु नहीं। इसलिए यह स्वयमेव सिद्ध होता है कि एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है।

भावार्थ : दर्शन, ज्ञान, चारित्र – तीनों आत्मा की ही पर्याय है, कोई भिन्न वस्तु नहीं है; इसलिए साधु पुरुषों को एक आत्मा का ही सेवन करना, यह निश्चय है और व्यवहार से दूसरों को भी यही उपदेश करना चाहिए।

भाद्र कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक - १२-१०-१९६६
गाथा-१६, प्रवचन - ७४

१६वीं गाथा। जीव-अजीव अधिकार।

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥१६॥

दर्शनसहित नित ज्ञान अरु, चारित्र साधु सेवीये।
पर ये तीनों आत्मा हि केवल, जान निश्चयदृष्टि में ॥१६॥

क्या कहते हैं? टीका, इसकी टीका। देखो! यह जीव अधिकार है। जीव अर्थात् यह आत्मा **जिस भाव से साध्य तथा साधन हो, उस भाव से ही नित्य सेवन करने योग्य है,...** आत्मा अर्थात् शुद्ध आनन्दस्वरूप, आत्मा उसे कहते हैं। जीव की बात है न? जीव कहो या आत्मा कहो। आत्मा शरीर, वाणी, कर्म का तो उसमें अभाव है, परन्तु पुण्य-पाप के भाव का भी अभाव है। ऐसा आत्मा। उस आत्मा में तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त स्वभाव सम्पन्न आत्मा है। वह आत्मा जिस भाव से, जिस भाव से (अर्थात्) पर्याय से साध्य (अर्थात्) उसका पूर्ण स्वरूप शुद्ध साध्य। आत्मा का पूर्ण शुद्ध निर्मल आनन्दस्वरूप साध्य है और साधन उसी आत्मा की अपूर्ण शुद्धस्वरूप की दशा, वह साधन। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य आनन्दमय पदार्थ है। देखो! यह

१६वीं गाथा में... १४वीं में दर्शन-सम्यग्दर्शन लिया था, १५वीं में सम्यग्ज्ञान (लिया), अब यहाँ चारित्र साथ में मिलाते हैं। परन्तु कहते हैं कि वह आत्मा एक समय में जो शुभ-अशुभ दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव से रहित है और अपने शुद्ध आनन्द आदि स्वभावसहित है। ऐसे आत्मा को उसकी पूर्ण आनन्द, ज्ञानादि की पर्याय, वह साध्य और वही आत्मा की निज शुद्धस्वभाव के अवलम्बन से होनेवाली निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अर्थात् स्वरूप का अवलोकन, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का आचरण— ऐसे शुद्धस्वभाव की अशुद्धरहित शुद्ध परिणति—शुद्ध उपयोग, शुद्ध उपयोग, वह मोक्ष का साधन है। समझ में आया? लोग कहते हैं न? साधन, साधन, साधन। कोई साधन होना चाहिए न? कोई साधन होना चाहिए न? ऐसा लोग कहते हैं न? कहते हैं कि यह आत्मा जिस भाव से साध्य-साधन हो, उसमें कोई राग और परद्रव्य का आश्रय बिल्कुल नहीं। व्यवहाररत्नत्रय जो रागादि है, उसका भी उसमें सहारा नहीं, सहायता नहीं। ओहोहो! समझ में आया? यह क्या कहा?

यह आत्मा जिस भाव से साध्य तथा साधन हो... आत्मा साधन हो, आत्मा साधन हो, आत्मा साध्य हो। समझ में आया? शुद्ध चैतन्य वस्तु, ज्ञायक चैतन्यसूर्य अपना स्वभाव अन्तर का आश्रय करके जो शुद्ध अनुभव शुद्ध उपयोग हुआ, वह शुद्ध उपयोग साध्य ऐसे मोक्ष का साधन है और उसकी पूर्ण शुद्ध दशा, वह साध्य। समझ में आया? **यह आत्मा जिस भाव से...** आत्मा जिस भाव से साध्य हो और वह आत्मा जिस भाव से साधन हो। समझ में आया? आत्मा तो चैतन्यज्योति पुण्य, विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से रहित है। वह तो आस्रवतत्त्व है। व्यवहाररत्नत्रय अन्दर उत्पन्न होता है, वह तो आस्रवतत्त्व है; देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का विकल्प, वह तो आस्रवतत्त्व है; वह आत्मतत्त्व नहीं।

यहाँ तो आत्मा, आत्मा अर्थात् शुद्ध आनन्द ज्ञायक चैतन्य की ज्योति। वह आत्मा जिस भाव से साध्य (हो)। पूर्णानन्द की पूर्ण दशा, वह आत्मा के भाव से साध्य (होती है) और उस आत्मा का भाव जो नीचे शुद्ध उपयोग (हुआ वह साधकभाव है)। पुण्य-पाप का विकल्प नहीं। समझ में आया? शुद्ध आत्मद्रव्य ही शुद्धरूप परिणमन

करे, शुद्ध आत्मद्रव्य ही शुद्धरूप परिणमन करे अर्थात् शुद्ध उपयोगरूप हो, वह मोक्ष का साधन है। उस आत्मा की दो दशायें हैं। उसमें राग की और व्यवहार की, निमित्त की दशा नहीं आती। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से। ऐई! पहले से कहते हैं, सुना न? यह कहते हैं, देखो!

आत्मा जिस भाव से साधन, आत्मा जिस भाव से साधन, आत्मा साधन हो। समझ में आया? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में चैतन्यमूर्ति पदार्थ अनादि-अनन्त शान्त ज्ञानरस से भरपूर है। पुण्य-पाप, दया, दान के विकल्प, वह तो विकार तत्त्व क्षणिक है, वह तत्त्व कहीं अन्तर में नहीं। और कर्म, शरीर, वह तो मिट्टी-धूल है। वह तो धूल है, वह तो पर है, वह कहीं आत्मा में है नहीं। आत्मा जिस भाव से साध्य तथा साधन हो। कौन? आत्मा जिस भाव से साध्य-साधन हो। जिस भाव से राग साधन हो, परद्रव्य साधन हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? कठिन जगत को! साधन कुछ साधन चाहिए न? यह शुद्ध उपयोग का साधन चाहिए न? और ऐसा प्रश्न करे। ऐई! देवानुप्रिया! साधन-फाधन... शुद्ध उपयोग आत्मा साधन है। आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति अनन्त आनन्दकन्द की अन्तर दृष्टि करने से जो शुद्ध परिणति शुद्धउपयोग हो, वही साधन, साध्य का-मोक्ष का वह साधन है।

यहाँ तो जीवतत्त्व का वर्णन है न! तो जीव कहो या आत्मा कहो। आत्मा ही साध्य-साधनरूप होता है। आत्मा के अतिरिक्त दूसरा तत्त्व साथ में मिलाकर साधन होता है या साध्य होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? क्या अधिकार चलता है? जीव-आत्म अधिकार। अजीव बाद में लेंगे। अर्थात् जीव। तो उसमें पुण्य-पाप के भाव (नहीं) और कर्म, शरीर तो अजीव है। वह जीव स्वभाव नहीं। समझ में आया? ऊपर क्या लिखा है? जीव-अजीव अधिकार। समझ में आया? उसने कभी दरकार नहीं की। परिभ्रमण करते-करते अनन्त काल हुआ। कोई बाह्य योग का प्रसंग हुआ, परन्तु इसने अन्तर में यह आत्मा साधन होकर परिणमे, तब मोक्ष साध्य होता है, ऐसी इसकी रुचि, दृष्टि की ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा वस्तु है या नहीं? यहाँ जीव-अजीव अधिकार चलता है। यह आत्मा, यह आत्मा। यह आत्मा, हिन्दी है। यह आत्मा—तो आत्मा किसे कहते हैं? शरीर, कर्म को आत्मा कहते हैं? यह तो मिट्टी-धूल है। वाणी धूल है, पुण्य-पाप के परिणाम अजीव हैं। वे चैतन्यस्वरूप हैं? वे अजीव हैं, सबको अजीव में डाल दिया। जीव-अजीव अधिकार है न? यह रहा जीव। चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, स्थिरता-शान्तिस्वभाव, वीर्य का पूर्ण बल, ऐसी अनन्त शक्ति सम्पन्न शुद्ध पदार्थ, एकरूप वस्तु है। वह आत्मा जिस भाव से साध्य-पूर्ण पर्याय प्रगट हो और जिस भाव से साधन शुद्ध उपयोग हो, वह शुद्ध उपयोग भी अपने आत्मा की पर्याय है, शुद्ध पूर्ण दशा भी आत्मा की (दशा है)। उस आत्मा के ही दो प्रकार हैं। कोई उसमें राग और परद्रव्य की मदद-सहायता है नहीं। समझ में आया? यह शरीर मजबूत हो तो काम करे, संहनन मजबूत हो तो उसमें साधक और साध्य में काम करे, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई!

मुमुक्षु : निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ ही कि नहीं, निमित्त का अर्थ ही यह है। यहाँ तो वस्तु है, वह है। वह तो निमित्त है, वह तो ज्ञान करने की चीज़ है। अपना स्व-पर का ज्ञान होता है, उसमें ज्ञान हुआ, वह चीज़ मदद करती है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब ज्ञायकसूर्य, वही अपना आत्मा। अपना अपूर्ण साधन अथवा अपूर्ण शुद्धपरिणति। स्वभाव शुद्ध चैतन्य के आश्रय से आत्मा जिस भाव से साधन हो। तो आत्मा अन्तर दृष्टि करने से, स्थिरता करने से जो शुद्ध दृष्टि, ज्ञान और शुद्ध उपयोगरूप आचरण होता है, वही मोक्षरूपी साध्य का साधन कहा जाता है। आत्मा साधन कहने में आया है। साथ में रागादि अनात्मा को साधन कहने में नहीं आया। आहाहा! समझ में आया?

यह तो ऊपर आया था न? ऊपर नहीं आया था? अपूर्ण रूप साधक भाव है, ऐसा कहा था। **आत्मा तो ज्ञानस्वरूप एक ही है, परन्तु उसका पूर्णरूप साध्यभाव है और अपूर्णरूप साधकभाव है; ऐसे भावभेद से दो प्रकार से एक का ही सेवन करना।**

एक द्रव्य पर दृष्टि करना। सेवन तो एकरूप द्रव्य का सेवन करना। समझ में आया? ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वरूप की प्राप्ति के इच्छुक—जिसे आत्मा के शुद्धस्वरूप की प्राप्ति की भावना है, ऐसे आत्मा को साध्य-साधक भाव के भेद से दो प्रकार से एक ही नित्य सेवनयोग्य है। सेवन तो एक ही आत्मा शुद्ध द्रव्य है, उसका ही सेवन करना है। परन्तु पहली दशा में अन्तर्मुख होकर शुद्ध परिणतिरूप शुद्ध उपयोग, वह साधन है और वही सेवन करने से पूर्ण दशा होगी, वह साध्य है। समझ में आया? सेवन तो शुद्ध चैतन्यपदार्थ...

आत्मा अर्थात् ही परमात्मा। आत्मा अर्थात् परमात्मा। रागादि विकल्प नहीं, शरीर, वाणी, कर्म वह तो पर जड़ है और पुण्य-पाप के भाव तो आस्रव हैं, वह तो अजीव है, जीवस्वरूप नहीं, चैतन्यस्वरूप नहीं। तो चैतन्यस्वरूप चैतन्यसूर्य, वह द्रव्य जो त्रिकाल है, उसका सेवन करके शुद्ध उपयोग हुआ, वह साधन है, उसका ही सेवन करके पूर्ण दशा हुई, वह साध्य है। समझ में आया? आहाहा! सेठ! बराबर... बराबर नहीं, थोड़ा पकड़ना चाहिए। यह अमरचन्दजी कहते थे, सेठ को अभी बहुत पकड़ने की दरकार नहीं है। थोड़े-थोड़े अभी बाहर में जाते हैं। अमरचन्दजी हैं न? वे बात करते हों तो उसे खबर पड़े न कि सेठ बराबर पकड़ते नहीं अभी। यह आवश्यक है, बाकी सब तुम्हारे पैसे धूल हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल की जरूरत... पहली अवस्था में शुद्ध उपयोग की आवश्यकता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। सेठ! पैसे-धूल की कुछ आवश्यकता नहीं। करोड़ रुपये पड़े हों तो वहाँ पड़े रहे। दो करोड़, वह तो अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व के आधार से साधन होता है? वह तो नहीं परन्तु अन्दर शुभराग कषाय की मन्दता हुई, (वह भी साधन नहीं)। समझ में आया? क्यों देर लगी सेठी को? ऐ... निश्चिन्तता से सातासीलिया है। नहा-धोकर फिर निश्चिन्तता से आवे। टाईम से आना चाहिए।... घड़ी का दोष निकाला कि मेरी घड़ी ऐसी है। सेठी! घड़ी बराबर रखना चाहिए। आहाहा! आत्मा... बहुत बात चल गयी। झट हमारे जयपुर आओ, जयपुर आओ। परन्तु यहाँ तो देरी लगती है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कैसी बात, प्रभु! ओहोहो! १६वीं गाथा

सोलह आना! रुपया। सोलह आना का रुपया था न पहले? अब....

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव एक समय में तीन काल-तीन लोक जिनके ज्ञान में आये, ऐसे भगवान की वाणी में सौ इन्द्र की उपस्थिति में वाणी आयी, वही वाणी मुनि कहते हैं। समझ में आया? अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र, अर्धलोक के स्वामी ईशानइन्द्र (सुनने आते हैं)। एक साधारण राजा हो तो... यह तो अर्धलोक के स्वामी। बत्तीस लाख विमान का स्वामी। २८ लाख विमान का वह स्वामी है। समझ में आया? ईशानइन्द्र। असंख्य-असंख्य अरब देवों के स्वामी। यह तो एक साधारण मनुष्य। ऐसे देव भी भगवान के समवसरण में बैठकर (सुनते हैं)। प्रभु की वाणी में ऐसा आया, वह सन्तों ने सुनकर अनुभव करके चारित्रदशा में रमते हैं और विकल्प से यह कथन करते हैं। आहाहा!

अरे जीवों! तुम्हारा आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा है न! तेरी चीज़ में क्या न्यूनता है? तेरी चीज़ में क्या दोष है? और किस गुण की कमी है? समझ में आया? तेरे आत्मा में क्या दोष है और कहाँ गुण की अपूर्णता है? अर्थात् दोष है नहीं और गुण की अपूर्णता है नहीं, गुण पूर्ण है। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। भगवान आत्मा, जिसमें दोष का अंश नहीं और गुण की पूर्णता में कमी जरा भी नहीं। ऐसा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीर्य, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता—ऐसा भगवान आत्मा एक स्वरूपी प्रभु का एक का ही सेवन करके दो प्रकार की पर्याय (होती है)। एक प्रथम साधनरूप पर्याय जो शुद्ध उपयोग और पूर्ण केवलज्ञान पर्याय, वह साध्य। परन्तु वह एक ही आत्मा के दो रूप हैं। पर्याय में, हों! द्रव्य तो एकरूप है। समझ में आया? वस्तु एकरूप है। एकरूप पर दृष्टि करने से उसी आत्मा में जो प्रथम पुण्य-पाप के विकल्प से रहित शुद्धस्वभाव के आश्रय में जो शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्तिरूप उपयोग, निर्विकल्प शान्ति, शुद्ध उपयोग हुआ, वही आत्मद्रव्य का सेवन करने से हुआ। तो वह शुद्ध पर्याय—शुद्ध उपयोग, वही मोक्ष का साधन है। भगवान के मुख में यह बात आयी है। आहाहा! समझ में आया? तेरा आत्मा ही साधनरूप होकर परिणमे, वह मोक्ष का मार्ग। आत्मा ही पूर्णरूप परिणमे, वह साध्य। आहाहा! समझ में आया?

परमस्वभाव ध्रुवस्वभाव एकरूप त्रिकाली प्रभु भगवान का सेवन करने से, एकाकार होने से, उसी आत्मा में दो प्रकार की दशा होना, वह आत्मा की दो दशायें हैं, दोनों आत्मा का स्वरूप है। समझ में आया? शुद्धस्वभाव के अवलम्बन से जो अपूर्ण शुद्धता प्रगट होती है, शुद्ध उपयोग वह साधन। (उसे) दूसरे पदार्थ के अवलम्बन की—आधार की, सहायता की प्रेरकता बिल्कुल नहीं। ऐसा एक ही आत्मा पूरा परमानन्दस्वरूप अपूर्ण शुद्धरूप द्रव्य के आश्रय से आत्मा साधक हो और वही द्रव्य पूर्ण साध्यरूप से परिणमित हो, वह आत्मा की साध्यरूप दशा है। ध्येय तो आत्मा एक ही है। साधन में और साध्य में ध्येय तो द्रव्य एक ही है। वस्तु का सेवन करने से अपूर्णपने की पर्याय, वह साधक; पूर्ण पर्याय, वह साध्य। आहाहा! कहो, माणेकचन्दजी! समझ में आया? नेमिचन्दजी!

आत्मा जिस भाव से साध्य... उसके अपने भाव से साध्य है। समझे? अपना जो पूर्ण भाव, वह साध्य है और अपना भाव साधन है। आत्मा की अपनी शुद्ध पर्याय अपना सेवन करने से हुई, वह आत्मा साधन है। समझ में आया? जिस भाव से अर्थात् रागभाव और परभाव वह जिस भाव से नहीं। अपने और अपने भाव से। **यह आत्मा जिस भाव से...** जिस दशा से **साध्य तथा साधन हो, उस भाव से ही...** पर्याय से ही **नित्य सेवन करने योग्य है,...** जो साधकपर्याय में भी द्रव्य का सेवन है, साध्यपर्याय में भी द्रव्य के सेवन से साध्यपर्याय होती है। समझ में आया?

पूर्ण शुद्ध चैतन्यवस्तु ऐसी पूर्णानन्द चीज़, विकल्प का लक्ष्य छोड़कर देखो, पूरी चैतन्यज्योतिस्वरूप अपने एकाग्र भाव से जो शुद्ध उपयोग साधन हुआ, वह मोक्ष का साधन और उसकी एकाग्रता से जो पूर्ण पर्याय हुई, वह साध्य। उसकी शुद्धदशा के दो रूप हैं। सेवन एक का है, रूप दो हैं। आहाहा! तीसरा रूप उसमें रागादि का साधन हो या निमित्त साधन हो, ऐसा है नहीं। ऐसा आत्मा ही ऐसा घोलन करके अपने में और अपने में शुद्ध उपयोग परिणमन करके शुद्धपर्याय प्रगट करता है। समझ में आया? यह तो जीव की बात चलती है, कर्ता-कर्म की तो दोपहर में चलती है।

यह तो अस्तित्व.... भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध चैतन्यदल है।

उसका सेवन करने से शुद्ध आत्मा की पर्याय प्रगट हो, वह साधन और उसका सेवन करने से पूर्ण दशा प्रगट हो, वह साध्य। परन्तु वह तो आत्मा और आत्मा दो रूप में आया है। अपूर्ण परिणमन में भी आत्मा और पूर्ण परिणमन में भी आत्मा। उसमें राग और निमित्त का आधार या मदद-बदद है नहीं। दूसरे द्रव्य देव-गुरु-शास्त्र की मदद भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले-पहले कोई नहीं। पहले-पहले आत्मा।

मुमुक्षु : उसके पहले....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के पहले नहीं। आहाहा! पहले आत्मा। अन्दर आत्मा का लक्ष्य करने से जो शुद्ध परिणति हुई, वह साधन। पहले में पहले यह है। पहले ऐसा सुना था और ऐसा और वैसा कुछ नहीं। आहाहा! भाई! वीतरागमार्ग अनन्त काल में इसने सुना नहीं। मर गया बाहर में कर-करके। बाहर में पुण्य के योग से पैसा-बैसा मिले, वहाँ फँस जाये धूल में। दो-पाँच करोड़ मिले वहाँ हो...हा... हो...हा... मैं चौड़ा और गली सकड़ी। हो गया। धूल में भी नहीं, मर गया, सुन न! भिखारी है। ऐई! सेठ! सेठ भी भिखारी। यह सुना नहीं था? उसमें आया था या नहीं यह? कहाँ आया था? उसमें है या नहीं? लिखा है या नहीं? १३ पृष्ठ पर बतलाया था। बाकी सब भिखारी। सेठिया लिखते हैं, है या नहीं?

गुणीजन सम्हाले सो ही सेठ, वे स्वयं सेठिया हैं। वे सेठिया कहते हैं। कीर्ति बड़ी न! ३५-३७ वर्ष पहले उनके मामा के पास साठ लाख रुपये। दिये तो लिये नहीं। साठ लाख का क्या करना है? धूल को। शोभालालजी! साठ लाख ३७ वर्ष पहले। अर्थात् अभी तो चार-पाँच करोड़ रुपये कहलाये। तुम्हारा रुपया दो आना और तीन आना हो गया। कीमत बहुत घट गयी। नहीं, हमारे क्या करना है? फिर यह गायन बनाया। समझे न? वह गायन बनाया। उनके पुत्र का पुत्र मर गया था। गृहस्थ है, पाँच-सात लाख रुपये हैं, बड़ी बिल्डिंग है, व्यापार है। वे कहें, क्या है? रोना है? रोना नहीं, बापूजी! रोना नहीं। पिताजी कहे न ससुर को? मैं कहूँ वह गायन गाओ। यहाँ अपने मरे

तब गाते हैं न? मेरा पेट... मेरा पेट, ऐसा कहते हैं न? हमारे काठियावाड़ में रोवे। तुम्हारे भी कहते होंगे? मेरा पेट, ऐसा करके रोवे। इस प्रमाण बनाया है।

'गुणीजन सम्हाले सो ही सेठ' अपनी नित्यानन्द पूँजी सम्हाले, वही सेठ है। माणेकचन्दजी! 'अन्य तो अनुचर जाणजो जी...' अन्य तो सब भिखारी अनुचर हैं, रंक हैं, रंक। नेमचन्दजी! यह तुम्हारी ओर से आया है। दिल्ली की ओर से प्रकाशित हुआ है न? आहाहा! 'अन्य तो अनुचर जाणजो जी... मारा ज्ञान।' वे महिलायें रोवे, मारा पेट। अब पेट कब तेरा था और लड़का कब तेरा था? लड़का मरे तब बोले, मारा पेट। पेट कब तेरा था? वह तो आत्मा किसी का, शरीर किसी का। तुझे क्या है? मुफ्त की मांडी है। यहाँ तो कहते हैं, मेरा ज्ञान। चैतन्य हूँ, ज्ञान मेरा ज्ञान है। राग भी मेरा नहीं तो फिर स्त्री, पुत्र, परिवार, धूलधमाका उसमें कहाँ से आये? समझ में आया? ओहोहो! दिया है न? वाँचा है या नहीं? वाँचा है। ....

भगवान आत्मा... आहाहा! **जिस भाव से साध्य...** जिस भाव से साध्य। अपने स्वभाव में एकाग्र होने से साध्य होता है। जिस भाव से साधन। वह भी अपने में एकाग्र होने से साधन होता है। समझ में आया? बात सुनने में अभी न आवे, वह कब उसका प्रयत्न करे और कब अनुभव करे? और अनुभव बिना मोक्षमार्ग है नहीं। समझ में आया? **उस भाव से ही नित्य सेवन करने योग्य है,...** नित्य सेवनयोग्य है। नित्य क्यों कहा? कि किसी भी काल में अन्दर राग का सहारा है और व्यवहार का सेवन करना, तो साधन होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो आत्मदेव प्रगट करना हो, उसकी बात है। बाकी पामरता अनन्त काल से प्रगट करता है और भिखारीरूप से भटकता है। देव हुआ तो भी भिखारी और बड़ा अरबोंपति हो तो भी भिखारी है। बराबर होगा माणेकचन्दजी? यह सब भिखारी होंगे? माँगते तो नहीं। अधिक माँगे, वह बड़ा भिखारी; थोड़ा माँगे, वह छोटा भिखारी। हम तो माँगण कहते हैं, हमारी काठियावाड़ी (भाषा में)। थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, अधिक माँगे वह बड़ा भिखारी। माँगण अर्थात् भिखारी है। सेठी! माँगण समझते हो? माँगे न? एक बनिया कहे, हमको महीने में पाँच हजार चाहिए। वह थोड़ा भिखारी।

राजा कहे, हमारे महीने में पाँच लाख चाहिए, वह बड़ा भिखारी। बड़ा भिखारी भाई तू। नेमिचन्दजी!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! इच्छुक कहा है न? देखो न, वहाँ उसमें कहा है, **प्राप्ति के इच्छुक...** आया था न? समझ में आया? इच्छुक कहाँ से निकाला? '**सिद्धिम् अभीप्सुभिः**' है न? १५वें कलश में। '**एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः**' बस। कलश में। **इच्छुक पुरुषों को...** जिसे शुद्ध आत्मा की अभिलाषा है, उसकी बात है। जिसे पैसा, राग, पुण्य की अभिलाषा है, वह तो भिखारी चार गति में भटकता है। समझ में आया? है कहीं? आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की शुद्धपर्याय का अभिलाषी हो, उसे आत्मा का सेवन करना। और उस आत्मा के सेवन से जो भाव साधकरूप हुआ, वह शुद्धरूप उपयोग हुआ, उसके ही सेवन से पूर्ण पर्याय साध्य हुई। उसके साधन में द्रव्य ही साधन है और उसके साध्य-मोक्ष की पर्याय में उसकी पर्याय साधन है। समझ में आया? आहाहा! शुद्ध उपयोग में ध्येय आत्मा है। शुद्ध उपयोग जो साधन हुआ, उसमें ध्येय आत्मा है और साध्य पर्याय प्रगट हुई, उसमें आत्मा के ध्येय से पर्याय प्रगट होती है। आत्मा ही दो रूप धारण करता है।

पीछे उपाय-उपेय का आया न? भाई! वह यहाँ से निकालकर फिर वहाँ डाला। एक का एक आत्मा उपाय और उपेयरूप होता है। विकार को निकाल डाल, विकार लक्ष्य में से छोड़ दे। अकेला आत्मा पूर्णानन्द प्रभु अपने अन्तर में ध्येय को पकड़कर घोलन होता है, अपूर्ण शुद्ध उपयोग का साधन और पूर्ण पर्याय वह साध्य। बस, अपने में और अपने में दोनों होते हैं। दूसरा पर का आश्रय, मदद-बदद है नहीं। इसका नाम सर्वज्ञ वीतराग पंथ और मार्ग कहा जाता है। कहो, ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

इस प्रकार स्वयं विचार करके... देखो! इस प्रकार आप स्वयं विचार-ज्ञान करके **इस प्रकार स्वयं विचार करके...** प्रतिपादन करते हैं न? व्यवहार आया न? विकल्प से प्रतिपादन करते हैं। **साधु पुरुष को...** सन्तों को-साधक जीव को **दर्शन, ज्ञान, चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।** देखा! यह दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार हुआ। **साधु पुरुष को दर्शन, ज्ञान, चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।** सम्यग्दर्शन, ज्ञान,

चारित्र सेवन करनेयोग्य, प्रगट करनेयोग्य है। **किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही हैं...** लो। भेदरूप कहना, वह तो पर्याय का कथन है। समझ में आया? नहीं तो एक आत्मा ही तीन रूप परिणमा है। एकरूप दर्शन, ज्ञान, चारित्र की एकरूपता, वह आत्मा ही है। पर्याय की बात है, हों! समझ में आया?

परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही हैं... यहाँ पर्याय की बात करते हैं, हों! अभेद। **क्योंकि वे अन्य वस्तु नहीं...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आत्मा से कोई अन्य नहीं। राग नहीं, निमित्त नहीं, कर्म नहीं, संयोग नहीं। किन्तु **आत्मा की ही पर्याय हैं।** सम्यग्दर्शन, आत्मा त्रिकाली शुद्ध का लक्ष्य करके—ध्येय करके प्रतीति हुई और आत्मा का लक्ष्य करके स्वसंवेदन पर्याय हुई और आत्मा में आचरणरूप अनुचरण हुआ, वह तीनों आत्मा की पर्याय भेद से कथन किया जाता है। बाकी वस्तु तो एक ही है। तीन का एकरूप आत्मा में होता है, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है।

जैसे किसी देवदत्त नामक पुरुष के... दृष्टान्त देते हैं। कोई देवदत्त नाम के पुरुष को। देवदत्त, दृष्टान्त भी देवदत्त (नाम से देते हैं)। **ज्ञान, श्रद्धान और आचरण देवदत्त के स्वभाव का उल्लंघन न करने से (वे) देवदत्त ही हैं...** कोई देवदत्त का आत्मा है, तो वही देवदत्त पुरुष का जानपना, उसकी श्रद्धा और उसका आचरण, देवदत्त के स्वभाव को उल्लंघकर अन्यत्र नहीं रहते। वह तो देवदत्त ही है। समझ में आया? देवदत्त की श्रद्धा, देवदत्त का ज्ञान और देवदत्त का जानपना, देवदत्त का आचरण, वह देवदत्त ही है, वह पर्याय देवदत्त ही है। वह कोई भिन्न-भिन्न नहीं। **अन्य वस्तु नहीं,...**

इसी प्रकार आत्मा में भी आत्मा के... आत्मा में भी आत्मा के **ज्ञान, श्रद्धान और आचरण...** आत्मा का ज्ञान। यहाँ से लिया है। देखो! ज्ञान से लिया है। समझ में आया? उसमें भी लेते हैं न? १७-१८ (गाथा) में यह लेते हैं न? ज्ञान से शुरु किया है न? टीका में लेंगे यह। टीका में लेते हैं, तीन लेते हैं न? पाठ में। जानकर श्रद्धा करना, ऐसा है। '**जाणिऊण सद्दहदि**' ऐसा है न? वहाँ १७ में है। '**रायाणं जाणिऊण**'। ऐसा '**जीवराया णादव्वो**' बाद में '**सद्दहेदव्वो**' ऐसा लिया है। अनुभव से ऐसे जानने में आया और प्रतीति हुई। नहीं तो खरगोश के सींग जैसी श्रद्धा है। वस्तु अन्तर ज्ञान में यह

ज्ञेय आत्मा ऐसा है, ऐसा ज्ञान हुआ। ज्ञान का अर्थ शास्त्र का ज्ञान, ऐसा नहीं। भगवान आत्मा चैतन्यज्योति अकेला चैतन्यपुंज है, ऐसा स्वसंवेदन में ज्ञान हुआ तो ज्ञान से जाना कि यह आत्मा पूरा पूर्ण ज्ञानमय है। तो उसमें प्रतीति हुई। जाने हुए की प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

कहते हैं कि उस **आत्मा के ज्ञान...** आत्मा के ज्ञान-शुद्ध भगवान आत्मा का ज्ञान। आत्मा का, हों! शास्त्र का ज्ञान या पर का नहीं। आत्मा का **श्रद्धान...** देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान आदि नहीं। आत्मा अखण्ड परमात्मा का श्रद्धान और आत्मा का **आचरण...** भगवान आत्मा शुद्ध घन, कन्द में लीनतारूप आत्मा का आचरण, वह चारित्र। वह **आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से...** वह आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन नहीं करते। समझ में आया? देवदत्त के ज्ञान, श्रद्धान, आचरण देवदत्त को छोड़ते नहीं, उल्लंघन करते नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप ध्रुव का ज्ञान, उसकी श्रद्धा, उसका आचरण—चारित्र, वे आत्मा को छोड़ते नहीं। आत्मा को उल्लंघन करते नहीं। वे राग में प्रवेश नहीं करते। वह तो आत्मा की निर्मल पर्याय है। समझ में आया?

आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से आत्मा ही हैं... देखो! यह पर्याय को भी स्वभाव कहा, हों! पर्याय स्वभाव है न उसका? ज्ञान, दर्शन, चारित्र उसका पर्याय स्वभाव है न? उसका स्वभाव है न? त्रिकाल स्वभाव तो है, परन्तु वह पर्याय प्रगट हुई, वह आत्मा का स्वभाव है। आहाहा! **आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से...** भगवान आत्मा निज शुद्ध के ऊपर दृष्टि करने से जो ज्ञान हुआ, दृष्टि हुई, स्थिरता हुई, उसने आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन नहीं किया। यह तो स्वभाव के आश्रय से स्वभाव की पर्याय प्रगट हुई है। वह कोई विकार, विभाव (के आश्रय से नहीं हुई)। समझे? अपना स्व उल्लंघकर दूसरी कोई पर्याय हुई, ऐसा नहीं। अभी तो क्या कहते हैं, यह पकड़ना मुश्किल। प्रयोग तो कहाँ करे? क्या कहते हैं यह? शरीर-बरीर तो कहे धूल, पुण्य-पाप के भाव तो कहे अजीव।

अकेला भगवान शुद्ध रहा, उसे दृष्टि में लिया और उसका ज्ञान किया और

उसका आचरण किया, वह आत्मा का स्वभाव। समझ में आया? वह आत्मा का स्वभाव छोड़ते नहीं। वह तो आत्मा की निर्मल पर्याय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव आ जाये। प्रतीति क्या, अनुभव आवे, तब प्रतीति कहलाये। प्रतीति कहने में आती है, क्या अर्थ? थोड़ी गुजराती आ जाती है।

भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञायक चैतन्यज्योति का ज्ञान। उसके ज्ञान का अर्थ क्या? उसका ज्ञान कब हो? पर की ओर से हटकर—राग, निमित्त से हटकर निज ज्ञायकस्वभाव में जुड़ान हुआ तो उसका ज्ञान हुआ। अनुभव हुआ कि यह आत्मा। समझ में आया? वरना उसे ज्ञान नहीं कहते और उसका श्रद्धान। आत्मा में भी... जैसे उस देवदत्त में, **इसी प्रकार आत्मा में भी आत्मा के ज्ञान,...** आत्मा का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान। ओहोहो! आत्मा का ज्ञान, आत्मा की श्रद्धा, आत्मा का आचरण। आचरण है न? आचरण कहो या चारित्र कहो। स्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान। राग का ज्ञान भी नहीं, व्यवहार का ज्ञान भी नहीं, निमित्त का ज्ञान भी नहीं।

आत्मा परमानन्दमूर्ति प्रभु परमात्मा, उसका ज्ञान। परमस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान। यह निचली श्रेणी की बात चलती है, हों! साधक। भगवान आत्मा के अन्दर भान में प्रतीति (होना) और भानसहित में स्थिरता। वह **आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से आत्मा ही हैं...** मोक्षमार्ग की पर्याय आत्मा ही है, कोई अनात्मा रागादि है नहीं। समझ में आया? कोई कहता है कि शरीर की मजबूताई हो तो बराबर हो सकता है, तप हो सकता है, शरीर ढीलाढाला हो तो नहीं होता। अरे! उसके साथ क्या सम्बन्ध है? अपना पुरुषार्थ निर्बल हो तो अपने कारण से है, पर के कारण से नहीं। अपना स्वभाव, उसका ज्ञान करके श्रद्धा की, वह आत्मा का ज्ञान हुआ, आत्मा की श्रद्धा हुई, वह आत्मा का आचरण हुआ। उसमें लीन हुआ, वह आत्मा का आचरण हुआ। ये तीनों आत्मा की पर्याय आत्मा के स्वभाव को उल्लंघन नहीं करती। अर्थात् वह पर्याय राग में रहती नहीं, वह पर्याय कोई शरीर, कर्म में रहती नहीं अथवा वह पर्याय शरीर, कर्म और राग से उत्पन्न नहीं हुई।

अन्य वस्तु नहीं। देखो! अस्ति-नास्ति की, हों! अन्य वस्तु नहीं। पुण्य-पाप विकल्प आदि अन्य वस्तु यह नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, उसके ज्ञान, श्रद्धा और चारित्र वे आत्मा ही हैं, अन्य नहीं। व्यवहाररत्नत्रय आदि विकल्प स्वरूप यह नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो व्यवहार गले पड़ा है कि व्यवहार करो। 'निश्चय दृष्टि हृदय धरी, साधे जो व्यवहार', जाओ! वह साधे क्या? कि यह राग करना। राग करना, दया, दान, भक्ति, वह राग, वह साधन। निश्चय दृष्टि... परन्तु निश्चय दृष्टि की व्याख्या (क्या?) राग का करना है, वहाँ निश्चय दृष्टि है ही नहीं। वह आत्मा ही नहीं है। आत्मा नहीं है, उसे करना, उसमें निश्चय दृष्टि आत्मा की रही कहाँ? आहाहा! मनुष्यपना मुश्किल से मिला बेचारे को। मुश्किल-मुश्किल से अनन्त काल में मिला, उसमें लूटा। धर्म के नाम से। एक तो लुटता है भोग के नाम से, लक्ष्मी के नाम से लुटता है। धर्म के नाम से लुटेरे मिले। आहाहा! ऐसा राग करो, व्यवहार करो, करते-करते निश्चय लक्ष्य में रखना। लुटेरे हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं, भगवान आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र तो आत्मा के स्वभाव को उल्लंघन नहीं करते, इसका नाम मोक्षमार्ग साधन है। आहाहा! समझ में आया? राग-बाग है, वह साधन नहीं। वह राग साध्य का साधन नहीं और साधन का साधन नहीं। साध्य में साधन लिया है, पंचास्तिकाय में लिया है न? वह तो निमित्त का ज्ञान कराया। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान से प्रधान कथन है यहाँ स्व-परप्रकाशक... व्यवहार साधन साध्य। राग साधन निमित्तरूप से, उपादान साध्य पूर्ण। वास्तव में साधन तो निश्चय है परन्तु उसे साधन उपचार से कहा है। है नहीं। है नहीं, उसे उपचार से कहना, उसका नाम व्यवहार है। समझ में आया?

कहते हैं, **इसलिए यह स्वयमेव सिद्ध होता है कि एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है।** आया, भाई! देखो यह। सेवन करनेयोग्य आत्मा है। परन्तु सेवन करनेयोग्य आत्मा है। दो नहीं। पर्याय के दो भेद, इसलिए दो, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो प्रगट करने के दो प्रकार। एक शुद्ध उपयोग साधन, एक पूर्ण साध्य केवल (ज्ञान)। दोनों पर्याय भेदरूप है। सेवन इसका करना। **एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है।** आहाहा!

एक ही चेतन की उपासना करना। भगवान आत्मा अनन्त गुण भण्डार, अनन्त गुण भगवान परमात्मा ही स्वयं निश्चय से है। कैसे बैठे? बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। ऐसा हो जरा-जरा में। दाल एकरस न हुई हो तो चले नहीं, लड़का जरा माने नहीं तो चले नहीं। अरे! यह मैंने पालन-पोषण किया, पचास हजार खर्च किये, लाख खर्च किये इसके पीछे, अब, लो! अलग होना है मुझे। स्त्री आयी किसी के घर की न... अलग होना है, बापूजी! मुझे अलग होना है। ठीक भाई, लो। घर का क्लेश कहाँ तक रखना? अलग होओ। ऐसा कहे लोग। भगवान! कहाँ किसकी चीज़? भाई! किसकी माँ और किसके पिता? किसकी स्त्री? राग किसका? यहाँ तो यह कहना है। यहाँ तो राग भी तेरा नहीं और आत्मा मोक्षमार्गरूप परिणमे, उसमें राग का सहारा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म की भूमिका का राग।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह शुभराग। उसकी बात है न, यहाँ लक्ष्य करने से पर्याय प्रगट होती है या यहाँ लक्ष्य करने से उत्पन्न होती है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

एक आत्मा ही... वापस ऐसा कहा। वह दो प्रकार की भले पर्याय हो, परन्तु सेवन तो एक आत्मा ही सेवन करनेयोग्य है। व्यवहार से उपदेश ऐसा दिया कि तीन का सेवन करना, ऐसा। यह व्यवहार से कथन किया, पर्याय से कथन किया। वह स्वयं... देखो! वह स्वयं अपने से ही प्रकाशमान होता है। देखो भाषा! भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य शुद्ध ध्रुव परमानन्द, वही अन्तर (में) सेवन करनेयोग्य है। सेवा... सेवा। उसकी सेवा करनेयोग्य है। वह स्वयं... देखो, भाषा आयी। स्वयं अपने से ही प्रकाशमान होता है। आत्मा ही अन्तर एकाग्र होने से स्वयं ही अपने से प्रकाशमान होता है। दशा में और साध्य में वही आत्मा प्रकाशमान होता है। स्वयं। दूसरे की सहायता बिना। वह निरालम्बी तत्त्व। निरालम्बी-पर के आलम्बन बिना ही साधन और साध्यरूप परिणमता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

स्वयं अपने से ही, ऐसा वापस। दो शब्द पड़े हैं न? '**आत्मा एक इति स्वयमेव प्रद्योतते**' ऐसा है न संस्कृत में? स्वयमेव, स्वयमेव। अर्थात् स्वयं की व्याख्या की। स्वयं की व्याख्या की। अपने से ही, ऐसा स्वयं का अर्थ किया। स्वयमेव—अपने से

ही। अपने से ही उसका अर्थ किया। भगवान आत्मा अपने से ही प्रकाशमान होता है। समझ में आया? '**स्वयमेव प्रद्योतते**' ऐसा अर्थ किया हिन्दी में। समझ में आया? चैतन्यप्रभु का अन्तर सेवन द्रव्य का लक्ष्य करने से स्वयं आत्मा अपनी पर्याय में पर के सहारा बिना, अन्य द्रव्य के सहारा बिना, अन्य राग की सहायता बिना, अपनी मोक्षमार्ग की पर्याय में और मोक्ष में प्रकाशमान होता है। समझ में आया? सिद्धरूप दशा में भी अपने सहारे से प्रगट होता है, स्वयं प्रगट होता है। इसमें किसी की सहायता नहीं। वे कहें—नहीं, इतना चाहिए, प्रतिबद्ध कारण टलना चाहिए। फलाना निमित्त वापस मिलना चाहिए, उपादान हो और निमित्त हो तो प्रतिउपकार न मिले तो नहीं होता। अरे... अरे! गजब बात भाई! तीन कारण रखे। उपादान निज शुद्ध उपादान का साधन हो, निमित्त भी अनुकूल हो, प्रतिबद्ध कारण... परन्तु प्रतिबद्ध कारण टले बिना रहे ही नहीं। सुन तो सही! एक कारण जहाँ यथार्थ हुआ, वहाँ दूसरा कारण आये बिना रहता नहीं। निज शुद्धस्वभाव का साधन किया, वहाँ आगे राग का अभाव हुआ, उसी समय उतने ही प्रकार के कर्म के उदय का भी अभाव है ही। प्रतिबद्ध का अभाव है ही। और प्रतिबद्ध का अभाव हो न... यहाँ से मांडी है। प्रतिबद्ध का अभाव, राग का अभाव (हो), तब ऐसा होता है। ऐसा है ही नहीं। अकेला चैतन्यप्रभु अपने आधार से प्रगट होता है, उसमें दूसरे रागादि मन्द हों, परन्तु सहायक नहीं। उस समय कर्म का अभाव होता ही है। पर्याय को प्रतिबद्ध कारण रोकता है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? उपादान हो तो निमित्त ... होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त, सम्यक् एकान्त है। वह अनेकान्त कहे, इससे भी होता है और इससे भी होता है, ऐसा। इससे है और दूसरे से नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। स्वयं अपने से ही प्रकाशमान होता है और पर से प्रकाशमान नहीं होता, इसका नाम अनेकान्त है। अपने से भी प्रकाशमान होता है और पर से भी होता है, (वह तो) फुदड़ीवाद हुआ। वह अनेकान्त नहीं हुआ। कुछ निर्धार तो हुआ नहीं, कोई निश्चय तो हुआ नहीं। स्वयं अपने से ही प्रकाशमान होता है, लो! समझ में आया?

भावार्थ :- दर्शन, ज्ञान, चारित्र - तीनों आत्मा की ही पर्याय है,... निर्मल शुद्ध (पर्याय है)। भावार्थ है न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र भले ऐसा लिया। तीनों आत्मा की ही (पर्यायें हैं)। भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्द की पर्याय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र तीनों आत्मा की दशा है। किसी अन्य की, राग की, व्यवहार की, निमित्त की, कर्म की, शरीर की नहीं। **कोई भिन्न वस्तु नहीं है;...** भगवान आत्मा शुद्धरूप से पर्याय हुई, उसमें कोई अन्य वस्तु नहीं। वह तो अपनी और अपनी पर्याय शुद्धरूप हुई है। शुद्ध शक्तिरूप स्वभावरूप थी, वही अन्तर के आश्रय से पर्यायरूप शुद्धपना प्रगट हुआ। वह आत्मा ही है, अन्य कोई चीज़ है नहीं।

इसलिए साधु पुरुषों को... आत्मार्थी को, सन्त को, साधकजीवों को **एक आत्मा का ही सेवन करना, यह निश्चय है...** एक आत्मा ही, देखो! एक आत्मा ही सेवन करना। लो। वे अन्य देवी, देवला तो कहीं गये, भगवान की—देव की सेवा करने से भी आत्मा की सेवा नहीं होती, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! गये, कल रात्रि में बात हुई थी। थोड़ी-थोड़ी कुछ है, कहते हैं। है, है। थोड़ा है अब। आहाहा! पुराना, पुराना। पुरानी बात में अन्तर हो वह जल्दी निकले नहीं अन्दर से।

यहाँ कहते हैं, सन्तों को, आत्मार्थी को, धर्मात्मा को **एक आत्मा का ही सेवन करना यह निश्चय है...** भगवान आत्मा पूर्णानन्द घन, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र से उसकी सेवा करना। **और व्यवहार से दूसरों को भी यही उपदेश करना चाहिए।** लो! उपदेश में व्यवहार आया न, पर को कहने में। परन्तु पर को कहना तो वही है—ऐसा कहते हैं। **व्यवहार से दूसरों को भी यही उपदेश करना चाहिए।** उपदेश तो यही देना कि तेरा आत्मा ही तुझे सेवन करनेयोग्य है। देखो! इसका नाम उपदेश कहा जाता है। कैसा उपदेश? ऐई... सेठी! व्यवहार का अर्थ यह व्यवहार कहते हैं... क्योंकि पर को कहना है न? विकल्प आया न। तो पर को ऐसा कहते हैं कि तेरा शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा तुझे सेवन करनेयोग्य है। पर को यह उपदेश करना। पर को ऐसा उपदेश नहीं करना कि तुझे राग करना और निमित्त करना और राग करते-करते होगा, ऐसा उपदेश करना नहीं। ऐई! भीखाभाई! **और व्यवहार से...** बोलना है न? विकल्प आया न? इतना व्यवहार,

हों! व्यवहार से विकल्प में भी ऐसा आना चाहिए। वाणी तो वाणी के कारण से आती है। **दूसरों को भी यही उपदेश करना चाहिए।** भगवान! तेरा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है न, प्रभु! तुझमें कहाँ कमी है कि तू पर में खोजने जाता है? और राग में कहाँ पड़ा है कि तू वहाँ शोधता है? और तेरी एक समय की पर्याय में कहाँ पड़ा है कि दूसरी पर्याय उसमें होती है? वह आत्मा का सेवन नहीं। समझ में आया? भगवान शुद्ध प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करो, वही मोक्ष का मार्ग है। वह सुखरूप होने का मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - १६

अब, इसी अर्थ का कलशरूप श्लोक कहते हैं:-

(अनुष्टुप्)

दर्शनज्ञान-चारित्रैस्त्रित्वा-देकत्वत: स्वयम्।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणत: ।।16।।

श्लोकार्थ : [प्रमाणत:] प्रमाणदृष्टि से देखा जाये तो [आत्मा] यह आत्मा [समम् मेचक: अमेचक: च अपि] एक ही साथ अनेक अवस्थारूप ('मेचक') भी है और एक अवस्थारूप ('अमेचक') भी है, [दर्शन-ज्ञान-चारित्रै: त्रित्वात्] क्योंकि इसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तो त्रित्व (तीनपना) है और [स्वयम् एकत्वत:] अपने से अपने को एकत्व है।

भावार्थ : प्रमाणदृष्टि में तीन कालस्वरूप वस्तु द्रव्यपर्यायरूप देखी जाती है, इसलिए आत्मा को भी एक ही साथ एक-अनेकस्वरूप देखना चाहिए।।16।।

भाद्र कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - १३-१०-१९६६
श्लोक - १६ से १९, प्रवचन - ७५

समयसार का जीव-अजीव अधिकार चलता है। मूल तो जीव का अधिकार है। उसमें अजीव नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। १६वाँ कलश है, १६वीं गाथा का १६वाँ कलश है।

दर्शनज्ञान-चारित्रैस्त्रित्वा-देकत्वतः स्वयम्।
मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः॥१६॥

१६वाँ श्लोक, १६। आत्मा... यहाँ आत्मा की बात है न, इसलिए आत्मा से लिया है। **प्रमाणदृष्टि से देखा जाये तो...** आत्मा को दो दिशा से—दो पहलुओं से देखा

जाये (अर्थात्) जो त्रिकाल द्रव्यस्वभाव है और वर्तमान पर्याय के भेद स्वभाव से है, (उन) अभेद और भेद को एकसाथ देखे तो **यह आत्मा एक ही साथ अनेक अवस्थारूप ('मेचक') भी है...** यहाँ मेचक का अर्थ दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेदरूप पर्याय है, उसे मेचक कहा है। भेद को मेचक कहा है। मलिन कहो, व्यवहार कहो, मेचक कहो, अनेक कहो, (सब एकार्थ है)। यहाँ पर की बात है नहीं। अपने में और अपने में अपनी एक समय की पर्याय में दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों का परिणमन भेदरूप से देखो तो अनेक अवस्थारूप दिखता है।

और एक अवस्थारूप ('अमेचक') भी है,... त्रिकाल वस्तु देखो, द्रव्यस्वरूप से देखो तो एकस्वरूप है। एकसाथ एक और अनेक स्वरूप है, ऐसा बतलाना है। वस्तु से एक स्वरूप, पर्याय से अनेक स्वरूप। एकसाथ देखने से दोनों का ज्ञान प्रमाणज्ञान में आ जाता है। यहाँ आत्मा निश्चय और पर व्यवहार, यह बात यहाँ है नहीं। समझ में आया? समझ में आया? यह तो भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण द्रव्य शुद्ध एकरूप वह, और एक समय में दर्शन, ज्ञान, चारित्र की मोक्षमार्ग की अवस्था, वह दूसरा, यह एक और अनेक—दो का ज्ञान एकसाथ करना, उसका नाम प्रमाणज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

क्योंकि इसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तो त्रित्व (तीनपना) है... स्पष्टीकरण करते हैं। अनेक अवस्था पहले कही थी न? **आत्मा एक ही साथ अनेक अवस्थारूप...** उस अनेकपने का स्पष्टीकरण करते हैं कि **दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तो त्रित्व (तीनपना) है...** आत्मा शुद्ध की श्रद्धा, शुद्ध का ज्ञान और शुद्ध में रमणता, यह तीन भेद से '**त्रित्वात्**' देखने से, '**त्रित्व**' अर्थात् तीनपना देखने से तो अनेक है। **और अपने से अपने को एकत्व है।** वस्तुरूप से देखो तो अपने में एकत्व है। एकत्व और अनेकत्व एकसाथ देखना, इसका नाम प्रमाणज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

भावार्थ :- प्रमाणदृष्टि में तीन कालस्वरूप वस्तु द्रव्यपर्यायरूप देखी जाती है,... सामान्य द्रव्य त्रिकाल एकरूप, वर्तमान तीन दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप। यहाँ वर्तमान मोक्षमार्ग की अपेक्षा से बात है न! **इसलिए आत्मा को भी एक ही साथ एक-**

अनेकस्वरूप देखना चाहिए। जानने में। रमणता कहाँ करनी, वह अलग बात है। यहाँ तो जानने की बात करते हैं। त्रिकाल द्रव्य एकरूप है। पर्याय में दर्शन, ज्ञान, चारित्र (तीन स्वरूप है)। देखो! यह मोक्षमार्ग भी एकरूप है, परन्तु वह तीन रूप हुआ। तीन कहते हैं न? तीन। तीन का व्यवहार और तीन का निश्चय, ऐसा नहीं। समझ में आया? आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप की अन्तर सम्यग्दृष्टि-श्रद्धान—अनुभव से करना और उसका स्वसंवेदनज्ञान से अनुभव करना और उसमें लीन होना, इसका नाम मोक्षमार्ग एक है। परन्तु तीन प्रकार से जानना, उसे व्यवहार और अनेक कहते हैं। मलिन भी व्यवहार से कहते हैं। समझ में आया? **इसलिए आत्मा को भी एक ही साथ एक-अनेकस्वरूप देखना चाहिए।**

★ ★ ★

कलश - १७

अब, नयविवक्षा कहते हैं:-

(अनुष्टुप्)

दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः ।।17।।

श्लोकार्थ : [एकः अपि] आत्मा एक है, तथापि [व्यवहारेण] व्यवहारदृष्टि से देखा जाय तो [त्रिस्वभावत्वात्] तीन स्वभावरूपता के कारण [मेचकः] अनेकाकाररूप ('मेचक') है, [दर्शन-ज्ञान-चारित्रैः त्रिभिः परिणतत्वतः] क्योंकि वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीन भावों में परिणमन करता है।

भावार्थ : शुद्धद्रव्यार्थिकनय से आत्मा एक है; जब इस नय को प्रधान करके कहा जाता है, तब पर्यायार्थिकनय गौण हो जाता है, इसलिए एक को तीनरूप परिणमित होता हुआ कहना, सो व्यवहार हुवा, असत्यार्थ भी हुवा। इस प्रकार व्यवहारनय से आत्मा को दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणामों के कारण 'मेचक' कहा है।।17।।

कलश - १७ पर प्रवचन

अब, नयविवक्षा कहते हैं :- पहले प्रमाण से कहा। अब व्यवहार और निश्चय दो से कहते हैं।

दर्शन-ज्ञान-चारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।
एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः॥१७॥

इस श्लोक में बतलाना तो है व्यवहारनय, हों! १७वें श्लोक में व्यवहार बतलाना है। सेठी!

श्लोकार्थ :- आत्मा एक है,... वस्तु एक है, **तथापि...** समझ में आया? **व्यवहारदृष्टि से देखा जाय तो तीन स्वभावरूपता के कारण...** देखो! यह व्यवहार। यह, हों! व्यवहारमोक्षमार्ग, यह बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहारदृष्टि से उसे देखने से तीन स्वभावपने के कारण **अनेकाकाररूप है,...** भाई! क्या कहा, समझ में आया? व्यवहारमोक्षमार्ग की यहाँ बात ही है नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग... आत्मा स्वरूप से एक है और पर्याय में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-अनुभव में, स्वसंवेदनाान और रमणता, यह तीन होकर तीन प्रकार से जानना, उसका नाम व्यवहार। मोक्षमार्ग है, एक प्रकार निश्चय, परन्तु यह तीन प्रकार हुए न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र—ऐसे व्यवहार से देखने में आवे तो **तीन स्वभावरूपता के कारण अनेकाकाररूप है,...** समझ में आया? यहाँ अनेकाकार व्यवहारमोक्षमार्ग का अनेकाकार और आत्मा का एकाकार, ऐसा यहाँ नहीं लेना। वह तो यहाँ है ही नहीं। समझ में आया?

आत्मा... यहाँ तो व्यवहार की बात है, हों! यह नय में। वह तो '**एकोऽपि**' शब्द सकारण रखा है। सिद्ध करना है व्यवहार। दूसरे पद में '**एकोऽपि**' शब्द है न? आत्मा एक होने पर भी... सिद्ध करना है यह। **व्यवहारदृष्टि से देखा जाय तो...** पहला श्लोक प्रमाण का था। यह व्यवहार का है, पश्चात् निश्चय का आयेगा। फिर चौथा श्लोक विकल्प छोड़कर रमणता करने का आयेगा। कहते हैं, वस्तु भगवान आत्मा एक स्वरूप

है, तथापि व्यवहारदृष्टि से देखा जाये, एक समय में आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति-चारित्र अनुचरण एकसाथ व्यवहार से (देखा जाये तो)। वह है तो निश्चय की पर्याय, परन्तु यहाँ एकरूप की अपेक्षा से उसे अनेकरूप देखना, उसको व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? क्या कहा, समझ में आया?

आत्मा एक समय में शुद्ध द्रव्य एकरूप है और वह शुद्धरूप द्रव्य जो एकरूप चैतन्यपिण्ड ज्ञानानन्द है, उसकी श्रद्धा, उसकी श्रद्धा सम्यक् निर्विकल्प प्रतीति, उसका स्वसंवेदनज्ञान और उसमें आचरण ऐसे तीन प्रकार हैं तो निश्चयमोक्षमार्ग, परन्तु तीन प्रकार से, एक की अपेक्षा से तीन प्रकार से देखना, उसे व्यवहार दृष्टि से देखा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय-व्यवहार किसका बताया? मोक्षमार्ग का?

मुमुक्षु : आत्मा के।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के। आत्मा के।

आत्मा एक समय में '**एकोऽपि**' शब्द तो पहला पड़ा है न? बतलाना तो है व्यवहार। प्रमाण का श्लोक तो आ गया। व्यवहार और निश्चय पहले बतलाकर अन्त में सब चिन्ता छोड़ दे अब, अकेला अनुभव करना, ऐसा बतलायेंगे। आत्मा वस्तुरूप से अखण्ड अभेद अखण्डानन्द प्रभु है। तथापि **व्यवहारदृष्टि से देखा जाय तो...** मेचक दृष्टि से देखा जाये, अनेकपने की दृष्टि से देखा जाये तो **तीन स्वभावरूपता के कारण...** तीन स्वभाव। निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय स्वरूपचारित्र। इन तीन को व्यवहार से देखा जाये तो **तीन स्वभावरूपता के कारण...** मेचक है, व्यवहार है, मलिन है, भेद है, पर्याय है। समझ में आया? क्या कहा? सेठी!

भगवान आत्मा एक वस्तुस्वरूप से अभेद चिदानन्द है। ऐसा होने पर भी उसकी पर्याय में—अवस्था में—हालत में—उस शुद्ध चैतन्य की सम्यक् श्रद्धा, निर्विकल्प अनुभव करके उसमें प्रतीति करना और स्वसंवेदनज्ञान प्रगट करना और स्वरूपाचरण-अनुचरण, अनुचरण—स्वरूप में लीन होना—ऐसे वस्तु एक होने पर भी व्यवहार से

देखा जाये तो पर्याय में दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निश्चय है, जो रागरहित है, उसे भेद से देखना, उसे व्यवहार से देखना मेचक है, मलिन है, ऐसा कहा गया है। वह मैल है, ऐसा कहा गया है। मैल कहने का अर्थ—वह व्यवहार से मैल कहा जाता है।

फिर से, मेचक कहा न? मेचक को व्यवहार भी कहते हैं, मलिन भी कहते हैं। अमेचक को निश्चय कहते हैं, निर्मल भी कहते हैं। तो कहते हैं, भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध द्रव्य होने पर भी उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का तीनपना वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा, उसका अन्तर अनुभव करके, स्वसंवेदन करके, उसकी प्रतीति करना, वह सम्यग्दर्शन। वेदनज्ञान का जानपना, वह ज्ञान स्वसंवेदन और स्वरूप में लीनता, वह है तो निश्चय स्वपर्याय अपनी, पर की नहीं, राग की नहीं; परन्तु अनेकपने को देखना, वह व्यवहार से देखना कहा जाता है।

मुमुक्षु : मलिन.... मलिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मलिन, व्यवहार कहो या मलिन कहो। तीन वस्तु है न? तो तीन का लक्ष्य करने से विकल्प उत्पन्न होता है। इन तीन का लक्ष्य करने से विकल्प उत्पन्न होता है। इन तीन को भेदरूप है तो व्यवहार कहा। उसे मेचक कहा, उसे मलिन (कहा)। उस व्यवहार को ही मलिन अपेक्षा लागू पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? आगे आयेगा अन्तिम श्लोक।

'एक देखिये जानिये रमी रहीये इक ठौर,
समल विमल न विचारिये यही सिद्धि नहीं और।'

यह अन्तिम श्लोक में आयेगा। अर्थात् जरा मलिन शब्द लिया है। भाई! मलिन अर्थात् मलिन कहने का व्यवहार है। व्यवहार का अर्थ यह भेद है न? आहाहा! एक स्वरूप भगवान आत्मा अखण्डानन्द वह एकरूप और उसकी श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र है तो निश्चय अभेद वीतरागी पर्याय, परन्तु तीन स्वभावत्वात—तीन स्वभावरूप से देखना, इसका नाम व्यवहार है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दिखता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखने में तीनरूप से देखना, वह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं।

आत्मा को एकरूप देखना, वह निश्चय है। आहाहा!

आत्मा एक समय में अखण्ड अभेदरूप है और पर्याय में दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप भी है। निश्चय सत्। दोनों का एकसाथ ज्ञान करना, वह प्रमाणज्ञान हुआ। अब व्यवहार की बात करते हैं। एक होने पर भी उसके श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र—निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन हुए, त्रिस्वभावत्वात—तीन हुए। इन तीन को देखना, इसे व्यवहार कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो जरा वह व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं न? यह तो कथन... आहाहा! यह तो अभी वह भेद है न तो व्यवहार कहा। व्यवहारमोक्षमार्ग, वह तो मोक्षमार्ग है ही नहीं। आहाहा!

यह तो आत्मा का स्वरूप जो शुद्ध अखण्ड ज्ञायकमूर्ति है, उसका द्रव्य से तो एक स्वरूप है। परन्तु उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसकी रमणतारूप चारित्र जो वीतरागी पर्याय, परन्तु तीन रूप हुए हैं। तीन हुए न? ऐसा कहा न? देखो न! **व्यवहारदृष्टि से देखा जाय तो तीन स्वभावरूपता के कारण...** व्यवहारदृष्टि से देखा जाए, भेददृष्टि से देखा जाए तो वे तीन स्वभावपने के कारण। हैं तो वे तीन सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वीतरागी पर्याय। समझ में आया? परन्तु **तीन स्वभावरूपता के कारण अनेकाकाररूप है,...** अनेकरूप देखने में आता है। एकरूप नहीं रहा तो अनेकरूप देखना, वह व्यवहार हुआ। उसका नाम मेचक हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिला हुआ नहीं, मलिन। मिला हुआ, ऐसा कहते हैं। चित्ररंग का दृष्टान्त दिया है न। बहुत रंग का चित्र हो। ऐसे बहुत रंगवाला देखना, वह भेद। एकरूप देखना, वह अभेद। यह चित्र का दृष्टान्त दिया है, टीका में दिया है। अध्यात्म तरंगिणी। अध्यात्म तरंगिणी। चित्रवत्।

यहाँ तो मेचक का अर्थ... समझ में आया? मेचक—विचित्र स्वभाव। अनेक स्वभाव हुआ न? अनेक। और अमेचक विचित्र स्वभावरहित। पण्डितजी! ऐसे दो अर्थ किये हैं। बस, यह। लिखा है, देखो! चित्रज्ञानवत्वा। मेचक चित्रज्ञानवत्वा। अन्त में दृष्टान्त दिया है। १६ में। '**न वस्त्वन्तरं मेचकचित्रदानबद्धा**' तीन हुए न? तीन। चित्र में

अनेक रंग दिखते हैं न? उसी प्रकार पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है तो वीतरागी पर्याय, परन्तु तीन भेदरूप, तीन प्रकाररूप देखना, उसका नाम व्यवहार कहते हैं। जरा इसमें अभ्यास करे तो समझ में आये ऐसा है। सेठ! ऊपर-ऊपर से हाँ पाड़े तो समझ में आये, ऐसा नहीं है। यह और क्या? एक ओर व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं, और निश्चय मोक्षमार्ग में तीन प्रकार से देखना, इसका नाम व्यवहार है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्यार्थ कहा। आयेगा अभी, अभी आयेगा, अभी अर्थ में आयेगा। भावार्थ में आयेगा, सुनो! यहाँ तो इतने शब्द का अर्थ होता है न! धीरे-धीरे चलते हैं। समझ में आया?

यहाँ आत्मा अखण्ड परमात्मा। आत्मा शब्द से परमात्मा। यह और शब्द लिया है इसमें, हों! आत्मा शब्द से पूरा परमात्मा। यही गाथा है न? कितनी? १६वीं है न? परमात्मा ही लिया है इसमें। देखो! आत्मा है न? पहला संस्कृत टीका में (शब्द है)— आत्मा परमात्मा। '**आत्मा परमात्मा समं युगपत् मेचकः विचित्रस्वभावः**' संस्कृत टीका। परन्तु परमात्मा ही है। परम स्वरूप अखण्डानन्द एकरूप भगवान आत्मा का नाम आत्मा-परमात्मा। उसे एकरूप देखना, वह निश्चयनय का विषय है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन प्रकार से देखना, वह व्यवहारनय का विषय हुआ। व्यवहारमोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया? परन्तु एक आत्मा को दर्शन, ज्ञान, चारित्र निश्चयसम्यक् अनुभव दृष्टि और वीतरागी चारित्र, इन तीन रूप से देखना, उसे व्यवहार कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तीन स्वभावरूपता के कारण अनेकाकाररूप है, क्योंकि वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीन भावों में परिणमन करता है। देखो! समझ में आया? है न? '**दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणत्वतः**'। संस्कृत है मूल श्लोक। तीन प्रकार से परिणमता है न? परिणमता है न? भगवान आत्मा शुद्ध द्रव्य तो एकरूप परमात्मा है। उसकी श्रद्धा-निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय स्वरूपाचरण, ये तीन हुए, तीन। समझ में आया? तीन रूप से परिणमता है न! पर्यायरूप से तीन रूप पर्याय है या

नहीं? ऐसे वस्तुरूप से एक है परन्तु पर्यायरूप से तीन रूप परिणमता है, उसे देखना वह व्यवहार है। क्योंकि अनेकरूप को देखना, वह व्यवहार है। तीनपना देखना, वह व्यवहार है। एकरूप को देखना, वह निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? यह वह कैसा मार्ग? अभी तो कहते हैं कि व्यवहारमोक्षमार्ग तो वस्तु ही नहीं।

यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग जो यथार्थ है, जो आत्मा अखण्ड ज्ञायकस्वरूप परमात्मा स्वरूप का अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प राग के मिश्रपनेरहित आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप शुद्ध में रमणतारूप, लीनतारूप आनन्द की उग्रता—इन तीनरूप से देखना, उसे व्यवहारदृष्टि देखना कहा जाता है। समझ में आया? तीन प्रकार से परिणमन होता है या नहीं? इस अपेक्षा से।

भावार्थ :- शुद्धद्रव्यार्थिकनय से आत्मा एक है;... वह **'एकोऽपि'** लिखा था न, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। बतलाना है तो व्यवहारनय, हों! वस्तु देखो तो शुद्धद्रव्यार्थिकनय से आत्मा एकरूप अखण्ड ज्ञायक चैतन्यज्योति है। वही सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण गर्भित चैतन्यरत्नाकर प्रभु एकरूप है। जब **इस नय को प्रधान करके कहा जाता है, तब पर्यायार्थिकनय गौण हो जाता है,...** तब भेदरूप नय गौण हो जाते हैं। समझ में आया? **इसलिए एक को तीनरूप परिणमित होता हुआ कहना...** अब जो सिद्ध करना है, वह आता है। **एक को तीनरूप परिणमित होता हुआ कहना, सो व्यवहार हुवा,...** एकरूप भगवान तीनरूप परिणमित हुआ—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, (चारित्र) तीन भेदरूप—ऐसा परिणमता हुआ कहना, वह व्यवहार है। वह जानना भी व्यवहार है।

असत्यार्थ भी हुवा। देखो! राजारामजी! यह आया। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन प्रकार का अवलम्बन करनेयोग्य नहीं। क्योंकि उसके अवलम्बन से तो विकल्प ही उत्पन्न होता है। निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय के आश्रय से तो विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! भगवान आत्मा एक चिदानन्द प्रभु, उसका अन्तर आश्रय करने से ही शुद्धि की उत्पत्ति, वृद्धि और टिकना होता है। भारी सूक्ष्म! समझ में आया?

है तो जीवतत्त्व की बात चलती है न? जीवतत्त्व के दो भेद। पर्याय में अनेकरूप

देखना, द्रव्य को एकरूप देखना। तो कहते हैं, एकरूप वस्तु होने पर भी पर्याय में तीनरूप परिणमता कहना, जानना व्यवहार हुआ। वह झूठा हुआ। तीन रूप है, वह झूठा हुआ। एकरूप से तीन कहना, वह झूठा हुआ। **इस प्रकार व्यवहारनय से आत्मा को दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणामों के कारण 'मेचक' कहा है।** लो। व्यवहार कहा है, भेदरूप कहा है, मलिन कहा है, अनेक कहा है। आहाहा! भारी सूक्ष्म अध्यात्म तत्त्व। अन्तर खोजना नहीं, शोधना नहीं कि क्या चीज़ है, (और) ऊपर से धर्म हो जाये, ऐसा करते हैं। ऊपर से धूल में भी धर्म नहीं होगा।

भगवान आत्मा एक समय में परमानन्द की मूर्ति एकरूप, एकरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तीन रूप, इन तीन रूप को देखना, वह व्यवहार। समझ में आया? इस अपेक्षा से तीन रूप को असत्यार्थ कहा। क्योंकि शाश्वत् चीज़ नहीं, एकरूप चीज़ नहीं, इस अपेक्षा से असत्यार्थ (कहा)। अथवा तीन पर्याय का—निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है। शुद्धि उत्पन्न नहीं होती। सेठी! **इस प्रकार व्यवहारनय से आत्मा को...** सिद्ध यह करना है, देखो! **दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणामों के कारण 'मेचक' कहा है।** लो। समझ में आया?

व्यवहार जाना, जाना हुआ तीन भेदरूप से जाना हुआ प्रयोजनवान है, बस। एकरूप को जानकर आश्रय करना, वह प्रयोजनवान है। क्या (कहा)? भगवान आत्मा अखण्डानन्द एकरूप जानकर आश्रय करना, वह प्रयोजनवान है। तीन को तीन रूप जानकर जाना हुआ प्रयोजनवान है। आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? वैद्यराजजी!

मुमुक्षु : आश्रय किसका करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय द्रव्य का। द्रव्य वस्तु अखण्डानन्द अनन्त गुण का पिण्ड अपना परमात्मा है। उसका आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शन, (ज्ञान), चारित्र आदि की उत्पत्ति, वृद्धि और टिकना होता है। आहाहा! समझ में आया? पहले प्रमाण का श्लोक कहा, यह व्यवहार का श्लोक कहा। अब आगे आयेगा परमार्थ का श्लोक। परमार्थ का। प्रमाण नहीं, परमार्थ-निश्चय।

★ ★ ★

कलश - १८

अब, परमार्थनय से कहते हैं :-

(अनुष्टुप्)

परमार्थेन तु व्यक्त-ज्ञातृत्व-ज्योतिषैकक:।
सर्वभावान्तर-ध्वन्सि-स्वभावत्वा-दमेचक: ।।18।।

श्लोकार्थ : [परमार्थेन तु] शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये तो [व्यक्त-ज्ञातृत्व-ज्योतिषा] प्रगट ज्ञायकत्वज्योतिमात्र से [एकक:] आत्मा एकस्वरूप है [सर्व-भावान्तर-ध्वंसि-स्वभावत्वात्] क्योंकि शुद्धद्रव्यार्थिक नय से अन्य द्रव्य के स्वभाव तथा अन्य के निमित्त से होनेवाले विभावों को दूर करनेरूप उसका स्वभाव है; इसलिए वह 'अमेचक' है-शुद्ध एकाकार है।

भावार्थ : भेददृष्टि को गौण करके अभेददृष्टि से देखा जाय तो आत्मा एकाकार ही है, वही अमेचक है।।18।।

कलश - १८ पर प्रवचन

परमार्थेन तु व्यक्त-ज्ञातृत्व-ज्योतिषैकक:।
सर्वभावान्तर-ध्वन्सि-स्वभावत्वा-दमेचक: ॥१८॥

श्लोकार्थ :- शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये... भगवान आत्मा अखण्ड शुद्धनय से, शुद्ध निश्चय से प्रभु अपने को अपने से देखने में आवे तो **प्रगट ज्ञायकत्वज्योतिमात्र से...** वह तो प्रगट ज्ञायकज्योति चैतन्यमूर्ति भगवान चैतन्यसूर्य है। एकरूप चैतन्यसूर्य को देखना, उसका नाम निश्चयनय और परमार्थ दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? **शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये...** परमार्थ से प्रभु... **क्योंकि शुद्धद्रव्यार्थिकनय से सर्व अन्य द्रव्य के स्वभाव...** क्यों? कि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से भगवान आत्मा एक स्वरूप त्रिकाल है, उसकी दृष्टि से देखो तो **सर्व अन्य द्रव्य के स्वभाव तथा अन्य के निमित्त से होनेवाले विभावों को दूर करनेरूप...** अर्थात् उसमें है नहीं। समझ में आया? भाई! क्या कहा? ध्वंसी नहीं। उसमें है नहीं।

'**सर्वभावान्तरध्वन्सिस्वभावत्वाद**' अर्थात् सर्व भाव—अन्यद्रव्य, उसके भाव-स्वभाव। समझ में आया? और उसके निमित्त से होते विभाव दूर करनेरूप अर्थात् उसमें है ही नहीं। समझ में आया? दूर ध्वंसी करने का भाव तो व्यय करने का स्वभाव हुआ। ऐसा है नहीं। यह तो उसमें है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुद्ध निश्चयनय का विषय द्रव्य में अन्यद्रव्य-भाव और अन्यद्रव्य से उत्पन्न होते विकार, उसमें है ही नहीं। समझ में आया? अर्थ तो यह हो जाता है कि राग का नाश करने का स्वभाव है, भाई! वह विरुद्ध हो जाये न? प्रत्याख्यान। समयसार ३४ गाथा। राग का परमार्थ से नाश करने का भी नाममात्र आत्मा में है। परमार्थ से तो राग का नाश कर्ता आत्मा का स्वभाव है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसका स्वभाव है, ऐसा कहा जाता है, परन्तु उसका भाव ऐसा नहीं। उसका भाव ऐसा है कि भगवान ज्ञायक शुद्ध चैतन्य में विभाव, अन्यद्रव्य और भाव है ही नहीं, ऐसा उसका स्वभाव है। है नहीं, ऐसा स्वभाव है। समझ में आया?

पहले '**परिध्वंसस्वभावत्वाद**' ऐसा अर्थ करते थे। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, यह परमार्थ नय का विषय है न? तो परमार्थ नय के विषय का स्वभाव चैतन्यज्योति स्वभाव ही ऐसा है कि परद्रव्य परभाव-विभाव आदि उसमें है ही नहीं। ऐसा उसका स्वभाव है। नाश करने या उत्पन्न करना, उसमें है ही नहीं। उत्पन्न करने का स्वभाव हो तो नाश करने का स्वभाव हो न? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय स्वभाव ही ऐसा है। विभाव, व्यवहार, दया, दान के विकल्प या अन्यद्रव्य के भाव आत्मा में है ही नहीं, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? है न पाठ में? '**सर्वभावान्तर**'। '**सर्वभावान्तर**' अर्थात् अपने स्वभाव के अतिरिक्त अन्य भाव। अपने स्वभाव के अतिरिक्त '**सर्वभावान्तर**'—अन्य। भगवान ज्ञायक स्वभावस्वरूप प्रभु, वह निश्चय। उससे अन्य भाव—जितने परद्रव्य, कर्म, शरीर, वाणी, पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव—वे भाव आत्मा में हैं ही नहीं। ऐसा उसका स्वभाव है।

मुमुक्षु : व्यवहार से तो कहा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ... वैद्यराजजी! जरा सूक्ष्म बात है यहाँ की। ऐ... सेठ!

यहाँ तो द्रव्यस्वभाव में व्यवहार है ही नहीं। द्रव्यस्वभाव में निर्मल दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद भी है नहीं। आहाहा! यह यहाँ मुख्य बतलाना है। पहले तो बताया प्रमाण। एक-अनेक का साथ में होना। पश्चात् व्यवहार बतलाया। मेचक—तीन को देखना, वह व्यवहार। फिर बतलाया द्रव्य एकाकार, उसमें व्यवहार या भेद आदि है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : १६वीं गाथा की पुष्टि करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : १६वीं गाथा की पुष्टि करते हैं। १६वीं की पुष्टि करते हैं कि आत्मा एकरूप का सेवन करना। ऐसा कहा था न? उसकी पुष्टि करते हैं। तीन से तो पर्यायदृष्टि से कथन किया है। **'दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि'।** सेवन तो एक आत्मा (का करना है)। समझ में आया? आहाहा! १६वीं गाथा में ऐसा आया था कि राग का नाश करनेवाला आत्मा है, ऐसा आया था? क्या? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा... पहले कहा था, व्यवहार से देखो तो तीन (रूप) दिखता है। बस, इतना। आश्रय करनेयोग्य है नहीं, असत्य है, वह शरणभूत नहीं। क्योंकि शरणभूत में नयी वस्तु प्रगट होनी चाहिए। शरणभूत भगवान त्रिकाल द्रव्यस्वभाव है, वह सत्यार्थ-भूतार्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। इस प्रकार से लिया है। भिन्न-भिन्न रीति से... दर्शन, ज्ञान, चारित्र निश्चय ....

मुमुक्षु : आत्मा की सेवा....

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा आत्मा की। तब तीन की सेवा, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। सेवा, भगवान आत्मा ज्ञायकमूर्ति। छठवीं गाथा में नहीं आया? अन्यद्रव्य के भाव से भिन्न अपने आत्मा की उपासना किये जाने पर शुद्ध कहा जाता है। भगवान

आत्मा अन्यद्रव्य, अन्यद्रव्य के भाव से भिन्न, अन्यद्रव्य के निमित्त से होते अपने भाव, अन्यद्रव्य, अन्यद्रव्य के भाव से भिन्न। भिन्न करके अपने आत्मा सन्मुख की दृष्टि हुई तो आत्मा की पर्याय में शुद्धता हुई। शुद्धता से आत्मा का सेवन करना। सेवन आत्मा का किया तो उस आत्मा को शुद्ध कहा गया है। समझ में आया? कहो, वैद्यराज! यह व्यवहार-फ्यवहार है नहीं, यह लाभदायक है, ऐसा इसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। (लाभदायक है), यह मान्यता झूठी है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। रागादि, विकल्पादि व्यवहार से लाभ होगा, यह मान्यता द्रव्यस्वभाव से विपरीत है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि एकरूप स्वभाव, उसमें तीन प्रकार के परिणमन का आश्रय करना भी लाभदायक है नहीं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। आहाहा! और व्यवहार लाभदायक है, मन्द कषाय की क्रिया करते-करते लाभ होगा, ऐसा वस्तुस्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जड़ में से उड़ा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में से उड़ा दिया। देखो!

शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये... भगवान आत्मा को एकरूप से देखा जाये, भले विकल्प से। यहाँ तो साधारण कथन है। **तो प्रगट ज्ञायकत्वज्योतिमात्र से आत्मा एकस्वरूप है...** एकस्वरूप भगवान एकरूप है। **क्योंकि शुद्धद्रव्यार्थिकनय से...** शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की दृष्टि से देखो तो **सर्व अन्य द्रव्य के स्वभाव तथा अन्य के निमित्त से होनेवाले विभावों...** यहाँ तो विभाव लिये हैं। उसमें विभाव नहीं लिया। छठवीं गाथा में अन्यद्रव्य और अन्यद्रव्य के भाव (लिये हैं)। यहाँ तो अन्यद्रव्य और अन्यद्रव्य के निमित्त से होते विभाव, (उन्हें) **दूर करनेरूप...** अर्थात् उसमें है ही नहीं। आत्मा में है ही नहीं। शुद्ध निश्चयस्वभाव में यह विभाव है ही नहीं। है नहीं तो नाश करना रहा कहाँ? इसका (आत्मस्वभाव का) आश्रय करने से विभाव उत्पन्न नहीं होते। व्यवहार से कहा कि नाश करना। बाकी स्वभाव में नाश करना, ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! इसके बदले अभी बाह्य द्रव्य को छोड़ना और ग्रहण करना (ऐसी बातें चलती है)। बाह्य द्रव्य छोड़ो, इतना लाभ होगा। मिथ्यात्व होगा, सुन तो सही। क्या

ग्रहे–छोड़े परद्रव्य को? परद्रव्य को क्या ग्रहण किया है, उसे छोड़े? समझ में आया? कठिन बात है, वैद्यराजजी! तुमने ऐसा सुना नहीं। कल शाम को बहुत कहते थे। बात करते थे। वह तो व्यवहार की बात है। अरे! भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यथार्थ नहीं, वह सीधी–सरल लगती है।

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य महा सन्त मुनि दिगम्बर मुनि जंगलवासी। उन्होंने यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक (गाथा) की १६वीं की टीका की और ऊपर चार कलशों की रचना की। समझ में आया? उसमें तीसरे श्लोक में तो ऐसा कहा, भगवान आत्मा '**सर्वभावान्तरध्वन्सि-स्वभावत्वाद**'। भगवान चैतन्य ज्ञायकस्वभाव वही वस्तु है। उसके अतिरिक्त अन्य भाव उसमें है नहीं। समझ में आया? ऐसा चैतन्य भगवान शुद्ध परमात्मास्वरूप अपना, उसकी दृष्टि करना, उसका ज्ञान करना और उसमें लीन होना, वह मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग है नहीं। समझ में आया?

इसलिए वह 'अमेचक' है। इसलिए का अर्थ, उसमें भेद नहीं, इसलिए अमेचक है। समझ में आया? उसमें एक स्वरूप में भेद नहीं, अनेकता नहीं, इसलिए अमेचक है। अर्थात् **शुद्ध एकाकार है।** लो। समझ में आया? अमेचक शब्द है न अन्तिम? '**सर्वभावान्तरध्वन्सिस्वभावत्वादमेचकः**' अमेचक। एकरूप, एकरूप निर्मल एकरूप। एकरूप को ही निर्मल कहते हैं। अनेकरूप को मलिन कहते हैं। एकरूप को निश्चय कहते हैं, अनेकरूप को व्यवहार कहते हैं। समझे? अभेद को निश्चय कहते हैं, भेद को व्यवहार कहते हैं। अपनी पर्याय में भेद पड़े। पर्याय उत्पाद–व्यय है न, वह व्यवहार हो गया। समझ में आया? आत्मा में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वह भी व्यवहार हो गया। पर्याय है न? वह कहाँ निश्चय है? निश्चय तो त्रिकाल वस्तु एकरूप है, वह निश्चय है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्यप्रभु उत्पाद–व्यय की पर्याय से रहित... रामस्वरूपजी! पर से रहित तो ठीक, परन्तु उत्पाछ–व्यय पर्याय के भेद से रहित। उत्पाद–व्यय पर्याय भेदरूप है। निश्चयमोक्षमार्ग उत्पाद–व्ययरूप है। समझ में आया?

इसलिए वह 'अमेचक' है... भगवान आत्मा एकस्वरूप विराजमान भूतार्थस्वरूप के कारण से वह एकाकार है। उसमें निश्चयमोक्षमार्ग के तीन प्रकार ऐसे भेद, अनेकता अभेद में है ही नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- भेददृष्टि को गौण करके अभेददृष्टि से देखा जाये तो आत्मा एकाकार ही है,... लो! पर्याय में दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो सच्चे उत्पन्न हुए हैं, परन्तु वे भेद हैं—पर्याय (है)। तो भेद को गौण करके। लक्ष्य छुड़ाने के लिये गौण करके। पर्याय का अभाव नहीं है। **गौण करके अभेददृष्टि से देखा जाये...** भगवान आत्मा ध्रुव बिम्ब, ध्रुव अनादि-अनन्त एकरूप, एकरूप स्वभाव देखा जाये तो **आत्मा एकाकार ही है,...** वस्तु तो एक आकार है, एक स्वरूप है। वस्तु एक स्वरूप निश्चयनय का विषय है। **वही अमेचक है।** वही अभेद है, वही निर्मल है और वही एक है। समझ में आया? इसमें धर्म क्या? इसमें करना क्या परन्तु इसमें? कुछ दान, पूजा क्रिया करने का कहे तो करने की सूझ पड़े। आहाहा!

भगवान आत्मा एक स्वरूप विराजमान है, उसका आश्रय करना, वह करना। वही करना। वही करनेयोग्य है और वही जीव का कर्तव्य है। वह है। समझ में आया? व्यवहार विकल्प तो करनेयोग्य है ही नहीं, परन्तु निश्चय जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए निश्चयस्वभाव के आश्रय से, उसका भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। क्योंकि वे तीन बोल हैं, परिणमन में तीन बोल हो गये, व्यवहार हो गया, भेद हो गया, मेचक हो गया, अनेक प्रकार हो गया। अनेकाकार के लक्ष्य में एकाकार में से उत्पन्न होनेवाली पर्याय कैसे उत्पन्न होगी? समझ में आया? 'हरि का मार्ग है शूरों का कायर का नहीं काम।' हरि अर्थात् भगवान आत्मा, हों! भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द प्रभु अभेद सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने देखा है, ऐसे आत्मा को अन्दर में पकड़कर एकाकार होना, उसका नाम ही मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई उपाय नहीं। समझ में आया? तीन श्लोक हुए।

★ ★ ★

कलश - १९

आत्मा को प्रमाण–नय से मेचक, अमेचक कहा है, उस चिन्ता को मिटाकर जैसे साध्य की सिद्धि हो, वैसा करना चाहिए – यह आगे के श्लोक में कहते हैं:–

(अनुष्टुप्)

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयो: ।
दर्शन–ज्ञान–चारित्रै: साध्य–सिद्धिर्न चान्यथा ।।19।।

श्लोकार्थ : [आत्मन:] यह आत्मा [मेचक–अमेकत्वयो:] मेचक है–भेदरूप अनेकाकार है तथा अमेचक है–अभेदरूप एकाकार है [चिन्तया एव अलं] ऐसी चिन्ता से बस हो। [साध्यसिद्धि:] साध्य आत्मा की सिद्धि तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र – इन तीन भावों से ही होती है, [न च अन्यथा] अन्य प्रकार से नहीं, (यह नियम है)।

भावार्थ : आत्मा के शुद्धस्वभाव की साक्षात् प्राप्ति अथवा सर्वथा मोक्ष साध्य है। आत्मा मेचक है या अमेचक, ऐसे विचार ही मात्र करते रहने से साध्य सिद्ध नहीं होता; परन्तु दर्शन अर्थात् शुद्धस्वभाव का अवलोकन, ज्ञान अर्थात् शुद्धस्वभाव का प्रत्यक्ष जानना, और चारित्र अर्थात् शुद्धस्वभाव में स्थिरता से ही साध्य की सिद्धि होती है। यही मोक्षमार्ग है, अन्य नहीं।

व्यवहारीजन पर्याय में–भेद में समझते हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद से समझाया है।।19।।

कलश - १९ पर प्रवचन

आत्मा को प्रमाण–नय से मेचक, अमेचक कहा है,... पहले में आ गया न? मेचक अर्थात् व्यवहार, अमेचक निश्चय। अभेद और भेद। **उस चिन्ता को मिटाकर जैसे साध्य की सिद्धि हो, वैसा करना चाहिए, यह आगे के श्लोक में कहते हैं :-** जानने में भले दो प्रकार हैं। वस्तु में एकाकार होना, वही मोक्ष का मार्ग है।

आत्मनश्चिन्तयैवालं मेचकामेचकत्वयो: ।
दर्शन–ज्ञान–चारित्रै: साध्य–सिद्धिर्न चान्यथा: ॥१९॥

लो, यहाँ तो मोक्षमार्ग एक कहा। समझ में आया?

श्लोकार्थ :- यह आत्मा मेचक है-भेदरूप अनेकाकार है... देखो! अर्थ बहुत किया है। भगवान आत्मा पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मेचक भेद, अनेकाकार व्यवहार दिखाता है। **भेदरूप अनेकाकार है तथा अमेचक है-अभेदरूप एकाकार है, ऐसी चिन्ता से बस हो।** समझ में आया? इसका काव्य बनाया है। कहा न? बनारसीदास (ने)। 'एक देखिये...' हमारे वीरजीभाई बहुत बोलते थे, भाई! वीरजीभाई बहुत बोलते थे। इस श्लोक का अर्थ हिन्दी है। समझ में आया?

एक देखिये जानिये, रमी रहिये ईक ठौर,
समल विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और

इस श्लोक का अर्थ है। समझे न? देखो! यह है। शुद्धनिश्चयनय से जीव का स्वरूप। शीर्षक बाँधा है। **एक देखिये जानिये...** भगवान आत्मा अभेद शुद्ध, अभेद अमेचक, अभेद एकाकार। **एक देखिये...** देखिये (अर्थात्) उसकी श्रद्धा करना-देखना। '**एक देखिये जानिये, रमी रहिये ईक ठौर।**' शुद्धस्वरूप अखण्ड एकरूप में रमना। '**समल विमल न विचारिये,**' भेद-अभेद के विकल्प नहीं कीजिये। '**यही सिद्धि नहीं और**' दूसरा कोई मुक्ति का उपाय है नहीं। देखो! आत्मा को एकरूप श्रद्धा करना, एकरूप ही जानना चाहिए और एक में ही विश्राम लेना चाहिए। विश्राम-स्थिरता। निर्मल और समल का विकल्प नहीं करना चाहिए, इसमें ही सर्वसिद्धि है, दूसरा उपाय नहीं। कहो, समझ में आया? चौथे श्लोक का १९वाँ पद।

यह आत्मा मेचक है-भेदरूप... सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय से अनेकरूप भेदरूप है। **तथा अमेचक है...** वस्तुरूप से अभेद एकाकार अभेद है। **ऐसी चिन्ता से बस हो।** ऐसी विचारणा के विकल्प से क्या लाभ है? आहाहा! देखो! यह व्यवहार सम्यग्दर्शन, निश्चयचारित्र तीन रूप और यह एकरूप, ऐसे विकल्प से क्या लाभ है? यह विकल्प से लाभ नहीं। आहाहा! **साध्य आत्मा की सिद्धि...** साध्य अर्थात् मोक्षदशा, ऐसे आत्मा की **सिद्धि तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीन भावों से ही होती है,...** लो। अन्तर स्वरूप शुद्ध भगवान आत्मा, उसके अन्तर्मुख की निश्चय सम्यक् श्रद्धा,

निश्चय स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप में लीनतारूप चारित्र। बस, एक ही मोक्ष-साध्य का उपाय है। साध्य-मोक्ष का यह एक ही उपाय है। लो, दो मोक्षमार्ग नहीं कहे, मोक्ष के दो उपाय नहीं। अभी बड़ा झगड़ा चलता है न? मोक्षमार्ग दो हैं, मोक्षमार्ग दो हैं। टोडरमलजी कहते हैं, दो है ऐसा माननेवाले भ्रम में पड़े हैं। वे कहते हैं, दो न माने वे भ्रम में पड़े हैं। ऐसा कहते हैं। क्या करे? बेचारे समाज को खबर नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है कहाँ परन्तु? व्यवहार है ही नहीं न! व्यवहार कहाँ से आया? व्यवहार कहाँ है? राग को व्यवहार कहते हैं, वह तो व्यवहार ही नहीं यहाँ तो। यहाँ तो अपने शुद्ध एकाकार भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वही मोक्ष का साधन है। इसके अतिरिक्त दूसरा साधन नहीं। पर्याय में दूसरा साधन नहीं। पर्याय को जानना, वह व्यवहार है; द्रव्य को जानना, वह निश्चय है। यह व्यवहार। परन्तु अभी निश्चय का भान नहीं। द्रव्य शुद्ध क्या है? राग की क्रिया दया, दान, व्रत करते-करते हो जायेगा, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। निश्चय है नहीं और व्यवहार भी एक भी नहीं। समझ में आया? कठिन-कठिन बात जगत को, बेचारे को मार डाला है। गला पकड़-पकड़कर। ज्ञानार्णव में कहते हैं, हों! ज्ञानार्णव में शुभचन्द्राचार्य (कहते हैं)। कुगुरु (कहते हैं) अकेले हम नरक में नहीं जायेंगे। निगोद में अकेले नहीं जायेंगे। गला पकड़कर उल्टे रास्ते डालकर साथ में ले जायेंगे। ऐसा लिखा है, हों! ज्ञानार्णव, शुभचन्द्राचार्य। कुगुरु कहते हैं, अकेले नरक, निगोद में नहीं जायेंगे। तुमको साथ लेकर जायेंगे, गला पकड़कर के कि चलो। ऐसा ज्ञानार्णव में लिखा है। वे तो मुनि दिगम्बर नागा बादशाह हैं। उन्हें कहाँ दुनिया की पड़ी है कि दुनिया ऐसा माने। तेरे घर में रहा तू मान या न मान। हम तो कहते हैं, कुगुरु और कुशास्त्र.... कुगुरु जगत को भ्रमित करते हैं कि व्यवहार से और दया से और विकल्प से धर्म होता है, ऐसा अज्ञानी को भ्रमित करके गला पकड़कर निगोद में ले जाते हैं। चलो, हम भी तत्त्व के विराधक होकर निगोद में जाते हैं, तुम भी तत्त्व की विराधना करके साथ में चलो। समझ में आया? ऐसा आता है।

कबीर में ऐसा आता है, हों! बहुत वर्ष पहले पढ़ा हुआ है। भूल गये। दुकान पर आता था कबीर के पद का। यह जैन समाचार आता था न? उसमें आया था। भेंटरूप से आया था। समझे न? साथ ले जजमान, ऐसा कुछ शब्द है। साथ लिया जजमान—जजमान को साथ में लिया। ऐसा कबीर ने डाला है, हों! जजमान समझते हो? उसका पोषण करनेवाला। माननेवाले जजमान को साथ में लेता है, अकेला नहीं जाता। बहुत वर्ष पहले की बात है। भूल गये। दुकान के ऊपर हम (पत्रिका) मँगवाते थे न, वाडीलाल मोतीलाल। (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष की बात है। उसमें कबीर के पद की पुस्तक भेंट आयी थी। उसका पत्र मँगाते थे, उसमें आयी थी। साथ ले जजमान। समझे न?

यहाँ भी ऐसा कहा ज्ञानार्णव में। शुभचन्द्राचार्य ने। आहाहा! भाई! वस्तु का—तत्त्व का विराधकपना, श्रद्धा-ज्ञान का विराधकपना, उसका फल निगोद है। समझ में आया? और तत्त्व के आराधकपने का नाम ही मोक्ष है। बीच में शुभाशुभभाव आते हैं, वह चार गति का कारण है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा अपनी पर्याय में अनेकरूप परिणमन करता है, ऐसा ज्ञान हो और त्रिकाल एकरूप है, ऐसा ज्ञान हो, परन्तु ऐसे विकल्प से बस होओ। उससे आत्मा की सिद्धि नहीं होती। **साध्य आत्मा की सिद्धि...** मोक्षरूपी साध्य, ऐसे आत्मा की सिद्धि तो **दर्शन, ज्ञान और चारित्र...** पाठ में दर्शन, ज्ञान आया न? तो ले लिया। **'दंसणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं' दर्शन, ज्ञान और चारित्र - इन तीन भावों से ही होती है,...** भगवान आत्मा... समझ में आया? यह स्पष्टीकरण करेंगे, हों! भावार्थ में तीन का स्पष्टीकरण करेंगे। **अन्य प्रकार से नहीं।** सम्यग्दर्शन, निश्चयचारित्र, सम्यक्निश्चय, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से साध्य की सिद्धि होती है। व्यवहार-फ्यवहार से, निमित्त से नहीं होती।

भावार्थ :- आत्मा के शुद्धस्वभाव की साक्षात् प्राप्ति अथवा सर्वथा मोक्ष साध्य है। देखो! **आत्मा के शुद्धस्वभाव की साक्षात्...** पर्याय में निर्मल प्राप्ति। अर्थात् सर्वथा मोक्ष साध्य है। **आत्मा मेचक है या अमेचक, ऐसे विचार ही मात्र करते रहने से साध्य**

सिद्ध नहीं होता;... देखो! विचार करने से भी, विकल्प करने से भी साध्य की सिद्धि नहीं होती। यह (विचार), हों! मेचक-अमेचक के विचार। वह तो शुभविकल्प है। दूसरे व्यवहार श्रद्धान की बात यहाँ रही नहीं। यह तो अमेचक अभेद है, ऐसा विकल्प करना, उससे साध्य की सिद्धि नहीं होती। मुक्ति की सिद्धि का उपाय उसमें नहीं होता।

परन्तु दर्शन अर्थात् शुद्धस्वभाव का अवलोकन,... लो। शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा। अन्तर अवलोकन। शुद्ध त्रिकाल परमात्मा अपना, उसका श्रद्धान। **ज्ञान अर्थात् शुद्धस्वभाव का प्रत्यक्ष जानना,...** भगवान शुद्धस्वभाव का प्रत्यक्ष वेदन जानना, प्रत्यक्ष भावश्रुतज्ञान करना, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! शुद्धस्वभाव का अवलोकन—श्रद्धा और शुद्धस्वरूप का प्रत्यक्ष जानना। प्रत्यक्ष जानना। परोक्ष शास्त्रज्ञान आदि नहीं। **और चारित्र अर्थात् शुद्धस्वभाव में स्थिरता से ही साध्य की सिद्धि होती है।** शुद्धस्वभाव भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति में स्थिरता करने से, श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता करने से, शुद्ध में स्थिरता से ही साध्य अर्थात् मोक्ष की सिद्धि अर्थात् उपाय होता है।

यही मोक्षमार्ग है,... लो। यह एक ही मोक्षमार्ग है। एक ही मोक्षमार्ग है, अन्य नहीं। पाठ में है या नहीं? **'साध्यसिद्धिर्न चान्यथा'**। है न? समझ में आया? **अन्य मोक्षमार्ग नहीं।** भगवान शुद्ध आनन्दकन्द एकरूप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। निर्विकल्प स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र निर्विकल्प, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। दूसरा कोई मुक्ति का मार्ग है नहीं। जैनशासन में परमेश्वर के वीतराग मार्ग में दूसरा मार्ग नहीं। समझ में आया? तब तीन भेद क्यों कहे? कि **व्यवहारीजन पर्याय में-भेद में समझते हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद से समझाया है।** सेवन करना, ऐसा समझाया है। इसलिए सेवन तो आत्मा का करना है। आत्मा का सेवन करने से ही दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है। लो, यह श्लोक पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १७-१८

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण।।17।।
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण।।18।।

यथा नाम कोऽपि पुरुषो राजानं ज्ञात्वा श्रद्दधाति।
ततस्त-मनुचरति पुन-रर्थार्थिक: प्रयत्नेन।।17।।
एवं हि जीव-राजो ज्ञातव्यस्तथैव श्रद्धातव्य:।
अनुचरितव्यश्च पुन: स चैव तु मोक्ष-कामेन।।18।।

यथा हि कश्चित्पुरुषोऽर्थार्थी प्रयत्नेन प्रथममेव राजानं जानीते ततस्तमेव श्रद्धत्ते ततस्तमेवानुचरति। तथात्मना मोक्षार्थिना प्रथममेवात्मा ज्ञातव्य: तत: स एव श्रद्धातव्य: तत: स एवानुचरितव्यश्च साध्यसिद्धेस्तथान्यथोपपत्त्यनुपपत्तिभ्याम्।

तत्र यदात्मनोऽनुभूयमानानेकभावसंकरेऽपि परमविवेककौशलेनायमहमनुभूति-रित्यात्मज्ञानेन सङ्गच्छमानमेव तथेतिप्रत्ययलक्षणं श्रद्धानमुत्प्लवते तदा समस्तभावान्तरविवेकेन नि:शंकमवस्थातुं शक्यत्वादात्मानुचरणमुत्प्लवमानमात्मानं साधयतीति साध्यसिद्धेस्तथोपत्ति:।

यदा त्वाबालगोपालमेव सकलकालमेव स्वयमेवानुभूयमानेऽपि भगवत्यनुभूत्यात्मन्या-त्मन्यनादिबन्धवशात् परै: सममेकत्वाध्यवसायेन विमूढस्यायमहमनुभूतिरित्यात्मज्ञानं नोत्प्लवते तदभावादज्ञातखरशृङ्गश्रद्धानसमानत्वाच्छ्रद्धानमपि नोत्प्लवते तदा समस्तभावान्तरविवेकेन नि:शंक मवस्थातुमशक्यत्वादात्मानुचरणमनुत्प्लवमानं नात्मानं साधयतीति साध्यसिद्धे-रन्यथानुपपत्ति: ।।17-18।।

अब, इसी प्रयोजन को दो गाथाओं में दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं:-

ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे।
फिर यत्न से धन अर्थ वो, अनुचरण राजा का करै।।17।।

जीवराज को यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीति से।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्न से।।18।।

गाथार्थ : [यथा नाम] जैसे [क: अपि] कोई [अर्थार्थिक: पुरुष:] धन का अर्थी पुरुष [राजानं] राजा को [ज्ञात्वा] जानकर [श्रद्दधाति] श्रद्धा करता है, [तत: पुन:] और फिर [तं प्रयत्नेन अनुचरति] उसका प्रयत्नपूर्वक अनुचरण करता है अर्थात् उसकी सुन्दर रीति से सेवा करता है, [एवं हि] इसी प्रकार [मोक्षकामेन] मोक्ष के इच्छुक को [जीवराज:] जीवरूपी राजा को [ज्ञातव्य:] जानना चाहिए, [पुन: च] और फिर [तथा एव] इसी प्रकार [श्रद्धातव्य:] उसका श्रद्धान करना चाहिए [तु च] और तत्पश्चात् [स एव अनुचरितव्य:] उसी का अनुचरण करना चाहिए अर्थात् अनुभव के द्वारा तन्मय हो जाना चाहिए।

टीका : निश्चय से जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से पहले तो राजा को जाने कि यह राजा है, फिर उसी का श्रद्धान करे कि 'यह अवश्य राजा ही है, इसकी सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी' और फिर उसी का अनुचरण करे, सेवा करे, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे; इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए, और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिए कि 'यही आत्मा है, इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा' और फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए – अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए; क्योंकि साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है, अन्यथा अनुपपत्ति है (अर्थात् इसी प्रकार से साध्य की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार से नहीं)।

(इसी बात को विशेष समझाते हैं:–) जब आत्मा को, अनुभव में आनेपर अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ मिश्रितता होने पर भी सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता में 'जो यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ, इस आत्मा को जैसा जाना है, वैसा ही है इस प्रकार की प्रतीति जिसका लक्षण है ऐसा, श्रद्धान उदित होता है, तब समस्त अन्यभावों का भेद होने से नि:शंक स्थिर होने से आत्मा का आचरण उदय होता हुआ आत्मा को साधता है। ऐसे साध्य आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है।

परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी, अनादि बन्ध के वश पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ़-अज्ञानी जन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ' - ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता और उसके अभाव से, अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है इसलिए, श्रद्धान भी उदित नहीं होता, तब समस्त अन्यभावों के भेद से आत्मा में नि:शंक स्थिर होने की असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदित न होने से आत्मा को नहीं साध सकता। इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है।

भावार्थ : साध्य आत्मा की सिद्धि दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही है, अन्य प्रकार से नहीं। क्योंकि - पहले तो आत्मा को जाने कि यह जो जाननेवाला अनुभव में आत्मा है, सो मैं हूँ। इसके बाद उसकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है; क्योंकि जाने बिना किसका श्रद्धान करेगा? तत्पश्चात् समस्त अन्यभावों से भेद करके अपने में स्थिर हो। - इस प्रकार सिद्धि होती है। किन्तु यदि जाने ही नहीं, तो श्रद्धान भी नहीं हो सकता; और ऐसी स्थिति में स्थिरता कहाँ करेगा? इसलिए यह निश्चय है कि अन्य प्रकार से सिद्धि नहीं होती।

आसोज शुक्ल २, शनिवार, दिनांक - १५-१०-१९६६

गाथा -१७-१८, प्रवचन - ७६

यह गुजराती है न? गुजराती चलना है आज से? गुजराती चलेगा आज। गुजराती... सामने। गुजराती आया। भले पड़ा अब यह गुजराती चालू रखो। हिन्दी बहुत समय से चलता है।

१७ और १८वीं गाथा। जीव-अजीव अधिकार।

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरिद पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥१७॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥१८॥

ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे।
फिर यत्न से धन अर्थ वो, अनुचरण राजा का करै॥१७॥
जीवराज को यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीति से।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्न से॥१८॥

इसकी **टीका : निश्चय से...** वास्तव में **जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष...** धन का अर्थी पुरुष। अपने शरीर की आजीविका का अर्थी। समझ में आया? अपने जीवन का अर्थी। जीना है, ऐसा जिसे प्रयोजन है, ऐसा वह धन का अर्थी आत्मा। जिसे आत्मा के जीवन की (दरकार है), संसार के जीवन की दरकार नहीं, वह तो कुछ लक्ष्मी की सेवा नहीं करता। लक्ष्मीसम्पन्न राजा की सेवा नहीं करता। **धन का अर्थी पुरुष बहुत उद्यम से...** प्रयत्न शब्द पड़ा है न? '**प्र**' अर्थात् विशेष उद्यम से। बहुत **उद्यम से पहले तो राजा को जाने कि यह राजा है,...** देखो! पहले में पहला लक्ष्मी का अर्थी इस जीवन का अर्थ, आजीविका का अर्थी, यह तो दृष्टान्त है, हों! राजा को जाने कि यह राजा है। उसके छत्र, चँवर आदि चिह्न से, दूसरे से भिन्न पड़ते लक्षण से 'यह राजा है, ऐसा जाने'।

फिर उसी का श्रद्धान करे... उसका ही श्रद्धान करे। जाना कि यह ही राजा है। वह ही **श्रद्धान करे कि 'यह अवश्य राजा ही है,...** इसके लक्षण राजा के छत्र, चँवर आदि को देखकर निर्णय करे कि यह ही राजा है। **इसका सेवन करने से...** अथवा इस राजा की सेवा करने से। अवश्य **धन की प्राप्ति होगी'...** मेरी आजीविका यहाँ से मिलेगी। वह तो पुण्य से मिलती है। यहाँ तो दृष्टान्त देना है, हों! इसका सेवन करने से अवश्य मुझे लक्ष्मी की प्राप्ति होगी।

और फिर... देखो! पहले राजा को जाने, पश्चात् श्रद्धा करे। **फिर उसी का अनुचरण करे,...** उस राजा का ही आचरण करे, सेवा करे। उसका अनुचरण करे। पाठ में तो इतना है न? **'समये अनुचरति'** इसका फिर विशेष किया है। **उसकी सेवा करे, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे;...** समझ में आया? यह दृष्टान्त हुआ। अब इसका सिद्धान्त।

इसी प्रकार मोक्षार्थी... जैसा वह धन का अर्थी है, आजीविका का अर्थी है,

जीवन के निर्वाहा का अर्थी है; उसी प्रकार यह मोक्ष का अर्थी है। पहला यह उत्तरदायित्व है कि उसे मोक्ष अर्थात् शुद्ध पूर्ण परमात्म आनन्ददशा की प्राप्ति की भावना है। समझ में आया?

मोक्षार्थी। मोक्ष। 'दूजा नहीं मन रोग।' आता है न? आत्मसिद्धि में। 'काम एक आत्मार्थ का दूजा नहीं मन रोग।' मन में दूसरा कोई रोग (नहीं) इज्जत का, कीर्ति का, दुनिया का या कुछ पुण्यफल होगा, उससे स्वर्ग मिलेगा, लक्ष्मी मिलेगी, पुत्र होगा, इज्जत मिलेगी। जिसे कोई इच्छा नहीं है। एक मोक्ष आत्मा की पूर्णानन्द की प्राप्ति। स्वरूप की उपलब्धि की शुद्धि की पूर्ण प्राप्ति, उसकी जिसे अभिलाषा है। **मोक्षार्थी...** उसे मोक्षार्थी कहते हैं। पुण्यार्थी नहीं। पुण्यार्थी नहीं, गति अर्थी नहीं, स्वर्ग अर्थी नहीं, राग अर्थी नहीं कि राजा होऊँ। समझ में आया?

मोक्षार्थी पुरुष को... लो आया, देखो! '**प्रथम एव आत्मा ज्ञातव्य**' लोग कहते हैं न, पहले क्या करना? पहले क्या करना? जिसे आत्मा का हित करना है - आनन्द की प्राप्ति करना है, स्वतन्त्र शान्ति और सुख, ऐसी जो मोक्षदशा, उसकी जिसे प्राप्ति करना है, उसे पहले क्या करना? **पहले तो आत्मा को जानना...** लो, पहले में पहले उसे आत्मा का अनुभव स्वसंवेदन से करना। आहाहा! कहो, सेठी! जानना अर्थात् यह शास्त्रभाषा (से जानना), ऐसा नहीं है।

प्रथम में प्रथम आत्मा के पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के अभिलाषी को पहले में पहले आत्मा जानना। भीखाभाई! पहले क्या करना? सुनना? सुनने का तो कुछ आया नहीं इसमें! पहले में पहले मोक्षार्थी को (आत्मा को जानना)। क्योंकि उसने सुना है, गुरु के पास या सर्वज्ञ के पास तो यह सुना है कि उसे परमानन्द की प्राप्ति करना, ऐसा सुना है। इसलिए सीधे परमानन्द की प्राप्ति का अभिलाषी है। समझ में आया? उसे दूसरा कोई काम नहीं है। मुझे पुण्य होवे तो स्वर्ग मिले, कुछ सुविधा मिले, यह मिले, वह अभी मोक्षार्थी नहीं है। पुण्य का कामी नहीं। वैद्यराज! यह दया, दान, व्रत के पुण्य करेंगे तो पुण्य से फिर यह मिले, उसका कामी नहीं। पहला-पहला... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले-फिले नहीं। इसे मिलता ही नहीं। दोपहर में आता है या नहीं? इसे क्या मिलता है? इसमें इसे मिलती है शान्ति। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसकी पर्याय में प्राप्ति (होना)। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है, उसकी पर्याय में प्राप्ति (होना), उसका नाम मोक्ष है। ऐसे मोक्ष का अर्थी। उसे पहले तो आत्मा को अनुभव करना चाहिए। स्वसंवेदन अन्तर ज्ञानस्वरूप से जानकर और ज्ञान में उसे वेदन में लेना। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, ज्ञानचन्दजी! पहले में पहला आत्मा को अनुभव करना। ऐसा पहले लिया है। स्वसंवेदन ज्ञान से-अन्तर के ज्ञान के वेदन से आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप है, उसे अन्तर के ज्ञान द्वारा पकड़कर पहले ही अनुभव में उसे वेदना, जानना चाहिए। आहाहा! यह उसकी शुरुआत है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका आचरण? किसका? किसमें स्थिर होना है, उसकी तो खबर नहीं। आचरण अर्थात् अनुसरकर स्थिर होना। वह क्या, कौन सी चीज़ है, यह तो खबर नहीं। अनुसरण किसका करे? अनुचरण – उसे अनुसरकर चरना। परन्तु वस्तु कौन है, उसकी तो खबर नहीं। किसे अनुसरकर चरे? राग को, पुण्य को, विकल्प को, देह की क्रिया को-किसे अनुसरे? वस्तु की तो खबर नहीं। आहाहा! ज्ञानमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त गुण का एक ऐसा आत्मा, उसको सब शुभाशुभ विकल्प छोड़कर... यहाँ छोड़कर भी बात नहीं ली है, क्योंकि छोड़कर, यह नास्ति से बात है। समझ में आया?

पहले में पहले **मोक्षार्थी पुरुष को...** पुरुष शब्द से (आशय है) आत्मा। उसे पहले तो आत्मा को वेदन करना चाहिए। ज्ञान द्वारा जानना कि यह आत्मा (हूँ)। राग द्वारा, विकल्प द्वारा, मन द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? समझ में आया कुछ? यहाँ से सीधे बहुत उत्तरदायित्व उठाया है। ऐसा कहते हैं, तू कौन है? कैसा है? कैसा है, उसका पूर्ण स्वरूप? जिसकी प्राप्ति करना है, ऐसा यह स्वरूप पूर्ण द्रव्य है कौन? समझ में आया? ऐसे आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पूर्ण शुद्ध आनन्द को अन्तर्मुख होकर, ज्ञान में उसे ज्ञेय बनाकर, उस आत्मा को अन्तर में जानना, अनुभव

करना, वेदन करना, यह पहले में पहला उसका कर्तव्य है। आहाहा! गजब बात! कहो, वैद्यराजजी! इससे पहले वे चार रत्न और... ऐसी बात यहाँ तो नहीं आयी। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं) **'एवं हि जीवराया'** राजा का ही (दृष्टान्त) दिया था न? **'एवं हि जीवराया'** राजते-विराजते-शोभते इति राजा। भगवान आत्मा अपने आनन्द को शुद्धस्वरूप से राजते, विराजते, शोभते ऐसा आत्मा। समझ में आया? पहले आत्मा जानना, ऐसा कहा। जानने की व्याख्या अनुभव करना, हों! यह जानना अर्थात् ऐसा (ऊपर-ऊपर से) नहीं। वहाँ पाठ तो ऐसा है कि **'णादव्वो'** **'जीवराया णादव्वो'** परन्तु **'णादव्वो'** अर्थात् क्या? **'णादव्वो'** ज्ञातव्यः। आहाहा! पहले ही मोक्ष के अर्थी को यह (करना)।

जिसे अशुद्धता से पूर्ण छूटकर पूर्ण शुद्धता की दशा की प्राप्ति (करनी है) उसका नाम मुक्ति। पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति, परम आनन्द की प्राप्ति, परम स्वतन्त्रता की प्राप्ति— ऐसी जो परम मुक्तदशा, उसके कामी को आत्मा कौन है, इसे पहले अनुभव होना चाहिए। आत्मा की मुक्ति होती है न? आत्मा की शुद्धि पूर्ण होती है न? आत्मा की शुद्धि की पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति। आत्मा की पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति, उसका नाम मुक्ति है। आहाहा!

पहले आत्मा कैसा है, ऐसा इसे (निर्णय करना)। एक समय में अनन्त-अनन्त गुणराशि चैतन्य रत्नाकर है। समझ में आया? जिसकी पहली श्रद्धा में ही ऐसा ले कि पहले तो आत्मा अनुभवना यह बात है। जिसकी श्रद्धा में पहले ऐसा है कि दूसरा यह करना और यह करना और यह करना, उसे वास्तविक आत्मा की ओर की लगन ही नहीं है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? उसे पहले ऐसा होता है और पहले ऐसा होता है और पहले ऐसा होता है... बहुत राग की मन्दता करे और कषाय घटावे और बाह्य द्रव्य घटाता जाए, उसे आत्मा की श्रद्धा (नहीं है), आत्मा कौन है, यह जानने की दरकार नहीं, उसकी श्रद्धा में यह पहले आना चाहिए, उसके बदले श्रद्धा में यह पहले आता है, उसे आत्मा के अनुभव की ओर की झुकाव की श्रद्धा भी सच्ची नहीं है। क्या कहा?

मोक्षार्थी पुरुष को... (अर्थात्) पूर्ण शुद्ध आनन्द की प्राप्ति के प्रयोजनवन्त आत्मा को पहले में पहले **आत्मा को जानना चाहिए,...** ऐसा जिसे प्रथम श्रद्धा में ही जिसे नहीं है। समझ में आया? पहले आत्मा, पहले आत्मा जानना, पहले आत्मा जानना, पहले अनुभव करना, पहले वेदन करना – ऐसा जिसे बाह्यश्रद्धा में ऐसा नहीं है, वह तो बाह्य में यह पहले करना और यह पहले करूँ... यह पहले करूँ, पश्चात् करते-करते होगा। उसे तो आत्मा को जानने की ओर के प्रयत्न की श्रद्धा का अनादर है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : .....बहुत समय से हिन्दी चलता है, भाई! हिन्दी सदा ही पड़े ही होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : क्रिया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कही न यह क्रिया। **'णादव्वो'** ज्ञातव्यः। यह क्रिया आत्मा की। न्यालभाई! आहाहा! शब्द क्या है? देखो टीका में **'प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः'** संस्कृत है, देखो! दूसरी लाईन है। **'तथात्मना मोक्षार्थिना'** आत्मा के अपने स्वरूप के। समझ में आया? आत्मा के अर्थात् क्या यहाँ? ऐई! लो, यह दूसरी लाईन, आत्मा के अर्थात् क्या? आत्मनः की व्याख्या क्या? यह लिखा है कि आत्मनः अर्थात् क्या? इसमें लिखा है। आत्मना शब्द पड़ा है इसमें। इसे अभी संस्कृत में विवाद उठता है। **'आत्मनः'** देखो! **'आत्मनः'** लिखा है। देखो! **इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो...** है न? उसमें आत्मनः शब्द पड़ा है। कि भाई! आत्मनः अर्थात् क्या? **'तथात्मना'** ऐसा है न? अपने को।

मुमुक्षु : आत्मा का मोक्ष है वैसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा को मोक्ष है ऐसा।

मुमुक्षु : आत्मा के मोक्षार्थी आत्मा के।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुष ने कहा, तब तो फिर मोक्षार्थी आत्मा को, ऐसा हुआ।

पण्डितजी! आत्मनः है न? '**तथात्मना मोक्षार्थिना प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः**' मोक्षार्थी आत्मा को चाहिए वहाँ। पुरुष कहो मोक्षार्थी आत्मा को, मोक्षार्थी आत्मा को अर्थात् पुरुष को।

अपने आत्मनः शब्द पड़ा है न? उस आत्म का अर्थ ऐसा कि मोक्षार्थी आत्मनः अर्थात् पुरुष, अथवा मोक्षार्थी आत्मा को। मोक्षार्थी आत्मा को। मोक्षार्थी पुरुष को, मोक्षार्थी जीव को। पहला आत्मनः शब्द है न? '**तथात्मना मोक्षार्थिना**' लो देखो! यहाँ विशिष्टता क्या, समझ में आयी? पहले में पहले मोक्षार्थी आत्मा को, ऐसा शब्द पड़ा है। फिर मोक्षार्थी पुरुष को, ऐसा इसमें डाला है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पहले मन्द कषाय करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मन्द-बन्द कषाय आत्मा में है ही नहीं न! यहाँ तो निरपेक्ष भगवान आत्मा। ऐसी बात है। यह तो महासिद्धान्त... यह तो महासिद्धान्त है।

'**प्रथममेवात्मा ज्ञातव्यः**' ऐसा है न? पहले में पहला भगवान आत्मा... इसकी श्रद्धा में तो यह होना चाहिए कि 'आत्मा ही पहला पहला अनुभवना' यहाँ इसे इसकी शुरुआत होती है। ऐसी श्रद्धा बिना इसका झुकाव आत्मा की ओर नहीं जाएगा। आहाहा! समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर और सन्तों की यह आज्ञा है। प्रथम आज्ञा यह है। क्योंकि शुरुआत भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप की मूर्ति, आनन्द-नित्यानन्दनाथ, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द नित्य पड़ा है, उसका जो अर्थी, उसका अर्थी आत्मा, उसका - पूर्ण का अर्थी। समझ में आया? आहाहा! जिसकी श्रद्धा में यहाँ से शुरुआत हो, ऐसा नहीं परन्तु शुरुआत अन्यत्र से हो, ऐसी (बात) है, वह बात तत्त्व से विरुद्ध है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को... मोक्षार्थी पुरुष उसे कहते हैं, मोक्षार्थी आत्मा उसे कहते हैं कि **पहले तो आत्मा को...** जानने का प्रयत्न करे। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों की, सन्तों की—दिगम्बर सन्तों की पद्धति गजब बात है! समझ में आया? सवेरे यह बात याद आयी। भाई! यहाँ अपने (संवत्) २००० साल के वर्ष में नहीं गये थे? वहाँ पालीताणा। यहाँ की बात सुनकर फिर वे कहते थे, सामने थे। देखो!

ऐसा नहीं। केवली भी पहले समय में वाणी को ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं। केवली भी ऐसे होते हैं। अरे प्रभु! यह क्या? रामविजय थे न वहाँ? थे या नहीं तुम? २००६ का वर्ष। वह तो होवे न सामने? सोलह वर्ष हुए।.... यह सब आत्मा की ऐसी बात करते हैं परन्तु केवली भी पहले समय में वाणी को ग्रहण करते हैं, दूसरे समय में छोड़ते हैं। अरे भगवान! वाणी को ग्रहे-छोड़े, वह तो केवली को तो नहीं होता, समकिती को नहीं होता। यह समकिती राग को ग्रहे और राग को छोड़े, यह समकिती को नहीं होता। यह तो दोपहर को आता है। विकल्प को-राग को ग्रहे नहीं क्योंकि अन्दर राग से अभाव-स्वभावरूप का प्रयत्न शुरु है। आहाहा!

राग को ग्रहे नहीं, रागरूप परिणमे नहीं, होवे नहीं, रागरूप उपजे नहीं, प्रभु! वह तो शुद्ध आत्मा है और शुद्ध आत्मा की जहाँ दृष्टि हुई तो शुद्ध की पर्यायरूप परिणमे, शुद्ध को ग्रहे, शुद्ध (रूप) उपजे या अशुद्धता को ग्रहे? उसके बदले अभी केवली वचन को पहले समय में ग्रहण करते हैं और दूसरे समय में छोड़ते हैं - यह कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! बड़ी चर्चा सामने से आयी थी। फिर और पत्र भेजे परन्तु यह तो शब्द आया। केवली भी ऐसा करे। और क्या ऐसा कहते हैं? पर का कर नहीं सकता, पर का ग्रहण नहीं कर सकता, पर को छोड़ नहीं सकता, पर का... अरे भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! आत्मा में त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति है। एक गुण ऐसा है कि वह कभी राग को ग्रहे, पकड़े—ऐसा उसमें गुण नहीं है। पर को ग्रहे-पकड़े, ऐसा तो गुण नहीं, परन्तु राग को पकड़े और छोड़े, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! ऐसा आत्मा कि जो आत्मा में पर का ग्रहण-त्याग वह जिसके वस्तु के स्वभाव में, पर्याय में नहीं, परन्तु राग संसार का विकल्प, दया-दान का (विकल्प), उसे ग्रहण करे और छोड़े यह उसके गुण में नहीं है। समझ में आया? उस गुण का धारक जो आत्मा, जहाँ दृष्टि अनुभव में-श्रद्धा में आया, वह राग को ग्रहे और रागरूप उपजे, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह दिगम्बर सन्तों की लहरें हैं। आहाहा! नागा बाबा बादशाह नागा.... कहते हैं न, बादशाह से आगे। दुनिया, दुनिया से पार। भाई! प्रभु आत्मा ऐसा है न! ओहो! शुद्ध

का सागर है न, प्रभु! ऐसे शुद्धसागर का जहाँ अनुभव और दृष्टि और प्रतीति हुई, वह भगवान अब राग, पर रजकण को ग्रहण-त्याग करे, यह तो स्वप्न में, अज्ञान में भी नहीं है। यह तो अज्ञान में राग को ग्रहण करूँ, छोड़ूँ, (ऐसा) पर्यायबुद्धि में अनादि से था, वह जहाँ आत्मा का ज्ञान और भान हुआ, वहाँ रागरूप उपजना, वह स्वरूप में नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह तो अन्तर में समाने का मार्ग, यह कहीं बाहर का ग्रहण करे, ऐसी चीज़ अन्दर कैसे होगी। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, यह क्यों उठा मस्तिष्क में?—कि ***मोक्षार्थी को पहले आत्मा को (जानना चाहिए) तो आत्मा ऐसा है कि जिसके गुण में राग का ग्रहण करना-छोड़ना नहीं है और पर का तो ग्रहण-त्याग है ही नहीं -ऐसे आत्मा को पहले जानना चाहिए, ऐसी इसे श्रद्धा में यदि बात न जँचे तो इसकी बात की पात्रता आत्मा की ओर के अनुभव की इसकी है नहीं।*** समझ में आया?

प्रथम यह आत्मा ऐसा है और ऐसा पहले ही इसे अनुभव करना, ऐसी जो श्रद्धा, रागमिश्रित श्रद्धा, उसे अपेक्षा से साधक कहा जाता है, परन्तु तो भी उसे छोड़कर अनुभव करे, तब उसे साधक कहने में आता है, परन्तु जहाँ अभी पहली श्रद्धा में ही ठिकाना नहीं। यह पहले चाहिए और यह पहले चाहिए, उसे पहला भगवान नहीं रहा। वैद्यराजजी! भगवान ने ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : सबको छोड़कर आत्मा का....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको छोड़कर अर्थ छोड़कर नहीं। आत्मा में राग का ग्रहण-फ्रहण है ही नहीं, ऐसा छोड़कर का अर्थ है। सबको छोड़ना-फोड़ना उसमें है ही नहीं। पर को छोड़ना और ग्रहण करना, वह चैतन्य के स्वरूप में नहीं है, उसे आत्मा की खबर नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा शरीर और क्रम-क्रम से परपदार्थ थोड़े घटाते जाए और फिर लाभ हो, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। घटावे किसे? उसमें है ही नहीं, उसे घटाना क्या? आत्मा में परवस्तु है ही नहीं, फिर घटाना और कम करना, यह है ही कहाँ? ऐ... सेठी! आहाहा! और कषाय की मन्दता पहले करना,.. मन्दता और अभाव (करना), वह भी वस्तु में (नहीं है)। जिसमें राग का-कषाय का अभाव है,

ऐसा जिसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा चैतन्य ज्योति प्रभु, उसे आत्मार्थी, मोक्षार्थी, पूर्ण आनन्द की स्वतन्त्रता की शान्ति के इच्छुक को प्रथम में प्रथम भगवान आत्मा (जानना चाहिए) । यह भी आठ वर्ष के बालक को पहले यह (करना) ? मोक्षार्थी होवे तो पहले यह (करना है) । नहीं तो यहाँ संसारार्थी की बात नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : अलौकिक बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक बात है! यह धर्म तो लोकोत्तर है न, भाई! लौकिक के साथ लोकोत्तर धर्म का मिलान नहीं है। आहाहा!

भाई! तुझे तेरे आत्मा की क्या चीज़ है ? उसमें क्या है और उसमें क्या नहीं है, इसकी तुझे खबर नहीं और तू आत्मार्थी होकर मोक्ष करने जाए, कहाँ से तेरा मोक्ष होगा ? आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो पहले ही आचार्य महाराज (कहते हैं), पाठ में है न ? '**एवं हि जीवराया**' '**एवं हि जीवराया**' ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का वाक्य है। भगवान का कहा हुआ वाक्य है, वह कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ है। भगवान ऐसा कहते हैं कि '**एवं हि जीवराया**' मुनि ऐसा कहते हैं कि '**एवं हि जीवराया**' '**एवं हि जीवराया**' पहला '**णादव्वो**' समझ में आया ?

देखो! पहले इतने शास्त्र पढ़ना, पहले इतनी राग की मन्दता करना या इतनी देव-गुरु-शास्त्र की सेवा करना, इतनी सम्मेदशिखर की यात्रा करना, पश्चात् यह होता है - ऐसा नहीं है। वैद्यराजजी! बहिन ने कहा था या नहीं ? तुम्हारी लड़की है न ? लड़की ने कहा था या नहीं ? पिताजी! यात्रा-वात्रा बहुत की, अब यह सुनो। शोभालालजी कहते थे, हों! शोभालालजी कहते थे कि इनकी लड़की ने इन्हें ऐसा कहा। कल शोभालालजी आये थे न ? इनकी लड़की ने कहा, पिताजी! यात्रा बहुत की, अब यह सुनो। आहाहा! पहले यात्रा-वात्रा से हलका हो, फिर आत्मा ज्ञात हो, ऐसी वस्तु में स्थिति नहीं है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग यह मार्ग है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक में अन्यत्र यह बात हो नहीं सकती। सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिलोकनाथ, उनके सन्त और उनके माने हुए समकितियों के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं नहीं हो सकता। आहाहा! बात तो

बात! सीधे! पाधरो समझे? सीधे यह, पहले ही यह। अरे! सुन तो सही! तुझे किसका काम करना है? अपना। तो स्वयं कौन है, यह जाने बिना तेरा काम कहाँ से होगा? समझ में आया?

'**जीवराया णादव्वो**' वापस किसी से सुनना और समझना, ऐसा भी नहीं है। ऐ... ज्ञानचन्दजी! आहाहा! गुरु ने ऐसा कहा। यह गुरु ऐसा कहते हैं, गुरु ऐसा कहते हैं। गुरु की श्रद्धा नहीं है उसे? कि गुरु कहते हैं कि पहले आत्मा जानो। तो कहे, नहीं, नहीं, ऐसा जानो। तो तुझे गुरु की भी श्रद्धा नहीं है। सर्वज्ञ कहते हैं कि पहले आत्मा जानो तो कहे नहीं, नहीं पहले यह करना, तो तुझे सर्वज्ञ की भी श्रद्धा नहीं है। शास्त्र ऐसा कहते हैं, यह शास्त्र पुकार करते हैं कि पहले जीव को जानना। तू कहता है - नहीं, नहीं, नहीं ऐसा नहीं, दूसरा ऐसा जानना। तो तुझे शास्त्र की श्रद्धा नहीं है। 'देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्धश्रद्धान आणो। शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व क्रिया करी, क्षार पर लीपणो वह जानो।' राख-राख, भस्म। ऊपर गारा करते हैं न गारा, लीपना, वह लीपन नहीं चलेगी। इसी प्रकार सच्ची श्रद्धा के बिना तेरे सब क्रियाकाण्ड अज्ञानरूपी भैंसा खा जाता है। समझ में आया? ऐ नेमिदासभाई! फिर तो आवे न। क्या आवे कहा?

मुमुक्षु : पेट का गड्ढा करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं रोटी खाता था? रोटी लावे कौन? कहते हैं न, पेट में रोटियाँ पड़े... तुम रोटियों का तो करो। एक व्यक्ति अभी भाषण में (कहता था), तुम्हें देखकर हमें दया आ जाती है। अरे! पेट में न हो और हम उपदेश तुमको देते हैं। उपदेश ही व्यर्थ है। अब सुन न अब मूर्ख। पेट कौन? पेट नहीं, पेट में पड़े कौन? पेटरहित कौन? अकेला आत्मा जहाँ भिन्न है, उसके पेट में हो, न हो, इस आत्मा के साथ पेट का सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! उपदेशक को शर्म नहीं आती कि बेचारे भूखे पेट पड़े हों और तुम आत्मा की बातें करो! ऐसा कितने ही कहते हैं। अरे! भगवान! सुन न, अब तू मर जाएगा। मुश्किल से समय मिला अनन्त काल में, उसके इस समय में ऐसे विपरीत मार्ग में तुझे चढ़ाना है कि पहले खाओ। हमारे बात हुई थी। कीरचन्दभाई के

साथ। (संवत्) १९९० के वर्ष में। कीरचन्दभाई हैं न? हजारों लोगों में भाषण देते हैं। भाषण ब्रह्मचारी न.... नरम व्यक्ति, (संवत्) १९९० के वर्ष में (कहे), महाराज! तुम कहते हो परन्तु पेट में रोटियाँ न हो, भूख लगी हो और तुम आत्मा-आत्मा की बातें करो। क्या है? कहा, १९९० के वर्ष की बात है। जंगल में बाहर बैठे थे। वह जंगल है न? ....वहाँ बाहर। अभी बस गया है, उस समय खाली खेत थे। वहाँ बैठे थे। फिर क्या करना? कि पेट में रोटियाँ पड़े, फिर वे रोटियाँ पचे नहीं तो तू क्या करेगा? पचे नहीं तो फिर वह पचे, बाद में तुझे धर्म करना है। फिर पचने के बाद वापस दस्त न हो, तब तक तुझे धर्म नहीं करना। दस्त हो जाए, फिर पेट खाली हो जाए और रोटियाँ खाना। अब तुझे करना कब है? वह तो बेचारा नरम व्यक्ति, इसलिए वहीं का वहीं स्वीकार किया कि सत्य बात है। पहले पेट में पड़े और फिर यह हो, फिर कहेगा कि मुझे पचा नहीं। पचा नहीं समझते हो? पाचन नहीं हुआ तो अब धर्म नहीं होगा। पाचन न हो तो दस्त नहीं होगा। दस्त नहीं आयी, और गोली ले, फिर धर्म करेगा। दस्त हुआ वहाँ और पेट खाली हो गया। फिर खाली हो गया तो अब तुझे खाना और पीना, इसमें रहना है या (आत्महित) करना है? ऐ... नेमिदासभाई! यह तुम्हारे रोटियाँ और पेट की बात आयी। लगे हो, कहा। वह मानो, हम देश सेवा करते हैं। धूल की सेवा नहीं तुम्हारी। देश सेवा करते हैं, किये। तुम क्या हो? कौन हो? कैसे प्राप्त हो? इसकी तो खबर नहीं और देश सेवा करने चल निकले। फिर तो बेचारा अन्दर में नरम पड़ गया, हों! १९९० के वर्ष की बात है। ३५ वर्ष (हुए)।

मुमुक्षु : निवृत्ति का काल....

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति। यह सीधी निवृत्ति। निवृत्तस्वरूप ही भगवान आत्मा है। यहाँ क्या कहते हैं? राग के अभाव-स्वभावस्वरूप प्रभु है। शरीर और कर्म के अभाव-स्वभावस्वरूप प्रभु आत्मा है। अरे! अभाव-स्वभावस्वरूप है, उसका अभाव करना है इसे? क्या है? अभाव-स्वभावस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन और अनुभव कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **इसी प्रकार मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...**

ऐसी भगवान की आज्ञा है, ऐसी शास्त्र की आज्ञा है, ऐसा गुरु का हुकम है। आहाहा! पहले आत्मा को जानना कि आत्मा यह चीज़ है, अनन्त आनन्द मूर्ति शुद्ध प्रभु को अनुभव करना, ज्ञान में अनुभूति करना – ऐसा कहते हैं। पहले अनुभव करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? श्रद्धा का बाद में लेंगे। सम्यग्दर्शन पहला और ज्ञान बाद में, यह बाद में। यहाँ तो अनुभव में यह आत्मा अनुभव में आये बिना श्रद्धा किसकी? खरगोश के सींग की? ऐसा कहेंगे। शशला समझे? खरगोश। खरगोश के सींग की श्रद्धा करो। परन्तु है नहीं, किसकी करना? जाने बिना किसकी करना? इसी प्रकार वस्तु कैसी है, उसे जाने बिना यह है, ऐसा जाने बिना श्रद्धा किसकी? किसका विश्वास आवे? समझ में आया? आहाहा! इसे अन्दर में यह बात सुनने पर रुचती नहीं और कुछ दूसरा मार्ग खोजता है, वह देव, गुरु और शास्त्र का अनादर करता है। रामस्वरूपजी!

मुमुक्षु : अनादर करके धर्म चाहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादर करके धर्म चाहे। उनका अनादर करके उनके पास से धर्म सुनना चाहता है। आहाहा! गजब बात, भाई! यह तो महा अध्यात्मशास्त्र है। ऐसे पट के पट पड़े हैं इसमें न्याय के। यह कहीं कथा–वार्ता नहीं है। आहाहा! सन्तों के मुख में से धारावाणी, वाणी के काल में निकल गयी। वाणी निकल गयी। कौन करे? कौन बनावे? उस वाणी में भी स्व–पर वार्ता कहने की ताकत है। वाणी में स्व–पर वार्ता कहने की ताकत है। आत्मा में स्व और पर को जानने की ताकत है। समझ में आया?

भाई! पहला क्षयोपशमभाव करना, पहले यह करो। यह आता है शास्त्र में पाँच लब्धि? वह तो स्वरूप प्राप्त होने से पहले क्या था, वह बतलाया है, परन्तु जानना–करने का तो यह है। समझ में आया? वह तो पहले क्या था? कैसा बनता है? यह इसे खबर न हो, परन्तु भगवान जानते हैं कि इसे पहले ऐसे परिणाम थे। इसे कहाँ खबर है कि यह करण परिणाम कहलाते हैं और यह अपूर्व (करण) कहलाते हैं। यह तो भगवान ने जाना कि ऐसे परिणाम हो, उनका अभाव करके यह जाने, तब इसने आत्मा जाना – ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पूरी बात... वजन चला गया। आत्मा की मूल चीज़ का वजन ही गया। वजन अर्थात् समझ में आया? उसकी महत्ता। महत्ता – ठाठ। सन्त,

शास्त्र और सर्वज्ञ। सन्त, शास्त्र और सर्वज्ञ। तीनों 'स' जिनका पुकार करते हैं पहले, पहले प्रथम तू आत्मा को जान। समझ में आया? उसके बदले अभी यह बात इसे रुचि में नहीं आती, सुहाती नहीं। ऐसा नहीं, ऐसा नहीं – पहले ऐसा चाहिए... पहले ऐसा चाहिए... फिर पुण्य करते–करते प्राप्ति होगी। शुभ करते–करते यह होगा। उसे तो देव–गुरु–शास्त्र का अनादर करनेवाला कहते हैं। कठिन बात, बापू! वस्तु का धर्म वह तो दिगम्बर...

मुमुक्षु : उल्टी रीति पकड़ी है!

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी रीति पकड़ी और मानता है कि हमने सुलटी रीति पकड़ी है। और दूसरे कहते हैं वह उल्टी रीति कहते हैं, ऐसा मानता है। अरे भगवान! भाई! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो **मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए,...** इसकी व्याख्या चलती है। इसमें व्यवहार पहले आवे और फिर निश्चय हो, यह बात इसमें नहीं रही। वस्तु के स्वरूप में ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसीलिए दिगम्बर कहते हैं कि निश्चय पहले होता है, बाद में व्यवहार, यह बात वस्तु के स्वरूप की है। यह जाने, राग बाकी रहा, उसे व्यवहाररूप से जाने। आदरणीय की तो बात भी कहाँ है? समझ में आया? यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। सन्तों ने ऐसा कहा, सर्वज्ञों ने यह कहा, शास्त्र का यह पुकार है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं 'निश्चयनय पहले कहे, पीछे ले व्यवहार' परन्तु ऐसा ही है। पहले निश्चय यह हुआ। देखो! यहाँ यह क्या कहा? आहाहा! पूरी शास्त्र की प्रणालिका....

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : गिनती उल्टे से शुरु हुई। एकड़े से शुरु होती है या सौ से शुरु होगा? ऐसा कहते हैं, वह तो बड़ा है न? परन्तु वह बड़ा नहीं। एकड़े के बिना शून्य है सौ कहाँ से लाया? आहाहा! सौ नहीं। शून्य से शुरु किया। न्यालभाई! आहाहा! परन्तु क्या अमृतचन्द्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य! केवली का पेट खोलकर रख दिया है, हों! आहाहा! यह वस्तु, इसे अन्तर में स्वीकार हो, ऐसी यह चीज़ है। ऐसा कि यह तो किस प्रकार। दूसरे प्रकार से हो नहीं सकती। समझ में आया?

मोक्षार्थी पुरुष को... आबाल-गोपाल छोटे होवे न... अभी कहेंगे। आबाल-गोपाल को अनुभव में तो ज्ञान ही आता है, मानता नहीं है। समझ में आया? मानता नहीं है। अनुभूति ही उसे ख्याल में आती है। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... परन्तु यह मानता है कि राग... राग... राग... राग... राग... राग। राग का ज्ञान ख्याल में आता है, वह ज्ञाता ख्याल में आता है—ऐसा न मानकर, राग ख्याल में आता है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आगे कहेंगे - आबाल-गोपाल... समझ में आया? तीसरे पैराग्राफ में कहते हैं। यह तो गजब टीका! आत्मख्याति, समयसार! चौदह पूर्व, बारह अंग का पूरा रहस्य खोला है। थोड़े शब्द में पूर्ण केवलज्ञान को प्रवाहित कर दिया है। समझ में आया? दरकार नहीं होती और स्वयं जिस मार्ग में चला, उस मार्ग को शास्त्र में से खोजकर सिद्ध करने को प्रयत्न करता है। स्वयं जिस ओर की मान्यता और जिस ओर की लाईन, उस ओर का शास्त्र में से खोजकर मानता है। इस जगह लिखा है। सब लिखा है, परन्तु सुन! पहले इसके बिना दूसरी बात नहीं होती। आहाहा!

मोक्षार्थी पुरुष को पहले तो आत्मा को जानना.... जानना अर्थात् अनुभव करना। अनुभव करना अर्थात् वेदन करना, स्वसंवेदन में ले लेना। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले छह काय के बोल सीखना....

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय के बोल सीखा, परन्तु आत्मा कहाँ सीखा? छह काय में कहाँ आया आत्मा? आहाहा! **और फिर...** अब फिर आया, देखो!

फिर उसी का श्रद्धान करना... देखो! यहाँ ज्ञान का अनुभव पहला और उसमें फिर भास आया कि 'यह आत्मा' तो श्रद्धा सच्ची हुई, ऐसा कहते हैं। अभी ज्ञान में आत्मा यह है, आनन्द है, ऐसा है, अनन्त गुण का पिण्ड, अभेद एकाकार चैतन्य है। जैसा आनन्द और ज्ञान की पर्याय प्रगट अनुभव की, वैसा पूरा-पूरा आत्मा है, ऐसा प्रतीति में आये बिना श्रद्धा किसकी? जाने बिना श्रद्धा किसकी? आहाहा! समझ में आया?

'ततः स एव श्रद्धातव्यः' ऐसा है न? देखो! **ततः** तत्पश्चात्। पश्चात् का अर्थ। अनुभव और प्रतीति साथ में होती है, परन्तु यह जाना, पश्चात् '**यह**' इतना निर्णय होता है न? यह आत्मा। अर्थात् **ततः** देखो! **उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** देखो, अन्यत्र

ऐसा आता है कि सम्यग्दर्शन पहले, सम्यग्दर्शन कारण और सम्यग्ज्ञान कार्य। समझ में आया? होते हैं साथ में, तथापि वहाँ सम्यग्दर्शन कारण और (सम्यग्ज्ञान) कार्य। (ऐसा कहा होता है) वहाँ वस्तु दर्शन और ज्ञान सिद्ध करना है। यहाँ तो जानी हुई वस्तु की श्रद्धा, यह सिद्ध करना है। जाने बिना की चीज़ का भरोसा (करना), किसका भरोसा? जाना नहीं, (उसकी श्रद्धा करो)। काशी का बोर, आम जैसा हो, इतना हो और इतना हो तथा इतना लम्बा हो और इतना चौड़ा हो और अमुक... परन्तु कितना इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया?

कहा नहीं था? एक बार कुआडवा का, हमारे कुआडिया का। मच्छर बताया, लड़के को। मच्छर... मच्छर... मच्छर होता है इतना? पैर लम्बे, इस प्रकार बताया। तीन फुट के लम्बे देखो! यह मच्छर। लड़के ने मच्छर निश्चित किया। वहाँ एक हाथी आया। मास्टर साहेब! आपने बताया था, वह मच्छर आया। वह पैर बताकर, पैरों के छोटे-छोटे बारीक अवयव होते हैं न, अवयव, वह बताना हो। छोटे इतने में किस प्रकार बतावे? इसलिए जरा मच्छर करके (बतावे) देखो! इसका ऐसा होता है, अवयव ऐसे होते हैं, इसका ऐसा आवे... अमुक। यह बताया। वह बताया, वहाँ वह बोला... हाथी देखा नहीं था और हाथी आया। साहेब! आपने बताया था वह मच्छर। धर्मचन्दजी! पाठशाला में था, हों! वह मच्छर हमने देखा है, वहाँ इतना था। देखा है या नहीं? इस ओर की दीवार के ऊपर था। कुआडवा।

इसी प्रकार जो वस्तु क्या है, उसके ज्ञान बिना यह आत्मा किस प्रकार माने? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं। समझ में आया? जिसके ज्ञान में ज्ञेयरूप से वह चीज़ है, ऐसा आया नहीं, उसकी श्रद्धा किस प्रकार करना? श्रद्धा किस प्रकार होगी? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वाह!

यह मानो कि वह मच्छर इतना पैर वाला, वह यह मच्छर है, दूसरा क्या? मास्टर कहे, परन्तु यह मच्छर नहीं है, यह तो तुझे समझाने के लिये किया था। मच्छर तो इतना छोटा होता है। यह तो बड़ा हाथी है। यह तो कान में मच्छर भिनभिनावे तो हाथी ऐसे-ऐसे सिर फोड़े फिर, हों! घुस जाए न इतना मच्छर। तो उसे बहुत (तकलीफ) होती है,

हों! मच्छर इतना हाथी को भी एक बार तो खड़ा रखे, क्योंकि यहाँ तो उसका कोमल भाग है अन्दर, और यदि अन्दर घुस गया हो तो झट निकले नहीं। निकलने आवे तो सूझे नहीं अन्धकार। घन.. घन.. घन.. करता है। हाथी को तो आकुलता होती है। मच्छर, हाथी को खड़ा रखे। इसी प्रकार दृष्टान्त दिया था। समझ में आया? इसी प्रकार यह आग्रह करने से नहीं रुकता। यह तुम्हारा हरिलाल 'खस' वाला नहीं? अरे! महाराज! एक मच्छर हाथी को खड़ा रखे। हरिचन्द... हरिचन्द। मैंने कहा, तेरी बात सत्य, इस अपेक्षा से। हाथी इतना बड़ा (होता है) परन्तु (मच्छर) घन... घन... करे और वहाँ खड़ा रहे क्योंकि जब तक बाहर न निकले, तब तक उसे चलना (किस प्रकार)? मच्छर हाथी को खड़ा रखे। न्यालभाई... दृष्टान्त भी ऐसा देते हैं न!

यहाँ कहते हैं **फिर उसी का...** उसका ही '**ततः स एव**' '**ततः स एव**' इसके बाद यह। लो! **उसी का श्रद्धान करना चाहिए...** जाने हुए का श्रद्धान करना, अनुभव किये हुए का श्रद्धान करना, ख्याल में आयी हुई चीज़ का श्रद्धान करना। आहाहा! समझ में आया? उसमें यह बात ली है पंचाध्यायी में।

क्या करना? **कि 'यही आत्मा है,...** ज्ञान में, अनुभव में, वेदन में, अनुभूति में आया, यह आत्मा... यह आत्मा... आत्मा। '**यही आत्मा है,...** देखो! पश्चात् राग और पुण्य और शरीर, यह सब रहा नहीं। '**यही आत्मा है,...** यही आत्मा है, **इसका आचरण करने से...** देखो! अब क्या कहते हैं? श्रद्धा में क्या आया? ज्ञान में आत्मा आया और फिर हो गयी श्रद्धा कि यही आत्मा है। फिर क्या आया श्रद्धा में? - कि **इसका आचरण करने से...** आत्मा में अन्तर (में) स्थिर होने से चारित्र होता है, ऐसा माने। आहाहा! यह भगवान ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य है, ऐसा भान—अनुभूति हुई, तब श्रद्धा हुई कि यही आत्मा। यह श्रद्धा हुई कि यही आत्मा।

पश्चात् **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा'...** इस श्रद्धा में ऐसा आया। क्या आया? - कि यह आत्मा, अनाकुल आनन्दस्वरूप है, वह आत्मा। उसमें स्थिरता से, लीन होने से मुक्ति होगी, कर्म से छूटा जा सकेगा। दूसरे किसी उपाय से छूटा नहीं जा सकेगा। ऐसा श्रद्धा के अनुभव में आत्मा आया, तब श्रद्धा में ऐसा

आया। आहाहा! कथन तो कथन कोई! मार्ग का मर्म भर दिया है न? लो! यह चारित्र की व्याख्या। समकिती ऐसा माने। सम्यग्दृष्टि आत्मा के वेदन से आत्मा जाना, उसने माना कि यह आत्मा। तब ऐसा माने कि **इसका आचरण करने से...** देखो! कोई व्रत और नियम और क्रियाकाण्ड करने से आत्मा कर्म से छूटता है, ऐसा फिर वह नहीं मानता। मिथ्यादृष्टिरूप से मानता था। आहाहा! समझे न?

यही आत्मा है, इसका आचरण करने से... आचरण अर्थात्? आश्रय करने से, आचरण करने से, आराधना करने से, सेवन करने से, स्थिरता से, उसमें लीन होने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। ऐसा निर्णय हो गया। अवश्य इसमें लीन होने से कर्मों से छूटा जा सकेगा। उसमें किसी को पूछने जाना नहीं पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यही आत्मा है, इसका आचरण करने से... यह भगवान आत्मा ज्ञानचैतन्यस्वरूप, शुद्ध प्रभु का ज्ञान हुआ, अनुभूति हुई, श्रद्धा में आया कि यह आत्मा और इस श्रद्धा में ऐसा आया कि इसी आत्मा में अन्तर आराधन करने से, इसका सेवन करने से, इसका आश्रय करने से, इसे अनुसरणकर स्थिर होने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा और निर्जरा भी ऐसे होगी। स्वरूप में स्थिर होने से निर्जरा होगी, ऐसा इसे श्रद्धा में आया है। आहाहा! यह तो कहे, अपवास किया तो निर्जरा हुई और तप किया, इसलिए निर्जरा हुई। धूल में भी नहीं। तेरा काल व्यर्थ में गया है। आहाहा! समझ में आया? दो अपवास किये, पाँच अपवास किये, लो! तपसा निर्जरा – शास्त्र में आता है। वह निर्जरा नहीं। सम्यग्दृष्टि अपने स्वरूप में स्थिर होने से, आनन्द में लीन होने से कर्म से छूटा जा सकेगा, ऐसा मानता है। समझ में आया? तीनों के तत्त्व में एक भी तत्त्व का ठिकाना नहीं। आहाहा! कितनी बात की है!

कहते हैं, **इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा'...** देखो! भगवान ने चारित्र स्वरूपरमणता (करने को कहा है)। स्थिर होना अर्थात् रमना। इस चिदानन्द प्रभु में लीन... लीन... लीन... लीन... लीन... आराधन-आश्रय करने से अशुद्धता और कर्म छूट जाएँगे। ऐसा श्रद्धा में-सम्यग्दर्शन में, सम्यक् अनुभव में यह

श्रद्धा हुई। इस श्रद्धा में ऐसा हुआ कि इस आत्मा में लीन होने से कर्म से छूटा जा सकेगा। समझ में आया? बीच में पंच महाव्रत के परिणाम आवें और उनसे कर्म छूटेंगे, ऐसा सम्यग्दृष्टि, पहले से आत्मा को जानता होने से, मानता नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

और फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए... उसका ही अनुचरण। पहले तो श्रद्धा में आया था। पश्चात् अब चारित्र की बात है। उसका अनुचरण, सेवन करने से कर्मों से छूट सकेगा, ऐसी श्रद्धा की थी। सम्यग्दर्शन में प्रतीति में अनुभव में आकर प्रतीति में ऐसा आया था। उसमें स्थिर होने से मुझे कर्म से छूटा जा सकेगा। **फिर...** देखो! यह सम्यग्दर्शन होने के बाद उसका अनुचरण करना। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन-वर्शन की कुछ अपने को खबर नहीं पड़ती, करने लगो अपने...। खबर नहीं पड़ती अर्थात् अज्ञान है। स्पष्ट बात है कि मिथ्यात्व है। उसमें प्रश्न भी क्या? अर्थात् कि अनुभव द्वारा उसमें लीन होना। यह चारित्र, लो! इसका नाम चारित्र। शुद्धस्वरूप का ज्ञान, अनुभव ज्ञान। यह आत्मा, ऐसी उसकी प्रतीति—सम्यग्दर्शन, इसमें स्थिर होने से कर्म छूटेंगे, इसलिए स्थिर होना, इसका नाम चारित्र है। लो! इससे मुक्ति होती है। दूसरे किसी कारण से नहीं होती।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ३, रविवार, दिनांक - १६-१०-१९६६
गाथा -१७-१८, प्रवचन - ७७

(समयसार) १७-१८ गाथा चलती है। पहला पैराग्राफ। कल आ गया है उसमें कि जैसे धन का—आजीविका का अर्थी, राजा के लक्षण द्वारा चक्र और चामर आदि दूसरों की अपेक्षा अलग पड़ते लक्षणों से राजा को पहिचाने। वह धन का कामी, जीवत्व का कामी, आजीविका का कामी। वह राजा को पहिचानकर उसकी सेवा करे। यह पहले पहिचाने कि यह राजा है और उसकी श्रद्धा करे कि यह ही राजा है। पश्चात् उसकी सेवा करने से अपने को पैसा आदि आजीविका प्राप्त होगी। यह तो दृष्टान्त है न।

उसी प्रकार यह आत्मा मोक्षार्थी पुरुष को—जो आत्मा के परमानन्द की पूर्ण प्राप्ति का कामी है। आत्मा मोक्ष अर्थात् कि आत्मा के पूर्ण आनन्द की प्राप्ति, उसका जो अर्थी है। उसे पहले तो आत्मा का अनुभव करना चाहिए। पहले ऐसा आया। श्रुत द्वारा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा निर्णय करना, ऐसा आया। १४४ (गाथा) में। कर्ता-कर्म (अधिकार) में। दूसरे में ऐसा आवे चरणानुयोग में...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा आता है। व्यवहार से आवे वह बात पहली। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा आगम से निर्णय (करे), उसकी यहाँ बात नहीं ली। यहाँ तो सीधी आत्मा की बात ली है। कर्ता-कर्म में भी आता है। दोनों आते हैं। आगम का अभ्यास करे। स्वलक्ष्यी आगम का अभ्यास करे, ऐसा है उसमें भी। आत्मा चैतन्यस्वरूपी है, उसके लक्ष्य से आगम का अभ्यास करे और आगम से उसका निर्णय करे। परन्तु आगम शब्द से ज्ञान है वहाँ। आगम अर्थात् शास्त्र और पृष्ठ, वह कुछ नहीं। समझ में आया? आगम में कहा हुआ जो ज्ञान, उस ज्ञान द्वारा आत्मा का निर्णय करे।

यहाँ तो सीधी बात एकदम जीवतत्त्व की व्याख्या है। जिसे जीवतत्त्व की पर्याय

की पूर्ण प्राप्ति की अभिलाषा है, उसे तो आत्मा का अनुभव करना चाहिए। पहले यह करना, ऐसा कहते हैं, वैद्यराज! यह दूसरा सब रात्रि में गप्प मारते थे न वे भट्टारक। वह कुछ नहीं होता उसमें, कहते हैं। चमत्कार न। भट्टारक ने चमत्कार किये। सब खोटी-खोटी बातें हैं। आत्मा के साथ कुछ मिलान नहीं। यहाँ तो आत्मा को... भले शास्त्र द्वारा, सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा पहले निर्णय करे। परन्तु यहाँ तो निर्णय के पश्चात् करने का तो यह है, ऐसा वहाँ भी कहा है न? विकल्प छोड़कर, मति और श्रुत तत्त्व को अन्तर में झुकाये। ऐसा १४४ में कहा है। समझ में आया?

यहाँ तो सीधी बात—पहले आत्मा को जानना। यह जाने बिना तेरा एक भी कदम आगे चलेगा नहीं। समझ में आया? ज्ञानानन्द आत्मा, सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप परमात्मा, जैसा सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा देखा, उसे पहले अनुभव करना। समयसार में पाँचवीं गाथा में ऐसा कहा (कि) मैं कहता हूँ, उसे प्रमाण करना। अनुभव करके प्रमाण करना। ऐसा ही कही सीधी बात। समझ में आया? जानने की व्याख्या यह है। फिर उसका ही श्रद्धान। उसका (अर्थात्) यह जाना कि यह आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है, ऐसा अनुभव में आया, उसकी श्रद्धा करना कि **यही आत्मा है।** यह ही आत्मा है। चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति ऐसा ज्ञान-भान में (आया, पश्चात्) यह आत्मा है, ऐसी श्रद्धा करना। समझ में आया? और '**यही आत्मा है, इसका आचरण करने से...** यह ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है, वही आत्मा है। पुण्य-पाप के राग, देहादि, वे आत्मा नहीं। इसलिए उनका आचरण करने का रहा नहीं। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प, उनका आचरण नहीं। वह आचरण है ही नहीं, उनका आचरण। यह तो भगवान आत्मा का आचरण करने से। चैतन्यमूर्ति ज्ञायकगोला चैतन्यस्वरूप का भान और यही श्रद्धा, यही आत्मा, उस आत्मा में स्थिर होने से कर्म से छूटा जा सकेगा। दूसरा कोई रास्ता नहीं। कहो, समझ में आया?

उसी का अनुचरण करना चाहिए - अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;... कि यह करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा। स्वरूप, स्वरूप में स्थिर होना। पहले स्वरूप का भान हुआ, भान में प्रतीति हुई, प्रतीति में ऐसा आया कि उसमें स्थिर होने से

कर्म छूटेंगे। यह क्रिया आत्मा की। यह आत्मा के आनन्द में स्थिर होने से, लीन होने से, अनुभव करने से कर्म से छूटा जा सकेगा। दूसरा कोई कर्म से छूटने का उपाय नहीं। लोग कहते हैं न कि इतने तप करे तो निर्जरा हो। तपसा निर्जरा। वह सब यहाँ इनकार करते हैं। वह तो सब व्यवहार की बातें थीं। उस समय कैसा विकल्प था, क्या लक्ष्य छूटा था, यह बतलाया है। बाकी आत्मा में शुद्ध आनन्दकन्द के अनुभव में जो प्रतीति आयी कि यही आत्मा को और उसके अनुचरण और आचरण से कर्म से छूटा जा सकेगा, ऐसा भाव पहले सम्यग्दर्शन में भान आया। समझ में आया? और तत्पश्चात उसका ही अनुचरण करना। उसमें था कि उसका ही श्रद्धान करना, पश्चात् उसका ही आचरण करना और उसका ही अनुचरण करना। समझ में आया? ज्ञानानन्द आत्मा चैतन्यस्वरूप का ही आचरण करना, उसमें स्थिर होना। यह उसका आचरण, उसका नाम चारित्र। कहो, समझ में आया? क्या अभी तक समझे थे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। बड़ी लम्बी बड़ी बातें सब मुफ्त में है। आहाहा!

क्योंकि साध्य जो निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप... यहाँ तक कल आया था कि **अनुभव के द्वारा उसमें लीन होना चाहिए;...** क्योंकि साध्य क्या है आत्मा को? कि निष्कर्म—राग और कर्मरहित ऐसी अवस्थारूप, अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप। ऐसी निर्मल अवस्थारूप, निष्कर्म अवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूप, ऐसा जो साध्य अर्थात् मोक्ष **उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है,...** उस मुक्ति की प्राप्ति की यह पद्धति है। समझ में आया? है इसमें? वैद्यराजजी! उसमें है? पहला पैराग्राफ। यह आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्द का कन्द है, ऐसा प्रथम अनुभव करना, अनुभव करके उसमें श्रद्धा करना कि यही आत्मा है और इसी आत्मा में स्थिर होने से कर्म से छूटा जा सकेगा। ऐसी श्रद्धा करने के पश्चात्, सम्यग्दर्शन के पश्चात्, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन से पहले उसका आचरण हो नहीं सकता। है न?

फिर उसी का आचरण करना... ऐसा है। सम्यग्दर्शन से पहले क्या करना? कि पहले अनुचरण करना, क्रियाकाण्ड करो व्रत और नियम (ले लो) पश्चात् सम्यक्त्व

होगा। ऐसा है नहीं। समझ में आया? **फिर उसी का अनुचरण...** अर्थात् कि लीन होना। स्वरूप में श्रद्धा में ऐसा आया था कि इसी स्वरूप में स्थिर होने से कर्म से छूटा जा सकेगा, पश्चात् स्वरूप में लीन होता है, श्रद्धा करने के बाद। परन्तु जिसे अभी आत्मा क्या है, उसकी प्रतीति-भरोसा आया नहीं, उस भरोसा बिना लीन किसमें होना? चारित्र तो चरना है, रमना है, लीन और आनन्द की उग्रता का अनुभव है। परन्तु वह आनन्दस्वरूप ही जहाँ श्रद्धा-ज्ञान में आया नहीं, उसे उसमें स्थिर होना, यह प्रयत्न आये कहाँ से? समझ में आया?

तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान की अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती, इसलिए अपने यह ले लो। परन्तु खबर नहीं पड़ती, इसका अर्थ कि खबर नहीं तो अज्ञान है। अपना अनुभव हो, उसकी खबर नहीं पड़े? भगवान को पूछने जाना पड़ता होगा? समझ में आया? चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति का अनुभव, उसे वेदन में-ख्याल में न आवे कि यह आत्मा वेदन में आया? यह आत्मा आनन्दमूर्ति, वह ज्ञात हुआ, यह किसी को पूछना पड़ता नहीं। और शंका रहे कि यह नहीं ज्ञात होता तो मिथ्यात्व, अज्ञान है। संशय, अनध्यवसाय आदि तो मिथ्यात्व है, अज्ञान है।

मुमुक्षु : वह तो केवलज्ञान हो तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ चौथे (गुणस्थान) की बात है। केवलज्ञान की बात कहाँ है? केवलज्ञान हो, तब सब खबर पड़ती है। वह आता है पंचाध्यायी में? समकित विषय ऐसा कि केवलज्ञान का है। परम अवधि आदि का है। साधारण अवधि का नहीं, ऐसा आता है। एक मति-श्रुत नहीं। वह तो प्रत्यक्ष ऐसे देखे (नहीं, इस अपेक्षा से बात है)। अनुभव-वेदन में मति-श्रुत में आवे ऐसा नहीं, ऐसा होगा? ऐसे प्रत्यक्ष असंख्य प्रदेशी के अनन्त गुण, ऐसा नहीं आता। ऐसा नहीं आता। वह तो केवलज्ञान हो तो आता है। परन्तु आनन्दस्वरूप वेदन में आया कि यह आनन्द अतीन्द्रिय अन्यत्र होता नहीं, यह आत्मा का ही आनन्द है। ऐसा प्रत्यक्ष मति-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष होकर आनन्द आवे। प्रत्यक्ष की अपेक्षा से प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं हो परन्तु राग की अपेक्षा रही नहीं, अकेले ज्ञान से जाना, इस अपेक्षा से उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। समझ में आया? अभी इसकी

पद्धति की खबर नहीं होती। उसकी पद्धति कैसी होती है, सम्यग्दर्शन की, कैसे प्राप्त होता है, उसकी खबर नहीं होती। और फिर कहे, अब करने लगो अपने व्रत और नियम, लो, यह करो, जाओ। उल्टे से चलने लगा। घोड़ा जोड़ना चाहिए गाड़ी के सामने, उसके बदले पीछे जोड़ा। घोड़ा-घोड़ा समझते हो न? अश्व को गाड़ी के आगे जोड़ना चाहिए। उसके बदले पीछे जोड़ा। ऐसा कि वस्तु के भान बिना करने लगो यह चारित्र और व्रत और यह।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जैसा देखा, परमेश्वर ने देखा वैसा आत्मा। वैसे आत्मा को, अन्य अज्ञानी आत्मा कहते हैं, वह नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा, जो ज्ञान में यह आत्मा पुण्य-पाप के भाव आस्रवतत्त्व, शरीरादि अजीवतत्त्व से यह आत्मा (भिन्न) ऐसा देखा, उसमें जो अन्दर देखे और अनुभव करे, उसे श्रद्धा में आवे कि यह आत्मा। उसे श्रद्धा में आवे कि इस आत्मा में स्थिर होने से, लीन होने से, अनुभव करने से मुक्ति होगी।

मुमुक्षु : आत्मा तो अरूपी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरूपी है तो वस्तु है या नहीं? ज्ञान में अरूपी का भान होता है या नहीं? अरूपी क्या है? अरूपी वस्तु। जानता है, वही ज्ञान है। पर को क्या? पर की खबर है उसे—जड़ को? ज्ञान को खबर है कि मैं यह ज्ञान और यह जड़। इस प्रकार उसे खबर पड़ती है। भान नहीं उसे। आहाहा! यह तो अरूपी है न, इसलिए यह कुछ ज्ञात नहीं होता। हो गया। यह जड़ ज्ञात होता है और यह ज्ञात नहीं होता। यही आयेगा, अभी कहेंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : जड़ है, इसलिए दिखता है। अरूपी हो, वह दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखता नहीं। यह प्रतिमा, व्रत, नियम वे सब जड़, इसलिए दिखते हैं। आत्मा दिखता नहीं। ऐसी की ऐसी विपरीतता पुरानी घुसा डाले हुए हैं, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...क्या करे? धूल करनी है? जाननेवाले को जाना नहीं और इसके बिना सिरपच्ची। जाननेवाला न जानने में आवे, तब फिर कौन जानने में आवे?

जानता कौन है ? यह कौन जानता है ? 'आत्मा अरूपी है', मुझे खबर नहीं पड़ती—यह किसे खबर पड़ी ? उसे खबर पड़ी। आहाहा ! समझ में आया ? मैं मुझे ज्ञात होऊँ नहीं। यही कहता हूँ कि 'मैं मुझे ज्ञात होऊँ नहीं', ऐसा मैं जाननेवाला। ज्ञात हुआ उसमें। समझ में आया ? ऐसी की ऐसी जिन्दगी... सम्प्रदाय की ऐसी लहर चलती ही जाती है संसार। रुके संसार कैसे, इसकी खबर नहीं होती। यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा ही जानने में आता है। दूसरा तो जानने में आता नहीं। यह कहेंगे अभी नीचे। समझ में आया ?

क्योंकि इस सिद्धि की इस प्रकार से ही प्राप्ति है। मुक्ति की प्राप्ति—मोक्ष की प्राप्ति भगवान आत्मा अपने ज्ञान में अनुभव में आवे, उसकी श्रद्धा हो और उसमें स्थिर होने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त मुक्ति की प्राप्ति का दूसरा कोई मार्ग और पद्धति है नहीं। **अन्यथा अनुपपत्ति है...** देखो ! अनेकान्त किया। अन्यथा अनुपपत्ति—दूसरे प्रकार से प्राप्ति है नहीं। व्यवहार से भी हो और निश्चय से हो, ऐसा अनेकान्त नहीं है।

मुमुक्षु : ऐसा नहीं, पहले व्यवहार से होता है और बाद में निश्चय....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले-फहेले व्यवहार है ही नहीं। व्यवहार पहला कैसा ? अन्ध बिना व्यवहार। व्यवहार तो अन्धा है, राग है। यहाँ जाना जब आत्मा ज्ञानस्वरूप चिदानन्द है—अनुभव हुआ, तब बाकी रहा राग, उसे व्यवहार कहा जाता है। नय है या नहीं ? जाने कब नय को ? यहाँ जाना तब उसे जाने कि इसके जाने बिना उसे जानेगा किस प्रकार ? समझ में आया ? भारी अटपटा मार्ग है, सूक्ष्म उसे अटपटा बहुत उल्टा किया। कहीं रास्ता हाथ नहीं आता। भगवान स्वयं जाननेवाला... स्वयं जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... यह... यह... होता है, उसे जाननेवाला। राग होता है, उसे जाननेवाला; देह की अवस्था हो, उसे जाननेवाला; बोले, उसे जाननेवाला, वह जाननेवाला तो कहे, यह मुझे ज्ञात नहीं होता। पूरी बात ही उल्टी है। उसे अपने तत्त्व की खबर ही नहीं। **इसी प्रकार उपपत्ति है, अन्यथा...** देखो ! यह एक ही मोक्षमार्ग है, दूसरा मोक्षमार्ग नहीं, दूसरे प्रकार से प्राप्ति नहीं।

(इसी बात को विशेष समझाते हैं:-) जब आत्मा को, अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप भेदभावों... 'ऽनुभूमानानेकभावसङ्करेऽपि' 'सङ्करेऽपि' संस्कृत है। मिश्रित अर्थात् संकर। देखो! जरा समझने जैसी बात है कि आत्मा ज्ञानानन्द होने पर भी उसे अनेक राग दया, दान, व्रत, विकल्प, पुण्य, पाप के भाव के साथ मिश्रित—संकर हो गया है। संकर अर्थात् खिंचड़ा हो गया है। कचरा। यह राग और यह मैं, ऐसा उसे भान नहीं। समझ में आया? अनेक विकल्प राग-द्वेष, दया-दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ऐसे विकल्प राग, उसके साथ मिश्रितपना। मिश्रितपने की व्याख्या ऐसी नहीं कि थोड़ा सा सम्यग्ज्ञान है और थोड़ा राग है। यहाँ तो ज्ञानानन्दस्वरूप के साथ राग के विकल्प का मिश्रितपना हुआ है। मिश्रितपने का अर्थ ऐसा नहीं कि थोड़ी वहाँ शुद्धता और थोड़ सी अशुद्धता, उसे मिश्रित कहा है। समझ में आया?

यहाँ तो ज्ञानस्वरूप ऐसा भगवान ऐसा का ऐसा रहता है, तथापि उसकी उसे खबर नहीं। वह ज्ञानानन्द में लक्ष्य और दृष्टि नहीं। राग और पुण्य और विकल्प उठे, उसमें उसकी दृष्टि है। इसलिए उसे मिश्रितपना कहा जाता है। समझ में आया? अनुभव में अर्थात् जानने में आने पर **जो अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ...** विकल्प शुभ-अशुभभाव के साथ संकरपना, एकपना उसने मान लिया है। भले ऐसा माना, और हो। तो **भी सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से...** देखो! यह रागादि विकल्प, यह मलिन और दुःखरूप है और मेरा आनन्दस्वभाव भिन्न है। ऐसे सर्व प्रकार से भेदज्ञान। सर्व प्रकार से क्यों कहा? कि राग का एक अंश भी मेरे स्वरूप में नहीं। ऐसे भेदज्ञानी पर से भिन्न आत्मा को जानकर। समझ में आया?

सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से... 'परमविवेककौशलेनायम' ऐसा है पाठ। **सर्व प्रकार से भेदज्ञान से...** परम है न? यह परम अर्थात् सर्व प्रकार से। **प्रवीणता से...** यह चैतन्य ज्ञानानन्द है और यह रागादि दुःखरूप और विकल्प है। समझ में आया? यह वास्तविक जीवतत्त्व का स्वभाव नहीं। यह जीवतत्त्व की व्याख्या है न? दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के शुभाशुभ विकल्प, वे जीवस्वरूप नहीं। वे जीव से भिन्न स्वरूप हैं। उन्हें और इस जीव को मिश्रितपना वर्तमान में दिखने पर भी, सर्व प्रकार से उससे भिन्नपने के विवेक कौशल्य के कारण **यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ...** यह राग

दया-दान का जाननेवाला, यह जाननेवाला, वह मैं हूँ। यह राग, वह मैं नहीं। समझ में आया? ऐसे चैतन्य की सत्ता में मौजूदगी में जो ज्ञानानन्द दिखता है और उसके ज्ञान में रागादि पुण्य-पाप दिखते हैं, उन रागादि में मैं नहीं। उनका जाननेवाला, उनका जाननेवाला जानने का ज्ञान, उस ज्ञान की अनुभूति, वह पूरा आत्मा है। समझ में आया?

सर्व प्रकार से भेदज्ञान से... अर्थात् बहिर्मुख से अन्तर्मुख हुआ, वह सर्व प्रकार से भेदज्ञान हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जो बाह्य में रागादि विकल्प के साथ बहिर्बुद्धि से मिश्रितपना स्वच्छत्व का स्वभाव रहा हुआ (होने) पर भी राग वह मैं, ऐसी बहिर्मुख की दृष्टि थी, वह सर्व प्रकार से भेदज्ञान की कुशलता से अर्थात् कि उसकी ओर का लक्ष्य छोड़कर अन्तर्मुख में गया, उसे राग से भिन्न आत्मा को 'यह आत्मा, वह ज्ञानानुभूति' ऐसा उसे अनुभव हुआ। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्य और ज्ञान ज्योतिस्वरूप, उसमें जो यह विकल्प पुण्य-पाप के हैं, वे बहिर्मुख से मानो चैतन्य के द्रव्य में मिश्रित हो, एक हो, ऐसा दिखते हैं। ऐसा अनादि से माना है। आनादि से माना है। वह वास्तव में ज्ञायक ज्योति के साथ राग एक हुआ नहीं। बहुत सूक्ष्म बातें परन्तु, हों! वस्तु भगवान आत्मा चैतन्य की ज्योति प्रभु, उसमें रागादि मानो मिश्रित हों, ऐसा उसके ही ऊपर के अस्तित्व की मौजूदगी को स्वीकारता हुआ अनादि का अज्ञानी उसे ही आत्मा मान रहा है। आहाहा! तथापि अन्दर भेदज्ञान की छैनी करने का प्रसंग है। दोनों एक हुए नहीं। वास्तव में दोनों एक हुए नहीं, ऐसा कहते हैं। मिश्रितपना होने पर भी, ऐसा। समझ में आया? सर्व प्रकार से भेदकौशल्यता। चैतन्य ज्ञायकस्वरूप, जिसमें ज्ञात हो राग, वह राग जिसमें ज्ञात हो, वह मैं। जो रागादि ज्ञात हो, उसमें मैं नहीं। समझ में आया?

यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ... अर्थात् राग को जाननेवाला... जाननेवाला... और स्व को जाननेवाला, ऐसी ज्ञान की दशा, वह दशा, वही यह आत्मा है, ऐसी अनुभूति वही मैं हूँ। **ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ,...** ऐसा आत्मज्ञान, देखो! पहले राग का होता था। सूक्ष्म बात है। राग पुण्य-पाप के विकल्प का ज्ञान था। ज्ञान तो ज्ञान का था। परन्तु मानता था कि मानो विकल्प से ज्ञान एक हुआ है। समझ में आया? ज्ञान

जानन स्वभाव तो जानन स्वभाव का ही था। परन्तु जानन स्वभाव के साथ वह विकल्प, उसकी दृष्टि अन्तर में नहीं, इसलिए जैसा विकल्प बहिर्मुख है, उसके साथ यह वस्तु मानो एकमेक मिश्रित हुई हो, ऐसा वह मानता था। एक हुई नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर का तो कब घुस गया है अन्दर? वह तो भेद ही है। बाहर के साथ सम्बन्ध भी क्या है? रजकण स्पर्शे ही नहीं। यह तो जो स्पर्शित है, उसके साथ बात करते हैं। क्या? शरीर, वाणी, मन, जड़ परमाणु को तो आत्मा ने कभी स्पर्श ही नहीं किया। तीन काल में स्पर्श नहीं किया। मात्र स्पर्श हुआ है इसे राग-द्वेष के विकल्प के साथ। क्योंकि एक समय का अनित्य तादात्म्यभाव, उसे अपना भाव जानकर वहाँ रुका रहा है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो यह ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्य ज्योति से बाह्य लक्ष्य से प्रगट हुए पुण्य-पाप के भाव, वे कहीं जीव का स्वरूप नहीं। उस अजीवस्वरूप को, इस जीव के साथ मानो मिश्रित हो ऐसा मानकर, उसमें ही मैं हूँ, ऐसा मानकर भटक रहा है। आहाहा! समझ में आया?

सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से... 'परमविवेककौशलेनायम' सर्व प्रकार से परम, यहाँ परम लिया है। विवेक भिन्न। उसकी कौशल्यता, प्रवीणता। भगवान आत्मा जिसमें ज्ञात हो, वह जाननेवाले की भूमिका वह आत्मा की है। राग और विकल्प वह आत्मा की भूमिका नहीं। वह आत्मा में है नहीं। आहाहा! ऐसे अन्दर जाने, तब उसे आत्मज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। वैद्यराजजी! इसके बिना धर्म-बर्म है नहीं। लाख यात्रा जाये, लाख सम्मेदशिखर में सिर फोड़े जाकर। कुछ धर्म-बर्म नहीं, ऐसा कहते हैं। चिल्लाहट मचाये। सुन न अब।

मुमुक्षु : जब तक आत्मा को नहीं जाना....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तक कुछ धर्म-बर्म है नहीं।

मुमुक्षु : वहाँ तक करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना। जानने का प्रयत्न यह करना। जो प्रयत्न राग और पर की ओर करता है, वह यह करना। इसके लिये तो यहाँ कहते हैं।

यह तो अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त टीका करते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में विराजमान थे। भगवान के पास गये थे। आकर यह लाये और कहते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं और हम भी ऐसा मानते हैं और अनुभव करते हैं। आहाहा! अरे भगवान! अरे प्रभु! वह घुस गयी है न बहुत। कहीं सूझ पड़ती नहीं। परन्तु सूक्ष्म पड़ती नहीं, यही सूझ पड़ती है अन्दर। समझे? वैद्यराजजी! एक लड़का हमको पूछता था। सात वर्ष का लकड़ा। सात वर्ष का, हों! महाराज! आप, आत्मा को देखो-देखो (ऐसा) कहते हो। सात वर्ष का लड़का। अभी तीन-चार वर्ष पहले। यहाँ जामनगर का। लड़का अभी दस वर्ष का हुआ। वह पूछता था। खड़ा हो गया। चर्चा चलती थी। हम तो सबको प्रभु-प्रभु कहते हैं न। उठकर कहे, प्रभु! आप कहते हो कि आत्मा को देखो। तो आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है। आँख मींचते हैं तो अन्धेरा दिखता है। किसे देखना? ऐसा पूछा। वैद्यराजजी! फिर उससे कहा, भाई! अन्धेरा दिखता है, वह किसमें दिखता है? अन्धेरा अन्धेरे में दिखता है? या अन्धेरा चैतन्य में दिखता है? अभी समझते नहीं। अन्धेरा दिखता है न? अन्धेरा। अन्धेरा अन्धेरे में दिखता है या चैतन्य में दिखता है? चैतन्य में अन्धेरा दिखता है। यह अन्धेरा है, ऐसा निर्णय कौन करता है? ज्ञान करता है। ज्ञान में अन्धेरा नहीं। परन्तु ज्ञान, यह अन्धेरा है—ऐसा निर्णय करता है। पकड़ नहीं सकते। मूल यह लाईन ही नहीं न! वह तो सात वर्ष का लड़का था। कहा कि हाँ। ऐसा कहा, हों! प्रभु! अन्धेरा दिखता है न? तो अन्धेरे में अन्धेरा दिखता है? अन्धेरे के अस्तित्व में अन्धेरा दिखता है? कि चैतन्य प्रकाश में अन्धेरा दिखता है? तो चैतन्य प्रकाश देखता है कि यह अन्धेरा है। तो चैतन्य प्रकाश का निर्णय हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : चैतन्य प्रकाश और दो भिन्न होकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो भिन्न का निर्णय हुआ। वहाँ कहाँ कभी विचार किया नहीं। ऐसे का ऐसा अन्ध अन्धी दौड़। अन्धेरा है न? वह कहीं अन्धेरा अन्धेरे को जाने? नहीं

जाने। क्या ? अन्धेरा अन्धेरे को जाने ? नहीं जाने। वह जड़ की पर्याय है। जाननेवाला तो ज्ञान है कि यह अन्धेरा है। मैं अन्धेरा नहीं।

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, देखो! रागादि अन्धेरा है, विकार है। तो कहते हैं कि सर्व प्रकार से भेदज्ञान। वह नहीं। यह नहीं। यह... यह... यह... यह जिसमें ज्ञात हो, जिसमें ज्ञात हो, जिसमें ज्ञात हो, वह जाननेवाला आत्मा। यह नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो दिशा बदले, तब दशा बदलती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या हो ? पूरी विद्या, आत्मविद्या जो हिन्दुस्तान की और जैनदर्शन की मूल चीज़, पूरी फेरफार, बहुत फेरफार (हो गया)। बाह्य त्याग से माप करने लगे। फिर बहुत वे कहे, चरणानुयोग में ऐसे आचरण हैं, उस आचरण से इसका अनुमान होता है। परन्तु अनुमान चरणानुयोग से नहीं होता। सुन तो सही। उसका अनुभव तो अन्दर सम्यग्ज्ञान से होता है। समझ में आया ? आहाहा! 'बालं पश्यन्ती लिंगम्।' अज्ञानी लिंग—वेश को देखते हैं। मिश्र जीव साधारण उनका क्रियाकाण्ड कैसा है, ऐसा देखते हैं। तत्त्वज्ञानी उसकी दृष्टि और स्वभाव का झुकाव कहाँ है, उसे देखते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य मुनि दिगम्बर थे। उनके ९०० वर्ष बाद हुए। अभी ९००, पश्चात् हजार। कहते हैं कि भाई! तू आत्मा है न, यह आत्मा तो ज्ञान और शुद्धस्वरूप है न, भाई! उसमें रागादि है, वह आत्मा है या वह यह राग का जाननेवाला है ? जाननेवाला, उसका जाननेवाला उसरूप से हो या उसका जाननेवाला अपनेरूप से रहे ? आहाहा! समझ में आया ? जैसे शरीर का जाननेवाला शरीररूप से रहे ? जाननेवाला जाननेवालेरूप से रहे, तब शरीर को जाने। जाननेवाला जाननेवाले रूप से रहकर शरीर को जाने। शरीररूप हो आत्मा ? ऐसे आत्मा जाननेवाला जाननेवाला रहकर राग को जाने। तो वह तो राग से पृथक् हो गया। समझ में आया ?

इसका अर्थ यह कि जो मिश्रितपना था राग के साथ, वह विकल्प और पुण्य-पाप के साथ जो बहिरलक्ष्य में था, उसे वह जानता है कौन ? तो जानता है, ऐसा अन्तर्मुख ज्ञान हुआ। जाननेवाला यह ज्ञानदशा, यह ज्ञान। वह अन्तर ज्ञान, वह आत्मा, ऐसी जहाँ अनुभूति हुई, उसका नाम आत्मज्ञान हुआ, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? वह

आत्मज्ञान अर्थात् जो वह राग का ज्ञान था, ऐसा मानता था। पुण्य-पाप आदि राग का ज्ञान अथवा रागरूप मैं। समझ में आया? राग का ज्ञान। उस समय कहीं ज्ञान राग का नहीं था। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प... तथापि यहाँ से ही यह कहा है कि अनुभूति वह मैं हूँ। उस समय भी ज्ञान ज्ञान का ही था। परन्तु राग के साथ मिश्रित है, ऐसा माना था। समझ में आया? क्योंकि उसका लक्ष्य वहाँ था न, इसलिए यह ज्ञान ज्ञान का है और राग को जाननेवाला ज्ञान का है, ऐसा नहीं था। परन्तु यह राग का जाननेवाला, वह वहाँ रुक गया था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह **सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से 'जो यह अनुभूति है...** जाननेवाला राग से लक्ष्य हटा। राग से लक्ष्य हटा। भेद हुआ न? हटकर यह जाननेवाला वह मैं, ऐसा अन्तर में गया कि यह अनुभूति है, वह मैं। अनुभव अर्थात् जाननेवाले का अनुभव हुआ, वह आत्मा है। राग, वह आत्मा नहीं, दया-दान आत्मा नहीं, व्यवहार विकल्प वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ,...** क्या कहते हैं? **यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ, इस आत्मा को जैसा जाना है, वैसा ही है,...** देखो! ज्ञान में आत्मा जाना कि ज्ञानस्वरूप चैतन्यमूर्ति ही है। वह रागरूप, पुण्यरूप, बहिर्मुखपने के विकल्परूप अन्तर्मुख चीज़ कभी हुई नहीं। बहिर्मुख के विकल्परूप अन्तर्मुख की चीज़ बहिर्मुखपने कभी हुई नहीं। ऐसे बहिर्मुख के लक्ष्य से छूटकर भेदज्ञान किया। भाषा। इसका अर्थ यह कि पर के लक्ष्य से छूटकर भेदज्ञान की प्रवीणता से अर्थात् उसके लक्ष्य से छूटकर अन्दर में गया ज्ञानस्वरूप, 'यह ज्ञान, वह आत्मा।' वह आत्मा जैसा जाना, वैसा ही है। चैतन्य शुद्ध। पर्याय में आनन्द आया, पर्याय में ज्ञान आया, उसे पकड़ने का, अनुभूति हुई, प्रतीति आयी। वही आत्मा, ऐसा जो जाना, वैसा ही है। जाना ज्ञान में, वैसा ही है। **इसी प्रकार का प्रतीति जिसका लक्षण है ऐसा, श्रद्धान उदित होता है, तब...** उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। समझ में आया? आहाहा!

इस जगत के छोटे-छोटे खेल की कुंची, कुंची और रेसा और फेसा निकाले। रस-रस। रस-कस नहीं कहते? रस-कस निकाले। गन्ने के छिलकों का भी अन्दर जरा

कस न रह जाये तो ऐसे लोहे के कोल्हू में (चढ़ाकर) कस निकालते हैं। यह शेरडी समझे न? गन्ना। गन्ने के टुकड़े होते हैं न। दाँत में चूसकर निकाल डाले तो थोड़ा तो रस रहे, हों! और वह लकड़ी के कोल्हू में जो करते लकड़ी के पीलने के, तो भी थोड़ा रस रहे। समझे? अब लोहे के हुए। छिलके अकेला। अकेला कस निकाल डाले अन्दर से। रस ले ले अकेला पूरा। समझ में आया? ऐसे आत्मा का रस, ज्ञानरस, वह राग के छिलकों में नहीं। आहाहा!

भेदज्ञान की छैनी से बहिर्मुख के राग को, अन्तर्मुख के ज्ञान को भिन्न करके यह अनुभव हुआ वह आत्मा है, ऐसा जाना है। समझ में आया? यह बात की बातें नहीं, भाई! यह तो अन्दर की बातें हैं। इसलिए यह कहीं शब्द के पकड़ने से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। यह वस्तु-यह वस्तु जिसकी मौजूदगी में अस्तिरूप से जिसकी मौजूदगी में ज्ञान है। यह राग है, वह राग यह है, यह है उसने राग ही जाना? यह राग है, वह जाना तो ज्ञान ने। इसलिए राग और ज्ञान दोनों एक नहीं हैं। इसलिए ज्ञान अन्तर्मुख होकर यह आत्मा है, ऐसा जाना। समझ में आया?

यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ,... क्या? श्रद्धान। ऐसा न? श्रद्धान। **आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ,...** क्या? कि **इस आत्मा को जैसा जाना है, वैसा ही है, इसी प्रकार की प्रतीति जिसका लक्षण है ऐसा, श्रद्धान उदित होता है,...** ऐसा। प्राप्त होता श्रद्धान उदय होता है। समझ में आया? **ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ,...** ऐसा। आत्मज्ञान हुआ, उसमें से प्राप्त होता। **इस आत्मा को जैसा जाना है, वैसा ही है,...** अकेला ज्ञान का गोला, ज्ञान का पिण्ड आनन्द का रसकन्द वह है। **ऐसी प्रतीति...** जानने से प्रतीति हुई। कहीं जाने बिना प्रतीति किसकी? ऐसा कहते हैं। जो चीज़ जानी नहीं, उसकी श्रद्धा करो। परन्तु किस प्रकार से करे श्रद्धा? कहो, समझ में आया इसमें? **जैसा जाना है, वैसा ही है, इसी प्रकार का प्रतीति जिसका लक्षण है...** किसका? कि श्रद्धान। **ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ,...** श्रद्धान, आत्मज्ञान से प्राप्त होता समकित प्रगट होता है। आत्मज्ञान से प्राप्त होता समकित प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया इसमें? आत्मज्ञान अर्थात् यह आत्मा ऐसा ज्ञान (हुए) बिना प्रतीति कहाँ से आयी? किसकी आयी? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में हटा हुआ ही पड़ा है। कहाँ घुस गया है अन्दर? मुफ्त का चाहे जितना पुकार करे नहीं। वहाँ घुस गया है वहाँ? महासुख यहाँ घुस गया है अन्दर? वह वहाँ सब पड़े हैं तीनो उनके घर में। मुफ्त की विकल्प की जाल खड़ी की और उसे जाननेवाला भिन्न हूँ, ऐसा न मानकर यह ही मैं हूँ, ऐसा मानता है, लो! उसका अपना अपराध है या किसी का अपराध है उसमें? समझ में आया? यह ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं, देखो!

यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ,... सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन होने पर यह आत्मा। आहाहा! समझ में आया? जब अब सम्यक् हुआ, आत्मज्ञान से प्राप्त होता सम्यग्दर्शन हुआ, **तब समस्त अन्य भावों का भेद होने से...** देखो अब। अब स्थिर होने का निश्चित हो गया। समझ में आया? क्या कहा? **समस्त अन्य भावों का भेद होने से...** क्या कहा? आत्मज्ञान हुआ कि यह आत्मा, वह ज्ञानानन्द, रागादि नहीं। ऐसा भान हुआ, तब सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। जब जाना, उसकी प्रतीति हुई। जाने बिना प्रतीति किसकी? ऐसा कहते हैं। यह आत्मा, ऐसी प्रतीति-श्रद्धा हुई। श्रद्धा हुई, **तब समस्त अन्य भावों का भेद होने से...** प्रत्येक दया, दान, विकल्पादि वे मेरे नहीं, ऐसा भेद होने से **निःशंक स्थिर होने से...** देखो अब।

निःशंक स्थिर होने से... निःशंक स्थिर होने को अर्थात्? ऐसे वह राग में स्थिर होता था, उसमें ठीक है... उसमें ठीक है... ऐसे मिथ्यात्व में स्थिर था न उसमें? निःशंक हुआ कि इस स्वरूप में ही स्थिर होना, यही चीज़ है। विकल्पादि भेद से भिन्न पड़कर **निःशंक स्थिर होने से आत्मा का आचरण उदय होता हुआ...** देखो! भाषा। सबमें उदय, उदय। समझ में आया? श्रद्धा का उदय हुआ। यह सूर्य उगे, कहते हैं न? सूर्य उदय हुआ। ऐसे यहाँ समकित उदय हुआ। 'समकित रूपी रे सूरज उगियो।' यह ऐसा कहते हैं। परन्तु कब? उदय कहा। ऐई! समकित का उदय! उदयभाव! उदय अर्थात् प्रगट होना। उदयभाव नहीं। सेठी! आहाहा! सूर्य उदय को प्राप्त हुआ। यह उदय हुआ। इसका अभी भाग्योदय है, ऐसा कहते हैं न लोग? भाग्योदय है। इसे यह उदय है। यहाँ

कहते हैं, समकित उदय हुआ। अर्थात्? कि आत्मज्ञान हुआ यह आत्मा। आत्मज्ञान अर्थात् कि आत्मा का ज्ञान। आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। जो ऐसे रागादि का ज्ञान मानकर बैठा था, वह मिथ्याभ्रम था। क्योंकि वह ज्ञान राग का नहीं। ज्ञान आत्मा का था। वह ज्ञान आत्मा का है, ऐसा भान आत्मज्ञान हुआ, तब आत्मज्ञान में श्रद्धा उदय होती है। तब सम्यग्दर्शन का प्रगटपना होता है। उदय अर्थात् प्रगट होता है। आहाहा! शान्ति से विचारे न यह सब शास्त्र। परन्तु एकदम तकरार, वादविवाद करे। बापू! ऐसा समय है न, विचार तो कर। तेरे लिये तो देख। वादविवाद का क्या काम है तुझे? दूसरा भले चाहे जो करता हो, खोटा करता हो, ले! परन्तु अपने को स्वाध्याय से, न्याय से क्या आचार्य कहते हैं और कैसे होना चाहिए, ऐसा अपने लिये निर्णय करने का समय नहीं ले और दूसरे के लिये अर्थहीन क्रिया की। ऐई! सोनगढ़वालों ने यह किया। सब किया उन्होंने।

यहाँ कहते हैं कि श्रद्धान उदय होता है। तब उदय होता है। इसके बिना समकित प्रगट नहीं होता। यह वस्तु आत्मा, वह ज्ञान और ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा अनुभव हुआ, तब सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। तब चारित्र उदय होता है, पश्चात् ऐसा कहते हैं। इसके बिना चारित्र होता नहीं। वैद्यराजजी! इसके बिना जूते-बूते छोड़ना और फोड़ना कहते हैं, वह मिथ्यात्व का पोषण है, ऐसा कहते हैं। माने कि हमने जूते छोड़े, हम सहन करते हैं। मुनि सहन करते हैं न, इसलिए हम सहन करने का अभ्यास करते हैं। परन्तु किसका अभ्यास? बात दूसरी है यह। लड़की ने कहा न? लड़की ने। बहिन ने कहा न तुम्हारे घर की लड़की ने? बापूजी! पिताजी! यह सुनो। सुनते थे बराबर, हों! इसलिए कहते हैं। सुनो, सुनो पिताजी! यह सुनो। यह बात दूसरी है। अभी तक सब शून्य है। आहाहा!

कहते हैं... आहाहा! भाषा देखो न सब! यह उदय पाता है। '**श्रद्धानमुत्प्लवते**' ऐसा है न? '**उप्लवते**' भाषा ऐसी है। '**श्रद्धानमुत्प्लवते तदा समस्तभावान्तरविवेकन निःशङ्कमवस्थातुं शक्यत्वादात्मानुचरणमुत्प्लवमानमात्मानं**' ऐसा है। दोनों में यह शब्द हैं। आहाहा! संस्कृत की यह तो बात की, हों! यह तो उदय का शब्द क्या प्रयोग किया है, ऐसा देखा। '**मुत्प्लवमान**' व्युत्सर्ग। पण्डितजी! उत है न। विशेषरूप से प्रगट होता

है। **'उप्लवते'।** कहो, समझ में आया? **तब समस्त अन्यभावों का भेद होने से...** जब सम्यग्दर्शन में भान हुआ, आत्मज्ञान हुआ अर्थात् प्रतीति हुई, उदय हुई, तब ऐसा हुआ कि अन्य भावों का भेद हो गया। कोई भी व्रतादि के विकल्प, दया-दान के विकल्प से आत्मा भिन्न पड़ गया। उसी और उसी में है अभी। अन्तर है उसमें? हिन्दी है न हिन्दी? ठीक।

समस्त अन्य भावों का भेद होने से निःशंक स्थिर होने से... देखो! निःशंकता आयी पहले। यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें ही स्थिर होना, वह चारित्र है, ऐसी निःशंकता (हुई)। सम्यग्दर्शन हुआ तो निःशंक स्थिर होने को निश्चित हुआ। यह राग करूँ तो ऐसा होगा, विकल्प करूँ तो ऐसा होगा, व्यवहार करूँ तो ऐसा होगा, बाद में करूँ तो स्थिर होगा, यह बात गयी। समझ में आया? आहाहा! किसी को यह मार्ग लगे एल.एल.बी. और बी.ए. का होगा बड़ा मानो। कहीं का होगा। यह तो अभी पहले ऐकड़ा की बात है। ऐई! विजयकुमारजी! यह मानो तुम्हारे बड़े-बड़े एम.ए. पढ़ते हैं न, ऐसी होगी यह बात? यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की पहली बात है। समझ में आया?

तब समस्त अन्य भावों का भेद होने से... अर्थात्? विकल्पमात्र चैतन्य के अन्तर्मुख की दशा में नहीं और बहिर्मुख का विकल्प उसके साथ एकपना नहीं। ऐसा होने से **निःशंक स्थिर होने से आत्मा का आचरण उदय होता हुआ...** देखो! यह आत्मा का आचरण, वह चारित्र है। आत्मा ज्ञानानन्द में स्थिर होना, वह आचरण है, उसका नाम चारित्र है। यह पंच महाव्रत आदि विकल्प, वह चारित्र नहीं। आहाहा! वह तो आस्रव है। आत्मा का आचरण उदय होते हुए। कहो, समझ में आया? **आत्मा को साधता है।** लो, ठीक! चारित्र आया न। यह ... आत्मा को साधता है। वास्तव में चारित्र हुआ न। मोक्ष का साक्षात् कारण तो वह है। इसलिए वहाँ साधता है, ऐसा ले लिया।

मुमुक्षु : आचरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ठेठ लिया। वह तो आत्मज्ञान से श्रद्धा उदय हुई और श्रद्धा होकर चारित्र (हुआ), वह चारित्र आत्मा को साधता है, ऐसा। पूर्ण को साधता है। आत्मा को साधता है। वह आत्मा को साधता है। अर्थात् पूर्ण प्राप्ति में चारित्र साधन है।

परन्तु वह चारित्र स्वरूप में रमना, वह चारित्र है। आहाहा! आत्मा का आचरण। व्यवहार विकल्प है, वह आत्मा का आचरण नहीं। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, वह आत्मा का आचरण नहीं। वह राग है, आस्रवतत्त्व है वह तो। चिल्लाहट मचाये, चिल्लाहट मचाये। बापू! क्या करना? शान्ति से देख न। शान्ति से देख न। तेरे घर के स्वभाव में इतनी कीमत है, उसकी कीमत देता नहीं, तू राग की कीमत देने जाये तो तेरी मूर्खता होती है। सम्पूर्णत: तू तेरे घर की महत्ता को महिमा देने न जाये और यह राग को महिमा देने जाये तो तेरी मूर्खता होती है। आहाहा!

भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप के आचरण को साधता है। **ऐसे साध्य आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है।** यह उपपत्ति की एक व्याख्या हुई। अब **अन्यथा अनुपपत्ति है...** इसकी दूसरी व्याख्या करेंगे। ऐसे साध्य अर्थात् मुक्ति की पर्याय ऐसी आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार से प्राप्ति है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से प्राप्ति नहीं। कहो, बराबर है? अब घर जाकर यह वाँचना चाहिए न बैठे तो। ऐसे के ऐसा यहाँ सुने नहीं रखना वापस। वाँचन चाहिए। ऐई! सेठी! मिलान करना चाहिए। बात तो कितनी आती है। पौन घण्टे से तो चलती है।

मुमुक्षु : यह भाव ही आते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाव आते नहीं तो रस है उसका। तुम तो पति-पत्नी दो हो। तुमको रस नहीं आता क्या है? वह अधिक लड़के-लड़की हों, वे फँसे हों। तुम कहाँ फँसे हो वहाँ? इसका रस आना चाहिए। संसार में कैसे रस आता है? कोई पाँच हजार की आमदनी एक घण्टे में बतावे तो, हें! ऐसा हो जाये। हें! क्या हें? मरने का है, मर न अब। पाँच हजार आवे तो मरेगा वहाँ राग में। हें! क्या हें? एक घण्टे में पाँच हजार की आमदनी। एक घण्टे में पाँच हजार की आमदनी। कहाँ? ऐसे अन्दर से आवे, हों! हें! मरने का है अब सुन न। पाँच हजार आवे तो क्या है? तेरा पूर्व का पुण्य होगा, वह जल जायेगा और राग करता है, उसका पाप बँधेगा। अब उसमें तुझे, हें! आता है। सत्तर लाख के करोड़ होंगे। किसके? फिल्म के। कहा था उसने। कहा नहीं था? उसने कहा था मुझे। पूनमचन्द को ७० लाख की फिल्म है, उसके करोड़ होंगे। कहो, समझ

में आया? परन्तु क्या धूल है अब ७० लाख और करोड़ में। उसमें आत्मा को क्या? ऊँचा हुआ या नीचे पड़ा?

यह आत्मा। आहाहा! राग से अधिक अर्थात् भिन्न, पुण्य से भिन्न, व्यवहार से भिन्न ऐसे आत्मा का ज्ञान होने पर, श्रद्धा प्रगट होने पर, यही आत्मा का आचरण करना और अनुभव करना, उससे आत्मा की सिद्धि है। बाकी किसी प्रकार से (सिद्धि नहीं होती)। देखो! यह तीन ही मार्ग कहे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप। एक ही। दूसरा कोई व्यवहार-फ्यवहार दूसरा था, वह मोक्षमार्ग है, ऐसा इनकार करते हैं यहाँ, देखो! यहाँ तो एक ही मोक्षमार्ग है, ऐसा कहते हैं। टोडरमलजी ने घर का नहीं कहा। टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग दो का प्ररूपण कहा है। दो मार्ग नहीं कहे। कथन कहा है, वह शास्त्र में से कहा है। उन्होंने घर का एक शब्द कहा नहीं। उन्हें उड़ाते हैं। वह यहाँ पूछते हैं कि इस संस्कृत की टीका का अर्थ है या अद्धर से करते हो? ऐसा कहते हैं। या हिम्मतभाई ने अद्धर से किये हैं? हिम्मतभाई ने। यह संस्कृत टीका का अर्थ है। ये हमारे दलाल हैं। संस्कृत टीका के अर्थ हैं न यह? हिम्मतभाई ने किये हुए। या अद्धर से हैं? इस संस्कृत टीका के हैं यह। '**निःशंकमवस्थातुं शक्यत्वादात्मानुचरणमुत्प्लवमानमात्मानं साधयतीति साध्यसिद्धेस्तथोपपत्तिः**' यही है। यहाँ तो अक्षर-अक्षर हिम्मतभाई ने अक्षर-अक्षर लिखा है यह। पहले इतना सब स्पष्ट नहीं था। थोड़ा बहुत किया भाई ने ठीक किया। पण्डित जयचन्द्रजी ने। परन्तु यह तो बराबर शब्दशः शब्द लिखा है। प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार संस्कृत टीका को लगकर किया है। देखो न, अभी नहीं करते, इतने वर्ष से सिर पर डाला है तो भी। संस्कृत टीका हाथ आती नहीं। आचार्य की टीका बिना क्या करना अकेला? यह भटका अभी। वह आचार्य की टीका हो तो करे। वरना वे नहीं करते। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा कि आचार्य का हो तो मुझे स्पष्टीकरण आश्रय लेकर करना है। अपने घर का एक भी अक्षर न हो। आचार्य का हृदय हो, वह सामान्यरूप से उन्होंने कहा हो कि यह कहने का है, ऐसा करके खोला जाये। परन्तु उन्होंने न कहा हो तो एक अक्षर अपने से नहीं कहा जाता। महा सन्त, दिगम्बर मुनि, सन्त केवलज्ञानी के पथानुगामी, केवलज्ञानी के मार्गानुसारी, तीर्थंकर के कुल के जन्मे हुए। ऐसे दिगम्बर सन्त, वे सिद्ध के कुल में

जानेवाले, उन्होंने एक-एक अक्षर कहा है। उससे कोई विरुद्ध कैसे लिखे? समझ में आया? वे सन्त महा भवभीरु थे। भवभीरु... भवभीरु...

धवल में लिखते हैं कि अरे! यह दो प्रकृति ऐसे कही है आठवें में। फलाने में इतनी कही है।... मुझसे कैसे दूसरी कही जाये? दो प्रकार धारणा में चले आये हैं। एक प्रकार सच्चा होगा, यह बात बराबर है। परन्तु दो प्रकार चले आये, उनमें कौनसा सच्चा, यह मुझसे जीभ नहीं खुलती अब। धवल में है। आहाहा! वीरसेनस्वामी। आठवें गुणस्थान में इतने भाग में एक भाग में इतनी प्रकृति जाये और दूसरे में इतनी जाये। एक आचार्य का मत है कि इतनी पहले जाये और बाद में (दूसरी जाये)। दोनों बात कहते हैं, यह हमने सुनी हुई परम्परा से धारूँगा कहूँगा। दोनों में एक बात सच्ची होगी। परन्तु मुझसे कैसे अलग पड़े? आहाहा! समझ में आया? महासन्त आकाश के स्तम्भ जैसे सन्त दिगम्बर पके हैं। उनकी टीकायें, उनके अर्थ, वह तो आत्मा को स्पर्शकर आयी हुई बात है। उसमें फेरफार करने के लिये कोई समर्थ नहीं है। यह आचरण। टीका में से यह अर्थ आये हुए हैं। अब प्राप्ति न हो दूसरे प्रकार से, यह बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - १७-१०-१९६६
गाथा-१७-१८, प्रवचन - ७८

समयसार जीव-अजीव अधिकार चलता है। १७-१८ गाथा। क्या कहते हैं? देखो! पहली बात पहले यह आ गयी, पहले पैराग्राफ में तो ऐसा आ गया, उससे यह विरुद्ध है। यह आत्मा, अनादि काल से पुण्य-पाप आदि अनेक विकल्पों का जो विकार है, उसे अपना मानकर अपने जीव का अस्तित्व उसमें मानता है। अस्तित्व समझे? मौजूदगी। उससे भेदज्ञान नहीं करता। जिसे अपना माने, उसे भिन्न कैसे करे? अनादि काल से संकर अर्थात् पुण्य-पाप के साथ मिश्र-खिचड़ा, खिचड़ा करता है। खिचड़ा समझते हो? खिचड़ी नहीं परन्तु खिचड़ा अर्थात् दाने के साथ कोई मूंग का दाना, बाजरी का दाना (इकट्ठा करे)। एकरूप दाना नहीं और यह एक नहीं, सब खिचड़ा। इसी प्रकार भगवान आत्मा रागादि भाव को अपने मानता था, उसे भेदज्ञानी प्रवीणता से, विवेक से, कौशलता से राग से भिन्न मेरी चीज़ अनुभव में आनेवाली अनुभूति, वह मैं आत्मा हूँ। राग से भिन्न अनुभव में आनेवाला आत्मा, वह मैं आत्मा हूँ। ऐसा आत्मज्ञान प्रगट होता है, तब यही आत्मा है, यही आत्मा है, ऐसी श्रद्धा होती है। वह श्रद्धा उदय होती है और श्रद्धा उदय होने पर उसी आत्मा में स्थिर होने से, रमने से अवश्य—जरूर कर्म से छूटेगा, ऐसा निर्णय होता है। ऐसा निर्णय होने के पश्चात् स्वरूप में अनुचरण करना, आचरण करना। शुद्धस्वभाव जैसा ज्ञान हुआ, वैसी प्रतीति हुई, उसमें ऐसे रमणता करना, वह चारित्र। उससे आत्मा की मुक्ति की सिद्धि की प्राप्ति होती है। कहो, समझ में आया?

आत्मा की मुक्ति अर्थात् परमानन्द की पूर्णता, परमानन्द की पूर्णता, परम शुद्धता की पूर्णता आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और आत्म अनुचरण द्वारा उसकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं होती। समझ में आया? यह कल आ गया है। दूसरा कोई मार्ग नहीं। समझ में आया? पूजा, भक्ति, दान और दया के विकल्प से मुक्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं।

ठीक है ? यह कल आया था। रात्रि में बोले थे, ५० में। तुम्हारे बोलने के बाद पकड़ में आया, देखो! क्या कहते हैं ? बोलो, लाईन है या नहीं ? पाप को पाप सब लोग कहे। क्या शब्द है ? पाप को पुण्य नहीं, पाप को पाप सब कहे। पाप को पाप सब कहे, परन्तु पुण्य को पाप विरल कहे, ऐसा है। द्यानतराय की लाईन में ऐसा है। तुम भूल गये। रटे तो कायम बोले। समझ में आया ?

यहाँ तो यह कहते हैं, अपना शुद्धस्वरूप राग से वर्तमान मिश्रित होता है, ऐसा दिखता है, परन्तु ऐसा है नहीं। पर के साथ तो मिश्रित है नहीं, परद्रव्य तो भिन्न ही है, कर्म, शरीर आदि तो भिन्न ही है। मात्र पुण्य-पाप का जो विकल्प शुभ-अशुभराग उठता है, उसके साथ मिश्रित दिखता है (परन्तु) ऐसा है नहीं। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प से भिन्न अपना आत्मा यह ज्ञान अनुभूति, ज्ञानस्वरूप वह आत्मा, अनुभूति वह आत्मा—ऐसा पहले आत्मज्ञान उदय होता है—आत्मज्ञान प्रगट होता है। आत्मज्ञान हुआ, उसमें श्रद्धा-सम्यग्दर्शन हुआ कि यही आत्मा है, यही आत्मा, यही आत्मा। उसमें स्थिर होने से सर्व कर्मों से छूटा जा सकेगा, ऐसा सम्यग्दर्शन में निर्णय हुआ। आत्मा आनन्दकन्द है, उसमें स्थिर होने से कर्मों से छूटा जा सकेगा, ऐसी सम्यग्दर्शन में प्रतीति हुई। और पश्चात् उसमें लीनता करने से आत्म-अनुचरण हुआ, आत्म-आचरण हुआ, आत्मचारित्र हुआ। उस चारित्र से दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मुक्ति होती है। **साध्य आत्मा की सिद्धि...** साध्य अर्थात् मुक्तदशा की सिद्धि इन तीन उपाय से होती है। तीनों एक ही हैं। दूसरे प्रकार से नहीं होती। दूसरा कोई मार्ग मुक्ति के लिये नहीं। मोक्षमार्ग एक ही है, दो मार्ग नहीं। समझ में आया ?

परन्तु... अब कहते हैं। पैराग्राफ आया न ? **परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** देखो! **परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** ज्ञानस्वरूप अनुभवस्वरूप। यहाँ ज्ञानस्वरूप लो। **आबालगोपाल सबके...** आबाल-वृद्ध। बालक से वृद्ध। सबके **अनुभव में सदा स्वयं ही...** अनुभव में-ज्ञान में सदा **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** वह ज्ञान ही स्वयं सदा अनुभव में आता है। समझ में आया ? आबाल गोपाल-बालक से लेकर वृद्ध और युवा उसमें आ गये, सबको ज्ञान ही अनुभव

में सदा स्वयं (आता ही है)। राग, पर को जानने में भी ज्ञान का ही अनुभव होता है। **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** समझ में आया? ऊर्ध्वता उसका एक स्वभाव है। आत्मा का... साधारण में ऊर्ध्वता, ऊर्ध्वता गमन लिखा है, परन्तु श्रीमद् ने ऊर्ध्वता का स्वभाव ऐसा लिया है,... यह आता है न? बनारसीदास में, 'समता, रमता, ऊर्ध्वता ज्ञायकता सुखभास' आता है न? आता है न? 'चेतनता वेदकता ये सब जीव विलास।' जीव की व्याख्या की है। उसमें ऊर्ध्वता एक जीव का गुण गिनने में आया है। ऊर्ध्वता। ऊर्ध्वता की व्याख्या है। समयसार नाट में तो साधारण अर्थ किया है। साधारण मनुष्य हो (उसे समझ में आये इसलिए)। परन्तु यहाँ बहुत सरस अर्थ किया है।

अपने आया, **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** पहली लाईन—पहली पंक्ति। आबाल वृद्ध - बालक से लेकर वृद्ध अर्थात् सब जीव। सबके अनुभव में—उनके ज्ञान में सदा और स्वयं ही, सदा और स्वयं ही **आने पर भी...** उसके अनुभव में सदा स्वयं ज्ञान ही आता है। समझ में आया? राग, शरीर आदि जो सब क्रिया होती है, उसमें पहले ज्ञान ही ख्याल में आता है, ज्ञान ही ख्याल में आता है। भाई! इसका अर्थ सरस किया है, देखो!

कोई भी जाननेवाला... श्रीमद् के चमत्कारी अर्थ हैं।

समता, रमता, ऊरधता, ज्ञायकता, सुखभास;
वेदकता, चैतन्यता, ये सब जीव विलास॥ २६

यह बनारसीदास का श्लोक है। और जड़ में यह है,

तनता मनता वचनता, जडता जडसम्मेल;
लघुता गुरुता गमनता, ये अजीव के खेल॥ २६

ऊर्ध्वता आया यहाँ? देखो! यहाँ यह कहते हैं, **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** अपना ज्ञान ही उसे (अनुभव में) आता है। क्यों?

कोई भी जाननेवाला... यह तो हिन्दी है न। जाननेवाला। **कोई भी जाननेवाला कभी भी...** किसी समय, समय में भी **किसी भी पदार्थ को...** इतने शब्द लिये हैं। **कोई**

भी जाननेवाला कभी भी किसी भी पदार्थ को... ऐसा लिया है। **अपने अविद्यमानरूप से जाने ऐसा बननेयोग्य नहीं।** क्या कहते हैं, समझ में आया? कोई भी जाननेवाला जीव किसी काल में किसी भी पदार्थ को अपने अविद्यमानपने—आत्मा के अविद्यमानपने पर को जाने, ऐसा नहीं होता। भाषा देखो! क्या कहा, समझ में आया? **कोई भी जाननेवाला...** यह ऊर्ध्वता की व्याख्या है। यही व्याख्या यहाँ लागू पड़ती है। **कोई भी जाननेवाला कभी भी...** कभी भी अर्थात् किसी भी काल में और किसी भी पदार्थ को। कोई भी अर्थात् सभी जीव, कोई जड़ आदि को जाननेवाला **अपने अविद्यमानरूप से...** अपने अविद्यमानरूप से। पर को कभी भी किसी भी पदार्थ को जाननेवाला **अपने अविद्यमानरूप से...** अपनी अस्ति बिना जाने, **ऐसा बननेयोग्य नहीं।** शशीभाई! अपने विद्यमानता-अस्ति न हो तो यह राग, यह शरीर, यह जीव—ऐसा जाना किसने? ज्ञानचन्दजी! समझ में आया?

प्रथम अपना विद्यमानपना घटित होता है,... भाषा देखो! प्रथम अपनी अस्ति—विद्यमान—मौजूदगी घटित होती है। अपनी विद्यमानता में वह ज्ञात होता है कि यह शरीर, यह वाणी, वह यह, वह यह, यह राग। समझ में आया? अपनी विद्यमानता में—अस्ति—मौजूदगी में (जानना) घटित होता है। **और किसी भी पदार्थ का...** किसी भी पदार्थ का **ग्रहण,...** आता है, **त्यागादि छूटते हैं या उदासीन...** इन तीन अवस्था का ज्ञान होने में **स्वयं ही कारण है।** ज्ञान होने में कारण है। यह राग गया, शरीर छूटा, यह चीज़ गयी, यह चीज़ आयी, उसमें उदासीनता, उन सबमें ज्ञान ही प्रथम कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दूसरे में?

किसी भी पदार्थ का ग्रहण... ग्रहण शब्द से चीज आनेवाली हो तब और छूटनेवाली हो तब और उदासीनता के समय **ज्ञान होने में...** उसका ज्ञान होने में, **स्वयं ही कारण है।** चीज़ छूटी, चीज़ आयी, पर से उदासीन रहा, उन सबमें ज्ञान स्वयं ही कारण है। जानना... जानना...

मुमुक्षु : करना-फरना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें करना-फरना नहीं। आहाहा! बहुत चमत्कारी अर्थ लिया है इन्होंने! समझ में आया?

किसी भी पदार्थ का... ऐसे ग्रहण नहीं कर सकता। **त्यागादि या उदासीन...** ग्रहण, त्याग और उदास, तीन बात लेंगे। और जानना। उसका ज्ञान होने में स्वयं ही कारण है। **दूसरे पदार्थ के अंगीकार में...** अब दूसरा पदार्थ आया। रोटी ली, गयी, आहार आया, आया छूटा। **दूसरे पदार्थ के अंगीकार में, उसके अल्प मात्र भी ज्ञान में...** उसके अल्प मात्र भी उस समय के ज्ञान में। जैसे रोटी आयी, चूरा हुआ, टुकड़े हुए, उसका ज्ञान तो प्रथम आत्मा करता है। वह तो ज्ञान करता है। **ज्ञान में प्रथम जो हो, तो ही हो सकता है...** उसमें प्रथम यदि ज्ञान हो तो ही इसे जानने का ज्ञान हो सकता है। **ऐसा सर्व से प्रथम रहनेवाला...** ऐसा सर्व से प्रथम रहनेवाला **जो पदार्थ, वह जीव है,...** वह जीव है।

मुमुक्षु : पहला नम्बर सबमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला नम्बर सबमें है, भाई! राग हुआ तो ज्ञान हुआ, ज्ञान में ज्ञात हुआ है, छूटा तो ज्ञान ने जाना। शरीर आया तो ज्ञान ने जाना, छूटा तो ज्ञान जानता है, उदासीन-वीतरागता हुई तो ज्ञान जानता है। समझ में आया?

उसे गौण करके... भगवान जाननेवाले को लक्ष्य में लिये बिना या गौण करके **अर्थात् उसके बिना कोई कुछ भी जानना चाहे...** आत्मा बिना कोई भी जानना चाहे **तो वह बनने योग्य नहीं, मात्र वही मुख्य हो...** जाननेवाला ही मुख्य हो। जहाँ-जहाँ सदा काल सर्वदा सर्व पदार्थ का आना-जाना, वह अपनी विद्यमानता मौजूदगी हो तो वह सब ज्ञात होता है। तो मुख्यता जाननेवाले की हुई। कहो, समझ में आया? **मात्र वही मुख्य हो तो ही दूसरा कुछ जाना जा सकता है...** जाननेवाले की विद्यमानता मुख्य हो तो ही जाना जा सकता है। तो सबमें मुख्यता-ऊर्ध्वता आत्मा की हुई। **ऐसा यह प्रगट 'ऊर्ध्वताधर्म' वह जिसमें है,...** ऐसा प्रगट ऊर्ध्वताधर्म जिसमें है, **उस पदार्थ को श्री तीर्थंकर जीव कहते हैं।** आहाहा! ज्ञानचन्दजी! रतिभाई!

प्रत्येक प्राणी को अपनी विद्यमानता बिना दूसरा ज्ञात हो, ऐसा बने? तो अपनी विद्यमानता में ज्ञान की अस्ति में—मौजूदगी में सबका जानना होता है तो मुख्यता-ऊर्ध्वता तो आत्मा की हुई। कहो, चन्दुभाई! यह यहाँ लागू पड़ता है। देखो!

मुमुक्षु : सबसे ऊँचा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबसे ऊँचा, सबसे अधिक—भिन्न रहनेवाला, ... रहनेवाला।

परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सबके सदाकाल... देखो यह! सबमें, यह बात की है। सबमें, लेना-देना, जानना उन सबमें ज्ञान की ही मुख्यता होती है। समझ में आया? स्वयं ही (अनुभव में) **आने पर भी...** अब कहते हैं। होता तो ऐसा है परन्तु मानता नहीं। उसकी दृष्टि स्व के ऊपर नहीं। आहाहा! है वह ऐसा ही। आबाल-गोपाल को ज्ञान में स्वयं आता होने पर भी। आत्मा का ज्ञान ही... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान की विद्यमानता में ही ज्ञान होता है। समझ में आया? क्योंकि उसकी विद्यमानता बिना कोई ज्ञात हो, उसकी अविद्यमानता में कोई ज्ञात हो, यह नहीं होता और कोई ज्ञात हो, ऐसा नहीं बनता। समझ में आया?

ऐसा होने पर भी **अनादि बन्ध के वश...** बन्ध के वश, हों! बन्ध कराता नहीं। भाषा देखो! अनादि बन्ध के (वश)। ऐसे ज्ञान में ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... सबमें ज्ञान मुख्य है, ऐसा लक्ष्य नहीं करके, अनादि बन्ध के वश होकर **पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से...** पर साथ एकत्वबुद्धि। शरीर, वाणी, मन, मैं कर्म, मैं राग, पुण्य-पाप आदि विकल्प मैं। सबको जाननेवाले की मुख्यता—ऊर्ध्वता को तो भूल गया, अनुभव में वही आ रहा होने पर भी कर्म के, बन्ध के, पर के लक्ष्य से, वश से पर के लक्ष्य और वश होकर **पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ़-अज्ञानी जन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'...** यह ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान वह मैं हूँ—**ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** उसमें उदित होता था। वहाँ तो आत्मज्ञान हुआ था, भाई! ऐसा कहना है। समझे न? ...आत्मा को जानना चाहिए, पश्चात् उसका श्रद्धान। बस, इतना ही लिखा है। यहाँ उदय भाषा प्रयोग की है। पाठ में अन्तर है कुछ? **'विमूढस्यापमहम-नुभूतिरित्यात्मज्ञानं नोत्प्लवत्ते'** **'नोत्प्लवत्ते'** वहाँ **'उत्प्लवत्ते'** है।

शब्द एक ही है। वहाँ '**उत्प्लवत्ते**' है, यहाँ '**नोत्प्लवत्ते**' है। शब्द तो एक का एक है। अन्तर नहीं। है? देखो! सबमें करेगा। '**उत्प्लवत्ते**' बराबर। वह तो इन्होंने शब्दफेर किया है इतना। पाठ तो इतना ही है, देखो! '**विमूढस्यापमहमनुभूतिरित्यात्मज्ञानं नोत्प्लवत्ते**' एक ही शब्द है, दोनों संस्कृत में है। क्या कहते हैं? देखो!

आत्मा प्रत्येक समय में प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक परपदार्थ को जानने के काल में अपना ज्ञान ही उसे मुख्यरूप से जानने में आता है। परन्तु ऐसा नहीं मानकर, ज्ञान में ज्ञात होनेवाली चीज़ के ऊपर लक्ष्य रखकर 'वही मैं हूँ और उसे ही मैं जानता हूँ'— ऐसा अनादि से कर्म-पर के वश होकर मूढ़ और अज्ञानीजन को **यह अनुभूति है...** यह जानना... जानना... जानना... जानना... (होता है)। राग नहीं, पुण्य नहीं, शरीर नहीं। उसे जानना... जानना... जानना, ऐसा जो **यह अनुभूति है वही मैं हूँ' ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** आत्मज्ञान उसे प्रगट नहीं होता, अज्ञान प्रगट होता है। राग... राग, पुण्य, दया, दान विकल्प का ही लक्ष्य करके लक्ष्य करनेवाले का ज्ञान नहीं करता परन्तु जिसका लक्ष्य करता है, उसका ज्ञान करता है और वह मैं हूँ, ऐसा अज्ञान प्रगट करता है। समझ में आया? देखो! टीका कैसी है!

भगवान आत्मा... किसी भी पदार्थ में बाल, वृद्ध हो या युवा हो, भोग की वासना के काल में, कषाय की वासना के काल में प्रथम अपनी विद्यमानता बिना यह है, यह हुआ—ऐसा जाना किसने? समझ में आया? मुझे राग हुआ, मुझे क्रोध हुआ। समझे? राग, क्रोध का तो यहाँ ज्ञान हुआ। जानने में मुख्यता हुई कि यह हुआ, ऐसा उसने जाना। दया का भाव हुआ, यह भाव हुआ, यह भाव हुआ, शरीर में ऐसा हुआ, यह छूट गया, शरीर छूटता है, मरे तब आत्मा गहरे-गहरे चला जाता हो, ऐसा इसे लगता है। गहरे-गहरे कहाँ जाये? परन्तु वह चरबी घट गयी हो न, उसका भी ज्ञान करनेवाला है वह तो। समझ में आया? परन्तु वह ज्ञान, यह ज्ञान-जानना... जानना... जानना... जानना... यह ज्ञान उसे नहीं, परन्तु लक्ष्य पर के ऊपर है न, (इसलिए उसमें) गहरा उतर जाता है। गहरा उतर जाये, ऐसा लगता है तो क्या आत्मा का अभाव हो जाता है? यह क्षयरोगवाले का शरीर बहुत जीर्ण हो जाये। मानो ऐसा लगे अन्दर (गहरा उतर

जाता है)। कहाँ अन्दर उतरे? उतरे कौन? वह तो सब यह सब होता है, ऐसा जानना मुख्य होता है। जानना मुख्य होता है। जानना मुख्य होता है, उसका तो लक्ष्य करता नहीं और यह हुआ, उसमें एकाकार होकर, उसे आत्मज्ञान-अनुभूति प्रगट नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : अन्तर तत्त्व वह आत्मा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो वस्तु ही ऐसी है न! तत्त्व-आत्मा क्या बाहर है? आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया?

भगवान आत्मा... **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा...** भाषा देखो! अमृतचन्द्राचार्य भगवान आत्मा, ऐसा कहकर ही बुलाते हैं। **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** लो, भगवानरूप से बुलाया। भले भूल करता है, तो भी है तो भगवान। समझ में आया? **अनादि बन्ध के वश पर...** ऐसे पर के ऊपर लक्ष्य है। अनादि से इन्द्रिय का लक्ष्य, राग का लक्ष्य। जिसका ज्ञान करता है, जिसमें ज्ञान होता है, जिसका जिसमें उस सम्बन्धी यहाँ ज्ञान होता है, उस ज्ञान का लक्ष्य करके यह आत्मा ऐसा जानता नहीं। समझ में आया? वह तो बहिर्दृष्टि और अन्तर्दृष्टि, ऐसा बतलाते हैं मूल तो। यह ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... यह ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा नहीं मानकर, उस ज्ञान की पर्याय में जो चीज़ दिखती है न? उस दिखती के ऊपर यह... ऐसा वहाँ लक्ष्य जाता है। एकत्वबुद्धि होकर **निश्चय से मूढ़-अज्ञानी जन को...** अपना ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान प्रत्येक में मुख्य वर्तमान विद्यमानता बिना न ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है, उसे नहीं जानकर, उसे नहीं जानकर और पर को ही यह मेरा, यह मेरा, यही जानता हूँ, उसे जानता हूँ, उसे जानता हूँ — ऐसे रुक गया तो उस मूढ़ अज्ञानीजन को जो **यह अनुभूति है, वही मैं हूँ...** इन सबमें जानन... जानन... जानन... जानन... जिसकी विद्यमानता में सब ज्ञात होता है, ऐसा जानन... जानन... वह अनुभूति आत्मा है, ऐसा आत्मज्ञान अज्ञानी को उदित नहीं होता। क्योंकि उसकी वृत्ति पर के ऊपर है, दृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! गजब परन्तु! आचार्यों ने गजब शैली की है न! सादी बात और सीधी बात।

भाई ! जाननशक्तिवाले की वर्तमान दशा की विद्यमानता बिना कौन सी चीज़ ज्ञात होती है ? वह चीज़ ज्ञात होती है ?

मुमुक्षु : पर को जानने का मजा तो चला जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर को जानने का मजा चला जाता है। धूल में भी नहीं पर को जानने का मजा। आकुलता है। आहाहा !

जानना... जानना... जानना... जानना... जिसकी अस्ति बिना, विद्यमानता बिना, मौजूदगी बिना उसका भाव न हो तो यह है, ऐसा जाना किसने ? जिसकी मुख्यता में अस्ति है, वह जानने में आनेवाली चीज़ ऐसी होने पर भी, अज्ञानी पर के साथ की एकत्वबुद्धि से यह आत्मा ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान वह आत्मा, ऐसा अनुभव—आत्मा का ज्ञान होता नहीं। देखो ! इसमें ऐसा नहीं कहा कि कर्म के कारण से नहीं होता, दर्शनमोह का जोर है, इसलिए नहीं होता—ऐसा नहीं कहा। और पहले भी यह कहा था। समझ में आया ? आत्मा को जानना चाहिए, आया न ? प्रथम। 'प्रथम तो आत्मा को जानना, पश्चात् उसका ही श्रद्धान करना कि **यही आत्मा है, इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा...** समझ में आया ? आत्मा प्राप्त होता है। यहाँ लेना, नीचे लेना। **आत्मज्ञान से प्राप्त होता...** नीचे दूसरे पैराग्राफ में। **आत्मज्ञान से प्राप्त होता...** वह तो प्रगट होता कहो या प्राप्त होता, शब्द बदला है। दूसरा कुछ है नहीं। यह '**उत्प्लवत्ते**' है। आहाहा ! क्या कहते हैं ?

भगवान आत्मा, कोई भी चीज़, कोई भी विकृत भाव, कोई भी यादगिरी, कोई भी स्मृति, उस स्मृति-यादगिरी में अपना ज्ञान ही मुख्यरूप से आता है। ऐसा अपना ज्ञान ही, सदा स्वयं ही अपना ज्ञान ही अनुभव में, जानने में आता होने पर भी पर के साथ की एकत्वबुद्धि के वश यह आत्मा ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... अनुभूति आत्मा, ऐसा आत्मज्ञान, उसे उत्पन्न नहीं होता। यह कारण दिया। दूसरा कोई कारण नहीं। उसे कर्म का जोर है, इसलिए आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता और कर्म मन्द पड़े तो वहाँ आत्मा का भान हुआ पूर्व में कहा वैसा, ऐसा कुछ है नहीं। वह तो निमित्तमात्र वस्तु है। समझ में आया ? वैद्यराजजी ! कर्म-बर्म इसमें कुछ करते नहीं। कर्म कहाँ गये ?

मुमुक्षु : कर्म कर्म में रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म कर्म में जड़ में रहे। यहाँ कहाँ घुस गये हैं? आहाहा! कहते हैं, यह अज्ञान और यह ज्ञान। भगवान आत्मा प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक काल में—सदा काल में परपदार्थ के ग्रहण-त्याग के काल में, उदासीन काल में... ग्रहण-त्याग कर सकने का प्रश्न नहीं, आना-जाना। सदा आये-गये और उदासीन में सबमें ज्ञान की प्रधानता, विद्यमानता, मुख्यता, मौजूदगी बिना जाने कौन? विद्यमान ज्ञान की मौजूदगी की विद्यमानता प्रसिद्ध हुई। ऐसे प्रसिद्ध है, तथापि उसे प्रसिद्ध नहीं करके रागादि और पर आदि मैं प्रसिद्ध हूँ, ऐसा मूढ़ अज्ञानी पर को प्रसिद्ध करता है। आहाहा! इसलिए उसे आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। कहो, जयकुमारजी! क्यों चन्दुभाई! गये न सब अहमदाबादवाले? कहो, समझ में आया इसमें? ऐई! नेमिदासजी! समझ में आया या नहीं?

यह भगवान आत्मा अपनी चैतन्य की पर्याय की विद्यमानता में सब जानने में आता है, ऐसी मुख्यता तो जानने की रहती है। ऐसा होने पर भी, यह जाननेवाला मैं हूँ—ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि नहीं करके, पर के आधीन होकर राग और पुण्य को प्रसिद्ध करके 'यही मैं हूँ'—ऐसे मूढ़ को आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। कहो, समझ में आया? वश से। वश कहा न? स्वयं वश हो गया न? कही न बात? अनादि बन्ध के वश हो जाता है। अनादि बन्ध उसे वश करते नहीं। ऐसे वश होना चाहिए (अर्थात्) ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ऐसे आना चाहिए, उसके बदले ऐसे (पर की ओर) जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपने ज्ञान में जो चीज़ ज्ञात हुई, वह नहीं, वास्तव में तो उस चीज़ सम्बन्धित अपना ज्ञान आया है। राग, द्वेष, दया, दान, शरीरादि अवस्था सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने ख्याल में आया है। अपना ज्ञान अपने को ख्याल में आया है। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने ख्याल में आया है। ऐसा नहीं जानकर उसे मैं जानता हूँ, ऐसे राग और परपदार्थ के साथ एकत्वबुद्धि करके अपने स्वतन्त्र ज्ञाता-दृष्टा का आत्मज्ञान नहीं करता। कहो, समझ में आया? गजब बात, भाई!

यह तो जीव-अजीव अधिकार है, देखो! जीव अर्थात् यह ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान...

ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान, वह मैं, ऐसे ज्ञायकभाव का ज्ञान नहीं करके, यह ज्ञान जिसे जानता है, वह मैं, उसमें इसका लक्ष्य है। जाननेवाले के ऊपर इसका लक्ष्य नहीं। जाननेवाले में लक्ष्य नहीं। जो चीज़ ज्ञात होती है, उसमें लक्ष्य करके पर में एकत्वबुद्धि करके मूढ़ होकर (भटकता है)। समझ में आया? अज्ञानीजन को... ओहोहो! बालगोपाल वृद्ध...

यह अनुभूति है, वही मैं हूँ... यह जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... वही मैं हूँ, ऐसे अपने अस्तित्व में नहीं आकर, पर में यह मैं हूँ (ऐसा मानता है)। **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** उसे आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। समझ में आया? बराबर है? श्रीपालजी! क्या आया? यह बात तो बहुत सूक्ष्म पड़ी। ओहोहो! क्या परन्तु टीका! भाई!

कोई कहे कि क्लेश होता था, क्लेश होता था वहाँ तुम थे या नहीं? मैं वहाँ था परन्तु खबर नहीं। क्लेश में... कजिया समझे? क्लेश... क्लेश। झगड़ा होता है, वहाँ तुम थे या नहीं? मैं नहीं था, परन्तु मैं जानता था। परन्तु तू नहीं था तो जानता था कौन? यह क्लेश में नहीं था, यह क्लेश में नहीं था परन्तु क्लेश हुआ, उसका जानना तो तुझमें था या नहीं? समझ में आया? जानने में मैं था, ऐसा नहीं मानकर मैं क्लेश में गया, उसे ही मैं जानता हूँ, मैं क्लेश को ही जानता हूँ, यह बुद्धि विभ्रम है। समझ में आया? जिसमें अपने से क्लेश सम्बन्धी अपने में अपने से ज्ञान होता है। क्लेश सम्बन्धी क्लेश के कारण से नहीं। यह पहले आया न? सदा, स्वयं ही, ऐसे शब्द पड़े हैं। समझ में आया? सदा, स्वयं ही। उस समय मारते थे, खून करते थे, तब मेरी उपस्थिति थी। यह देते हैं न? क्या कहलाती है? साक्षी। तुम थे? मैं तो चला जाता था, चला जाता था, चला जाता था, वहाँ इसे मारते थे, इतना देखा है। किसलिए, इसकी मुझे खबर नहीं। परन्तु तेरे ज्ञान में यह बात आयी या नहीं? उसे मैंने जाना। परन्तु उसे जाना या तेरे ज्ञान को जाना? समझ में आया? कहो, रतिभाई!

उसी प्रकार अपना ज्ञान ही ज्ञात होता है और स्वयं ही जानता है, हों! यह चीज़ है तो यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। वह चीज़ है तो ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। वजुभाई! अरे... अरे...! यह गजब बात, भाई! यह है तो जानना हुआ, ऐसा कहते हैं। भगवान

आत्मा है। आबालगोपाल में प्रभु आत्मा है, वह है उसे जानना हुआ। यह जानना हुआ, वह मैं हूँ, ऐसा आत्मज्ञान नहीं करके अनादि से पर का... पर का... पर का ज्ञान मुझे हुआ, पर मैं हूँ तो मुझे ज्ञान हुआ, यह तो मूढ़दशा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उस समय मुझे ऐसा ही ख्याल क्यों आया मुझे ? क्रोध ही क्यों ख्याल में आया मुझे ? क्रोध है तो ज्ञान हुआ, ऐसा है नहीं। सुन ! दया का भाव आया। तो दया के भाव का ज्ञान क्यों हुआ ? दया का भाव है तो वैसा ज्ञान हुआ ? ऐसा है नहीं। उसका ज्ञान स्वयं सदा अपने से ज्ञान होता है। वह भाव ऐसा है, ऐसा जानता है, इसलिए उस भाव से ज्ञान होता है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा ! कहो, धीरुभाई ! समझ में आया इसमें ? अरे ! कठिन बात रखी है न, देखो न !

भाई ! तेरी विद्यमानता बिना पर ज्ञात हो, यह कैसे बने ? और जानने की विद्यमानता तुझमें है, वह तेरे कारण से हुई है। क्रोधादि हुए, रागादि हुए, देह में क्रिया हुई, इसलिए यहाँ जानना हुआ, ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : क्रिया महँगी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहे, क्रिया महँगी है, यह सब सस्ता था। परन्तु... भगवान आत्मा जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... अपनी अस्ति में जानता है, ऐसा लक्ष्य करना, उसका नाम आत्मज्ञान है। और बाहर में लक्ष्य करने से आत्मज्ञान रुक गया। यह है, वह मैं हूँ, वह मैं हूँ, उसे जानता हूँ, वह है तो मैं जानता हूँ, उसे जानता है,... पूरा हो गया। आत्मा की वर्तमान अस्तित्व की श्रद्धा नहीं रही। तो त्रिकाल की श्रद्धा नहीं रही। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, वह अज्ञानीजन पर के वश होकर ज्ञान स्वयं होता है, उस ओर का लक्ष्य करके **पर (द्रव्यों) के साथ एकत्व के निश्चय से...** एकत्व का निश्चय हो गया। वह है तो ज्ञान हुआ, वह है तो ज्ञान हुआ। इसलिए वजन वहाँ राग के ऊपर गया। क्रोध हुआ न, इसलिए ज्ञान हुआ, शरीर की अवस्था ऐसे हुई, देखो ! ऐसे-ऐसे हुई तो ज्ञान हुआ। खोटा है, ऐसा कहते हैं। ऐसे-ऐसे हुआ तो ज्ञान हुआ, (ऐसा नहीं)। ज्ञान तो जैसा है, वैसा जाने न ? जैसा हो, उससे विरुद्ध जाने ? ऐसे-ऐसे होता था, इसलिए ऐसा

जाना। परन्तु जाना है, वह उसके कारण से नहीं जाना, अपनी पर्याय से जाना है, अपने से जाना है, स्वाधीनता से जाना है। अपने कर्ता-कर्म से जाना है। उसे नहीं जाना। ... जानता है, इसलिए उसके कारण से जाना, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

सामने जीव के दया पालन की। तो ऐसा ही ज्ञान हुआ। ज्ञान हुआ तो उसके कारण से ज्ञान हुआ है? स्वयं से हुआ है। वहाँ जीव बच गया। बच गया, वह पर्याय तो पर में हुई। उस काल में ज्ञान की पर्याय जानती है कि यह हुई। वह जानता है, वह स्वयं अपने से जानता है। ऐसे हुई तो जानता है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? कितना रखा है! ओहोहो! गजब टीका! अमृतचन्द्राचार्य ने तो अभी इस भरतक्षेत्र में ऐसी टीका भाव की सूचक (अजोड़ की है)। उस समय में मुनि थे तो सम्प्रदाय को महत्ता नहीं आयी। दूसरे सम्प्रदाय चालू हो गये थे न! उस समय नहीं आयी कि यह मुनि हैं। ओहो! अपने अभिमान में पर की अधिकता क्या है, यह ख्याल में आता नहीं। यहाँ अपनी अधिकता सबमें है, यह ख्याल में नहीं आती और पर की अधिकता ख्याल में आती है, वह अज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु तो एक की एक है, वह तो भिन्न-भिन्न....

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न-भिन्न उसके कारण से होता है, ज्ञान भी अपने कारण से भिन्न-भिन्न होता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। वह अलग-अलग, भिन्न-भिन्न अवस्था है तो उसके कारण से ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है।

अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी... देखो! अनुभूति भगवान आत्मा सदा स्वयं ही (अनुभव में) आने पर भी, इसमें सब वजन है। एक लाईन में तो... ओहोहो! **अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबालगोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही...** कौन? आत्मा, हों! अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा **अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** ओहोहो! उसकी अस्ति आत्मा से है, यह अस्ति आत्मा की। परन्तु उस अस्ति-मौजूदगी का स्वीकार नहीं करके पर के वश होकर पर में एकत्व के निश्चय से मूढ़ अज्ञानीजन को, भगवान जानन... जानन... जानन... जानन... आत्मा ऐसी दृष्टि नहीं करता है तो अनुभूति नहीं होती। आत्मा का ज्ञान नहीं होता।

और उसके अभाव से,... जब आत्मा का ज्ञान ही नहीं (वहाँ) अब तुझे किसका ज्ञान करना है ? पहली चीज़ तो यह है। वैद्यराजजी! उसके ज्ञान बिना तूने क्या किया ? ऐसा कहते हैं। वैद्य की दवा धूल में भी नहीं की। नहीं ? वैद्य की (दवा) वह तो जड़ से होती है। वह गोलियाँ होती है, वह जड़ की अवस्था है। जड़ की अवस्था है तो उस समय में स्वयं से उसकी अपेक्षा बिना अपने में जानने की क्रिया स्वयं अपने से होती है। ऐसा नहीं जानकर मैं उसे करता हूँ और वह है तो मुझमें ज्ञान होता है, मूढ़ है।

मुमुक्षु : वैद्य बिना प्रसव हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वैद्य बिना प्रसव होता है। वैद्यराजजी! यहाँ तो ऐसी भगवान के घर की बात है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा वस्तु का स्वरूप ऐसा कहते हैं। मैंने सबको जाना है या नहीं ? कहते हैं। मैंने सबको जाना है या नहीं ? भगवान तो कहते हैं। तीन काल-तीन लोक जाने हैं, मेरी पर्याय को जाना है तो सबको जान लिया। पर्याय जानी उसमें, हों! आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर जैन परमेश्वर सर्वज्ञ परमेश्वर के मुख में ऐसी बात आयी। भगवान! आबालवृद्ध सब है न। उनकी वर्तमान आत्मा अनुभूति है, वही सबको ख्याल में आती है। क्योंकि अपने ज्ञान के बिना, विद्यमानता बिना किस चीज़ का ख्याल आवे ? उस चीज़ का ख्याल नहीं आता। तथापि अज्ञानी, यहाँ ख्याल में आनेवाली चीज़ के अस्तित्व का स्वीकार नहीं करके उस चीज़ का स्वीकार करता है। जीव-अजीव अधिकार है न ? जीव का स्वीकार नहीं करके अजीव का स्वीकार करता है। जो परचीज़ है, उसका स्वीकार करता है कि यह मैं हूँ, यह मैं हूँ। उससे मुझे ज्ञान हुआ, उससे मुझे ज्ञान हुआ, वह है तो मुझे ज्ञान हुआ, उसे टिका रखूँ तो मेरा ज्ञान टिका रहे। वह चीज़ रहे, उससे मेरा ज्ञान (टिकता है), तो वह वस्तु टिका रखूँ तो मेरा ज्ञान टिकेगा। परन्तु उससे हुआ ही नहीं। मैं टिकूँ तो टिक सकता हूँ। आहाहा!

गजब बात, भगवान! गजब बात! दिगम्बर सन्तों की ऐसी बात भी कहीं नहीं मिलती, हों! आहाहा! अन्य में तो कहाँ से हो ? शशीभाई! ये वैष्णव थे, हों! वैष्णव। अन्य में तो है ही नहीं, परन्तु जैन के सम्प्रदाय में दूसरे सम्प्रदाय में इसके अतिरिक्त यह

बात तीन काल में कहीं नहीं। ऐसी चीज़ वह चीज़। ऐसे आत्मा का स्वीकार करे और उसे ख्याल आवे... आहाहा! यह तो वस्तु का वर्णन ही ऐसा सत्य है। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! आहाहा! देखो!

जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! अरे प्रभु! परन्तु वे अज्ञानी हैं, उन्हें भी भगवान आत्मा ठहराते हो? भगवान आत्मा तो ऐसा ही है। परन्तु निज भगवान की महिमा ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... स्वयं से होती है, उसकी महिमा नहीं आती। सामने की चीज़, शास्त्र के पृष्ठ बराबर सामने व्यवस्थित रहे न, तो मुझे ज्ञात होता है। ऐई! आहाहा! भ्रम ऐसा हुआ कि उसी समय में अपने ज्ञान की अस्ति में—मौजूदगी में अपने कारण से अपना ज्ञान होता है, ऐसा नहीं मानकर, वह पर से होता है और पर है तो होता है और पर है तो मैं हूँ, यह शब्दादि पर है तो मेरी ज्ञान अवस्था है, ऐसी पर में एकत्वबुद्धि होकर मेरा ज्ञानस्वरूप वह मैं हूँ, ऐसा आत्मज्ञान उसे प्रगट नहीं होता। पहले में पहली यह चीज़ है। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! इसमें सब उड़ जाता है।

यह शब्द है तो ज्ञान हुआ, सामने शब्द थे तो ज्ञान हुआ। दिव्यध्वनि थी तो ज्ञान हुआ। यहाँ तो कहते हैं कि तेरी अस्ति बिना उसे जाना किसने? तो तेरे ज्ञान की मुख्यता है या ध्वनि की मुख्यता है? परद्रव्य की मुख्यता है या तेरी मुख्यता है? आहाहा! यहाँ तो कहे, दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता। तो कहे, सोनगढ़िया दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता, (ऐसा कहते हैं)। अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! सोनगढ़ कहता है कि दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता। भगवान! ऐसा नहीं, प्रभु! तेरी ज्ञान की पर्याय दिव्यध्वनि से होती है?

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि तो ऐसा कहती है कि तुझसे होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिव्यध्वनि क्या कहती है? यह दिव्यध्वनि है। भगवान की वाणी सन्त कहते हैं। भाई! तेरे ज्ञान की मुख्यता में तेरा ज्ञान होता है। उसका नहीं। उस सम्बन्धी तेरा ज्ञान तुझमें स्वयं सदा तुझसे होता है। आहाहा! ऐसा कहे, दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता (ऐसा कहकर) इन्होंने तो व्यवहार का लोप कर दिया। यह हमारे

बड़े पण्डित यहाँ बैठ गये। ये लोग निन्दा करते हैं। अरे! भगवान! प्रभु! तू शान्त हो, भाई! प्रभु! यह मार्ग तो आत्मा का है, नाथ! आहाहा! उसकी बलिहारी है, नाथ! तेरी चैतन्य की सत्ता की व्यक्तता के अंश में सदा स्वयं ज्ञात होने पर भी उससे हुआ, वह है तो हुआ, (ऐसा तू मानता है)। तो उस प्रकार का ज्ञान कैसे हुआ ? परन्तु उस प्रकार का ज्ञान जैसा है, वैसा जानता है या जैसा न हो, वैसा जानता है ? समझ में आया ? वह तो ज्ञान की विद्यमानता की ऐसी व्यक्तता है। उसके कारण से है ? शब्द के कारण से है ? वे कहे, पद्मपुराण देखो तो पद्मपुराण का ज्ञान होता है। और समयसार क्यों लेते हो ? तो समयसार से विशेष ज्ञान यहाँ होता है। ऐसा एक व्यक्ति के साथ तर्क हुआ था। समझ में आया ? तुम समयसार क्यों लेते हो ? तुम निमित्त को मानते नहीं तो समयसार क्यों लेते हो ? पद्मपुराण क्यों नहीं वाँचते ? अरे! भगवान! अरे! प्रभु! पढ़े हुए बड़े-बड़े पण्डित, हों! अरे! प्रभु! तू क्या कहता है ? कहते हैं, तुम समयसार लेकर क्यों बैठते हो ? पद्मपुराण क्यों नहीं लेते ? कौन लेता और कौन बैठता है ? प्रभु! तुझे खबर नहीं। यह समयसार के जो शब्द हैं, उन शब्दों के काल में अपना ज्ञान अपने कारण से जानने में आता है। वही शब्द सम्बन्धी अपने ज्ञान की स्फुरणा अपने से होती है, शब्द से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : समयसार का ही माहात्म्य हुआ उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका ही माहात्म्य हुआ। यह समयसार अर्थात् आत्मा। आहाहा! यह समयसार ऐसा कहता है। ऐ... चन्दुभाई!

पुण्य को विष्टा कहते हैं, एक व्यक्ति कहे। भाई! पुण्य को विष्टा कहते हैं, वह तो हल्का है। शास्त्रकार तो पुण्य को जहर कहते हैं। ऐई! सोनगढ़ से कुछ पैसे मिलते होंगे। अरे प्रभु! परन्तु यह तुझे क्या हुआ है ? अरे! कोई व्यक्ति सत्य का स्वीकार करे, उसके ऊपर ऐसे आरोप दे देना, यह वह कहीं सज्जनता कहलाती है ? ऐसी सज्जनता होती है ? बापू! ऐसा नहीं होता, भाई! इतना अन्याय नहीं होता। यह भगवान आत्मा... आहाहा! यह तो सत्स्वरूप का धनी है। उसे बात बैठ जाये तो यह सोनगढ़ की है, सोनगढ़ की कहते हैं, इसलिए सोनगढ़वालों ने पैसे दिये, इसलिए मानते हैं। अरे! ऐसा

नहीं कहा जाता, प्रभु! आहाहा! ऐ... ज्ञानचन्दजी! यह क्या पुकार करते हैं! देखो न! आहाहा!

कहते हैं, अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अपने से उस समय में भगवान को देखा? तो कहते हैं, नहीं। तब क्या? उस समय में भगवान है तो भगवान का ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। उसी समय का ज्ञान ही, अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा ही बालगोपाल सबको सदा अनुभव में (आता है)। समवसरण में भी अनन्त बार गया है या नहीं? अनन्त बार गया है। कल्पवृक्ष के फूल (लेकर भक्ति की)। वह पर्याय हुई, उसी समय में आत्मा के ज्ञान की पर्याय स्वयं अपने से हुई है। अपने से हुई है तो यह ज्ञान मैं हूँ, ऐसा नहीं मानकर उससे हुई, यह दृष्टिफेर है। आहाहा! यह तो सच्ची बात ही ऐसी है, उसमें दूसरा क्या निकालना? समझ में आया? समाज समतौल रहे, ऐसी बात कहना। लो, भाई! जैसे सत्य रहे ऐसे कहना, ऐसा कह न। और कहना वह वाणी का विलास है। समझ में आया? ज्ञान में जैसा स्वरूप है, वैसा समझ, ऐसी श्रद्धा कर, उसमें स्थिर हो।

सीमन्धर भगवान को देखा? नहीं। उस समय की ज्ञान की तेरी पर्याय थी। भगवान थे, यह सीमन्धर भगवान हैं, महाविदेह में विराजते हैं, वे ही भगवान हैं। ऐसा ज्ञान किसे हुआ? तेरी पर्याय में हुआ। किससे हुआ? तुझसे हुआ। पर से हुआ? समझ में आया? तो जिससे होता है, उसे तो मानता नहीं और जिससे नहीं होता, उसे मानकर आत्मज्ञान प्रगट नहीं करता। आहाहा! कहो, यह तो समझ में आता है या नहीं? दिल्ली? भाई! आज तो हिन्दी है न। दो दिन से भाई आये हैं न। दिल्ली से आये हैं। दो दिन से गुजराती थी। गुजराती सरल है, बहुत ऐसी (कठिन) नहीं। सरल है। थोड़े-थोड़े शब्द कोई खास आ जाये। काठियावाड़ी हमारे घर की। चडियातुं। हमारे सेठ नहीं कहते? चडियाता। हमारे पण्डितजी कहे, चडियातुं क्या होगा? चडियाता बैठो। चडियाता अर्थात् ऐसे ऊँचे बैठो। यह खास काठियावाड़ी भाषा कहलाती है। ऐसी बहुत भाषा अपने को (नहीं आती)। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं, **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता और उसके अभाव से,...** जहाँ आत्मा

ज्ञानस्वरूपी प्रत्येक काल में, प्रत्येक क्षेत्र में अपनी विद्यमानता में सबको जानता है, सबको जानता है क्या, सब सम्बन्धी अपना ही ज्ञान अपने से जानता है। समझ में आया? ऐसी स्वसन्मुख की दृष्टि हुई नहीं तो उसके अभाव से **अज्ञात का श्रद्धान...** नहीं जाने हुए की श्रद्धा करो। किसकी करे? जो चीज़ ज्ञात नहीं हुई, उसकी श्रद्धा क्या? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** जो चीज़ ही ख्याल में नहीं आयी कि यह ज्ञानस्वरूप है। पर की अपेक्षा बिना निरपेक्ष अपने से ज्ञान करनेवाला है, ऐसा ज्ञानमयमूर्ति प्रभु पूरा आत्मा है। ऐसा आत्मा ज्ञान में आया नहीं तो **अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** फिर कहे कि मुझे श्रद्धा दो। परन्तु किसकी? वस्तु तो जानी नहीं। जाने बिना श्रद्धा कैसी? सेठजी ऐसा कहते हैं कि वह तो अरूपी है। परन्तु अरूपी ही जानने में आता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। पण्डितजी! वैद्यराजजी! अरूपी अरूपी जाना किसने? अरूपी जाना किसने? यह अरूपी है, ऐसा किस भूमिका में निश्चित किया? किसने किया? किस कारण से किया? अपने कारण से किया है। लोगों ने ऐसी तुच्छता कर डाली है न। मानो अपने कुछ नहीं। समझ में आया?

निज स्वरूप... यहाँ भगवान सन्त कहते हैं, अनन्त केवली कहते हैं, वह दिगम्बर मुनि कहते हैं। अपने घर का एक अक्षर है नहीं। त्रिकाल सनातन सत्य प्रसिद्ध किया है। भगवान! जिसे आत्मा पर से भिन्न यह ज्ञान करनेवाला, वही मैं आत्मा हूँ। पर के कारण से नहीं, ऐसा आत्मा का ज्ञान अथवा आत्मा का भास हुआ नहीं तो जिस चीज़ का भान हुआ नहीं, उसकी श्रद्धा कहाँ से हुई? गधे के सींग के श्रद्धान जैसी हुई। चीज़ यह है, ऐसा ख्याल में तो आया नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चिदानन्द परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा, वैसी मैं ज्ञानज्योति, ऐसा अनुभव में ज्ञान में, प्रतीति में, वेदन में आया नहीं तो नहीं जाने हुए का श्रद्धान क्या? जो चीज़ ख्याल में आती नहीं, उसकी श्रद्धा करो। किसकी श्रद्धा करे? गधे के सींग समान है। इसलिए **श्रद्धान भी उदित नहीं होता...** ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं। देखो! समझ में आया? **उदित नहीं होता...**

तब समस्त अन्यभावों के भेद से आत्मा में निःशंक स्थिर होने की असमर्थता के कारण... श्रद्धान हुआ नहीं। यह आत्मा ही ज्ञानस्वरूप है, उसकी श्रद्धा हुई नहीं। तो उसमें स्थिर होना, निःशंकरूप से स्थिर होना, उसकी तो असमर्थपना हुई। निःशंक स्थिर होने के... **अन्यभावों के भेद से आत्मा में निःशंक स्थिर होने की असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदित न होने से...** उसे चारित्र-बारित्र होता नहीं। आत्मज्ञान बिना सम्यग्दर्शन नहीं और सम्यग्दर्शन बिना चारित्र होता नहीं। **आत्मा को नहीं साध सकता।** लो। वह आत्मा को साध नहीं सकता। उसकी मुक्ति नहीं होती। **इस प्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है।** यह दृष्टि और यह ज्ञान तथा इस दृष्टि और इस चारित्र के बिना आत्मा की मुक्ति कभी नहीं होती। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ५, मंगलवार, दिनांक - १८-१०-१९६६
गाथा - १७-१८, श्लोक-२०, प्रवचन - ७९

१७-१८ गाथा का भावार्थ। **भावार्थ : साध्य आत्मा की सिद्धि दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही है,...** क्या कहते हैं? साध्य अर्थात् आत्मा की शान्ति की पूर्ण प्राप्ति ऐसी जो मुक्ति। समझ में आया? आत्मा की पूर्ण शान्ति की प्राप्ति का नाम मुक्ति। वह मुक्ति साध्य है। साध्य का साधन करने से प्राप्त होनेवाली मुक्ति। तो कहते हैं कि साध्य जो आत्मा, उसकी सिद्धि **दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही है,...** उसके आत्मा की मुक्ति अथवा परमानन्द की प्राप्ति सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से ही है। **अन्य प्रकार से नहीं।** दूसरे किसी प्रकार से मुक्ति की अथवा स्वतन्त्र आनन्द की प्राप्ति, इसके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रकार से नहीं। अब कहते हैं कि किसे कहना? दर्शन, ज्ञान, चारित्र किसे कहना?

क्योंकि - पहले तो आत्मा को जाने... देखो! क्योंकि जिसकी मुक्ति करनी है, वह कौन है? **पहले तो आत्मा को जाने...** ऐसा कहा। दूसरी चीज़ जानना या ऐसा करना या ऐसा जानना, (ऐसा नहीं कहा)। भगवान आत्मा जाननेवाला जानता है, वह कौन है? जानता है, वह कौन है? शरीर, वाणी, मन तो जड़ है। पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह तो विकार-आस्रव है। जिसे शान्ति की प्राप्ति ऐसी मुक्ति की जिसे अभिलाषा है तो उसे पहले, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मुक्ति होती है तो पहले आत्मा को जानना चाहिए, ऐसा कहते हैं। **आत्मा को जाने कि यह जो जाननेवाला अनुभव में आता है, सो मैं हूँ।** देखो! जानने में आनेवाला, जाननेवाला। आत्मा को (जाने कि) जाननेवाला अनुभव में आता है। ज्ञान, समझण, ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... यह जाननेवाला अनुभव में आता है। राग, पुण्य, दया, दान वह तो परवस्तु हो गयी। समझ में आया? वे रागादि या दया, दान को जाननेवाला, वह आत्मा है। समझ में आया?

दया, दान, व्रत के जो भाव हैं, वह आत्मा नहीं। आत्मा तो उनका अपने में

रहकर अपने ज्ञान से उनका ज्ञान होता है। तो पहले अपना जाननेवाला भगवान आत्मा मैं यह जाननेवाला हूँ, वही मैं हूँ। तो उसका लक्ष्य कहाँ जाता है ? आत्मा के ऊपर। देह, वाणी, मन यह जो अवस्था होती है कि राग अन्दर दया, दान के परिणाम आये, परन्तु उनमें जाननेवाले बिना 'यह है', ऐसा जाना किसने ? जाननेवाले की अस्ति बिना जाना किसने ? तो जाननेवाला ही मुख्य हो गया। तो कहे, आत्मा अरूपी है, ज्ञात नहीं होता। वैद्यराजजी ! यहाँ तो यह कहते हैं कि वही ज्ञात होता है। आहाहा !

मुमुक्षु : प्रत्येक समय वही ज्ञात होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वही ज्ञात होता है। परचीज़ को जानने में भी आत्मा ही ज्ञात होता है। परचीज़ तो पर में रह गयी। रागादि, क्रोधादि ज्ञात हुए। तो जानने में तो उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान ज्ञात हुआ है। ज्ञान ज्ञात होता है, उसे नहीं जानकर, यह ज्ञात होता है, तो दृष्टि पर के ऊपर गयी। उसने आत्मा को जाना नहीं। समझ में आया ?

आत्मा को जाने... भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप, जैसे अशरीरी सिद्ध परमात्मा हैं, वैसा मैं ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति हूँ। ओहोहो ! 'यह जाननेवाला अनुभव में आता है...' अनुभव में यही आता है। मान्यता का अन्तर था, ऐसा कहते हैं। राग और व्यवहार विकल्प ज्ञात होते हैं, यह बात ही खोटी है, कहते हैं। यह तो जाननेवाला जो अनुभव में आता है, वह मैं हूँ। समझ में आया ? जाननेवाला जानता है, उसका अनुभव हुआ, वह मैं। उसे अनुसरकर वह मैं, वह आत्मा। ऐसे आत्मा का पहले ज्ञान होना चाहिए। इस ज्ञान बिना उसे कभी कल्याण की शुरुआत नहीं होती। समझ में आया ? धर्म की शुरुआत आत्मज्ञान बिना कभी नहीं होती। **उसके बाद...** उसके बाद यह जाननेवाला अनुभव में आता है। जाननेवाला है, वही अनुभव में आता है, वही अनुभव-वेदन में आता है, वह मैं हूँ—ऐसा आत्मज्ञान पहले प्रगट करना। देखो ! पहले यह आया। कहते थे न कि वह तो अरूपी है।

मुमुक्षु : अरूपी है परन्तु निर्णय किसने किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अरूपी है, ऐसा निर्णय किसने किया ? ज्ञान ने निर्णय किया है। मैं अरूपी हूँ, मैं रूपी नहीं, मैं राग नहीं, मैं शरीर नहीं, यह निर्णय किसने

किया ? निर्णय करनेवाले अरूपी ज्ञान का अनुभव होता है। जानना, वह ज्ञान ही आत्मा ख्याल में आता है, दूसरी चीज़ ख्याल में नहीं आती। समझ में आया ? जगत की पूरी पंचायत छोड़ सब। अपना स्वरूप क्या है, उसकी खबर नहीं।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं, भाई ! यह जाननेवाला तुझे अनुभव में आता है। तू तो ऐसा मानता है कि यह राग मुझे अनुभव में आता है, देह मुझे अनुभव में आती है। ऐसा मैं नहीं। उस सम्बन्धी अपना अपने में ज्ञान है, वह ज्ञान अनुभव में आता है। ऐसे अन्तर दृष्टि करके आत्मा का प्रथम अनुभव करना, आत्मा का ज्ञान करना, वही प्रथम धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है क्योंकि धर्म का करनेवाला आत्मा है। आत्मा का भान हुआ तो वह आत्मा प्रथम धर्म की शुरुआत यहाँ से हुई कि मैं आत्मा हूँ। राग नहीं, व्यवहार नहीं, पुण्य नहीं, शरीर नहीं। ऐसा आया या नहीं ? यह बीच में दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प आते हैं, वह मैं नहीं, मैं तो ज्ञान हूँ। आहाहा ! समझ में आया ?

उसके बाद... उसके बाद का अर्थ (कि) ज्ञान में आया कि यह आत्मा। कोई चीज़ ख्याल में आयी। फिर प्रतीति हुई कि यह, यह चीज़ है। ऐसे अपने ज्ञान में ज्ञानस्वरूप भगवान अनुभव में आता है। अपने को जो अनादि से विकार, पुण्य-पाप, पर को ज्ञेय बनाता था, वह ज्ञेय बनाता था। वह ज्ञान तो अपना था, परन्तु पर को ज्ञेय बनाकर ज्ञान उसमें रुकता था। उसे जाननेवाला ज्ञान मैं हूँ, ऐसा अपने को ज्ञेय बनाया, तब आत्मा का ज्ञान होता है। आहाहा ! समझ में आया ? जाननेवाला अपने ज्ञेय को छोड़कर, जानता तो है अपने को, ज्ञान होता है अपने में, परन्तु उसे छोड़कर पर का लक्ष्य करके, पर को जानता हूँ—ऐसी मान्यता (करता है), पर को जाननेवाला मैं, ऐसा नहीं मानकर मैं पर को जाननेवाला हूँ, यह पर को जानना, वह मैं हूँ, ऐसा अनादि से मिथ्याभ्रम अज्ञान में पर को जाना, ऐसा मानकर अपने को भूल गया था। समझ में आया ?

भगवान आत्मा जो जानने में आनेवाला, वही मैं अनुभव में आनेवाला हूँ, दूसरी कोई चीज़ नहीं। ऐसे अन्तर में अनुभव करके आत्मा का ज्ञान करना। फिर प्रतीति-श्रद्धान होता है। तब सम्यग्दर्शन-प्रतीति यथार्थ होती है। आहाहा ! समझ में आया ?

आत्मा जो ऐसा था, वह ऐसे अन्तर में आया, तब प्रतीति हुई कि यह आत्मा। जाने बिना प्रतीति किसकी? समझ में आया? जिसके ज्ञान में यह चीज़ है, ऐसा आये बिना प्रतीति करो। परन्तु किसकी प्रतीति करे? समझ में आया? किसकी प्रतीति? करो और मानो न। उसे मानो। परन्तु किसे मानना? जो चीज़ है, वह ख्याल में तो आयी नहीं। वह चीज़ है, ऐसा ज्ञान में आया नहीं। प्रतीति किसकी करना? विश्वास किसका करना? समझ में आया? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अनुभव में आता है, तब यह आत्मा, ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। है तो आत्मज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन। परन्तु यह आत्मा चैतन्यस्वरूप अकेली ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। वह अपने को और पर को जानता है, परन्तु जानने का स्वभाव अपने में है। वही मैं हूँ, ऐसा अन्तर्मुख होकर आत्मा का ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान हुआ, तब प्रतीति हुई कि यह आत्मा। आत्मा का ज्ञान हुआ तो प्रतीति हुई कि यह आत्मा। समझ में आया?

यहाँ राग का ज्ञान, पुण्य का ज्ञान, व्यवहार का ज्ञान हुआ तो यह आत्मा, ऐसा नहीं हुआ। यहाँ तो आत्मा चैतन्यज्योति ज्ञानमूर्ति का ज्ञान हुआ, यह आत्मा ऐसा ज्ञान हुआ तो उस आत्मा में, यह आत्मा—ऐसी प्रतीति हुई। आहाहा! पहले यहाँ से शुरुआत होती है। वैद्यराजजी! तुम तो आड़े-टेढ़े भरडाभरड बहुत करते थे। पहली शुरुआत वहाँ से होती है। यह छोड़कर फिर स्वाध्याय किया करे, स्तुति किया करे। ऐकड़ा बिना के सब शून्य है। मींडा कहते हैं न? शून्य... शून्य। बिन्दी। आहाहा!

इसके बाद उसकी प्रतीतिरूप... प्रतीतिरूप उसका एक यथार्थ लक्षण है न? प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूपी अकेला ज्ञानस्वरूपी भिन्न। 'देह भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान।' केवल चैतन्य का ज्ञान। राग नहीं, पुण्य नहीं विकल्प नहीं। वह नहीं, वह कहीं आत्मा नहीं। समझ में आया? ऐसा धर्म कैसा होगा यह? वे तो पहले कहे कि छह काय की दया पालना, व्रत पालना, रात्रिभोजन नहीं करना, रात्रि में नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना। लो! भगवान कहते हैं कि वह धर्म-बर्म नहीं। सुन तो सही। वह तो राग की मन्दता का पुण्य है। और मैं पर का काम करता हूँ और छोड़ता हूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। तत्त्व की खबर नहीं।

कहते हैं, क्योंकि **जाने बिना किसका श्रद्धान करेगा ?** जिस चीज़ का ज्ञान ही नहीं तो उसकी प्रतीति किस प्रकार करेगा ? समझ में आया ? संसार में ऐसा किया जाता है। सगाई हो न सगाई ? सगपण को क्या कहते हैं ? सगाई। सगाई के समय दूसरा लड़का बतावे और विवाह के समय दूसरा बतावे। बराबर निर्णय न किया हो। सगाई के समय अपना लड़का साधारण हो। समझे ? सगाई के समय दूसरा लड़का बता दे। पश्चात् विवाह के समय अपना लड़का बतावे। उसको ख्याल भी न हो। बराबर देखा हो नहीं। थोड़ा वहम तो पड़ जाये। यह नहीं, यह नहीं। परन्तु अब श्रृंगार करके लाये। उसमें वहम पड़ा। ऐसा होता है या नहीं ? नेमिदासभाई! गाँव-गाँव में बहुत जगह होता है।

मुमुक्षु : सब करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब करते हैं। अपना लड़का साधारण हो। तो थोड़ी देर दूसरा लड़का बता दे। सगाई के बाद कहे, जाओ। फिर विवाह के समय दूसरा लड़का। खबर बिना उसके साथ विवाह करना या इसके साथ ? ज्ञान तो हुआ नहीं। समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा क्या चीज़ है, उसका ज्ञान हुआ नहीं और प्रतीति करो। किसकी प्रतीति करे ? समझ में आया ? क्योंकि बिना जाने श्रद्धान किसका करेगा ? वस्तु ही जहाँ ज्ञान में (आयी नहीं कि) यह चीज़ (है, वहाँ श्रद्धान किसका ?) भले असंख्य प्रदेश ख्याल में न आवे, परन्तु यह ज्ञान, वह मैं। ज्ञान का-आनन्द का वेदन जो हुआ, आनन्द का वेदन वह आत्मा, वह आत्मा। शान्ति का वेदन हुआ, आत्मा को जानने से शान्ति का वेदन हुआ तो वह शान्ति अनन्त काल में नहीं हुई थी, ऐसी शान्ति के रस का वेदन हुआ, कि यह आत्मा। ऐसे जाने बिना प्रतीति किसकी होगी ? कहो, समझ में आया ? कुछ का कुछ लगा दे, कुछ का कुछ मान ले और माने कि हम आत्मा मानते हैं। ऐसा है नहीं।

तत्पश्चात्... देखो ! श्रद्धान किसका करेगा ? इसीलिए पहले आत्मा को जानना। उसे जाना तो श्रद्धा हुई कि यह आत्मा। यह आनन्द का वेदन हुआ तो यह आत्मा। शान्ति का वेदन हुआ, वह आत्मा। कषायरहित भाव हुआ, वह आत्मा। यह आत्मा—

ऐसा ज्ञान होकर प्रतीति हुई, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? **तत्पश्चात् समस्त अन्यभावों से भेद करके...** देखो! फिर राग, द्वेष, दया, दान के विकल्प सब भावों से भेद करके **अपने में स्थिर हो।** देखो! व्यवहार व्रत, दया, दान के विकल्प हैं, वे परभाव हैं। उनसे भेद करके अपने में स्थिर रहना, इसका नाम चारित्र है। राग में स्थिर रहे, वह तो विकार है, अचारित्र है। समझ में आया?

तत्पश्चात् समस्त अन्यभावों से... समस्त अन्यभाव लिये हैं, हों! समस्त अन्यभाव। चाहे तो गुण-गुणी भेद का विकल्प हो, चाहे तो दया, दान का हो, चाहे तो भक्ति, पूजा का हो — सब विकल्प के भेद भाव से। **अन्यभावों से भेद करके...** क्योंकि आत्मा को जाना कि यह आत्मा है, रागादि आत्मा नहीं। **अपने में स्थिर हो।** अपना स्वरूप ज्ञानमूर्ति चिदानन्द प्रभु में लीन हो, उसका नाम चारित्र है। वैद्यराजजी! चारित्र अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में लीन होना....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा भूल गया, आत्मा का भान होकर प्रतीति हुई और उस आत्मा में अन्य विकल्प जो दया, दान आदि थे, उनसे भेद करके-पृथक् करके स्वरूप में स्थिर रहना, वह चारित्र है।

मुमुक्षु : निश्चय चारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सच्चा चारित्र। वापस और निश्चय चारित्र (कहते हैं)। वापस विपरीतता आयी। सेठ ने बहुत धारा है, बहुत वाँचा है, हों! वैद्यराज है और सेठ है। सब छिलके है। यहाँ तो निश्चय, वही सत्य है। व्यवहार से तो भेद किया। देखो!

अन्यभावों से भेद करके... देखो! विकल्पमात्र। दया, दान, व्रत के विकल्प तो राग है ही, परन्तु मैं आत्मा गुणी हूँ और उसमें आनन्द रहता है अथवा चारित्र कि अन्दर स्थिर होऊँ, ऐसा विकल्प, वह राग, उस अन्यभाव से भेद करके, अन्यभाव से पृथक् पड़कर स्वरूप में स्थिर होना, उसका नाम चारित्र है। निश्चय कहकर मानो वह व्यवहार रह गया। वे कहे, पहले व्यवहार करे, पश्चात् निश्चय आवे। धूल में (आवे)। ऐसा घुंटाया है न लोगों को। घूंटे वे घूंटे। घूंटे को क्या कहते हैं? घोटना। आहाहा!

इस प्रकार सिद्धि होती है। लो! इस प्रकार आत्मा की मुक्ति होती है। ऐसा

भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव फरमाते हैं। कहो, समझे? अन्यभावों से भिन्न आत्मा का ज्ञान, अन्यभावों से भिन्न आत्मा की श्रद्धा, अन्यभावों से भिन्न स्वरूप की स्थिरता। आहाहा! कभी सुना नहीं, क्या चीज़ है। ऐसा का ऐसा अन्ध होकर चले। 'अन्धा अन्ध पलाय' ऐसा शास्त्र में आता है। अन्धा देखनेवाला और अन्ध दिखलानेवाला। चलो पड़ो कुएँ में। मार्ग क्या है और मार्ग की प्रतीति किसे कहते हैं और मार्ग में रमणता (किसे कहना), उसकी खबर है नहीं।

इस प्रकार सिद्धि होती है। देखो! इस प्रकार से मुक्ति होती है, व्यवहार-फ्यवहार से नहीं। सेठ! व्यवहार से नहीं। आत्मा पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव से भिन्न है। वह तो तुमने कहा था। पुण्य को पाप तो विरल कहते हैं। तुमने कहा था या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो गाने के लिये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाने के लिये होता है? बैठने (जँचने) के लिये चाहिए।

मुमुक्षु : उसमें लिखा है, विरला जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका अर्थ, उसकी दुर्लभता बतलायी कि पुण्य जो दया, दान, व्रत के भाव हैं, वह पुण्य है, उसे अनुभवीजन सम्यग्दृष्टि तो पाप कहते हैं। क्योंकि राग है, बन्ध का कारण है, जहर है। समझ में आया? अज्ञानी उसे गले लगाता है, ज्ञानी कहते हैं कि वह जहर है। मेरा चैतन्य अमृतस्वरूप वह राग से, विकल्प से भिन्न है। ऐसा भान करके प्रतीति करके, अन्यभावों से भेद करके (स्थिर रहता है)। भेद तो पहले ज्ञान में हुआ है, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि यहाँ स्थिर रहना है तो राग से हटकर यहाँ स्थिर होना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

किन्तु यदि जाने ही नहीं,... देखो! आत्मा क्या चीज़ है? आत्मा परमात्मा साक्षात् प्रभु है। अन्तर वीतरागमूर्ति आत्मा है। वीतरागमूर्ति अरूपी चैतन्य वीतरागमूर्ति है। तो उसकी पर्याय में वीतरागता लाना, वही वर्तमान मोक्षमार्ग है। आहाहा! **किन्तु यदि जाने ही नहीं,...** भगवान आत्मा कौन है, अपना स्वरूप क्या है, उसे जाने नहीं **तो श्रद्धान भी नहीं हो सकता;...** गधे के सींग जगत में नहीं तो विश्वास भी नहीं हो सकता। जाने बिना विश्वास किसका करना? समझ में आया? खरगोश को सींग है? विश्वास

करो, विश्वास करो। परन्तु किसका करे? जाने बिना किसका विश्वास करे? है ही नहीं न। आकाश के फूल का विश्वास करो। फूल जगत में है ही नहीं। उसी आत्मा का विश्वास करो। जाना नहीं। किसे करे? जाने बिना? यह आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति राग, शरीर, जड़ से भिन्न है और अपने शुद्ध आनन्द से, शान्ति से अभिन्न एक है, ऐसे अपने को जाने बिना श्रद्धा किसकी? ज्ञान में आये बिना विश्वास कहाँ से हुआ? **तो श्रद्धान भी नहीं हो सकता;...** ऐसी स्थिति में स्थिरता कहाँ करेगा? अभी अपना स्वरूप ज्ञायक चैतन्यमूर्ति का अनुभव नहीं, ज्ञान नहीं, श्रद्धा नहीं तो स्थिरता कहाँ करेगा? व्यवहारचारित्र तो पहले करेगा या नहीं? सम्यग्दर्शन बिना चारित्र। चारित्र होता ही नहीं। अज्ञानी मानता है कि हमको सम्यग्दर्शन नहीं, परन्तु चारित्र है, चारित्र है। परन्तु धूल में चारित्र होगा? चारित्र का अर्थ तो चरना है। तो कोई चीज़ देखी हो, उसमें चरना-रमना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? यह ढोर भी चरता है तो घास देखकर चरता है या नहीं? या धूल को चरता है? चरता है न? ढोर। ढोर-पशु घास चरता है। तो यह चरना किसमें? आत्मा क्या चीज़ है, उसका ज्ञान हुआ नहीं, श्रद्धा हुई नहीं, चरना किसमें? सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना चारित्र त्रिकाल में होता नहीं। आहाहा! रात्रि में कहते थे न? सब पालते थे न। तो अपनी शक्ति प्रमाण, जाना, उतना पालन किया। उसका इनकार करते हैं यहाँ। अब धीरे-धीरे यहाँ रहे न? कल कहते थे, हमको तो अभी छह दिन हुए हैं। कल कहते थे न। अभी छह दिन हुए हैं। पहले सुना न हो तो क्या करे? पहले सुना न हो न! क्यों सेठी! यह तो हमारे सेठी भी ऐसे थे, हों! यह भी ऐसे थे। अब बैठे हैं। आहाहा!

तो स्थिरता कहाँ करेगा? कहाँ करेगा, इसके ऊपर वजन है। कहाँ करेगा? आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य का भान भी नहीं, श्रद्धा नहीं तो कहाँ स्थिरता करेगा? वह तो राग में एकाग्र होगा। वह कहीं चारित्र-फारित्र नहीं। ओहोहो! **इसलिए यह निश्चय है...** इसलिए यह निश्चय है कि, **कि अन्य प्रकार से सिद्धि नहीं होती।** दूसरे किसी प्रकार से आत्मा की मुक्ति नहीं होती। इसी रीति और विधि से मुक्ति होती है। कहो, श्लोक २०वाँ श्लोक। ऊपर श्लोक / कलश है।

★ ★ ★

कलश - २०

अब, इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(मालिनी)

कथ-मपि समुपात्तत्रित्व-मप्येकताया,
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सतत-मनुभवामोऽनन्त-चैतन्य-चिह्नं,
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ।।20।।

ननु ज्ञानतादात्म्यादात्मा ज्ञानं नित्यमुपास्त एव, कुतस्तदुपास्यत्वेनानुशास्यत इति चेत्, तन्न, यतो न खल्वात्मा ज्ञानतादात्म्येऽपि क्षणमपि ज्ञानमुपास्ते, स्वयम्बुद्धबोधितबुद्धत्व-कारणपूर्वकत्वेन ज्ञानस्योत्पत्तेः। तर्हि तत्कारणात्पूर्वमज्ञान एवात्मा नित्यमेवाप्रतिबुद्धत्वात्। एवमेतत्।

श्लोकार्थ : आचार्य कहते हैं कि - [अनन्तचैतन्यचिह्नं] अनन्त (अविनश्वर) चैतन्य जिसका चिह्न है, ऐसी [इदम् आत्मज्योतिः] इस आत्मज्योति का [सततम् अनुभवामः] हम निरन्तर अनुभव करते हैं [यस्मात्] क्योंकि [अन्यथा साध्यसिद्धिः न खलु न खलु] उसके अनुभव के बिना अन्य प्रकार से साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती। वह आत्मज्योति ऐसी है कि [कथम् अपि समुपात्तत्रित्वम् अपि एकतायाः अपतितम्] जिसने किसी प्रकार से त्रित्व अङ्गीकार किया है, तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई और [अच्छम् उद्गच्छत्] जो निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है।

भावार्थ : आचार्य कहते हैं कि जिसे किसी प्रकार पर्यायदृष्टि से त्रित्व प्राप्त है, तथापि शुद्धद्रव्यदृष्टि से जो एकत्व से रहित नहीं हुई तथा जो अनन्त चैतन्यस्वरूप निर्मल उदय को प्राप्त हो रही है, ऐसी आत्मज्योति का हम निरन्तर अनुभव करते हैं। यह कहने का आशय यह भी जानना चाहिए कि जो सम्यक्दृष्टि पुरुष हैं वे, जैसा हम अनुभव करते हैं, वैसा अनुभव करें।।20।।

टीका : अब, कोई तर्क करे कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है, अलग नहीं है, इसलिए वह ज्ञान का नित्य सेवन करता है; तब फिर उसे ज्ञान की

उपासना करने की शिक्षा क्यों दी जाती है? उसका समाधान यह है – ऐसा नहीं है। यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप से है, तथापि वह एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता; क्योंकि स्वयंबुद्धत्व (स्वयं स्वत: जानना) अथवा बोधितबुद्धत्व (दूसरे के बताने से जानना) – इन कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है। (या तो काललब्धि आये, तब स्वयं ही जान ले अथवा कोई उपदेश देनेवाला मिले, तब जाने– जैसे सोया हुआ पुरुष या तो स्वयं ही जाग जाये अथवा कोई जगाये तब जागे।) यहाँ पुन: प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो जानने के कारण से पूर्व क्या आत्मा अज्ञानी ही है क्योंकि उसे सदा अप्रतिबुद्धत्व है? उसका उत्तर :– ऐसा ही है, वह अज्ञानी ही है।

कलश - २० पर प्रवचन

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छच्छम्।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धि॥२०॥

श्लोकार्थ - आचार्य कहते हैं कि... अमृतचन्द्राचार्य मुनि ९०० वर्ष पहले हुए। महा भावलिंगी सन्त। कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ है, उसका पेट (अभिप्राय) खोलनेवाले। समझ में आया? यह आचार्य कहते हैं। सन्त भावलिंगी परमेश्वरपद में सम्मिलित हैं। णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं। हों! लोए सव्व सब में लेना। जैसे अन्त में है न? णमो लोए सव्व साहूणं। तो णमो लोए सब में ले लेना। ऐसा शास्त्र में पाठ है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उव्वज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। यह अन्तिम पद सबमें ले लेना। ऐसा धवल शास्त्र में पाठ है। कहते हैं कि ऐसे आचार्य, कहो, समझ में आया? जिन्हें चार ज्ञान, चौदह पूर्व के धारक गणधर (नमते हैं)।

सीमन्धर भगवान वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। तीर्थंकर महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। समवसरण में मौजूद हैं। उनके गणधर हैं, वे जिन्हें नमस्कार करते हैं। अमृतचन्द्राचार्य को भी नमस्कार करते हैं। उस समय में भी वे ही थे, अभी भी वे ही

गणधर हैं। अमृचन्द्राचार्य तो ९०० वर्ष पहले हुए। भगवान का आयुष्य तो करोड़ पूर्व का है। और गणधर का आयुष्य भी बड़ा है। अरबों... अरबों... अरबों वर्ष का आयुष्य है वहाँ। समझ में आया? करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है। अभी विराजमान हैं। १९वें मल्लिनाथ, २०(वें) मुनिसुव्रत के समय से विराजमान हैं और आगामी चौबीसी के बारहवें, तेरहवें तीर्थंकर होंगे, वहाँ तक रहेंगे, तब मुक्ति होगी। सत्तर लाख करोड़... समझे? सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व होता है। सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसे एक करोड़ पूर्व का आयुष्य है। इतना दीर्घ आयुष्य है। ऐसा आयुष्य है। भगवान वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। समवसरण में जीवन्त हैं, जीवनमुक्त हैं। उनके गणधर हैं। वे णमो लोए सव्व आईरियाणं बोलते हैं। परन्तु वे भी रचना करते हैं, तब अमृतचन्द्राचार्य ऐसे हैं कि जिन्हें गणधर का नमस्कार पहुँचता है। समझ में आया?

यह आचार्य कहते हैं, अरे! **अनन्त (अविनश्वर)...** लिया। समझे? नाश नहीं इतना। अनन्त अर्थात् नाश नहीं, ऐसा लेना है। ऐसा लेना है। अनन्त अर्थात् परिपूर्ण और बहुत, ऐसा नहीं लिया। अनन्त अर्थात् नाश नहीं, ऐसा **चैतन्य जिसका चिह्न है...** आत्मा का चैतन्य चिह्न कभी नाश नहीं पाता, ऐसा स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आत्मा, उसका चैतन्यचिह्न—जानना लक्षण कभी नाश नहीं होता। समझ में आया? आत्मा चैतन्यलक्षण। लक्षण से लक्षित होता है। ऐसा चैतन्यलक्षण **जिसका चिह्न है, ऐसी इस आत्मज्योति...** जिसका अविनाशी चैतन्य चिह्न है ऐसी यह आत्मज्योति। आहाहा! भाषा देखो! विशिष्टता। राग या विकल्प से उसका पता नहीं लगता। क्योंकि लक्ष्य आत्मा और चैतन्य चिह्न—लक्षण है। आत्मा लक्ष्य और विकल्प रागादि से लक्ष्य प्राप्त हो, वह राग उसका लक्षण है नहीं, ऐसा कहते हैं। नाश बिना का चैतन्य चिह्न जिसका लक्षण है, ऐसी आत्मज्योति। आहाहा! कितनी बात करते हैं! समझ में आया?

भगवान आत्मा, देह उसका लक्षण नहीं कि उससे लक्ष्य में आवे। दया, दान के विकल्प, वे लक्षण नहीं कि जिससे लक्ष्य में आवे। और वह तो नाशवान है, भाई! वे विकल्प तो नाशवान है, फेरफार हो जाते हैं। चैतन्यलक्षण तो अविनाशी है। चैतन्य...

चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... अविनाशी लक्षण है। आहाहा! कितनी बात करते हैं! राग है, विकल्प है, वह तो पलट जाता है, शुभाशुभराग पलट जाता है। यह तो चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य जिसका लक्षण है, ऐसी आत्मज्योति। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा, जिसका अविनाशी चैतन्य चिह्न है। आहाहा! गजब परन्तु टीका! यह पुण्य-पाप के विकल्प, वह लक्षण नहीं और उनसे आत्मा प्राप्त नहीं होता। ऐसा पहले निषेध करते हैं। आहाहा! क्या राग, दया, दान, मन्द कषाय उसका लक्षण है कि उससे आत्मा लक्ष्य में आता है? और वह तो फेरफार हो जाता है, कृत्रिम भाव है। यह तो चैतन्य लक्षण अविनाशी लक्षण, अकृत्रिम लक्षण, शाश्वत लक्षण। आहाहा! समझ में आया? किसकी बात चलती है? आत्मज्योति। आत्मज्योति अविनाशी चैतन्यचिह्नवाली ज्योति है। यह चैतन्य लक्षण से यह आत्मा ऐसा लक्ष्य अनुभव होता है। कोई राग से, विकल्प से, निमित्त से, पर की वाणी से आत्मा का अनुभव ज्ञान नहीं होता। समझ में आया?

अनन्त... नाश बिना का **चैतन्य जिसका चिह्न...** चैतन्य, हों! चेतन तो आत्मा है। यह चैतन्य लक्षण है न ज्ञान। **जिसका चिह्न...** जिसका (अर्थात्) किसका? **ऐसी यह आत्मज्योति...** यह आत्मज्योति। देखो! पहले यह ज्ञान करो, कहते हैं। चैतन्य लक्षण चिह्न, निशान... अँधाण कहते हैं तुम्हारे में? नहीं कहते। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। यह लक्षण को निशान कहते हैं। इस निशान से चले जाओ। ऐसे चैतन्यलक्षण के निशान से अन्दर चले जाओ।

ऐसी इस आत्मज्योति का... अर्थात् यह निर्णय किया। **हम...** अब हम। कोई कहे कि हम नहीं लेना। अहंकार हो जायेगा इसमें। सर्व में भाग पड़ जाते हैं। परन्तु आत्मा भिन्न अपना अस्तित्व रखता है तो हम आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? मैं, तो मैं विकल्प है। नहीं। वह भिन्न वस्तु विकल्प है। परन्तु हम (कहने से) दूसरे से भिन्न पड़कर भाग पड़ जाते हैं अभेद से। ऐसा नहीं। कितनों को सबको एक ठहराना है न! सब एक आत्मा, जाओ! ऐसा है नहीं। हम चैतन्य लक्षण से लक्षित आत्मा करके **हम एक निरन्तर... 'सततम्'** शब्द पड़ा है। देखो! विकल्प है, लिखते समय भी हम निरन्तर

आत्मा का ही अनुभव करते हैं। हमारे आत्मा का ही वेदन अन्तर में निरन्तर रहता है। वाणी में वाणी रही, विकल्प में विकल्प रहा। मुझमें वह है ही नहीं।

निरन्तर अनुभव करते हैं... देखो! समकिती को, मुनि को ऐसे अनुभव का ख्याल आता है या भगवान को पूछना पड़ता है? यह तो हमको खबर पड़ती नहीं, ऐसा (लोग) कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं, हम अनुभव करते हैं, खबर पड़ती है। जानने में आता है। देखो! है इसमें? देखो! **अनुभव करते हैं...** भगवान जाने हमको सम्यग्दर्शन है या नहीं, ऐसा नहीं। हमें, आत्मा का ज्ञान, उसकी श्रद्धा और स्थिरता का अनुभव हम करते हैं। आहाहा! तीनों बोल आ गये। समझ में आया? चैतन्यचिह्न लक्षणवाला आत्मा, ऐसी आत्मज्योति, ज्ञान हुआ है, प्रतीति हुई है। **हम निरन्तर अनुभव करते हैं...** उसमें ही हमारी एकाग्रता चालू है। समझे? आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प-फिकल्प भी मेरे नहीं। आहाहा! यह तो पंचम काल के मुनि हैं। यह तो अभी ९०० वर्ष पहले हुए। दिगम्बर सन्त जंगलवासी वनवासी थे। वे कहते हैं कि **हम निरन्तर अनुभव करते हैं...**

मुमुक्षु : गाथा कुन्दकुन्दाचार्य ने बनायी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल गाथा कुन्दकुन्दाचार्य की, परन्तु यह कलश हैं अमृतचन्द्राचार्य के। कलश अमृतचन्द्राचार्य के। मूल श्लोक जो लाल हैं न? (लाल कलर में छपे हैं न) लाल, वे कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि **निरन्तर अनुभव करते हैं...** कितनी बात रखी! उसका तो अनन्त चैतन्य अविनाशी लक्षण वह चैतन्य है, दूसरा कोई उसका लक्षण नहीं। और वह अविनाशी है। अविनाशी लक्षण द्वारा आत्मा का लक्ष्य होता है। तो आत्मा का ज्ञान हुआ, प्रतीति हुई कि यही आत्मा ज्ञानानन्द है। और उसमें सतत अनुभव करते हैं। स्वरूप आनन्द में हम लीन रहते हैं। इसका नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? क्यों? **क्योंकि उसके अनुभव के बिना...** उसके अनुभव बिना। उसके अर्थात् भगवान आत्मा चैतन्य लक्षण से लक्षित भगवान आत्मा के श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव किये बिना **अन्य प्रकार से साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती।** देखो! निषेध करते हैं। कोई व्यवहार से-

व्यवहार से मुक्ति होती है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उसके अनुभव के बिना... भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य प्रभु चैतन्य लक्षण से लक्षित अनुभव में आनेवाला और उसकी प्रतीति हुई, उसमें अनुभव हुआ, उसी अनुभव से मुक्ति होती है। इसके अतिरिक्त **अन्य प्रकार से...** दूसरे प्रकार से—दया, दान, विकल्प व्यवहार, निमित्त, शरीर, संहनन आदि से साध्य जो आत्मा की मुक्ति, उसकी सिद्धि अन्य प्रकार से नहीं होती। समझ में आया? व्यवहार से नहीं होती, ऐसा निषेध किया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो लिखा है, वह बराबर है कि मोक्षमार्ग तो एक ही है। दो तो कथन किये हैं। व्यवहार तो बन्ध का कारण है। यह एक ही मोक्ष का कारण है। प्रत्येक गाथा में बात निकलती है परन्तु कौन जाने क्या करते हैं? अप्रमाणित है, टोडरमलजी अप्रमाणित हैं। दो मोक्षमार्ग का निषेध करते हैं। दो मोक्षमार्ग माने, उसे भ्रम कहते हैं। हम कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग न माने, वे भ्रम में पड़े हैं। ऐसा (वे) कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमको आगम की श्रद्धा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमको आगम की श्रद्धा है। हमने तो आगम की श्रद्धा से लिखा है, ऐसा मानते हैं। तुम लिखा है, ऐसा मानते नहीं। सुन तो सही! क्या लिखा है? किस नय का कथन है, (इसकी तुझे खबर नहीं)। नय के ज्ञान बिना युक्त, अयुक्त और अयुक्त, युक्त हो जाता है। आहाहा! व्यवहारनय का कथन है या निश्चय का कथन है? व्यवहार तो निरूपण कथन की अपेक्षा से बात है। वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। समझ में आया?

उसके अनुभव के बिना... देखो!

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप।

बोले थे न कल? यह मुखाग्र किया और फिर गड़बड़ तो बहुत करते थे। यह तो एक बात है। सेठ! यह तो कहने की बात है। तुमको कण्ठस्थ तो था न, भाई! कण्ठस्थ था। अर्थ की खबर नहीं थी। बात यह। यह भी कल बोले थे, कल नहीं बोले थे?

वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम,
रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव याकौ नाम।

समझ में आया? 'वस्तु विचारत ध्यावतै' भगवान चैतन्य ज्ञानज्योति स्वरूप का ध्यान करने से। 'वस्तु विचारत, वस्तु विचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम' विकल्प है, वह मर जाता है, मन मर जाता है। मन के विकल्प छूट जाते हैं। 'रस स्वादत...' मर जाने के पश्चात् उपजे क्या? 'रस स्वादत सुख उपजै' आत्मा के आनन्द के रस का स्वाद आता है। 'अनुभव याकौ नाम'। वह अनुभव मोक्ष का मार्ग है। बाकी मार्ग-फार्ग है नहीं। आहाहा! समझ में आया? व्यय और उत्पाद, ध्रुव। तीन लिये। वस्तु त्रिकाली ध्रुव, उसका विचार करने से मन विश्राम पाता है—विकल्प नाश होते हैं और आत्मा के आनन्द का रस उत्पन्न होता है। बस, इसका नाम अनुभव। यह 'अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' इसके अतिरिक्त कोई मोक्ष का मार्ग है नहीं। समझ में आया?

पहले व्यवहार करते-करते होगा या नहीं? जहर खाते-खाते अमृत की डकार आये न? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? नहीं। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? नहीं आती। उसी प्रकार व्यवहार करते-करते निश्चय होता है? नहीं होता। व्यवहार की गन्ध है। राग की—लहसुन की (गन्ध है)। आहाहा! ऐई! देवानुप्रिया! गजब बात परन्तु, भाई!

उसके अनुभव के बिना अन्य प्रकार से साध्य आत्मा की... मुक्ति ऐसी **सिद्धि नहीं होती।** अब कहते हैं, **कैसी है आत्मज्योति? जिसने किसी प्रकार से त्रित्व अंगीकार किया है....** तीनपना। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। यह तीनपना पर्याय में है। **तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई...** द्रव्यस्वभाव से एकत्व से च्युत नहीं हुई। समझ में आया? '**कथम् अपि समुपात्तत्रित्वम् अपि एकतायाः**' बस, यह। और '**अच्छम् उद्‌गच्छत्**' **जो निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है।** लो। यह ज्योति... समझ में आया? निर्मलता '**अच्छम् उद्‌गच्छत्**' **निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है।** '**अच्छम्**' अर्थात् निर्मलता '**उद्‌गच्छत्**' अर्थात् उदय को प्राप्त हो रही है। '**अच्छम् उद्‌गच्छत्**' निर्मलता से निर्मलता प्राप्त हो रही है, ऐसा कहते हैं। उसमें राग पाता है, व्यवहार पाता है, ऐसा नहीं।

निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है, भगवानज्योति। चैतन्यज्योति की दृष्टि, ज्ञान और अनुभव करने से निर्मलता ही प्राप्त होती है। निर्मलता प्राप्त करते... करते... करते... केवलज्ञान हो जाता है। वह निर्मलता से मुक्ति, केवलज्ञान प्राप्त होता है। रागादि से मुक्ति नहीं होती। समझ में आया?

भावार्थ - आचार्य कहते हैं कि जिसे किसी प्रकार... जिसे अर्थात् आत्मा को। **किसी प्रकार पर्यायदृष्टि से त्रित्व प्राप्त है...** पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, (चारित्र), ऐसे तीन भेद पर्यायदृष्टि से देखने में आते हैं। **तथापि शुद्धद्रव्यदृष्टि से...** शुद्ध वस्तु द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखो तो **एकत्व से रहित नहीं हुई...** भगवान एकस्वरूप चिदानन्द है, उससे कभी भ्रष्ट हुआ नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य तो अशुद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य अशुद्ध कहाँ से आया? द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है। पर्याय अशुद्ध है, द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है। शुद्ध द्रव्यदृष्टि से देखो। वह कहते हैं, पर्याय अशुद्ध है तो द्रव्य भी अशुद्ध है। अभी आया है। अरे भगवान! परन्तु बहुत मरोड़ डाला। त्रिकाली द्रव्य शुद्ध है, पर्याय अशुद्ध है। तो कहे, नहीं। पर्याय अशुद्ध है तो द्रव्य भी अशुद्ध हो गया। ऐसा वे लोग कहते हैं। अरे भगवान! समझ में आया? शुद्धस्वभाव। शुद्धस्वभाव तो कायम एकरूप त्रिकाल परमात्मा ऐसा का ऐसा विराजमान है। तेरी पर्याय में अशुद्धता है, उसका नाश करके शुद्धता प्रगट करना, इसका नाम मोक्ष है। वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान परमात्मा अपना स्वरूप विराजमान है। खबर नहीं। किसी जगह आया हो न कि अशुद्ध पर्याय है, इसलिए द्रव्य अशुद्ध। उसे और इसे क्या है? यहाँ तो कहा नहीं? तन्मय कहा, वह दृष्टान्त देते हैं। शुभ हुआ तो तन्मय हो गया। वह तो पर्याय की बात की। द्रव्य कहाँ से तन्मय हो गया? यह प्रवचनसार में आता है न। वह तो दूसरी बात करते हैं। अशुभ परिणाम तन्मय पर्याय में होते हैं। धर्म भी शुद्धरूप परिणत होता है। धर्म परिणत आत्मा ही तन्मय आत्मा में—शुद्धोपयोग में तन्मय होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शुद्धद्रव्यदृष्टि से... शुद्ध द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु... वस्तु सत्... सत्... सत्...

शुद्ध। ऐसी दृष्टि से देखो तो **जो एकत्व से रहित...** वह आत्मज्योति-भगवान आत्मज्योति कभी तीन प्रकार से हुई नहीं। वह तो एकरूप वस्तु है। पर्याय में तीन प्रकार दिखते हैं। **जो अनन्त चैतन्यस्वरूप निर्मल उदय को प्राप्त हो रही है,...** लो! '**अपतितम्**' क्या क्या किया? च्युत हुई नहीं, अपतित है। पतित नहीं, पतित नहीं, पतित नहीं—ऐसा कहा। **एकत्व से रहित नहीं हुई...** ठीक। शुद्ध द्रव्य से एकत्व से रहित नहीं हुई। पतित—पड़ी नहीं, ऐसा। **जो अनन्त चैतन्यस्वरूप निर्मल उदय को प्राप्त हो रही है,...** ओहो! क्या कहते हैं? पर्याय में तीन प्रकार होने पर भी शुद्ध द्रव्य में एकपने से कभी पतित हुई नहीं।

ऐसी आत्मज्योति का हम निरन्तर अनुभव करते हैं। पंचम काल के सन्त पंचम काल के। भगवान के पश्चात् तो १५०० वर्ष गये। समझ में आया? (आज से) ९०० वर्ष हुए न? पश्चात् मुनि कहते हैं कि हम पंचम काल के सन्त कहते हैं, दिगम्बर सन्त वनवासी (कहते हैं), निरन्तर अनुभव करते हैं। लो। आत्मा का अनुभव करते हैं, खबर पड़ गयी? यह तो सूक्ष्म है, सम्यग्दर्शन सूक्ष्म है, ज्ञान सूक्ष्म है। भाई! सूक्ष्म परन्तु वह तो प्रत्यक्ष ऐसे नजर में नहीं पड़ते। समझ में आया? अन्धा मिश्री खाये तो वेदन में कहीं परोक्ष है? अन्धा मिश्री खाये, वह देखता नहीं, परन्तु मिश्री को खाता है, वह वेदन में तो प्रत्यक्ष है या नहीं? या परोक्ष है? इसी प्रकार आनन्द का अनुभव, भले वे असंख्य प्रदेश नजर में न पड़े। वह आनन्द का अनुभव, शान्ति का अनुभव है, वही आत्मा है, दूसरी कोई चीज़ आत्मा है ही नहीं।

यह कहने का आशय यह भी जानना चाहिए कि जो सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं वे,... देखो! शिक्षा करते हैं कि **जैसा हम अनुभव करते हैं, वैसा अनुभव करें।** अनुभव से ही मुक्ति है। इसके अतिरिक्त मुक्ति कभी है नहीं। सम्यग्दृष्टि को भी कहते हैं कि तू तेरे अनुभव में रहो। अनुभव करो, स्थिर होओ, उससे मुक्ति होगी। समझ में आया? मार्ग माने लगे ऐसा बड़ा एल.एल.बी. कैसा होगा मार्ग? यह तो अभी पहले से बात करते हैं, भाई! आत्मा आनन्दकन्दस्वरूप है, उसका पहले भान करो। भान करके प्रतीति करो, तत्पश्चात् स्वरूप में रमणता करो, वही मुक्ति का मार्ग है। भगवान वीतराग परमेश्वर जैन

परमेश्वर के मार्ग में यह एक मार्ग है। दूसरा मार्ग जगत कहता है, वह मार्ग वीतराग का है नहीं। समझ में आया? आहाहा! अब टीका। थोड़ी टीका ली है, देखो! बाकी है।

टीका - अब, कोई तर्क करे... तर्क करे, कल प्रश्न आया था। **आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है,...** है? टीका में है? भाई! यह रही। इसमें है इसकी टीका है। अमृतचन्द्राचार्य की। है न, देखो न! **'ननु ज्ञानतादात्म्यादात्मा ज्ञानं नित्यमुपास्त एव'** अमृतचन्द्राचार्य की टीका है, श्लोक की टीका है। **कोई तर्क करे कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है,...** तादात्म्य एकस्वरूप ही है। आत्मा और ज्ञान एक स्वरूप ही है। यह आत्मा और जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... तो तद्रूप है। जैसे अग्नि में उष्णता तद्रूप है, जैसे चीनी में मिठास तद्रूप है, वैसे आत्मा में ज्ञान तो तद्रूप ही है, भिन्न नहीं। भगवान आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव से तो कभी भिन्न पड़ता ही नहीं। भिन्न पड़े तो आत्मा रहता नहीं। शिष्य का प्रश्न है। **इसलिए वह ज्ञान का नित्य सेवन करता है;...** देखो! भगवान आत्मा... कैसी बात करते हैं!

यह शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी-धूल है। कर्म भी मिट्टी-धूल है। यह पुण्य-पाप के विकल्प वे कृत्रिम हैं। वे कहीं आत्मा में नित्य रहनेवाली चीज़ नहीं। आत्मा में नित्य रहनेवाली चीज़ तो ज्ञान है। आत्मा और ज्ञान तो तद्रूप एक स्वरूप तदात्मक—तद्-आत्मक—तत् स्वरूप है। तो ज्ञान का नित्य सेवन करता ही है। आत्मा तद्रूप रहता है तो ज्ञान का सेवन करता ही है। शिष्य का प्रश्न है। **तब फिर उसे ज्ञान की उपासना करने की शिक्षा क्यों दी जाती है?** आहाहा! आत्मा वस्तु अर्थात् ज्ञान से एकरूप तद्रूप तो है ही। आत्मा ज्ञान की सेवा करता ही है। समझे? ज्ञान का नित्य सेवन करता ही है। क्योंकि ज्ञान को छोड़कर आत्मा अन्यरूप तो रहता नहीं। तो ज्ञानरूप ही आत्मा रहता है। आत्मा ज्ञानरूप न रहे तो जड़ हो जाये। ज्ञान और आत्मा तो एकरूप तद्रूप रहता है। तो आत्मा ज्ञान की सेवा सदा करता है?

यहाँ ज्ञान क्यों कहा है? राग की और पुण्य-पाप की सेवा की है, यह बतलाने को कहते हैं कि ज्ञान की सेवा (करना)। **तब फिर उसे ज्ञान की उपासना...** वह तो एक के एक शब्द हैं, हों! उपास्य शब्द है न इसमें? उपास्य शब्द दोनों में पड़े हैं। ज्ञान की

नित्य उपासना करता है। शिष्य कहता है, हों! क्या? कि आत्मा और ज्ञान... शिष्य ने इतना तो पकड़ लिया है। पुण्य-पाप के भाव, वे आत्मा में नित्य नहीं। उसके साथ नित्य रहते नहीं। शरीर, वाणी, यह मिट्टी-धूल वे तो नित्य रहते नहीं। वे तो बाहर चले जाते हैं। उनके कारण से आते हैं और उनके कारण से जाते हैं। वह तो जगत की धूल-मिट्टी चीज़ है। और पुण्य-पाप के विकल्प भी आत्मा के साथ एकरूप नहीं रहते। इतना तो शिष्य को ख्याल आया। आत्मा और ज्ञान एकरूप रहता है। वह तो सदा नित्य रहते हैं। तो आत्मा तो ज्ञान की सेवा (करता ही है)। ज्ञान से भिन्न रहता नहीं। भिन्न रहता नहीं। ज्ञान और आत्मा एकरूप रहते हैं। तो ज्ञान की सेवा तो आत्मा करता ही है। करता है तो वापस ज्ञान की सेवा करो? वापस कहते हैं, ज्ञान की सेवा करो। यह शिक्षा क्यों दी जाती है?

उसका समाधान यह है - ऐसा नहीं है। तू कहता है वैसा नहीं। **यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप से है...** ज्ञान और आत्मा एकस्वरूप है। **तथापि वह एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता;...** ज्ञान की एकाग्रता क्षणमात्र कभी की नहीं। इसने तो राग की सेवा अनन्त काल से की। दया, दान, व्रत, तप, काम, क्रोध, शुभाशुभ राग आया न? राग किया, उसकी सेवा की है। उस ज्ञान की सेवा में एकाग्र हुआ नहीं। देखो! अन्य की सेवा की तो बात भी नहीं। अन्य की सेवा आत्मा कर सकता नहीं। सेवा धर्म गहन है और ऐसा सब आता है। अन्य की सेवा-बेवा कोई करता नहीं। धूल कौन करता है? वह तो सब स्वतन्त्र पदार्थ हैं। पर की सेवा कौन करे? क्या करे? लोगों को कुछ खबर नहीं होती। बेचारे जैसा हाँके वैसे हँकते हैं।

यहाँ तो इतना कहते हैं कि ज्ञान और आत्मा एकरूप होने पर भी उसने ज्ञान की अन्तर एकाग्रता एक समय भी की नहीं। एकाग्रता करे, उसका नाम ज्ञान की सेवा है। आहाहा! द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। परन्तु पर्याय में अनादि से राग की सेवा करता है। समझ में आया? व्यवहार विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प उठा, बस! उसकी सेवा करता है मूढ़ जीव और मानता है कि हम आत्मा की सेवा करते हैं। शरीर की सेवा और पर की सेवा की बात तो है ही नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा ऐसे चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा और ज्ञान एकरूप होने पर भी ज्ञान की एकाग्रता एक क्षणमात्र, एक समयमात्र भी अनन्त काल में की नहीं। ज्ञान और आत्मा तादात्म्य होने पर भी ज्ञान की एकाग्रता अनन्त काल में इसने की नहीं। ज्ञान की एकाग्रता होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। आहाहा! वह सम्यग्ज्ञान, चिदानन्द प्रभु की एकाग्रता होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। राग, दया, दान, विकल्प में एकाग्रता, वह अचारित्र है। उसे धर्म मानना मिथ्यात्व, अज्ञान और अचारित्र है। समझ में आया? आहाहा!

एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता;... आहाहा! अरे! त्रिकाल ज्ञान और आत्मा एक है न? वह तो त्रिकाल तादात्म्य शक्तिरूप से त्रिकाल एकरूप है। परन्तु उस ओर की एकाग्रता कहाँ हुई है? बराबर है? ज्ञानचन्दजी! एक समय भी ज्ञान की सेवा—एकाग्र हो तो मुक्ति हुए बिना नहीं रहती। हो गया समय...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ६, बुधवार, दिनांक - १९-१०-१९६६
कलश २० के बाद की टीका तथा गाथा-१९, प्रवचन - ८०

समयसार जीव-अजीव अधिकार चलता है। १७-१८ की पीछे की टीका है, देखो! टीका, टीका। यह प्रश्न क्यों उठा? टीका है न? १९ गाथा के ऊपर। १७-१८ (गाथा) के बाद। **अब, कोई तर्क करे कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है,...** है? क्या कहते हैं? शिष्य को प्रश्न क्यों उठा? कि आचार्य महाराज ने ऐसा कहा कि यह आत्मा, जैसे राजा को छत्र, चँवर आदि चिह्न से पहिचानकर 'यह राजा है'— ऐसा निर्णय करके फिर उसकी सेवा-आराधना करे तो उसे आजीविका मिले।

उसी प्रकार यह आत्मा जीवराजा। देह में भगवान जीवराजा का पहला आत्मज्ञान करे कि यह चीज़ क्या है? शुद्ध आनन्द ज्ञायकमूर्ति है, उसका ज्ञान करके श्रद्धा करना कि वह ही आत्मा है और उसकी सेवा करना। उसे आत्मा का अनुचरण कहो, आश्रय कहो, आराधना कहो, सेवा कहो। समझ में आया? यह आत्मा जो है, वह अनन्त आनन्द आदि शुद्धस्वभाव की मूर्ति है। पुण्य-पाप के विकल्प जो राग, उससे रहित है। शरीर, कर्म से तो रहित है ही। ऐसे आत्मा का पहले ज्ञान करके कि यही आत्मा है, उसका अनुभव करके अनुभव में श्रद्धा करना कि यही आत्मा है कि जिस आत्मा में स्थिर होने से, रमने से, सेवन करने से, आराधन करने से मेरे सब कर्म छूट जायेंगे, बन्धन छूट जायेंगे। ऐसा आचार्यों ने कहा तो शिष्य को प्रश्न उठा। समझ में आया? शिष्य को प्रश्न उठा कि महाराज! आप क्या कहते हो? आत्मा और ज्ञान तो एक स्वरूप है ही। आत्मा और ज्ञान तो तादात्म्य—तत्स्वरूप है। तो ज्ञान की सेवा नहीं करता, ऐसा कहाँ से आया? क्योंकि ज्ञान और आत्मा दोनों भिन्न नहीं हैं। दो भिन्न नहीं। तो आप कहते हो कि आत्मा के ज्ञान का सेवन करना, ज्ञान का सेवन करना। ज्ञान की आराधना करना, ज्ञान की सेवा करना, ज्ञान का अनुचरण करना, ज्ञान का आचरण करना। ज्ञान

और आत्मा तो एक ही वस्तु है, भिन्न तो है नहीं। समझ में आया? क्यों? वैद्यराजजी! शिष्य का प्रश्न है।

मुमुक्षु : ज्ञान और आत्मा एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है और आप कहते हो कि ज्ञान की सेवा करो, ज्ञान की सेवा करो, ज्ञान का आराधन करो, ज्ञान का आचरण करो, ज्ञान का आश्रय करो, उसका आश्रय करो। क्या आश्रय करे? आत्मा और ज्ञान तो एक ही है। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया?

आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है,... भगवान आत्मा और उसका ज्ञान, वह तो एकरूप ही है, एक स्वरूप है, अभेद है, भिन्न नहीं, पृथक् नहीं। देखो! समझ में आया? **इसलिए वह ज्ञान का नित्य सेवन करता है;...** वह तो आत्मा ज्ञानस्वरूपी ही है, तो सदा ही ज्ञान का ही सेवन करता है और आप कहते हो कि ज्ञान का सेवन करो, ज्ञान का सेवन करो। सेवन करता ही है, उसे सेवन करो, (ऐसा) किसलिए कहते हो? समझ में आया? **तब फिर उसे ज्ञान की उपासना...** उपासना कहो, सेवा कहो, आराधना कहो, सब एक ही बात है। **करने की शिक्षा क्यों दी जाती है?** महाराज! सर्वज्ञ परमेश्वर और सन्त, आप मुनि हमको आत्मा के ज्ञान का सेवन करना, ऐसी शिक्षा क्यों देते हो? आत्मा और ज्ञान तो एक स्वरूप है, भिन्न तो है नहीं। तो उसकी सेवा करने का क्यों कहते हो? बराबर है? प्रश्न तो उसका समझना चाहिए न?

उसका समाधान :- बड़ी बात आयी है, इसमें देखो! **तो ऐसा नहीं है।** तू कहता है, ऐसा नहीं है। **यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप से है...** यद्यपि भगवान आत्मा अपने ज्ञानगुण ज्ञानस्वभाव ज्ञानशक्ति ज्ञानसत्त्व, आत्मा सत् और ज्ञान सत्त्व, उसके साथ अभेद एकरूप तो है। समझ में आया? **तथापि वह एक क्षणमात्र भी...** देखो! **एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता;...** कैसे शब्द उठाये! दुनिया कहती है या नहीं? पर की सेवा, पर की सेवा। सेवानाम धर्मो, योगीनामपि गहनो। क्या कहा? परम गहनो, ऐसा कहते हैं। कौनसी सेवा वह? यह आत्मा की सेवा। योगीनामपि अगम्य गहनो। पर की सेवा कौन कर सकता है? धूल। पर की सेवा कर कौन सकता

है परद्रव्य की? समझ में आया? शरीर की सेवा कौन कर सकता है? वह तो जड़-मिट्टी-धूल है। परपदार्थ तो भिन्न है। उनकी सेवा कौन कर सकता है? अरे! सर्वज्ञ परमेश्वर या उनकी प्रतिमा की सेवा कौन कर सकता है? पर की सेवा कर सकता है? वह तो शुभभाव आता है तो पर के ऊपर भक्ति आदि (होती) है। वह भी वास्तव में ज्ञान की सेवा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप (एकस्वरूप) से है, तथापि वह एक क्षणमात्र भी... एक क्षणमात्र भी, एक समयमात्र भी **ज्ञान का सेवन नहीं करता;...** देखो, ठीक! आत्मा और ज्ञानस्वरूप तो एक स्वरूप है, तथापि ऐसा होने पर भी ज्ञान की एकाग्रता की सेवा एक समयमात्र भी इसने की नहीं। समझ में आया? स्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान चैतन्यप्रकाश सूर्य की एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ज्ञान की सेवा अर्थात् एकाग्रता अर्थात् आराधना अर्थात् ज्ञान का आश्रय एक समय भी अनन्त काल में इसने किया नहीं। समझ में आया? दूसरा सब किया। भगवान तीर्थंकर देव-गुरु-शास्त्र की सेवा का भाव, वह तो राग है, वह तो पुण्य है। समझ में आया? पर की सेवा तो कर सकता नहीं, परन्तु कोई दुःखी प्राणी हो, उसे आहार-पानी आदि देने का भाव हो तो वह शुभ है। वह कुछ ज्ञान की सेवा नहीं, आत्मा की सेवा नहीं। ओहो! समझ में आया?

आत्मा, आत्मा की सेवा करे। यह गजब, भाई! पर की सेवा करे या अपनी सेवा करे? वे तो ऐसा कहे कि परोपकार (करो)। भले हमारे एकाध भव करना पड़े तो भी हमारे लोगों की सेवा के लिये जन्म धारण करना पड़े तो दिक्कत नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि मूढ़ है। तू क्या पर की सेवा कर सकता है? समझ में आया? तुझमें शुभराग होता है, शुभ। भगवान की भक्ति, पर के दुःख टालने का भाव आवे, वह तो राग है, वह कहीं धर्म नहीं, वह कोई आत्मा की सेवा नहीं। ओहोहो! सेवा शब्द डालकर क्या कहा? देखो! अनुचरकर, ऐसा कहा है न इसमें? अनुचरण, उपासना, सेवा। इसने आत्मा की उपासना की ही नहीं। ओहोहो! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' अनन्त बार

अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत आदि सब लिये, पालन किये, परन्तु वह ज्ञान की सेवा नहीं। समझ में आया? वह राग की सेवा की। वैद्यराजजी!

मुमुक्षु : ज्ञान की सेवा किस प्रकार से?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात चलती है। यह तो कहते हैं कि ज्ञान की सेवा, अपना स्वरूप चैतन्यज्योति में एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का प्रगट करना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही आत्मा की सेवा है। आहाहा! समझ में आया? गजब भाषा रखी। समझ में आया? '**नित्यमुपास्ते**' सेवा करता है न? नहीं। कौन कहता है सेवा करता है? तूने कभी तेरे सन्मुख एक समय भी देखा नहीं। एक समय भी तेरे सन्मुख देखा नहीं। परसन्मुख देखकर तुझसे विमुख रहा। परसन्मुख देखने से तुझसे विमुख रहा और तेरे स्वभाव से विमुख रहा तो तूने तेरी सेवा कभी की नहीं। पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, तो भी कहते हैं कि ज्ञान की सेवा नहीं की। वह आत्मा की सेवा नहीं, वह तो राग की सेवा है। ओहोहो! समझ में आया?

एक क्षणमात्र... क्षण शब्द से एक समय, हों! एक समय। आहाहा! कहो, भीखाभाई! यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने जो पाठ में कहा है, उसमें से अमृतचन्द्राचार्य ने टीका की। समझ में आया? महा दिगम्बर सन्त मुनि दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य हुए। उनके पश्चात् लगभग एक हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्य हुए। वे अमृतचन्द्राचार्य भावलिंगी सन्त वनवासी मुनि-सन्त थे। वे कहते हैं कि अरे...! प्राणियों! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी चैतन्यज्योति प्रभु की सेवा कभी की नहीं। यह दुनिया के धन्धा-फन्धा में भी स्त्री, पुत्र और परिवार की सेवा की नहीं। तो क्या किया? उस समय राग आया, उस राग की सेवा की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात नहीं। अभी अशुभराग की बात आयी। यहाँ तो स्त्री, कुटुम्ब की सेवा ही की नहीं। उनके लिये कमाता है, वह नहीं। अपने राग के लिये भाव है। उस अशुभराग की सेवा की। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के लिये आया तो शुभराग

आया। तो शुभराग की सेवा की। समझ में आया? उसमें आत्मा की सेवा नहीं आयी। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी चैतन्यबिम्ब, उस चैतन्यबिम्ब में एक समयमात्र भी अनन्त काल में; विकल्प जो राग शुभाशुभ है, उससे हटकर अपनी चैतन्यज्योति में एक समयमात्र भी यह आत्मा, ऐसी सेवा की नहीं। समझ में आया? शिष्य ऐसा कहता है कि सदा ही सेवा करता है न? आत्मा और ज्ञान तो एक है। यह शरीर तो भले भिन्न है। यह हड्डियाँ, शरीर, कर्म, वे तो आत्मा से भिन्न हैं ही, पृथक् है, वाणी भी भिन्न-पृथक् है और राग-द्वेष, पुण्य-पाप नये-नये होते हैं, वे तो भिन्न हैं। परन्तु ज्ञान और आत्मा तो शाश्वत रहते हैं, वे कहीं नये-नये नहीं होते। क्या कहा, समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव तो नये-नये होते हैं तो कायम नहीं रहते। वे कायम नहीं रहते। परन्तु आत्मा और ज्ञान तो कायम रहता है। तो आत्मा और ज्ञानस्वभाव... जैसे अग्नि और उष्णता। तो अग्नि से उष्णता भिन्न है? एक ही है। जैसे शक्कर और मिठास भिन्न है? एक ही है। उसी प्रकार भगवान आत्मा और ज्ञान एक है, शिष्य कहता है। एक है तो वह तो सेवा करता ही है। सेवा की नहीं, सुन तो सही। आहाहा! लो, सेवा का गहना यह। लोग कहते हैं कि पर की सेवा करना और पाँच-पचास लाख देना और ऐसा देना और धूल करना। यह सेवा-फेवा नहीं, ऐसा राग तो अनन्त बार किया, सुन तो सही। करोड़ों-अरबों का दान दिया, उसमें रागभाव मन्द हुआ, पुण्य बँधा, वह आत्मा की सेवा नहीं। ओहोहो! तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजमान सर्वज्ञ परमेश्वर की पूजा मणिरत्न के दीपक से, कल्पवृक्ष के फूल से, हीरा-माणेक के थाल से की, तो भी आत्मा की सेवा नहीं। वह तो राग, शुभराग की सेवा है। इसी प्रकार आचार्य महाराज अमृतचन्द्राचार्यदेव (ने) कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक में से निकाला है। समझ में आया? यह कैसी बात!

भाई! यह ज्ञान, वह आत्मा— ऐसा होने पर भी पर्याय में यह ज्ञान, वह आत्मा— ऐसी एकाग्रता तूने कभी की नहीं। तू तो अनन्त काल से राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, शुभाशुभभाव में रुक गया। वह आत्मा नहीं। वह आत्मा नहीं, उसकी तूने

सेवा की। लो, वैद्यराजजी! क्या किया अभी तक? कुछ नहीं किया? किया तो है, कुछ नहीं किया, ऐसा नहीं, किया तो सही—शुभाशुभराग। आहाहा! समझ में आया? किया तो सही। शुभराग, अशुभराग की सेवा की। आचार्य यह कहते हैं।

भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! तू तो ज्ञानस्वरूपी चैतन्य है। वह तेरे ज्ञानस्वरूप की तूने कभी एकाग्रता नहीं की। और की हो तो तुझे जन्म-मरण रहे नहीं। समझ में आया? आहाहा! सन्तों की कथन की पद्धति... ऐसी सेवा नहीं की, इसलिए ऐसी सेवा अनन्त बार की है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनन्त बार सम्मेदशिखर की यात्रा की, अनन्त बार शत्रुंजय की यात्रा की, अनन्त बार समवसरण में गया। समवसरण में अनन्त बार दिव्यध्वनि सुनी। परन्तु ज्ञान की सेवा एक समय नहीं की। आहाहा! वह तो सब परलक्ष्यी भाव, परलक्ष्यी भाव। शुभ उत्पन्न हुआ, उसकी तूने सेवा की, उससे स्वर्ग आदि मिले और चार गति में भटका। ओहोहो! समझ में आया?

शिष्य ने तो ऐसा प्रश्न किया था कि प्रभु! आत्मा है न। उतना तो उसने निश्चित किया था कि यह आत्मा है न। तो यह शरीर, वाणी के साथ तादात्म्यस्वरूप नहीं। इतना तो उसने (निश्चित किया है)। यह शरीर, वाणी तो जड़ है। उनके साथ तो आत्मा एकरूप है ही नहीं। और पुण्य-पाप के भाव हुए, उनके साथ एकरूप नहीं। इतना तो उसने निश्चित् किया। पुण्य-पाप के भाव हैं, वे विकल्प-राग हैं। क्षण में नये उत्पन्न होते हैं, जाते हैं, उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न-ध्वंसी हैं। उत्पन्न-ध्वंसी अर्थात् विकार, दया, दान आदि विकल्प उत्पन्न होता है, और नाश पाता है। तो उसके साथ तो एकरूप है नहीं। परन्तु इस ज्ञान के साथ तो आत्मा एकरूप है या नहीं? चैतन्यज्योति है, है, परन्तु सेवा नहीं की, हों! यह तद्रूप है इस ओर की सन्मुखता एक समय नहीं की। कहो, वजुभाई! कैसी सेवा की होगी? सब बाहर की की है। राग की। आहाहा!

यह शास्त्र वाँचे तो कहते हैं कि राग आया। राग की सेवा की, लो, ऐसा कहते हैं। शास्त्र वाँचे, शास्त्र सुने, शास्त्र कण्ठस्थ किये तो भी उनके सन्मुख का जो विकल्प-राग आया, उसकी सेवा की है; ज्ञान की सेवा नहीं की। आहाहा! समझ में आया? किस ढंग से बात डालते हैं अमृतचन्द्राचार्य! राजा की सेवा कर, वैसे आत्मा की सेवा कर।

आत्मा की सेवा अर्थात् क्या? ज्ञान की सेवा। ज्ञान की सेवा क्या? ज्ञान और आत्मा तो एक ही है। अरे, सुन तो सही! एक ही है तो तू कहाँ सन्मुख हुआ है? उस ओर सन्मुख तो हुआ नहीं। विमुखता से तूने काम लिया है। अनादि से आत्मा के ज्ञान से विमुखता से काम लिया है। सन्मुख तो एक समय हुआ नहीं। ओहोहो! समझ में आया? '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' इस प्रकार यहाँ डालना चाहते हैं। शैली जो है, यह है न! कहो, सेठी! बराबर है? क्या बराबर? तुम्हारे गाँव में—जयपुर में तो कितने वर्षों से मन्दिर है। सबके दर्शन किये हैं या नहीं? सबके? यहाँ कहते हैं कि आत्मा के दर्शन एक बार भी किये ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कितने मन्दिर! उसरूप से कहाँ... सोनागिर? सोनागिर नहीं परन्तु उस रूप से। पपोराजी। टीकमगढ़ के पास कितने मन्दिर! यहाँ से यहाँ और यहाँ से यहाँ और यहाँ से यहाँ। कितना समय लगे। दो घण्टे, तीन घण्टे हो तब मुश्किल-मुश्किल से पूरा हो, इतने मन्दिर। सब देखा है न। सर्वत्र गये थे न। कहते हैं कि... वहाँ तो बहुत हैं। अभी एक नया मन्दिर होता है। और नया एक मानस्तम्भ। तीन मानस्तम्भ तो थे, चौथा मानस्तम्भ (बनाते हैं)। इतने मन्दिर हैं, कितने? ७६। और ७७वाँ (बनाते हैं)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे मन्दिर और मन्दिर के दर्शन और मन्दिर की सेवा और भगवान की पूजा तूने अनन्त बार की है, ले। परन्तु आत्मा की पूजा एक समय की नहीं। ज्ञानचन्दजी! एक समय नहीं। एक समय आत्मा की सेवा करे तो जन्म-मरण का नाश हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! किस प्रकार से बात करते हैं!

ऐसा नहीं है। आचार्य कहते हैं कि तू कहता है, ऐसा नहीं है। भाई! दुनिया की सेवा करना और ऐसा करना और यह कितने ही लोग मर जाते हैं न पर की सेवा करनेवाले। एक व्यक्ति सेवा करनेवाला लड़का था तो मरते-मरते सन्निपात लगा था तो बस, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। मरते-मरते, हों! मर गया। अमरेली में था। कहो, समझ में आया? भाई! यह आत्मा वस्तु चैतन्यज्योतिस्वरूप, उस चैतन्यज्योति चेतन की सन्मुखता एक समय भी की नहीं। एक समयमात्र यदि सन्मुख हुआ हो तो ग्रन्थिभेद हुए बिना रहे नहीं। मिथ्यात्व का नाश हुए बिना रहे नहीं और तुझे तेरा साक्षात्

अनुभव हुए बिना रहे नहीं। यह अनुभव की बात कहते हैं। समझ में आया? अनुभव किया। अनुभव कहो या सेवा कहो। शुभ-अशुभराग किये परन्तु भगवान आत्मा ज्ञान से तादात्म्य है, तादात्म्य है, राग से तादात्म्य नहीं। पुण्य के भाव से आत्मा तद्रूप नहीं। तथापि ज्ञान से तद्रूप है, परन्तु तद्रूप के सन्मुख कभी हुआ नहीं। समझ में आया?

एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता;... आहाहा! कहो, वैद्यराजजी! है इसमें? देखो! है न। ज्ञान की सेवा नहीं की। यह वैद्य की सेवा कर-करके मर गया। ऐसा करे भस्म और बस्म और हो... हा। समझे न? और एक व्यक्ति कहे, अपने साधु-बाधु को आहार में देंगे। तो इतना तो लाभ होगा न, इतना तो लाभ होगा न। वह तो सच्चे साधु हो और ऐसा हुआ हो तो भी वह शुभभाव है। वह आत्मसेवा नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... किया। यह किया ही नहीं, समझा ही नहीं। यह तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का श्लोक है, उसमें से निकाला है। जीवराजा '**अणुचरिदव्वो**'। आत्मा का अनुचरण-सेवा कभी नहीं की। सेवा करना। तब शिष्य को प्रश्न हुआ न? कैसे सेवा नहीं की? ज्ञान तद्रूप है। परन्तु तद्रूप है तो तूने कहाँ तद्रूप माना है? ज्ञानगुण और गुणी अभेद है, ऐसी जब तेरी दृष्टि उस ओर जाये तो तूने माना। यहाँ तो राग और पुण्य और विकल्प... गुण और गुणी अभेद है, वह अभेद तेरी दृष्टि में कहाँ आया है? समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, विकल्प, वह सब तो राग है, विकल्प है। विकल्प में अभेद आया कहाँ? वह तो भेद पड़ गया। आहाहा!

क्योंकि स्वयंबुद्धत्व... या तो स्वयं अपने से जागृत हो जाता है। ज्ञान का बोध करके। **अथवा बोधितबुद्धत्व (दूसरे के बताने से जानना) - इन कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है।** देखो! स्वयंबुद्धत्व या बोधिबुद्धत्व। निसर्गज या अधिगमज। ऐसे दो लिये। अनादिकाल से इसने ज्ञान की सेवा नहीं की। ज्ञान की सेवा कब होती है? कि इसे गुरुगम मिले कि यह आत्मा तू आनन्दकन्द है, उसकी सेवा करो। या निसर्गज—पहले सुना हो, परन्तु उस समय रहा नहीं। अन्दर में आनन्दकन्द है, ऐसे स्वभाव का

भान हो जाये, तब इन दो कारणपूर्वक आत्मा की सेवा होती है। देखो! **कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है।** ऐसा कहते हैं। ज्ञान तो है, परन्तु पर्याय में ज्ञान की उत्पत्ति (कहाँ है) ? ज्ञानस्वरूप में एकाग्र हो तो ज्ञान की उत्पत्ति (होती है)। ज्ञान की उत्पत्ति का अर्थ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति की उत्पत्ति, वह ज्ञान की उत्पत्ति। समझ में आया? पुण्य-पाप की राग की उत्पत्ति तो अनन्त बार की और अनन्त बार है और यह तो करता ही है। वह कोई नयी चीज़ नहीं। वह कोई अपूर्व चीज़ नहीं, नयी नहीं। परन्तु भगवान आत्मा गुरुगम से या निसर्गज से, यह आत्मा चैतन्यज्योति है, ऐसा भान हो, तब ज्ञानस्वरूप में से शक्ति में से शुद्धता में से पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो ज्ञानस्वरूप है, जो रागरूप नहीं, जो रागरूप नहीं, जो ज्ञानस्वरूप है—ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपना सेवन करने से उत्पन्न होते हैं। समझ में आया?

ज्ञान की उत्पत्ति होती है। वापस कारणपूर्वक शब्द पड़ा है। समझ में आया? अपना निसर्ग स्वभाव का भान होकर हो या गुरुगम मिला। भाई! तू तो चैतन्य शुद्धात्मा है न। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न, हमारे गुरु ने हमको शुद्धात्मा का उपदेश दिया। समझ में आया? गुरु ने कहा कि तेरा आत्मा तो प्रभु! चैतन्यस्वरूप आनन्दमूर्ति है। उसका तू अनुभव कर, सेवा कर, तेरी पर्याय में—दशा में प्रगट कर। ऐसा गुरु ने कहा या निसर्गज अपने में हो गया। तो दो कारणपूर्वक अपना आश्रय करके (ज्ञान की उत्पत्ति होती है)। यहाँ कहाँ कहा निमित्तकारण है? समझे? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप के साथ श्रद्धा, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं। यहाँ तो राग की उत्पत्ति हुई और ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हुई, बस, इतना बतलाना है। तो ज्ञान की उत्पत्ति का अर्थ अकेले जानपने की उत्पत्ति, ऐसा नहीं। जानपने की उत्पत्ति, श्रद्धा की उत्पत्ति, शान्ति की उत्पत्ति, आनन्द की उत्पत्ति। अपने ज्ञायकस्वरूप सन्मुख की एकाग्रता करने से अनन्त गुण की शुद्धि की व्यक्तता की उत्पत्ति होती है। समझ में आया? अनन्त गुण की व्यक्तता की शुद्धि की उत्पत्ति, यह क्या कहते हैं? कितने गुण हैं? अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है। स्वयं परमेश्वर है। अपना स्वरूप अपना परमेश्वर है। उस ओर का झुकाव, विकार से विमुख, निमित्त से परान्मुख, स्वभाव के सन्मुख। समझ में आया? निमित्त से परान्मुख, विकार से विमुख, स्वभाव के सन्मुख। तब ज्ञान की उत्पत्ति, ज्ञान अर्थात् आत्मा की, आत्मा जैसा द्रव्य-

गुण में है, वैसी पर्याय में उत्पत्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

(या तो काललब्धि...) अथवा यहाँ स्वकाल। **(तब स्वयं ही जान ले...)** स्वयं ही जान ले कि भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति आनन्द है। **(अथवा कोई उपदेश देनेवाला मिले तब जाने-जैसे सोया हुआ पुरुष या तो स्वयं ही जाग जाये अथवा कोई जगाये तब जागे।)** समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप की ओर के झुकाव से अपना भान हो या गुरु ने कहा, पश्चात् अपने झुकाव से भान हो।

मुमुक्षु : पहले से....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से स्वयं से होता है, बस। स्वभाव से होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु सिवाय। गुरु पहला-पहला।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुना है परन्तु होवे, तब गुरु ने सुनाया—ऐसा कहा जाता है। बस, हो गया, पूरी हो गयी बात। बोधिबुद्धत्व, यह तो कहते हैं कि चैतन्य ऐसा है, ऐसा कहा। बस, इतना। परन्तु तूने जब उसका आश्रय किया, तब उन्होंने कहा, ऐसा लागू पड़ता है। बताते हैं, यथार्थ उपदेश गुरुगम उसे मिलता है। सर्वज्ञ परमेश्वर के सन्त, महामुनि धर्मात्मा उसे कहते हैं कि भाई! तू राग नहीं, पुण्य नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं, अल्पज्ञ नहीं। तू तो सिद्धस्वरूप आत्मा है न। उसका विचार कर। तू तो पूर्ण प्रभु है न! उसका विचार कर। ऐसा आया। अन्दर आश्रय किया, तब भान हुआ। जब तक पर का आश्रय रहे, तब तक भान होता नहीं। कहो, समझ में आया? यह बात यहाँ सिद्ध की। अब फिर से प्रश्न (होता है)।

यहाँ पुनः प्रश्न होता है... यहाँ फिर से पूछता है **यदि ऐसा है तो जानने के कारण से पूर्व क्या आत्मा अज्ञानी ही है...** आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं, हों! वह तो ज्ञानस्वरूप है। तो क्या जानने से पहले अज्ञानी है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **जानने के कारण से पूर्व क्या आत्मा अज्ञानी ही है क्योंकि उसे सदा अप्रतिबुद्धत्व है?**

सदा भान नहीं अनादिकाल से ? जानने से पहले अज्ञानी था ? अप्रतिबुद्ध था ? समझदार नहीं था ? मूर्ख था ? ऐसा कहता है। अरे ! ऐसा आत्मा मूर्ख है ? ऐसा। भगवान आत्मा चिदानन्द ज्योतिस्वरूप वह अप्रतिबुद्ध था ? अज्ञान था ?

उसका उत्तर – ऐसा ही है, वह अज्ञानी ही है। ले ! वस्तु के भान बिना वह अज्ञानी है। ओहोहो ! ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा, पंच महाव्रत लिये। अज्ञानी है। निज चैतन्यस्वरूप के ज्ञान और भान बिना वे सब भाव अज्ञान हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह अंग पढ़े तो क्या ? वह तो परलक्ष्यी है। अपना ज्ञान किये बिना ग्यारह अंग पढ़ने में व्यवहार भी नहीं आया। और ग्यारह अंग में कहा तो यह है कि तू तेरा अनुभव कर। ऐसा ग्यारह अंग में कहा था। अपने आया न ? बारह अंग में यह कहा है। बारह अंग में भी यह कहा है कि तू तेरे आत्मा को अनुभव कर। बारह अंग की विशेषता नहीं, तेरे सेवन की विशेषता है। ओहोहो ! कितने कुदक्के मारे ? वैद्यराजजी ! कितने कुदक्के मार-मारकर सेवा की। धूल की की, कहते हैं। यात्रा की सम्मेदशिखर की।

भगवान आचार्य महाराज मुनिराज कहते हैं, वह भगवान का कहा हुआ (कहते हैं)। भाई ! तूने कभी आत्मा की सेवा नहीं की, हों ! आहाहा ! हमारे पास भी अनन्त बार आया, हों ! भगवान कहते हैं, हमारे पास भी आया, समवसरण में आया, परन्तु हम कहते हैं, ऐसी तेरी सेवा तूने नहीं की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा... खाया लगता है अन्दर। ऐसे सन्मुख में लाभ है, ऐसी रुचि ही हुई नहीं। परसन्मुखता से लाभ है, ऐसी रुचि में पड़ा रहा। लो, उत्तर। समझ में आया ? भगवान आत्मा अन्तर आनन्दकन्द ज्ञानमूर्ति में स्वसन्मुख होना ही लाभ का कारण है, ऐसा रुचि में आया नहीं। परसन्मुख में कुछ करते-करते स्वसन्मुख हो जायेगा। परसन्मुख के भाव से स्वसन्मुख हो जायेगा, ऐसी शल्य, ऐसी श्रद्धा रहेगी। वृद्ध पकड़ते हैं, अब थोड़ा-थोड़ा पकड़ते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! भाई ! तू प्रभु

के पास गया न, समवसरण में भगवान के पास अनन्त बार गया, हों! महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा वर्तमान विराजमान हैं। सीमन्धरप्रभु विराजमान हैं। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ विराजमान हैं। सन्त-गणधर विराजमान हैं। ऐसे महाविदेहक्षेत्र में भी, प्रभु! तूने अनन्त बार जन्म लिया है। समवसरण में गया, वाणी सुनी, वाणी में आया कि तूने तेरी सेवा नहीं की। यह भाव पकड़ा नहीं। समझ में आया? महाजन माँ-बाप सच्चे परन्तु मेरी कील (खूँटा) हटेगी नहीं, ऐसा आता है न? महाजन की जगह होती है न थोड़ी? कील लगानी हो तो... बात तुम्हारी सच्ची परन्तु मेरी कील नहीं हटेगी। खीली समझते हो? तुम्हारे आती होगी। हद... हद। हद रोकने के लिये। जमीन अपनी न हो, थोड़ी महाजन की हो। अपनी हद में थोड़ी ले ली और कीली लगा दी। फिर कहे, कीली है तो तुम्हारी हद में, परन्तु मेरी कीली नहीं हटेगी, महाजन माँ-बाप सच्चे। परन्तु सच्चे कहाँ से? यह मेरी जमीन ले ली और सच्चे कहाँ से हुए?

मुमुक्षु : इतनी जमीन बिना मकान अच्छा नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मकान अच्छा नहीं होगा, परन्तु तूने आज्ञा कहाँ मानी? महाजन तो सच्चे। तुम्हारी थोड़ी जमीन थी, दो हाथ की मुझे आवश्यकता थी तो मैंने ली। परन्तु अब कीली हटेगी नहीं। वह कहे, हमारी दो हाथ ली, अब हमारे बहुत अड़चन पड़ती है। इस ओर। बीच में वंडी करनी है, खाली रखना है तो फिर ... माँ-बाप! तुम सच्चे, बराबर बात है, परन्तु मेरी हद में माप लिया है, वह हटेगा नहीं। सेठी!

इसी प्रकार भगवान! त्वमेव सत्जन, त्वमेव सत्जन। प्रभु! परन्तु भगवान कहते हैं कि तेरी सेवा तूने नहीं की। ... आपकी सेवा करूँ, फिर आत्मा का लाभ नहीं होगा? भगवान कहते हैं, नहीं। हमारी सेवा सन्मुख में तो तुझे राग होगा, विकल्प होगा, उसमें निर्विकल्प दृष्टि होती नहीं। आहाहा! बराबर है? ऐई! सुजानमलजी! क्या है? ठीक है, ठीक है, हम कहाँ इनकार करते हैं, ठीक है। परन्तु इसके बिना चलता नहीं। ऐसा लाँफा डाले एक व्यक्ति कहता था, सम्मेदशिखर के दर्शन से ४९ भव में (मोक्ष) हो जायेगा। कहा, यह भगवान की वाणी नहीं। तब कहे, यह नहीं, बराबर है, बराबर है तुम कहते हो वह। और बराबर कहाँ से आया? सम्मेदशिखर तो परद्रव्य है। परद्रव्य के

दर्शन से भवकटी होगी? साक्षात् समवसरण में परमेश्वर के पास गया तो भी भवकटी नहीं हुई। क्योंकि परसन्मुख में भव के नाश का उपाय है ही नहीं। समझ में आया? तेरे लाख, करोड़ कर न! सम्मेदशिखर अनन्त बार जा तो क्या, वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य का लक्ष्य करने से शुभराग ही होता है। उससे आत्मा की सेवा और जन्म-मरण का नाश नहीं होता। तीन काल, तीन लोक में नहीं। समझ में आया? वह कहे, मेरे पास सम्मेदशिखर के माहात्म्य की एक पुस्तक है। कहा, होगी। यह शत्रुंजय का माहात्म्य कहते हैं वैसी। उसमें ४९ भव लिखे हैं। कहा, ऐसा लिखा हो तो भगवान की वाणी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं टले, ऐसा कहते हैं। यह बात ही झूठी है। ४९ भव क्या अनन्त भव में से एक भव नहीं टलेगा। यह बात ही खोटी है। भगवान की वाणी ऐसी होती ही नहीं। यह भगवान यहाँ क्या कहते हैं? कि हमारी ओर के लक्ष्य से तुझे राग होता है। तेरी सेवा बिना तेरे जन्म-मरण मिटेंगे नहीं। ४९ भव क्या, अनन्त भव में से एक भव नहीं घटेगा। आहाहा! चिल्लाहट मचाये लोग। पार्श्वनाथ भगवान ... ओहोहो! जय भगवान! दण्डवत होकर पड़े। वाह रे भगवान वाह! प्रभु! वह परसन्मुख का विकल्प है। वह आत्मा की निर्विकल्प अनुभव दृष्टि नहीं। आहाहा! परन्तु यह वह बात! आवे, हो, बीच में व्यवहार पूर्ण वीतराग न हो तो ऐसा भाव आता है, होता है, परन्तु है, वह बन्ध का कारण। अबन्धपरिणाम उत्पन्न होने का कारण वह नहीं। अबन्धपरिणाम सम्यग्दर्शन के, अबन्धपरिणाम कहो या सम्यग्दर्शन कहो, वह अबन्धपरिणाम सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कारण भगवान आत्मा है। उसके आश्रय से ही, सेवा करने से ही अबन्धपरिणाम उत्पन्न होते हैं। क्योंकि भगवान आत्मा ही अबन्धस्वरूप है। आत्मा द्रव्य-गुण अबन्धस्वरूप है। अबन्धस्वरूप की सेवा करने से अबन्धपरिणाम होते हैं। राग से पर की सेवा करने से तो राग आया। राग बन्धपरिणाम है। बन्धपरिणाम से अबन्धपरिणाम हो, ऐसा कभी नहीं होता। गजब बात, भाई! तकरार... तकरार। झगड़ा आत्मा के साथ। सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा क्या है। महाराज! ऐसा जाना तब ज्ञानी होता है? जाने बिना क्या? परसन्मुख भले चाहे जितना राग करे, पुण्य आदि करे तो भी अज्ञानी है? अप्रतिबुद्ध है? मूर्ख है? यह बात बराबर है? हाँ, बराबर है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १९

तर्हि कियन्तं कालमयमप्रतिबुद्धो भवतीत्यभिधीयतां –

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।।19।।

कर्मणि नोकर्मणि चाहमित्यहकं च कर्म नोकर्म।
यावदेषा खलु बुद्धिरप्रतिबुद्धो भवति तावत्।।19।।

यथा स्पर्शरसगन्धवर्णादिभावेषु पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गलस्कन्धेषु घटोऽयमिति घटे च स्पर्शरसगन्धवर्णादिभावाः पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गल-स्कन्धाश्चामी इति वस्त्वभेदेनानुभूतिस्तथा कर्मणि मोहादिष्वन्तरङ्गेषु नोकर्मणि शरीरादिषु बहिरङ्गेषु चात्मतिरस्कारिषु पुद्गलपरिणामेष्वहमित्यात्मनि च कर्म मोहादयोन्तरङ्गा नोकर्म शरीरादयो बहिरङ्गाश्चात्म-तिरस्कारिणः पुद्गलपरिणामा अमी इति वस्त्वभेदेन यावन्तं कालमनुभूतिस्तावन्तं कालमात्मा भवत्यप्रतिबुद्धः।

यदा कदाचिद्यथा रूपिणो दर्पणस्य स्वपराकारावभासिनी स्वच्छतैव वह्नेरौष्ण्यं ज्वाला च तथा नीरूपस्यात्मनः स्वपराकारावभासिनी ज्ञातृतैव पुद्गलानां कर्म नोकर्म चेति स्वतः परतो वा भेदविज्ञानमूलानुभूतिरुत्पत्स्यते तदैव प्रतिबुद्धो भविष्यति।।19।।

अब यहाँ पुनः पूछते हैं कि – यह आत्मा कितने समय तक अप्रतिबुद्ध रहता है, वह कहो। उसके उत्तररूप गाथासूत्र कहते हैं :–

नोकर्म कर्म जु ''मैं'' अवरु, ''मैं'' में कर्म नोकर्म हैं।
यह बुद्धि जब तक जीव की, अज्ञानी तब तक वो रहे।।19।।

गाथार्थ : [यावत्] जब तक इस आत्मा की [कर्मणि] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, भावकर्म [च] और [नोकर्मणि] शरीरादि नोकर्म में [अहं] 'यह मैं हूँ' [च] और [अहकं कर्म नोकर्म इति] मुझमें (–आत्मा में) 'यह कर्म–नोकर्म हैं' – [एषा खलु बुद्धिः] ऐसी बुद्धि है, [तावत्] तब तक [अप्रतिबुद्धः] यह आत्मा अप्रतिबुद्ध [भवति] है।

टीका : जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भावों में तथा चौड़ा, गहरा, अवगाहरूप उदरादि के आकार परिणत हुये पुद्गल के स्कन्धों में 'यह घट है' इस प्रकार, और घड़े में 'यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भाव तथा चौड़े, गहरे, उदराकार आदिरूप परिणत पुद्गल–स्कन्ध हैं' इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है, इसी प्रकार कर्म–मोह आदि अन्तरङ्ग परिणाम तथा नोकर्म–शरीरादि बाह्य वस्तुएँ–सब पुद्गल के परिणाम हैं और आत्मा के तिरस्कार करनेवाले हैं–उनमें 'यह मैं हूँ' इस प्रकार और आत्मा में 'यह कर्म–मोह आदि अन्तरङ्ग तथा नोकर्म–शरीरादि बहिरङ्ग आत्म तिरस्कारी (आत्मा के तिरस्कार करनेवाले) पुद्गल–परिणाम हैं' इस प्रकार वस्तु के अभेद से जब तक अनुभूति है, तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध है; और जब कभी, जैसे रूपी दर्पण की स्वच्छता ही स्व–पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली है और उष्णता तथा ज्वाला अग्नि की है, इसी प्रकार अरूपी आत्मा की तो अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता ही है और कर्म तथा नोकर्म पुद्गल के हैं; इस प्रकार स्वतः अथवा परोपदेश से जिसका मूल भेदविज्ञान है – ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी, तब ही (आत्मा) प्रतिबुद्ध होगा।

भावार्थ : जैसे स्पर्शादि में पुद्गल का और पुद्गल में स्पर्शादि का अनुभव होता है अर्थात् दोनों एकरूप अनुभव में आते हैं, उसी प्रकार जब तक आत्मा को, कर्म–नोकर्म में आत्मा की और आत्मा में कर्म–नोकर्म की भ्रान्ति होती है अर्थात् दोनों एकरूप भासित होते हैं, तब तक तो वह अप्रतिबुद्ध है; और जब वह यह जानता है कि आत्मा तो ज्ञाता ही है और कर्म–नोकर्म पुद्गल के ही हैं, तब ही वह प्रतिबुद्ध होता है। जैसे दर्पण में अग्नि की ज्वाला दिखायी देती है, वहाँ यह ज्ञात होता है कि ''ज्वाला तो अग्नि में ही है, वह दर्पण में प्रविष्ट नहीं है, और जो दर्पण में दिखायी दे रही है, वह दर्पण की स्वच्छता ही है;'' इसी प्रकार ''कर्म–नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं; आत्मा की ज्ञान–स्वच्छता ऐसी ही है कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखायी दे; इसी प्रकार कर्म–नोकर्म ज्ञेय हैं इसलिए वे प्रतिभासित होते हैं''– ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेश से हो, तब ही वह प्रतिबुद्ध होता है।

गाथा - १९ पर प्रवचन

अब यहाँ पुनः पूछते हैं कि - यह आत्मा कितने समय तक (कब तक) अप्रतिबुद्ध रहता है,... कितने काल मूर्ख रहेगा? कितने काल अप्रतिबुद्ध रहेगा? प्रतिबुद्ध अर्थात् वस्तु का जैसा स्वरूप है, उसके भान बिना अप्रतिबुद्ध कितने काल रहेगा? समझ में आया? इसके पुरुषार्थ की उल्टी गति कैसी है कि जिससे अप्रतिबुद्ध रहता है? ऐसा पूछते हैं। समझ में आया? वह अप्रतिबुद्ध अज्ञानी किस प्रकार रहता है? और कितने काल रहता है? किस कारण से रहता है? **वह कहो।** वह कहो। शिष्य का प्रश्न है, अन्दर की झंखना है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने तो श्लोक (गाथायें) बनाये। अमृतचन्द्राचार्य ने शंका खड़ी की। शिष्य आशंका करता है, उसे उत्तर देते हैं। मुफ्त का उत्तर नहीं है यहाँ? समझ में आया? ऐसी आशंका है कि महाराज! यह अज्ञानी कितने समय रहेगा? इसका काल कितना? कहाँ तक अज्ञानी रहेगा? उसका लक्षण क्या? और अज्ञान छूट जायेगा, ज्ञान होता है तो अप्रतिबुद्ध का काल कितना? मूर्खता का काल कितना? इसका उत्तर। १९ (गाथा)

कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव॥१९॥

आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जब यह श्लोक रचते होंगे जंगल में...! नीचे हरिगीत। ऊपर मूल श्लोक है। नीचे इसका हरिगीत है।

नोकर्म कर्म जु 'मैं' अवरु, 'मैं' में कर्म नोकर्म हैं।
यह बुद्धि जब तक जीव की, अज्ञानी तब तक वो रहे॥१९॥

यह कारण दिया, भाई! इतने कर्म रहे और ऐसा रहे न, ऐसा नहीं। इस कारण से अप्रतिबुद्ध रहता है। आहाहा! तेरा ही कारण है। समझ में आया?

इसकी टीका। अन्वयार्थ लेना है? **जब तक इस आत्मा की ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, भावकर्म... शब्दार्थ-अन्वयार्थ। और शरीरादि नोकर्म में 'यह मैं हूँ' और मुझमें (-आत्मा में) 'यह कर्म-नोकर्म हैं' - ऐसी बुद्धि है, तब तक यह आत्मा अप्रतिबुद्ध**

है। यह व्याख्या-शब्दार्थ। संक्षिप्त में, संक्षिप्त में। इसका विशेष स्पष्टीकरण करेंगे। संक्षिप्त में क्या कहा? जब तक आत्मा जड़ कर्म मैं हूँ और भाव—दया, दान, विकल्प आदि भावकर्म मैं हूँ और शरीर आदि नोकर्म मैं हूँ और वे मुझमें हैं। जब तक आत्मा ऐसा मानता है कि यह जड़कर्म में मैं हूँ, पुण्य दया, दान, व्रत परिणाम, शुभाशुभभाव में मैं हूँ और नोकर्म शरीर में मैं हूँ और भावकर्म, द्रव्यकर्म और शरीर मुझमें है। मैं उनमें हूँ और वे मुझमें हैं। समझ में आया? जब तक....

प्रश्न का उत्तर बहुत संक्षिप्त में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने दिया। शिष्य का प्रश्न है कि प्रभु! यह अप्रतिबुद्धि मूर्ख कहाँ तक रहता है? आत्मा अज्ञानी कहाँ तक रहता है? भाई! भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप को भूलकर शुभाशुभ पुण्य में, पाप में, कर्म में, शरीर में और वाणी में मैं हूँ और वे पुण्य-पाप, शरीर, कर्म मुझमें है, ऐसी जब तक बुद्धि रहती है, वहाँ तक मिथ्यादृष्टि, मूर्ख और अप्रतिबुद्ध है। समझ में आया? जैसा है, वैसा प्रतिबुद्ध नहीं, उससे विरुद्ध अप्रतिबुद्ध है। समझ में आया?

टीका :- अमृतचन्द्राचार्य महाराज टीका में दृष्टान्त देते हैं। **जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि भावों में...** अर्थ लिया, अर्थ। **चौड़ा, गहरा, अवगाहरूप उदरादि...** यह व्यंजन लिया—आकार। **उदरादि के आकार परिणत हुये पुद्गल के स्कन्धों में 'यह घट है'...** क्या कहते हैं? देखो! यहाँ स्पर्श से शुरु किया है, हों! रंग से शुरु नहीं किया। स्पर्श है न? अनादि का स्पर्श है न! एकेन्द्रिय आदि स्पर्श का भाव कभी छूटा नहीं। पहले स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण, ऐसा लिया है। आदि भाव—अर्थपर्याय। अर्थपर्याय अर्थात् आकृति के अतिरिक्त के घट के दूसरे गुण और उसी घट की आकृति पर्याय। चौड़ी, गहरी और अवगाह आदि। आकृति, हों! आकृति। आकार परिणत **हुये पुद्गल के स्कन्धों...** भाषा कितनी लेते हैं? **आकार परिणत हुये पुद्गल के स्कन्धों में...** घड़े में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और आकार परिणत पुद्गल स्कन्ध हैं। कुम्हार ने वह घड़ा आकार परिणत बनाया है, ऐसा नहीं है। पहले तो यह सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

फिर से, फिर से। **जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि भावों में...** गुण में और उसकी पर्याय में। **चौड़ा, गहरा, अवगाहरूप उदरादि के आकार परिणत...** आकार—

उसकी व्यंजनपर्याय ली है। घड़े की आकृति और घड़े का रूपान्तर वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के हुए। उस **आकार परिणत हुये...** कौन परिणत हुए हैं? **पुद्‌गल के स्कन्धों में...** वह पुद्‌गल के स्कन्धों में परिणत हुए हैं। **स्कन्धों में 'यह घट है'...** उसमें घड़ा है न? **इस प्रकार, और घड़े में 'यह स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि भाव...** उन पुद्‌गल के स्कन्धों में घड़ा है और घड़े में वे स्पर्श आदि। **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि भाव तथा चौड़े, गहरे, उदराकार आदिरूप परिणत पुद्‌गल-स्कन्ध हैं' इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है,...** इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है। क्या कहा, समझ में आया?

घट लिया। घड़ा का दृष्टान्त। घड़ा में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और आकार है, उसमें घड़ा है और घड़े में वे हैं। उनमें घड़ा है और घड़े में वे हैं। वर्ण, गन्ध, स्पर्श, रस, आकार में घट है और घट में वे हैं। इन दोनों की अनुभूति अभेद है। दो का ज्ञान अभेद है। कारण कि दोनों भिन्न है नहीं। दृष्टान्त भी थोड़ा कठिन है। आकार परिणत हुए पुद्‌गलों में घड़ा है। और आकार परिणत... समझे न? घड़े में है और घड़ा आकार परिणत में है। आहाहा!

उसी प्रकार... उसी प्रकार। **कर्म-मोह आदि अन्तरंग परिणाम...** आत्मा में पुण्य-पाप के भाव, वे अन्तरंग परिणाम और कर्म आदि इसमें ले लेना। **नोकर्म-शरीरादि बाह्य वस्तुएँ-सब पुद्‌गल के परिणाम हैं...** ... दोपहर में आता है न? यहाँ जीव का अस्तित्व सिद्ध करना है। वहाँ कर्ता-कर्म सिद्ध करना है। जीव ज्ञायकस्वरूप में; जैसे घड़े में स्पर्श, रस आदि है और स्पर्श, रस आदि में घड़ा है; उसी प्रकार अज्ञानी जहाँ तक ऐसा मानता है कि पुण्य-पाप में, शरीर में, वाणी में, मैं हूँ और पुण्य-पाप, शरीर, वाणी मुझमें है। ऐसा विकार, नोकर्म और कर्म के साथ अभेद अनुभव है, तब तक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया?

दृष्टान्त दिया है, देखो! यहाँ घड़ा का दृष्टान्त। यह तो बराबर है, कहते हैं। यह तो बराबर है। समझ में आया? परन्तु कर्म, नोकर्म आदि अन्तरंग परिणाम। पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर आदि नोकर्म। आदि अर्थात् वाणी, बाह्य निमित्त। बाह्य निमित्तों में

मैं हूँ, पुत्र ही मैं हूँ, पुत्र ही मैं हूँ, मैं हूँ वही पुत्र है, वही मेरा पुत्र है। मूढ़ है। वस्तु पर है, वहाँ कहाँ पुत्र हो गया?

मुमुक्षु : व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कब था? बोलने में आता है। उसे पहिचानने में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से (कहा जाता है)। वैद्यराज ने इतना पकड़ा है।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज महासन्त मुनि ऐसी बात ऐसी सादी... सादी... सादी... संक्षिप्त में सत्य कहते हैं। समझ में आया? भगवान! स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और आकार में घड़ा है, और घड़े में यह स्पर्श, रस, गन्ध और आकार है। यह तो बराबर है, कहते हैं। यह अभेद अनुभूति बराबर है। ऐसा कोई यह माने कि, ऐसी जो अभेद अनुभूति है तथा मेरे पुण्य के परिणाम में मैं हूँ और पुण्य परिणाम मुझमें है, (तो वह) मूढ़ है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! इसमें कहाँ बहुत सीखना पड़े, ऐसा है।

वस्तु चैतन्यमूर्ति में रागादि विकल्प, शरीर, वाणी, कर्म। यहाँ जीव का अस्तित्व सिद्ध करना है न! जीव का अस्तित्व (सिद्ध) करना है, दोपहर में कर्ता-कर्म सिद्ध करना है। यहाँ आत्मा अपना अस्तित्व तो चैतन्यस्वभाव में उसका अपना अस्तित्व है। ऐसा अस्तित्व नहीं मानकर अपने ज्ञायकस्वरूप का अस्तित्व पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, रागादि शुभाशुभ परिणाम में अपना अस्तित्व मानता है और पुण्य-पाप का अस्तित्व अपने में मानता है, वह मूर्ख है। समझ में आया? दोपहर में दूसरी बात (चलती है)। कर्ता-कर्म की है वह। राग मेरा कर्म है और मैं कर्ता हूँ, ऐसा वहाँ लिया। यहाँ कहते हैं कि राग में मैं हूँ, राग में मैं हूँ। परन्तु राग है, वह अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान के प्रकाश का उसमें अभाव है और भगवान आत्मा चैतन्यप्रकाश की मूर्ति है। आत्मा चैतन्यप्रकाश की मूर्ति है। चैतन्य का नूर है। चैतन्य का नूर प्रभु आत्मा है और राग है, उसमें चैतन्य के प्रकाश का अभाव है। तो जहाँ तक घड़े में आकार, वर्ण, गन्ध, और आकार तथा वर्ण, गन्ध, आकार में घड़ा है, ऐसा मूर्ख अप्रतिबुद्ध अज्ञानी अपने ज्ञानस्वरूप में—राग में मैं हूँ और रागादि मुझमें है, मैं शरीर में हूँ, शरीर मुझमें है, मैं कर्म में हूँ, कर्म मुझमें है, कर्म मुझमें है... कर्म मुझमें है—ऐसी अभेद की बुद्धि है, तब तक

अप्रतिबुद्ध और अज्ञानी है। समझ में आया? बाह्य वस्तु में... अभी इतना लिया, देखो! **सब पुद्गल के परिणाम हैं...** सुनो! पुण्य-पाप के भाव, कर्म, पुण्य-पाप भाव—भावकर्म; कर्म—जड़कर्म; शरीर-वाणी—नोकर्म, वे पुद्गल के परिणाम हैं। और **आत्म तिरस्कारी (आत्मा के तिरस्कार करनेवाले)...** हैं। ऐसी विशिष्टता की बात है। आत्मा के स्वभाव का अभाव बतलानेवाले हैं। तिरस्कार करनेवाले हैं। उन्हें अपना माने तो आत्मा के स्वभाव का तिरस्कार होता है, अभाव होता है।

वास्तव में तो यह रागादि है, शरीरादि है, वे आत्मा के अस्तित्व में नहीं। तो यह भाव तो आत्मा का तिरस्कार करानेवाले हैं, अभाव करानेवाले हैं। उनमें अपनापन मानना, वह अप्रतिबुद्ध है। शुभभाव आत्मा का तिरस्कार करानेवाले हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। वैद्यराजजी! आहाहा! अरे! इसे सत्य बात तो सुनने में आवे नहीं, वह समझे कब और कब सम्यग्दर्शन प्रगट करे और उसे धर्म कहाँ से हो? आहाहा! वे **आत्मा के तिरस्कार करनेवाले हैं-उनमें 'यह मैं हूँ'...** ऐसा मानते हैं, वहाँ तक वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ७, गुरुवार, दिनांक - २०-१०-१९६६
गाथा - १९, प्रवचन - ८१

जीव-अजीव अधिकार। १९वीं गाथा। टीका चलती है। देखो! दृष्टान्त आया न पहले दृष्टान्त? कि घड़ा है न, घड़ा। घड़ा के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि भाव में, उसके भाव में और उसके आकार में पुद्‌गल स्कन्धों में, उन पुद्‌गल स्कन्धों में। समझ में आया? **आकार परिणत हुये पुद्‌गल के स्कन्धों में 'यह घट है'...** यह घड़ा है। बराबर है न? घड़ा समझते हैं न? यह घड़ा है। **और घड़ा में...** ऐसा वापस। यह घड़ा है और घड़े में **स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि भाव तथा चौड़े, गहरे, उदराकार आदिरूप परिणत पुद्‌गल-स्कन्ध हैं....** और पुद्‌गल स्कन्ध में घड़ा है **इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है,...** यह तो बराबर है, कहते हैं। यह ज्ञान हो वह तो बराबर है।

इसी प्रकार से... इस दृष्टान्त से **कर्म-मोह आदि अन्तरंग परिणाम...** आत्मा में विकारी पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध और कर्म-जड़ आदि **तथा नोकर्म-शरीरादि बाह्य वस्तुएँ-सब पुद्‌गल के परिणाम हैं...** वे पुण्य-पाप के भाव भी पुद्‌गल के परिणाम हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा चैतन्यज्योति, उसके तो चैतन्य प्रकाश के स्वभावरूप ही परिणाम होते हैं। विकार परिणाम, कर्म, और नोकर्म-शरीर आदि वे परिणाम कैसे हैं? कि पुद्‌गल के परिणाम हैं। **और आत्मा के तिरस्कार करनेवाले हैं...** आत्मा का अभाव मनवानेवाले हैं। उन्हें मानने से, **यह मैं हूँ...** ऐसा मानने से आत्मा का अभाव होता है। आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं। आहाहा!

शुभ-अशुभभाव, यह शुभ में मैं हूँ। यह पुद्‌गल परिणाम शुभ मेरे हैं, ऐसा मानने से आत्मा का तिरस्कार होता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यदेव दिव्य शक्ति। पहले आ गया है उसमें—कर्ताकर्म में। देव... देव... देव... स्वयं देव है। चैतन्य आनन्द आदि लक्ष्मी सम्पन्न भगवान आत्मा, उसे यह पुण्यपरिणाम में, पाप के

भाव में, कर्म, शरीर आदि क्रियायें होती हों, उनमें मैं हूँ, उनमें मैं हूँ अर्थात् मैं (और) वे एक हैं, ऐसा माननेवाले, वे पुद्गलादि, रागादि परिणाम आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं, नुकसान पहुँचानेवाले हैं। उन्हें अपना मानने से आत्मा को नुकसान है। समझ में आया? वह चैतन्य का स्वरूप नहीं। ज्ञायक चैतन्यज्योति का वे रागादिभाव चैतन्य का स्वरूप नहीं। तथापि उसमें स्वयं है, उनमें मैं हूँ। ऐसा है न? आत्मा का तिरस्कार करनेवाले अर्थात् राग आदि में अस्तित्व स्वीकार करते हुए, रागादि में अपनी उनमें अस्ति मानते हुए आत्मा का तिरस्कार होता है। बराबर है? अब बराबर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वहाँ आगे (अपने को) माने तो आत्मा उनसे पर है, इसका तो उसे भान भी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? वे पुद्गल के परिणाम एक चैतन्यराम आनन्दकन्द के अतिरिक्त के पुण्य-पाप, शरीर, कर्म, सब पुद्गल परिणाम। बस, एक बात। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। गाँव अर्थात् समूह। विकारीभाव, कर्म, शरीर, उनमें मैं... उनमें मैं... वह मैं... उनमें मैं... उस वस्तु में मैंपना मानने से अपना चैतन्यस्वरूप है, उसका अनादर होता है। समझ में आया? मैंपना जो अपना है, उसका भाव रहता नहीं। समझ में आया?

उनमें 'यह मैं हूँ'... देखो भाषा! पुण्य-पाप के भाव में, उनमें उसमें मैं हूँ। इसलिए दृष्टि तो वहाँ रही। रागादि भाव पुण्य, दया, दान, व्रतादि शुभभाव में मैं हूँ— इसका अर्थ ही कि उनमें मैं अर्थात् स्वयं तो उनमें ही है। स्वयं उनसे भिन्न नहीं। समझ में आया? **उनमें 'यह मैं हूँ'...** देखा! **उनमें 'यह मैं हूँ'...** यह मैं हूँ। पुण्य के परिणाम, पाप के भाव, देह की दशा, कर्म का उदय आदि दशा, वह मैं हूँ, ऐसा मानने से अपना अस्तित्व जो भिन्न है, उसका अनादर होता है। वे तिरस्कार करनेवाले हैं। समझ में आया? यह एक बोल हुआ।

इस प्रकार और आत्मा में... अब ऐसा लिया। उनमें मैं हूँ, ऐसा कहा। आत्मा में वे हैं, ऐसा माने। पारस्परिक है। **आत्मा में 'यह कर्म-मोह आदि अन्तरंग...** परिणाम। आत्मा में रागादि परिणाम है। आत्मा में रागादि परिणाम। पहले रागादि परिणाम में

आत्मा है, ऐसा था। यह आत्मा में रागादि परिणाम है। आत्मा में कर्म, शरीर है, आत्मा में शरीर और कर्म है। मुझमें कर्म है। मुझमें शरीर है, मुझमें राग है, मुझमें पुण्यभाव दया-दान व्रत, वे मुझमें-आत्मा में हैं। **आदि बहिरंग आत्म तिरस्कारी (आत्मा के तिरस्कार करनेवाले)...** है।

मुमुक्षु : पुण्य तिरस्कार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य तिरस्कार करता है।

मुमुक्षु : पुण्य से तो भगवान मिलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य से भगवान कहाँ मिले? पुण्य फला अरहंता, ऐसा पत्रिका में आता है। पुण्य से तो अरिहन्त पद मिलता है। अरे! यह कहाँ बात है? वहाँ तो पुण्य फल तो सामग्री और संयोग की बात है। समवसरण और वह पुण्य। वह तो बाहर का संयोग दे। पुण्यभाव आत्मा के स्वभाव का तिरस्कार करनेवाला है। कहो, वैद्यराजजी! कहो, कितना ढीला रखना? रामजीभाई कहे, थोड़ा ढीला रखो। नहीं?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं। शुभभाव होता है, परन्तु उसमें मैं हूँ और वह मुझमें है तो आत्मा का अनादर होता है। वास्तविक अस्तित्व तत्त्व जो है, उसका निषेध हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखे तो समझ में आये। गुजराती अब यहाँ तो फिर कहाँ तक चले। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह बात यहीं समझ पड़ी, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : बस। तो अभी तक ७४ वर्ष में सुना नहीं कुछ?

यहाँ तो भगवान परमेश्वर और सन्त, मुनि और ज्ञानी जैसा है, वैसा कहते हैं। आहाहा! भगवान! जहाँ तू है वहाँ पुण्य के, पाप के परिणाम, कर्म, शरीर नहीं। और जहाँ तू नहीं ऐसे पुण्य-पाप और कर्म में आत्मा नहीं। आहाहा! यहाँ तो अस्ति सिद्ध करना है न? जीव-अजीव अस्तित्व सिद्ध करना है। वहाँ कर्ता-कर्म सिद्ध करना है। जिस स्थान में जो सिद्ध करना हो, वह हो न!

भगवान आत्मा अपनी चैतन्यमूर्ति, अनादि-अनन्त ध्रुव चैतन्यस्वभाव, उसे पर

से भिन्न अपने स्वरूप को न मानकर, अनादि से अज्ञानी यह पुण्य के परिणाम, पाप के भाव और शरीर की क्रिया में रुक गया। अटक गया अर्थात् कि यह मैं हूँ... यह मैं हूँ... यह मैं हूँ... और यह सब मुझमें है। इसलिए मुझमें है, उन्हें भिन्न कैसे करे वह? समझ में आया? यह सब पुण्य-पाप के कृत्रिम क्षणिक विकारी भाव हैं। दया, दान, भक्ति, षट्कर्म आदि के परिणाम विकारी हैं। आहाहा! निर्विकारी चैतन्यधातु में वे नहीं, तथापि वे मुझमें हैं, उनमें तेरे चैतन्यस्वरूप के पूर्ण स्वरूप का अनादर हो जाता है। तिरस्कार होता है, तिरस्कार होता है भगवान आत्मा का। उन तिरस्कार करनेवालों का आदर करने से इसका तिरस्कार होता है। अनादर हो जाता है। समझ में आया?

भगवान! यहाँ दृष्टि के फेर से तिरस्कार और अतिरस्कार की बात है। भगवान चैतन्यस्वरूप अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध अकृत्रिम अकृत ऐसा आत्मा का स्वरूप शुद्ध है। है सत्। उस सत् को सत् स्वभावरूप से भिन्न न मानकर राग और पुण्य में मैं और वे मुझमें, ऐसे दो में एकपना मानने से अपने भिन्नपने का नाश होता है। भिन्नपने का दृष्टि में नाश होता है। दृष्टि में नाश होता है। वस्तु तो वस्तु रहती है। परन्तु मैं हूँ नहीं। यह वे मैं और वे मुझमें। आहाहा! समझ में आया?

पुद्गल-परिणाम हैं.... आत्म तिरस्कारी (आत्मा के तिरस्कार करनेवाले) पुद्गल-परिणाम हैं'... अर्थात् कि आत्मा में पुद्गल परिणाम हैं, आत्मा में पुद्गल परिणाम हैं। पहले था उन पुद्गल परिणाम में आत्मा है। यह आत्मा में पुद्गल परिणाम हैं, ऐसे वस्तु के अभेद से—इन दो को एक मानने से, ऐसा। **इस प्रकार वस्तु के अभेद से...** समझ में आया? शरीर की क्रिया मैं करता हूँ। इसका अर्थ कि उसमें मैं हूँ। उसमें मैं हूँ और वह शरीर मुझमें है। शरीर मुझमें है अर्थात् भिन्न मैं चैतन्य हूँ नहीं। ऐसा माननेवाले, ऐसे वस्तु के एकपने से, अभेदपने की **जब तक अनुभूति है...** ऐसी दो की एकपने की मान्यता का अनुभव है, **तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध है;...** वहाँ तक आत्मा स्वसंवेदनज्ञान के भान बिना का है। आहाहा! बराबर है?

शिष्य का प्रश्न था कि महाराज! ऐसा अज्ञानपना, अप्रतिबुद्धपना कितने काल रहेगा? ऐसा पूछा था न? पहले प्रश्न किया था न ऊपर? कितने काल रहेगा? कोई कहे

कि यह दरिद्रपना हमारे कितने काल रहेगा? ऐसा पूछे न कोई? समझे न? हमारे बहुत अन्दर में यह गुप्त पत्र आते हैं। एक व्यक्ति का ऐसा पत्र आया कि अब हमारे यह दरिद्रपना कितने काल रहेगा, कुछ ज्योतिष में देखो। ज्योतिष में देखो नहीं परन्तु आपके ज्ञान में देखो। इस प्रकार ऐसा पत्र आया था। कहो, अब हम देखने जायें वहाँ। ऐसा पत्र आया पत्र कि यह दरिद्रपना कितने काल रहेगा हमारे? कुछ शान्ति आती नहीं। एक में से एक और दूसरे में से तीसरा, कुछ न कुछ दखल खड़ी ही होती है। लड़के को कमाने भेजें। पैसे दें। पैसे दूसरे बेचारे दे पाँच-दस हजार, बीस हजार, परन्तु कहीं मिलान नहीं खाता। यह कहाँ तक ऐसा रहेगा, कुछ ज्ञान में भासित होता है? ऐई! धनजीभाई! ऐसा पूछे। आहाहा! कितने ही पत्र आते हैं गुप्तरूप से। यह तो मानो कि पैसा बहुत है न। उन्हें ऐसा है कि महाराज पुण्यशाली और उन्हें माननेवाले पुण्यशाली। पैसे तो करोड़ों रुपये पड़े हैं उनके पास।

मुमुक्षु : दु:ख मिटाना हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या दु:ख? यह जन्म-मरण का दु:ख है या यह दु:ख है? तेरे आत्मा के आनन्द को भूलकर तू दु:ख मानता है, विकार में तू मानता है, वह दु:ख है। दु:ख संयोग का है नहीं। प्रतिकूल संयोग और अनुकूल संयोग सुख-दु:ख है ही नहीं। आहाहा! अब जो प्रतिकूल उसकी मान्यता की (कि) मुझमें आनन्द नहीं, परन्तु यह राग और उसमें आनन्द है। वह दु:ख की मान्यता, वह मिथ्यात्व की मान्यता इसने खड़ी की है। इसने खड़ी की है। उसे टालना यह इसे टालना है या दूसरा कोई टाल देगा? समझ में आया?

मुमुक्षु : महाराज!....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ जवाब कौन देता है? यहाँ एक पत्र का उत्तर लिखते नहीं। मुफ्त के बेचारों के कागज जाते हैं। पाँच-पाँच पैसा क्या बैठता है? मुफ्त के जाते हैं। उत्तर-फुत्तर नहीं लिखते। यह कौन लिखे फुरसत। यहाँ आवे तो सही न। यहाँ हमारे कहाँ निवृत्ति है? ऐसे पत्र लिखने की निवृत्ति नहीं, कहने की भी निवृत्ति नहीं। उसका पत्र मुफ्त का जाता है।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! तुझे दु:ख है, वह किसका है? दु:ख जो तुझे होता है, वह किसका है? शेनुं समझे? किस प्रकार का है? तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसे पुण्य-पापवाला मानना, पुण्य-पाप के विकारवाला मानना, उसे भिन्न न मानना, यह तुझे दु:ख है। अब वह दु:ख खड़ा किसने किया है? उत्पत्ति उसने की है। पुण्य-पाप मैं... पुण्य-पाप मैं... पुण्य-पाप मैं... शरीर मैं... उसकी रक्षा करूँ... उसकी रक्षा करूँ। धूल भी नहीं होती, सुन न! शरीर की रक्षा करूँ। अच्छे कर्म बाँधूं, अच्छे कर्म बाँधूं। बाँधना है न तुझे, अभी छूटना नहीं न? मूढ़ अच्छे कर्म बाँधूं और शरीर को अच्छा रखूँ और पुण्य-पाप ठीक है, ऐसा मानना, उसमें आत्मा है, ऐसा इसने माना है। वह मिथ्यादृष्टि का महान अनन्त दु:ख है। कहो, अब उस दु:ख को टालने की कला तो, उसमें मैं नहीं और मुझमें मैं हूँ—ऐसा भेदज्ञान करना, वह दु:ख टालने की कला है। वह न करे और दूसरा कुछ उपाय बताओ। परन्तु दूसरा किसका होगा? कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : .... दु:खी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी किसके कारण से है? रोटियाँ नहीं मिलती, इसलिए दु:खी है? इसने माना है कि मेरा यह शरीर। उसे अनुकूल अनाज आदि नहीं। ऐसी इसकी मान्यता इसे दु:खरूप है। आहाहा! समकिती-ज्ञानी... यह तो अभी और महँगा हो गया। वरना तो पाँच रुपये, दस रुपये मिले महीने में। और दूसरे को लाखों मिले। रोटी और छाछ खाये। विकल्प आवे। आनन्द है। हम दु:खी हैं ही नहीं, ऐसा माने। हम दु:खी हैं ही नहीं। दु:खी दुनिया के पास दुनिया रही।

मुमुक्षु : समता जहाँ आ गयी....

पूज्य गुरुदेवश्री : समता, परन्तु यह समता। ऐसी समता नहीं जैसी तुम कहते हो वैसी।

यहाँ तो पुण्य-पाप का राग मेरा नहीं और मुझमें पुण्य-पाप है ही नहीं। मैं तो आनन्दस्वरूप ज्ञायकमूर्ति हूँ, ऐसा भेदज्ञान हुआ। स्त्री दो हो, पाँच रुपये मिले, रोटी और छाछ ले। आनन्द है। कैसे है भाई? आनन्द है। हम दु:खी नहीं। दु:खी तुम हो।

पैसेवाले, स्त्री-पुत्र, सौ-सौ, पाँच सौ-पाँच सौ लोग ऐसे खम्मा... खम्मा (करते हों), सोना की मोटरें (हों)। तू दुःखी है। समझ में आया? भाई! अपने कुछ सहायता करें। सुखी हैं। तू माँगता है यह चाहिए... यह चाहिए... यह चाहिए। आत्मा चाहिए, उसकी तुझे खबर नहीं। तू बड़ा दुःखी है। सम्यग्दृष्टि पैसेवन्त को, तृष्णावन्त को आत्मा के भान बिना के दुःखी देखता है।

मुमुक्षु : हमारे .... दुःखी देखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दुःखी देखते हैं। लोग कहे सुखी। वह धूल में भी नहीं। सुन न अब! तेरी सोना की मोटरे-फोटरें वह तो धूल बाहर में रह गयी। सुख कहाँ से आया वहाँ? सम्यग्दृष्टि अपने में आनन्द मानता है। वह राग में आनन्द नहीं मानता, पुण्य के परिणाम में नहीं मानता, शरीर में नहीं मानता, संयोग में नहीं मानता। इस दृष्टि से दूसरे को देखता है। दूसरे को भी इस दृष्टि से देखता है। यह पैसेवाले करोड़, दो करोड़ सुखी? नहीं, नहीं। कौन कहता है सुखी है? महा दुःखी है बेचारा।

मुमुक्षु : पैसा है इसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा है इसलिए नहीं। पैसा मेरा और उसका मुझे रक्षण करना, इससे हम सुखी, ऐसी मान्यता से उसे दुःख है। आहाहा! ऐई! सेठी! तुम्हारे बड़े बँगले देखकर उसे ऐसा न हो जाये। आहाहा! बड़ा बँगला, पाँच-पाँच करोड़ रुपये और ऐसे और वैसे। दुःखी-दुःखी है बेचारा।

मुमुक्षु : वह बँगला है इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बँगला है, इसलिए नहीं। वह मेरा और मैं उसका। मेरी चीज़ भिन्न है, उसका भान नहीं, इसलिए वह दुःखी है। क्योंकि आनन्दमूर्ति आत्मा की उसे खबर नहीं। इसलिए पर में झपट्टे मारता है कि यहाँ से सुख... यहाँ से सुख... यहाँ से सुख (मिलेगा)। मूढ़ दुःखी है। वजुभाई! कैसे होगा? करोड़-करोड़ के बँगले और ऐसे चारों ओर संगमरमर। क्या कहलाता है? संगमरमर। कारीगरी कर-करके लटका लटकाया हो। गोल-गोल चक्कर। समझे न? पूरे बँगले को। आहाहा! एक करोड़, दो करोड़, साढ़े तीन करोड़ का बँगला और एक जगह नहीं था? वह कहीं था। नहीं?

मैसूर। मैसूर में साढ़े तीन करोड़ का था, वह देखने गये थे। परन्तु वह तो नया मकान हुआ है। बैंगलोर। बैंगलोर। बैंगलोर में नहीं? एक हुआ है नया। साथ में अपने उतरे थे बाहर। वह बड़ा करोड़ का, दो करोड़ का, तीन करोड़ का। सरकार का है। ऐसे संगमरमर गोल चक्कर कर-करके लटकाये हों सब। धूल में भी सुख नहीं। वह कुर्सी पर बैठा महा दु:खी है बेचारा।

मुमुक्षु : कुर्सी है, इसलिए दु:खी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुर्सी है, इसलिए नहीं। यह कहता है कि मैं इसमें बैठा हूँ। मैं बँगले में बैठा हूँ, मैं कुर्सी में बैठा हूँ, इसकी क्रिया करने में बैठा हूँ। वह मूढ़ है, वह दु:खी है। स्वरूप चैतन्य है, उसमें बैठना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! सिर पर पंखा झूले, हों! वह आता है न? ऐसे झूलते पंखे। बाहर से डोरी खींचे।

मुमुक्षु : अब तो बिजली के आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब बिजली के हुए होंगे।

मुमुक्षु : ऐसे चांप दबावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह चांप दबावे। यह तो हमने तब देखा हुआ है न। वडोदरा। तीन हजार वेतन था मासिक। वडोदरा। (संवत्) १९६३ के वर्ष।

मुमुक्षु : तब बिजली नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिजली नहीं थी। (संवत्) १९६३ के वर्ष में हमारा केस चला था न। अफीम का। डेढ़ महीने केस चला था। महीने का तीन हजार वेतन था उसका। ६३ के वर्ष में एक यूरोपियन बाहर जंगल में रहता था। वहाँ हमारा केस चलता था। खोटा केस था झूठा। वह बैठे और फिर बड़ा ऐसा कपड़े का हो। उसकी डोरी डाले और लकड़े में से बाहर निकाले और बाहर से खींचे।

मुमुक्षु : पहले ऐसा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहले ऐसा था। फिर तो अपने कहाँ कोर्ट देखी है। ६३ में देखी थी। एक कोर्ट अभी देखी थी। कहाँ थी? वडोदरा में, नहीं? वडोदरा में एक कोर्ट

है। जिस कोर्ट में हमारा केस चलता था, उस कोर्ट में व्याख्यान हुआ था अभी (संवत्) २०२० के वर्ष में। कहा, यहाँ कोर्ट में हम आते थे। ऊपर केस चलता है। नीचे व्याख्यान था। आहाहा! ६३ के वर्ष की बात है, हों! संवत् १९६३। धूल में भी सुख नहीं। वहाँ कोर्ट में बैठा बेचारा आकुलता-आकुलता (भोगता है)। यह किया... यह किया... यह किया... यह किया... दो हजार वेतन आयेगा और फिर यह करूँगा, फिर यह करूँगा। उसके चारों ओर इतने हो। दुःखी... दुःखी... दुःखी... आत्मा आनन्दमूर्ति की मान्यता बिना, उसकी नजरें पड़े बिना, राग से भेदज्ञान किये बिना सब प्राणी दुःखी है। जिस प्राणी को बाहर में सुविधा का पार न हो।

यहाँ तो कहते हैं कि वे संयोग, वह मैं और संयोग मुझमें, तिरस्कार करनेवाले वे जीव दुःखी हैं। समझ में आया? **इस प्रकार वस्तु के अभेद से...** देखो! यहाँ भाषा है न! जिसने पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म में एकपने की बुद्धि और वे मुझमें, ऐसे एकपने की बुद्धि, मैं उनमें, वे मुझमें एकपने की बुद्धि—यह अनुभूति है, वहाँ तक अप्रतिबुद्ध अर्थात् दुःखी है। वहाँ तक दुःखी है, वहाँ तक स्वसंवेदनज्ञान का अभाव है, वहाँ तक वह मूर्ख है। ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो, पाँच हजार, दस हजार। दस हजार तो कम हो गये। क्योंकि दस हजार का तो वेतन है इसको। लाख-लाख का वेतन महीने का होता है, लो न। ऐई! सुमनभाई को दस हजार वेतन है। रामजीभाई के पुत्र को। ऐसी लोग बातें करते हैं। हम कहाँ देखने गये हैं। इसके पिता को भी खबर नहीं। दस हजार वेतन है अमेरिका में। परन्तु क्या है? धूल है। दस हजार हो या लाख हो। परन्तु जब तक पर में, पर के कारण से मुझे सुविधा है और पर के कारण से न हो तो मुझे असुविधा, ऐसा माननेवाले जब तक हैं, तब तक वे दुःखी हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? रागादि भाव हों तो ठीक, यह संयोग हो तो ठीक, जिसके कारण मुझे सुविधा रहे, सुविधा रहे। बाहर के साधन में सुविधा रहे।

मुमुक्षु : भगवान के पास जाया जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पुण्य अच्छा हो तो भगवान के पास जाये। वह दुःखी है।

मुमुक्षु : समकित पावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित धूल में भी पावे नहीं वहाँ। समकित तो यह सुविधा के संयोग और संयोग की ओर के लक्ष्यवाला राग, उससे भिन्न आत्मा को देखे, तब सुखी और समकिती होता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान के पास तेरा समकित नहीं।

इस प्रकार वस्तु के अभेद... अर्थात् एकपने से। राग के परिणाम को एक (माने), आत्मा और राग को एकरूप माने, आत्मा और शरीर को एकरूप माने, आत्मा को और कर्म को एकरूप माने, वहाँ तक वह अभेदबुद्धि अर्थात् दो में एकपने की मान्यता है। वहाँ तक मिथ्यादृष्टि है और वहाँ तक वह दुःखी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आस्रव....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या है? अप्रतिबुद्ध का अर्थ क्या है? भान बिना का है मूर्ख। आत्मा में आनन्द है, ऐसा भान नहीं और यहाँ आनन्द है, ऐसा मानता है, वह मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इतनी बात की पहले।

शिष्य ने पूछा था कि प्रभु! यह अप्रतिबुद्ध कहाँ तक रहेगा? कि जब तक राग से लेकर किसी भी रजकण या पदार्थ, सोना, रूपा / चाँदी के ढ़ेर हों, उनमें मैं हूँ। यह भगवान का समवसरण होता है न, तो उसमें मैं हूँ, अर्थात् उससे मुझे लाभ होगा। उससे मुझे लाभ होगा तो इसका अर्थ हुआ कि उसमें मैं हूँ और वह मुझमें है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही बात करते हैं कि उपदेश और विकल्प दोनों आत्मा से भिन्न हैं। उपदेश और विकल्प अपने माने, तब तक मिथ्यादृष्टि, अभेदबुद्धि मिथ्यादृष्टि दुःखी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश परन्तु कौनसा उपदेश? उपदेश तो पर है। आहाहा! उपदेश और सुनने में जो विकल्प-शुभभाव हुआ, उसमें मैं हूँ या उसके कारण से मुझे लाभ है, यह मान्यता अभेदपने की मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! उसे संयोग से हटकर

भेदज्ञान करने का अवसर नहीं है। आहाहा! कठिन बात, भाई! ऐई! देवानुप्रिया! समवसरण में लाभ होगा। इसका अर्थ हुआ कि मैं आत्मा वहाँ हूँ और वह मुझमें है।

मुमुक्षु : .... अहंपना मानकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में। दोनों एक जाति के हैं। ऐसा कहते हैं कि परिवार में अपनापन मानता है, उसकी अपेक्षा भगवान को अपना माने। परन्तु सब पर की ओर का राग एक ही है। संयोग की ओर के लक्ष्य से आकुलता उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। स्वभाव के आश्रय से अनाकुलता उत्पन्न होती है, वहाँ आकुलता उत्पन्न नहीं होती। एक ही बात, एक ही बात।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त... परन्तु पर से भेद करे, तब प्रतिबुद्ध होता है। अभी आयेगा, देखो! अभी आयेगा। अभी तो अप्रतिबुद्ध की व्याख्या है। समझे? पाठ तो इतना है। अब अप्रतिबुद्ध की व्याख्या। समझे न? अब यह ... पाठ का अर्थ हो गया। परन्तु इसमें आचार्य की शैली है न। अब प्रतिबुद्ध की व्याख्या करते हैं।

और जब कभी,... अर्थात् अपने आत्मा की सम्हाल के काल में **जैसे रूपी दर्पण की स्वच्छता ही स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली है...** क्या कहते हैं? दर्पण है न रूपी दर्पण? दर्पण कहते हैं? दर्पण। वह **स्व-पर के आकार का प्रतिभास...** दर्पण अपने आकार के स्वरूप को बताता है, पर को बताता है। अग्नि सामने हो तो अग्नि की ज्वाला और उसका यहाँ स्वरूप बताता है। वह अग्नि यहाँ नहीं आयी। दर्पण में अग्नि नहीं, दर्पण में ज्वाला नहीं। वह **रूपी दर्पण की स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली...** देखो भाषा। **रूपी दर्पण की स्व-पर के...** स्वरूप का प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता है। दर्पण की तो स्वच्छता है। और उष्णता तथा ज्वाला दो ली है, भाई! अर्थपर्याय और आकृति की पर्याय। अग्नि है, उसकी उष्णता उसकी अर्थपर्याय है और ज्वाला आकार है व्यंजनपर्याय। उसमें दो लिये थे न घड़े में? घड़े में दो लिये थे। उसका वर्ण, गन्ध, स्पर्श, भाव और उसका चौड़ा और अवगाह आदि आकार। यहाँ तो व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय वह स्वतन्त्र अपने से होती है, ऐसा सिद्ध करते हैं। वह

अग्नि की उष्णता, वह उसका स्वभाव है। वह अर्थपर्याय है। और उसका आकार ज्वाला द्रव्य की व्यंजन पर्याय है। उष्णता और ज्वाला अग्नि की है। वह दर्पण में नहीं आयी। दर्पण में तो दर्पण की स्वच्छता है। ऐसा दिखता है न दर्पण में? वह दर्पण की अवस्था है। अग्नि की उणता, आकार-बाकार वहाँ आया ही नहीं। वह तो दर्पण का आकार है। दर्पण का आकार है। ऐसे दिखती है न ज्वाला, वह दर्पण का आकार है। अन्दर के काँच के स्कन्ध का आकार है। और जैसे ल्वाला लाल-लाल दिखती है, वह भी दर्पण की स्वच्छता की पर्याय है। उसकी पर्याय यहाँ आती ही नहीं। समझ में आया?

रूपी दर्पण की स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली... दर्पण का स्वभाव तो स्व-पर के स्वरूप को प्रतिभास बतलाता है। ऐसी स्वच्छता ही उसकी है। **प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही (दर्पण की) है और उष्णता तथा ज्वाला अग्नि की है...** वहाँ, हों! यहाँ वह नहीं। वहाँ है, वह उसमें है। यहाँ है वह तो दर्पण की अवस्था है। **इसी प्रकार अरूपी आत्मा की तो...** देखो! वह रूपी दृष्टान्त। दृष्टान्त तो रूपी का दिया न। अरूपी का किस प्रकार दे? भगवान आत्मा अरूपी है। वस्तु है, पिण्ड है, चैतन्यघन है, विज्ञान पिण्ड है। ऐसे **आत्मा की तो अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता (ज्ञातापना) ही है...** आत्मा का तो स्व और राग और पर, उनका जाननापना, वही अपना ज्ञातृत्व है। वह आत्मा का है। राग, शरीर क्रिया आदि सम्बन्धी जो अपने में ज्ञान होता है, वह परसम्बन्धी अपना ज्ञान है और अपने सम्बन्धी अपना ज्ञान है। वह स्व-परसम्बन्धी अपना ज्ञान, वह ज्ञातृता ही आत्मा की है। राग और शरीर की अवस्था, वह तो पर में गयी। वह कहीं आत्मा में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अरूपी आत्मा की तो अपने को और पर को जाननेवाली... अपने को और पर को जाननेवाली **ज्ञातृता...** उसमें था न? प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता। उसी प्रकार जाननेवाली ज्ञातृता ही है। भगवान आत्मा का तो स्व को-पर को जानने की दशा स्वरूप ही आत्मा है। राग, शरीर, कर्म, वे आत्मा के नहीं। वे तो परवस्तु हैं। समझ में आया? **और कर्म तथा नोकर्म पुद्गल के हैं....** और कर्म तथा रागादि सब पुद्गल के हैं। शुभ-

अशुभभाव, कर्म, शरीर, वाणी पुद्गल के हैं। **इस प्रकार...** इस प्रकार। था न उसमें? ऐसे वस्तु के अभेद से था। **इस प्रकार स्वतः अथवा परोपदेश से...** ऐसा अपने से जाने या पर के उपदेश में भी यह आया था कि तू ज्ञातृ (स्वरूप) है। ऐसा निमित्त, पश्चात् भी अपने को जाने। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त सामने देखकर जानता होगा?

स्वतः अथवा परोपदेश से... वहाँ उपदेश का निमित्तपना साक्षात् होता है, वहाँ से छूटकर ऐसे भेदज्ञान किया तो पर के उपदेश से—ऐसा निमित्त से कथन है। आगे बात लगी हो और फिर किया तो वह स्वयं से हुआ, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? जातिस्मरण से हो, इत्यादि-इत्यादि बहुत दृष्टान्त दिये हैं उसमें। अध्यात्म तरंगिणी में बहुत दृष्टान्त दिये हैं। समझ में आया? अपने से के दृष्टान्त दिये हैं उसमें, हों!

मुमुक्षु : देव....

पूज्य गुरुदेवश्री : देवदर्शन आवे न सब। आवे तो सही। ... ... ऐसे निमित्त। वहाँ एक निमित्तपना यह और दूसरा जातिस्मरण। देवागम दर्शन, ... आता है न दूसरे को? बिजली गिरी, वहाँ तरा खिरा हनुमानजी को, ... तारा खिरा, वहाँ अन्दर उतर गये। वह तो अपने को बाहर के निमित्त क्या हैं? स्वयं को स्वयंसिद्ध प्राप्त किया तब। उसकी बात है। वह स्वयं में डाला है। अनित्य आदि अनुप्रेक्षा चिन्तवन, आत्मस्वरूप प्राप्ति। लो। णमो स्वयंबुद्धाणं। इति आगम वचनात्। अथवा अन्यत् गुरुउपदेशादि। गुरु के उपदेश से, लो। ... परन्तु जाना तो इसने स्वयं ने राग से भिन्न आत्मा को। समझ में आया? जातिस्मरण से हो, देवदर्शन भी, ऐसे जाना क्या?

पर और राग से पर भिन्न चैतन्यस्वरूप—ऐसा भेदज्ञान हुआ, तब कहते हैं कि **स्वतः अथवा परोपदेश से जिसका मूल भेदविज्ञान है...** देखो! जिसका मूल तो भेदविज्ञान है। पर से भिन्नपने का भान है। **ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी...** वह राग से भिन्न, शरीर से भिन्न, पुण्य परिणाम से भिन्न, ऐसा आत्मा का ज्ञान होगा **तब ही (आत्मा) प्रतिबुद्ध होगा।** जब अनुभूति होगी, तब प्रतिबुद्ध होगा। कहो, वैद्यराजजी! आहाहा! वहाँ तक

यह पूजा और भक्ति और स्तुति को रटा करे, वहाँ तक कहीं प्रतिबुद्ध नहीं होता, ऐसा कहते हैं। अन्दर से राग के विकल्प से और देह की क्रिया से, उनसे भिन्न पड़कर भेदज्ञान जिसका मूल है, उससे अनुभूति उत्पन्न होगी, तब वह आत्मा स्वसंवेदनज्ञानी प्रतिबुद्ध होगा। आहाहा! वापस है तो स्वसंवेदन न। वहाँ कहाँ पर का वेदन करना है? प्रतिबुद्ध होगा, इसका अर्थ कि स्वसंवेदन करेगा। अपना स्वभाव राग से, विकल्प से भिन्न करे, तब स्वसंवेदन कहलाता है, तब वह प्रतिबुद्ध हुआ कहलाता है, तब वह ज्ञानी हुआ कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र के सब पठन के विकल्प से भेद करके अपना ज्ञान करेगा, तब ज्ञानी होगा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अभी स्पष्टीकरण करो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण किया न।

मुमुक्षु : स्वसंवेदन....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वसंवेदन। जब भी किसी काल में राग को, पुण्य को, शरीर को, वाणी को, पर को उनसे भिन्न करके अपना स्वसंवेदनज्ञान करेगा, तब वह प्रतिबुद्ध होगा। उसका उपाय यह एक ही है, ऐसा कहते हैं। भेदविज्ञान करेगा, तब प्रतिबुद्ध होगा। अभेद करेगा, तब तक अप्रतिबुद्ध रहेगा। लो, यह संक्षिप्त शब्द।

मुमुक्षु : दोनों बातें डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दोनों डाली न इन्होंने स्वयं ने। बात एक है पाठ में। अप्रतिबुद्ध। टीकाकार (ने) डाली। डाले न सब विस्तार करने को। पाठ में इतना है कि वहाँ तक अप्रतिबुद्ध रहेगा। ऐसा नहीं कहा कि इसे कर्म का जोर रहेगा, फलाना पकेगा, ... पकेगा, काल पाकेगा तब होगा, ऐसा भी नहीं कहा यहाँ।

मुमुक्षु : यह तो भेदविज्ञान करेगा तब होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं भेदविज्ञान करेगा, तब इसका काल पक गया, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : काललब्धि पकेगी....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। उसमें भेदविज्ञान किया, काललब्धि है ही पर्याय में और भान हुआ कि है।

मुमुक्षु : सभी कारण इकट्ठे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचों ही कारण इकट्ठे हों एक समय में। समझे न? एक कारण हो और दूसरा कारण न हो तो वह कारण कहलाता ही नहीं। कहते हैं न उपादान में तो योग्यता होती है परन्तु निमित्त व्यवस्थित न हो तो काम नहीं होता। और उपादान में हो, निमित्त व्यवस्थित हो और प्रतिबद्ध कारण हो तो नहीं होता। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। यह तो व्यवहार के कथन हैं ऐसे शास्त्र के। बाकी उपादान का कार्य हो, तब निमित्त, निमित्तरूप से होता ही है। और प्रतिबद्ध कारण का अभाव होता ही है। बहुत परन्तु... अपनी ओर से देखा नहीं और पर से देखकर बातें करना।

स्वतः अथवा परोपदेश से जिसका मूल भेदविज्ञान है... जिसका मूल तो भेदविज्ञान है, भले पर से, परन्तु मूल तो भेदविज्ञान है। **ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी तब ही...** वह सम्यग्ज्ञानी होगा। अप्रतिबुद्ध यहाँ तक रहेगा, प्रतिबुद्ध तब होगा। दोनों बातें ले ली। समझ में आया? लो, यह श्लोक की टीका का अर्थ हुआ। श्लोक का अर्थ तो पहले आ गया। अभेदबुद्धि में...

भावार्थ - जैसे स्पर्शादि में... स्पर्श, रस, गन्ध, रंग आदि **पुद्गल का और पुद्गल में स्पर्शादि का अनुभव होता है अर्थात् दोनों एकरूप अनुभव में आते हैं,...** लो! दोनों एकरूप अनुभव में आते हैं। यह तो बराबर है, कहते हैं। **स्पर्शादि में पुद्गल का और पुद्गल में स्पर्शादि का...** ऐसा। समझ में आया? गुण में गुणी और गुणी में गुण। लो, दूसरी भाषा से कहें तो। **उसी प्रकार जब तक आत्मा को,...** उसी प्रकार जब तक आत्मा को **कर्म-नोकर्म में आत्मा की और आत्मा में कर्म-नोकर्म की...** ऐसा। आत्मा को कर्म-नोकर्म में। पुण्य-पाप के भाव कर्म और शरीर में आत्मा की **भ्रान्ति होती है...** आत्मा की भ्रान्ति होती है—दोनों एकरूप भासित होते हैं, तब तक वह अप्रतिबुद्ध अज्ञानी है। एक बोल लिया अभी एक बोल। क्या कहा? जब तक स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गुण में गुणी घड़ा और घड़े में गुण, यह बराबर है। ऐसा वहाँ तक

आत्मा को पुण्य-पाप के भाव में, शरीर में आत्मा की भ्रान्ति होती है, दोनों एकरूप भासित होते हैं, वहाँ तक वह अज्ञानी प्रतिबुद्धरहित अप्रतिबुद्ध है। और **आत्मा में कर्म-नोकर्म की भ्रान्ति होती है...** ऐसा दूसरा लिया। समझ में आया?

आत्मा को, कर्म-नोकर्म में आत्मा की और आत्मा में कर्म-नोकर्म की... आत्मा में राग और कर्म और शरीर है। आत्मा में है। ऐसी **भ्रान्ति होती है...** ऐसा है नहीं, कहते हैं। समझ में आया? **दोनों एकरूप भासित होते हैं, तब तक तो वह अप्रतिबुद्ध है;...** बहुत स्पष्ट है। बराबर है? वैद्यराजजी! जब तक राग से मुझे लाभ है, पुण्य से मुझे लाभ है तो पुण्य में आत्मा है, ऐसा माना। और पुण्य मुझमें है, ऐसा माना। तब तक अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, दु:खी है, धर्मरहित है। समझ में आया?

और जब वह यह जानता है कि... लो! **और जब वह यह जानता है कि...** वापस वह का वह जाने। वापस ऐसा नहीं कि दूसरा कुछ हो तो जाने। वह ऐसा स्वयं उल्टा जानता है, वह सुल्टा जाने तब। **जब वह यह जानता है कि आत्मा तो ज्ञाता ही है...** जाननेवाला-देखनेवाला वह आत्मा। रागादि ज्ञान में ज्ञात होने पर भी उसरूप तू होता नहीं। ज्ञान में शरीरादि ज्ञात होने पर भी ज्ञान उसरूप होता नहीं। शुभभाव आदि हों, वे ज्ञान में ज्ञात होने पर भी ज्ञान शुभभावरूप होता नहीं। समझ में आया? **आत्मा तो ज्ञाता ही है और कर्म-नोकर्म पुद्गल के ही हैं...** रागादि भाव, शरीर, कर्म, वे सब पुद्गल के हैं; चैतन्य के नहीं। चेतन तो अकेली चैतन्यज्योतिस्वरूप ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त रागादि, वे सब चैतन्य के प्रकाश से प्रकाश में भिन्नरूप से ज्ञात हो ऐसी चीज़ है। एकरूप ज्ञात हो, ऐसी वह चीज़ नहीं। समझ में आया?

कर्म-नोकर्म पुद्गल के ही हैं, तब ही वह प्रतिबुद्ध होता है। तब वह ज्ञानी होता है, तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। इसके बिना सम्यग्दृष्टि होता नहीं। कहो, अब यह पुण्य परिणाम करते-करते सम्यग्दृष्टि होगा या पुण्यपरिणाम का भेद जानकर आत्मा का ज्ञान करे, तब सम्यग्दृष्टि होगा? समझ में आया? जो इसमें नहीं और जिसमें आत्मा नहीं, उसे करने से आत्मा को सम्यक्त्व होगा? जिसमें राग नहीं और राग में आत्मा नहीं। तो उस राग द्वारा आत्मा को सम्यग्दर्शन प्रतिबुद्धता होगी?

मुमुक्षु : नहीं होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, पूरी हो गयी बात। राग की मन्दता, वह सम्यग्दर्शन का कारण है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : दलील तो बहुत आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दलील तो आवे। लोगों की दलील व्यवहार के कथन इतने अधिक... उसका फल संसार। समझ में आया?

कर्म-नोकर्म पुद्गल के ही हैं... वापस पुद्गल के 'ही' हैं। मैं तो एक ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति हूँ। आत्मा का तो ज्ञानस्वरूप ही है। वह त्रिकाली चैतन्यज्योति ही है। पुण्य-पाप के भावरूप कभी चैतन्य हुआ नहीं और पुण्य-पाप चैतन्यरूप हुए नहीं। चैतन्य पुण्य-पापरूप हुआ नहीं, पुण्य-पाप चैतन्यरूप हुए नहीं। आहाहा! **जैसे दर्पण में...** यह दृष्टान्त सुल्टे का दिया है। **अग्नि की ज्वाला दिखायी देती है...** अग्नि की ज्वाला दिखती है। **वहाँ यह ज्ञात होता है कि ''ज्वाला तो अग्नि में ही है,...** ज्वाला कहीं दर्पण में नहीं।

मुमुक्षु : .... बिगड़ी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिगड़ी नहीं। दर्पण की स्वच्छता ही है वह। बिगड़े क्या? धूल। वह दर्पण की स्वच्छता ज्ञात होती है वह। बिगड़ा तो क्या धूल है? सफेद हो तो स्वच्छता और ऐसा हो तो अस्वच्छता, ऐसा है ही नहीं।

ज्ञान में राग ज्ञात हो, इसलिए मैल और वीतरागता ज्ञात हो (तो) अमैल, ऐसा है? ज्ञान तो राग को भी जानता है और वीतराग को भी जानता है। समझ में आया? कैसा सूक्ष्म इसमें, वैद्यराजजी! आहाहा! कभी सुना नहीं, विचार किया नहीं, मनन किया नहीं। कहाँ से तह बैठे? आहाहा! यह ज्वाला शब्द रखा है। वह आकार है न, इसलिए ज्वाला रखी। उष्णता तो है। वह आकार ऐसे दिखे न ऐसे-ऐसे। वह आकार तो स्वच्छता दर्पण की है। वह आकार तो वहाँ है ज्वाला का। ज्वाला तो अग्नि में ही है, दर्पण में प्रविष्ट नहीं। दर्पण में प्रविष्ट नहीं। अग्नि की ज्वाला ऐसे-ऐसे जो दर्पण में

दिखती है, वह अग्नि की ज्वाला नहीं प्रविष्ट हुई। वहाँ हाथ लगाकर देखो। ज्वाला ऐसे-ऐसे दिखती है न, (वहाँ हाथ लगाओ)।

मुमुक्षु : .... स्वच्छ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो स्वच्छ है। वह तो अपनी दर्पण की स्वच्छता दिखती है। वहाँ उष्णता है? हाथ लगाओ हाथ। वहाँ तो ठण्डी अवस्था है। उष्णता तो वहाँ (अग्नि में) है। ज्वाला वहाँ है। आहाहा! अफीम-अफीम समझे? अफीम का गोटा पड़ा, अफीम इतना दस सेर (हो) तो क्या अफीम दिखता है अन्दर? अफीम में तो कड़वाहट है। वहाँ तो दर्पण की अवस्था है। तो कीमत दो आवे। दस सेर अफीम यहाँ और दस सेर अफीम दर्पण में। दोनों बेचो। अफीम समझे न? दर्पण में दिखता है, लो! अरे! सोना। गहने २५-५० सामने पड़े हों। दर्पण में दिखते हैं। दोनों बेचो। यह तो दर्पण की अवस्था है। क्या बेचे? धूल। सोना कहाँ है वहाँ? सोना तो यहाँ है। इसी प्रकार ज्वाला अग्नि में है, दर्पण में नहीं। दर्पण में दिखती है, वह दर्पण की स्वच्छता है। कहो, वह मलिन नहीं। ऐई! देवानुप्रिया! वह ज्वाला ऐसे-ऐसे दिखाई दे, वह मैला नहीं, वह तो दर्पण की स्वच्छता है। अग्नि-बग्नि कहाँ प्रविष्ट है अन्दर? आहाहा! कुछ खबर नहीं होती और ऐसा का ऐसा चलो धर्म करो... धर्म करो... धर्म करो। एक तो धर्म करनेवाले बेचारे निवृत्त नहीं होते, परन्तु करनेवाले हों तो यह करो और पुण्य करो और यह करो।

इसी प्रकार ''कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं;... भगवान चैतन्यसूर्य में रागादि अन्धकार प्रविष्ट नहीं। कर्म-शरीरादि प्रविष्ट नहीं। **आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है...** लो! आत्मा की ज्ञान की निर्मलता ऐसी है कि **कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखायी दे;...** जैसा राग हो, वैसा ज्ञात हो, शरीर हो, वैसा ज्ञात हो। कर्म का उदय हो, वैसा ज्ञात हो, ज्ञात हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिबिम्ब अर्थात्? यहाँ कहाँ प्रतिबिम्ब घुस गया था?

अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं; आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है कि जिसमें

ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखायी दे;... है। ज्ञेय का प्रतिबिम्ब अर्थात् ज्ञानाकार परिणाम अपना अपने में है वह। उस ज्ञेय सम्बन्धी ज्ञानाकार परिणाम अपना अपने में है। ज्ञेय सम्बन्धी ज्ञानाकार परिणाम अपना अपने में है। वह ज्ञेय के कारण से ज्ञानाकार हुआ है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! गजब बातें, भाई! यह उपादान-निमित्त के सब विवाद। **इसी प्रकार कर्म-नोकर्म ज्ञेय हैं, इसलिए वे प्रतिभासित होते हैं'...** ज्ञान में ज्ञात हो। समझे? दर्पण रखा हो न ऐसे दर्पण बड़ा। यह नागरवेल के पानवाले बहुत रखते हैं। सड़क के ऊपर जो जाये, उसमें सब दिखता है। बड़ा दर्पण होता है न? नागरवेल के पानवाले बहुत रखते हैं। सब दिखता है। तो अन्दर है वह? वह चीज़ अन्दर है? वह तो रास्ते के ऊपर चलती जाती है। वह तो बाहर की चीज़ है। यहाँ तो दर्पण की अवस्था है। उसी प्रकार चैतन्यदर्पण पड़ा है, इस जगत के भ्रम में पड़ा हुआ ऐसे। जैसे वह नागरवेल की दुकान में पड़ा हो, उसी प्रकार इस जगत में पड़ा है दर्पण। यह सब चीज़ रागादि शरीर आदि आये-जाये, आये-जाये उन्हें जाननेवाला है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेश से हो, तब ही वह प्रतिबुद्ध होता है। वहाँ तक वह अज्ञानी रहता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ९, शनिवार, दिनांक - २२-१०-१९६६
गाथा - १९, २० से २२, श्लोक-२१, प्रवचन - ८२

... (अग्नि की) उष्णता तो वहाँ रही। यहाँ जो दिखता है, वह तो दर्पण की स्वच्छता दिखती है। वह मलिन नहीं। वह दर्पण का मैल नहीं। समझ में आया? दर्पण में लाल दिखता है, ऐसे-ऐसे होता दिखता है, वह दर्पण की अवस्था का मैल नहीं। वह दर्पण की स्वच्छता ही है। जिसमें अग्नि की उष्णता और ज्वाला प्रतिबिम्बित होती है, ऐसा कहना, परन्तु वह अपनी दर्पण की ही स्वच्छता है।

उसी प्रकार **कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं;...** जीव-अजीव अधिकार है न। जड़ कर्म और दया-दान, पुण्य-पाप के भाव, वे आत्मा के ज्ञान-दर्पण में प्रविष्ट नहीं। समझ में आया? दर्पण में जैसे अग्नि और ज्वाला, वे बाहर हैं। अग्नि और ज्वाला का अस्तित्व अग्नि में है। दर्पण में उसकी ज्वाला और उष्णता का अस्तित्व यहाँ नहीं। इसी प्रकार आत्मा में कर्म और पुण्य-पाप के भाव उसके अस्तित्व में है। वे आत्मा की ज्ञानपर्याय में प्रविष्ट नहीं। समझ में आया?

जीव का अस्तित्व—जीव जो आत्मा, उसका ज्ञानस्वभाव आनन्द ऐसा जहाँ भान हुआ तो अपने में अस्तिरूप से शुद्ध आत्मा, उसके गुण की निर्मल पर्याय, उसके अस्तित्व में है। समझ में आया? परन्तु कर्म और पुण्य-पाप के, दया-दान, व्रत-भक्ति के जो भाव दिखते हैं, वे भाव भाव में हैं, अजीव में। वे अजीव में हैं। जैसे अग्नि की उष्णता और ज्वाला अग्नि में है। वैसे शुभ-अशुभभाव, वे अजीवभाव में हैं। वे जीवभाव में नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वच्छता। कहते हैं न, अभी दृष्टान्त देते हैं। दर्पण और अग्नि। दो दृष्टान्त। अग्नि की उष्णता और ज्वाला ऐसे-ऐसे होती है, वह उसकी अस्ति में होती

है, दर्पण की अस्ति में नहीं। दर्पण की अस्ति में उस सम्बन्धी का यहाँ स्वच्छता का अपना परिणमन, अपनी स्वच्छता का परिणमन, वह दर्पण में ज्ञात होता है। वह दर्पण में है। वह दर्पण में है। वह अग्नि की उष्णता और ज्वाला यहाँ नहीं। परन्तु दर्पण की स्वच्छता में जो लाल आदि ज्वाला का आकार दिखता है, वह तो दर्पण की स्वच्छता की पर्याय है। समझ में आया?

उसी प्रकार धर्मी जीव को आत्मा चैतन्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप है, ऐसा भान हुआ है। इसलिए उसकी दृष्टि राग के ऊपर, कर्म के ऊपर होती नहीं। परन्तु कर्म और राग या पुण्य-पाप के भाव, वे उनकी अस्ति में रहे। आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप की श्रद्धा, अनुभव में ज्ञानरूप परिणमता उस ज्ञान की दशा में राग भावकर्म और द्रव्यकर्म यहाँ ज्ञात होते हैं, वह ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है। यहाँ ज्ञात हुआ, इसलिए ज्ञानपर्याय मलिन हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं;... क्योंकि चैतन्यस्वरूप तो ज्ञानमूर्ति प्रभु है, ऐसी जहाँ प्रतीति और अनुभव में लिया, ऐसा जो ज्ञायकभाव, उसमें पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति के, काम-क्रोध के भाव, वे आत्मा में पर्याय में प्रविष्ट नहीं। पर्याय में प्रविष्ट नहीं, हों! द्रव्य-गुण की तो बात नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हुआ? पर्याय में ज्ञान हुआ है। स्व-पर का ज्ञान हुआ है। जिस प्रकार का राग और जिस प्रकार के कर्म प्रकार या शरीर की अवस्था (होती है), उस प्रकार का यहाँ स्व के लक्ष्य से स्व का ज्ञान होने पर, उस सम्बन्धी की ज्ञानपर्याय स्वच्छतारूप से परिणमी है। आहाहा! समझ में आया?

कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं;... यहाँ जीव-अजीव का अस्तित्व सिद्ध करना है न? दोपहर में कर्ता-कर्म सिद्ध करना है। अभी अस्तित्व। आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा जहाँ अस्तित्व अन्तर में अनुभूति आत्मा का स्वाद आकर आत्मा का अनुभव हुआ, वहाँ उस ज्ञान में स्वप्रकाशक पर्याय साथ में जिस प्रकार का विकल्प उठता है, शरीर की अवस्था, कर्म का उदय होता है, उस प्रकार का अपना ज्ञान, उस

सम्बन्धी अपना अपने कारण से ज्ञान की स्वच्छतारूप से परिणमता है। जिसे जानने से ज्ञान मलिन नहीं होता। उसे जानने से तो ज्ञान की अपनी पर्याय परिणमती है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म. ... रामस्वरूपजी!

यह तो जीव-अजीव अस्तित्व। जीव का अस्तित्व और अजीव का अस्तित्व कैसे है, ऐसा बताते हैं। आत्मा का अस्तित्व और अनात्मा का अस्तित्व, वह अस्तित्व कैसे है? वह पुण्य-पाप आदि अनात्मा का अस्तित्व है। कर्म, शरीर का अनात्मा का अजीव का अस्तित्व है। अजीव है न वह? यहाँ जीव चैतन्यज्योति ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि और अनुभव हुआ तो उसके अस्तित्व में वह अपनी स्व-पर पर्याय का स्वच्छता का परिणमन उसके अस्तित्व में है। परन्तु राग, भावकर्म और द्रव्यकर्म उसकी पर्याय के अस्तित्व में नहीं। समझ में आया? अरे! गजब बात!

आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखायी दे;... प्रतिबिम्ब दिखता है अर्थात्? जैसे रागादि विकल्प पुण्य-पाप का, देहादि हो, ऐसा यहाँ ज्ञान होता है। **इसी प्रकार कर्म-नोकर्म ज्ञेय हैं...** आत्मा के ज्ञानस्वभाव में पुण्य-पाप के भाव और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प शरीरादि ज्ञेय हैं। ज्ञेय हैं, ज्ञान नहीं। वे आत्मा नहीं।

मुमुक्षु : अजीव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अजीव है। कहा न, जीव के सामने वे अजीव हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारमोक्षमार्ग अनात्मा है, अजीव है।

मुमुक्षु : कठिन पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े तो करो निर्णय। ज्ञानचन्दजी!

यहाँ तो जीव-अजीव अधिकार है। नाम क्या है ऊपर? जीव-अजीव अधिकार। तो जीव-अजीव अधिकार में ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अपने स्वरूप को जाने और

रागादि व्यवहार विकल्प को जानने के अस्तित्वरूप परिणमे। परन्तु वह ज्ञेयरूप से परिणमे, ऐसा उसके स्वरूप में है नहीं। अज्ञानी को ऐसा है। परन्तु अज्ञानी मानता है कि मैं रागरूप परिणमता हूँ, रागरूप होता हूँ, विकाररूप हो गया। ऐसी उसकी मान्यता में बात घुस गयी है। समझ में आया? अपने अस्तित्व का शुद्धभाव अस्तित्व, मौजूदगी दृष्टि में ली नहीं; इसलिए अज्ञानी को अपने अस्तित्व की ओर का लक्ष्य नहीं, इसलिए उसे अस्तित्व का जो पुण्य-पाप और शरीरादि बाह्य लक्ष्य की जो हुई वस्तु या बाह्य वस्तु, बाह्य लक्ष्य से हुई बाह्य वस्तु, उसमें मैं हूँ, ऐसा मानता है। वह मानता है। ऐसा हो नहीं गया है। कहीं ज्ञायकस्वरूप रागरूप हो जाये या शरीररूप हो जाये, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञेय अपना ही है। प्रतिबिम्ब तो निमित्त की बात की। वह तो उस सम्बन्धी अपना ज्ञान, आत्मा सम्बन्धी अपना ज्ञान। दोनों की स्वच्छता का परिणमन, वह आत्मा की पर्याय में है। ठीक! दलाल है न! आहाहा!

भाई! यह चैतन्यज्योति प्रभु ज्ञानमूर्ति है। यह चैतन्य के नूर का पूर है। उसमें राग सम्बन्धी का अपना उस काल में, अपने कारण से अपने सम्बन्ध में, अपने कर्ता-कर्म से हुई ज्ञानपर्याय है। वह राग है, इसलिए कर्ता और ज्ञानपर्याय कर्म, ऐसा है नहीं। अथवा राग की अस्ति है... यहाँ अपने कर्ता-कर्म रहने दे। वहाँ राग है, इसलिए यहाँ ज्ञान का परिणमन हुआ—अस्ति, ऐसा है नहीं। समझ में आया? भाई! यह तो जीव-अजीव अधिकार और कर्ता-कर्म आदि मुख्य वस्तु है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि **इसी प्रकार कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं;...** यह विकार के परिणाम और कर्म के भाव चैतन्यज्योति प्रभु ज्ञायकभाव के अस्तित्व में उनका अस्तित्व आता नहीं। समझ में आया इसमें? यह गुजराती कहीं बहुत ऐसी नहीं। जरा-जरा समझ में आये ऐसा है। क्यों धर्मचन्दजी! धर्मचन्द तो यहाँ बहुत रहते हैं। अभी बहुत रह आये। आत्मा की ज्ञानस्वच्छता ऐसी है कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखाई दे, उस प्रकार से कर्म-नोकर्म ज्ञेय हैं। वह प्रतिभासित होते हैं। चैतन्य के अपने

स्वभाव के अस्तित्व के भान काल में, चैतन्य के शुद्ध और ज्ञायकभाव के अस्तित्व के भाव में राग और कर्म सम्बन्धी का अपना जो स्व-परप्रकाशक ज्ञान, उसकी स्वच्छता वह प्रतिभासित होती है। वास्तव में स्वच्छता प्रतिभासित होती है। वह (पर) प्रतिभासित होता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया?

ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को... ऐसा भेदज्ञानरूप अर्थात् यह पुण्य-पाप के राग और देहादि की, देह की क्रिया से भगवान ज्ञानमूर्ति भिन्न है। पर के अस्तित्व में आत्मा नहीं और आत्मा के अस्तित्व में यह पुण्य और व्यवहाररत्नत्रय का राग नहीं। **ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव...** ऐसा राग से भिन्नरूप आत्मा का अनुभव, आत्मा का स्वाद, आत्मा की अनुभूति। समझ में आया? अर्थात् कि जब राग और पुण्य में एकत्व था, तब उसका स्वाद आकुलता और दुःखरूप आता था। पुण्य-पाप के विकल्प जो पर हैं, उनमें एकत्वबुद्धि में उसका स्वाद आकुलता और दुःखरूप था। वह वास्तविक आत्मा का स्वभाव और स्वाद नहीं। परन्तु जब राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उससे भी आत्मा, आत्मा का अस्तित्व उनके अस्तित्व में आत्मा नहीं। राग के अस्तित्व में आत्मा नहीं। आत्मा ज्ञायकस्वरूप के अस्तित्व में भगवान विराजता है, ऐसा जब भेदज्ञान हुआ, तब भेदज्ञानरूप अनुभव, तब अनुभव में आत्मा के आनन्द का स्वाद आया। समझ में आया या नहीं? सोहनलालजी! यह समझ में आता है? यह सब बात कहीं नहीं। सुनी है या नहीं तुमने तो? तेरापंथी के साधु थे ये। साधु थे, बाद में छोड़ दिया। तेरापंथी है न? तुलसी। उसमें साधु थे। ... आये थे। सब छोड़ दिया। वहाँ बहुत गड़बड़ है। अभी मुम्बई आये। दुकान में व्यापार-धन्धा करते हैं। समझ में आया?

यह बात कि परसन्मुख के दया का भाव, महाव्रत का भाव, उपदेश का भाव। समझे? सोहनलालजी! यह क्या है? सब राग। वह राग, राग में अस्तिरूप से है। इसका अर्थ, राग अजीवपने में अस्तिरूप से है। अर्थात् कि राग में चैतन्य के प्रकाश का अभाव है, इसलिए वह अजीवरूप से है। भगवान आत्मा चैतन्यप्रकाश के नूर में स्व-परप्रकाश की स्वच्छता में उस प्रकार का प्रतिबिम्ब राग का ज्ञान हो, वह स्वयं से होता है, हों! राग

से नहीं। ऐसे ज्ञान में वह ज्ञात हो, इसलिए कहीं ज्ञान मलिन हो गया है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

दर्पण में विष्टा ज्ञात हो, इसलिए वहाँ दर्पण विष्टापने की पर्यायरूप से दुर्गन्धरूप हुई है? दर्पण में अग्नि की उष्णता ज्ञात हो, वह अग्नि की उष्णता नहीं, वह तो दर्पण की स्वच्छता है। क्योंकि वहाँ हाथ लगाओ तो वहाँ कुछ गर्म है नहीं। वहाँ कहाँ अग्नि थी तो गर्म हो? उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यज्योतिरूपी दर्पण में पुण्य-पाप के राग और देहादि की क्रिया वह पररूप से, ज्ञेयरूप से यहाँ प्रविष्ट नहीं। परन्तु ज्ञेयरूप से अपने अस्तित्व में वे दूसरे हैं, ऐसा ज्ञात होता है। समझ में आया?

ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव... देखो! यह राग और पुण्य से, विकल्प से भिन्न भगवान... अभी तो आत्मा उसे कहते हैं। उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा को रागवाला और पुण्यवाला माने, वह आत्मा नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व है। पुण्य-पाप के परिणाम तो आस्रवतत्त्व है। आस्रव तो वे लोग जीव कहते हैं। ऐई! कहते हैं या नहीं तुम्हारे? आस्रव जीव है या अजीव? जीव। भेद है या अभेद? आस्रव आत्मा के साथ भेद है या अभेद? क्या कहे? यदि भेद कहे तो उसकी मान्यता नहीं, अभेद कहे तो आस्रव सिद्ध में नहीं।

मुमुक्षु : परिणाम....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम बराबर है। परन्तु भेद है या अभेद? व्यवहार से अभेद, निश्चय से भेद। ऐसा होना चाहिए न? यह बात है नहीं। ...में नहीं पहले से। पंथ वहाँ से निकला है न। तब से वह नहीं। क्योंकि शास्त्र में ऐसा आता है कि जीव के परिणाम हैं न वे? परन्तु परिणाम विकार है। विकार परिणाम आत्मा के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है या अनित्य तादात्म्यसम्बन्ध है? नित्य तादात्म्यसम्बन्ध है या अनित्य तादात्म्यसम्बन्ध है? अनित्य तादात्म्य। समाप्त हो गया। ये परिणाम नित्य तादात्म्य (नहीं)। ज्ञानानन्द जैसे नित्यानन्द है, वैसे राग का नित्यानन्द स्वभाव उसका नहीं। वह तो व्यवहार से तादात्म्य है। निश्चय से है नहीं। ऐसी बात है। पर्याय में ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेश से हो... गुरु ने कहा कि देख, यह आत्मा ऐसा है। तब वह स्वयं अनुभव करे, राग से भिन्न पड़कर, तो अनुभव हो। **तब ही वह प्रतिबुद्ध होता है।** शिष्य का प्रश्न था न ? कि कब यह प्रतिबुद्ध होता है ? इस प्रकार प्रतिबुद्ध हो। इस प्रकार प्रतिबुद्ध होता है।

★ ★ ★

कलश - २१

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(मालिनी)

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा।
प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकाराः सन्ततं स्युस्त एव ।।21।।

श्लोकार्थ : [ये] जो पुरुष [स्वतः वा अन्यतः वा] अपने ही अथवा पर के उपदेश से [कथम् अपि हि] किसी भी प्रकार से [भेदविज्ञानमूलाम्] भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है, ऐसी अपने आत्मा की [अचलितम्] अविचल [अनुभूतिम्] अनुभूति को [लभन्ते] प्राप्त करते हैं, [ते एव] वे ही पुरुष [मुकुरवत्] दर्पण की भाँति [प्रतिफलन-निमग्न-अनन्त-भाव-स्वभावैः] अपने में प्रतिबिम्बित हुए अनन्त भावों के स्वभावों से [सन्ततं] निरन्तर [अविकाराः] विकाररहित [स्युः] होते हैं-ज्ञान में जो ज्ञेयों के आकार प्रतिभासित होते हैं, उनसे रागादि विकार को प्राप्त नहीं होते।।21।।

कलश - २१ पर प्रवचन

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं -

कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूला-
चलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा।

प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकाराः सन्ततं स्युस्त एव॥२१॥

श्लोकार्थ - जो (कोई) पुरुष (आत्मा)... पुरुष अर्थात् आत्मा लेते हैं यहाँ। **अपने ही...** अपने आनन्द ज्ञायकस्वरूप को अपने से जाने **अथवा पर के उपदेश से...** उपदेश सुना और फिर अपना भेदज्ञान करे। **किसी भी प्रकार से...** किसी भी प्रकार से महान स्वभाव-सन्मुख के पुरुषार्थ द्वारा **भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है, ऐसी अपने आत्मा की अविचल अनुभूति को प्राप्त करते हैं,...** क्या कहते हैं ? **जो (कोई) पुरुष (आत्मा) अपने ही...** पोताथी अर्थात् समझे न ? तुम्हारे आता है न क्या ? अपने से। यह शब्द में थोड़ा अन्तर। **अथवा पर के उपदेश से किसी भी प्रकार से...** अर्थात् महान पुरुषार्थ से **भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है...** क्या कहते हैं ? भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्ति कारण है। किसका ? कि **अपने आत्मा की अविचल अनुभूति को प्राप्त करते हैं,...** (उसका)। समझ में आया ?

किसी भी प्रकार से भेदविज्ञान... अर्थात् कि राग, कर्म, शरीर से भेद अर्थात् भिन्न भगवान, ऐसा जिसका मूल—भेद भिन्न करना जिसका मूल उत्पत्ति कारण है। अनुभूति की उत्पत्ति भेदविज्ञान से होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? पुण्य के भाव, शुभराग या कर्म या देह से भेद करना—पृथक् करना—ऐसा भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण। जिसका मूल उत्पत्तिकारण, किसका ? **ऐसी अपने आत्मा की अविचल अनुभूति...** प्रथम बात है, हों! अभी तो यह सम्यग्दर्शन के काल की बात है।

यहाँ तो ... क्यों लिया ? कोई कहे कि परन्तु वह व्यवहार है न राग ? राग मन्द पड़ता है न। वह कुछ कारण होता है या नहीं ? तो कहते हैं, नहीं। उससे भिन्न पड़ना, जिसका कारण, ऐसी अनुभूति। समझ में आया ? क्योंकि राग की मन्दता, वह अजीवभाव है, अजीवभाव है। भगवान आत्मा ज्ञायकभाव चैतन्य उपयोगी यहाँ कहेंगे अभी। **'सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं'** भगवान आत्मा तो ज्ञान की ज्योतिस्वरूप प्रभु चैतन्यज्योति आनन्दमूर्ति है। ऐसे आत्मा को राग से, विकल्प से (भिन्न करे)। कहते हैं न लोग ? कि भाई ! यह राग पहले हो। परन्तु पहले अर्थात् क्या ?

मोहनभाई! क्या कहा? पहले चाहिए राग, व्यवहार चाहिए। परन्तु व्यवहार अर्थात् क्या? यह कहते हैं कि जिसका भेदज्ञान मूल उत्पत्तिकारण, ऐसी अनुभूति। आहाहा! विजयकुमारजी! समझ में आया या नहीं? रात्रि में प्रश्न करते थे भाई। आहाहा!

यहाँ तो जो वस्तु है, वह दुःखरूप विकृत हो सकती ही नहीं। साधारण नियम में पदार्थ स्वतः स्वभाव शाश्वत की असली शक्ति और असली सत्त्व का सत्त्व, वह विकार और दुःखरूप हो सकता ही नहीं। यह तो इसका साधारण नियम है। ऐसा जो भगवान आत्मा अकेला ज्ञान के सत्वाला सत्त्व और आनन्दरूपी जिसका सत्त्व, शुद्ध जिसका सत् का सत्त्व। भाव लेना है न यहाँ। ऐसे सत्त्व को, उसे यहाँ जीव कहा जाता है। उस जीव की अनुभूति, वह राग के-पुण्य के विकल्प की, चाहे वह कषाय की मन्दता हो, परन्तु वह अजीव के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ, अजीव के अस्तित्व का भाव है। जीव के अस्तित्व का वास्तविक वह भाव नहीं। इसलिए भगवान आत्मा ज्ञायकज्योति की ओर ढलने पर, उस राग से भेद करने पर—(स्वसन्मुख) ढलने पर उसकी उत्पत्ति का कारण, अनुभूति का यह कारण होता है। आहाहा! राग से पृथक् करने का, अनुभूति की उत्पत्ति उसमें से होती है। राग से भेद करने की कला से अनुभूति की उत्पत्ति होती है। अब यह बात है। फिर से कहते हैं, अपने इसमें क्या?

यहाँ तो जीव-अजीव की व्याख्या है न! तो भगवान आत्मा चैतन्य के नूर का पूर प्रभु आत्मा है। अकेला पूर... पूर... प्रवाह भरा है पूरा। ऐसे चैतन्य के प्रकाश का पूर प्रभु, उसमें पुण्य और पाप के भाव प्रविष्ट नहीं हुए। इसलिए उसकी अनुभूति में पुण्य-पाप के भाव से भिन्न करने की (कला) जिसका उत्पत्तिकारण, ऐसी अनुभूति। समझ में आया? यह तो वे कहे कि पहले व्यवहार हो तो यह होता है। परन्तु प्रभु! व्यवहार कहना किसे? व्यवहार अर्थात् अजीव। व्यवहार अर्थात् अजीव, ले! वह अजीव हो तो जीव हो। इसका अर्थ क्या? ऐई! इतना सब हाँ? ऐई! सेठी! यह सेठिया को बुलाया, उस पण्डित को कहा। व्यवहार राग मन्द हो, उसे अजीव कहा है। क्योंकि उसमें चैतन्य के प्रकाश का अभाव है। अजीव हो तो जीव हो। इसका अर्थ क्या?

मुमुक्षु : अजीव जगत में हो तो जीव हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है ही नहीं। जीव है तो जीव है। अजीव है तो अजीव है। अपने-अपने कारण से सब हैं। किसी के कारण से कोई होता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... व्यवहार का नम्बर गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नम्बर कहाँ उतर गया? उसमें नम्बर पहला रहा। वह अजीवभावरूप से अजीवभाव बराबर रहा। जीव भाव में वह प्रविष्ट नहीं हुआ। परन्तु अजीव में अजीवरूप से बराबर रहा। आहाहा! गजब बात!

चैतन्यस्वभाव अनादि-अनन्त ज्ञायकमूर्ति ज्योति, वह जीव। उस जीव को रागादि से भेदज्ञान जो उत्पत्ति का मूल है, ऐसी अनुभूति, अचल अनुभूति आत्मा की तब प्राप्त करता है। समझ में आया? शुभराग वास्तव में दुःखरूप है। दुःखरूप है, वह जीव जीवस्वभाव हो नहीं सकता। समझ में आया? इसलिए उसे अजीवभाव गिनकर ज्ञायकभाव के भान काल में उस दुःख के परिणाम का ज्ञान अपने में हो, वह ज्ञान की स्वच्छता अपनी है। एक उसे जानने से ज्ञान अपना हुआ उसका, इससे ज्ञान मलिन हुआ, ऐसा नहीं। समझ में आया?

दर्पण में... यहाँ विष्टा पड़ी हो बाहर। विष्टा में विष्टा है। दर्पण में है? दर्पण की स्वच्छता की पर्याय है। भले यहाँ गन्ध मारती हो महाविष्टा। एक बकरा मर गया हो, कीड़े पड़े हों ऐसे। बकरा। वहाँ गन्ध है? वह तो दर्पण की स्वच्छता के अस्तित्व में दर्पण ज्ञात होता है। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान चैतन्यदर्पण में, ज्ञानस्वरूप दर्पण, उसमें रागादि दुर्गन्ध वस्तु, दुःखरूप मैल है। दया, दान, व्रत, भक्ति विकल्प, वह मैल दुःखरूप विकार दुःखरूप है। उसका यहाँ ज्ञान होने पर ज्ञान मलिन होता नहीं। क्योंकि ज्ञान दुःखरूप होता नहीं। दुःख का जो ज्ञान है, वह तो अपना ज्ञान है, उसमें परिणमित ज्ञान है। आहाहा! ऐसी सीधी चैतन्यमूर्ति प्रभु, महान अस्तित्व में विराजमान, उसका इसे भरोसा आता नहीं। उसे यहाँ से होगा... यहाँ से होगा... यहाँ से होगा... वह कहीं निवृत्त होता नहीं। दूसरे से होगा उसका अपने में आने का? समझ में आया?

यहाँ तो शास्त्र सम्बन्धी का ज्ञान, राग की मन्दता सम्बन्धी की क्रिया, वह सब वास्तव में परलक्ष्यी तो वह सब भाव, जीवस्वभाव को उससे सहायता नहीं। उसका भेद

करना, ऐसा जो भेदविज्ञान, विज्ञान **जिसका मूल उत्पत्तिकारण है, ऐसी अपने आत्मा की अविचल अनुभूति...** आहाहा! पर के लक्ष्यवाला ज्ञान और पर के लक्ष्यवाली राग की मन्द क्रिया, वह सब जीव का वास्तविक स्वभाव नहीं। आहाहा! उस चैतन्यज्योति की बलिहारी है, परन्तु इसे बैठता नहीं। यह भटका भटक... भटका भटक... यहाँ से होगा और यहाँ से... किसी को समझा दूँ, किसी का ऐसा कर दूँ, दूसरे के पास से ले लूँ, ऐसा करूँ, दान कराऊँ दूसरे से, बहुत कराऊँ तो फिर मुझे लाभ (होगा)। धूल में भी नहीं, सुन न अब। मर जायेगा सिर पीटकर। करोड़ों रुपये यहाँ खर्च करा दूँ, यहाँ मन्दिर बनवा दूँ, उसके पास यह यात्रा करा लूँ, यहाँ करा लूँ, इतनी पुस्तकें बना दूँ तो कुछ अन्दर (लाभ होगा)।

मुमुक्षु : दसवाँ भाग आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी भाग आता नहीं। उससे लाभ माने, वह मिथ्यात्व का भाग आता है।

मुमुक्षु : दलाली हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व की दलाली है। उसकी दलाली में कौन रहे? वह प्रसन्न हो और स्वयं हो ऐसा?

एक ही बात। भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकमूर्ति प्रभु। बाद की गाथा में उपयोग कहेंगे। '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं**' भगवान सर्वज्ञ ने तो उपयोगमय चैतन्य को देखा है। और तू यह राग और इससे होगा... इससे होगा... कहाँ लगा तू यह? आहाहा! समयसार की रचना वह कोई रचना! गजब! कहो, समझ में आया? आहाहा! और वह भी सादी भाषा से। उसमें कुछ बहुत व्याकरण और संस्कृत पढ़ा हो तो ही यह ज्ञात हो, ऐसा कुछ नहीं। भगवान चैतन्यस्वरूप है या नहीं? वह चैतन्य तो उपयोग दर्शन-ज्ञानमय स्वरूप है। तो उस भगवान आत्मा में राग जो दया, दान, व्रत, भक्ति, वह राग उसमें कहाँ से आया? यदि उसका हो तो निकल कैसे जाता है? सिद्ध होने पर रहता नहीं; इसलिए उसका नहीं, इसलिए उससे लाभ होता नहीं।

मुमुक्षु : .... इकट्ठा रहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी इकट्ठा नहीं। मानता है। इकट्ठा था कब? भिन्न-भिन्न-भिन्न राग हो, परन्तु त्रिकाल ऐसा रहता है? त्रिकाल ज्ञाता-दृष्टा रहता है। तथापि राग कृत्रिम नया-नया होने पर भी मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ—ऐसा मानता है। भ्रम है, भ्रम। आहाहा! समझ में आया?

न्याय से, लॉजिक से, वस्तुस्थिति से कुछ इसे समझना पड़ेगा या नहीं? ऐसा का ऐसा मान बैठे, ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? उसके भाव में भासन होना चाहिए न कि यह... यह... यह... यह क्या है? समझ में आया? भाव में भासन हुए बिना माना, वह माना है ही नहीं। परन्तु वह मान्यता ही किसकी? भासन बिना... यह तो आ गया अपने। जाने बिना श्रद्धा किसकी? खरगोश के सींग की है। खरगोश-ससला के सींग।

अस्तिरूप चैतन्य जो ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, उसे यहाँ रागादि स्वरूप है ही नहीं। तो जिस स्वरूप नहीं, उस स्वरूप से आत्मा को लाभ हो? जिस स्वरूप से है, उस स्वरूप से आत्मा से लाभ होता है। समझ में आया? बड़ी उलझन डाल दी। लोगों को इतनी डाल दी है, वह बेचारा ऊँचा आवे नहीं। ऐसा करूँगा... ऐसा करूँगा... ऐसा किया... फलाना कर दिया, इतने लोगों का कर दिया। लाखों लोगों को समझाया। यह सब थे बेचारे फलानी जाति ऐसी थी, धर्म बिना के। मैंने उन्हें समझाया। कुछ लाभ मिलेगा? धूल भी नहीं, सुन न अब। सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आवे, वह पुण्यबन्ध है। मानता है कि दूसरे को धर्म प्राप्त कराया। क्या धर्म प्राप्त करावे? तू ही पाया नहीं, वहाँ प्राप्त कराने में निमित्त कहाँ से हुआ? दूसरे को लाभ हो तो मुझे लाभ होगा, ऐसा तो मानता है। उसकी पर्याय में लाभ हो तो मुझे थोड़ा लाभ तो मिलेगा न? प्रवचन प्रभावना का लाभ (मिलेगा)। प्रभावना की व्याख्या कर तू। तुझमें विकल्प आया शुभराग, बस! इतनी मर्यादा। वह पुण्यबन्ध का कारण है। अब दूसरे समझे, न समझे, उससे लाभ-अलाभ है, यह तो तीन काल में है नहीं। परन्तु उसी और उसी में फँसकर, उसी और उसी में मान रहा है कि अपने कल्याण करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : इतनी अधिक निश्चय की बात.... प्रभावना....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन प्रभावना करता था? ऐई! हमारे कहते हैं कि इतनी अधिक यदि निश्चय की बातें करोगे तो फिर यह कोई प्रभावना करेंगे नहीं। उसे भाव आयेगा, परन्तु उसको अपना मानेगा नहीं। तब उसे व्यवहार प्रभावना कहा जाता है। अपना माने नहीं, तब निश्चय हुआ। तब वह राग व्यवहार प्रभावना का पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! इसने भी ऐसी भूल खायी है न! कहीं... कहीं... कहीं... कहीं... छल-छल निकालकर खड़ा रहा है।

यहाँ व्याख्या कैसे होती है यह? **किसी भी प्रकार से भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है...** समझ में आया? ऐसे सब विकल्प, वह वाणी कि दूसरे समझे, न समझे, उन सबसे आत्मा भिन्न है, ऐसा भेदविज्ञान। आहाहा!

मुमुक्षु : उघाड़ा सत् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उघाड़ा सत् है। नग्न सत् है। उघाड़ा सत् ऐसा ही होता है। यह तो नागा बाबा बादशाह हैं मुनि। नग्न सत्य, वस्तु सत्य है यह। समझ ले इस प्रकार से, वरना तेरा निस्तारा नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। बाकी तू मर जा क्रियाकाण्ड करके, सूखकर, स्त्री-पुत्र छोड़े हैं और अपवास किये हैं। लंघन किया है।

भगवान आत्मा अकेला चैतन्य का दल, ऐसे अस्तित्व का जहाँ भान हुआ, वहाँ उसे अनुभूति हुई। उस अनुभूति का मूल उत्पत्ति का कारण कौन? वह अनुभूति, आनन्द का अनुभव, उसकी उत्पत्ति का मूल कारण कौन? दया, दान आदि विकल्प से भिन्न पड़कर भेदविज्ञान जिसकी उत्पत्ति का कारण, ऐसी अनुभूति। कहो, वजुभाई! है इसमें? है या नहीं इसमें? बड़े पत्थर बहुत जमाये हैं इसने। बड़े इंजीनियर थे न। इनके गाँव में राज में इंजीनियर थे। राजा भी इनसे अधिक सिरफोड़िया था। बड़े दस-दस लाख के मकान बनावे। वह स्वयं होशियार था। यह उसके इंजीनियर थे। सेठी! ७५० वेतन मिलता था तब, हों! पाँच-छह वर्ष पहले। अपने पण्डितजी के भाई यह वजुभाई। इनके पुत्र की पुत्री... छोड़ दिया। फिर अवस्था हुई, इसलिए छोड़ दिया। ५५ वर्ष हुए, इसलिए छोड़े न, क्या करे बाद में? कहो, समझ में आया इसमें? यह सरकार देती थी,

हों! ७५० का छोड़ा तो १२०० वेतन देते थे। मासिक १२००। फिर ५५ (वर्ष) हुए। पतला शरीर, फिर कहाँ तक खींचना? कहो, समझ में आया इसमें? बात तो सच्ची है या नहीं?

यहाँ तो कहते हैं, बापू! यह राग की मजदूरी छोड़ न, भाई! बाहर की तो कौन करता है? कैसी भाषा प्रयोग की है, देखो न! **किसी भी प्रकार से भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है...** किसका? अचल अपने आत्मा की अनुभूति का मूल। यह भेद करने से जो उत्पत्ति हो अनुभूति, उसे वह आत्मा प्राप्त करता है। ऐसी बात है। बराबर है? रामस्वरूपजी! पहले इसकी कला, इसकी पद्धति भी ख्याल में न ले, उसकी उत्पत्ति कैसे (हो), इसे? आहाहा!

वे ही पुरुष दर्पण की भाँति अपने में प्रतिबिम्बित हुए... भाषा देखो! **दर्पण की भाँति अपने में प्रतिबिम्बित हुए...** कौन प्रतिबिम्बित हुए? **अनन्त भावों...** राग, द्वेष, पुण्य, पाप, विकल्प, शरीर, वाणी, मन की क्रिया, सब परद्रव्य के अस्तित्व की पर्याय, **अनन्त भावों के स्वभावों से निरन्तर विकाररहित होते हैं...** अर्थात् उसका ज्ञान करने पर भी वह (ज्ञान ज्योति) विकारवाली नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

दर्पण की भाँति अपने में प्रतिबिम्बित हुए अनन्त... दर्पण में प्रतिबिम्बित हुए भाव—स्वच्छता दर्पण की है, इसलिए वह दर्पण मैला है, ऐसा नहीं। उसी प्रकार भगवान चैतन्य दर्पण उस-उस काल में, उस-उस प्रकार के राग-द्वेष विकल्प और क्रोधादि, शरीरादि की अवस्था को जानता ज्ञान, उस ज्ञान में प्रतिबिम्ब ज्ञेयों के भाव अपने ज्ञानस्वरूप परिणमना अपने स्वभाव से ऐसा ज्ञान का स्वभाव है। इसलिए वह विकाररूप नहीं होती। वह ज्ञानज्योति कहीं विकाररूप नहीं होती। दर्पण में विष्टा दिखाई देती है, कहीं विष्टारूप हुआ नहीं। है? आम—केरी हो पचास-सौ। ऊँचे-ऊँचे आम पड़े हों। दर्पण में ज्ञात हों। वह आम है? दर्पण की स्वच्छता है। आहाहा! आम जानने से दर्पण मैला नहीं हुआ। कोयला ज्ञात होने से, कोयला-कोयला पच्चीस मण, ऐसे दस मण (दिखाई दे तो) वह दर्पण मैला नहीं हुआ। उसी प्रकार आत्मा—दर्पण पुण्य-पाप के मैलरूपी कोयलों को जानता हुआ ज्ञान, मैलरूप नहीं हुआ। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य की कथन की पद्धति, वह ... एकदम! उसमें निर्दय रीति से, आया था या नहीं? आहाहा!

भाई! एक बात तो बराबर पक्की तो कर। पक्की तो कर कि जो पकी हुई कभी शिथिल न पड़े। भगवान आत्मा की उसे प्राप्ति करनी हो, अर्थात् आनन्द की प्राप्ति करनी हो, अर्थात् कि सुखी होना हो, स्वतन्त्र, स्वतन्त्ररूप से अपने आनन्द की प्राप्ति होती है, ऐसा होना हो तो इसे रागादि से भेदज्ञान करके अनुभूति करना, वह इसका उपाय है। रागादि का भेदविज्ञान करके, भेद पाड़कर अनुभूति करना, वह इसका उपाय है। कहो, समझ में आया इसमें?

प्रतिबिम्बित हुए... अर्थात् कि **दर्पण की भाँति अपने में प्रतिबिम्बित हुए...** दर्पण कुछ मैला होता नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा **अपने में प्रतिबिम्बित हुए अनन्त भावों के स्वभावों से...** भानरूप से हुआ, तथापि वह **विकाररहित होते हैं...** उसका ज्ञान होने से कहीं ज्ञान मैला नहीं होता। आहाहा! खबर है, हों! पन्द्रह मिनिट की देर है। किसी को हो जाये ८ से ९ था न कल। आज सवा आठ से सवा नौ है। ऐसा कहा था लड़कों को। याद रखना कदाचित् नौ को पूरा जाये नहीं। समझ में आया?

ज्ञान में जो ज्ञेयों के आकार प्रतिभासित होते हैं,... भाषा क्या करे? वास्तव में तो ज्ञान का आकार है। वह ज्ञेयों का आकार है ही नहीं। परन्तु निमित्त से कथन है। **ज्ञान में जो ज्ञेयों के आकार प्रतिभासित होते हैं,...** मानो ज्ञेय का स्वरूप यहाँ आता हो। वह तो एक समझाने की शैली है। **उनसे रागादि विकार को प्राप्त नहीं होते।** कहो, समझ में आया? इसका अर्थ ऐसा है कि जिसका ज्ञानस्वरूप चैतन्य ध्रुव है, ऐसा जिसके अस्तित्व के ऊपर दृष्टि गई है, ऐसे महान अस्तित्व के ऊपर दृष्टि हुई है, उसके ज्ञान में रागादि ज्ञात होने पर भी ज्ञान की पर्याय मैंली नहीं होती। क्योंकि उसके ज्ञान के स्व के लक्ष्य से वह ज्ञान हुआ है। अज्ञानी को राग के ऊपर लक्ष्य से अकेला राग का ज्ञान होने से, ज्ञान की पर्याय उसे निर्मल भासित नहीं होती। क्योंकि स्व के लक्ष्य से नहीं होता। पर के लक्ष्य से होने पर दया, दान, व्रत के परिणाम को देखता वह ज्ञान मलिन दिखाई देता है, मैला दिखता है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २०-२२

ननु कथमयमप्रतिबुद्धो लक्ष्येत –

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं पर-दव्वं सच्चित्ताचित्त-मिस्सं वा।।20।।

आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि।।21।।

एयं तु असब्भूदं आद-वियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो।।22।।

अहमेत-देतदहं अहमेतस्यास्मि अस्ति ममैतत्।
अन्यद्यत्पर-द्रव्यं सचित्ताचित्त-मिश्रं वा।।20।।

आसीन्मम पूर्व-मेतदेतस्याह-मप्यासं पूर्वम्।
भविष्यति पुनर्ममैत-देतस्याह-मपि भविष्यामि।।21।।

एतत्त्वसद्भूत-मात्मविकल्पं करोति सम्मूढः।
भूतार्थं जानन्न करोति तु तमसम्मूढः।।22।।

यथाग्निरिन्धनमस्तीन्धनमग्निरस्त्यग्नेरिन्धनमस्तीन्धनस्याग्निरस्ति, अग्नेरिन्धनं पूर्वमासी-दिन्धनस्याग्निः पूर्वमासीत्, अग्नेरिन्धनं पुनर्भविष्यतीन्धनस्याग्निः पुनर्भ-विष्यतीतीन्धन एवासद्भूताग्निविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धः कश्चिल्लक्ष्येत, तथाहमेतद-स्म्येतदहमस्ति ममैतदस्त्ये-तस्याहमस्मि, ममैतत्पूर्वमासीदेतस्याहं पूर्वमासं, ममैतत्पुन-र्भविष्यत्येतस्याहं पुनर्भविष्यामीति परद्रव्य एवासद्भूतात्मविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धो लक्ष्येतात्मा।

नाग्निरिन्धनमस्ति नेन्धनमग्निरस्त्यग्निरग्निरस्तीन्धनमिन्धनमस्ति नाग्नेरिन्धनमस्ति नेन्धनस्या-ग्निरस्त्यग्नेरग्निरस्तीन्धनस्येन्धनमस्ति, नाग्नेरिन्धनं पूर्वमासीन्नेन्धनस्याग्निः पूर्वमासीदग्नेरग्निः पूर्वमासीदिन्धनस्येन्धनं पूर्वमासीत्, नाग्नेरिन्धनं पुनर्भविष्यति नेन्धनस्याग्निः पुनर्भविष्यत्यग्नेरग्निः पुनर्भविष्य-तीन्धनस्येन्धनं पुनर्भविष्यतीति कस्यचिदग्नावेव सद्भूताग्निविकल्पवन्नाहमेतदस्मि

नैतदहमस्त्यहमहमस्म्येतदेतदस्ति न ममैतदस्ति नैतस्याहमस्मि ममाहमस्म्येतस्यैतदस्ति, न ममैतत्पूर्वमासीन्नैतस्याहं पूर्वमासं ममाहं पूर्वमासमेतस्यैतत्पूर्वमासीत्, न ममैतत्पुनर्भविष्यति नैतस्याहं पुनर्भ-विष्यामि ममाहं पुनर्भविष्याम्येतस्यैतत्पुनर्भविष्यतीति स्वद्रव्य एव सद्भूतात्म-विकल्पस्य प्रतिबुद्धलक्षणस्य भावात् ।।20-22।।

अब शिष्य प्रश्न करता है कि अप्रतिबुद्ध को कैसे पहिचाना जा सकता है? उसका चिह्न बताइये; उसके उत्तररूप गाथा कहते हैं :-

मैं ये अवरु ये मैं, मैं हूँ इनका अवरु ये हैं मेरे।
जो अन्य हैं पर द्रव्य मिश्र, सचित्त अगर अचित्त वे।।20।।

मेरा ही यह था पूर्व में, मैं इसी का गतकाल में।
ये होयगा मेरा अवरु, मैं इसका हूँगा भावि में।।21।।

अयथार्थ आत्मविकल्प ऐसा, मूढ़जीव हि आचरे।
भूतार्थ जाननहार ज्ञानी, ए विकल्प नहीं करे।।22।।

गाथार्थ : [अन्यत् यत् परद्रव्यं] जो पुरुष अपने से अन्य जो परद्रव्य- [सचित्ता-चित्तमिश्रं वा] सचित्त स्त्रीपुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक अथवा मिश्र ग्रामनगरादिक हैं-उन्हें यह समझता है कि [अहं एतत्] मैं यह हूँ, [एतत् अहम्] यह द्रव्य मुझ-स्वरूप है, [अहम् एतस्य अस्मि] मैं इसका हूँ, [एतत् मम अस्ति] यह मेरा है, [एतत् मम पूर्वम् आसीत्] यह मेरा पहले था, [एतस्य अहम् अपि पूर्वम् आसम्] इसका मैं भी पहले था, [एतत् मम पुनः भविष्यति] यह मेरा भविष्य में होगा, [अहम् अपि एतस्य भविष्यामि] मैं भी इसका भविष्य में होऊँगा- [एतत् तु असद्भूतम्] ऐसा झूठा [आत्मविकल्पं] आत्मविकल्प [करोति] करता है वह [संमूढः] मूढ़ है, मोही है, अज्ञानी है; [तु] और जो पुरुष [भूतार्थं] परमार्थ वस्तुस्वरूप को [जानन्] जानता हुआ [तम्] वैसा झूठा विकल्प [न करोति] नहीं करता वह [असंमूढः] मूढ़ नहीं, ज्ञानी है।

टीका : (दृष्टान्त से समझाते हैं :) जैसे कोई पुरुष ईंधन और अग्नि को मिला हुआ देखकर ऐसा झूठा विकल्प करे कि ''जो अग्नि है, सो ईंधन है और ईंधन है, सो अग्नि है; अग्नि का ईंधन है, ईंधन की अग्नि है; अग्नि का ईंधन पहले था, ईंधन की अग्नि पहले थी; अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा, ईंधन की अग्नि भविष्य में होगी;'' - ऐसा

ईंधन में ही अग्नि का विकल्प करता है, वह झूठा है, उसमें अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) कोई पहिचाना जाता है, इसी प्रकार कोई आत्मा परद्रव्य में असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे कि 'मैं यह परद्रव्य हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप है; यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं हूँ; मेरा यह पहले था, मैं इसका पहले था; यह मेरा भविष्य में होगा, मैं इसका भविष्य में होऊँगा;'' – ऐसे झूठे विकल्पों से अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) पहिचाना जाता है।

और, ''अग्नि है, वह ईंधन नहीं है; ईंधन है, वह अग्नि नहीं है,–अग्नि है, वह अग्नि ही है; ईंधन है, वह ईंधन ही है; अग्नि का ईंधन नहीं, ईंधन की अग्नि नहीं–अग्नि की अग्नि है, ईंधन का ईंधन है; अग्नि का ईंधन पहले नहीं था, ईंधन की अग्नि पहले नहीं थी–अग्नि की अग्नि पहले थी और ईंधन का ईंधन पहले था; अग्नि का ईंधन भविष्य में नहीं होगा, ईंधन की अग्नि भविष्य में नहीं होगी – अग्नि की अग्नि ही भविष्य में होगी, ईंधन का ईंधन ही भविष्य में होगा;'' – इस प्रकार जैसे किसी को अग्नि में ही सत्यार्थ अग्नि का विकल्प हो, सो प्रतिबुद्ध का लक्षण है; इसी प्रकार ''मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है – मैं तो मैं ही हूँ, परद्रव्य है, वह परद्रव्य ही है; मेरा यह परद्रव्य नहीं, इस परद्रव्य का मैं नहीं–मेरा ही मैं हूँ, परद्रव्य का परद्रव्य है; यह परद्रव्य मेरा पहले नहीं था, यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था – मेरा मैं ही पहले था, परद्रव्य का परद्रव्य पहले था; यह परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा, इसका मैं भविष्य में नहीं होऊँगा – मैं अपना ही भविष्य में होऊँगा, इस (परद्रव्य) का यह (परद्रव्य) भविष्य में होगा।'' – ऐसा जो स्वद्रव्य में ही सत्यार्थ आत्मविकल्प होता है, वही प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) का लक्षण है, इससे ज्ञानी पहिचाना जाता है।

भावार्थ : जो परद्रव्य में आत्मा का विकल्प करता है, वह तो अज्ञानी है और जो अपने आत्मा को ही अपना मानता है, वह ज्ञानी है – यह अग्नि-ईंधन के दृष्टान्त से दृढ़ किया है।

गाथा – २०-२२ पर प्रवचन

अब शिष्य प्रश्न करता है कि अप्रतिबुद्ध को कैसे पहिचाना जा सकता है? उसका चिह्न बताइये;... लक्षण। यह चिह्न-चिह्न। निशान-निशान। ऐंधाण कहते हैं तुम्हारे ? चिह्न। हमारे (गुजराती में) ऐंधाण कहते हैं। ऐई... उसरूप से जाओ। देखो,

हरी-हरी मंजिल है न, वह उसका मकान। हरी मंजिल है न। मेडी को क्या कहते हैं? मंजिल। वह हरे रंग की मंजिल, उस निशान से चले जाओ। वड दिखता है दूर से वहाँ आगे है, वह निशान-चिह्न। उसी प्रकार इस आत्मा को अप्रतिबुद्ध अज्ञानी है, इसका कोई निशान होगा? लक्षण है? चिह्न है? **उसके उत्तररूप गाथा कहते हैं** - जिसे ऐसी जिज्ञासा है, उसे यह उत्तर दिया जाता है।

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा॥२०॥

आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि॥२१॥

एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो॥२२॥

नीचे हरिगीत

मैं ये अवरु ये मैं, मैं हूँ इनका अवरु ये हैं मेरे।
जो अन्य हैं पर द्रव्य मिश्र, सचित्त अगर अचित्त वे॥२०॥

मेरा ही यह था पूर्व में, मैं इसी का गतकाल में।
ये होयगा मेरा अवरु, मैं इसका हूँगा भावि में॥२१॥

अयथार्थ आत्मविकल्प ऐसा, मूढ़जीव हि आचरे।
भूतार्थ जाननहार ज्ञानी, ए विकल्प नहीं करे॥२२॥

ओहोहो! शैली वह भी शैली! देखो! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सामान्य बात की है। यहाँ और तीन काल के सबके राग को अपना माननेवाला, भविष्य को माननेवाला, ऐसा कहते हैं। कहेंगे, देखो!

टीका - जैसे कोई पुरुष ईंधन और अग्नि को मिला हुआ देखकर.... यह लकड़ी और अग्नि। भाषा देखो! पुण्य-पाप के भाव सब लकड़े जैसे हैं और आत्मा चैतन्य

अग्नि जैसा है। दृष्टान्त ऐसा दिया है। **जैसे कोई पुरुष ईंधन और अग्नि को मिला हुआ देखकर ऐसा झूठा विकल्प करे कि जो अग्नि है, सो ईंधन है...** अग्नि है, वह लकड़ा है। लकड़ा समझे? ईंधन। **ईंधन है सो अग्नि है;...** ईंधन है, वह अग्नि है। भाषा तो देखो! दृष्टान्त भी अमृतचन्द्राचार्य का गजब! सन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने जगत को करूणा करके स्पष्ट बात सादी भाषा में रख दी है। समझ में आया?

अग्नि है, सो ईंधन है और ईंधन है, सो अग्नि है;... पहले साधारण बात की, सामान्य, सामान्य। अग्नि है, वह ईंधन है और ईंधन है, वह अग्नि है। ऐसी सामान्य मान्यता की बात है। अब तीन काल के भेद करते हैं। **अग्नि का ईंधन है,...** अग्नि का ईंधन है और ईंधन की अग्नि है। यह वर्तमान बात की, वर्तमान। वह सामान्य व्याख्या की। पश्चात् वर्तमान। तीन काल का भेद करते हैं। इस **अग्नि का ईंधन है, ईंधन की अग्नि है;...** यह वर्तमान। ईंधन की अग्नि है और अग्नि का ईंधन है, यह सामान्य। सामान्य बात की। पहले वर्तमान कही, पहले सामान्य कही।

अग्नि का ईंधन पहले था,... इस अग्नि का ईंधन पहले काल में था। भूतकाल में। **ईंधन की अग्नि पहले थी;...** ईंधन की अग्नि पहले थी। **अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा...** इस अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा। **ईंधन की अग्नि भविष्य में होगी; - ऐसा ईंधन में ही अग्नि का विकल्प करता है...** भाषा देखो! ऐसे ईंधन में ही अग्नि का विकल्प करे, ऐसी भाषा है, हों! ऐसे जो लकड़े—ईंधन में—अग्नि का विकल्प करे, **वह झूठा है, उसमें अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) कोई पहिचाना जाता है,...** उससे लौकिक मूर्ख है, ऐसा जाना जा सकता है। अप्रतिबुद्ध अर्थात् लौकिक मूर्ख है यह, ऐसा जाना जा सकता है। अब लोकोत्तर मूर्ख की बात करते हैं। अप्रतिबुद्ध का प्रश्न किया है न? ऐसे लक्षण उसका क्या लिया?

उसी प्रकार... अब दृष्टान्त का सिद्धान्त। **कोई आत्मा परद्रव्य में असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे कि...** परद्रव्य में इतनी सामान्य व्याख्या है। शरीर, पुण्य, पाप, दया, दान, विकल्प शुभ-अशुभराग, शरीर, वाणी, क्रिया आदि। **आत्मा परद्रव्य में असत्यार्थ-झूठा आत्म-विकल्प...** आत्मविकल्प अर्थात् मैं आत्मा हूँ, ऐसा मानता है। मैं आत्मा हूँ,

ऐसा। **परद्रव्य में असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे कि 'मैं यह परद्रव्य हूँ,...** देखो! जिसकी श्रद्धा में-ज्ञान में ऐसा आता है कि मैं यह राग, शरीर और कर्म हूँ। देखो! यह उसका लक्षण बताते हैं। अज्ञानी कैसे पहिचाना जाये? अप्रतिबुद्ध कैसे पहिचाना जाये? मूढ़ जीव अज्ञानी कैसे ज्ञात हो? उसमें (दृष्टान्त में) मूढ़ था अग्नि और लकड़े का मूर्ख— लौकिक मूर्ख। यह लोकोत्तर मूर्ख।

यह अस्तित्व सिद्ध करना है न यहाँ? **मैं यह परद्रव्य हूँ,...** पुण्य, पाप, शरीर, वाणी, मन, वह मैं हूँ, मेरे अस्तित्व में है नहीं। उनमें मैं हूँ। **मैं यह परद्रव्य हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप है;...** वे रागादि पुण्य-पाप, वह मेरे स्वरूप है। समझ में आया? यह सामान्य बात की। सामान्य। सामान्य समझे? संक्षेप में—संक्षिप्त। मैं यह पुण्य-पाप, शरीर-वाणी—ऐसा कोई मानता हो तो समझना कि अप्रतिबुद्ध-मूढ़ है वह। कोई ऐसा मानता हो कि यह राग पुण्य है, इससे मुझे लाभ होता है तो समझ कि वह अस्तित्व अपने में है, ऐसा मानता है। समझ में आया?

मैं यह परद्रव्य हूँ अर्थात् पुण्य परिणाम वह मैं हूँ। क्योंकि उससे मुझे लाभ होगा। ऐसा माननेवाला 'मैं परद्रव्य हूँ'—ऐसा मानता है। राग से भिन्न अपने स्वरूप को मानता नहीं। ऐसा अप्रतिबुद्ध पुण्य से मुझे लाभ अर्थात् कि मेरे अस्तित्व का लाभ मुझे पुण्य से होगा, मेरे अस्तित्व का लाभ मुझे पाप से होगा, मेरे अस्तित्व का लाभ सुविधा होगी, उससे होगा। समझ में आया? और असुविधा होगी तो दुःख होगा तो मुझे लाभ आत्मा का होगा। ऐसा परद्रव्य के अस्तित्व से स्वयं अपना 'मैं यह परद्रव्य हूँ'—ऐसा मानता है। और यह परद्रव्य मुझ स्वरूप है। यह परवस्तु मेरे स्वरूप है, मुझसे भिन्न नहीं। राग भिन्न हो? अभी राग भिन्न हो? एक व्यक्ति को पूछा था। द्रव्ययोग और भावयोग किसे कहना? बड़े आचार्य थे, उनसे पूछा था। (संवत्) १९९५ के वर्ष में। इतना कहा, मैंने तो। यह तो साधारण प्रश्न का उत्तर क्या कहते हैं? द्रव्ययोग और भावयोग अभी किसे कहना? अभी भिन्न पड़े नहीं। ठीक! समझ में आया? १९९५ की बात है। पौष कृष्ण १४। आहाहा! अरे! भगवान! यह क्या चलता है अभी!

यहाँ कहते हैं कि... द्रव्ययोग और भावयोग अभी भिन्न नहीं। यहाँ तो यही ऐसा

कहते हैं। उन प्रदेशों का कम्पन और वापस कर्म-ग्रहण शक्ति, ऐसे आत्मा की पर्याय में दो है। द्रव्ययोग एक ओर रखो। यहाँ तो कहते हैं कि वह कम्पन, वह कर्म ग्रहण करने की शक्ति, वह परवस्तु है। उसे ऐसे मानता है कि मैं यह परद्रव्य हूँ। समझ में आया? रागादि मैं हूँ, यह कम्पन प्रदेश का कम्पन होता है। कर्मग्रहण शक्ति ऐसी योग्यता, वह भी वास्तव में आत्मस्वभाव नहीं। वह वास्तव में परद्रव्य है, भाई! क्या कहा, समझ में आया? राग, पुण्य, कर्म और कर्मग्रहण शक्ति की योग्यता और प्रदेश का कम्पन, वह सब वास्तव में स्वद्रव्यस्वरूप नहीं। आहाहा!

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग—पाँचों ही बोल एक भी जीवस्वरूप नहीं। आहाहा! अरे! भगवान! समझ में आया? ये पाँचों ही बन्ध के कारण हैं। ये स्वयं जीवस्वरूप नहीं होते। जीवस्वरूप बन्ध का कारण हो सकता ही नहीं। आहाहा! कहते हैं कि यह अज्ञानी है, ऐसे कैसे पहिचाना जाये? तो कहते हैं कि भाई! तेरे चैतन्यमूर्ति के अतिरिक्त वह वस्तु पर है, उससे लाभ माने तो समझना कि पर को ही अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया? यह सामान्य।

अब मेरा परद्रव्य है। यह वर्तमान। वर्तमान में परद्रव्य राग, पुण्य, कम्पन आदि सब मेरा। परद्रव्य मेरा है। यह मेरा है, भाई! यह प्रदेश कम्पन विकल्प—राग, कर्म, शरीर की अवस्था, वह सब मैं हूँ तो यह है। मैं हूँ तो यह है। ये हैं तो मैं हूँ। मैं हूँ तो यह है, यह है तो मैं हूँ। समझ में आया? मैं यह परद्रव्य हूँ और **मैं यह परद्रव्य हूँ,...** यह सामान्य बात की। अब तीन काल मिलाते हैं। मेरा यह परद्रव्य है और इस परद्रव्य का मैं हूँ। वर्तमान में भगवान ज्ञायकज्योति के अतिरिक्त कम्पन, राग, विकल्प, शरीर, कर्म वे सब यह परद्रव्य, यह परद्रव्य है, वह मैं हूँ। मेरा यह परद्रव्य है और इस परद्रव्य का मैं हूँ—ऐसा माननेवाला अप्रतिबुद्ध अज्ञानी मिथ्यादृष्टि का लक्षण यह है। इसकी दूसरी बात करेंगे, यह वर्तमान की (बात) की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १०, रविवार, दिनांक - २३-१०-१९६६
गाथा - २० से २२, प्रवचन - ८३

यह अधिकार जीव और अजीव का है। जीवपना किसे कहते हैं और अजीवपना किसे कहते हैं? दोनों की भिन्नता की बात इसमें है। भिन्नता अर्थात् जुदाई। उसका दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कोई पुरुष...** लकड़ियाँ, ईंधन अर्थात् लकड़ियाँ। लकड़ियाँ कहते हैं न? **और अग्नि को मिला हुआ देखकर...** अग्नि और लकड़ियाँ - ईंधन को ऐसे मिला हुआ देखकर **ऐसा झूठा विकल्प करे कि 'जो अग्नि है, सो ईंधन है...** अग्नि है, वह लकड़ियाँ... लकड़ियाँ... लकड़ियाँ...। समझते हो न? लकड़ी। और लकड़ी है, वह अग्नि है। यह सामान्य बात।

अग्नि का ईंधन है, ईंधन की अग्नि है;... यह वर्तमान बात। वर्तमान ऐसा मानता है कि अग्नि की लकड़ी है और लकड़ी की अग्नि है। **अग्नि का ईंधन पहले था,...** अग्नि की लकड़ी पहले भी थी। **ईंधन की अग्नि पहले थी;...** पारस्परिक (लेते हैं)। पहले अग्नि लकड़ियाँ की थी, लकड़ियाँ अग्नि की थी। दृष्टान्त इसमें, आत्मा में देंगे। **अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा,...** अग्नि की लकड़ियाँ भविष्य में होंगी। और **ईंधन की अग्नि भविष्य में होगी' — ऐसा ईंधन में ही अग्नि का विकल्प करता है...** जो कोई ऐसे लकड़ी के अग्नि का विकल्प अर्थात् मान्यता करता है, **वह झूठा है,...** क्योंकि अग्नि का स्वरूप ऐसा नहीं है। लकड़ीरूप अग्नि हो, ऐसा कभी नहीं होता। **उससे अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) कोई पहिचाना जाता है,....** उससे लौकिक मूर्ख है, ऐसा पहिचाना जाता है। समझ में आया? यह लौकिक मूर्ख है, ऐसा पहिचाना जाता है।

इसी प्रकार कोई आत्मा परद्रव्य में ही असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे... भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी परद्रव्य में असत्यार्थ (अर्थात्) पुण्य-पाप का राग, शरीर-वाणी-क्रिया, वह सब जड़ लकड़ियाँ हैं। आत्मा चेतन अग्नि है। समझ में

आया? जैसे अग्नि में लकड़ियाँ साथ में देखकर मानता है (कि) अग्नि की लकड़ी और लकड़ी की अग्नि है। इसी प्रकार लोकोत्तर मूढ़ अज्ञानी (मानता है)। वह लौकिक मूढ़ कहा। अब धर्म में मूढ़ जीव। **आत्मा परद्रव्य में ही असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे...** कि मैं यह परद्रव्य हूँ। (यह) सामान्य बात (की है)। मैं पुण्य-पाप के भाव, देहादि की क्रिया, वह मैं यह परद्रव्य हूँ। पुण्य-पाप के भाव, वे पर हैं, वह मैं हूँ। मैं यह परद्रव्य हूँ - ऐसा मानता है। समझ में आया?

मूढ़, जिसकी अधर्मदृष्टि है, जिसे आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं, यह मैं यह शुभ-पुण्य का भाव, यह शरीर, वह सब मैं हूँ। **यह परद्रव्य मुझस्वरूप है;...** यह पुण्यभाव, वर्तमान में पुण्य-पाप के भाव (होते हैं), वह मुझस्वरूप है, ऐसा माननेवाला अप्रतिबुद्ध अज्ञानी मूढ़ है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा क्या चीज़ है, इसकी उसे खबर नहीं है।

'मैं यह परद्रव्य हूँ... रागादि, पुण्यादि, पापादि, शरीरादि मेरे हैं और वह पुण्य-पाप शरीरादि मुझस्वरूप हैं, मेरे स्वरूप हैं। यह अस्ति सिद्ध करना है न? वास्तव में पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म आदि अजीवतत्त्व हैं, अजीव भाव हैं। जीव भाव तो चैतन्य ज्ञान-ज्योति, वह जीव भाव है। उस जीव भाव के साथ जो पुण्य-पाप और शरीर में, अपने साथ है कि यह मैं हूँ और ये मुझस्वरूप हैं - ऐसा जो मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है, उसे तत्त्वदृष्टि की खबर नहीं है। समझ में आया? सामान्य बात की है।

अब वर्तमान—**यह मेरा परद्रव्य है,...** वर्तमान। यह पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, देह-वाणी मेरे हैं। यह सब स्त्री-पुत्र, परिवार, पुण्य-पापभाव, ये मेरे हैं - ऐसा जो मानता है वर्तमान, वह मूढ़ जीव है। सौभागभाई! क्या करना? यह है, उन्हें डाल देना? समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि परन्तु तेरे है ही नहीं। वर्तमान में यह पुण्य और पाप, शरीर, वाणी, कर्म और उनके बाहर के फल, वे सब यह परद्रव्य, यह मेरा परद्रव्य है—ऐसा माननेवाला, उसे स्वचैतन्य ज्ञायकस्वरूप है, इसकी उसे दृष्टि और भान नहीं है, उसे आत्मज्ञान नहीं है। उसे जड़ वह मैं और मैं वह जड़। जड़ वह मैं और जड़ मुझमें - ऐसा माननेवाला अप्रतिबुद्ध मूर्ख लोकोत्तर मूर्ख है। समझ में आया?

यह मेरा परद्रव्य है,... यह,.. यह राग, दया, दान, व्रत, तप, पुण्य, पाप, शरीर, वाणी, मन और कर्म, ये सब पर हैं, वह यह परद्रव्य मेरा है। मेरा यह परद्रव्य है—ऐसा माननेवाला अग्नि की लकड़ी है, ऐसा माननेवाला, यह मेरे हैं—ऐसा मानता है, वह लोकोत्तर मूर्ख है। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ा हुआ हो, नौ पूर्व पढ़ा हुआ हो और कषाय की मन्दता के पंच महाव्रत के परिणाम की क्रिया में हो, परन्तु वह पंच महाव्रत के परिणाम, वह मेरा यह परद्रव्य है। यह राग भाव, वह मेरा यह परद्रव्य है, यह मेरा है, इसमें मेरा अस्तित्व है, इसमें मेरा अस्तित्व है और इस परद्रव्य का मैं हूँ और ये रागादि, पुण्यादि मुझमें है। समझ में आया? यहाँ अस्तित्व की बात है। जीव-अजीव का अस्तित्व। जीव के अस्तित्व में-विद्यमानता में-मौजूदगी में तो ज्ञान-आनन्द और शान्तिस्वरूप वह आत्मा है। वह ज्ञायकस्वभाव चैतन्यज्योति, अंगारा / चैतन्य अंगारा, वह आत्मा है। ऐसा न मानकर पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव से लेकर कर्म का बन्धन और उसके फल, वे सब यह मेरा परद्रव्य है और इस परद्रव्य का मैं हूँ (-ऐसा मानता है)। कपूरचन्दभाई! ऐ... छोटाभाई! क्या है यह? यह क्या कहते हैं? अभी तक पैसे में ऐसे उलझ गये हैं कि कहीं चैन नहीं पड़ती। अन्दर चैन (नहीं पड़ती) भिन्न हूँ, वह कुछ अन्दर खबर नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं, लो! **मैं...** शब्द अन्दर है? ऐ... हिम्मतभाई! जरा बताओ तो सही, इसे पुस्तक में हाथ नहीं आता।

यह मेरा परद्रव्य है,... है शब्द? 'मेरा यह' इसका अर्थ होता है। मेरा यह पुण्य और पाप का भाव, इससे पड़ा बन्धन, इससे मिला संयोगीभाव, संयोगी चीज़, वह **यह मेरा परद्रव्य है,...** ऐसा माननेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि, अधर्मदृष्टि है। अधर्मदृष्टि का अर्थ और क्या हुआ? असत्य को सत्य माना, वह अधर्मदृष्टि हुई या क्या हुआ? पाप हुआ। क्या हुआ? आहाहा!

यह मेरा... शुभ-अशुभभाव, वर्तमान शुभ-अशुभभाव, हों! कपूरभाई! ऐ... छोटाभाई! क्या? यह वर्तमान शुभ-अशुभभाव, यह कमाने के फलने के, दया-दान आदि के जो भाव शुभाशुभ (होते हैं), वह परद्रव्य मेरा है, ऐसा माननेवाला मूढ़ है, अधर्मी है, पापदृष्टि है, दु:खदृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इस परद्रव्य का मैं हूँ;... यह जो पुण्य-पाप, इनका बन्धन और इनका फल, उसका मैं हूँ—ऐसा माननेवाला वर्तमान में, वर्तमान के, पर को अपना मानता है और अपने को पररूप मानता है, वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। चाहे तो मुनि हो, बाह्य से क्रियाकाण्डी जैन का दिगम्बर साधु हो, परन्तु जो वर्तमान उसके पुण्य के परिणाम को यह मेरा है, इसकी मुझमें अस्ति है और इसकी अस्ति मुझमें है, ऐसा माननेवाला लोकोत्तर मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? भाई! कठिन किस प्रकार...

यह दो वस्तुएँ हैं। देखो! एक यह और एक यह। समझ में आया? अब यह कहे कि यह मेरा, और यह कहे कि यह मेरा। यह कहे, यह मुझमें है। सुना न हो तो कठिन लगेगा। भगवान आत्मा चैतन्य ज्योति, चैतन्यबिम्ब प्रभु आत्मा है, उसमें एक पुण्य के विकल्प की अस्ति उसमें नहीं है। उसकी अस्ति में, उसकी विद्यमानता में वह नहीं है, तथापि अनादि से अज्ञानी यह मेरा, **यह मेरा परद्रव्य है,...** वर्तमान शुभ और अशुभभाव तथा वर्तमान उसका बन्धन और उसका यह फल—पैसा, धूल आदि, यह स्त्री-पुत्र परिवार, ये सब **यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं हूँ;...** मैं इस पुण्य-पाप के भाव का हूँ, मैं बन्धन का हूँ, इस स्त्री का हूँ, इस पैसे का हूँ, इस मकान का हूँ, इस कपड़े का हूँ, इस इज्जत का मैं हूँ। गजब बात! समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें? यह गाथा में है। इस गाथा की बात है, किसकी लगायी है यह? गाथा की बात है, यह टीका की है और टीका की है, वह यह है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी आता है। अभी कहाँ आया है परन्तु? अभी बात आने तो दो।

यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं हूँ;... अब इसमें सचित-अचित और मिश्र का प्रश्न आया। यह कहा इसमें आ गया। सचित में स्त्री आदि अचित में गहने आदि, शरीर आदि कर्म आदि, वह अचित और सचित में राग आदि। पुण्य-पाप के भाव, वह सचित अज्ञान है और राग तथा शरीरादि दोनों मैं, वह मिश्र है। मूल पाठ में सचित, अचित और मिश्र है। समझ में आया?

वर्तमान में पुण्य और पाप के भाव जो सचित कहलाते हैं, वे भी मेरे हैं—ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वर्तमान में ये अचेतन कर्म और शरीर जो अचेतन है, वे मेरे हैं—ऐसा मानता है, वह मूढ़ है। गृहस्थ की अपेक्षा से लें तो उसे सचित उसके पुत्र-पुत्री आदि जो आत्मा है, वह मेरा है, वह मानता है, वह मूढ़ है। अचेतन उनके गहने, वस्त्र-कपड़े वे मेरे हैं, यह मानता है, वह अचेत को आत्मा माननेवाला मूढ़ है। मिश्र में वह आत्मा उसके पुत्र आदि और गहने शरीरादि, वह मिश्र होकर यह मेरे हैं, वह मूढ़ जीव है। अब बराबर हुआ। पाठ में सचित, अचित और मिश्र है। धीरे-धीरे चला आता है। गजब बात, भाई!

अहमदाबाद में निकला हो और जवेरी की दुकान दिखी। बाजार में चौक में आती है न? माणेकचौक। जहाँ (देखे वहाँ कहे), यह मेरा घर है, यह मेरी दुकान है और इसका मैं हूँ। इसका मालिक मैं हूँ, वह मूढ़ कहलाता है या नहीं? माणेकचौक में जवेरी की दुकान है। कोई घूमने निकला (और) ऐसे नजर पड़ी। मेरा यह है, मेरी दुकान है यह और इस परद्रव्य का मैं हूँ, इसका मैं मालिक हूँ। इसका मैं हूँ। ऐसा जीव चार गति में स्वतन्त्र घूमता हुआ वहाँ-वहाँ जहाँ-जहाँ वर्तमान... यहाँ अभी वर्तमान की बात है, पुण्य और पाप का भाव हो, वह परवस्तु है, आत्मा की चीज़ है, वह पर की दुकान है, वह अजीव की दुकान है। आहाहा! पुण्य और पाप अजीव की दुकान है। उससे बँधा हुआ कर्म, वह अजीव है, वह अजीव की दुकान है। उसका फल मिला बाहर में सचित-अचित-मिश्र वे सब... समझ में आया? परद्रव्य है, वह अजीव की दुकान है। उस अजीव को **यह मेरा परद्रव्य है,...** मेरा यह अजीव है। पुण्य-पाप, कर्मबन्धन, यह मेरा है और इस परद्रव्य का मैं हूँ। इसका मैं हूँ। मैं पुण्य-पाप का हूँ या मैं कर्म का हूँ, मैं स्त्री का हूँ, मैं पुत्र का हूँ, मैं शरीर का हूँ—ऐसा माननेवाला मूढ़ लोकोत्तर अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कहा जाता है। बालचन्दजी! आहाहा!

सचित रागादि, मिश्र गुणस्थान आदि। गुणस्थान का मिश्रभाव है न? थोड़ा आंशिक। वह भी मेरा है और उसका मैं हूँ, वह भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? गुणस्थान का अंश जो चेतन का है और उसमें रागादि भेद है, वे सब भेद मैं हूँ, **यह मेरा**

परद्रव्य है,... गुणस्थान मेरे हैं, वह मिश्र है और इस परद्रव्य का-गुणस्थान का मैं हूँ... सूक्ष्म बात है। ऐसा अज्ञानी अनादि से वर्तमानरूप से मिथ्यादृष्टिरूप से मान रहा है। आहाहा! ऐ... बालचन्दजी! उस समय आये नहीं थे, नहीं? फाल्गुन शुक्ल में। दो भाई आये थे। समझ में आया? आहाहा!

भाई! जैसा तेरा अस्तित्व जैसे है, उसमें वैसे न मानकर उससे दूसरे प्रकार से अस्तित्व में तेरा स्वीकार और उसके अस्तित्व में अन्दर तुझमें स्वीकार, वही बड़ा मिथ्यादृष्टिपना है। कहो, समझ में आया? इसका नाम ही अधर्मदृष्टि है, इसका नाम अधर्म है।

मुमुक्षु : कथंचित्.....

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् किसका लेना? अकेला अधर्म है। आहाहा! वह पापदृष्टि है, दु:खदृष्टि है, वह दु:ख के गड्ढे में पड़ने की वह दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का... यह पर का, पुण्य-पाप का यह भाव, उसका मैं हूँ, मैं हूँ तो यह पुण्य-पाप हुए, पुण्य-पाप है, उनमें मैं हूँ, मैं हूँ तो पुण्य भाव हुए, पुण्य भाव हुआ तो वह मुझमें है, उसका मैं हूँ—मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म की खबर नहीं है। समझ में आया? कपूरभाई! यह बहुत सूक्ष्म है। आड़ा-टेड़ा स्थूल-स्थूल करके जहाँ हो, वहाँ माना हो उसमें। पहली व्याख्या यह वर्तमान की हुई। वर्तमान की व्याख्या।

अब यह मेरा पहले था। अब भूतकाल (की बात करते हैं) जो कोई ऐसा माने कि पूर्व में शुभभाव था तो मुझे मनुष्यपना मिला तो वर्तमान ठीक है, तो पूर्व के पुण्यभाव को अपना माना, भूतकाल के पुण्यभाव को लाभ में अपना माना, तो ऐसा कहते हैं कि **मेरा यह पहले था,...** यह पुण्यभाव पूर्व में मेरे थे, मैंने किये थे, इससे मनुष्य देह प्राप्त हुआ, इससे मुझे वाणी मिली। मूढ़ है।

मुमुक्षु : .....बिना का था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहाँ आत्मा था। मनुष्य हुआ तो जड़ हुआ। आत्मा कहाँ

हुआ उसमें। समझ में आया? आहाहा! सौभागभाई! यह सूक्ष्म अर्थ होता है। स्थूल अर्थ होवे तो ख्याल में आवे। आहाहा!

भाई! तू चैतन्य प्रभु है न! अकृत्रिम अनादि-अनन्त चैतन्य रसकन्द है। अनादि-अनन्त वीतराग रसकन्द आत्मा है। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का उसका रूप है। उसमें पुण्य-पाप के भाव हुए। गतकाल के पुण्यभाव थे तो मुझे पुण्यबन्धन हुआ। इस प्रकार भूतकाल के भाव की प्रशंसा करता है, अनुमोदन करता है कि यह भाव था तो हमें मनुष्यपना प्राप्त हुआ, मनुष्यपना प्राप्त हुआ तो सुनने को मिला, सुनने को मिला तो धर्म का लाभ हुआ। बात एकदम झूठी है। आहाहा! भाई! यहाँ सुनो तो सही। यह भटका है ऐसे का ऐसा उल्टे रास्ते। आहाहा!

भाई! तेरे अस्तित्व में, प्रभु! तेरे अस्तित्व का लाभ तुझसे होता है या अस्तित्व के लाभ पूर्व का पुण्यभाव किया था न तो भाई! पुण्य करता था तो यह मिला, इसलिए वह मेरा था। मेरा वह पहले था। वह पुण्य पहले मेरा था—मूढ़ है। भाई! तुझे पुण्य का भाव... वह अग्नि लकड़ी की पूर्व में नहीं थी। अग्नि लकड़ी की पूर्व में नहीं थी, इसी प्रकार भगवान चैतन्य पूर्व में भी पुण्यभाव का नहीं था। आहाहा! .....भाई!

अग्नि को और लकड़ी को सम्बन्ध है? भिन्न लकड़ी, अग्नि भिन्न है। दोनों भिन्न हैं। इसी प्रकार भगवान चैतन्य ज्योतिस्वरूप और पुण्य-पाप के भाव आदि पूर्व में थे, वे भी आत्मा के नहीं थे, आत्मा को लाभदायी नहीं थे, आत्मा में नहीं थे। वह तो रागभाव था। उसे ऐसा कहे कि मेरा यह पहले था और पूर्व में मनुष्यभव प्राप्त हुआ था, उसमें पुण्य किया था, उस पुण्य के कारण ऐसा हमें मिला, तो वह पूर्व का पुण्य पहले मेरा था, ऐसा माननेवाला मूढ़, अग्नि को जैसे लकड़ी (पहले थी) मानता है, वैसे चैतन्य को राग और पुण्यवाला भूतकाल की अपेक्षा से मानता है। आहाहा! छोटाभाई! वहाँ कलकत्ता में सुना नहीं होगा, वहाँ अन्दर से। निवृत्ति भी कहाँ से होगी! परन्तु यह अब जाए तो दूसरा सुने। दया करो, व्रत पालो, भक्ति करो, पूजा करो, लो!

भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! भाई! यहाँ तो चैतन्यमूर्ति सदा रहा है न! तेरा अखण्ड चैतन्यरत्न, रत्नाकर—चैतन्यरत्नाकर में कभी भूतकाल में भी वह पुण्य

आत्मा का हुआ नहीं था। तूने माना था कि यह पुण्य मेरा। माने तो चाहे जो माने। आहाहा! समझ में आया? गत काल में यह पहले था, मेरा यह पहले था, यह राग मेरा था, गुणस्थान कोई मिथ्यात्व आदि का गुणस्थान वह मेरा था, इसी प्रकार पूर्व में मेरा पुत्र था, यह मेरी स्त्री थी, हमारे पुत्र था, हमारे यह था, हमारे यह था, पूर्व में यह था; इस प्रकार पूर्व की अवस्थाओं को वर्तमान में ऐसा मानता है कि वह ठीक था तो भूतकाल में वह पर का ही था, ऐसा उसने माना है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

मेरा यह पहले था,... सचित राग, अचित कर्म, मिश्र गुणस्थान और ऐसे सचित, गृहस्थ की अपेक्षा से यह मेरा पुत्र था, यह मेरी स्त्री थी। यह हमारा गुणस्थान था, मिथ्यात्व गुणस्थान वह हमारा था। समझ में आया? उसमें हमने शुभभाव किये, उनके करने से ऊँचे आये हैं। मूढ़ है। उस शुभभाव से ऊँचा तीन काल में ऊँचा नहीं। समझ में आया? तेरा उत्कृष्टपना तो अन्तर आनन्दकन्द के आश्रय से ऊँचापना आता है। उसमें पुण्यभाव के कारण से तू ऊँचा आया है? तू आया कहे तो जड़ आया ऊँचा। क्या करना? मालचन्दजी! गजब भाई!

मुमुक्षु : मालिक होकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : मेरा यह पहले... धूल का भी मालिक नहीं, ऐसा कहते हैं। सुन न! चैतन्य प्रभु आत्मा ज्ञानज्योति, जलहल ज्योति ज्ञ स्वभाव प्रभु! ज्ञ स्वभावी, ज्ञानस्वभावी चैतन्यस्वभाव जिसका त्रिकाल एकरूप स्वभाव। '**सव्वण्हुणआणदिट्ठो**' अब आयेगा। अब आयेगा, हों! आगे देखो! २४वीं गाथा।

भगवान ने तो '**सव्वण्हुणआणदिट्ठो**'। सर्वज्ञ ज्ञान में भगवान ने तो तुझे उपयोगरूप देखा है। इस रागरूप तू कहाँ से हो गया पूर्व में कि यह राग था तो मुझे ठीक हुआ। कहाँ से तुझे ठीक होगा। आहाहा! कैसा है? ज्ञानचन्दजी! यह नौकरी मिली हजार, बारह सौ वेतन अनुकूल होवे तो निवृत्ति मिले, लो! तो लाभ हो। यहाँ बेचारे को सौ रुपये वेतन मिलता हो, दो सौ का वेतन आवे, घर में चार-छह लड़के, उनका निभाव करना या उनसे निवृत्ति लेकर धर्म करना? बड़ा वेतनदार हो, हजार-ग्यारह सौ का वेतन। अब

भाई! उसमें क्या? चार सौ, पाँच सौ महीने में खर्च हो, और पाँच सौ बढ़े, तो निवृत्ति से काम ले सकते हैं। ऐसा है, वैसा है। इतना तो लाभ होगा या नहीं? मलूकचन्दभाई! मूढ़ है? कहते हैं, तेरे परपदार्थ की अनुकूलता से तुझे लाभ होगा अर्थात् परपदार्थ को और आत्मा को एक माना। आहाहा! कैसे होगा इसमें? ऐई! शान्तिभाई! यह सब पैसेवाले हैं। भाई! पैसेवाले हों तो यहाँ निवृत्ति मिली, लो! धूल में भी नहीं, कहते हैं। निवृत्ति उसे कहा ही नहीं जाता। निवृत्ति तो राग से रहित स्वरूप चैतन्यमूर्ति है, उसका दृष्टिभाव करे, तब इसे निवृत्ति मिली—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह कहीं बाह्य के संयोग मिले, इसलिए निवृत्ति मिली है, ऐसा नहीं है। कहो, सौभागभाई!

यह समयसार बहुत थोड़े शब्दों में गागर में सागर भर दिया है। बहुत थोड़े में स्व और पर की एकता क्या और भिन्नता क्या, वह सब इसमें समाहित कर दिया है। बहुत संक्षिप्त शब्दों में समाहित कर दिया है। समझ में आया? सौ वर्ष का भर्तृहरि का कोई नाटक हो तो भी दस से दो में समाहित कर देना हो। रात्रि में दस से नाटक शुरु हो (और) दो बजे पूरा हो जाए। भले ९२ वर्ष की आयुष्यवाला हो या १०० वर्ष का हो, वह कहीं उसे बतलाने के लिये सामने ९२ वर्ष चाहिए? इसी प्रकार यह समयसार नाटक है। आत्मा की अनादि-अनन्त की स्थिति थोड़े शब्दों में, थोड़े काल में बतानी है। आहाहा! सेठी! इसलिए आचार्य ने नाटक नाम दिया है, कारण-हेतु है। कोई भी भर्तृहरि मालवा का महाराजा (होवे), उसका नाटक प्रदर्शित करे तो दस से दो में पूरा हो जाता है। बालक हुआ, विवाह किया, यह हुआ, अमुक हुआ.. अमुक हुआ... उसमें सब समझ गये। दो (बजे) पूरा। इसी प्रकार यहाँ ४१५ श्लोकों (गाथाओं) में थोड़े शब्दों में, थोड़े काल में अनादि-अनन्त आत्मा की भूल और अभूल कैसी है, उसे बतलाना है। इसलिए अमृतचन्द्राचार्य ने नाटक नाम रखा है। अलौकिक सन्तों की कथनी भी अलौकिक! बापू! यह तो थोड़े में हमें बहुत कहना है। चार घण्टे में पूरे जीवन का आदर्श बतलाना है। इसी प्रकार यह ४१५ श्लोक में... ४१५ हैं, इनमें आत्मा का विपरीत कैसे मानता था और अविपरीत कैसे जाने, उसका पूरा समास कर देना है। समझ में आया?

मेरा यह पहले था,... तेरे चैतन्यस्वभाव में यह मेरा था, यह आया कब? कब आया? राग मेरा पहले था, यह कर्म मैंने बाँधा न... भाई! अपने अच्छा कर्म बाँधेंगे न! पूर्व में बाँधा था न, तो यह मिला, लो! ऐसे अभी बहुत कहते हैं, अभी बातें करते हैं। पूर्व में पुण्यकर्म बाँधा तो (यह मिला इसलिए) तुम पुण्य का निषेध मत करो। यह पूर्व में पुण्य बाँधा था तो यह सब मिला, सुनने का मिला। वह मूढ़ जीव पूर्व के पुण्य को 'मेरा' मानता है। आहाहा! समझ में आया?

वर्तमान भी संयोग मिले, उनसे मुझे लाभ होगा, (ऐसा) माननेवाला संयोग को ही आत्मा मानता है। यह वाणी आदि मिली या संयोग मिले, उनसे मुझे लाभ होगा, ऐसे संयोग को अजीव को अर्थात् जीवस्वभाव जिसमें नहीं है, उन्हें जीव मानता है। समझ में आया? सेठिया! वर्तमान में भी ऐसा कोई माने कि यह वाणी और संयोग मिला, समवसरण मिला तो मुझे लाभ (होता है), तो वर्तमान में उस अजीव को जीव मानता है। तेरा जीवस्वभाव वहाँ नहीं और उसके कारण जीवस्वभाव प्राप्त होता नहीं। ज्ञानचन्दजी! क्या करना? तेरी तुझे खबर नहीं? स्वतन्त्र चैतन्यज्योति विराजमान भगवान आत्मा है, उसे तू पर के किसी भी आश्रय से लाभ मानने जा, वहाँ तेरा खून हो जाता है। तेरी प्रभुता लुट जाती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तू चैतन्यमूर्ति प्रभु है! अन्तर परमेश्वर ही तू साक्षात् चिदानन्द परमेश्वर है। ऐसे परमेश्वर को भूतकाल के किसी पुण्य के कारण यह सामग्री मिली, इसलिए पुण्य ठीक था, (ऐसा मानने में) तेरी प्रभुता लुट जाती है। आहाहा! शशीभाई!

सचित-अचित और मिश्र सब लेना, हों! भूतकाल का। समझ में आया? रागादि... भूतकाल में इस परद्रव्य का सिद्ध का ध्यान का विकल्प किया हो न? सिद्ध ऐसे थे, ऐसा विकल्प किया। उससे लाभ होता है, ऐसा माना है, वह परद्रव्य को ही आत्मा मानता है। आहाहा! पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म है, हों! माँग... माँग में पाड़े, यह तो बाल-बाल में मोती पिरोते हैं।

भाई! तेरे अस्तित्व की तुझे खबर नहीं है। तेरे अस्तित्व में क्या है? और तेरे अस्तित्व में क्या नहीं? इसके भान बिना इस चैतन्य को धर्म नहीं होता। समझ में

आया? पहले तो ऐसा सुनने को ही नहीं मिलता। ऐई... जाओ पैसेवाले को पैसा खर्चो... उसको कहे मन्दिर दो-पाँच बना दो, उसको कहे कि पूजा कर डालो, दस लाख खर्च करके यात्रा कर डालो। नहीं, नहीं, भाई! यह पुण्यभाव और इसके संयोग की क्रिया, वह आत्मा की नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कितना समाहित किया है! सचित, अचित, मिश्र, यह गाथा में रह गया है, वह इसमें टीका में नहीं डाला परन्तु इसका विस्तार ले लेना। पाठ में है न? पहले गाथा देखो न!

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा॥२०॥

यह श्लोक है, ऐसा ही परमात्मप्रकाश में है। समझ में आया? वहाँ अधिक विस्तार है, टीका में बहुत विस्तार किया है, अधिक किया है, इससे अधिक वहाँ किया है, सचित, मिश्र वहाँ अधिक किया है, कहो समझ में आया इसमें?

मेरा यह पहले था,... रागादि, कर्मादि, संहनन आदि। अभी कहते हैं न? मजबूत संहनन होवे तो दया पाली जा सकती है। हिंसा-धर्मी के सामने खड़ा रहा जा सकता है। एकदम निर्बल, कायर हो, वे खड़े नहीं रह सकेंगे? सामने वह हिंसक जीव जोर करके आया हो! शरीर मजबूत चाहिए, ऐसा चाहिए तो अपने अहिंसा पालन कर सकेंगे, नहीं तो नहीं पालन कर सकेंगे। मूढ़ है? यह कहाँ से लाया? शरीर ऐसा होवे तो हम अहिंसा में खड़े रह सकेंगे, यह बात है? शरीर की स्थिति से अहिंसा में रह सकेंगे, ऐसा है? भगवान आत्मा रागरहित स्वरूप की दृष्टि की स्थिरता में अहिंसा में रह सकेगा। उसे पर की बिल्कुल अपेक्षा है नहीं। बहुत से ऐसे गप्प मारते हैं। वह कहे, आहाहा! बहुत अच्छी बात करते हैं।

भाई! शरीर मजबूत चाहिए। अरे! बोरड़ी में... बोरड़ी होती है न? बोरड़ी समझते हो? बोर.. बोर.. छोटे-छोटे बोर होते हैं, बोरड़ी में तो बोर पकते हैं, वहाँ आम पकेंगे? इसी प्रकार यह निर्बल स्त्री और ऐसी स्त्रियों को तुम रखो, उनमें राजकुमार कहीं अच्छे पकेंगे? अच्छा तैयार करो। स्त्रियों को शिक्षण देकर तैयार करो कि जिससे इनके... क्या कहलाता है? लड़का, फरजन। भूल जाते हैं, भाई! इनका फरजन अच्छा

पके। बोरड़ी में आम पकते होंगे? बोरड़ी-बोरड़ी छोटे बोर होते हैं न? वहाँ आम पकेंगे? आम लटकते होंगे? इसी प्रकार जिसका शरीर निर्बल, स्त्री का बिना ठिकाने का, वहाँ कोई उत्तम पुरुष पकते होंगे? बनाओ शरीर को अच्छा। मूढ़ है। शरीर को अच्छा बनाने में आत्मा कहाँ से अच्छा होता होगा? कौन बना सकता है? ऐसे के ऐसे गप्प चलाते हैं। ऐ... कपूरभाई! व्यायाम करके ऐसे मजबूत बनाओ। ऐसा करो, वैसा करो, अमुक करो। तुम्हारे आता होगा या नहीं, उसमें भी कहीं? कहाँ गये? अभी नहीं आये होंगे। काम में होंगे। लड़के आये थे न? ....कुछ कसरत होनेवाली है न! आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया?

शरीर ऐसा करना चाहिए। यहाँ पुण्य अच्छा बाँधोगे तो शरीर अच्छा मिलेगा। मजबूत मिलेगा। मजबूत मिलेगा तो अहिंसा के सामने टिक सकेंगे। अपने को निभना हो तो सब साधन भी मजबूत चाहिए। तो क्या होगा? धर्म टिक सकेगा। अरे! मूढ़ है? धर्म तो आत्मा के स्वभाव के आश्रय से टिक सकता है। संयोग के आश्रय से टिक सकता है? समझ में आया? ऐसी शल्य होती है कि उस शल्य की इसे खबर नहीं होती। समझ में आया?

मेरा यह पहले था,... बापू! शरीर अच्छा मिला था, लक्ष्मी-बक्ष्मी अच्छी मिली थी तो निवृत्ति से हमने धर्म किया, पुण्य किया है, लो! समझे? इसलिए हमें यह सब फला है। वह इस प्रकार पर को अपना मानता है।

मैं इसका पहले था। मैंने पुण्य किया था, मैंने रजकण बाँधे थे, कर्म हमने बाँधे थे। हमने बाँधे ऐसे, देखो! हमें यह मिले हैं। तब हम निवृत्ति से काम लेते हैं। मूढ़ है? निवृत्ति कैसी तेरे? निवृत्ति तो रागरहित की अनुभवदृष्टि कर, तब निवृत्ति कहलाती है। उस निवृत्ति में बाह्य साधन की बिल्कुल अपेक्षा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई यह! ऐसी बातें भगवान जगत के समक्ष खुली रखते होंगे साधु? देखो! नागा बादशाह है। खुली रखते हैं, खुले आम है। नहीं तो अप्रतिबुद्ध मूर्ख है। पढ़ा-गुना और क्रियाकाण्ड करे तो भी बड़ा मूर्ख है, ले!

चैतन्य भगवान ज्ञानज्योति प्रभु परमात्मा! उसे कुछ भी पूर्व के और वर्तमान में

कुछ भी अन्दर घुसायेगा या इससे लाभ हुआ और इससे लाभ होगा, मूढ़ है। मर जाएगा। चार गति में भटकेगा। चैतन्य को भिन्न नहीं कर सकेगा। आहाहा! ऐ... कपूरभाई! ऐसा तो सब सुनने को मिलता नहीं, वहाँ तुम्हारे कलकत्ता में कहाँ मिलता था? निवृत्त मुश्किल से एक घण्टे जाए कभी। दे वह ऊपर दिया हो... ऐसा करो.. ऐसा करो... ऐसा करो... करो... ऐसा करो... कोयला सुधारो। व्यवहार सुधारो ऐसा। कोयला सफेद करो। कोयला सफेद नहीं होगा। (अग्नि में) जला तो सफेद होगा। अब सुन न! आहाहा! कोयला होता है न? सफेद करो। सफेद नहीं होंगे। व्यवहार सुधारो, यह करो, अमुक करो, दया के काम करना, ऐसा करो। धूल भी नहीं कर सकता, अब सुन न! आहाहा! अग्नि रखकर कोयले को जला डाल तो सफेद होगा।

कोई भी बाहर का साधन भूत का, वर्तमान में मेरे आत्मा को मददगार नहीं है और मैं उसमें नहीं हूँ, ऐसा जला, रख अग्नि अन्दर से। समझ में आया? पैसेवाले को बहुतों को ऐसा होता है, हम पैसेवाले हैं, देखो! हमारे कारण धर्म की शोभा है। सौ-पचास गरीब लोग बैठे हों, तेरे लाख लोग बैठे हों परन्तु हम दो-पाँच-दस करोड़वाले बड़े आगे बैठे हों तो कितनी शोभा! एक लाख रुपये, दो लाख, पाँच लाख... करो चन्दा। पाँच लाख और एक रुपया। वह कहे दस लाख, वह कहे पन्द्रह लाख, लो!

यह कहते हैं कि ऐसा दृष्टान्त भी मिलना कठिन है, परन्तु होवे तो यहाँ कुछ नहीं, यहाँ तो ऐसा कहना है। उसकी क्या कीमत? हमारे कारण धर्म की शोभा... बापू! तुम पैसेरहित निर्धन व्यक्ति क्या करोगे? सुन न अब। निर्धन कौन है? आनन्दकन्द का सधन भगवान है। समझ में आया? भगवान स्वधन है, वह कभी निर्धन नहीं है। निर्धन था, इसलिए गरीब है? ऐसा मानना आत्मा को? सधन के लिये अधिक है, ऐसा मानना? मूढ़ पर को अपना मानता है। आहाहा! समझ में आया?

मेरा यह पहले था,... इसमें सब उसमें है, हों! घर का कुछ नहीं है। इसमें से निकालते हैं, यह तो इस शब्द में यह सब है। यह तो अकेले सूत्र पड़े हैं, सिद्धान्त इतने हैं। सिद्धान्त का तो दृष्टान्त दिया जाता है, जिससे उसे सिद्धान्त का भाव समझ में आये। **मैं इसका पहले था;...** यह मैंने पुण्य किया था, मैंने पुण्य किया; परन्तु तू पुण्य करे? पुण्य तो विकार अजीव है। तेरे स्वभाव में पुण्य कब था? समझ में आया? हमने पुण्य

किया था, हमारा वह पुण्य था। हमने शरीर ऐसा उतारा था, समझ में आया? उसका पहले था।

मेरा यह भविष्य में होगा,... बापू! यह पुण्य करूँगा तो भविष्य में सब अच्छे साधन मिलेंगे। इसलिए लाभ मिलेगा। कितने ही ऐसा कहते हैं, भाई! पुण्य करो तो स्वर्ग में जाओगे। भगवान के पास जाया जाएगा और वहाँ समकित प्राप्त होगा। मूढ़! नहीं पायेगा, सुन! सेठी! भारी कठिन बात! **मेरा यह भविष्य में होगा,...** बापू! पुण्य किया, वह व्यर्थ नहीं जाएगा। वह अपने को स्वर्ग देगा। स्वर्ग में से फिर भगवान के पास जाएँगे। मूढ़ है। संयोग से आत्मा को लाभ भविष्य में होगा, ऐसा मानता है? जड़ को तू आत्मा मानता है, आत्मा को आत्मा नहीं मानता। लालचन्दजी! क्या है? तुमने पढ़ा था या नहीं? आहाहा! समझ में आया? भाई! थोड़ा-थोड़ा (समझ में आता है)? सौभागभाई को तो गुजराती बराबर समझ में आती है। यह तो बहुत बार आते हैं न! आहाहा!

अरे... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जंगल में रहे, तब तुमने दूसरे को लाभ देने को लिखने का विकल्प किसलिए किया? अरे! अब सुन न! यह विकल्प हमारा है ही कब? और विकल्प में हमने लाभ कब माना है? सुन न! यह विकल्प हुआ, उसमें पुण्य बँधेगा। उससे भविष्य में तीर्थंकर होऊँगा, इन्द्र होऊँगा, भगवान के पास जाया जाएगा, यह हमने कब माना है? व्यर्थ का आरोप लेता है! हम तो कहते हैं कि हमारे विकल्प का फल भविष्य में आयेगा, ऐसा माननेवाला तो जड़ माननेवाला है। जड़ माननेवाला है, उसे हम चेतन नहीं मानते। आहाहा! ऐ... बजुभाई! अब इसमें कहीं ढीला रखा जाए ऐसा है या नहीं थोड़ा? दो भाग करो, एक व्यक्ति कहता है। सोनगढ़वाले कहते हैं, कानजीस्वामी कहते हैं और हम कहते हैं, उसमें यह थोड़ा सा ऐसा चले और हम थोड़े से ऐसे चलें, फिर इकट्ठे हो जाएँगे। पण्डितजी को कहा, डालो इसमें अपने। कोई ऐसा कहता था, नहीं? पूनमचन्द, तुम्हारा। पूनमचन्द घासीलाल, नहीं? बहुत वर्ष से काले पत्थर का मन्दिर बनाते हैं। वह एक बार कहता था, ऐसा सुना है, हों! कानजीस्वामी थोड़ा ढीला करे और यह लोग थोड़ा ढीला करे तो दोनों इकट्ठे हो जाए। इसमें ढीला किस प्रकार करना?

यहाँ तो स्पष्ट बात है कि कोई भविष्य में मैं यह पुण्य बाँधता हूँ, पुण्य है, वह मेरा वर्तमान माने, वह मूढ़ है और उससे भविष्य में मुझे कुछ लाभ होगा, यह माननेवाला मूढ़ है, ऐसा मानता है, कहते हैं। अब इसमें ढीला किस प्रकार रखना? वाडीभाई! दाँत निकालते हैं हमारे सेठी (हँसते हैं) देखो! यह मीठालाल का (दृष्टान्त) दो, भाई! बहुत मीठा व्यक्ति है। धीरे-धीरे... धीरे-धीरे ऐसे-ऐसे किया करे। मीठालालजी किसे कहे?

भगवान! बापू! तू कौन है? भाई! तेरी चैतन्य की स्वतन्त्रता के अन्तर साधन में पर की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है और यदि पर के साधन से माना तो तूने जड़ को ही आत्मा माना है, ऐसा यहाँ कहते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। जीव-अजीव की सत्ता भिन्न है। जीव की सत्ता चैतन्य ज्ञायक प्रभु है। इसलिए कहते हैं **'सव्वण्हुणआणदिट्ठो'** भगवान आत्मा तो उपयोग लक्षण—ज्ञान-दर्शनस्वरूपवाला आत्मा है। उसे तू भूतकाल में रागवाला, वर्तमान में और भविष्य में राग से और संयोग से लाभ माने तो, भगवान! तूने आत्मा को नहीं माना। आहाहा! उसको ऐसा अच्छा लगे, आहाहा! ऐसा करोगे तो ऐसा होगा। फिर ऐसा करेंगे। फिर दृष्टान्त देते हैं, मोक्षमार्गप्रकाशक का। देखो! कुछ पुण्य करेंगे तो निमित्त मिलेंगे तो समता रहेगी तो और प्राप्त हो जाएगा परन्तु प्राप्त करेगा तो आत्मा से या उससे? समझ में आया? यह मोक्षमार्गप्रकाशक का दृष्टान्त देते हैं।

मेरा यह भविष्य में होगा,... अपने भाव किये होंगे, वे व्यर्थ नहीं जाएँगे। समझ में आया न? व्यर्थ नहीं जाएँगे। भविष्य में अपने को सुविधा मिलेगी। पैसा-बैसा मिले, शरीर निरोगी मिले। लो! शरीर निरोगी मिलेगा तो धर्म होगा। सरोगी मिले तो होगा? इसलिए अपने कुछ करेंगे तो शरीर निरोगी मिलेगा। यह माननेवाला मैं यह भविष्य में मेरा होगा, ऐसा अचेतन को अपना मानता है। सेठी! अब रोग या अरोग, वह तो जड़ की अवस्था है। वह तुझे कहाँ लाभ-अलाभ में नुकसान करती है।

सातवें नरक का नारकी, महापीड़ा जिसकी रौव-रौव नरक में संयोग की प्रतिकूलता का पार नहीं होता। प्रतिकूलता किसने गिनी है? उसमें ही अन्दर उतरता है एकदम। पर

की उपेक्षा करके स्व की अपेक्षा में उतर जाता है। रौव-रौव नरक में सम्यग्दर्शन पाता है। आत्मा के पुरुषार्थ से पाता है। उसे बाहर के प्रतिकूल साधन तो इतने थे। क्या है वह ? साधन तुझे क्या करते हैं ? रोकते हैं ? कोई ऐसा माने कि पाप की प्रतिकूलता के साधनों में आत्मा निवृत्ति नहीं ले सकता तो वह अचेतन को ही जीव मानता है। समझ में आया ? समझ में आया ? शान्तिभाई आवे तो और कुछ होगा। ... कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा ! इसमें इतना भरा होगा ! ? यह तो थोड़ा सा कितना कहलाये ? सचित, अचित और मिश्र भूतकाल के, वर्तमान और भविष्य के। राग से लेकर सब आता है। पश्चात् इसे जितना हल करना हो उतना करे।

मेरा यह भविष्य में होगा,... भाई ! किया नहीं जाएगा। ऐसा और कितने ही कहते हैं। यह किया, पुण्य किया हो न। किया नहीं जाएगा। यह दाडिया का दाड़ी नहीं जाती। पोपटभाई ! दाडिया समझते हो ? मजदूर। यह दिन की दहाड़ी नहीं करते ? मजदूर। तुम्हारे क्या कहते हैं ? यह मजदूरी एक दिन की। एक दिन की दहाड़ी की हो, उसे डेढ़ रुपया या रुपया किया हो, पहले चार आना थे, अब दो रुपये होते हैं। तीन आना, तीना आना था। यहाँ पत्थर का काम करते थे। एक दिन के तीन आना। अब डेढ़-डेढ़ (रुपया) हो गया। ऐसा कहते हैं कि मजदूर की दहाड़ी नहीं जाती। एक दिन की मजदूरी करे तो उसे डेढ़ रुपया, रुपया मिलेगा। मजदूर की मजदूरी नहीं जाती। इसी प्रकार अपन कुछ करेंगे, उसका फल आयेगा। अरे ! सुन तो सही परन्तु अब। ऐसा बोले। ऐसा बोले, पुण्य ऐसे गले पड़ा है। इतने अधिक लेख आते हैं। बापू ! कहीं मेल नहीं खाता। क्या कहते हैं ? यहाँ तो कहते हैं, भविष्य में यह मेरे पुण्य से मुझे लाभ होगा। यह अच्छी सामग्री होगी न तो लाभ होगा। वह सामग्री को ही आत्मा मानता है। राजारामजी ! अब यहाँ क्या करना ? दूसरे के साथ मिलान नहीं खाता, क्या करना ?

अपूर्व बात है। झगड़ा होता है। ऐसी बात है। वीतराग का घर, सर्वज्ञ परमात्मा के पेट की बात है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में त्रिकाल ज्ञान है, भगवान की वाणी में यह बात आयी है, वही बात सन्त कहते हैं, यह है... यह है... यह है... भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

मेरा यह भविष्य में होगा,... कुछ... कुछ... कुछ... तो मदद करेगा। यदि यह संहनन मजबूत होगा न, व्रजनाराच (संहनन होगा) तो केवल (ज्ञान) होगा। यह मनुष्यपना मिलेगा तो केवल (ज्ञान) होगा। आर्यपना मिलेगा तो कुछ धर्म सुना जाएगा। परन्तु आर्यपने में जन्म न हो और ऐसा का ऐसा हो जाएगा? अब सुन न! आर्यपने में लाख-अनन्त बार उत्पन्न हुआ है, उससे धर्म का लाभ नहीं है। यह समवसरण में अनन्त बार गया, उससे लाभ नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। दिव्यध्वनि पर है। पर से मुझे लाभ माननेवाला पर को, जड़ को ही आत्मा मानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पोपटभाई! बातें बहुत ऐसी हैं, हों! आहाहा!

भाई! चैतन्य के नूर का पूर है न तू! चैतन्य के नूर के पूर में यह विकल्प किसका? परमात्मा तो चैतन्य के नूर के पूर का भरपूर भरा हुआ है, उसे आत्मा कहते हैं। इसके अतिरिक्त यह राग और राग का बन्धन तथा उसका फल भविष्य में हमें ठीक पड़ेगा, कुछ ठीक पड़ेगा। यह बाँध दिया हो... अब उसमें कहते हैं कि तुम धर्म करो। ऐसा होता होगा? परन्तु कुछ... यह लेने का हो, तो धर्म होगा। मूढ़ है? उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसे इस तरह खुले साधन हों तो वहाँ धर्म प्राप्त करने के योग्य होगा और ऐसा हो तो नहीं होगा। कहते हैं कि तू जड़ को ही आत्मा मानता है। सेठिया!

मुमुक्षु : पुण्य से लाभ माने वे सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब जड़ हैं। पर की वस्तु से तुझे लाभ होता होगा? इसीलिए तो निमित्त की मैत्री को नहीं छोड़ता। प्रवचनसार में कहा है न? अपने ज्ञान में यह ज्ञेय निमित्त पड़ता है, इसलिए इसे ऐसा लगता है कि इसके कारण यहाँ होता है, इसलिए उसकी मैत्री नहीं छोड़ता। समझ में आया? ऐ... न्यालभाई! यह सब पुराने लोग हैं। अब इसका क्या करना? इसका निपटारा किस प्रकार करना?

मुमुक्षु : ज्ञान से ही निपटारा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अब अभी तक यह तीस वर्ष तक रस खाया नहीं। उसका क्रिया का कुछ फल होगा या नहीं? यह तो कानजीस्वामी तो कहे बिल्कुल नहीं... बिल्कुल नहीं, वह निश्चयाभास है, जाओ! दूसरे होवें तो ऐसा कहे कि राग की

मन्दता होवे तो उसके बिना होगा नहीं और उससे होगा। व्यवहार भी उसका सच्चा और निश्चय भी सच्चा। ऐई! भगवान! यह तो भगवान कहते हैं, बापू! समझ में आया? भगवान के घर की बात है। यह कहीं किसी के घर की नहीं है। यह तो घर की, परन्तु किसी की कल्पना की बात नहीं। आहाहा! सेठी! क्या करना? मेरा यह भविष्य में होगा। परन्तु देखो! यह महेन्द्रभाई, ऐसे अनुकूल हैं तो मकान करा दिया, लो! मकान कराया तो निवृत्ति से धर्म हो सकता है, लो! परन्तु लड़का ऐसा पका हो तो? नहीं, बापूजी आना पड़ेगा। पिताजी यहाँ आना पड़ेगा, दुकान में बैठो। पचास हजार का मकान बनाया, लो! जाओ पिताजी, जाओ तुम। यहाँ रहो और यहाँ मरो। मरो अर्थात् ऐसा फिर... सेठी! एक दिन मरना है न? देह छोड़कर समाधि।

भगवान आत्मा बिल्कुल भूत, भविष्य और वर्तमान, राग और राग के फल से अत्यन्त निराला है, अत्यन्त निराला है। उसके भान से मरे, उसे समाधिमरण कहते हैं। बाकी सब णमो अरिहन्ताणं, णमो अरिहन्ताणं, निर्विकल्पोऽहम्, ऐसा विकल्प 'वह मेरा है और उससे मुझे लाभ होगा', वह (बाल) बालमरण से मरता है। जड़ को अपना मानकर मरता है। हाय.. हाय.. चीख मचा डाले। जाति से बाहर करे ऐसा है। यहाँ तो अब सोनगढ़ में कोई जाति रही नहीं। यहाँ कहीं किसी का बाड़ा नहीं रहा। जिसे ठीक लगे, वह मानो, न ठीक लगे तो कुछ नहीं। नहीं तो वे बाड़ा में रहने नहीं दें। नहीं, हमारे सम्प्रदाय में नहीं चलेगा। परन्तु पहले से हम निकल गये, सुन न! बात तो सुन! अभी चैतन्य की, तत्त्व के सत्त्व की या उसके सत्त्व में क्या है? चैतन्य सत् है, उसके सत्त्व में राग सत्त्व पड़ा है? और उसके सत्त्व के, उसके भाव को क्या बाहर के साधन से लाभ हो, ऐसा पड़ा है सत्त्व? समझ में आया? बाहर के सत्त्व के साधन से यहाँ भूत-वर्तमान और भविष्य में आत्मा को लाभ होगा, ऐसी चीज़ नहीं है। यह चीज़ ऐसी नहीं है।

मैं इसका भविष्य में होऊँगा... अब ये सब मेरे होंगे। मेरे होंगे, मेरे होंगे, हमारे से भिन्न नहीं पड़ेंगे। आहाहा! कहते हैं न? लकड़ी मारने से पानी अलग नहीं पड़ता। हमारा भाव किया हुआ वहाँ आकर फलेगा। सामने। ऐसे हाजरा-हुजूर (होगा)। लो, लक्ष्मी लो, लड्डू लो, स्त्री लो, पुत्र, यह मकान क्या चाहिए तुम्हारे? साम-दाम और

ठाम, ये सब मिलेंगे। परन्तु मिले, उसमें तुझे क्या मिला? मूढ़ है। वह तो पर जड़ मिला। समझ में आया? ऐ... भीखाभाई! क्या करना अब इसमें?

भगवान! तेरी बलिहारी है, बापू! भाई! तू ऐसा स्वतन्त्र प्रभु है न! तुझे किसी भी विकल्प को, विकल्प के फल में संयोग का साधन तुझे आवश्यक नहीं है, ऐसी तेरी चीज़ है। आहाहा! इसके लिये यह आचार्य महाराज यह... स्पष्ट करते हैं।

ऐसे झूठे विकल्पों से अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) पहिचाना जाता है। ऐसे झूठे विकल्प से यह मूर्ख है, मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है... भले दिगम्बर साधु हो, ग्यारह अंग पढ़ा हुआ हो, परन्तु ऐसी जिसकी मान्यता है, वह अप्रतिबुद्ध अर्थात् चैतन्य के स्वसंवेदन को नहीं जानता। समझ में आया? अब सुलटा क्या है, वह लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल ११, सोमवार, दिनांक - २४-१०-१९६६
गाथा - २० से २२, प्रवचन - ८४

समयसार ग्रन्थ है, इसमें जीव-अजीव अधिकार है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में हुए। संवत् ४९ में, भगवान सीमन्धर परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं, वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। दिगम्बर मुनि थे। और वहाँ से आकर यह समयसार आदि शास्त्र रचे हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य हुए न? वे संवत ४९ में भरतक्षेत्र में हुए। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा सीमन्धर भगवान विराजमान हैं। उनके दर्शन करने, लब्धि थी तो वहाँ गये थे। और आठ दिन वहाँ रहे थे। और वहाँ से आकर यह समयसार आदि शास्त्र बनाये हैं। उनमें इस समयसार के जीव अधिकार में २० से २२ गाथा चलती है, देखो! नीचे दूसरा पैराग्राफ है। है दूसरा?

और, अग्नि है वह ईंधन नहीं है,... है नीचे? क्या कहते हैं यहाँ? शिष्य का यह प्रश्न था कि यह आत्मा अज्ञानी है, ऐसा किस प्रकार से पहिचाना जाये? यह अज्ञानी है, आत्मा का भान नहीं, मूढ़ है, उसका कौनसा ऐसा चिह्न है कि जिससे पहिचाना जाये? और यह आत्मा ज्ञानी है-धर्मी है, वह किस लक्षण से पहिचाना जाये? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। उसके उत्तर में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यह गाथा कहते हैं। उसमें अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कैसा है, यह तो कल चला। अब आज ज्ञानी कैसा होता है, उसकी बात है।

सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा का क्या लक्षण है? सोभागभाई! सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा का क्या लक्षण है और किस लक्षण से वह पहिचाना जाता है, यह अधिकार यहाँ चलता है। समझ में आया? देखो! पहले कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य महाराज पहले दृष्टान्त देते हैं। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त पहले संवत में (हुए, उनके हैं)। पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य महाराज ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि हुए, उनकी टीका है। उस टीका यह हिन्दी है। देखो, पहले दृष्टान्त। ज्ञानी धर्मी जीव किस प्रकार पहिचाना जाये, उसका पहले दृष्टान्त देते हैं।

अग्नि है वह ईंधन नहीं है,... ईंधन समझते हो न ? लकड़ी। अग्नि है, वह लकड़ी नहीं। बराबर है ? अग्नि है न ? अग्नि, वह लकड़ी नहीं; लकड़ी है, वह अग्नि नहीं। दोनों भिन्न हैं न ? दृष्टान्त नहीं समझते ? सिद्धान्त तो बाद में आयेगा। अग्नि है, वह ईंधन नहीं और ईंधन है, वह अग्नि नहीं। पहले नास्ति से बात की। अब अस्ति। **अग्नि है, वह अग्नि ही है,...** अग्नि है, वह अग्नि ही है। **ईंधन है, वह ईंधन ही है;...** लकड़ी है, वह लकड़ी ही है। अग्नि लकड़ी नहीं और लकड़ी अग्नि नहीं और अग्नि ईंधन नहीं। **अग्नि का ईंधन नहीं, ईंधन की अग्नि नहीं...** अग्नि की लकड़ी नहीं और लकड़ी की अग्नि नहीं। **अग्नि की अग्नि है,....** .... पहले सामान्य बात करते हैं। पहले साधारण बात की, पश्चात् वर्तमान कहते हैं। **अग्नि का ईंधन नहीं, ईंधन की अग्नि नहीं-अग्नि की अग्नि है, ईंधन का ईंधन है;...** यह वर्तमान बात की, पश्चात् आत्मा में विशेष लेंगे। यह तो दृष्टान्त है न!

अग्नि का ईंधन पहले नहीं था,... भूतकाल में अग्नि की लकड़ी नहीं थी और लकड़ी की अग्नि पहले नहीं थी। यह नास्ति से बात की। अब **अग्नि की अग्नि पहले थी और ईंधन का ईंधन पहले था; अग्नि का ईंधन भविष्य में नहीं होगा,...** भविष्य की बात करते हैं। अग्नि की लकड़ी भविष्य में होगी नहीं और **ईंधन की अग्नि भविष्य में नहीं होगी - अग्नि की अग्नि ही भविष्य में होगी, ईंधन का ईंधन ही भविष्य में होगा...** अस्ति-नास्ति से बात की है।

इस प्रकार जैसे किसी को अग्नि में ही... अग्नि में ही **सत्यार्थ अग्नि का विकल्प हो सो...** लौकिक समझदार कहलाता है। अग्नि में अग्नि और लकड़ी में लकड़ी, ऐसा जाननेवाला (समझदार कहलाता है)। तीन काल में अग्नि तो अग्नि ही है, ईंधन ईंधन ही है। भूतकाल में भी अग्नि लकड़ी की नहीं हुई थी और लकड़ी अग्नि की नहीं हुई थी। ऐसा यथार्थ जाने, उसे लौकिक समझदार कहा जाता है। समझु कहते हैं न ? प्रतिबुद्ध-शयाना। उसे लौकिक समझदार कहा जाता है। अब धर्मी समझु किसे कहते हैं ? वह तो दृष्टान्त दिया। अब जरा सूक्ष्म पड़ेगा।

इसी प्रकार.... सम्यग्दृष्टि जीव—धर्मी जीव—सम्यग्ज्ञानी जीव ऐसा मानता है

कि **मैं यह परद्रव्य नहीं,...** मैं, पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर आदि परद्रव्य है, वे परद्रव्य मैं नहीं। समझ में आया ? सोभागभाई ! है ? **इसी प्रकार...** यह तो दृष्टान्त दिया। **मैं यह परद्रव्य नहीं...** सम्यग्दृष्टि धर्मी उसे कहते हैं कि अपने से (भिन्न) पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर और कर्म के फलरूप बाह्य संयोग, वे परद्रव्य मैं नहीं—ऐसा मानता है। पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव भी परद्रव्य है, वह आत्मा के भाव नहीं। समझ में आया ? आस्रवतत्त्व है। अशुद्ध है और आस्रवतत्त्व है। तो आस्रवतत्त्व, वह आत्मतत्त्व नहीं। समझ में आया ? ईंधन की अग्नि कभी हुई नहीं और अग्नि का ईंधन कभी हुआ नहीं। ऐसा धर्मी अपने को ऐसा जानता है कि **मैं यह परद्रव्य नहीं...** मैं यह पुण्य-पाप के भाव और कर्म, शरीर कभी नहीं।

मुमुक्षु : कभी नहीं, इसका क्या अर्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब आयेगा, तीन काल आयेंगे। यहाँ तो पहले सामान्य बात करते हैं।

मैं यह परद्रव्य नहीं... पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, काम, क्रोध के भाव, दोनों पुण्य-पाप आस्रवतत्त्व है। तो यहाँ आस्रवतत्त्व को धर्मी अपने से पर-भिन्न जानता है। समझ में आया ? जो परद्रव्य है, उन्हें अपना माने तो वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है।

मुमुक्षु : पैसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा-फैसा कब इसका था ? पैसे भिन्न जड़ के हैं। सोभागभाई ! पैसा तो जड़ का है, अजीव का है। वह तो पुद्गल है, पैसा तो पुद्गल है, शरीर पुद्गल है, कर्म पुद्गल है, वाणी पुद्गल है। वह तो जड़ है। यहाँ तो आत्मा में होनेवाले शुभयोग और अशुभयोग जो आस्रवतत्त्व है, उसे भी यहाँ परद्रव्य कहा गया है। बराबर है ? समझ में आया या नहीं ? भाई ! देखो ! यह सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि पुण्य-पाप के शुभ-अशुभभाव, कर्म, शरीर और पुण्य-पाप के बाह्य फल, प्रतिकूल-अनुकूल संयोग, वह सब मैं नहीं, वह परद्रव्य है। क्या करना इसमें ? वे तो साथ के साथ रहते हैं। साथ में भले हो, वह तो जड़ मिट्टी धूल है। वह तो मिट्टी पुद्गल है, जड़ है। वाणी

भी पुद्‌गल है, कर्म भी अजीव पुद्‌गल है। परन्तु उसके लक्ष्य से पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव हुए, वे जैसे अग्नि की लकड़ी नहीं, वैसे आत्मा के पुण्य-पाप भाव नहीं। आत्मा तो ज्ञानानन्द उपयोग, वह आत्मा है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि पुण्य-पाप मेरे हैं और उनसे मुझे लाभ होगा अथवा पुण्य-पाप में जिसकी सुखबुद्धि है कि उनसे मुझे सुख मिलेगा और पुण्य-पाप में हितबुद्धि है, वह जीव को अजीव मानता है।

फिर से कहते हैं। जीव-अजीव अधिकार है न? ऊपर जीव-अजीव अधिकार है। धर्मी जीव अपने को ज्ञानमूर्ति चैतन्यस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा आनन्दकन्द आत्मा है, ऐसा मानता है। और मुझसे भिन्न जो पुण्य-पाप के भाव हैं... देखो! **मैं यह परद्रव्य नहीं...** परद्रव्य की व्याख्या यह है। सचेत स्त्री-पुत्र आदि; अचेत लक्ष्मी आदि, मिश्र-गहने सहित की स्त्री आदि और अन्दर में सचेत राग, अचेत कर्म, वह सब मेरी चीज़ नहीं, वह तो परद्रव्य है। मेरी चीज़ हो तो मुझसे कभी भिन्न पड़े नहीं। भिन्न पड़े, वह मेरी नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि **मैं यह परद्रव्य नहीं...**

मुमुक्षु : भिन्न पड़े तब नहीं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी नहीं। भिन्न तो भिन्न ही है। वह कहाँ धूल घुस गयी है? चैतन्यमूर्ति ज्ञायक आत्मा है। ज्ञानस्वरूपी... यह २४ गाथा में आयेगा। '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं**' भगवान ने तो उपयोग चैतन्यमूर्ति ज्ञान-दर्शन का पिण्ड भगवान आत्मा है, ऐसा देखा है। देह में विराजमान भगवान; भगवान सर्वज्ञ ने ऐसा देखा है कि कर्म, शरीर आदि को तो भगवान ने अजीव देखा है और पुण्य-पाप के भाव को तो भगवान ने आस्रव देखा है। भगवान ने उसे आत्मा देखा नहीं। बराबर है? भगवान तो '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' भगवान ने तो आत्मा को ज्ञान, आनन्द और शुद्ध स्वभाव का पिण्ड देखा है।

मुमुक्षु : सर्वज्ञ का ज्ञान आधार में लिया जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं लिया जाये? तो यह क्या कहते हैं? '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' २४ गाथा आयेगी, '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' भगवान के ज्ञान में तो ऐसा देखने में आया है कि '**उवओगलक्खणो णिच्चं**' भगवान आत्मा जानन-देखन स्वभाव का भरपूर पूर, नूर

से भरपूर आत्मा है। उसमें कोई शुभाशुभभाव है, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। शुभभाव को उड़ाते हैं, वे आत्मा नहीं। शुभयोग का भाव है न? शुभयोग, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वह तो आस्रव है। आस्रव है, वह आत्मा नहीं। सात तत्त्व है या नहीं? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, सात तत्त्व है। सात है या नहीं? तो सात में एक अजीवतत्त्व भिन्न है, जीवतत्त्व भिन्न है; आस्रवतत्त्व भिन्न है। यदि भिन्न न हो तो सात (भेद) पड़े किस प्रकार? समझ में आया? भाई! आज तो थोड़ी-थोड़ी हिन्दी चलती है। गुजराती जरा इनको (समझ में नहीं आता)।

बात यह है कि अनन्त काल में इसने इसकी पहिचान नहीं की। अनन्त-अनन्त काल हुआ। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', आता है या नहीं? यह छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य है, पुण्य-पाप के भाव से रहित है, ऐसा इसने कभी अनुभव किया नहीं। और वह अनुभव किये बिना उसे कभी सुख और शान्ति और धर्म होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने श्लोक (गाथा) बनायी, उनकी टीका करते हैं—स्पष्टीकरण करते हैं। टीका अर्थात् स्पष्टीकरण करते हैं। पहले यह शब्द लिया, **मैं यह परद्रव्य नहीं...** मिथ्यादृष्टि जैन सम्प्रदाय में रहने पर भी जो कोई पुण्य-पाप के भाव मुझे हितकर है, मुझे सुखकर है, मेरे हैं—ऐसा माननेवाला, भगवान कहते हैं कि वह अज्ञानी मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। रामस्वरूपजी! आहाहा! है क्या? धर्मी ने अपने आत्मा को कर्म से, शरीर से और शुभाशुभभाव से भिन्न प्रतीति में, अनुभव में लिया है। इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव 'मैं यह परद्रव्य नहीं' ऐसा मानता है। शुभ-अशुभभाव और **यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है...** अस्ति-नास्ति इसी और इसी में कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव, शुभ-अशुभभाव, कर्म, शरीर, यह मैं नहीं, मैं यह नहीं, **यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है...** पुण्य-पाप के भाव, कर्म, वे मेरे आत्मस्वरूप नहीं। मुझस्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी अस्ति-नास्ति एक की बात करते हैं। **मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है...** एक की बात। अभी अस्ति में फिर कहेंगे। अभी नास्ति में दो बोल लिये। नास्ति में क्या लिया? मैं यह पुण्य-पाप के भाव, कर्म नहीं और पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर मुझस्वरूप नहीं। मेरे स्वरूप में वह है ही नहीं। समझ में आया? यह नास्ति से बात कही। अब अस्ति से कहते हैं।

मैं तो मैं ही हूँ,... मैं तो मैं ही हूँ। धर्मी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला गृहस्थाश्रम में हो या मुनि त्यागी हो, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि अपने को ऐसा मानता है कि **मैं तो मैं ही हूँ,...** मैं तो चैतन्य जाननेवाला-देखनेवाला स्वभाव वह मैं, मैं ही हूँ। **परद्रव्य है, वह परद्रव्य ही है;...** यह पुण्य-पाप के भाव, कर्म, शरीर और स्त्री, कुटुम्ब आदि बाह्य (पदार्थ), वे तो परद्रव्य ही हैं। परद्रव्य है, वह परद्रव्य ही है। समझ में आया? उसी और उसी में दो-दो बोल निश्चित करते हैं। पहले में तो नास्ति की बात थी न। यहाँ तो अस्ति की बात करते हैं। कल नास्ति की आयी थी। अभी तो अब प्रतिबुद्ध का लक्षण-सम्यग्दृष्टि का लक्षण क्या? यह धर्मी है, इसका चिह्न क्या है कि जिस चिह्न द्वारा यह सम्यग्दृष्टि पहिचाना जाता है?

इसका लक्षण यह है कि मैं यह परद्रव्य नहीं, यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं। तब हूँ कौन? **मैं तो मैं ही हूँ; परद्रव्य है, वह परद्रव्य ही है;...** समझ में आया? यह सामान्य बात की अभी तो। सामान्य समझ में आता है? संक्षेप में सामान्य बात की। अब फिर तीन काल उतारेंगे। तीन काल अब उतारेंगे, पहले सामान्य। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, आठ वर्ष की बालिका हो या मेंढ़क हो, मंडुक हो। (गुजराती में) देडको कहते हैं न? मंडुक-मेंढ़क, वह भी सम्यग्दर्शन पाता है। भगवान के समवसरण में जाता है तो सम्यग्दर्शन पाता है। और ढाई द्वीप के बाहर असंख्य सम्यग्दृष्टि अभी हैं। पशु। ढाई द्वीप के बाहर स्वयंभूरमण समुद्र आदि में असंख्य ज्ञानी समकिती पशु हैं। तो उस सम्यग्दृष्टि धर्मी का चिह्न क्या? ऐसी कोई क्रिया करे, वह कोई चिह्न है? नहीं। उसका चिह्न क्या है? लक्षण क्या है? कि वह ऐसा मानता है कि मैं तो मैं ही हूँ। मैं तो ज्ञानस्वरूप चैतन्य हूँ और परद्रव्य है, वे परद्रव्य ही है। आहाहा!

पहले कहा था कि मैं यह परद्रव्य नहीं। ऐसा कहा था। पश्चात् यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं, कहा था। नहीं से लिया था। फिर अस्ति से लिया है। मैं तो मैं ही हूँ और परद्रव्य हैं, वे परद्रव्य हैं। आहाहा! अन्तर (में) यह समझने की कभी मेहनत ही नहीं की। अनन्त काल हुआ चौरासी लाख (योनियों में) भटकते-भटकते मर गया उनमें। अरबोंपति भी अनन्त बार हुआ, भिखारी अनन्त बार हुआ, नरक में नारकी अनन्त बार हुआ, नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। समझ में आया? परन्तु अपनी पूँजी क्या है, अन्दर क्या चीज़ है, उसे कभी एक समय भी पहिचाना नहीं। बराबर है? सोभागभाई! अपनी पूँजी, हों! पैसे की पूँजी वह धूल की है। पूँजी है या नहीं? क्या है? वह पुद्गल है, मिट्टी है। मिट्टी अपनी पूँजी कहाँ से हुई? अपनी हो तो अपने साथ रहे। धूल अपनी है नहीं।

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा ने कहा हुआ दिगम्बर सन्त मुनि जगत के समक्ष आत्मख्याति प्रसिद्ध करते हैं। इस टीका का नाम आत्मख्याति है। आत्मप्रसिद्धि। आत्मा किसे कहना? कहते हैं कि मैं यह परद्रव्य नहीं, परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं, मैं तो हूँ आत्मा आनन्दकन्द ज्ञायक हूँ और परद्रव्य जो पुण्य-पाप, राग-द्वेष, दया, दान, व्रत परिणाम, वे सब परद्रव्य, वे परद्रव्य ही हैं। आहाहा! समझ में आया? वह सामान्य बात की थी, अब तीन काल लेते हैं, तीन काल।

मेरा यह परद्रव्य नहीं,... वर्तमान में। धर्मी जानता है कि **मेरा यह परद्रव्य नहीं,...** वर्तमान में पुण्य-पाप और शरीर, वह मेरा नहीं। **मेरा यह परद्रव्य नहीं, यह परद्रव्य मैं नहीं...** पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव, कर्म, शरीर और कर्म का फल, वह परद्रव्य मैं नहीं। यह नास्ति से लिया है, भाई! वर्तमान नास्ति से। अब वर्तमान अस्ति से। आहाहा! टीका कितनी स्पष्ट की है!

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत स्पष्ट है, भाई! लो! बहुत स्पष्ट है।

भगवान! तू कौन है? तुझे तेरी खबर नहीं और तुझे धर्म हो जायेगा? खबर बिना कहाँ से धर्म होगा? यह कहते हैं, भगवान! दिगम्बर सन्त ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य

हुए। उनकी यह टीका है। मूल श्लोक तो कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। संवत् ४९ में भगवान कुन्दकुन्द (महाविदेहक्षेत्र में गये थे)। मंगलं भगवान वीरो, नहीं आता? 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो'। वे महासमर्थ पुरुष। भगवान के पास साक्षात् गये थे। सीमन्धर परमात्मा के पास। मुद्रास से अस्सी मील दूर एक पोन्नूर हिल है। देखा है या नहीं? मद्रास से अस्सी मील दूर इस ओर एक पोन्नूर हिल टेकरी है। वन्देवास नाम का छोटा गाँव है। वहाँ से पाँच मील दूर टेकरी है। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में रहते थे। २००० वर्ष पहले। वहाँ से भगवान के पास गये थे। टेकरी है। वहाँ हम दो बार गये हैं। अब थोड़े मकान भी हुए हैं। मद्रास से अस्सी मील दूर एक वन्देवास नाम का दस हजार की आबादी वाला एक छोटा गाँव है। वहाँ से पाँच मील दूर टेकरी है—पोन्नूर हिल। पोन्नूर अर्थात् सोना। सोना की टेकरी। अंग्रेजी में पोन्नूर को सोना कहते हैं—स्वर्ण। उसका नाम टेकरी ऐसी है। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले ध्यान में रहते थे। छोटी-छोटी गुफायें हैं परन्तु वह तो अब छोटी हो गयी। हमने सब देखा है। और वहाँ से भगवान के पास गये थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये हैं। साक्षात् त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर सीमन्धर भगवान के पास यात्रा की। समझ में आया?

कहते हैं, सम्यग्दृष्टि अपने को कैसा पहिचानता है और जानता है? और दूसरे को किस प्रकार से पहिचाना जाये? वह ऐसा मानता है कि **मेरा यह परद्रव्य नहीं,...** वर्तमान में यह पुण्य-पाप मेरे नहीं। आहाहा! और उस परद्रव्य का मैं नहीं। पुण्य-पाप आस्रवतत्त्व और कर्मतत्त्व का मैं नहीं। यह पुण्य-पाप आस्रवतत्त्व और कर्मतत्त्व मेरे नहीं और मैं वह नहीं। आहाहा! अरे! समझ में आया या नहीं? यह तो नास्ति से कहा। वर्तमान नास्ति से कहा, भाई!

अब **मेरा ही मैं हूँ...** यह वर्तमान अस्ति से कहते हैं। **मेरा ही मैं हूँ,...** मैं तो ज्ञान और शुद्ध आनन्दकन्द हूँ। मैं ज्ञायकस्वभाव के नूर, चैतन्यस्वभाव के नूर से भरा हुआ भरपूर हूँ। मैं चैतन्य हूँ, पुण्य-पाप आदि मैं नहीं। वर्तमान में मैं नहीं, परन्तु मैं तो चैतन्य ज्ञायकस्वरूप हूँ। मुझमें पुण्य-पाप, शरीर वर्तमान में है नहीं। वर्तमान में है नहीं... समझ में आया? कोई कहे कि जब छूटेगा, तब होगा। ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर नहीं, पुण्य-पापरहित आत्मा है। शरीर तो धूल रह गयी। वह तो मिट्टी है, अजीव पुद्‌गल है। यह तो अजीवतत्त्व पुद्‌गल मिट्टी धूल है। वह कहाँ आत्मा है? यह तो मिट्टी-धूल है। श्मशान की राख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब श्मशान की राख होगी थोड़े दिन में। राख ही है। शास्त्र (शरीर को) मुर्दा ही कहते हैं। उसमें कहते हैं, देखो! ९६ गाथा में। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि यह मुर्दा है। ९६ गाथा में आता है। समझ में आया? ९६ गाथा है या नहीं? ९६। निकालो तुम्हारे देखनी हो तो। इस समयसार में तो बहुत भरा है। सब माल भरा है। माल ही माल भरा है। १७० पृष्ठ। क्या कहते हैं? ११७? हमारे काठियावाड़ी में सित्तर कहते हैं। १७०। नीचे अन्तिम दो लाईनें। **और मृतक कलेवर (-शरीर) द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन (स्वयं) मूर्च्छित हुआ...** है? अन्तिम दो लाईनें हैं। १७० (पृष्ठ)। दूसरी आवृत्ति है, ठीक! **मृतक कलेवर (-शरीर) द्वारा...** पहले में कहाँ है, बोलो न परन्तु। कौनसा पृष्ठ है? **मृतक कलेवर (-शरीर) द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन (स्वयं) मूर्च्छित हुआ होने से उस प्रकार के भाव का कर्ता प्रतिभासित होता है।** क्या कहते हैं? कि आत्मा मृतक कलेवर है, वर्तमान। मृतक कलेवर है—यह शरीर। स्वयं परम अमृत भगवान आत्मा है। परम अमृतरूप भगवान, परम अमृत अतीन्द्रिय आनन्दरूप आत्मा मृतक कलेवर में अनादि से मूर्च्छित है। मूर्च्छा के कारण से पुण्य-पाप और शरीर की क्रिया मेरी है, ऐसा मूढ़ जीव उसका कर्ता प्रतिभासित होता है। सेठिया! देखो!

यहाँ मृतक, यह अमृत। ऐसे शब्द हैं। अमृतचन्द्राचार्य है न? टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ऐसे गुलाँट मारते हैं, यह मृतक, अमृत। आत्मा अमृतस्वरूप है, आत्मा अमृत आनन्दस्वरूप है और यह (शरीर) मृतक कलेवर है। यह शब्द की रचना (ऐसी करते हैं)। यह मृतक कलेवर अजीव है या जीव है? यह अजीव का द्रव्य अजीव, अजीव के गुण अजीव, अजीव की पर्याय अजीव। तीनों अजीव हैं।

मुमुक्षु : परन्तु मर जाने के बाद न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गया ही है। उसमें कब जीव था? जीव तो भिन्न है। वह तो चैतन्यमूर्ति भिन्न है। शरीर को आत्मा ने कभी स्पर्शा ही नहीं। क्योंकि शरीर जड़ है, भगवान अरूपी है आत्मा। शरीर को स्पर्शा ही नहीं। मूढ़ मानता है कि शरीर को मैं स्पर्शा हूँ और शरीर मेरा है। यह तो मिथ्यादृष्टि का लक्षण बताते हैं। समझ में आया? चाहे तो धर्म की क्रिया दया, दान, व्रत, भक्ति करे, परन्तु वह परिणाम और शरीर की क्रिया मेरी, मूढ़ है—मिथ्यादृष्टि है। तुझे धर्म की खबर नहीं। समझ में आया?

मेरा ही मैं हूँ, परद्रव्य का परद्रव्य है;... यह वर्तमान में लिया। अब भूतकाल में लेते हैं। भूतकाल। अधिकार चलता है यह। चलता है न? २०, २१, २२ गाथा। क्या आया? **इस परद्रव्य का मैं पहले नहीं था।** आहाहा! २० से २२ गाथा चलती है न यह। क्या कहते हैं? पहले वर्तमान में ले लिया। धर्मीजीव अपने को वर्तमान में, वर्तमान में पुण्य-पाप मेरा स्वरूप है, ऐसा मानता नहीं। पुण्य-पाप को परद्रव्य मानता है और वे मेरे स्वरूप में नहीं, ऐसा मानता है। **यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था...** गत काल में पुण्य-पाप के भाव का, कर्म का, शरीर का मैं भूतकाल में कभी नहीं था। अग्नि लकड़ी की भूतकाल में कभी हुई नहीं। इसी प्रकार मैं चैतन्य-अग्नि ज्ञायकस्वरूप हूँ, वह भूत अर्थात् गतकाल में पुण्य-पाप और कर्म, शरीर का मैं हुआ ही नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है यह। लोगों ने मानी नहीं, कहीं सीखे नहीं। ऐसे के ऐसे स्थूल दृष्टि से चले जाते हैं और धर्म करते हैं, ऐसा मानते हैं। चीज़ की कुछ खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था...** कौन? भूतकाल में भी निगोद में हो या चाहे तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, आदि में है, परन्तु मैं तो परद्रव्य का पहले नहीं था। पुण्य-पाप का पहले मैं नहीं था। भाई! आहाहा! निगोद में हो तो भी मैं पुण्य-पाप का था नहीं, ऐसा कहते हैं। देवलोक में हो तो भी मैं गतकाल में पुण्य-पाप का नहीं था। देव की ऋद्धि का मैं था नहीं, देव के शरीर का मैं था नहीं। आहाहा! समझ में आया? खबर नहीं होती मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, कैसा हूँ। करो धर्म। धर्म कैसे हो? धर्म करनेवाला कौन है, कैसा है, उसकी तो खबर नहीं और धर्म होगा। कहाँ से होगा? धूल में से होगा?

कहते हैं भगवान अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त ९०० वर्ष पहले (हुए) उनकी यह टीका है। है तो कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के श्लोक। टीका करते हैं भगवान अमृतचन्द्राचार्य मुनि भावलिंगी सन्त परमेश्वर पद को अनुभव करते हैं। समझ में आया? कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि चाहे तो चौथेवाला हो, पाँचवेंवाला हो या मुनि हो परन्तु सम्यग्दृष्टि तो अपने को **यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था...** ऐसा मानता है। पहले तो मैंने पुण्य किये थे न, पहले तो मैंने पाप किये थे न, पहले तो मैंने पुण्य किये थे न तो मैं मनुष्य हुआ न। परन्तु सम्यक्त्वी मानता है कि मैं तो कभी पुण्यरूप हुआ ही नहीं। आहाहा! क्या चैतन्य भगवान ज्ञानमूर्ति उस विकाररूप होती है? पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है। जीवतत्त्व क्या आस्रवतत्त्वरूप होता है? समझ में आया? **यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था...** अनन्त काल (गया)। नित्य निगोद से लेकर अनन्त भवों में नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया न? पुण्य करके शुक्ललेश्या करके नौवें ग्रैवेयक चला गया। मिथ्यादृष्टिपना रखकर, आत्मा के भान बिना।

कहते हैं कि जब आत्मा का भान हुआ कि मैं तो चैतन्य ज्ञान शुद्ध ज्ञाता हूँ। वह मैं पहले परद्रव्य का था नहीं। वह पुण्य-पाप का, शरीर का, वाणी का मैं कभी था नहीं। आहाहा! यदि हुआ होऊँ तो वे छूटे कहाँ से? यदि मैं परद्रव्यरूप हुआ होऊँ तो मैं अभी छूटा कहाँ से? मैं परद्रव्यरूप हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! इस प्रकार से यह तो जीव-अजीव की व्याख्या है, हों! मैं जीव, पुण्य-पाप अजीव, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। जैसे कर्म, शरीर अजीव है, वैसे पुण्य-पाप में चैतन्य के प्रकाश का अभाव है। शुभ-अशुभभाव में चैतन्यप्रकाश के नूर का अभाव है। राग, शुभ-अशुभराग में चैतन्य के नूर का अभाव है। इस अपेक्षा से पुण्य-पाप को यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य अजीव कहते हैं। जैसे शरीर और कर्म में चैतन्य नहीं, वे जड़ हैं; उसी प्रकार पुण्य-पाप में चैतन्य का नूर—प्रकाश का अभाव है। राग अपने को जानता नहीं, राग ज्ञान को जानता नहीं, राग पर द्वारा जाना जाता है। तो यहाँ कहते हैं कि मैं उसे अजीव कहता हूँ। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं कि जिसमें चैतन्य के प्रकाश की किरण नहीं, वह अजीव है। आहाहा! समझ में आया?

एक गाथा भी बराबर समझे तो ख्याल आवे। परन्तु समझना नहीं और ऐसा का ऐसा चलना है। बराबर है, भाई! समझने की दरकार नहीं, चलो ऐसा का ऐसा। संसार की बात की सब समझण करे, तथापि वह तो मिलना, न मिलना भाग्याधीन है, तेरे पुरुषार्थाधीन नहीं। पैसा आदि धूल मिलना... धूल... धूल, यह पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ मिलते हैं न? धूल। पूर्व का पुण्य हो तो मिलती है, तेरे पुरुषार्थ से कभी नहीं मिलती। (धर्म) तो पुरुषार्थ से होता है। ऐसे भाग्य से पुरुषार्थ हो जाये, ऐसा नहीं। धर्म भाग्य से मिले, ऐसी चीज़ नहीं है। धूल मिले। समझ में आया? सोभागभाई! ... मिल गयी धूल, देखो न! पैसा। करोड़, दो करोड़ धूल।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलती है कहाँ? इसके पास आये तो माना कि मुझे मिले। ऐसी ममता तो इसके पास आयी न? चीज़ तो चीज़ में रही। चीज़ कहाँ यहाँ घुस जाती है? चीज़ तो चीज़ में रही। इसके पास आती है? भाव में मानते हैं कि मुझे मिली, मुझे मिली। विकल्प, राग इसके पास आया। वह चीज़ आयी नहीं।

मुमुक्षु : चीज़ कब आयेगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी नहीं। तीन काल में नहीं आती। समझ में आया? आहाहा! यह शरीर भी आत्मा में आयेगा नहीं। यह शरीर तो धूल अजीव मिट्टी है, यह तो ऊपर-ऊपर फिरता है, स्वतन्त्र द्रव्य है।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, उनकी टीका करनेवाले कहते हैं, भाई! बापू! धर्मी की पहिचान करने का चिह्न क्या? कोई ऐसा कहे कि मेरे पूर्व का पुण्य था न, तो मुझे लाभ हुआ। तो समझ कि मूढ़ मूरख है। उसे आत्मा की खबर नहीं। मेरे पूर्व का पुण्य था तो मुझे पैसे मिले। मूढ़ है। पुण्य ही तेरे नहीं, वहाँ और पैसे तेरे कहाँ से हुए? यह अज्ञानी को पहिचानने का चिह्न—लक्षण है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : लोक से तो विरुद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक से तो विरुद्ध ही हो न वीतरागमार्ग। यह तो वीतरागमार्ग

है, जगत मानता है ऐसा लौकिक मार्ग नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने। दिव्यध्वनि में आया, उसे आगम कहते हैं। भगवान ने जाना, उसे धर्म कहते हैं। इसके अतिरिक्त दुनिया मानती है, वह कोई धर्म-फर्म है ही नहीं। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त किसी स्थान में, किसी मार्ग में कोई धर्म है नहीं। समझ में आया? अभी जैन में जन्मे हुए को खबर नहीं कि सर्वज्ञ क्या कहते हैं, तो अन्य में तो है ही कहाँ? समझ में आया? वेदान्त और फेदान्त और आत्मा एक ही है, ऐसा मानते हैं। वे तो सब मिथ्यादृष्टि, उसमें तो धर्म होता ही नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। अभी समवसरण में हैं। चौबीस तीर्थंकर तो सिद्धपद को प्राप्त हुए। यह तो अरिहन्तपद में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान अभी अरिहन्त—णमो अरिहंताणं में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान यहाँ है न? सब देखा न? मन्दिर में वे, समवसरण में वे, मानस्तम्भ में भगवान विराजते हैं। उनकी प्रतिष्ठा है। भगवान महाविदेहक्षेत्र अरिहन्तपद में तीर्थंकरपद में विराजते हैं। चौबीस तीर्थंकर तो मोक्षपद में सिद्धपद हो गया। अब तीर्थंकरपद है नहीं। वे तो अशरीरी हो गये। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की वाणी में जैसा आया, वह कुन्दकुन्दाचार्य को तो अनुभव में था, चारित्रवन्त थे, आनन्दकन्द में थे, विशेष स्पष्ट ज्ञान हुआ तो यह बनाया। भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग सौ इन्द्रों की उपस्थिति में यह कहते हैं, दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहते थे। इन्द्रों की उपस्थिति समवसरण में थी। अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र, अर्धलोक के स्वामी ईशानइन्द्र, उनकी भगवान के समवसरण में उपस्थिति है। भगवान की वाणी में ऐसा आया, धर्मी जीव उसे कहते हैं कि भूत अर्थात् गत काल अनन्त हुआ, तो अनन्त काल में मैं कभी पुण्य-पापभाव का, कर्म का, शरीर का हुआ ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह परद्रव्य मेरा पहले नहीं था, यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था... परद्रव्य का मैं था नहीं और परद्रव्य मेरे पहले थे नहीं। ऐसा पारस्परिक लिया है। समझ में आया? परद्रव्य जो पुण्य-पाप, कर्म, शरीर, वाणी, उनका पहले भूतकाल में मैं एक समयमात्र

नहीं था और वे परद्रव्य पहले मेरे नहीं थे। समझ में आया? परद्रव्य का मैं नहीं था और परद्रव्य मेरे पहले नहीं थे। कितना स्पष्टीकरण किया है! समझ में आया? यह समझ में आये ऐसी बात है। ऐसी कोई कठिन नहीं। परन्तु इसकी दरकार की नहीं। है, संस्कृत है। यह तो हिन्दी में है।

यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था, यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था... परद्रव्य का मैं था नहीं, वे मेरे हुए नहीं। तब क्या हुआ है? **मेरा मैं ही पहले था,...** है? भाई! मैं ही मेरा (था)। मैं अर्थात् चैतन्यमूर्ति, मैं तो ज्ञायकज्योति हूँ। मैं तो मेरा ही अनन्त काल में था। मैं कभी राग और शरीररूप हुआ ही नहीं न। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो हिन्दी है, यह तो समझ में आये ऐसा है। भाव जरा सूक्ष्म है, भाव। आहाहा!

प्रभु आत्मा धर्मी-सम्यग्दृष्टि होता है, तब वह राग से पृथक् अपने को जानता है। व्यवहाररत्नत्रय जो व्यवहार आया न? विकल्प-राग, उससे भी अपने को भिन्न जानता है। वर्तमान में भिन्न जानता है तो भूतकाल में भी मैं भिन्न ही रहा था। भिन्न ही रहा था, वे मेरे नहीं थे, वे मुझमें रहे नहीं। आहाहा! सोभागभाई! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। यह बहुत ऐसी सूक्ष्म नहीं। ऐसी सूक्ष्म बात नहीं, स्थूल बात है। आहाहा!

मेरा मैं ही पहले था,... देखो! समझे? **मेरा ही मैं हूँ, परद्रव्य का परद्रव्य है;...** समझे न? **यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था - मेरा मैं ही पहले था, परद्रव्य का परद्रव्य पहले था;...** यह पुण्य-पाप और शरीर तो पहले से ही परद्रव्य के थे। मेरे कभी नहीं थे। आहाहा! यह भेदज्ञान... भेदज्ञान। इसका नाम भेदज्ञान, इसका नाम सम्यग्ज्ञान, इसका नाम सम्यग्दर्शन। यहाँ से धर्म की शुरुआत होती है, सम्यग्दर्शन बिना धर्म की शुरुआत होती नहीं। बिना एक के शून्य। कुछ कीमत नहीं। आहाहा!

परमेश्वर सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव जिन परमेश्वर परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक एक समय की ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो गये। उनकी इच्छा बिना वाणी निकली। भगवान को इच्छा होती नहीं। वे तो वीतराग हैं, सर्वज्ञ है। इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकली। उसे सुनकर गणधरदेव ने बारह अंग रचे। बारह अंग की रचना में यह आया है। समझ में आया?

मेरा मैं ही पहले था,... आहाहा! मैं ज्ञायकमूर्ति तो ज्ञायकमूर्ति ही पहले था। और **परद्रव्य का परद्रव्य पहले था;...** गत काल में भी राग, पुण्य तो मुझसे भिन्न ही थे। अब भविष्य। **यह परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा,...** मेरा पुण्य-भविष्य में शुभभाव मेरा होगा। —कि नहीं। मेरी लक्ष्मी भविष्य में होगी, मुझे शरीर मिलेगा, मुझे संहनन मिलेंगे, मुझे समवसरण मिलेगा। वह तो परद्रव्य है। **यह परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा,...** मैं भविष्य में अल्प काल भी जहाँ रहूँ, वहाँ संसार में भले परन्तु... है न? वह **परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा,...** पुण्य परिणाम भविष्य में मेरा होगा नहीं। ओहोहो! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधती है, वह भाव भी शुभराग है। तो कहते हैं कि धर्मी शुभराग वर्तमान में मेरा नहीं और भविष्य में शुभराग मेरा होगा नहीं। आहाहा! षोडश कारणभावना आती है या नहीं? वह मैं नहीं, हों! नहीं, वह नहीं। जिससे बन्धन हो, ऐसे भाव वर्तमान में मेरे नहीं और भविष्य में मेरे (होंगे) नहीं। आहाहा! समझ में आया? शान्ति से स्वाध्याय करे नहीं, मनन करे नहीं, तुलना करे नहीं, फिर अपनी कल्पना से समझ ले और मान ले कि धर्म है। ऐसी वस्तु नहीं है। समझ में आया? अनन्त काल बीता। इसने एक सेकेण्ड भी राग से भिन्न भेदज्ञान कभी नहीं किया। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो न!

सम्यग्दृष्टि को तीर्थंकर गोत्र का शुभभाव आता है। तो कहते हैं कि शुभभाव में मैं नहीं, शुभभाव मुझमें नहीं। आहाहा! और वह माने कि मुझे तीर्थंकरगोत्र बँधे तो मुझे लाभ होगा। लाभ कहाँ से होगा? शुभराग ही मेरा नहीं, मुझे लाभ कहाँ से होगा? समझ में आया? मैं ही मेरा पहले था। यह तो भविष्य की बात (चलती) है। **यह परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा,...** (भविष्य में) समवसरण में मुझे राग होगा, वह मुझे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भविष्य में भी तुम केवलज्ञान प्राप्त करोगे और फिर तुमको समवसरण होगा और... क्या कहते हैं? गन्धकुटी (होगी)। मुझे नहीं होगी, मुझे नहीं होगी। वह तो जड़ की पर्याय है। मुझमें तो केवलज्ञान होगा, वह मैं हूँ। ऐई! न्यालभाई! आहाहा! अरे! कभी अपनी क्या चीज़ है और अपने से पर को कैसे अपनाता हूँ, इसकी खबर नहीं।

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त मुनि महामुनि भावलिंगी परमेश्वर का अन्दर स्पर्श किया है। चारित्रदशा में आनन्द में रमते हैं। कहते हैं, विकल्प आ गया, शास्त्र बन गया। देखो! भाई! इस विकल्प में मैं नहीं, हों! और शास्त्र बनता है, उसमें मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं नहीं, वहाँ मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, उसमें मैं हूँ, हों! समझ में आया? मेरा चैतन्यस्वरूप सनाथ भगवान आत्मा मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी भूतकाल में भी रहा, वर्तमान में भी ऐसा ही हूँ और भविष्य में मैं ऐसा ही रहूँगा। आहाहा!

परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा,... सम्यग्दृष्टि सम्यक् था, भान था। भविष्य में पुण्य-पाप मेरे नहीं होंगे। मैं पुण्य करूँगा और... परन्तु पुण्य-पाप मेरे ही नहीं होंगे, फिर करे किसे? आहाहा! **परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा, इसका मैं भविष्य में नहीं होऊँगा...** वे मेरे नहीं होंगे, मैं पुण्य-पाप का नहीं होऊँगा। पुण्य-पाप मेरे नहीं होंगे, मैं पुण्य-पाप का नहीं होऊँगा। आहाहा! भविष्य में। सामान्य बात करके फिर वर्तमान, भूत और भविष्य की (तीन काल की) बात की है। कितना स्पष्टीकरण किया है! ओहोहो! दिगम्बर सन्त मुनि जंगल में बसनेवाले जगत की कुछ पड़ी नहीं उनको। परन्तु ऐसा विकल्प आ गया तो कहते हैं, प्रभु! उस विकल्प में मैं वर्तमान में नहीं, हों! मैं उसमें नहीं। मैं तो मेरे ज्ञानस्वरूप में हूँ। और वाणी रची तो वाणी में मैं नहीं, हों! वाणी में मैं नहीं आया और वाणी में मैं नहीं आया और वाणी मुझमें नहीं आयी। आहाहा! क्यों ज्ञानचन्दजी! कितना स्पष्टीकरण करते हैं! कितना यथातथ्य! यथातथ्य बात! त्रिकाल सर्वज्ञ से सिद्ध हुई परमात्मा के मुख से निकली, ऐसी बात सिद्ध करते हैं।

भगवान! तू ऐसा है, तू निर्णय कर। निर्णय कर, निर्णय कर, निर्णय दूसरा हो तो बदल डाल। आहाहा! चक्रवर्ती के राज में किस प्रकार रहे ऐसी वस्तु हो तो? राज में कहाँ है? समकिती चक्रवर्ती के राज में है ही नहीं।

मुमुक्षु : शरीर में नहीं, फिर राज में कहाँ से हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर में नहीं, राग में नहीं। चक्रवर्ती के पद में पड़ा हो और जरा अशुभराग आ गया, उसमें आत्मा नहीं मानता, मैं आत्मा उसमें हूँ ही नहीं। मैं उसमें

नहीं, वह मुझमें नहीं। ऐसा भेदज्ञान चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि को भी वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? चक्रवर्ती इन्द्र... आता है या नहीं? 'इन्द्र सरीखी सम्पदा, चक्रवर्ती का...' आता है न? भाई! क्या है? 'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग, कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोक।' आता है न? भाई! यह चिल्लाहट मचाते हैं, अररर! पुण्य को विष्टा कहते हैं! अरे! सुन न! भगवान ने तो पुण्य को जहर कहा है। देखो न! यहाँ तो अजीव कहा है। मोक्ष अधिकार में पुण्य को तो जहर कहा है। भगवान आनन्दकन्द अमृत में पुण्य कहाँ से आया? वह तो जहर है। लोग चिल्लाहट मचाते हैं।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत की मूर्ति है न, प्रभु! उस अमृत की मूर्ति से विरुद्ध भाव है। यहाँ लिखा है, भाई! उसमें—टीका में। कि राजसेवक, कोई राजसेवक हो, वह राजसेवक राजा के शत्रु का संसर्ग और प्रीति करे तो वह राजा का आराधक नहीं। आज अभी देखा। कहा, क्या है इसमें? कोई राजा का सेवक राजा के विरुद्ध शत्रु की सेवा करे, संसर्ग करे तो राजा का आराधक नहीं। उसी प्रकार भगवान परमात्मा चिदानन्दस्वरूप, उसका शत्रु पुण्य-पाप के भाव वेरी, उनका संसर्ग करे, वह परमात्मा का आराधक नहीं। भाई! पण्डितजी! आज अभी देखा न! कहा, पण्डित जयचन्द्रजी ने क्या लिखा है? लो, यही पृष्ठ निकला, देखो! यही पृष्ठ। देखो! '**यथा कोपि**' जयसेनाचार्य की टीका है। '**राजसेवकपुरुषो**' जयसेनाचार्य दिगम्बर सन्त हुए हैं, उनकी टीका है। '**कोपि राजसेवकपुरुषो राजशत्रुभिः**' राजा का सेवक कहलाये और राजा के शत्रु का '**सह संसर्ग कुर्वाण**' संसर्ग करे, परिचय करे, '**सन् राजाराधको न भवति**' वह राजा का आराधक नहीं होता, राजा का सेवक नहीं कहलाता। '**तथा परमात्माऽराधक**' परमात्मा अपना चैतन्यस्वरूप शुद्ध परम आत्मा अर्थात् परम आनन्दकन्द शुद्ध ज्ञायक का आराधक पुरुष '**पुरुषस्तत्प्रतिपक्षभूतमिथ्यात्वरागादिभिः**' भगवान आत्मा से विपरीत मिथ्या अभिप्राय और राग-द्वेष आत्मा से विपरीत है, पुण्य-पाप। '**रागादिभिः परिणममाणः परमात्माराधको न भवतीति**' वह आत्मा का आराधक नहीं होता। आराधक नहीं। आहाहा! भिन्न रहकर आनन्द से परिणमता है, ऐसा कहते हैं मूल तो। समझ में आया? '**परिणममाणः**' लिया है। पुण्य-पापरूप परिणमता है, वह चैतन्य का आराधक नहीं। वह आत्मा का विरोधी भाव है। विरोधी भाव से भिन्न पड़कर निज शुद्ध आनन्द में और

ज्ञायक में परिणमन करता है, राग को भिन्न रखकर, वह आत्मा का आराधक है। आहाहा! समझ में आया? भाई! जयसेनाचार्य है, हों! जयसेनाचार्य की टीका है। यह अमृतचन्द्राचार्य की टीका चलती है। कहो, बराबर है या नहीं?

राजा का सेवक राजा के विरोधी का संसर्ग, परिचय करे, लड्डू जीमावे, आवकार करे, वह राजा का विरोधी है। वह राजा का आराधक नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसके विरोधी पुण्य-पाप, शरीरादि भाव, मिथ्यात्व... यहाँ तो मिथ्यात्व, रागादि भाव लिये हैं। मिथ्या अभिप्राय-पुण्य मेरा है, पाप में मजा है, ऐसा मिथ्या अभिप्राय और राग-द्वेष, वे आत्मा चैतन्य के विरोधी हैं। उनका परिणमन करे, वह आत्मा का आराधक नहीं। समझ में आया? ओहो! आचार्यों ने दिगम्बर सन्तों ने तो बात को एक-एक को छिलके निकालकर साफ की भाँति खुल्ली कर दी है। फोलवा समझते हो? क्या कहते हैं? खुल्ली... खुल्ली कर डाली है। एक बात को स्पष्ट (किया है)। यह मार्ग है। समझ में आया? इसमें गड़बड़ी करेगा तो तेरे घर की है। मार्ग वैसा नहीं। न्यालभाई! आहाहा!

भगवान! भगवानरूप से जीव को बुलाते हैं, हों! ७२ गाथा में है। भगवान आत्मा, ऐसा कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्य। भगवान आत्मा... ७२ गाथा में है। ७२ गाथा है न? ७२। ७२ को क्या कहते हैं तुम्हारे? बहत्तर। देखो! ७२। आस्रव शैवाल-मैल है। टीका है। पुण्य-पाप के भाव तो मैल है। जैसे **जल में शैवाल...** शैवाल होती है न? काई। काई मैल है, वैसे आत्मा में पुण्य-पाप तो मैल है। देखो! **आस्रव मलरूप—मैलरूप अनुभव में आते हैं...** टीका है, ७२ की पहली लाईन। इसलिए **अशुचि है (-अपवित्र है) और भगवान आत्मा तो...** ऐसा पाठ है। ७२ गाथा की टीका है। भगवान आत्मा तो सदा निर्मल है, प्रभु! वह तो अति निर्मल है, उसे मैं आत्मा कहता हूँ। पुण्य-पाप के भाव, जैसे जल में शैवाल है, वैसे मैलरूप अनुभव में आते हैं। वे कैसे आत्मा हो? मैल आत्मा में कहाँ से आया? समझ में आया?

यहाँ भी कहते हैं कि **परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा, इसका मैं भविष्य में नहीं होऊँगा...** यह तो नास्ति से कहा। **मैं अपना ही भविष्य में होऊँगा,...** मैं अपना ही भविष्य

में होऊँगा। मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूपी मुझमें रहूँगा भविष्य में। आहाहा! **इस (परद्रव्य) का यह (परद्रव्य) भविष्य में होगा।** इनके ये होंगे। पुण्य-पाप के पुण्य-पाप भविष्य में होंगे, मेरा मैं होऊँगा। मेरा इनमें नहीं, इनका मुझमें नहीं।

ऐसा जो स्वद्रव्य में ही सत्यार्थ आत्मविकल्प होता है... लो! ऐसा जो स्वद्रव्य अर्थात् चैतन्य भगवान में ही सच्चा आत्मविकल्प-निर्णय करता है, निर्णय हुआ है, **वही प्रतिबुद्ध...** ज्ञानी है। वह समकिती है। यह ज्ञानी का लक्षण है। उससे ज्ञानी पहिचाना जाता है। यह अधिकार पूरा हुआ, यहाँ पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १२, मंगलवार, दिनांक - २५-१०-१९६६
गाथा - २० से २२, श्लोक-२२, गाथा २३ से २५, प्रवचन - ८५

२०-२१-२२ का भावार्थ। कोई कहता है न कि यह समयसार है, वह तो छठवें गुणस्थान के ऊपर के लोगों के लिये है, यह सब। ऐसा कितने ही कहते हैं न बहुत? यहाँ तो कहते हैं कि अभी अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिये बात है।

मुमुक्षु : छठवें गुणस्थानवाले को तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो हो गया है। अब उसे कहाँ समझना है? भान हो गया है। उसे कहाँ समझना है? वह तो चारित्रदशा आनन्द में रमणता है। यहाँ तो देखो न, यह क्या कहते हैं? पहले से अप्रतिबुद्धि का लक्षण क्या, यह तो पूछा है। अप्रतिबुद्ध अज्ञानी कैसे पहिचाना जाये, ऐसा तो पहले पूछा है। मिथ्यादृष्टि जिसे आत्मा का भान नहीं, अज्ञान है, उसकी पहिचान किस लक्षण से होती है? यह तो प्रश्न है। यहाँ तो ज्ञानी-अज्ञानी की ही मुख्यरूप से पूरे समयसार में बात है।

भावार्थ - जो परद्रव्य में आत्मा का विकल्प करता है,... अर्थात् कि आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति है, उसे भूलकर पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् राग, दया, दान, व्रत और काम, क्रोध के परिणाम या शरीरादि—वह मेरे, ऐसा जो विकल्प अर्थात् अध्यवसाय करता है, वह तो अज्ञानी है। यहाँ तो वहाँ से बात ली है। शुरुआत से ली है। जो कोई भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप सर्वज्ञ ने देखा हुआ चैतन्यतत्त्व... आयेगा २३-२४ में। ऐसे आत्मा को आत्मारूप से अन्तर्मुख नहीं स्वीकारते हुए बहिर्मुख से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के भाव और कर्म और शरीर, यह सब हम हैं। क्योंकि कहीं स्वयं है, उसका अस्तित्व तो मानना पड़ेगा न इसे? जिस प्रकार से अपनी अस्ति ज्ञायकस्वरूप से है, उस प्रकार से अस्ति प्रतीति में, न आवे तो कहीं हूँ, ऐसी प्रतीति तो इसे करनी पड़ेगी। समझ में आया? तो कहते हैं कि चैतन्य ज्ञानस्वरूप उपयोग नित्य केवलज्ञान, केवलदर्शन

उपयोग। केवल अर्थात् अकेला ज्ञान-दर्शन जिसका स्वरूप है, ऐसे आत्मा को जिसने जाना नहीं, माना नहीं, वह दूसरे में अपनेरूप से मानकर-जानकर टिक रहा है। कहो, समझ में आया इसमें?

जो परद्रव्य में... अर्थात् ज्ञायकस्वभाव ऐसा स्वतत्त्व, इसके अतिरिक्त परद्रव्य अर्थात् पुण्य-पाप, कर्म, शरीर आदि, उनमें अपनेपन का विकल्प अर्थात् वह मैं हूँ, ऐसा मानता है, वह तो अज्ञानी है। मूल बात है, मूल। **और जो अपने आत्मा को ही अपना मानता है,...** पहले पद में यह लिया है। अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्य है, परिपूर्ण शुद्ध आनन्द है, ऐसा जो अन्तर्मुख होकर जाने और भासित हो, भावभासन होकर जिसे अनुभव है, **वह ज्ञानी है।** कहो, समझ में आया? दो बातें की यहाँ तो, अज्ञानी और ज्ञानी की। तीन गाथा में पाँच पद तो अज्ञानी के और छठवाँ पद क्या? यह तीन गाथा गयी न? तीन में अज्ञानी की बात की और एक चौथा पद। पाँच पद अज्ञानी के, छठवाँ पद एक ज्ञानी का वर्णन किया। एक ही पद से बात की है। अन्तिम नहीं? **'भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो'** समझ में आया?

चैतन्य महाभगवान शान्त सागर का महा चैतन्य रत्नाकर, उसमें तो अकेले रत्न ही चैतन्य आनन्द आदि भरे हैं। उसमें कोई पुण्य-पाप का विकल्प शरीर-वाणी उसमें है नहीं। ऐसे आत्मा को अपनेरूप से अन्तर में नहीं माना, इसलिए उसका मानना विकार और पर में गया तो कहते हैं कि वह जो स्वरूप है, उसे न मानकर, पर को अपना माना। वह अज्ञानभाव है, मिथ्यात्वभाव है, वह संसार के दु:ख का मूलकारण है।

और जो अपने आत्मा को... अर्थात् जैसा उसका स्वरूप ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि शुद्ध है, उसे अन्तर्मुख होकर, उसका स्वाद लेकर, आस्वाद लेकर, अनुभव करके **आत्मा को ही अपना मानता है, वह ज्ञानी है...** ज्ञान में आयी हुई चीज़ जानकर मानी है, उसे ज्ञानी कहा जाता है। यह सब बात आ गयी। **यह अग्नि-ईंधन के दृष्टान्त से दृढ़ किया है।**

★ ★ ★

कलश - २२

अब, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

(मालिनी)

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं,
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेक:,
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम्।।22।।

श्लोकार्थ : [जगत्] जगत् अर्थात् जगत् के जीवों! [आजन्मलीनं मोहम्] अनादि संसार से लेकर आज तक अनुभव किये गये मोह को [इदानीं त्यजतु] अब तो छोड़ो और [रसिकानां रोचनं] रसिकजनों को रुचिकर, [उद्यत् ज्ञानम्] उदय हुवा जो ज्ञान उसको [रसयतु] आस्वादन करो; क्योंकि [इस] इस लोक में [आत्मा] आत्मा [किल] वास्तव में [कथम् अपि] किसी प्रकार भी [अनात्मना साकम्] अनात्मा (परद्रव्य) के साथ [क्व अपि काले] कदापि [तादात्म्यवृत्तिम् कलयति न] तादात्म्यवृत्ति (एकत्व) को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आत्मा [एक:] एक है, वह अन्य द्रव्य के साथ एकतारूप नहीं होता।

भावार्थ : आत्मा परद्रव्य के साथ किसी प्रकार किसी समय एकता के भाव को प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार आचार्यदेव ने, अनादि काल से परद्रव्य के प्रति लगा हुवा जो मोह है, उसका भेदविज्ञान बताया है और प्रेरणा की है कि इस एकत्वरूप मोह को अब छोड़ दो और ज्ञान का आस्वादन करो; मोह वृथा है, झूठा है, दु:ख का कारण है।।22।।

कलश - २२ पर प्रवचन

अब, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं - इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं।

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं,
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः,
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम्॥२२॥

श्लोकार्थ - जगत् अर्थात् जगत् के जीवों! जगत को कहते हैं अर्थात् कि जगत के जीवों को कहते हैं। हे जगत के जीवो! **अनादि संसार से लेकर...** जो संसार की विकारदशा की आदि नहीं। अनादि से जीव अपने आनन्द रसिकस्वरूप को अनादि से भूला हुआ है। इसलिए उन्हें कहते हैं कि हे आत्माओं! **अनादि संसार से लेकर आज तक...** अनन्त काल, निगोद के काल से (लेकर) नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार (गया)। मिथ्यादृष्टिरूप से दिगम्बर जैन का साधु दिगम्बर हुआ। व्यवहार। तो **आज तक अनुभव किये गये मोह को...** अनन्त काल में इसने मोह का ही अनुभव किया है। समझ में आया? पर शरीरादि को अनुभव नहीं किया तथा आत्मा का अनुभव नहीं किया। संयोगों का कभी अनुभव नहीं किया, ऐसे इसने आत्मा को कभी अनुभव नहीं किया। क्या अनुभव किया है?

अनादि निगोद से लेकर, **अनुभव किये गये मोह को...** मिथ्या भ्रम। यह चैतन्य के स्वभाव की आड मारकर विकल्प को, राग को अपना मानता है, ऐसा जो मोह, ऐसा सिद्ध किया। अनादि से मोह था। पर्याय में मोह अनादि से था। शुद्ध आत्मा है। द्रव्य-गुण से है, तो पर्याय से भी शुद्ध था, ऐसा है नहीं। समझ में आया? द्रव्य-गुण शुद्ध, इसलिए पर्याय से शुद्ध था अनादि से, ऐसा नहीं। इसलिए यह सिद्ध किया कि **अनादि संसार से लेकर आज तक अनुभव किये गये मोह को अब तो छोड़ो...** ऐसा कहते हैं। अरे! प्रभु! अब तो छोड़! बहुत किया तूने। आहाहा!

आत्मा आनन्द... देखो! कहेंगे। **अब तो छोड़ो...** अब तो छोड़ो। इसका अर्थ कि अब छोड़ा जा सकता है। भले अनादि काल का मोह सेवन किया, परन्तु छोड़ा जा सकता है। अनादि काल का मोह अर्थात् पर को, राग को अपने अनुभव में लिया, इसलिए छोड़ा नहीं जा सकता, ऐसा नहीं। समझ में आया? इसलिए आचार्य कहते हैं

कि अब तो छोड़ो। छोड़ा जा सकता है, हों! ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तू आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है न! सर्वज्ञ भगवान ने तुझे केवलज्ञान और, केवल अर्थात् अकेला ज्ञान और अकेले दर्शनमय तुझे भगवान ने देखा। तो यह वस्तु दूसरे प्रकार से कैसे हो? भगवान ने तुझे ऐसा देखा और तू मानता है दूसरे प्रकार से। समझ में आया? यहाँ तो पहले से शुरु की है। वे कहते हैं कि समयसार तो छठवें गुणस्थान (वालों के लिये है)। आता है न जरा जयसेनाचार्य का? पंचम गुणस्थान ऊपरवाले को। वह तो राग घटाने की अपेक्षा से बात है।

मुमुक्षु : उसमें लिखा है न दूसरों को गौणरूप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : गौणरूप से। परन्तु यहाँ तो मुख्यरूप से ही यह लिया है। शुरुआत में तो मुख्यरूप से ही यह है। वह तो फिर उस निर्जरा का अधिकार लेते हुए... अधिक लिया है। कहो, समझ में आया?

दो बातें सिद्ध कीं। एक तो वस्तु भगवान आत्मा इसने उसे माना नहीं, इसलिए इसने मोह का अनुभव अनादि से किया। एक (बात)। और अब छोड़ सकता है। अनादि का अनुभव है, इसलिए छोड़ नहीं सकता, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह तो पर्याय का अनुभव, विकार का अनुभव, क्षणिक का अनुभव है। कहो, मालचन्दजी! भाषा देखो न! '**इदानीं**' है न? अब तो छोड़ो, भाई! लो! '**जगदिदानीं त्यजतु**' ऐसा कहकर कहते हैं, प्रभु! तेरे पुरुषार्थ की कमी से मोह का अनुभव है। उल्टे से। सुल्टा तू कर सकता है। तेरे अधिकार की बात है। समझ में आया?

छोड़ो और... छोड़कर क्या हो? **रसिक जनों को रुचिकर....** सम्यग्दृष्टि जीवों को आनन्द के स्वाद से रुचिकर ऐसा आत्मा। समझ में आया? तुझे कहते हैं कि तुझे तो मोह का अनुभव है। अब सम्यग्दृष्टि को तो आनन्द के स्वाद की रुचि से अनुभव है। रसिकजनो, आत्मा के आनन्द के रसिकजनों को, रुचि अर्थात् जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, ऐसे रुचिकर समकिती को रुचिकर ऐसा आत्मा, ऐसा कहते हैं। तुझे कहते हैं कि राग का एकत्व मानकर मोह का अनुभव किया अनादि से। समझ में आया? अब छोड़। छोड़कर क्या (कर)? जो चैतन्य के रसिक, आत्मा के आनन्द के

रसिक जीव, उन आनन्द के रसिकजनों को रुचिकर, आत्मा के आनन्द के स्वाद से यह आत्मा है, ऐसी रुचि जिसे हुई है। तेरा मोह था, उसमें तो आकुलता का अनुभव था। अब आत्मा कैसा? कि रसिकजनों को रुचिकर, रुचिकर है। भगवान अनाकुल आनन्दस्वरूप चैतन्य धर्मीजीव को रुचिकर, वह आत्मा है। दूसरा रुचिकर है नहीं।

उदय हुआ... है। वह भी प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष आत्मा में आनन्द में आवे, ऐसा वह आत्मा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उदय हुआ जो ज्ञान...** प्रगट ज्ञान है, उसे कहते हैं। राग (और) मिथ्यात्व को तो तुझे नया-नया प्रगट करना पड़ता है। आहाहा! समझ में आया? पर को, राग को, विकल्प को अपना मानना, वह तो क्षण-क्षण में नया उत्पन्न करना पड़ता है। यह तो वस्तु त्रिकाल पड़ी ही है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **रसिकजनों को रुचिकर, उदय हुवा जो ज्ञान...** धर्मात्मा जीव को रुचिकर रसिक जीवों को तो आत्मा है। वह तो ज्ञान प्रत्यक्ष प्रगट है। वस्तु ही वह है, चैतन्य ही वह है, ज्ञान ही वह है, नित्य वह है। ध्रुव ऐसा का ऐसा पड़ा हुआ सत्त्व है वह तो। उसे अनुभव करो, ऐसा कहते हैं। मोह को छोड़कर, मोह का अनुभव छोड़कर आत्मा के आनन्द का स्वाद लो, ऐसा कहते हैं। कहो, सेठी! क्या करना यह (कहते हैं)।

रसिकजनों को रुचिकर,... आत्मा के आनन्द के रसिया, उन्हें रुचिकर ऐसा आत्मा। वह तो उदय हुआ ज्ञान प्रगट है। वस्तु तो ऐसी की ऐसी चैतन्यज्योति पड़ी है। **उसको आस्वाद करो...** लो, उसे अनुभव करो। इसका नाम आत्मा का ज्ञान और आत्म सम्यग्दर्शन है। कहो, समझ में आया? यहाँ तो दो ही बात की, मिथ्यात्व को छोड़कर अनुभव करो। बस, दो बातें की। फिर आगे बढ़ना वह और बाद में कहेंगे। समझ में आया?

उदय हुवा जो... वहाँ भी उदय हुआ ज्ञान है, देखो! आया या नहीं उदय हुआ ज्ञान? उसमें आया था न चारित्र उदय होता है, ज्ञान उदय पाता है, श्रद्धा उदय होती है, ऐसा आया था न? १७ और १८ (गाथा में)। श्रद्धा उदय होती है। पहले ज्ञान होता है, फिर श्रद्धा उदय होती है, पश्चात् चारित्र उदय होता है, ऐसा लिया है। ज्ञान प्राप्त होता है। फिर उसे श्रद्धा उदय होती है। पहले आत्मा लेना है न? समझ में आया? क्या कहा

और ? वजुभाई ! वजुभाई कहे, क्या कहते हैं यह ? यह १७-१८ में है। देखो ! **मोक्षार्थी पुरुष को प्रथम तो आत्मा को जानना चाहिए...** समझ में आया ? उसे फिर नीचे कहते हैं। देखो ! **आत्मज्ञान से प्राप्त होता,...** देखो ! **अनुभूति है, वही मैं हूँ, ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता, यह आत्मा जैसा जाना, वैसा ही है ऐसी प्रतीति जिसका लक्षण है, ऐसा श्रद्धान उदय होता है....** वह तो प्राप्त होता है, ऐसा लिया। समझ में आया ? पहले ज्ञान लेना है न! है या नहीं ? दूसरे पैराग्राफ में है। देखो ! **यह अनुभूति है, वही मैं हूँ, ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता, यह आत्मा जैसा जाना, वैसा ही है, ऐसी प्रतीति जिसका लक्षण है, ऐसा श्रद्धान उदय होता है, तब समस्त अन्यभावों का भेद होने से निःशंक स्थिर होने में समर्थ होने के कारण आत्मा का आचरण उदय होता हुआ आत्मा को साधता है।** समझ में आया ? ज्ञान से लेना है न, इसलिए ज्ञान में प्राप्त हुआ। फिर ऐसा हुआ और श्रद्धा प्रगट हुई और चारित्र प्रगट होता है। समझ में आया ? उदय-उदय शब्द प्रयोग किया है, लो! नकार में फिर वह लिया है।

ऐसा आत्मज्ञान उदय नहीं होता... ऐसा। समझे न? ऐसा नहीं करता, उसे आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। **उसके अभाव के कारण, नहीं जाने हुए का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान होने से, श्रद्धान भी उदय नहीं होता, तब समस्त अन्यभावों के भेद द्वारा आत्मा में निःशंक स्थिर होने में असमर्थता के कारण आत्मा का आचरण उदय नहीं होने से आत्मा को नहीं साधता।** ऐसा लिया है। समझ में आया ? यह तो महा टीका है। समयसार अर्थात् चौदह पूर्व का जिसमें भण्डार—सार भरा है। समझ में आया ? लोग शान्ति से, धीरे से (समझे तो समझ में आये ऐसा है)। वे कहे, नहीं, वह तो ऊँचेवाले की बात है। तब वे नीचेवाले कुछ समझे नहीं, उसे कहे, समयसार वाँचने जैसा नहीं। यह समयसार अभी वाँचना नहीं। सुनना नहीं। अभी प्रथमानुयोग का अभ्यास करना। ऐसा आता है अभी पत्रिकाओं में। प्रथमानुयोग का अभ्यास करना। यह प्रथा टूट गयी, इसलिए यह सब हो गया। इसलिए प्रथा शुरु कर दो यह। यह समयसार की प्रथा शुरु हो गयी जहाँ हो वहाँ, ऐसा कहना चाहते हैं। भाई ! मूल तो अध्यात्म जो वस्तु है, वही मूल तो सार है। चारों ही अनुयोग में करके करने का तो वीतरागता है। पर की उपेक्षा और स्व की अपेक्षा, यह पूरे चार अनुयोगों का सार है। पर की उपेक्षा और

स्व की अपेक्षा, अर्थात् वीतरागता हुई। समझ में आया? चारों अनुयोगों में यह कहना है। शब्द-शब्द में यह है। चार अनुयोग में वीतरागता उसका तात्पर्य है। वीतरागता का अर्थ? पर की, रागादि की उपेक्षा करके स्व में स्थिर हो, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से, यह करने का है तुझे और यह वस्तु तात्पर्य है।

कहते हैं, **क्योंकि इस लोक में...** लो, भाई! प्रभु! तू कौन है, तुझे खबर नहीं। तू तो ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। कहा न? **उदय हुआ जो ज्ञान...** है न? उदय हुआ ज्ञान प्रगट चैतन्यज्योति है न आत्मा तो। उसे राग और पुण्य और उसमें कैसे? समझ में आया? दया, दान, व्यवहार विकल्प उसमें कैसे? कितने ही कहते हैं न कि व्यवहार पहला। परन्तु व्यवहार कहाँ आया यहाँ? उसमें है नहीं, उसका भान करने में व्यवहार पहला आया कहाँ? आहाहा! परन्तु ऐसा घूँटा है न वाँचकर, इसलिए उसमें से वापस फिरना इसे सुहाता नहीं। यह प्रवाह उपदेश का वापस कम करना, घटाना सुहाता नहीं इसे।

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान उदय हो रहा त्रिकाल, उसे आस्वादो। लो! यह तो वस्तु ही पड़ी है चैतन्यज्योति और ज्ञानरूप से... कहा। **क्योंकि इस लोक में आत्मा वास्तव में किसी प्रकार भी अनात्मा (परद्रव्य) के साथ कदापि (किसी काल में) तादात्म्यवृत्ति (एकत्व) को प्राप्त नहीं होता,...** क्या कहते हैं? इस जगत में भगवान जो आत्मा है, है वह ज्ञान चैतन्यस्वरूप परमात्मा स्वयं है, वह वास्तव में किसी प्रकार से, किसी प्रकार से (अर्थात्) निश्चय या व्यवहार या किसी प्रकार से, अनात्मा अर्थात् रागरूप, शरीररूप, विकाररूप, कर्मरूप अनात्मा के साथ ऐसे भाव के साथ और किसी काल में। ऐसे भाव के साथ और किसी काल में भी तादात्म्यवृत्ति अर्थात् राग और पुण्य और आत्मा का एकत्व ऐसा कभी उसमें होता नहीं। समझ में आया?

इस लोक में आत्मा... आत्मा है, वह **वास्तव में...** यथार्थरूप से देखो (तो) **किसी प्रकार से...** किसी प्रकार से। भाई! व्यवहार से तो है न, व्यवहार से तो है न? ऐसा कहते हैं न लोग? व्यवहार से तो कर्म के साथ सम्बन्ध है या नहीं? यहाँ तो कहते हैं किसी प्रकार से पर के साथ कुछ सम्बन्ध हुआ ही नहीं। मानता है, ऐसा कहते हैं।

किसी प्रकार से अनात्मा... अनात्मा शब्द से पुण्य-पाप, कर्म और शरीर आदि सब। समझ में आया? यह आगे लेंगे २३ गाथा में बद्ध-अबद्ध शब्द लेंगे। बद्ध और अबद्ध लेंगे। बँधे हुए के साथ और अबद्ध बाह्य। किसी के साथ एकत्व, किसी काल में भी, किसी काल में भी, निगोद के काल में भी... आहाहा! समझ में आया? चैतन्यशक्ति का सत्त्व जो है, चैतन्य सत्त्व जो है, चैतन्य सत्त्व है, वह किसी काल में कोई रागादि, शरीरादिरूप एकत्व को प्राप्त हुआ नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : तादात्म्य हुआ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तादात्म्य हुआ नहीं तो एकरूप हुआ नहीं, इतना। इतना अर्थात् क्या और दूसरा? क्या और उसे कहना है?

मुमुक्षु : तादात्म्य हुआ.... सामान्य हुआ तो सही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ हुआ परन्तु? एकरूप हुआ नहीं। तीन काल में हुआ नहीं। तीन शब्द हैं।

किसी प्रकार भी अनात्मा (परद्रव्य) के साथ कदापि... यह तीन तो शब्द हैं। है न इसमें? '**कथमपि साकमेकः**' है न? '**किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम्**' आहाहा! भाषा देखो न! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति, वह **किसी प्रकार... वास्तव में किसी प्रकार भी अनात्मा (परद्रव्य) के साथ...** अर्थात् पुण्य-पाप और शरीर-कर्म के साथ **किसी काल में...** भाई! निगोद के काल में तो वहाँ एकरूप...? नहीं, नहीं। चैतन्य ज्ञायकस्वरूप तो ज्ञायक ही रहा है वहाँ भी। समझ में आया? आता है न प्रवचनसार में, नहीं? १९९ गाथा। ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। अन्य प्रकार से अध्यवसित किया है। ऐसा पाठ है। निर्णय झूठा किया है। समझ में आया?

देखो! २००वीं गाथा है। अन्त में। **(जो) अनादि संसार से इसी स्थिति में (ज्ञायकभावरूप ही) रहा है....** समझ में आया? टीका में ही है, हों! '**मासंसारमनयैव स्थित्या स्थितं**' अनादि स्थिति ऐसी की ऐसी रही हुई है। **अनादि संसार से इसी स्थिति में (ज्ञायकभावरूप ही) रहा है और जो मोह द्वारा दूसरे प्रकार से अध्यवसित होता है (दूसरे प्रकार से जाना जाता है-माना जाता है),....** वस्तु तो ज्ञायक, वह ज्ञायक ही रही

है। वस्तु वह दूसरी होती होगी? ऐसा छठी गाथा में लिया न समयसार में। ज्ञायक जड़रूप होता नहीं। जड़ अर्थात् पुण्य-पापरूप हुआ नहीं। वस्तु जो है ऐसी चैतन्यरस का कन्द द्रव्य है, वह द्रव्य उन पुण्य-पापरूप कब हो? समझ में आया? परन्तु उसे ऐसा हो जाता है। ऐसा होगा, ऐसा हो गया होगा? ऐसा हो गया होगा? इसलिए उसे भरोसा बैठता नहीं। रागमय हुआ है, उसमय हुआ है, तन्मय हो गया लगता है।

कहते हैं कि **किसी प्रकार से...** एक। **अनात्मा के साथ...** दो। अनात्मा अर्थात् राग और पुण्य और पाप। **किसी काल में...** अर्थात् समय में। **तादात्म्यवृत्ति (एकपना)...** लो, चार बोल तो लिये। **तादात्म्यवृत्ति (एकत्व) को प्राप्त नहीं होता,...** कहो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य भी नहीं और राग भी नहीं, ऐसा कहते हैं अभी। यह किसकी माँडी है यह? अभी क्या, भूतकाल में निगोद में था तो भी ज्ञायक, ज्ञायकरूप से ही रहा है। वहाँ तादात्म्यवृत्तिरूप पाया नहीं। तद्रूप पावे तो कभी छूटे नहीं। पाया ही नहीं। मान्यता की है। कहा न यह २०० गाथा प्रवचनसार की। ज्ञेय अधिकार। ज्ञेय अधिकार। ज्ञायक ज्ञेय तो... ज्ञेय अधिकार है न? ज्ञायक तो ऐसा का ऐसा वस्तु रही है। दूसरे प्रकार से अध्यवसाय—निश्चित किया है कि ऐसा नहीं... यह मैं नहीं... यह मैं नहीं... मान्यता में अन्तर किया है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! यह कहेंगे यहाँ। समझे न। प्रसन्न हो... प्रसन्न हो, ऐसा कहेंगे। आगे की गाथा में कहेंगे। ऐसा का ऐसा रहा है, तुझे भेद करके बताते हैं, अब तो प्रसन्न हो। यह कभी दूसरे रूप हुआ नहीं। किसलिए शोर मचाता है कि अरे... अरे! मुझे ऐसा हो गया। नहीं हुआ कभी। आहाहा!

मुमुक्षु : शोर मचाने की आदत पड़ गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदत पड़ी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो यह बात है। दो व्यक्ति हो तो निवृत्ति लेने का समय नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। आदत पड़ गयी है इसलिए न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भगवान को कहते हैं। वह कहाँ मिटावे? मिटावे तो तू मिटा, ऐसा है, क्योंकि तूने अन्य प्रकार से अध्यवसाय से माना है। वह अध्यवसाय तुझे छोड़ना है। आहाहा! यह क्रिया इसको करने की है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसे क्रिया कहा जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रिया नहीं कहलाती? पर्याय का बदलना, वह क्रिया। परिणामी पदार्थ। समझ में आया? यह क्रिया नहीं? बाहर में नहीं दिखती? पर्याय बदले वह बाहर है या नहीं? अन्दर कहाँ घुस गयी थी? द्रव्य तो कायम है वह है। पर्याय बदलती है, वह क्रिया। क्या आया नहीं? वस्तु परिणामी द्रव्य। परिणाम आया न? 'कर्ता परिणामी द्रव्य, कर्मरूप परिणाम; क्रिया पर्याय की फेरनी वस्तु एक त्रय नाम।' अब आयेगा, हों! ८६वीं गाथा। समझ में आया? 'कर्ता परिणामी द्रव्य...' कर्ता कौन? कि परिणमनेवाला, वह द्रव्य। 'कर्मरूप परिणाम...' उसका कर्म अर्थात् कार्य, वह उसका परिणाम है। 'क्रिया पर्याय की फेरनी...' पर्याय का पलटना, वह क्रिया। वह क्रिया नहीं? आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसकी इसे महत्ता दिखती नहीं। यह बाहर की शरीर, वाणी, यह हो, ऐसा हो, अलग हो, इकट्ठा हो। ऐसा हो। अकेला जाये, जंगल में जाये, वस्त्र बदले, तब मैंने क्रिया की। इसे सन्तोष होता है और दूसरे को दिखता है। परन्तु यह बात ही खोटी है। समझ में आया?

आत्मा एक है... क्यों वापस स्थापित करते हैं। **वह अन्य द्रव्य के साथ एकतारूप नहीं होता।** भगवान एक स्वरूप है। चैतन्यस्वरूप है। वह अनेक विकल्प आदि भावरूप एकस्वरूप वह अनेकरूप कभी हुआ ही नहीं। समझ में आया? इसलिए मोह को छोड़ा जा सकता है। रसिकजनों को रसिक ऐसा भगवान आत्मा अनुभव में आ सकता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य का कलश, कलश भरे हैं अमृत से। लो, यह तीन गाथा का एक श्लोक करके सार कहा।

क्योंकि आत्मा एक है... वजन यहाँ है, हों! '**साकमेकः**' यह है न? '**साकमेकः**' वह तो एक है... वह तो एक है... देखो भाषा! वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु...

ज्ञानमूर्ति एक है। **वह अन्य द्रव्य के साथ...** एकत्व कैसे पावे? अनेक विकल्प के साथ एक द्रव्य है, वह एकत्व को कैसे प्राप्त करे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मैंने देखा था न। देखा था मैंने। राणपुर का एक बनिया था। भंगी था, भंगी। भंगी समझे? भंगी। भंगडी होगा। स्वयं को व्यापार था घी का। वह डिब्बा लेकर जाता हो, वह भंगिन साथ में जाती हो, उसमें से सम्बन्ध हो गया, विवाह किया और रहे। जाति को जीमाकर रहा। जाति को जीमाये बिना रहे नहीं। जाति को जीमाकर फिर रखूँगा। भंगी हो तो उसकी जाति के लोगों को... खाट रखे ऐसे खाट। खाटला समझे न? काथी का। खाटला नहीं समझते? चार पाया। काथीवाला। वहाँ वह बैठे। जो उसकी भंगिन से विवाह करना हो तो। नीचे बैठे उसके जितने जाति के ऊपर नहाये। वह पानी गिरे उसके ऊपर। सेठी!

मुमुक्षु : वह कहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ था। थोड़े दिन पहले। इस ओर था। सुना है इस ओर सुना है। यह तो उसके घर में बना है राणपुर में। ... मैंने देखा था। गाँव में रहने आया था न! किसी ने कहा कि... वह क्या कहलाता है? वखारियो। वखारियो-वखारियो। छोटू / नाटा था। यह वखारियो भंगी हुआ है। भंगी माना था। भंगी हुआ है कब?

मुमुक्षु : बनने के बाद तो हो गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हुआ ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह मुफ्त का माना है। यह तो है वह है। आहाहा! भंगी, हों! हरिजन से भी भंगी बहुत हल्के होते हैं। यह हरिजन होगा या भंगी, खबर नहीं।

भावार्थ - आत्मा परद्रव्य के साथ किसी प्रकार किसी समय... देखो! भगवान आत्मा चैतन्यज्योति स्वरूप चैतन्य पिण्ड। वह ज्ञान का ढेला। अकेला ज्ञान सत्त्वस्वरूप प्रभु। अनन्त गुण साथ में भले (हो), परन्तु ज्ञानमूर्ति सूर्य तेज, अकेला चैतन्य का तेज। ऐसा चैतन्य तेज सूर्य। परद्रव्य के साथ अन्धकार-राग अन्धकार है। पुण्य-पाप के भाव,

वे अन्धकार है। शरीरादि अन्धकार अचेतन हैं। उनके **साथ किसी प्रकार किसी समय...** किसी काल में **एकता के भाव को प्राप्त नहीं होता।** थोड़ा भी सत्य इसे निर्णय करना चाहिए। समझ में आया? ऐसा है, वह यह चैतन्य पररूप हुआ नहीं। तेरी मान्यता ने घर घाला है। यह मैं... यह मैं... यह मैं... यह मैं... कहीं इसे चैन नहीं। ऐसा हो तो ठीक... राग हो तो ठीक... यह हो तो ठीक... यह हो तो ठीक, इसने उसे ही आत्मा माना है। समझ में आया? कुछ कषाय मन्द हो, कुछ ऐसा हो और बाहर से कुछ त्याग हो तो दिखाई दे चरणानुयोग के आचरण से कि हम तो ... आत्मा हैं। ऐसा करके बाह्य के बाह्य भाव द्वारा यह जाना जा सकता है, बाह्य भाव द्वारा उसकी पहिचान हो सकती है, यह भी बड़ी शल्य है अन्दर। वह इसे अन्दर में आने नहीं देती। देखो! क्या कहते हैं?

परद्रव्य के साथ किसी प्रकार किसी समय एकता के भाव को प्राप्त नहीं होता। दर्शन-श्रद्धा की मान्यता में तूने माना है। वस्तु तो वस्तुरूप है। एकरूप पायी ही नहीं। उस क्रिया को गुलाँट खाये ज्ञान, ज्ञान स्वरूप है, ऐसा अनुभव हुआ, वह क्रिया हुई। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय क्रिया। **इस प्रकार आचार्यदेव ने, अनादि काल से परद्रव्य के प्रति लगा हुवा जो मोह है, उसका भेदविज्ञान बताया है...** भिन्नता बतलायी है, भाई! भिन्न वे भिन्न हैं। भिन्न हुए, तब इसका अर्थ हुआ कि भिन्न थे। भिन्न हुए, तब इसका अर्थ कि भिन्न थे। थे भिन्न तो भिन्न हुए। एक हो तो भिन्न कैसे हो?

और प्रेरणा की है कि इस एकत्वरूप मोह को अब छोड़ दो... एकत्वरूप मोह को। राग में मैं हूँ, पुण्य में मैं हूँ, इस कषाय की मन्दता में, क्षणिक दशा में, विकृत में मैं हूँ—ऐसे मोह को अब छोड़ो। ऐसा एकपनारूप मोह, ऐसा। **और ज्ञान का आस्वादन करो;...** भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से, पूर्ण रस से भरपूर, उसे आस्वादो। वह राग का आस्वाद लेते हो, वह भ्रम और आकुलता है। वह छूटे तो यहाँ अनाकुलता आत्मा के आनन्द का स्वाद लो। वह स्वाद लेना, इसका नाम धर्म है। आहाहा!

मोह वृथा है,... व्याख्या की, हों! मोह... मोह नहीं कहते? मोह। मोह अर्थात्

निष्फल, मोह अर्थात् फोगट, मोह अर्थात् वृथा। वृथा, झूठा तूने माना है, भाई! भगवान आत्मा ऐसे चैतन्य अकेला ज्ञाता-दृष्टा के रस का कन्द, उसमें झूठा तूने माना। यह राग और पुण्य हो गया, ऐसा माना वह झूठा है, वह मोह है, वृथा है, **झूठा है, दुःख का कारण है।** समझ में आया? कहो, यह तो सरल है, सोभागभाई! सोभागभाई हम आये थे अलीगढ़। अलीगढ़ न? तुम रहते थे वहाँ आये थे। एक व्याख्यान सुनकर ऐसा बोले थे... आहाहा! यह समझे उसे भव न रहे, ऐसा बोले थे, हों! अलीगढ़ आये थे न! तुम्हारा पुत्र भी आया था। बड़ा पुत्र आया था तुम्हारा। यहाँ सुनकर बोले थे कि आहाहा! यह बात जिसे रुच जाये तो भव न रहे। बात बराबर है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - २३-२५

अथाप्रतिबुद्धबोधनाय व्यवसायः क्रियते –

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।
बद्ध-मबद्धं च तहा जीवो बहु-भाव-संजुत्तो।।23।।
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं।।24।।
जदि सो पोग्गल-दव्वीभूदो जीवत्त-मागदं इदरं।
तो सक्को वत्तुं जे मज्झ-मिणं पोग्गलं दव्वं।।25।।

अज्ञान-मोहित-मतिर्ममेदं भणति पुद्गलं द्रव्यम्।
बद्ध-मबद्धं च तथा जीवो बहु-भाव-संयुक्तः।।23।।
सर्वज्ञ-ज्ञान-दृष्टो जीव उपयोग-लक्षणो नित्यम्।
कथं स पुद्गल-द्रव्यीभूतो यद्भणसि ममेदम्।।24।।
यदि स पुद्गलद्रव्यीभूतो जीवत्वमागतमितरत्।
तच्छक्तो वक्तुं यन्ममेदं पुद्गलं द्रव्यम्।।25।।

युगपदनेकविधस्य बन्धनोपाधेः सन्निधानेन प्रधावितानामस्वभावभावानां संयोगवशाद्विचित्रोपाश्रयोपरक्तः स्फटिकोपल इवात्यन्ततिरोहितस्वभावभावतया अस्तमितसमस्तविवेकज्योतिर्महता स्वयमज्ञानेन विमोहितहृदयो भेदमकृत्वा तानेवास्वभावभावान् स्वीकुर्वाणः पुद्गलद्रव्यं ममेदमित्यनुभवति किलाप्रतिबुद्धो जीवः।

अथायमेव प्रतिबोध्यते – रे दुरात्मन् आत्मपन्सन् जहीहि जहीहि परमा-विवेकघस्मरस-तृणाभ्यवहारित्वम्। दूरनिरस्तसमस्तसन्देहविपर्यासानध्यवसायेन विश्वैकज्योतिषा सर्वज्ञज्ञानेन स्फुटीकृतं किल नित्योपयोगलक्षणं जीवद्रव्यं तत्कथं पुद्गलद्रव्यीभूतं येन पुद्गलद्रव्यं ममेदमित्यनुभवसि, यतो यदि कथञ्चनापि जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यीभूतं स्यात् पुद्गलद्रव्यं च जीवद्रव्यीभूतं स्यात् तदैव लवण-स्योदकमिव ममेदं पुद्गलद्रव्यमित्यनुभूतिः किल घटेत्, तत्तु न कथञ्चनापि स्यात्।

तथा हि – यथा क्षारत्वलक्षणं लवणमुदकीभवत् द्रवत्वलक्षणमुदकं च लवणीभवत् क्षारत्वद्रवत्वसहवृत्त्यविरोधादनुभूयते, न तथा नित्योपयोगलक्षणं जीवद्रव्यं पुद्गलद्रव्यीभवत् नित्यानुपयोगलक्षणं पुद्गलद्रव्यं च जीवद्रव्यीभवत् उपयोगानुपयोगयोः प्रकाशतमसोरिव सहवृत्तिविरोधादनुभूयते।

तत्सर्वथा प्रसीद विबुध्यस्व स्वद्रव्यं ममेदमित्यनुभव।।23–25।।

अब अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिए प्रयत्न करते हैं :–

अज्ञान मोहितबुद्धि जो, बहुभावसंयुत जीव है।
''ये बद्ध और अबद्ध, पुद्गलद्रव्य मेरा'' वो कहै।।23।।

सर्वज्ञज्ञानविषै सदा, उपयोगलक्षण जीव है।
वो कैसे पुद्गल हो सके जो, तू कहे मेरा अरे!।।24।।

जो जीव पुद्गल होय, पुद्गल प्राप्त हो जीवत्व को।
तू तब हि ऐसा कह सके, ''है मेरा'' पुद्गलद्रव्य को।।25।।

गाथार्थ : [अज्ञानमोहितमतिः] जिसकी मति अज्ञान से मोहित है [बहुभावसंयुक्तः] और जो मोह, राग, द्वेष आदि अनेक भावों से युक्त है ऐसा [जीवः] जीव [भणति] कहता है कि [इदं] यह [बद्धम् तथा च अबद्धं] शरीरादिक बद्ध तथा धनधान्यादिक अबद्ध [पुद्गलं द्रव्यम्] पुद्गलद्रव्य [मम] मेरा है। आचार्य कहते हैं कि– [सर्वज्ञज्ञानदृष्टः] सर्वज्ञ के ज्ञान द्वारा देखा गया जो [नित्यम्] सदा [उपयोगलक्षणः] उपयोगलक्षणवाला [जीवः] जीव है [सः] वह [पुद्गलद्रव्यीभूतः] पुद्गलद्रव्यरूप [कथं] कैसे हो सकता है [यत्] जिससे कि [भणसि] तू कहता है कि [इदं मम] यह पुद्गलद्रव्य मेरा है? [यदि] यदि [सः] जीवद्रव्य [पुद्गलद्रव्यीभूतः] पुद्गलद्रव्यरूप हो जाय और [इतरत्] पुद्गलद्रव्य [जीवत्वम्] जीवत्व को [आगतम्] प्राप्त करे [तत्] तो [वक्तुं शक्तः] तू कह सकता है [यत्] कि [इदं पुद्गलं द्रव्यम्] यह पुद्गलद्रव्य [मम] मेरा है। (किन्तु ऐसा तो नहीं होता।)

टीका : एक ही साथ अनेक प्रकार की बन्धन की उपाधि की अति निकटता से वेगपूर्वक वहते हुए अस्वभावभावों के संयोगवश जो (अप्रतिबुद्ध–अज्ञानी जीव) अनेक प्रकार के वर्णवाले [1]आश्रय की निकटता से रंगे हुए स्फटिक–पाषाण जैसा है,

---

1. आश्रय = जिसमें स्फटिकमणि रखा हुआ हो वह वस्तु।

अत्यन्त तिरोभूत (ढँके हुये) अपने स्वभावभावत्व से जिसकी समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति अस्त हो गयी है ऐसा है, और महा अज्ञान से जिसका हृदय स्वयं स्वत: ही विमोहित है – ऐसा अप्रतिबुद्ध–अज्ञानी जीव स्व–पर का भेद न करके, उन अस्वभावभावों को ही (जो अपने स्वभाव नहीं हैं, ऐसे विभावों को ही) अपना करता हुआ, पुद्गलद्रव्य को 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव करता है। (जैसे स्फटिकपाषाण में अनेक प्रकार के वर्णों की निकटता से अनेकवर्णरूपता दिखाई देती है, स्फटिक का निज श्वेत–निर्मलभाव दिखायी नहीं देता, इसी प्रकार अज्ञानी को कर्म की उपाधि से आत्मा का शुद्धस्वभाव आच्छादित हो रहा है–दिखायी नहीं देता; इसलिए पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है।) ऐसे अज्ञानी को अब समझाया जा रहा है कि – रे दुरात्मन्! आत्मघात करनेवाले! जैसे परम अविवेकपूर्वक खानेवाले हाथी आदि पशु सुन्दर आहार को तृण सहित खा जाते हैं, उसी प्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़, छोड़। जिसने समस्त सन्देह, विपर्यय, अनध्यवसाय दूर कर दिये हैं और जो विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने के लिए एक अद्वितीय ज्योति है, ऐसे सर्वज्ञज्ञान से स्फुट (प्रगट किये गये जो नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो गया कि जिससे तू यह अनुभव करता है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'? क्योंकि यदि किसी भी प्रकार से जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो, तभी 'नमक के पानी' इस प्रकार के अनुभव की भाँति ऐसी अनुभूति वास्तव में ठीक हो सकती है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'; किन्तु ऐसा तो किसी भी प्रकार से नहीं बनता।

दृष्टान्त देकर इसी बात को स्पष्ट करते हैं :– जैसे खारापन जिसका लक्षण है, ऐसा नमक पानीरूप होता हुआ दिखायी देता है और द्रवत्व (प्रवाहीपन) जिसका लक्षण है, ऐसा पानी नमकरूप होता दिखायी देता है, क्योंकि खारेपन और द्रवत्व का एक साथ रहने में अविरोध है, अर्थात् उसमें कोई बाधा नहीं आती, इस प्रकार नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखायी नहीं देता और नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्य होता हुआ देखने में नहीं आता क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है; जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते। इसलिए तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो, (अपने चित्त को उज्ज्वल करके) सावधान हो और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव कर।

भावार्थ : यह अज्ञानी जीव पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है; उसे उपदेश देकर सावधान किया है कि जड़ और चेतनद्रव्य दोनों सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं, कभी भी किसी भी प्रकार से एकरूप नहीं होते ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा है; इसलिए हे अज्ञानी! तू परद्रव्य को एकरूप मानना छोड़ दे; व्यर्थ की मान्यता से बस कर।

गाथा - २३-२५ पर प्रवचन

लो! **अब अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिए प्रयत्न करते हैं** - यहाँ तो बात ऐसी है। अज्ञानी को समझाने का प्रयत्न करते हैं। ज्ञानी को समझाने का प्रयत्न है यह? वे कहे, यह तो छठवें गुणस्थानवाले का, एक व्यक्ति कहे कि बारहवें गुणस्थानवाले की बात है। हमारे सम्प्रदाय में ऐसा कहते थे। यह तो सब बारहवें गुणस्थान की बात है समयसार। ठीक! परन्तु यह अप्रतिबुद्ध को समझाने का प्रयत्न करते हैं। अनादि का अप्रतिबुद्ध, उसकी पहिचान करायी। उसे अब समझाते हैं। अनादि का अप्रतिबुद्ध कैसे पहिचाना जाये? उसके लक्षण कहे कि पर को अपना मानता है इस विधि से, वह स्वयं अप्रतिबुद्ध है। उसे अब समझाते हैं। समझ में आया? जीव-अजीव का अधिकार है। जीव को जानता नहीं, उसे अप्रतिबुद्ध कहते हैं। वह नहीं जानता, उसको समझाते हैं, इस बात का अधिकार चलता है। जीव-अजीव अधिकार चलता है।

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहु-भाव-संजुत्तो॥२३॥
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं॥२४॥
जदि सो पोग्गल-दव्वीभूदो जीवत्त-मागदं इदरं।
तो सक्को वत्तुं जे मज्झ-मिणं पोग्गलं दव्वं॥२५॥

भाषा देखो! कर्म से-फर्म से नहीं, किसी से नहीं।

आहाहा! यह जंगल में कुन्दकुन्दाचार्यदेव जब गाथा... अन्दर ज्ञान में क्षयोपशम में ज्ञान तैरता होगा, उसमें विकल्प उठा होगा और तब यह गाथा रच गयी होगी। उस

जंगल में। आहाहा! आत्मा को उतारा है नीचे। गया था राग में। उतर जा, भाई! वहाँ से उतर जा, यहाँ आ।

अज्ञान से मोहित मति... देखो! ऐसा लिया है पहले से ही, हों! कर्म के कारण से ऐसा है और ढींकणा के कारण से ऐसा है, यह बात है नहीं इसमें। यह तो दूसरे शास्त्र में निमित्त का ज्ञान कराने के लिये बात है।

मुमुक्षु : दोनों शास्त्र सच्चे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सच्चे हैं। खोटा किसने कहा? यहाँ अपनी भूल से होता है। वहाँ भूल में निमित्त कौन था, ऐसा दूसरे शास्त्र ने बतलाया है। कोई दूसरे कर्म ने यह कराया है, यह बात कहीं हो नहीं सकती तीन काल में।

मुमुक्षु : कर्मेषु ऐसा बड़े अक्षर में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले लिखा हो। बड़े अक्षर में लिखा हो तो क्या है? गोम्मटसार में आते थे न इतने-इतने अक्षर। गोम्मटसार। यह तो छोटे अक्षर में है। गोम्मटसार पाँच भाग, हों! ऐसे इतने-इतने। बड़े अक्षर में हो या छोटे अक्षर में हो। भगवान! तू भूला, यह बात सच्ची। परन्तु उस भूल में कारण तेरा है। तब दूसरी चीज़ को निमित्त कहा जाता है। ऐसी है वस्तु। वरना तो यह उपदेश किसे दे? भाईसाहब! कर्म छोड़ न भाई! कर्म छोड़ न। यहाँ तो अज्ञानी को कहते हैं, अज्ञान तेरी बुद्धि है, (उसे) छोड़, ऐसा कहते हैं। भाईसाहब कर्म छूट जा, हों! अब इसे धर्म करना है।

मुमुक्षु : कर्म की पूजा....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म की पूजा। बात सच्ची, हों! पूजा आती है या नहीं? सर्राफजी! पूजा आती है न। आती है न वह ज्ञाना... क्या कहलाती है? कर्म की पूजा। अन्तराय पूजा। अन्तराय की पूजा। कर्म की पूजा हो, भाई? वह तो उसका अभाव करने का शुभ विकल्प है, इस प्रकार से पूजा की भक्ति है भाव करने की। कर्म की जड़ की पूजा होती होगी? कर्म बेचारे को खबर नहीं कि हम कौन जगत में चीज़ हैं। जड़-मिट्टी धूल है। तू भूला, इसलिए उसका नाम पड़ा कर्म। क्योंकि तूने विकारी परिणाम किये,

तब वह तो परमाणु थे अमुक जाति के। उनकी पर्याय में उस प्रकार का नाम पड़ा कि यह ज्ञानावरणीय, यह मोहनीय, यह फलाना... यह फलाना... उसमें नाम था नहीं। उस पर्याय में उसरूप से पड़ा। अब उसे तू पूजने (निकला)। उसे पूजना है। उसे पूजना है या यहाँ पूजना है? आता है या नहीं तुम्हारे? हुआ होगा या नहीं? चिमनभाई! अन्तराय-बन्तराय की पूजा की होगी या नहीं? की। कहाँ गये मणिभाई? सब पूजा-बूजा की होगी या नहीं कर्म की? हाँ की है, लो। कर्म को बहुमान दिया, वह कर्म की पूजा, उसमें आत्मा की अपूजा। लो! समझ में आया?

पहले से शुरु किया। देखा!

अज्ञान मोहितबुद्धि जो, बहुभावसंयुत जीव है।
'ये बद्ध और अबद्ध, पुद्गलद्रव्य मेरा' वो कहै॥२३॥
सर्वज्ञज्ञानविषै सदा, उपयोगलक्षण जीव है।
वो कैसे पुद्गल हो सके जो, तू कहे मेरा अरे!॥२४॥
जो जीव पुद्गल होय, पुद्गल प्राप्त हो जीवत्व को।
तू तब हि ऐसा कह सके, 'है मेरा' पुद्गलद्रव्य को॥२५॥

आहाहा! बद्ध-अबद्ध शब्द पड़ा है न भाई? २३ में। उसमें यह टीका में स्पष्टीकरण स्पष्ट नहीं आता। पुद्गल द्रव्य, बस इतना। पुद्गलद्रव्य को मेरा माने, ऐसा लेंगे। यह समुच्चय लिया। यह राग, पुण्य, पाप, शरीर, वाणी सब पुद्गल करके डाल दिया। यहाँ बद्ध-अबद्ध अर्थात् बद्ध में शरीरादि, कर्म आदि और अबद्ध में धन्धा, पुत्रादि अबद्ध है, ऐसा कहा भिन्न। परन्तु सब पुद्गल। एक राग से लेकर सब पुद्गल। ऐसा करके टीका में सामान्य बात कर डाली है। समझ में आया? पन्द्रह मिनिट की देरी है, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्वयार्थ में तो हो ही न। यह तो टीका में।

शरीरादि बद्ध है, धन-धान्य अबद्ध है। दोनों वस्तुएँ ली हैं। कर्मादि यहाँ नजदीक हैं, वे बद्ध कहलाते हैं। वह भिन्न चीज़ है तो अबद्ध कहलाती है। पुण्य-पाप के

परिणाम वे बद्ध हैं, नजदीक हैं इसलिए। बाकी फल आदि अबद्ध है। सब पुद्‌गल है। समझ में आया? सामान्य बात। एक ओर भगवान आत्मा, एक ओर राम और एक ओर गाँव। एक ओर चैतन्य भगवान पूरा ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... एक ओर विकल्प, शरीर, वाणी सब। समझ में आया?

अब अज्ञानी को समझाने की यह गाथा है, हों!

टीका - एक ही साथ अनेक प्रकार की बन्धन की उपाधि की.... आठ कर्म हैं न एक साथ निमित्त? **एक ही साथ अनेक प्रकार की बन्धन की...** आठों कर्म है न आठों ही ज्ञानावरणादि। साथ में—नजदीक। जैसे स्फटिक के साथ अनेक प्रकार के रंग होते हैं फूल आदि, उसी प्रकार आत्मा के चैतन्य स्फटिक में अनेक प्रकार के उपाधि के आठ कर्मादि निमित्त हैं। **एक ही साथ अनेक प्रकार की बन्धन की उपाधि...** है। वस्तुस्वरूप उसका नहीं। **अति निकटता से...** नजदीक है न। एकक्षेत्रावगाह में है न आठ कर्म? जहाँ भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, उसी जगह आठ कर्म के रजकण, रागादि हैं। यहाँ कर्म लेना है।

अति निकटता से वेगपूर्वक वहते हुए अस्वभावभावों के संयोगवश... वेग। उसे पर के वश हुआ ऐसे बहते अर्थात् होते अस्वभावभाव। पुण्य और पाप विकारीभाव उन **संयोगवश...** उस उपाधि के संयोग के वश हुआ, उसके वश **जो (अप्रतिबुद्ध जीव) अनेक प्रकार के...** अब यह तो दृष्टान्त देते हैं। एक साथ अनेक प्रकार की बन्धन की उपाधि। समझ में आया? ... दृष्टान्त दिया है। **कर्म की उपाधि से आत्मा का शुद्ध स्वभाव आच्छादित हो रहा है-...** कोष्ठक में लिखा है न नीचे? अन्दर टीका में।

भगवान आत्मा ऐसे अन्तर में देखता नहीं और इसीलिए उस कर्म के निमित्त की उपाधि से उसके लक्ष्य से चैतन्य आच्छादित हो गया है। चैतन्य निर्मलानन्द भगवान होने पर भी, कर्म के निकटपने के लक्ष्य से वहाँ लक्ष्य दौड़ गया है और वेगपूर्वक बहते, वेगपूर्वक बहते अस्वभावभाव एक के बाद एक... एक के बाद एक... अनेक प्रकार के पानी के वेग जैसे आवे, पानी का वेग जैसे आवे और प्रवाह आवे, उसी प्रकार पुण्य-पाप के विकल्प का वेग अस्वभावभाव बहते हैं। ऐसे संयोग के वश अप्रतिबुद्ध जीव—

अज्ञानी जीव उसके आधीन हो गया है। समझ में आया?

अनेक प्रकार के वर्णवाले आश्रय की निकटता से रंगे हुए स्फटिक-पाषाण जैसा है,... यह दृष्टान्त है। **अनेक प्रकार के वर्णवाले आश्रय की... जिसमें स्फटिकमणि रखा हुआ हो वह वस्तु।** बर्तन। अथवा पत्ता हो या फूल आदि बड़े हों। उनमें स्फटिक रखे। **अनेक प्रकार के वर्णवाले आश्रय...** जिसमें रखा वह। **निकटता से...** फूल भी ऐसे होते हैं ऐसे काले, लाल और हरे, हों! ऐसे। स्फटिक रखे न वह बहुत निकट से अन्दर उपाधि दिखती है। **रंगे हुए स्फटिक-पाषाण जैसा...** स्फटिक में मानो रंग चढ़ गया हो। ऐसे काले, लाल फूल रखे हों और बड़े-बड़े पत्ते खुल्ले हों, वह रंग मानो उसमें घुस गया हो, ऐसे **रंगे हुए स्फटिक-पाषाण जैसा है,...**

इसी प्रकार अज्ञानी पर के वश हुआ विकार के रंग में रंगा हुआ, उसे आत्मा मानता है। वह अप्रतिबुद्ध है। समझ में आया? लो, अभी तो अज्ञानी को समझाने की बात यहाँ ली है। बापू! ऐसे एकरूप चैतन्य है, उसमें न देखकर अनादि से कर्म के सम्बन्ध के लक्ष्य में दौड़ा हुआ, वेग से अस्वभाव के अनेक प्रकार के प्रवाह होने से उसके वश हो गया अज्ञानी उस स्फटिकमणि को जैसे काला, लाल फूल का आश्रय मिलने पर अथवा जिसमें रखा हुआ है, वह रंगा हुआ स्फटिक दिखता है, इसी प्रकार अज्ञानी को राग और विकार से रंगा हुआ आत्मा दिखता है। समझ में आया?

अनेक प्रकार के वर्णवाले आश्रय की निकटता से... जिसमें रखा हुआ स्फटिक है, वह अनेक रंगवाला होने से **निकटता से रंगे हुए स्फटिक-पाषाण जैसा है, अत्यन्त तिरोभूत अपने स्वभावभावत्व से...** तिरोभूत हो गया, ढँक गया भगवान। उस स्फटिक में जैसे रंग काला, लाल दिखता है, वहाँ सफेद स्फटिक है, वह तो गुप्त हो गया। उसी प्रकार भगवान चैतन्य स्फटिक जैसा है, वह कर्म के निकट के सम्बन्ध के लक्ष्य से उत्पन्न किये हुए वेगवाले अस्वभावभावों से मानो आत्मा ढँक गया। यही है, उसमें आत्मा ढँक गया। पर्यायबुद्धि से बात करते हैं, भाई! पर्यायबुद्धि में रागादि में रंगा हुआ चैतन्य निर्मलानन्द भिन्न है, उसे देखता नहीं। उसे विकार के रंगवाला आत्मा है, ऐसा देखता है। समझ में आया?

वस्तुबुद्धि नहीं होने से। अप्रतिबुद्ध को कहते हैं न? वस्तुस्वभाव चैतन्यमूर्ति ज्ञानस्वभाव चैतन्य, वह दृष्टि में नहीं होने से उसकी वर्तमान पर्याय के लक्ष्य से उसे कर्म के वश उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के रंगवाला माना मैं हूँ। विकारवाला, पुण्यवाला, पापवाला, शरीरवाला, कर्मवाला। ऐसा लक्ष्य होने से भगवान चैतन्यमूर्ति तिरोभूत हो गया, उसे आत्मा ढँक गया। यह प्रगट हो गया। विकार के परिणाम मैं, शरीर मैं, कर्म मैं, उसमें (आत्मा) ढँक गया। ढँक गया समझते हो न? तिरोभूत। हिन्दी भाषा नहीं होगी ढँक गया की? अत्यन्त तिरोभूत, ढंकायेलो अपने यहाँ गुजराती भाषा में। तिरोभूत हो गया।

पूरी चीज़ हो वहाँ पड़े तो ऐसे ... बड़ा पर्वत हो पर्वत। ढँक गया। ऐसा चैतन्य पर्वत बड़ा ज्ञानसागर पड़ा है बड़ा। परन्तु पर के वश में, विकार की वृत्ति के वश में पड़ा, पूरा ढँक गया। चैतन्य पर्वत विशाल पर्वत है, आनन्दकन्द चैतन्य रत्नाकर। अज्ञानी के राग में रंगे हुए को उसकी सूझ पड़ती नहीं। सूझ पड़ती नहीं, समझते हो? समझ में आता नहीं।

अत्यन्त तिरोभूत... देखा! अत्यन्त तिरोभूत। एक अंश भी ख्याल में नहीं, ऐसा कहते हैं। अकेला पुण्य और पाप, विकार और शरीर बस, वही उसके (लक्ष्य में है)... जीव-अजीव अधिकार है न? विकार का अस्तित्व वही मैं... वही मैं... उसमें मैं, वही मैं... **अत्यन्त तिरोभूत अपने स्वभावभावत्व से...** देखो! अपना स्वभावभाव जो चैतन्यज्योति ज्ञान की मूर्ति अकेला ज्ञानस्वभाव उससे ढँक गया होने से। **जिसकी समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति...** राग और पुण्य की रुचि के रंग में चढ़ गया, विकल्प के रंग में रंगा हुआ भगवान, वह अपना ज्ञानस्वरूप चैतन्य भिन्न स्वभावभाव का भेदज्ञान अस्त हो गया। उसे भिन्न करने की सामर्थ्य रही नहीं।

समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति अस्त हो गयी है, ऐसा है,... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु है, वह तो त्रिकाल ऐसा है। फिर कहेंगे आगे। सर्वज्ञ। **सर्वज्ञज्ञान से स्फुट (प्रगट) किये गये जो नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य...** नित्य, हों! वापस नित्य। ज्ञान-दर्शन नित्य, हों! एक समय की पर्याय नहीं यहाँ। ज्ञान-दर्शन

नित्य उपयोग। ज्ञान-दर्शन का नित्य उपयोगरूप स्वरूप। कायम जानन-देखन ऐसा उपयोग ध्रुव उपयोग, ऐसा उपयोगस्वरूपी आत्मा है। समझ में आया? शाश्वत् ज्ञान-दर्शन जो नित्य ध्रुव, ऐसा ही उसका स्वरूप है, ऐसा उपयोगमय आत्मा है। उसे भूलकर यह विकारमय परिणाम में उसके रंग में रंगा हुआ अर्थात् राग के रंग रहित चैतन्य स्वभावभाव तिरोभूत हो गया है—ढँक गया है। उसे नजर में नहीं आता। नजर में राग रखा, उसे रागरहित आत्मा नजर नहीं आता। समझ में आया? आहाहा!

अपने स्वभावभावत्व से जिसकी समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति... समस्त, हों! अंश भी... कि यह ज्ञान का अंश मैं, यह रहा ही नहीं वहाँ। राग... राग... राग... राग... राग... विकल्प... विकल्प... विकल्प... विकल्प... मलिन... मलिन... मलिन... मलिन... आस्रव... आस्रव... आस्रव... वह पर्यायबुद्धि में वहाँ टिका हुआ, उतने अस्तित्व में अपना अस्तित्व माननेवाला रंगा हुआ राग के रंग रहित चैतन्य को भिन्न करने की भेदज्ञान ज्योति जिसकी अस्त हो गयी है। भाषा तो सब यही की है, हों! पहले से यह की है। कर्म के कारण से ऐसा हुआ... कर्म के कारण से ऐसा हुआ, यह बात ही नहीं यहाँ। वह तो निमित्त का ज्ञान कराना हो तब। यह तो वस्तु की स्थिति ही इसी प्रमाण इसके आत्मा में खड़ी होती है। समझ में आया? अरे! अध्यात्मरस के रसिया को यह रस आवे, ऐसी बात की है।

भगवान आत्मा जिसके स्वभावभाव, जिसका स्वभावभाव वस्तु, उसका स्वभावभाव ज्ञायकभाव नित्य दर्शन-ज्ञान उपयोग भाव, राग के रंग में चढ़ा हुआ ढँक गया है उसे। इसलिए उसे भिन्न करने की भेदविज्ञान शक्ति अस्त हो गयी है। आहाहा! उदय पाना चाहिए, वह अप्रतिबुद्ध को अस्त हो गयी है। सूर्य अस्त हो जाता है न? उसमें उदय-उदय लिया। यहाँ अस्त लिया। **भेदज्ञानरूप ज्योति अस्त हो गयी है, ऐसा है,...** समझ में आया?

और महा अज्ञान से जिसका हृदय... देखो अब। वह '**अण्णाणमोहिदमदी**' है न? **महा अज्ञान से जिसका हृदय स्वयं स्वतः ही...** भाषा देखो! महा अज्ञान से, वापस ऐसा। स्वरूप चैतन्य भगवान विराजमान उसका महा अज्ञान तुझे। **जिसका हृदय स्वयं...**

स्वयं अपने से ही। कर्म से नहीं। आहाहा! **विमोहित है**—वह अज्ञान से जिसका हृदय स्वयं अपने से ही, ऐसा वापस देखो! ऐसा नहीं, अनेकान्त करो। कर्म से भी विमोहित है और आत्मा से भी विमोहित है। ऐसा नहीं हो तो फिर उसे अनेकान्त होता नहीं। 'ही' होता नहीं भगवान के मार्ग में—ऐसा कहते हैं कितने ही। अब सुन न! 'ही' ही यहाँ हो। सर्राफजी! देखो! यह 'ही' आया। श्रीमद् में आता है न? 'मेरा महावीर ही न कहे।' वह दूसरे प्रकार से है। नित्य-अनित्य में, आत्मा नित्य-अनित्य है और नित्य ही है, आत्मा अनित्य ही है, ऐसा नहीं कहे। यह तो ऐसा ही है।

विमोहित है - ऐसा अप्रतिबुद्ध-अज्ञानी जीव स्वपर का भेद न करके,... लो! ऐसा अज्ञानी स्व-पर का भेद नहीं करके अस्वभावभावों को ही अपना करता हुआ, लो। **पुद्गलद्रव्य को 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव करता है।** इसकी व्याख्या विशेष करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १३, गुरुवार, दिनांक - २७-१०-१९६६
गाथा-२३ से २५, प्रवचन - ८६

यह समयसार, जीव-अजीव अधिकार। २३-२४-२५ की टीका। थोड़ा चला है परन्तु फिर से। यह क्या अधिकार है? जीव जैसा है, वैसा उसे अनुभव करे, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह जीव जैसा नहीं, वैसा उसे अनुभव करे और माने, उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं परन्तु उसे मिथ्यादृष्टि अनात्मा की श्रद्धा है। यह बात चलती है। समझ में आया? जीव-अजीव अधिकार है न? भगवान आत्मा, वह तो ज्ञान-दर्शन उपयोग नित्यानन्द प्रभु शुद्ध उपयोगस्वरूप है, त्रिकाल, हों! ऐसे आत्मा को अन्तर में आत्मा रूप से श्रद्धा करना, अनुभव करना, उसने आत्मा माना कहा जाता है और उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। इसके अतिरिक्त उसकी पर्याय में कर्म के निकट के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अस्वभावभाव जो उत्पन्न होते हैं (अर्थात्) पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, काम, क्रोध इत्यादि, वे मेरे हैं—ऐसा जो अनुभव करता है, वह दुरात्मन मिथ्यादृष्टि जीव है। समझ में आया?

एक ही साथ अनेक प्रकार की बन्धन की उपाधि की अति निकटता से वेगपूर्वक वहते हुए अस्वभावभावों के संयोगवश... भगवान आत्मा चैतन्य शुद्ध आनन्द ज्ञायकपिण्ड है, तथापि कर्म के निकट के सम्बन्ध में अस्वभावभाव, विभावभाव, पुण्य-पापभाव, अशुद्ध भाव, उन भावों के वश से अप्रतिबुद्ध जीव अज्ञानी अनादि से **अनेक प्रकार के वर्णवाले आश्रय की निकटता से रंगे हुए स्फटिक-पाषाण जैसा है,...** जिसमें स्फटिकमणि जो आश्रयस्थान में रखा गया हो, जिस बर्तन में, उसका जो रंग स्फटिक में दिखता है, उसे ऐसा स्फटिक माननेवाला जैसे मूर्ख है, उसी प्रकार भगवान चैतन्य गोला, शुद्ध ज्ञान का कन्द, उसे कर्म के निमित्त के संग में पुण्य और पाप के विकल्प और विकार उठता है, वह उसे अपना मानकर अनुभव करता है, वह लोकोत्तर मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है।

अत्यन्त तिरोभूत अपने स्वभावभावत्व से... भगवान आत्मा अकेला स्वभावभाव ज्ञानमूर्ति चैतन्यप्रकाश का रसकन्द ऐसे भाव से **जिसकी समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति अस्त हो गयी है...** भगवान आत्मा चैतन्यसत्ता, यहाँ अस्तित्व की सिद्धि करते हैं। चैतन्य वस्तु अकेला स्वभावभाव, ज्ञायकभाव ऐसा जो अपना जीव का अस्तित्व... अज्ञानी को अनादि से जैन साधु हुआ अनन्त बार, त्यागी हुआ अनन्त बार परन्तु मिथ्यादृष्टि रहा। क्यों? चैतन्यमूर्ति आनन्द ज्ञायकमूर्ति के भाव को पुण्य-पाप के भाव अपने मानकर उसे ढँक दिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ढँक गया है दृष्टि में। दृष्टि में रहा नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। इसने अनन्त काल में यह बात लक्ष्य में ली नहीं। आत्मा का अस्तिपना कैसा है, ऐसा इसने अन्तर दृष्टि में अनुभव में लिया नहीं। नहीं लिया तो तब लिया क्या? ऐसा कहते हैं।

अत्यन्त तिरोभूत अपने स्वभावभावत्व से... ज्ञानानन्द चैतन्यज्योति ज्ञायकभाव है, वह पुण्य-पाप के विकल्प की उपाधि कर्म के निमित्त के समीप के उपाधि के भाव से उसमें अपना अस्तित्व स्वीकार करके स्वभावभाव त्रिकाल ज्ञायक है, उसे उसने तिरोभूत कर डाला है। तिरोभूत अर्थात् ढाँक दिया है। समझ में आया? **जिसकी समस्त भेदज्ञानरूप ज्योति अस्त हो गयी है ऐसा है,...** वह तो यह पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, तप और व्रत करना, ऐसा जो भाव, वह मलिनभाव, बन्धनभाव, उपाधिभाव है। उसे ही आत्मा का मानकर उसने आत्मा के स्वभाव को अन्तर में तिरोभूत—ढँक दिया है। समझ में आया? यह तो अस्तित्व का अधिकार है न? कर्ता-कर्म का अधिकार तो दोपहर में चलता है।

कहते हैं कि **भेदज्ञानरूप ज्योति...** राग, पुण्य के विकल्पों से मेरी चैतन्य ज्योति भिन्न है, ऐसी भेदज्ञान ज्योति तो उसे अस्त हो गयी है—अस्त हो गयी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अस्त उदय हुआ तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात ही यह है। अस्त हो गयी है। उदय हुई ही नहीं।

भगवान चैतन्यस्वरूप अकेला ज्ञानरस का कन्द गोला, उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा ऐसा आत्मा, उसे दृष्टि में नहीं लेता। क्यों? कि विकारी पुण्य और पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के जो शुभभाव-अशुभभाव, उनमें उसका अस्तित्व स्वीकार किया है कि यह भी मैं हूँ। इससे उसे पृथक् करने की भेदज्ञानज्योति अस्त हो गयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी पहली बात है, हों! अभी सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन की बात है। पोपटभाई! व्यापार के कारण यह सब सूक्ष्म पड़े, ऐसा लगे। यह ही है। उसे समझना पड़ेगा यदि कल्याण करना हो तो। बाहर से मर जाये तो कुछ हो, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा का कल्याण अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का हित अथवा आत्मा जिस चीज से, जिस स्वरूप से है, उसकी कीमत जैसे है, वैसे करनी हो तो यह समझना पड़ेगा। पुण्य-पाप, शरीर आदि की कीमत कुछ नहीं, कुछ नहीं। उसकी कीमत उड़ाये बिना चैतन्य की कीमत अन्दर हो, ऐसा नहीं। चैतन्य की कीमत होने पर पुण्य-पाप के विकल्प और उसके फल की कीमत ज्ञानी को कुछ रहती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं, भगवान आत्मा... आगे कहेंगे। **महा अज्ञान से जिसका हृदय स्वयं स्वतः ही विमोहित है** - यह सब आ गया है परसों। परन्तु जरा फिर से (लिया)। प्रभु आत्मा स्फटिक जैसा शुद्ध होने पर भी। स्फटिक रत्न जिसमें रखा हुआ हो, उसके रंग से मानो स्फटिक रंगा हुआ हो, ऐसा लौकिक मूर्ख स्फटिक को मानता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यगोला शुद्ध आनन्दकन्द का होने पर भी कर्म के निकट के, निकट के सम्बन्ध से जो विकार के परिणाम में मानो रुक गया हो, उसमें रहा हुआ हो ऐसा मानकर (अपनी) पर से भिन्न करने की ज्योति अन्धी हो गयी है। और अज्ञान, महान अज्ञान कर्म के कारण से नहीं। किसी कारण से या यह कैसे हुआ? कर्म के कारण से कर्म का जोर है इसलिए? नहीं, बिल्कुल नहीं।

महा अज्ञान से जिसका हृदय... अज्ञान से जिसका हृदय। अपने चैतन्य की जाति

की कीमत को भूलकर यह पुण्य और पाप के विकल्प और राग की वृत्ति की कीमत में, कीमत में, अधिकता में, बहुमान में उसमें मैं हूँ, वह मुझे लाभदायक है, ऐसा उसमें रुककर अपने अज्ञान से भूला हुआ है। समझ में आया? आहाहा! वह कर्म की विपरीतता डाले, कर्म के कारण से ऐसा है... कर्म के कारण से ऐसा है। सभी मूढ़। कर्म के कारण से माननेवाले वे भी मूढ़ हैं और कर्म के निमित्त से स्वयं विकारी परिणाम करता है, वह अपने अज्ञान के कारण से करता है, ऐसा न मानकर पर के कारण से ऐसा होता है, (ऐसा माने) वह भी मूढ़ जीव है, ऐसा कहते हैं। उसके जीव के चैतन्य की जाति की, भात की खबर नहीं। कहो, लालचन्दजी!

ऐसा अप्रतिबुद्ध जीव... अप्रतिबुद्ध अर्थात् मूढ़ जीव **स्व-पर का भेद न करके,...** भगवान ज्ञानमूर्ति आत्मा अस्तिरूप से महान मौजूदगी रूप से चैतन्यरत्नाकर प्रभु, वह और पर विकारी भाव दोनों की भिन्नता को नहीं करके **उन अस्वभावभावों को....** देखो! अस्वभावभाव जो आत्मा के स्वभाव है ही नहीं। शुभ और अशुभभाव आत्मा के स्वभाव में है नहीं, स्वभाव है नहीं। उसकी अस्ति में, उसकी मौजूदगी में—आत्मा की अस्ति में आत्मा जितनी सत्तावाला है, उसमें उन पुण्य-पाप के भाव की सत्ता है ही नहीं। समझ में आया? **उन अस्वभावभावों को ही अपना करता हुआ, पुद्‌गलद्रव्य को 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव करता है।** वे पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध के परिणाम, वे आत्मा हैं—वह मैं हूँ, ऐसा मानकर विकार का अनुभव करता है। उसे मूढ़ और अज्ञानी मिथ्यादृष्टि अजैन कहा है। सोभागभाई! गजब! यहाँ तक तो आया था परसों।

पुद्‌गलद्रव्य को 'यह मेरा है' पुद्‌गलद्रव्य समझ में आता है? यह पुण्य और पाप, कषाय की मन्दता, दया, दान, भक्ति, पूजा, यात्रा भाव, वे सब पुद्‌गल हैं। वे आत्मा नहीं। आहाहा! राग है न, भाई! चैतन्य की विरुद्धता के जितने अज्ञानभाव, वे सब पुद्‌गलभाव, ऐसा कहा। भगवान चैतन्यसूर्य से विरुद्ध जिसमें ज्ञान का प्रकाश का अभाव है, वे सब पुद्‌गल हैं, ऐसा कहकर वे रागादि सब पुद्‌गल हैं, उन्हें अपना मानता है, वह जीव को मानता नहीं। आहाहा! यह तो बहुत सुने, तब समझ में आये ऐसा है, हों! कपूरचन्दभाई! ऐई! छोटाभाई! कभी आवे, दो दिन आवे और चार दिन आवे,

उसमें ऊपर-ऊपर से नहीं बैठे ऐसा शीघ्र यह। आहाहा! बड़े मानधाता को मुश्किल है न अभी। बड़े-बड़े त्यागी हुए, वे भी मूढ़ हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। जो राग की मन्दता, वह आत्मा और उससे मुझे लाभ होता है, ऐसा माननेवाला मूढ़ अर्थात् अनात्मा जड़ है, ऐसा कहते हैं। पुद्गल है वह तो, आत्मा नहीं। आहाहा! ऐई! सेठी! चिल्लाहट मचाये दूसरे तो सुनते हुए। हाय... हाय... यह! अरे! वीतराग परमात्मा ऐसा कहते हैं। सुन न! अभी कहेंगे। अभी वीतराग कहते हैं, ऐसा कहेंगे। सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं न और तू और कहाँ से नया निकला? आयेगा अभी। टीका में ही है।

मुमुक्षु : मूल गाथा में ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा में है न। समझ में आया?

(जैसे स्फटिकपाषाण में अनेक प्रकार के वर्णों की निकटता से अनेकवर्णरूपता दिखाई देती है, स्फटिक का निज श्वेत-निर्मलभाव दिखायी नहीं देता इसी प्रकार अज्ञानी को कर्म की उपाधि से आत्मा का शुद्धस्वभाव आच्छादित हो रहा है- कर्म के निमित्त की उपाधि पुण्य-पाप, शुभ—यात्रा, भक्ति-व्रत, नियम सब भाव उपाधि मैल है, विकार है, पुद्गल है, जड़ है, अचेतन है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये। ऐसा शुद्ध स्वभाव आच्छादित हो रहा है, **इसलिए पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है।) ऐसे अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) को अब समझाया जा रहा है...**

मुमुक्षु : अप्रतिबुद्ध को भगवान समझाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाते हैं। भगवान ही समझाते हैं। देखो! अभी कहेंगे। भाई! भगवान ने तो ऐसा देखा और कहा और तू फिर कहाँ से ऐसा मानता है। सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव... कहेंगे... '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' सर्वज्ञ ने तो नित्य उपयोग, हों! अकेला ज्ञान-दर्शन का रसकन्द नित्यानन्द प्रभु, वह आत्मा है, ऐसा भगवान ने देखा, जाना और कहा और तू इस आत्मा को पुण्य-पाप के राग से लाभ मानता है तो वह पुण्य-पाप को ही तूने आत्मा माना। समझ में आया? जिस चीज़ से अपने को लाभ माने, उस चीज़ से स्वयं अभेद माने बिना ऐसा हो नहीं सकता। कहो, जयन्तीभाई! आहाहा!

ऐसे अज्ञानी को अब समझाया जा रहा है कि - रे दुरात्मन्!... देखो! हे दुरात्मनः! भगवान चैतन्यमूर्ति ज्ञान का पिण्ड है न! यह रागादि होते हैं वे तो अचेतन जड़ हैं। तेरे आत्मा में कहाँ थे वे? समझ में आया? चैतन्य का नूर, उसके पूर में तो प्रकाश है। यह राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का अंश, वह प्रकाश नहीं, वह तो अन्धकार है। प्रकाश और अन्धकार दोनों तूने एक कहाँ से किये? आहाहा! समझ में आया? **हे दुरात्मन्!** दुःआत्मन्। आत्मन् तो कहा, परन्तु हे खोटे आत्मा! ऐसा हुआ न? आहाहा! प्रभु! तुझे तो चैतन्यस्वरूप भगवान को देखा है न। तुझे तो भगवान ने सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने, यह पुण्य-पाप के विकल्प को तो भगवान ने आस्रव देखा है। पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव को तो भगवान ने आस्रव देखा है। आस्रव तो अचेतन है। चेतन के नूर से पर है। समझ में आया? भगवान ने शरीर, कर्म को अजीव देखा है। और तुझे तो भगवान ने ज्ञान-दर्शन का पिण्ड देखा है। आहाहा! समझ में आया? ऐई! चन्दुभाई! समझ में आया यह? फिर कल यह कहते थे कि वहाँ अधिक लोग होंगे तो दूसरा निकलेगा। ऐसा करके.... निकलना हो, वह निकलेगा। कहो, समझ में आया इसमें? पहले से उकताहट करते थे। ऐसा कि अधिक लोग हों, उनके प्रमाण में व्याख्यान आवे न! समझ में आया? दृष्टान्त, दलील देते हैं अधिक लोग हों तो।

कहते हैं कि हे **आत्मा का घात करनेवाले!** आहाहा! यह बड़ी हिंसा। भगवान आत्मा चैतन्य का पूर, उसे राग के अन्धकारवाला मानना और वह राग जो व्यवहार पुण्य-पाप के व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, हों! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का वह राग है, वह धर्म नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे राग हैं, धर्म नहीं। शास्त्र के पठन का विकल्प, वह राग है, धर्म नहीं। वह राग है, वह अचेतन अन्ध है, अन्ध है। ऐसे अन्धकार के कारण तू आत्मा उसके कारण से मानता है (तो) हे आत्मा का घात करनेवाले! करुणा से (कहते) हैं, हों! मुनि हैं। पंच महाव्रतधारी सन्त, जंगल में बसनेवाले दिगम्बर सन्त।

हे **आत्मा का घात करनेवाले!** अर्थात्? भगवान चैतन्य ज्ञायक की मूर्ति अनादि-अनन्त प्रभु विराजता है न। ऐसे आत्मा को छोड़कर तू यह पुण्य-पाप उपाधिभाव, उस

द्वारा मानो रंग गया हो आत्मा और उस स्वरूप से हो, उससे लाभ मानकर, उस स्वरूप से हो, ऐसा तूने माना है तो हे आत्मा के हिंसक! तूने आत्मा का पूरा घात कर डाला, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव को अपना माननेवाला आत्मा का महा घात करके महा हिंसक-हिंसक है। आहाहा!

मुमुक्षु : छह काय की हिंसा तो नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय की हिंसा का बाप यहाँ घात हो गया। छह काय की हिंसा वहाँ नहीं हुई न? छह काय में आत्मा स्वयं है या नहीं? आत्मा किसे कहना? एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, उस काय को आत्मा कहना? बीच में पुण्य-पाप भाव हैं, उन्हें आत्मा कहना? किसे कहना आत्मा? सुना नहीं तूने। आत्मा किसे कहना? भगवान आत्मा किसे कहते हैं? भगवान सात तत्त्व की श्रद्धा नौ की करावे, उसमें आत्मा किसे कहते हैं? चैतन्य का गोला, ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा को न मानकर तू शुभ-अशुभभाव, यह तो अभी देह की क्रिया हम करते हैं और उसमें से लाभ (होगा)। वह तो महामूढ़ है। आत्मा का महा घातक है।

मुमुक्षु : आत्मघाति....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मघाति। महा। संस्कृत है, देखो! **'रे दुरात्मन्, आत्मपंसन्'** लो, है न? **'आत्मपंसन्'**

मुमुक्षु : 'पंसन्' अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोध। विरोध करनेवाला, घात करनेवाला। है ही नहीं, ऐसा। आहाहा! यह बाद में कहेंगे। आहाहा! क्या कहते हैं?

परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि हमने तो आत्मा को ज्ञानस्वरूपी ही देखा है। उसे तू न मानकर तू राग को लाभदायक मानता है, तू सर्वज्ञ को मानता नहीं, सर्वज्ञ की वाणी में ऐसा आत्मा आया, उसे मानता नहीं और तू गुरु को मानता नहीं। तीनों को मानता नहीं और तेरे आत्मा को मानता नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आया?

मुमुक्षु : गुरु को मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा क्या गुरु ने? आत्मा ज्ञानमूर्ति... ...में आता है, देखो!

जैसे परम अविवेकपूर्वक खानेवाले... जैसे परम अविवेक से खानेवाला हाथी। हाथी को चूरमा और घास पड़ा हो तो वह हाथी घास और चूरमा एक जानकर खाता है। भिन्न करता नहीं। चूरमा कहते हैं न। चूरमा। गेहूँ के लड्डू होते हैं या नहीं? अध मण चूरमा दे और पाँच मण घास दे। बहुत खाये सही न। परन्तु इकट्ठा। पूळा के साथ लड्डू। पोपटभाई! घास के पूळा के साथ चूरमा। वह अविवेकी खानेवाला **हाथी आदि पशु सुन्दर आहार को तृणसहित खा जाते हैं...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहना है। यह तो दृष्टान्त है।

उसी प्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़, छोड़। अर्थात् क्या कहते हैं? भगवान! तू तो आनन्दकन्द चूरमा है और पुण्य-पाप के भाव घास है घास। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे तो लड्डू है, इसको तो कुछ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा कि लड्डू इकट्ठा खाये। यह तो दृष्टान्त दिया।

मुमुक्षु : यहाँ तो अकेला घास ही खाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अकेला घास ही खाता है। घास खाता है। यह नहीं कहते, ऐ खड़ खाता है? झूठा बोले तब कहते हैं न। कपूरभाई! घास खाता है तू? क्या कहते हो? वापस बोले कि तू घास खाता है। अपने दोनों में बातचीत हो गयी और तू ऐसे बदल जाये। भगवान कहते हैं कि घास खाता है। हम आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य ज्योति आत्मा का सत्त्व तो चैतन्य ज्योति का नूर का पूर देखा है। और तू इस राग को अपना मानकर खाये। घास खाता है यह तू। जयन्तीभाई! अरे! सत्यस्वरूप भगवान ज्ञानमूर्ति है और राग है, वह पुण्य विकल्प चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधने का हो, (परन्तु) अचेतन राग है। आहाहा! उस राग से आत्मा को बिल्कुल किंचित् जरा भी लाभ नहीं।

मुमुक्षु : नुकसान तो नहीं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान है। राग, वह नुकसान। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अचेतन राग है। अधर्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... तीर्थंकर हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर कौन होता था? वह तीर्थंकर हो तो बाहर का फल आवे, केवलज्ञान हो, वह तो आत्मा के ज्ञान से होता है। आहाहा! आत्मा से आत्मा होता है। वह अनात्मा से आत्मा होता है? राग तो अनात्मा है। उससे आत्मा—केवलज्ञान होता है? आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्यफल अरहंता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये। यह तो फल यह धूल का ढ़ेर आवे बाहर का वह। समवसरण का। उसमें उन्हें क्या? वह कहाँ आत्मा था? वह तो केवलज्ञान अपने ज्ञान से प्राप्त हुए अन्दर से। आनन्दकन्द के अनुभवने से स्थिरता करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए। तब उस प्रकृति का उदय आया तो बाहर के ढ़ेर दिखाई दिये। यह तो बाहर के संयोग की बात है। आत्मा कहाँ था वहाँ?

मुमुक्षु : पुण्य के फलरूप से....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य का फल कहा न वह। पुण्य का फल बाहर का। केवलज्ञान कहाँ पुण्य का फल था? आहाहा! अरे! उसकी तो एक भी श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता और माने कि हम जैन हैं। शान्तिभाई!

कहते हैं, **उसी प्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़, छोड़।** दो बार कहा, हों! **'जहीहि जहीहि'** भाई! छोड़ न। यह घास के साथ चूरमा नहीं खाया जाता। घास को छोड़। ऐसे भगवान ज्ञानमूर्ति आनन्द का कन्द है न। अरे! उसे यह पुण्य-पाप के भाव, यहाँ तो अधिक पुण्य की बात है। पुण्य का भाव जहर है, जहर है। आहाहा! उसे तू आत्मा मानता है, उसे आत्मा को लाभदायी मानता है। कहते हैं कि हे आत्मा के घातक! हिंसा करनेवाला, लो! यह बड़ी हिंसा करनेवाला। जैसा उसका जीवन चैतन्यप्राण का,

आनन्दकन्द का है, उस प्रकार से आत्मा को न स्वीकार करके यह पुण्य के परिणाम से आत्मा को लाभ होगा, पुण्यपरिणाम मेरे अस्तित्व में है, लाभ होगा, यह माननेवाले का अर्थ ही यह है कि वे परिणाम मेरे स्वरूप में अभेदरूप से है। अर्थात् कि मुझे लाभ होगा। इसका अर्थ कि वे परिणाम मेरी जाति के हैं। समझ में आया? उसे कहते हैं, भाई! सुन्दर आहार को घास के साथ खाये, ऐसे ढ़ोर के स्वभाव को छोड़ न। आहाहा!

अब आधार देते हैं, हों! बापू! भगवान ने तो ऐसा कहा है न, देखा है न। मुनि आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), भगवान केवलज्ञानी त्रिलोक के नाथ ने तो ऐसा देखा है न। भाई! तू यह किस प्रकार अन्यत्र भरमा गया है। आहाहा! क्या कहते हैं?

जिसने समस्त सन्देह, विपर्यय, अनध्यवसाय दूर कर दिये हैं... भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने, जिन्हें सन्देह रहा नहीं, जिन्हें विपरीतता रहीं नहीं, जिन्हें अनिश्चितता रही नहीं। नि:सन्देह अविपरीत और निश्चित वस्तु का स्वरूप जो आत्मा का है, वह अनुभव में आया और पूरा हो गया। **जिसने समस्त सन्देह, विपर्यय, अनध्यवसाय...** ओहोहो! भगवान का ज्ञान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी, उन्हें सन्देह तो समस्त नाश हुए हैं, समस्त विपरीतता नाश हुई, अनिश्चितता समस्त नाश हुई। **और जो विश्व को प्रकाशित करने के लिए एक अद्वितीय ज्योति है,...** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर। वह तो विश्व अर्थात् **(समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने के लिए एक अद्वितीय....** लो, आया इसमें। विश्व को प्रकाशित करने में। विश्व को जानते हैं या नहीं भगवान? बहुत कहे, भगवान विश्व को जानते हैं, वह व्यवहार है, इसलिए वास्तव में नहीं। आहाहा! वह तो तन्मय होकर नहीं जानते, इसलिए व्यवहार।

विश्व को प्रकाशित करने में... सारा (-पूरा) तीन काल-तीन लोक को प्रकाशित करने में। **एक अद्वितीय...** सामने है विश्व सब और स्वयं एक अद्वितीय ज्योति। **एक अद्वितीय ज्योति है...** भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीन काल में तीन काल के जाननेवाले का कभी विरह पड़ा नहीं। तीन काल में तीन काल के जाननेवाले का कभी विरह पड़ा नहीं। सदा ही तीन काल के जाननेवाले तीनों काल में विराजमान (होते ही हैं)। भूतकाल से वे अभी तक ठेठ तक रहेंगे। कभी तीन काल के जाननेवाले सर्वज्ञ की

अनुपस्थिति हो तीन काल में, ऐसा हो नहीं सकता। ऐसे भगवान जिसे ज्ञान में प्रकाश से एक अद्वितीय ज्योति है। अद्वितीय ज्योति है। एक ज्योति चैतन्य ज्योति। उसके ज्ञान की निर्मलता अन्तर के अनुभव से जहाँ प्रगट हुई। उसने **ऐसे सर्वज्ञ ज्ञान से...** ऐसे सर्वज्ञ ज्ञान से। ऐसे सर्वज्ञ के ज्ञान से **स्फुट किया गया...** प्रगट किया गया। भगवान के ज्ञान से प्रगट किया गया। क्या? **जो नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य...** नित्य, हों! यहाँ पर्याय की बात नहीं। केवलज्ञान, केवलदर्शन। केवलज्ञान अर्थात् पर्याय नहीं। अकेला ज्ञान शक्ति, दर्शन शक्तिस्वरूप शुद्ध केवल एकरूप ज्ञान, एकरूप दर्शन, ऐसा आत्मा भगवान ने देखा है।

मुमुक्षु : .... गाथा में कहा वैसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहा है। समझ में आया?

'**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' सर्वज्ञ भगवान ने तो ऐसा देखा है। क्या? '**उवओगलक्खणो णिच्चं।**' वह तो ज्ञान-दर्शन के उपयोगस्वरूप स्वभाव नित्य देखा है। उसमें कहीं पुण्य-पाप के राग और शरीर की क्रिया-फ्रिया भगवान ने आत्मा में देखी नहीं। समझ में आया? यहाँ तो अभी पहले ऐकड़ा की बात है। अभी तुझे आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं। कहे, चलो किया धर्म। धूल में धर्म है? कहाँ था? समझ में आया?

कहते हैं, सब सन्देह, विपरीतता, अनिश्चितता जिन्हें नष्ट हो गयी है, एक-एक। नि:सन्देह, यथार्थ, निश्चित्, ऐसा केवलज्ञान जिन्हें प्रगट वर्तता है। वह अद्वैत ज्योति **ऐसे सर्वज्ञ ज्ञान से स्फुट...** है न? स्फटिक रत्न, स्फटिक रत्न। प्रगट किया है न। भगवान ने केवज्ञान में देखकर प्रगट कहा है न। **जो नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य...** जीव अर्थात् कि नित्य ज्ञान और दर्शन के उपयोगवाला त्रिकाल, हों! पर्याय नहीं। अकेला ज्ञान-दर्शन के उपयोगस्वरूप ही त्रिकाल। भगवान ने उसे जीव कहा है। कहो, समझ में आया इसमें? यह अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। कितने ही कहते हैं यह समयसार है, वह सातवें गुणस्थानवाले को होता है, बारहवेंवाले को है। अभी पहले नम्बर की ऐकड़ा की बात की खबर नहीं। सातवें की कहाँ? यह तो अप्रतिबुद्ध—मूढ़ को समझाते हैं। सेठिया! अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। मूढ़ अज्ञानी, जो ऐसी वस्तु यह है

प्रतिबुद्ध उससे विपरीत है, उसे समझाते हैं। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान ने तो नित्य उपयोगवाला आत्मा देखा और प्रगट कहा। नित्य उपयोग स्वभावरूप, नित्य उपयोग स्वभावरूप, उसे भगवान ने कहीं पुण्य परिणामवाला देखा नहीं। पुण्य तो विकार है, अचेतन है, जड़ अन्धकार है। अन्धकार स्वरूप देखा है भगवान ने? हम भगवान को मानते हैं। त्वमेव सत्यं... धूल में त्वमेव सत्यं कहाँ से आया? भगवान की खबर नहीं, क्या भगवान कहते हैं, यह तो तुझे खबर नहीं। समझ में आया? भगवान के माने हुए गुरु क्या कहते हैं, उसकी तुझे खबर नहीं। और भगवान के कहे हुए शास्त्र क्या कहते हैं, उसकी तुझे खबर नहीं। और भगवान को देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, लो! देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं। देव तेरे कल्पित किये हुए, गुरु तेरे माने हुए और शास्त्र भी तेरे कल्पित किये हुए, उन्हें तू मानता है। सोभागभाई! समझ में आया?

वह पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो गया... भाई! सर्वज्ञ ने प्रगटरूप से आत्मा को ज्ञान-दर्शन नित्य उपयोगवाला शाश्वत भगवान ने देखा। ऐसा भगवान आत्मा पुद्गलरूप अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प राग जो है, वे पुद्गल हैं, उनरूप किस प्रकार हो गया? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य तो अनुपयोग जड़ है। अभी आयेगा सब। जड़... जड़। अब यह तो बहुत बार आ गया। अचेतन, अन्धकार, चैतन्य के नूर से विपरीत भाव। लोगों को लगे कि यह निश्चय है, निश्चय। अपने व्यवहार करो। मर जा न व्यवहार करके। व्यवहार था कब? व्यवहार आया कहाँ से तुझे? अभी निश्चय का भान नहीं, वहाँ व्यवहार आया कहाँ से? जिसे ऐसा आत्मज्ञान शुद्ध चैतन्यमूर्ति विकल्परहित, रागरहित, अचेतन विकाररहित है, ऐसा अनुभव हुआ। पश्चात् राग की मन्दता के भाव को व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! वह तो अन्ध-बहरा। राग भी अन्धा और फिर आत्मा के भान बिना का वह मेरा व्यवहार, वह तू भी अन्ध। ऐई! मालचन्दजी!

मुमुक्षु : .... देखता हो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है, ऐसा जानता है। वह तो अन्ध है। जाने कि राग है। मेरी नात नहीं, मेरी जाति नहीं, मुझमें नहीं। भिन्न है, उसे जाने, बस। यह सम्यग्दृष्टि का लक्षण। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा **नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य, वह पुद्‍गलद्रव्यरूप कैसे हो गया...** यह तो आश्चर्य से भाषा करते हैं। भगवान! सर्वज्ञ परमेश्वर ने तो नित्य उपयोग जीवद्रव्य कहा। ऐसा सत्त्व जो जीव का तत्त्व, वह रागरूप, विकल्परूप किस प्रकार हो गया? क्या हो गया तुझे? ऐसा कहते हैं। किस प्रकार पुद्‍गलद्रव्य हो गया? **कि जिससे तू यह अनुभव करता है कि 'यह पुद्‍गलद्रव्य मेरा है'?** कि जिससे तू यह शुभ-अशुभराग वे मेरे हैं, मेरे अस्तित्व में हैं, मेरी जाति के हैं, मेरे आत्मा में हैं, ऐसा मानकर उसे अनुभव करता है? यह क्या हुआ? आत्मा रागरूप हो गया कभी? कहो, जमुभाई!

पुद्‍गलद्रव्यरूप कैसे हो गया... आहाहा! ऐसी कथनी नहीं मिलती। समझ में आया? दिगम्बर सन्तों के बिना यह बात कहीं नहीं मिलती। सब अन्ध, उल्टी-उल्टी अज्ञान की बातें। क्या है? **यह अनुभव करता है कि 'यह पुद्‍गलद्रव्य मेरा है'?** किस प्रकार पुद्‍गल हो गया? चैतन्य के प्रकाश का पूर ऐसा चैतन्य, जिसे भगवान ने तो नित्य उपयोग शाश्वत् ज्ञान-दर्शन उपयोगमय देखा। शाश्वत् की बात है, हों! यहाँ ध्रुव। शाश्वत् ज्ञान-दर्शन उपयोगवाला भगवान ने देखा और प्रगट किया। वाणी में-दिव्यध्वनि में इन्द्रों के समक्ष समवसरण में भगवान की वाणी में ऐसा प्रगट आया। नित्य शाश्वत् ज्ञान-दर्शन के उपयोगवाला, वह आत्मा। शाश्वत् ज्ञान-दर्शन, वह आत्मा। ऐसा आत्मा चैतन्य रत्नाकर, वह रागरूप कैसे हो गया? ऐसा चैतन्यप्रभु, ऐसे अन्धे रागरूप किस प्रकार तू मानता है कि यह मेरे हैं? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अज्ञान को मूल में से उखाड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में उखाड़े बिना वापस अंकुर रह जाये न। था कहाँ यहाँ। ऐसा कलकत्ता में कहीं मिले नहीं। ...भाई! है या नहीं? छोटाभाई! भाई इकट्ठे हों तो धन्धे के पाप के परिणाम की बातें करे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही, भाई! यह सर्वज्ञ को डाला,

हों! आचार्य ने। भाई! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि प्रभु तो ऐसा कहते हैं न भाई! आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने। और ऐसे इन्द्र अर्धलोक के स्वामी सामने समवसरण में बैठे हों। शकेन्द्र, ईशान इन्द्र अर्धलोक के स्वामी, बड़े जगत के टोले उनके सामने भगवान की वाणी में ऐसा आया, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सर्वज्ञ का ज्ञान आधार में दिया जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो और ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ ने देखा, इसलिए क्रमबद्ध, ऐसा निर्णय न करो। आत्मा निश्चित करें। इसीलिए तो कहा, विश्व को प्रकाशित करते हैं, विश्व को प्रकाशित करते हैं। आधार लेकर बात करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सर्वज्ञ को पहले माने बिना धर्म चला कहाँ से? धर्म का मूल तो सर्वज्ञ है।

कहते हैं, **एक अद्वितीय ज्योति है, ऐसे...** चैतन्यसूर्य भगवान सर्वज्ञदेव, जिन्हें असंख्य प्रदेश में चैतन्य सूर्य के अनन्त दीपक प्रगट हो गये। ऐसे भगवान ने तो आत्मा को ज्ञान-दर्शन के शाश्वत् उपयोगस्वरूप को आत्मा कहा है। यहाँ तो अल्पज्ञ भी नहीं, हों! पुण्य-पाप तो आत्मा नहीं, परन्तु वर्तमान अल्पज्ञ उपयोग जो उघाड़ अल्पदर्शी और अल्पवीर्य, वह आत्मा नहीं। निश्चय आत्मा नहीं, वह व्यवहार आत्मा। निश्चय आत्मा नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप तो आत्मा नहीं और आत्मा को लाभदायक नहीं। परन्तु आत्मा की पर्याय में अल्पज्ञता जो विकास क्षयोपशम दिखता है, वह आत्मा व्यवहार आत्मा, अभूतार्थ आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न अल्प का। अल्प कहा न, अल्प। एक समय की दशा का। वह अभूतार्थ है। त्रिकाल भूतार्थस्वरूप को नित्य उपयोगवाला आत्मा कहा है। जो सम्यग्दर्शन का विषय है। अल्पज्ञ पर्याय आदि सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य, जिन्हें 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो।' गौतम के पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य आये हैं। वे स्वयं भगवान को अन्दर (आधार में) डालते हैं। भाई! भगवान ने तो ऐसा कहा है न! हम तो कहते हैं और हम तो जानते हैं, हम तो अनुभव करते हैं, ऐसा ही आत्मा है। मुनि है न। भावलिंगी सन्त हैं। आनन्द के कन्द में झूलते चारित्रवन्त हैं। कहते हैं कि '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' भगवान ने ऐसा देखा है न प्रभु तुझे! और तू ऐसा मिट-फिटकर और रागरूप कब हो गया? सेठिया! श्रीगोपालजी! आहाहा! भगवान ने तो ऐसा देखा न प्रभु! तू उसरूप कहाँ से हो गया? कब हो गया? आहाहा!

अभी तो आत्मा कैसा और कैसे है, उसके अस्तित्व की प्रतीति, अनुभव उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसकी बात पहले कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं, अरे! ऐसा सर्वज्ञ ने—भगवान ने देखा हुआ और **(समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने के लिए एक अद्वितीय...** तेज कि जैसा तेज अन्यत्र हो नहीं सकता। ऐसे तेज के स्वामी ने आत्मा को ऐसा कहा और तू कहता है कि मैं रागरूप हो गया। राग, वह मेरे अस्तित्व में है। यह पुण्य मेरे अस्तित्व, मेरी मौजूदगी में है। मैं होऊँ तो पुण्य है और पुण्य हो तो मैं हूँ। ऐसा कहाँ से हो गया? यह पुण्य हो तो मैं हूँ, ऐसा कहाँ से हो गया? तू हो तो ज्ञान-दर्शन से हो। ज्ञान-दर्शन से है। पुण्य हो तो यह है, ऐसा कहाँ से हो गया तुझे? सोभागभाई! यह तो सादी भाषा है, हों! बहुत ऐसी सूक्ष्म नहीं।

ऐसा अनुभव करता है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'? किस प्रकार से तुझे यह अनुभव होता है? कैसे तुझे यह मान लिया गया? ऐसा कहते हैं। **क्योंकि यदि किसी भी प्रकार से जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो...** देखो, अब न्याय। **क्योंकि यदि किसी भी प्रकार से...** भगवान ज्ञान-दर्शन का धनी उपयोगमय प्रभु **पुद्गलद्रव्यरूप हो...** रागरूप हो जाये, पुण्यरूप हो जाये, व्यवहार के विकल्परूप हो जाये **और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो....** और राग और विकल्प आदि जो पुद्गल हैं, वे जीवस्वरूप हो। देखो! दृष्टान्त देखो दृष्टान्त।

यदि किसी भी प्रकार से जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप... किसी भी प्रकार से जीवद्रव्य

रागरूप, पुण्यरूप, व्यवहाररूप हो और व्यवहाररत्नत्रय आदि राग वह **पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो...** आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह पुद्गल मिट्टी, जड़ अचेतन, हों! मिट्टी अर्थात् उसमें रजकण नहीं। अचेतन है। चेतन के नूर के समक्ष व्यवहाररत्नत्रय, वह अचेतन है। तो कहते हैं कि किस प्रकार से तेरा आत्मा उस अचेतनरूप हो गया? किस प्रकार से वह अचेतन, वह जीवरूप हो गया? कहो, ज्ञानचन्दजी! आहाहा! दोनों की अस्ति भिन्न है, उसमें दोनों एक कहाँ से हो गये? चैतन्य के पूरवाला भगवान, उसके अस्तित्व में राग है और राग की मर्यादा में, राग की मौजूदगी में आत्मा है, इसलिए उससे लाभ हुआ, इसलिए इसका अर्थ कि राग की मौजूदगी में मैं हूँ। ये दोनों कैसे हो गये? यह क्या हो गया तुझे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नोट कहीं धूल में रह गये। यह उपाधि भाव के साथ सम्बन्ध है वास्तव में तो।

मुमुक्षु : उपाधिभाव .... है न....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बाहर रहा। उसमें कुछ नहीं। सब सब उसमें गया। पुण्य-पाप के भाव ही आत्मा के साथ निबद्ध है। पहले आ गया है कर्ता-कर्म में। भगवान आत्मा जैसे पीपर के वृक्ष में लाख का सम्बन्ध है, उसका स्वरूप नहीं। निबद्ध है। वह पीपर नहीं। पीपर का वृक्ष, वृक्ष। उसी प्रकार चैतन्यरूपी वृक्ष नित्य उपयोग में पुण्य और पाप, वे लाख समान बन्ध है, निबद्ध है। स्वरूप नहीं। जीवस्वरूप नहीं। पहले आ गया है। ७४ गाथा। समझ में आया? अरेरे! कहते हैं कि लाख पीपर कैसे हो गयी? पीपर समझते हो? पीपर का वृक्ष होता है न? वृक्ष होता है। भावनगर बहुत पीपर थी पहले। वह ... भराती ऐसे वहाँ पीपर... पीपर सड़क के ऊपर। वह फिर लाख हुई, वह खा गयी तो एक पीपर नहीं। दोनों मैंने देखे हुए। गृहस्थाश्रम में। एक बार गये थे पीपर चारों ओर। दूसरी बार गया भावनगर पालेज से। वे पीपर कहाँ गये? लाख आयी थी तो खा गयी।

इसी प्रकार भगवान चैतन्य के पूर, ज्ञान के नूर भरपूर चैतन्य उपयोग से भरपूर

प्रभु है। उसमें पुण्य और पाप जिस भाव से बन्धन हो, वे विकल्प सब लाख समान है। अचेतन हैं, अन्ध हैं, अन्धकार है, जड़ है, पुद्‌गल है। पुद्‌गल अर्थात् यह विकार। वह तू चैतन्य मिटकर पुद्‌गल कहाँ से हो गया? और पुद्‌गल मिटकर तू कहाँ से हो गया चैतन्य? आहाहा!

जीवद्रव्य पुद्‌गलद्रव्यरूप हो और पुद्‌गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो तभी 'नमक के पानी'... भाषा देखो! दृष्टान्त। नमक होता है न नमक? वह बरसात के समय में पानी हो जाये। और पानी का नमक हो। नमक का पानी हो और पानी का नमक हो। उसी प्रकार यह हो जाता है? क्योंकि नमक का पानी होने में विरोध नहीं और पानी का नमक होने में विरोध नहीं। यह तो विरोध है। आहाहा! पोपटभाई! नमक होता है न, नमक? वर्षा आवे तो पानी हो जाये। और वापस पानी जम जाये तो नमक हो जाये। ऐसा यह होगा? भगवान चैतन्य का पूर ज्ञानमूर्ति प्रभु, वह पुण्य-पाप के मैलरूप, विकाररूप हो गया? जैसे नमक का पानी हुआ, वैसे होता होगा यह? और पानी का वापस नमक हो। उसी प्रकार विकार के परिणाम फिर आत्मा हों, ऐसा होगा? दृष्टान्त कितना सरल दिया है! देखो न! खारापन और द्रवना, यह दो विरोध नहीं। यह तो उसका स्वरूप है। उसी प्रकार आत्मा और राग दो विरोध है, उसका स्वरूप नहीं। वह तो उसका स्वरूप है। नमक का पानी हो और पानी का नमक हो। उसी प्रकार भगवान चैतन्य उपयोग, वह गलकर राग हो जाये? नमक गलकर पानी हो, ऐसा राग हो जाये? तीन काल में नहीं होता। उसी प्रकार राग जमकर चैतन्यबिम्ब पिण्ड हो? राग चैतन्यबिम्ब पिण्ड हो? तीन काल में नहीं होता। कहो, भीखाभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अवसर आवे, तब कहे न। आहाहा!

भगवान! तू भगवान कैसा है, उसकी तुझे खबर नहीं। भगवान की तू महिमा करे। भगवान कहे, परन्तु तू कैसा है, तुझे तेरी खबर बिना मेरी महिमा कहाँ से आये तेरे पास? तू कैसा है? वैसा मैं पूर्ण हूँ। अब तू कैसा है, यह तुझे खबरन हीं तो मेरी महिमा कहाँ से आयी तेरे पास? समन्तभद्र कहते हैं स्तुति में, हे नाथ! ... सत्ता, राग को आत्मा

का माननेवाले आत्मा की स्तुति नहीं कर सकते। यह है न स्वयंभूस्तोत्र? ... सत्ता। ... नाम राग ऐसे अपने को माननेवाले अभव्य आदि, प्रभु! आपको वन्दन नहीं करे, हों! वे। तब यह वन्दन करते हैं न? वह तो राग को करते हैं। तुझको कहाँ करते हैं? आहाहा! यह पूजा भगवान की करते हैं? नहीं। वह तो राग की पूजा करते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे राग में सब मनवा लिया गया है। वह राग की पूजा करता है। प्रभु! आपको कोई अज्ञानी मानते नहीं। जितने पुण्य परिणाम राग से लाभ माननेवाले, राग से आत्मा को माननेवाले प्रभु! आपको वन्दन कर सकते ही नहीं तीन काल में। आहाहा! कहो। तू कौन है राग बिना का, यह जाना नहीं। भगवान राग बिना के हैं। उसे कहे, भगवान ऐसे हैं। ओहोहो! समवसरण और तीन काल जाने। आहाहा! देव आवे और बड़ा समवसरण जमे, वह भगवान। वह भगवान नहीं।

ऐसी अनुभूति वास्तव में ठीक हो सकती है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है';... नमक का पानी ऐसे अनुभव की भाँति मेरा यह पुद्‌गलद्रव्य, ऐसी अनुभूति वास्तव में उचित है? ऐसा कहते हैं। **किन्तु ऐसा तो किसी भी प्रकार से नहीं बनता।** नमक का पानी होता है, उस प्रकार भगवान कभी रागरूप होता है, ऐसा है नहीं और राग आत्मा होता है, ऐसा है नहीं। कभी नहीं। इसे दृष्टान्त से समझायेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १४, शुक्रवार, दिनांक - २८-१०-१९६६
गाथा-२३ से २५, प्रवचन - ८७

जीव-अजीव अधिकार चलता है। केवली तीर्थंकर के गुण की स्तुति किसे कहा जाता है। केवलज्ञानी भगवान के गुण की स्तुति कैसे की जाती है ? ऐसा है यह। इसके उत्तर में आत्मा की स्तुति की बात की है। उसमें भी इन्द्रिय को जीतना, उसने भगवान के गुणग्राम किये, अर्थात् कि आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के स्वरूप में एकाग्रता की, वही आत्मा के गुण गाये, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? उसमें इन्द्रिय को जीतना। इन्द्रिय के तीन प्रकार किये। एक द्रव्येन्द्रिय, एक भावेन्द्रिय और एक इन्द्रिय के विषय। तीनों को इन्द्रियरूप से कहा गया है।

पहले में ऐसा कहा कि शरीर परिणाम को प्राप्त जो इन्द्रियाँ, शरीर परिणाम को प्राप्त जो इन्द्रियाँ जड़। उसे भेदविज्ञान की प्रवीणता के बल से प्राप्त। यहाँ शरीरपने के परिणाम को प्राप्त इन्द्रियाँ यह है। भगवान आत्मा... तू ऐसे आत्मा को मानता है, वह लोकोत्तर मूर्ख-मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : .... जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं।

स्फटिक का दृष्टान्त तो समझ में आया या नहीं ? जैसे स्फटिक है, वह तो स्वच्छ ही है। उसका मूलस्वभाव तो स्वच्छ है। परन्तु जिस बर्तन में रखा जाता है, वह जैसा बर्तन हो हरा, पीला, काले रंग का, वैसी झाँई उसमें दिखती है, वह स्फटिक की मूल चीज़ नहीं। वह स्फटिक में उपाधिभाव है। वह उपाधिभावस्वरूप स्फटिक जाने, वह लौकिक मूर्ख गिनने में आता है। उसी प्रकार चैतन्य रत्न विज्ञानघन भगवान आत्मा कर्म के निमित्त के संग में जो पुण्य-पाप, दया-दान, व्रत-भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, काम-क्रोध के विकल्परूप मैलरूपी राग, वह आत्मा में

एक समय की दशा में अस्वभावभाव है। उसका स्वभावभाव नहीं, अस्वभावभाव है। समझ में आया? उस अस्वभावभाव को ही आत्मा अनुभवता है, आत्मा जानता है, वह मिथ्यादृष्टि लोकोत्तर मूर्ख है। समझ में आया या नहीं?

कहते हैं कि अरे... मूर्ख! दुरात्मन् कहा था। हे दुरात्मन्—आत्मघात करनेवाले! ऐसा सम्बोधन किया था। सन्तों को तो सम्बोधन करने में कहीं किसी के पास फण्ड-चन्दा करने का नहीं कि ठीक पड़ेगा या ठीक नहीं पड़ेगा। हे दुरात्मन्! हे आत्मा का घात करनेवाले! भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने तो आत्मा को नित्य उपयोग लक्षणवाला देखा है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने नित्य अर्थात् शाश्वत् ज्ञान-दर्शन के शाश्वत् उपयोगस्वरूप भगवान ने आत्मा को देखा है। ऐसे आत्मा को तू पुण्य-पाप, विकल्प, रागवाला मानता है तो हे आत्मघाती! तेरी ऐसी दृष्टि कहाँ से विपरीत हो गयी? सूक्ष्म बात है, हों! ...लालजी! आहाहा!

जीव-अजीव अधिकार है। जीव तो भगवान ने ऐसा देखा है, '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**'। सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान में, सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में आत्मा ऐसा देखने में आया है। क्योंकि सर्वज्ञ भगवान शरीर, कर्म को अजीव देखते हैं और सर्वज्ञ भगवान पुण्य-पाप भाव को आस्रव, अजीव देखते हैं। आस्रवरूप भाव जीवस्वभाव से भिन्न देखते हैं। समझ में आया? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन आता है या नहीं? तो तत्त्वार्थ में अजीव-शरीर, कर्म तो भगवान ने अजीव देखे हैं। और उसमें पुण्य, पाप, शुभ, अशुभ, दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प जो राग है, उसे तो भगवान ने आस्रव देखा है। वह जीव-आत्मा भगवान ने उन्हें देखा नहीं। वे तो आस्रव हैं। आस्रव कहने से वे जीवस्वभाव नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

अभी तो जीव-अजीव अधिकार की बात चलती है। आस्रव है, उससे तो भगवान ने तेरा आत्मा तो भिन्न देखा है। ज्ञान-दर्शन शाश्वत् उपयोगस्वरूप, वह आत्मा। समझ में आया? छत्तरगच्छ में देवचन्दजी (हुए), वे भी कहते हैं, श्वेताम्बर में, हों! 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल...' गुजराती आया। 'प्रभु तुम जाणग रीति

सौ जग देखता हो लाल...' हे नाथ! तुम्हारे ज्ञान में जाननशक्ति की पद्धति ऐसी है, 'निज सत्ताये शुद्ध सौने पेखता हो लाल...' हे परमेश्वर! हे सर्वज्ञदेव! हे धर्मपिता! आप तो सर्व आत्माओं को निज सत्ता से शुद्ध चैतन्यमूर्ति आप देखते हो। समझ में आया? हे धर्मपिता! हे जगतगुरु नाथ! आपके सर्वज्ञ ज्ञान से आप तो ऐसा देखते हो, प्रभु! 'निज सत्ताये शुद्ध सौने लेखता हो लाल...' हे नाथ! आप तो आत्मा को शाश्वत् ज्ञान-दर्शन उपयोग शुद्ध सत्तावन्त देखते हो। सोभागभाई! और यह अज्ञानी आत्मा ऐसे आत्मा को नहीं जानकर, नहीं अनुभवकर, नहीं आदर करके, नहीं सत्कार करके और इस आत्मा से विरुद्ध भाव जो पुण्य-पाप, शुभ-अशुभराग विकल्प को आत्मा मानकर उसे अनुभव करता है, प्रभु! तू मिथ्यादृष्टि मूर्ख है। ...लालजी! जरा कड़क तो है। नहीं कड़क है? सेठिया को कड़क तो नहीं लगता। चीज़ ऐसी है। समझ में आया?

जिसे दुनिया व्यवहार कहती है, व्यवहाररत्नत्रय कहती है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम और शास्त्र सन्मुख होकर विकल्पवाला ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान—रागवाला ज्ञान, उसे यहाँ कहते हैं कि वह अजीव है। सेठिया! अरे! अजीव को जीव कैसे मानता है यह? ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! चैतन्यस्वरूप तो नित्य शाश्वत् ज्ञान-दर्शन उपयोगमय है। उसे व्यवहार विकल्प से लाभ होता है, ऐसा माननेवाले राग को ही आत्मा मानते हैं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .... अजीव को जीव मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे अजीव को आत्मा मानते हैं कहो या राग को आत्मा मानते हैं कहो या आस्रव को आत्मा मानते हैं कहो या अनात्मा को आत्मा कहो या अजीव को आत्मा मानते हैं कहो। जीव-अजीव अधिकार है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान तो ऐसा देखते हैं न प्रभु! २४वीं गाथा में कहा, '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' कुन्दकुन्दाचार्य को सर्वज्ञ को लेना पड़ा। अरे! आत्माओ! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, उन भगवान ने तो आत्मा को... यह २४वीं गाथा में आयेगा, देखो! पाठ में है, **सर्वज्ञज्ञान से स्फुट (प्रगट) किये गये जो नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य वह**

पुद्गलद्रव्यरूप कैसे हो गया... समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने तो ज्ञान का कन्द विज्ञानघन स्वरूप, वह आत्मा, जानन-देखन उपयोग त्रिकाल, हों! वर्तमान पर्याय की बात है नहीं। जानन-देखन उपयोग जो त्रिकाल जानन-देखन उपयोगस्वरूप आत्मा भगवान ने देखा है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय की बात यहाँ नहीं। भाई! वर्तमान ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय, विकास की पर्याय, वह तो व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्मा— वास्तव में आत्मा वह नहीं। क्या कहा? शरीर और कर्म जड़ हैं, वे तो आत्मा नहीं, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभाशुभभाव है, वह आत्मा नहीं। क्योंकि वह तो अनात्मारूपी आस्रव है। और आत्मा में प्रगट वर्तमान ज्ञान, दर्शन, वीर्य का जो विकास अंश दिखता है, एक समय का विकास अंश है, वह वास्तविक त्रिकाली आत्मा नहीं, वह व्यवहार आत्मा है। तो व्यवहार आत्मा को अभूतार्थ कहकर नित्य ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा को भगवान परमार्थ से वास्तव में आत्मा कहते हैं। बहुत सूक्ष्म परन्तु इसमें। ...लालजी! क्या करना? भारी गड़बड़ हो गयी है। अभी तो ऐसी गड़बड़ी है.... आहाहा!

भगवान कहते हैं, प्रभु! तू आत्मा है या नहीं? तुझे आत्मा कैसा है, ऐसी तुझे प्रतीति करनी है या नहीं? सात तत्त्व में आत्मा कैसा है, ऐसी तुझे प्रतीति-श्रद्धा, ज्ञान करना है या नहीं? यदि तुझे पहले भगवान आत्मा कौन है, ऐसी श्रद्धा करनी हो तो वह आत्मा शरीर, कर्म में तो नहीं, शरीर, कर्मरूप तो नहीं, पुण्य-पाप में नहीं, पुण्य-पापरूप नहीं, अल्पज्ञ अवस्थारूप नहीं, अल्पज्ञ अवस्था में नहीं। आहाहा! सोभागभाई! सोभागभाई कल कहते थे, ऐसा सुनने का कहीं नहीं मिलता। ऐसा कहते थे। भगवान! तेरी चीज़ कोई अलौकिक है, प्रभु!

यहाँ तो कहते हैं कि जो ऐसे भगवान आत्मा को तू जो रागादि पुद्गलरूप मानता है तो हम कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान ने ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप भगवान को देखा है। तो नमक जैसे जल होता है और जल नमक होता है। वर्षाकाल में नमक की डली पानी हो जाती है और पानी है, वह गर्मी में नमक हो जाता है। तो क्या इस प्रकार से भगवान आत्मा चैतन्यघन भगवान क्या पुण्य-पाप, राग, शरीररूप हो गया? जैसे नमक पानी

रूप होता है। समझ में आया? उसी प्रकार भगवान आत्मा विज्ञानघन चैतन्यप्रभु जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो पूर्णानन्द है, जिसमें पूर्ण ज्ञान-दर्शन से भरपूर आत्मा है, वह आत्मा क्या रागरूप हो गया? जैसे नमक पानी होता है, वैसे आत्मा क्या पुण्य, दया, दान, व्रतरूप हो गया है? ...लालजी! और जैसे नमक का पानी है, वह पानी पिण्ड हो जाता है। ढीम समझे? क्या कहते हैं? जम जाता है। वैसे दया, दान, काम, क्रोध, पुण्य-पाप के परिणाम क्या चैतन्यघन में घुस जाते हैं? चैतन्यघन हो जाते हैं? क्या पुण्य-पाप के भाव विज्ञानघन होते हैं और विज्ञानघन क्या पुण्य-पापरूप होता है? नमक का पानी होता है, पानी का नमक होता है। उसी प्रकार आत्मा विज्ञानघन भगवान वह क्या रागरूप हो जाता है? कभी नहीं होता। आहाहा! लालचन्दजी! गजब बात, भाई! अभी तो आत्मा कैसा है, उसकी बात करते हैं।

कहते हैं, **'नमक के पानी' इस प्रकार के अनुभव की भाँति ऐसी अनुभूति वास्तव में ठीक हो सकती है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'; किन्तु ऐसा तो किसी भी प्रकार से नहीं बनता। दृष्टान्त देकर इसी बात को स्पष्ट करते हैं** - है पैराग्राफ? हिन्दी में ५९ पृष्ठ है, तुम्हारा दूसरा होगा। 'दृष्टान्त देकर इसी बात को स्पष्ट किया जाता है।' पहले बात चल गयी है, यह तो थोड़ा ऊपर से कहा। समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है। इसने कभी यह बात रुचि से सुनी नहीं। अनन्त बार सब किया। क्या? विकार। सबका अर्थ जड़ का या पर का नहीं। इसने किया तो अनन्त काल में जो आत्मा नहीं, ऐसा किया। पुण्य और पाप के भाव जो अनात्मा है, ऐसा किया। तो अनात्मारूप से चार गति में भटका। समझ में आया?

कहते हैं कि, भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर, कुन्दकुन्दाचार्यदेव सर्वज्ञ का आधार देकर कहते हैं। हम तो कहते हैं कि चैतन्यप्रभु तो विज्ञानघन है, ज्ञायकज्योति है, वह कभी पुण्य-पापरूप हुआ नहीं। तीन काल में हुआ नहीं। निगोद में भी चैतन्य तो चैतन्य ज्ञानघन ही रहा है। नित्यनिगोद में हो, एकेन्द्रिय में हो, पंचेन्द्रिय में हो, भगवान उसे आत्मा कहते हैं वह तो विज्ञानघन स्वरूप ही है। वहाँ भी पुण्य-पाप के विकल्परूप वह विज्ञानघन हुआ ही नहीं। समझ में आया? क्योंकि पुण्य-पाप के भाव तो आस्रवतत्त्व

है। तो जीवतत्त्व आस्रवतत्त्वरूप कभी हुआ नहीं। और पुण्यपरिणाम जो आस्रवतत्त्व हैं, वे जीवतत्त्वरूप कभी हुए नहीं। हुए नहीं तो भी अज्ञानी उन्हें अपने हैं, ऐसा मानता है। सेठी! ऐसी बात है। आहाहा! मूल बात की खबर नहीं होती, मूल चीज़ की खबर नहीं होती और कहता है कि हमारे धर्म होगा। ... लालजी! आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर... कुन्दकुन्दाचार्य गुरु अपनी बात कहते हैं, परन्तु भगवान का आश्रय लेकर कहते हैं। भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर जगतपिता धर्मपिता त्रिलोक के नाथ समवसरण में धर्मसभा में अर्ध लोक के स्वामी के शकेन्द्र और अर्धलोक के स्वामी ईशानइन्द्र, ऐसे इन्द्र जो आकाश के स्तम्भ के जैसे बैठे थे, ऐसे भगवान ने सर्वज्ञ परमेश्वर ने दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहा। अरे... आत्माओ! तुम तो विज्ञानघन प्रभु आत्मा हो और जो शुभ-अशुभराग भगवान कहते थे, हमारे प्रति का जो भक्ति का विकल्प उठता है, वह भी राग है, आत्मा नहीं। ऐसा भगवान इन्द्र के समक्ष समवसरण में भगवान फरमाते थे। ...लालजी! आहाहा! लोक के स्वामी ऐसे आकाश बड़े! सौ-सौ इन्द्र के बीच में भगवान की वाणी निकलती है। अभी भी वहाँ भगवान की वाणी (निकलती है)। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य लगभग संवत् ४९ में वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। उन्होंने वहाँ से आकर यह बनाया है। समझ में आया?

अरे! ये तो मुनि थे, भावलिंगी सन्त थे, अनुभवी थे। सम्यग्दृष्टिपूर्वक आनन्द के कन्द में झूलनेवाले कुन्दकुन्दाचार्य थे। आहाहा! इतना पुण्य था और इतनी पवित्रता की योग्यता थी कि भरतक्षेत्र के मानव ने परमात्मा के महाविदेहक्षेत्र में सशरीर यात्रा हुई। ...लालजी! ऐसे भगवान के पास आठ दिन रहकर आये। समझ में आया? मद्रास से अस्सी मील इस ओर एक वन्देवास है, वहाँ से पाँच मील एक पोन्नूर हिल टेकरी है। पोन्नूर हिल—सोने की टेकरी। पोन्नूर—सोने की। पोन्नूर हिल। वहाँ आगे कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त ध्यान में रहते थे। वहाँ ध्यान में कुन्दकुन्दाचार्य को भगवान याद आये। अहो! भरतक्षेत्र में भगवान का विरह पड़ा। अरे! हमारा अवतार भरत में, परमेश्वर का हमको विरह पड़ा। परमेश्वर यहाँ के नहीं, परमेश्वर है वहाँ हमारा अवतार नहीं। यहाँ के भरत में परमेश्वर थे, वे तो चले गये। परमेश्वर है, वहाँ हमारा अवतार

नहीं। परमेश्वर का विरह पड़ा। चिन्तवन करते-करते इतनी भक्ति उछली कि नमस्कार किया। ...भगवान की वाणी में इच्छा बिना, सत् धर्म वृद्धि होओ! ऐसी आवाज निकली। सभा ने सुना कि यह क्या? यहाँ कोई है नहीं और यह आवाज क्या निकली? वहाँ तो एकदम कुन्दकुन्दाचार्य ... चार अँगुल ऊँचे चलने की ऋद्धि थी। उनके मित्र भी वहाँ देव थे। वहाँ से आये। भगवान के पास खड़े। पाँच सौ धनुष का देह—दो हजार हाथ (ऊँचा)। ये चार हाथ। पतंगिया जैसे दिखाई दे। चक्रवर्ती ने कहा, भगवान सिंहासन में बैठ गये, नीचे थे, चक्रवर्ती कहे, महाराज! यह है कौन? मनुष्य आकार में यह है कौन? तीड जैसे दिखाई दें। तीड कहते हैं न? समझे? छोटा कीड़ा। कौन है? भगवान कहते हैं, भरतक्षेत्र के धर्म आचार्य-धर्माचार्य ऐल्लक हैं छोटे—ऐलाचार्य हैं। आहाहा! वहाँ आठ दिन सुना। भावमुनि तो थे।

यहाँ कहते हैं, अरे! सर्वज्ञ भगवान तो ऐसा कहते थे न। सर्वज्ञ प्रभु ने तो इस आत्मा को शुद्ध चैतन्यघन कहा है और तू यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव आत्मा के हैं और उनसे मुझे लाभ होगा, उनसे किंचित् तो आत्मा को लाभ होगा न! ऐसा तू मानता है तो अनात्मा को ही तू आत्मा मानता है। सेठिया! चिल्लाहट मचाये। अररर! भाई! भगवान के पास जा। पूछ भगवान को। परन्तु तू जायेगा किसका? समझ में आया? कहते हैं...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो महाविनयी थे। उसे कहते हैं कि हम तो अल्पज्ञ हैं। हम तो आत्मा को ऐसा राग से-विकल्प से भिन्न अनुभव करते हैं। परन्तु सर्वज्ञ त्रिलोक के नाथ जो धर्म के धुरन्धर आश्रय है, वे धर्म के मूल सर्वज्ञ परमेश्वर हैं, उनके मुख में निकली हुई वाणी शास्त्र (रचित) हैं, ऐसे त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, भाई! तुझे ऐसी गड़बड़ कहाँ से उठी? चैतन्य गोला भिन्न परमात्मा अन्दर चैतन्य विराजता है, उसे तू यह जो राग का विकल्प उठा, उससे मुझे लाभ होगा। इसका अर्थ कि विकल्प, वह मैं हूँ, इसका अर्थ कि राग में मेरी चीज़ है और उस राग में मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह दृष्टान्त देकर कहते हैं, देखो!

जैसे खारापन जिसका लक्षण है ऐसा नमक... नमक। नमक का लक्षण खारापन— खारा, खारा का दल है। खारापन का पिण्ड है नमक? खारापन का पिण्ड है। **ऐसा नमक पानीरूप होता हुआ दिखायी देता है...** नमक का दल वर्षाकाल में पानीरूप होता हुआ, नमक पानीरूप होता हुआ दिखाई देता है। **और द्रवत्व (प्रवाहीपन) जिसका लक्षण है, ऐसा पानी...** लवण का पानी, नमक का पानी। वह द्रवत्व—प्रवाहीपना **जिसका लक्षण है, ऐसा पानी नमकरूप होता दिखायी देता है,...** वह पानी जम जाता है। नमक है, वह गल जाता है, उसका पानी होता है। यह तो बराबर है, उसका स्वरूप है। **क्योंकि खारेपन और द्रवत्व का एक साथ रहने में अविरोध है,...** खारापन और द्रवत्व अर्थात् प्रवाहीपन साथ रहने में विरोध नहीं। अविरोध है। खारापन द्रवित भी हो जाता है और द्रवितपन पिण्ड-जम भी जाता है। तो खारापन में और द्रवितपन में कोई विरोध नहीं है। **अर्थात् उसमें कोई बाधा नहीं आती,..** यह दृष्टान्त हुआ।

इस प्रकार नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य... देखो! भगवान जानन-देखन उपयोग त्रिकाल शाश्वत्, उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य **पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखायी नहीं देता...** भाषा देखो! लवण प्रवाहीरूप से पानी होता हुआ देखने में आता है। भगवान आत्मा ज्ञानघन है, वह पुद्गलद्रव्य अर्थात् पुण्य-पाप भाव और कर्मरूप, शरीररूप होता हुआ देखने में नहीं आता। है? भाई! क्या कहते हैं? देखो! यह तो वस्तु अलौकिक बात है, तुम्हारे संसार की अपेक्षा (अलौकिक बात है)। बहियों के नामा अलग और यह नामा अलग है। उसके धूल-धाणी के नामा। सोभागभाई!

मुमुक्षु : धूलधाणी के नामा अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धूल के-पैसे आये और गये, आये और गये। सब कषाय अग्नि सुलगती है वहाँ तो। सोभागभाई! यह पैसेवाले रहे सबसे बड़े, देखो न अभी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसेवाले कहाँ थे? ममतावाले हैं। रुपये लेकर आये हैं यहाँ? पास में क्या है? आत्मा है पास में और या यह मेरा है, ऐसी ममता है, दूसरा कुछ है

नहीं पास में, लो। सोभागभाई! करोड़ोंपति है सोभागभाई। यहाँ तो कुछ लगता नहीं। कुछ लगता नहीं?

मुमुक्षु : हमारी दृष्टि से देखो तो क्या लगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लगे? ममता लगे। वहाँ है ऐसा लगे। उस फकीर का दृष्टान्त देते हैं न? सुना है या नहीं? जहाँगीर। जहाँगीर था न? उसकी रानी थी नूरजहाँ। नूरजहाँ रानी थी। बहुत सुन्दर दुनिया की दृष्टि से। बहुत सुन्दर। सुन्दर का अर्थ क्या? नाक, आँख सुन्दर हो, वह सुन्दर। हड्डियों के आकार सुन्दर थे तो नूरजहाँ (कहलाती थी)। जहाँ—दुनिया का नूर—तेज। ऐसा एक फकीर ने सुना था। उसे लगा, लाओ न देखने जाऊँ। दुनिया कहती है कि उसके शरीर में बहुत तेज है। राजा और रानी पलंग पर बैठे थे और मकान का दरवाजा बन्द था। बारणुं समझे? दरवाजा बन्द था। फकीर को लब्धि थी तो ऊपर से आया। बैठे थे। देखकर (सिर धुनने लगा)। राजा पूछता है, साईंबाबा! तुम कहाँ से आये? दुनिया कहती थी कि तुम्हारी रानी बहुत सुन्दर है। ऐसा कहती थी। नूरजहाँ। इसलिए मैं देखने आया। तुम्हारा दरवाजा बन्द था, इसलिए मैं ऊपर से आया। आकर कहा, लोग कहते हैं, ऐसा मुझे दिखता नहीं। राजा कहते हैं, बाबा! तुम हमारी दृष्टि से देखो। तुम्हारी दृष्टि से नहीं।

भगवान! तू तो राग नहीं और बाह्य चीज़ की पर्याय में तेरा अधिकार नहीं। तूने बनाया, यह हम किस प्रकार देखें? उल्टा बहुत जगत से, भाई! तू तो भगवान ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! तू तो जानन-देखन की पर्याय से हटकर कभी रागरूप हुआ है कि तुझे हम रागरूप देखें? यह तो यहाँ कहते हैं प्रभु। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दो हजार वर्ष पहले भरतक्षेत्र में हुए। उन्होंने यह (गाथा) बनायी, अमृतचन्दाचार्य ने टीका की। नौ वर्ष पहले दिगम्बर सन्त अमृतचन्द्राचार्य धर्मधुरन्धर आकाश के स्तम्भ महासन्त मुनि भावलिंगी सन्त। आहाहा! परमेश्वरपद में विराजमान पंच परमेष्ठी है न! णमो लोए आईरियाणं।

वे आचार्य कहते हैं, अरे! भगवान! खारापन द्रवकर पानी होता है, वैसे आत्मा नित्य उपयोगलक्षणवाला क्या रागरूप कभी हुआ है? तुझे हम (ऐसा) किस प्रकार से देखें? समझ में आया? गजब बात, भाई! अभी तो मूल आत्मा में... प्रभु! यह विज्ञानघन

स्वरूप प्रभु, जैसे नमक पानी होता हुआ दिखाई देता है, वैसे क्या प्रभु चिदानन्द विज्ञानघन चैतन्यदल पुण्य-पाप के रागरूप होता हुआ दिखाई देता है? नहीं। आहाहा! समझ में आया? नित्य उपयोगलक्षण। यहाँ तो भाषा देखो! पर्याय भी निकाल दी यहाँ तो। भगवान ध्रुव शाश्वत् ज्ञानलक्षण, भले लक्ष्य करनेवाली पर्याय है, परन्तु पर्याय में नित्य ज्ञान-दर्शन उपयोगवाला आत्मा, ऐसा दिखाई देता है, ऐसा कहते हैं, भाई! पर्याय में, पर्याय में ज्ञान-दर्शन उपयोगरूप से त्रिकाल आत्मा है, ऐसा देखने में आता है। क्या वह ज्ञान-दर्शन उपयोगवाला आत्मा पर्याय में रागवाला हुआ, ऐसा दिखाई देता है? नमक पानीरूप होता है। वैसे भगवान आत्मा व्यवहाररत्नत्रय, व्यवहाररत्नत्रय राग विकल्प है, उसरूप होता देखने में आता है? ऐसा देखने में नहीं आता। समझ में आया? कपूरभाई! आहाहा!

प्रभु! एक बार हमारी बात तो सुन! परमात्मा कहते हैं, हों! सन्त कहते हैं। सन्त परमात्मा के प्रतिनिधि हैं। समझ में आया? अरे! आत्मा! भगवान ऐसा कहते हैं कि नमक पानीरूप होता है, वह तो बराबर दिखाई देता है। क्या भगवान आत्मा विज्ञानघन गलकर, पिण्ड जो नमक है, वह गलकर पानी होता है, वैसे भगवान विज्ञानघन नित्य घन क्या गलकर राग, पुण्य, व्यवहाररत्नत्रयरूप हुआ है, ऐसा दिखता है? नहीं।

मुमुक्षु : पुण्य-पापरूप हुआ कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ कौन? जड़। यहाँ तो जीव-अजीव की व्याख्या चलती है। पुण्य-पाप अजीव हैं, अनात्मा हैं; आत्मा नहीं। आत्मा में उनका अत्यन्त अभाव है। आहाहा! सोभागभाई! ऐसा वहाँ कलकत्ता में न हो तो रतनपुर में तो हो ही कहाँ से। आहाहा! अरे भगवान! तेरी सत्य बात तुझे सुनने को न मिले तो सत्य की प्रतीति और अनुभव तो कहाँ से हो? और अनुभव बिना कभी सम्यग्दर्शन और धर्म होता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

नमक, खारापन और पानी द्रवत्व-प्रवाहीपना, उसमें कुछ विरोध नहीं। प्रवाही जम जाये तो नमक होता है। उसमें कोई विरोध नहीं। क्या इसी प्रकार भगवान आत्मा विज्ञानघन उपयोग चैतन्यदल है, भगवान क्या व्यवहाररत्नत्रयरूप राग-विकल्प अनात्मा

है, क्या आत्मा उस अनात्मारूप कभी हुआ है ? कहो, समझ में आया ? नमक पानी होता है, ऐसा दिखाई देता है, यह तो बराबर है। क्योंकि खारापन को और द्रवत्वपन को विरोध नहीं। यह तो बड़ा विरोध है। भगवान चैतन्यघन विज्ञानघन प्रभु को आत्मा कहा। वह आत्मा, वहाँ पानी प्रवाहरूप होकर रागरूप हो, ऐसा पानी है ? नहीं, बिल्कुल नहीं। तीन काल-तीन लोक में विकल्प, राग व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम अनात्मा हैं। आत्मा, वह अनात्मारूप कभी हुआ ही नहीं। ...लालजी! ऐसी बात वहाँ उदयपुर में बहुत नहीं होती, हों! यहाँ तो सोनगढ़ है न (इसलिए होती है)। लोगों को सत्य तत्त्व मिला नहीं, ऐसी गड़बड़, ऐसी गड़बड़ (कर डाली है)। समझ में आया ?

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की बात अमृतचन्द्राचार्य स्पष्ट करके टीका करते हैं। टीका का अर्थ, जो भाव गाथा में गूढ़रूप सामान्यरूप रहस्यरूप पड़े हैं, उनका विशेष स्पष्टीकरण करके कहना, इसका नाम टीका। भगवान अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हुए कहते हैं, भगवान! तू तो विज्ञानघन मूर्ति है न, प्रभु! तो वह विज्ञानघन भगवान, जैसे खारा नमक पानीरूप होता है, वैसे विज्ञानघन गलकर प्रवाही होकर विकारी होता है ? रागरूप होता है ? शरीररूप होता है ? शरीर की क्रियारूप होता है ? इच्छारूप होता है ? व्यवहाररत्नत्रय का राग शुभ उपयोगरूप होता है ? बिल्कुल नहीं। कड़क बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वस्तु है, यही वस्तु है। ऐसा अनुभव किये बिना तुझे कभी धर्म होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। छहढाला में आता है या नहीं ? 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' छहढाला है न ? उसमें आया है। 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' दौलतरामजी कहते हैं।

मुमुक्षु : तोरी जगत द्वंद्व....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, 'तोरी जगत द्वंद्व फंद, निज आतम ध्याओ।' आत्मा परन्तु कैसा आत्मा ? ऐसा। ऐ... रतिभाई!

कहते हैं कि वह राग आता है, राग, पंच महाव्रत का राग आया। रागरूप आत्मा हुआ है? रागरूप हुआ? निर्मलानन्द प्रभु मैलरूप कैसे हो? चैतन्य भगवान ज्ञानमूर्ति वह अनात्मरूप कैसे हो? वह तो अनात्मा है—राग अनात्मा है। यहाँ कहा न? अजीव है। यहाँ अजीव कहो। देखो! आगे आता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य... इतनी लाईन में इतना भरा है। **पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखायी नहीं देता...** पुद्गलद्रव्य की व्याख्या—यह पुण्य परिणाम भी पुद्गलद्रव्य ही है, चेतनद्रव्य नहीं। समझ में आया? पुद्गलद्रव्य का अर्थ उन रजकण में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, वैसे पुण्य परिणाम में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, ऐसा नहीं। परन्तु जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो राग है, उसमें चैतन्यप्रकाश का नूर का अभाव है। राग, वह अन्धकार है। समझ में आया? अचेतन है, उसमें चैतन्यप्रकाश की एक किरण भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैसे शरीर के किसी रजकण में चैतन्यप्रकाश का अंश नहीं, कर्म के किसी रजकण—द्रव्य-गुण-पर्याय में चेतन का अंश नहीं; उसी प्रकार राग में भगवान चेतन के नूर के प्रकाश का अंश नहीं। समझ में आया? जैसे सूर्य में अन्धकार नहीं, अन्धकार में सूर्य नहीं; उसी प्रकार भगवान चैतन्यसूर्य सहजात्म चैतन्यसूर्य प्रभु, वह रागरूपी अन्धकार में कैसे आ गया? वह रागरूप अन्धकारमय कैसे हो गया? रागरूप अन्धकाररूप किस प्रकार हो? कैसे हो, प्रश्न करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें समझ सकता नहीं, बात यह है। मूढ़ मानता है। समझ में आया? सहजात्मस्वरूप चैतन्यसूर्य, सहजात्मस्वरूप चैतन्यसूर्य अकेला प्रकाश के नूर के पूर से भरा हुआ भरपूर है। ऐसा भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश के पूर से भरपूर तत्त्व है। भगवान उसका नाम आत्मा कहते हैं। वह आत्मा रागरूपी अज्ञान; अज्ञान का अर्थ उसमें ज्ञान नहीं, हों! अज्ञान का अर्थ मिथ्यात्व, ऐसा नहीं। समझ में आया? वह शुभराग अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ उसमें ज्ञान के तेज के प्रकाश का अभाव है। समझ में आया? चैतन्यसूर्य बिम्ब भगवान, वह रागरूपी जिसमें चैतन्य के प्रकाश के अंश का

अभाव है, तो अचेतन ऐसा राग, चाहे तो तीर्थंकरपने का बँधने का भाव हो, षोड़शकारणभावना, भगवान कहते हैं कि वह तो अचेतनराग अन्धकार है। भगवान की वाणी सुनना महामुश्किल है।

वचनामृत वीतराग के परमशान्त रसमूल,
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल।

जिसका वीर्य हींजड़ा जैसा-पावैया जैसा है, भगवान कहते हैं, हों! क्लीव कहा है पहले। क्लीव-नपुंसक। जिसके वीर्य पावैया को पाना चढ़े नहीं, पावैया को स्तन में दूध नहीं होता। इसी प्रकार जिसका वीर्य पावैया जैसा-हींजड़ा जैसा हो गया है, वह पुण्य के परिणाम को आत्मा के परिणाम माननेवाला पुण्य से चैतन्य को माननेवाला पावैया-हींजड़ा है, ऐसा कहते हैं। यहाँ पैसा-बैसे का फण्ड-चन्दा कराना नहीं न! नग्न मुनि हैं, नग्न। नागा बादशाह से आघा। ...लालजी! समझ में आया? अरे.. क्लीव! ऐसा कहा है, हों! पहले कहा है, फिर दो बार कहा है। पुण्य-पाप अधिकार में कहा है और ४४ गाथा में कहा है। क्लीव। क्लीव अर्थात् नपुंसक। वीर्यगुण का यह काम है कि राग करना और रागस्वरूप अपने को मानना और राग से, व्यवहार से निश्चय प्राप्त हो, ऐसा वीर्य का काम है? वीर्य को ऐसा सौंपते हैं? हमने तो वीर्य का कार्य ऐसा कहा है कि स्वरूप रचना का कार्य करे, वह वीर्य है। अपने शुद्धस्वभाव की रचना करे, वह वीर्य है। ऐसा ४७ शक्ति में भगवान ने फरमाया है। वीर्य किसे कहते हैं? आत्मस्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। क्या राग की रचना करे, वह वीर्य है? व्यापार-ब्यापार, धन्धा-फन्धा का तो कुछ वीर्य ही नहीं। वह तो थोथा निकला। ऐई मालचन्दजी! मालचन्दजी को सौंपा न वहाँ का। ... समझ में आया? वजुभाई! 'रण में चढ़ा रजपूत छुपे नहीं। चंचल नारी को नैन छुपे नहीं, भाग्य छुपे नहीं भभूत लगाया।' इसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं कि हमारी वीरता की वाणी (सुनकर) अज्ञानी को-कायर को ऐसे हाय... हाय... (हो जाता है)। वह वीर जीव पुरुषार्थी जीव उसे स्वीकार कर सकेगा। अज्ञानी की हैसियत नहीं कि उसे यह ऐसा है, ऐसा मानने में उसे पसीना आ जाता है। ऐ कपूरभाई! क्या है? मोहनभाई! अरे!

नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखायी नहीं देता... कहते हैं न, प्रभु! हम कहते हैं न! भाई! वह कहा न? कुम्हार घड़ा बनाता है, ऐसा हम तो देखते नहीं। मिट्टी घड़ा बनाती है, ऐसा हम देखते हैं। हम तो ऐसा देखते नहीं, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ३७२ गाथा। कुम्हार बनाता है, ऐसा हम तो देखते नहीं। तुझे कहाँ से दिखाई दिया? कुम्हार घड़े को बनाता नहीं। उसी प्रकार राग आत्मा होता नहीं, ऐसा हम तो देखते हैं। तुझे कहाँ से ऐसा दिखाई दिया? **पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखायी नहीं देता...** आहाहा! भगवान चैतन्य प्रभु अपने शुद्धस्वरूपमय रहने में राग का अंश उसे स्पर्शता नहीं। और चैतन्यस्वरूप राग को स्पर्शता—छूता नहीं। जितना राग भाग है, विकल्प भाग है, व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, वह स्वभाव को स्पर्शता नहीं। भगवान आत्मस्वभाव विकल्प को स्पर्शता नहीं। क्यों? विकल्प और निर्विकल्पस्वभाव के बीच अत्यन्त अभाव है। समझ में आया? **दिखायी नहीं देता...** क्यों?

देखो! **क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की भाँति...** भाषा देखो! प्रकाश और अन्धकार की भाँति। ऐ... देवानुप्रिया! देखो, (दृष्टान्त) दिया। सूर्यरूपी प्रकाश से अन्धकार भिन्न है। प्रकाश कभी अन्धकाररूप हुआ नहीं, अन्धकार कभी प्रकाशरूप हुआ नहीं। उसी प्रकार भगवान चैतन्यज्योति ज्ञानसूर्य प्रभु समभावी ज्ञानसूर्य प्रभु, समभावी अर्थात् अकषायी वीतरागी विज्ञानघन प्रभु। वहाँ रागरूप अन्धकार हो गया? प्रकाश क्या अन्धकाररूप हो गया? आहाहा! लोगों को ऐसा हो जाये, एकान्त है... एकान्त है। एकान्त अर्थात् सत्य बात। समझ में आया? इससे विरुद्ध कहे, वह सम्यक् एकान्त नहीं, परन्तु मिथ्यात्व है। आहाहा!

कहते हैं, **जीवद्रव्य होता हुआ देखने में नहीं आता क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की भाँति...** प्रकाश और अन्धकार की भाँति। भाषा देखो! **उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है;...** साथ का अर्थ, एकरूप रहने में, ऐसा।

मुमुक्षु : पर्याय में तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह एकरूप नहीं। वह तो साथ का अर्थ यह है। एकरूप होकर रहने में विरोध है। क्या कहते हैं? देखो! उपयोग चैतन्य भगवान

जानन-देखन उपयोग और अनुपयोग दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभराग, वह अनुपयोग। शरीर अनुपयोग, अशुभ अनुपयोग, शुभराग अनुपयोग, अनुपयोग अन्धकार—उपयोग प्रकाश। प्रकाश और अन्धकार एकरूप कभी होते नहीं। ऐसे **उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है;...** समझ में आया? एकसाथ में नहीं, भिन्न ही है। एकरूप नहीं। भिन्न है। जड़ भी भिन्न है। शरीर, कर्म, सब वस्तुएँ क्या एक हैं? है, होवे तो क्या है? प्रकाश में अन्धकार नहीं, अन्धकार में प्रकाश नहीं। इसी प्रकार आत्मा जिसे कहा, वह तो चैतन्य विज्ञानघनस्वरूप प्रभु प्रकाशमूर्ति है। उसमें रागादि अन्धकार नहीं और रागादि अन्धकार में भगवान आत्मा नहीं। इतनी तो बात दीपक जैसी स्पष्ट है। दीपक जैसी समझे? सूर्य जैसी है। अरे! भगवान! सुन तो सही तेरी चीज़। दुनिया दुनिया की जाने। दुनिया कहीं साथ आयेगी नहीं। समझ में आया? दुनिया को ठीक लगे, दुनिया सारी ऐसा कहे, यह कहे। दुनिया तो गहल-पागल है, पागल है। पागल के मुख से कहलवाना है कि सब चतुर हैं? सोभागभाई! कठिन बात है। आहाहा!

नौवें ग्रैवेयक में द्रव्यलिंगी मुनि होकर गया। उसने अन्दर में पंच महाव्रत का राग था और उसमें उसकी दृष्टि थी कि यह मैं हूँ और यह मुझे लाभदायक है। ऐसी मिथ्या दृष्टि प्रकाश को अन्धकाररूप मानकर ऐसे महाव्रत पालन किये और नौवें ग्रैवेयक गया, पड़ा नीचे। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फिर पीछे पटक्यो।' 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फिर पीछे पटक्यो।' सज्झाय में आता है, श्वेताम्बर की सज्झाय में आता है। हमने तो सब देखा है न! श्वेताम्बर की सज्झाय में आता है। चार सज्झाय माला है न? भाई! सज्झाय माला नहीं? यहाँ सब है। दुकान के ऊपर मैं रखता था वहाँ। दुकान के ऊपर मैं पढ़ता था। पालेज। घर की दुकान थी, पिताजी की दुकान थी। दुकान पर बैठते थे और वाँचते थे। काम ही यह करते थे। व्यापार तो अमुक था, दुकान चलती थी। उसमें यह आया है। पण्डितजी! श्वेताम्बर में ऐसा आया, हों! 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फिर पीछे पटक्यो।' आत्मभान राग से भिन्नता के भान बिना अकेले पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालकर... श्वेताम्बर तो अट्ठाईस मूलगुण नहीं कहते, सत्ताईस मूलगुण शास्त्र में हैं, सत्ताईस गुण कहते हैं न? वे सत्ताईस कहते हैं। सबमें फेरफार है।

ऐ... रतिभाई! बहुत अन्तर है, दोनों के बीच हजारों बोलों का अन्तर है। यह तो सनातन सत्य है, सर्वज्ञ का कहा हुआ परमसत्य है।

उसमें भी ऐसा कहा, अरे आत्मा! तू दया, दान, व्रत के परिणाम को अपना मानकर उनमें लाभ मानकर तूने मिथ्यादृष्टिपना सेवन कर द्रव्यसंयम लिया। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, इकतीस सागर की स्थिति में। 'फेर पीछे पटक्यो।' नीचे गिरा। मनुष्य (हुआ), वहाँ से ढोर और वहाँ से निगोद में (गया)। समझ में आया? मिथ्या तत्त्व के आराधन में निगोद का फल है। स्वभाव सम्यक् का आराधन का फल मोक्ष है। बीच में शुभाशुभ परिणाम के (फल) में चार गतियाँ हैं।

यहाँ कहते हैं, **प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है;...** यहाँ तो कहते हैं, वास्तव में तो रहते ही नहीं। जहाँ चैतन्य का भान हुआ, वहाँ राग है ही नहीं, ऐसा भाई कहते हैं। ऐई... भाई! एकसाथ का अर्थ यह है—एकरूप (होकर रहे नहीं)। चैतन्यरूप उपयोग का भान हुआ, वहाँ राग है ही नहीं। राग है ही नहीं। उपयोग में राग है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। और राग जहाँ है, वहाँ आत्म उपयोग है ही नहीं। इतनी बात करते हैं। बहुत जोर से। समझ में आया? जानन भगवान आत्मा, ऐसा उपयोगरूपी चैतन्य है, ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता हुई, उसमें रागरूपी अन्धकार है ही नहीं और जहाँ राग रहा है, वहाँ चैतन्य के उपयोग की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति है ही नहीं। समझ में आया? विरोध है। उसमें विरोध नहीं था? किसमें? नमक का जल होने में विरोध नहीं था और जल का नमक होने में विरोध नहीं था। इसमें विरोध है। प्रकाश और अन्धकार की भाँति। नमक का पानी और पानी का नमक। प्रकाश का अन्धकार और अन्धकार का प्रकाश, ऐसा कभी नहीं होता। समझ में आया? कहो, सोमचन्दभाई! समझ में आया या नहीं यह? धीरे-धीरे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यहाँ ना करते हैं। उत्पन्न होता है अनात्मा, आत्मा नहीं। यह बात कहते हैं। उसमें से उत्पन्न होता है ज्ञान और आनन्द। सूर्य में से प्रकाश निकले, प्रकाश का नूर, अन्धकार नहीं। ऐसी बात है। यह तो दृष्टि में तो ऐसा लिया है

कि यह कर्म की ही पर्याय है, आत्मा की नहीं। कर्म व्यापक और विकार व्याप्य उसकी दशा। भगवान आत्मा की नहीं। दो भेद करते हैं न ? दो भेद। आहाहा! समझ में आया ?

प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है;... यहाँ तो कहते हैं, प्रकाश का भान हुआ, वहाँ राग नहीं; जहाँ राग है, वहाँ प्रकाश नहीं। आहाहा! **जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते।** भाषा कितनी बदल-बदलकर कहते हैं। पहले उपयोग-अनुपयोग लिया, अब जड़ और चेतन (लिया)। वास्तव में रागादि भाव जड़ है और भगवान आत्मा चैतन्य प्रकाश का नूर है। **जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते।** कभी एक होते नहीं। **इसलिए तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो,...** हों! ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रसन्न हो... प्रसन्न हो। तेरा आत्मा कभी रागरूप हुआ नहीं। प्रसन्न हो न, प्रसन्न हो न! ...लालजी! क्या कहते हैं ? आनन्द में आ जा कि ओहो! मैं आत्मा चैतन्यप्रकाश का नूर रागरूप हुआ नहीं, ऐसा भगवान फरमाते हैं। प्रसन्न हो। चिन्ता न कर। अरेरे! मैं रागरूप हो गया, राग मुझमें है। इनकार करते हैं, सोमचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव की अपेक्षा से। आत्मा की अपेक्षा से अनात्मा आत्मा में से उत्पन्न होता ही नहीं। पर्यायदृष्टि से उसमें हो, द्रव्यदृष्टि में नहीं।

जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते। लो, इसकी एक लाईन है। उसमें सर्व प्रकार से, उसमें बहुत लम्बी बात है। सर्व प्रकार से प्रसन्न हो। तुझे कोई भी दखल हो, ऐसी बात नहीं। सर्वथा सर्व प्रकार से **सावधान हो और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव कर।** यह चैतन्य आनन्दघन मैं हूँ, ऐसा अनुभव कर। सावधान हो। रागरूप कभी हुआ ही नहीं, तीन काल में हुआ नहीं। प्रसन्न हो कि मैं ऐसा ही रहा हूँ। तेरी दृष्टि वहाँ लगा दे, आत्मा का अनुभव कर। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, इसका नाम धर्म है। विशेष बात है...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १५, शनिवार, दिनांक - २९-१०-१९६६
गाथा-२३ से २५, श्लोक-२३, प्रवचन - ८८

समयसार, जीव-अजीव अधिकार चलता है। कहते हैं, यहाँ दृष्टान्त दिया है कि **प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है;...** क्या कहते हैं? टीका की अन्तिम लाईन है। जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहाँ अन्धकार रहता ही नहीं। यह दृष्टान्त है। इसी प्रकार चैतन्यप्रकाश—अपने द्रव्य, गुण और पर्याय जो चैतन्यप्रकाश है, उसमें अजीव अर्थात् विकल्प रागादि, कर्मादि अन्धकार रहते ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : रहते नहीं अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं। पहले माना था, है ही नहीं।

जीव-अजीव अधिकार चलता है। जीव चैतन्यसूर्य प्रकाशमूर्ति है। समझ में आया? चैतन्यप्रकाश की अमृतमयी मूर्ति आत्मा है। तो ऐसे अमृतमयी चैतन्यप्रकाश का तेज, वह आत्मा, वह उपयोग। और पुण्य-पाप के विकल्प आदि, वह अनुपयोग। समझ में आया? व्यवहार अनुपयोग। जड़ कहते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का लोप हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। व्यवहार व्यवहार में हो, अन्धकार अन्धकार में हो। आत्मा अन्धकार सम्बन्धी अपने ज्ञान में उस सम्बन्धी प्रकाश रखता है। परन्तु वह चीज़ अपने में नहीं रखता। फिर से कहते हैं, ऐसे कहीं जाने नहीं देंगे। अभी दो-तीन बार चलेगा। समझ में आया? ऐसे कहीं बात छोड़ नहीं देंगे।

आत्मा-भगवान आत्मा ऐसा है, वह तो चैतन्यप्रकाश का नूर है। उसके द्रव्य में, गुण में और पर्याय में चैतन्य का ही प्रसार हो, प्रकाश हो, उसका नाम आत्मा कहते हैं।

समझ में आया? और उस आत्मा में जो पुण्य और पाप, दया, दान, विकल्प, रागादि विकार, वह अन्धकार है। क्योंकि राग में चैतन्यप्रकाश का अभाव है, शरीर में जैसे चैतन्यप्रकाश का अभाव है, कर्म में प्रकाश का अभाव है, वैसे व्यवहाररत्नत्रय कहो— जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम का राग और शास्त्र का परसम्बन्धी विकल्परूपी राग—इन सबमें ज्ञान है ही नहीं। ...चन्दजी! ज्ञान प्रकाश भगवान आत्मा...

(जैसे) मिश्री की अमृत की मूर्ति में जहर का स्वाद कहाँ से आया? समझ में आया? उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य की अरूपी चैतन्यज्योति मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसमें पुण्यादि के विकल्प का राग, वह अन्धकार है, उस प्रकाश में अन्धकार सहवर्ती— साथ में रहता ही नहीं है। आहाहा! अन्धकार में अन्धकार हो, राग राग में हो। भगवान आत्मा में तो अपने सम्बन्धी प्रकाश और राग सम्बन्धी प्रकाश, अपना राग सम्बन्धी प्रकाश, राग सम्बन्धी अपना ज्ञान अपने में है। समझ में आया? परन्तु उसमें राग, शरीर और कर्म, भगवान चैतन्यप्रभु में है ही नहीं। ...लालजी! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत सूक्ष्म करके ऐसे टालना नहीं। ऐसी समझने की वस्तु ही यह है। कहाँ गये? सेठिया आये नहीं? समझ में आया? सेठी ऐसा कहे, समझने की वस्तु है। मीठालाल है न? समझने की चीज़ है। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर का तो आधार दिया... अमृतचन्द्राचार्य तो मुनि हैं, दिगम्बर सन्त हैं, भावलिंगी हैं, जंगलवासी-वनवासी हैं, उन्होंने यह टीका बनायी है। टीका बनानेवाले और भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक हैं। दोनों ने कहा कि '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' सर्वज्ञ परमेश्वर ने तो भाई! तुझे उपयोगमय देखा है। ज्ञान-दर्शन शाश्वत उपयोग, हों! शाश्वत् ज्ञान-दर्शन उपयोगमय तुझे देखा है। और तू मानता है कि मैं राग हूँ, विकार हूँ, शरीर हूँ, मेरी मौजूदगी में राग है, व्यवहार है, विकल्प है, ऐसा तू कहाँ से लाया? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने उनके ज्ञान में तेरी चीज़ जैसी आयी वैसी कही, ऐसी है। जानन-देखन उपयोगमय प्रभु आत्मा है। वह तो जानन-

देखन प्रकाश का पुंज प्रभु आत्मा है। उस आत्मा को आत्मा नहीं मानकर रागादि को आत्मा मानकर रागादि मुझमें हैं अथवा राग से मुझमें लाभ होगा, मुझमें लाभ होगा तो राग को ही अपना आत्मा माना है। विजयमूर्ति! ... आत्मा में व्यवहार है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। तब उसे व्यवहार का-राग का अभाव मानकर चैतन्य के सद्भाव में परिपूर्ण प्रकाश आत्मा का नूर—तेज पड़ा है, ऐसी अनुभव दृष्टि करे, तब उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और अनुभव होता है। आहाहा! गजब बात! जगत को इतना कठिन (पड़ता है)। अभी मूल चीज़... समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में... यहाँ तो एक साथ अर्थात् जहाँ चैतन्य है, वहाँ राग नहीं; जहाँ राग है, वहाँ चैतन्य नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो है ही नहीं। भगवान चैतन्यमूर्ति जहाँ है, वहाँ राग नहीं और राग जहाँ है, वहाँ अन्धकार है, वहाँ चैतन्य नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **एक साथ रहने में विरोध है;...** भगवान आत्मा सम्यक् भान हुआ चैतन्यप्रकाश पुंज का, मैं तो आत्मा ज्ञाता से-दृष्टा से भरपूर आत्मा हूँ, ऐसा अनुभव हुआ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि तो निश्चय में ही लीन है और व्यवहार से मुक्त है। आता है? कहाँ? बनारसीदास में। समयसार नाटक में अध्यवसाय का अधिकार लिया है न? समयसार में लिया है - समयसार नाटक में लिया है, बन्ध... बन्ध (अधिकार, पद-३२)।

असंख्यात लोक परवांन जो मिथ्यात भाव,
तेई विवहार भाव केवली-उकत हैं।

जितने प्रकार का राग शुभाशुभ का अन्धकार भाव है, उतने प्रकार के राग को अपना माननेवाले को उतने प्रकार का मिथ्यात्व है। समझ में आया? बनारसीदास।

असंख्यात लोक परवांन जो मिथ्यात भाव,
तेई विवहार भाव केवली-उकत हैं।
जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक दरस भयो,
ते नियत-लीन विवहारसौं मुकत हैं।

समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य उपयोगमयी स्वरूप में रागादि के

अनुपयोग–अन्धकारस्वरूप उसमें है ही नहीं। रागादि को यहाँ अजीव गिनने में आया है। आहाहा! व्यवहारभाव जितना लोग कहते हैं, उसे तो यहाँ अजीव गिनने में आया है। ऐई! हो, तो जगत में अजीव अनन्त जड़ नहीं है? छह द्रव्य हैं। हो, उसमें क्या, उसके कारण से आत्मा है? ऐसे रागादि परिणाम व्यवहार है तो आत्मा है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? मूल बात इसकी दृष्टि में आयी नहीं तो इसे बहुत कठिन पड़ता है। कभी सुना नहीं, समझता नहीं, विचार किया नहीं कि परमेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ क्या कहते हैं? साधारण बात हो तो (किसलिए) इन्द्र ऊपर से अपना अर्धलोक का स्वामीपना छोड़कर यहाँ भगवान की वाणी सुनने आते हैं? सम्यग्दृष्टि होने पर भी। समझ में आया? भगवान की वाणी सुनने में साधारण बात होगी? अलौकिक अपूर्व अनन्त काल में प्राप्त नहीं हुई, ऐसी बात (सुनते हैं)। प्राप्त हुई, ऐसी प्राप्त की बात सुनने में आते हैं।

भगवान त्रिलोकनाथ के मुख में से निकलता है, प्रभु! तू तो चैतन्य के प्रकाश का नूर है न, प्रभु! आत्मा को हम ऐसा ही कहते हैं। और उस आत्मा में रागादि जितना व्यवहार, लोग कहते हैं। व्यवहार से आत्मा प्राप्त होता है, ऐसा कहनेवाले अन्धकार से प्रकाश प्राप्त होता है, ऐसा मानते हैं। समझ में आया? पंचास्तिकाय में कहा है न? व्यवहार साधन और निश्चय साध्य, ऐसा कहा है। वह तो निमित्त की राग की मन्दता की व्यवहार से अनुकूलता देखकर व्यवहार साधन अर्थात् वास्तविक साधन नहीं, उसे व्यवहार साधन कहकर आरोप करके कथन किया है। समझ में आया? भगवान चैतन्यप्रकाश का साधन क्या अन्धकार हो सकता है? क्या जीवस्वरूप का साधन अजीव हो सकता है? क्या निश्चय स्वभाव का साधन व्यवहार हो सकता है? यह बात है। भाई! यह तो निमित्त क्या था, उसका ज्ञान कराने के लिये बात की है।

भगवान आत्मा उपयोगमयी चैतन्य का पिण्ड प्रभु है। ओहो! समझ में आया? अनुपयोग रागादि व्यवहार दया, दान कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह राग भी अनुपयोग अचेतन, जड़ और अन्धकार है। सेठिया! हाय... हाय... चिल्लाहट मचाते हैं, हों! षोडशकारणभावना भाते भाते... अरे... भगवान! सुन तो सही, प्रभु! वह तो

विकल्प है, राग है। जिससे बन्ध पड़ता है, वह धर्म की पर्याय नहीं। धर्म की नहीं तो वह अन्धकार है, अचेतन है। आहाहा! बाबूलालजी! क्या कहना है? व्यवहार का लोप हो जाता है, ऐसा कहते हैं। भगवान! सुन तो सही, प्रभु! अन्धकार का प्रकाश में अभाव हो, तब ही प्रकाश का प्रकाश ज्ञान में आता है। बहुत सूक्ष्म बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब निमित्त कहलाता है। निमित्त का अर्थ कि एक भिन्न चीज़ है। परन्तु वह है तो यह है, ऐसा नहीं। जैसे स्वयं गति करता है तो उस गति में निमित्त धर्मास्ति है, परन्तु धर्मास्ति है तो गति करता है, ऐसा नहीं। जीव और जड़, धर्मास्ति हैं तो गति करते हैं, ऐसा नहीं। गति करते हैं, तब एक निमित्त दूसरी वस्तु है, उसका ज्ञान कराने की बात है। ऐसे स्वरूप के अनुभव में व्यवहार है तो अनुभव होता है, ऐसा नहीं। परन्तु अपने स्वभाव का अनुभव हुआ, तब (पूर्ण) वीतरागता नहीं तो राग की मन्दता का व्यवहार होता है, परन्तु अपनी पर्याय में निश्चय की दृष्टि में नहीं, दृष्टि के विषय में नहीं और दृष्टि की पर्याय में भी वह नहीं। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! भाई! इसने इसका घर कभी सुना नहीं।

चैतन्यमूर्ति..! आहाहा! समझ में आया? शरीरप्रमाण अमृत की मूर्ति अघढ़ित अन्दर पड़ी है। शरीर का लक्ष्य छोड़ दे, शरीर प्रमाण राग भी व्यापक है। उसे भी छोड़ दे। ऐसा कहते हैं। शरीर भी है और राग भी जितने में आत्मा का व्यापकपना है, उतने में राग भी पूरे क्षेत्र में व्यापक है। परन्तु उसके क्षेत्र व्यापक होने पर भी भाव में व्यापक नहीं, ऐसा कहना है। वास्तव में तो उसका भाव उस क्षेत्र में भी व्यापक नहीं। आहाहा! संवर अधिकार में तो उसका क्षेत्र ही भिन्न गिनने में आया है। राग, व्यवहार, दया, दान, भक्ति के परिणाम का क्षेत्र ही भिन्न गिनने में आया है। संवर अधिकार। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रदेशभेद कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेशभेद कहा है। पाठ लिया है। भगवान! यह आत्मा शुद्ध ध्रुव शुद्धभाव शुद्ध क्षेत्र, वही आत्मा। अकेला प्रकाश का पुंज। उसमें अशुद्धता है, वह क्षेत्र भिन्न है, भाव भिन्न है, स्वरूप भिन्न है, तत्त्व भिन्न है। ओहोहो! समझ में आया?

मालचन्दजी! यहाँ तो अभी (ऐसा माने कि) शरीर की क्रिया मैं करता हूँ और उससे मुझे लाभ होता है, उससे धर्म होता है। आहाहा! भगवान! क्या हो? प्रभु! तुझे शरण नहीं रहे, हों! मृत्यु काल में... आहाहा! शरणभूत में राग भी शरणभूत नहीं, हों! और पहले शुभराग बहुत किया हो तो उसे राग भी छूट गया है। २५-५० वर्ष बहुत शुभराग किया। फिर अशुभ किये। उसका तो पुण्यबन्ध हो गया है। अब तुझे शरण किसका लेना? समझ में आया? शुभभाव बहुत किये। शुभभाव से हुआ क्या? अभी तो शुभभाव रहे नहीं। नये करे, वह अलग बात। पहले जो शुभभाव किये, उनका तो पुण्य बँध गया है, रजकण बँध गये हैं। अब तुझे शरण किसका है? नजर कहाँ करनी है? भाई! इसका अर्थ यह है कि बन्ध हुआ और बन्ध का कारण, वह तेरी चीज़ में शरणभूत है ही नहीं। अन्तर में ज्ञानानन्द भगवान, अन्तर में ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु के अन्तर निधान में नजर पड़ते ही तुझे शरण मिलती है। अन्यत्र कहीं शरण-फरण है ही नहीं। समझ में आया?

यह तीर्थंकर (गोत्र का) बन्ध का भाव हुआ। तीर्थंकर (गोत्र) का बन्ध पड़ा, उसमें क्या? तीर्थंकर का बन्ध पड़ा, उसके ऊपर नजर करना है? मृत्यु के समय समाधिमरण करना है तो शान्ति कहाँ से लाना? उसे खबर भी है, श्रेणिक राजा को कि मुझे तीर्थंकर (प्रकृति) का बन्ध पड़ा है, तो क्या करना अब? यह भाव जो है, वह तो चला गया। तथापि क्षण-क्षण में नये-नये बँधते हैं, तीर्थंकरगोत्र तो बँधता है न, पण्डितजी! ठेठ आठवें गुणस्थान तक। बराबर धारावाही। क्या करना? उस बन्ध पर नजर करनी है? शान्ति कहाँ से लाना? भाई! वह शान्ति तो प्रभु आत्मा में है। बन्धन और बन्धन का भाव और उसकी वर्तमान जाननेवाली पर्याय में भी शरण नहीं। चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द से भरपूर उसके ऊपर नजर करने से नजर स्थिर होगी। क्योंकि स्थिर वस्तु में नजर स्थिर होगी। अस्थिर में नजर कहाँ से स्थिर होगी? आहाहा! समझ में आया? वहाँ शान्ति मिलेगी। तूने अन्यत्र लाख पुण्य बँधे हों, वहाँ नजर कर तो वहाँ जड़ रजकण पड़े हैं। और वे भाव तो चले गये। नये भाव कर तो भी राग है। क्या राग पर नजर करने से शान्ति मिलेगी? वह तो अन्धकार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नजदीक आया नहीं। अन्धकार प्रकाश के नजदीक आया? अन्धकार का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य का लक्ष्य करे तो समीप आया। ऐसी बात है, भाई! वीतरागमार्ग ऐसा है। सर्वज्ञ प्रभु का मार्ग ऐसा है। वह वस्तु का मार्ग ऐसा है। स्वरूप ऐसा है। क्या करे? क्या कहे? दूसरा क्या लावे? आहाहा!

भगवान कहते हैं... ओहोहो! कितनी बात करते हैं! **जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते।** जड़ शब्द से राग, कर्म और शरीर तीनों जड़ हैं। क्योंकि राग में जानने की शक्ति नहीं तो इस अपेक्षा से जड़ है। भले रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं, परन्तु राग में जिस भाव में अपने को जानने का स्वभाव नहीं, पर को जानने का स्वभाव नहीं। वह तो अज्ञान है। अज्ञान शब्द से जड़ है। उसमें ज्ञान का अभाव है। विजयमूर्ति!

मुमुक्षु : विजय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विजय की बात है। राग को अपना माने तो अविजय की बात है। आहाहा! कभी वास्तविक तत्त्व की स्थिति की मर्यादा इसके ख्याल में आयी नहीं। समझ में आया? और यह ख्याल बिना इसे शरणभूत तत्त्व का पता लगा नहीं।

जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते। इसलिए तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो,... पाठ में तो ऐसा है न। '**सर्वथा प्रसीद**' आहा! प्रभु! अब प्रसन्न हो न, प्रभु! तुझे तो कहते हैं कि चैतन्य का नूर रागरूप हुआ नहीं, शरीररूप हुआ नहीं। हुआ नहीं तो प्रसन्न हो न अब। आहाहा! सर्राफजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....कहाँ? ऐसा का ऐसा रहता है। देखो! ऐसा का ऐसा। न्याय से कहा है या नहीं? चैतन्यप्रकाश प्रभु क्या रागरूप हुआ है? शरीररूप हुआ है? कर्मरूप हुआ है? तुझे कहते हैं न! प्रकाश अन्धकाररूप हुआ है? नहीं। तो चैतन्यप्रकाश रागरूप हुआ है? नहीं। प्रसन्न हो कि मैं तो चैतन्य आनन्दरूप रहा हूँ। बंशीलालजी! ऐसी बात है। धर्म की ऐसी बात नहीं कि बाहर से ऐसे-ऐसे कर लिया, इसलिए धर्म हो गया। सेठिया को निवृत्ति नहीं मिलती, फिर एकाध पूजा कर आवे, जाओ, धर्म हो गया। फिर तेईस घण्टे पाप करे। यह भी होता है और यह भी होता है। यहाँ तो कहते

हैं, एक में भी धर्म नहीं।

आहा! देखो तो सही, अमृतचन्द्राचार्य। पाठ तो ऐसा लिया, '**सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं**' ऐसा होता नहीं, इतना कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। फिर स्पष्ट करते हुए अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, अरे! प्रभु! प्रसन्न हो न अब। तू रागरूप तो हुआ नहीं, रहा नहीं, है नहीं। तू तो चैतन्यरूप ज्ञानानन्दरूप है, रहा है और होगा। प्रसन्न हो। नजर में आत्मा ला। समझ में आया? आहाहा! अरे! '**सर्वथा प्रसीद**' ऐसे शब्द पड़े हैं। '**प्रसीद**' '**प्रसीद**' विशेष आनन्द में आ। आहाहा! समझ में आया? पूरा आत्मा अकेला प्रकाश और आनन्द आनन्द की ही मूर्ति है, अतीन्द्रिय आनन्द की अघड़ित मूर्ति अघटित घाट अनादि का। ऐसे चैतन्यप्रभु को यहाँ भगवान आत्मा कहते हैं। वह आत्मा तो आत्मारूप ही रहा है न, प्रभु! चाहे तो निगोद में रहा, चाहे तो नरक में रहा, वह आत्मा आत्मा से मिटकर दूसरा कुछ हुआ ही नहीं। समझ में आया? प्रकाश कभी अन्धकाररूप हुआ ही नहीं। तो प्रसन्न हो न अब। आहाहा! छोड़ दे न राग की एकत्वबुद्धि, ऐसा कहते हैं मूल तो। तुझमें है नहीं, उसकी बुद्धि छोड़ दे न, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अपने चित्त को उज्ज्वल करके सावधान हो... देखो! '**विबुध्यस्य**' आहाहा! प्रसन्न होकर '**विबुध्यस्य**' सावधान हो। आहाहा! राग में, पुण्यभाव में एकत्व है, वह असावधानी है, मिथ्यादृष्टिपना है, उसमें स्वरूप की सावधानी का अभाव है। एक बार प्रसन्न हो, प्रसन्न हो प्रसन्न। लड़का गुस्से में हो न बहुत। बहुत गुस्से में हो न तो कहे, ले यह तरबूज। बड़ा है, प्रसन्न हो अब। बड़ा तरबूज नहीं आता? एकदम लाल काटकर दे, ले खा, प्रसन्न हो। रोना छोड़ दे। यह डगलीवाला भाग दिया, ऐसा कहते हैं। भगवान चैतन्यमूर्ति तो तेरी नजर के आलस्य से ऐसा का ऐसा पड़ा रहा है। समझ में आया? 'नजर के आलस्य से रे मैंने निरखे न नयन से हरि' हरि प्रभु आत्मा, हों! यह आत्मा हरि, दूसरा कोई ईश्वर कर्ता-फर्ता है नहीं। 'मेरे नयन के अलास्य से मैंने निरखे न नयन से हरि।' नजर के आलस्य से मैंने भगवान को निरखा नहीं। नजर रह गयी राग और संयोग के ऊपर। नजर में ज्ञेय पर रह गया। निज ज्ञान भगवान नजर में लिया नहीं। आहाहा!

प्रसन्नता तो अन्दर की प्रसन्नता के अनुभव की बात है। अनुभव करके आनन्द में आ जा, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं। प्रसन्नता का अर्थ ऐसा नहीं है। प्रसन्न हो अर्थात् आनन्द में—अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में आ जा, ऐसा कहते हैं। क्योंकि भगवान आत्मा आनन्द से कभी छूटा ही नहीं न। कभी दुःखरूप हुआ ही नहीं, ऐसा कहते हैं। दुःख तो अन्धकार है, आनन्द तो प्रकाश का पूर है। समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को तुझे राग से भिन्न, प्रकाश से भिन्न अन्धकार है, ऐसा बतला दिया। प्रसन्न हो। पुरुषार्थ से स्वभाव की सावधानी करके अनुभव कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भूल जा पूरा संसार। ले ले पूरा भगवान आत्मा दृष्टि में। आहाहा! इसका नाम जीव की प्रतीति का अनुभव अर्थात् सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं? चन्द्रसेनजी! क्या कहते हैं? करना क्या? यह करना। बीच में व्यवहार आवे, राग आता है, भक्ति, पूजा हो, परन्तु वह वस्तुस्थिति नहीं, वह धर्म का रूप नहीं, जीव का स्वरूप नहीं। भगवान! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ का मार्ग दुनिया के साथ कहीं मिलान नहीं होता। आहाहा! जिसे इन्द्र स्वीकार करते हैं। चार ज्ञान (के धारी) चौदह पूर्व तो अन्तर्मुहूर्त में गणधर रचें, ऐसे गणधर तो जिनके दासानुदास हैं! समझ में आया?

महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं। गणधर, जिन्हें चौदह पूर्व और चार ज्ञान की रचना तो अन्तर्मुहूर्त में हो गयी है। वे भी भगवान के पास दासानुदास (हो जाते हैं), हे नाथ! अपना बहुमान है न, इसलिए विकल्प में भगवान का बहुमान आता है। परन्तु बहुमान में स्वभाव का आदर कभी नहीं छूटता। समझ में आया? अन्तर निश्चय की दृष्टि जो अपने को है, वह कभी नहीं छूटती। राग आता है, तथापि पर का बहुमान करने पर भी, अपना बहुमान एक क्षण भी छूटता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सावधान हो... इसका अर्थ कि राग और विकल्प को अपना माननेवाला अजीव में सावधान है। जीव में सावधान नहीं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य गजब! दिगम्बर सन्तों की कथनी न भूतो, न भविष्यति। यह मुनियों की बात परमात्मा को खड़ा कर दिया है। ऐसी टीका अभी भरतक्षेत्र में कहीं नहीं है। समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ की वाणी

ही मानो निकलती हो, ऐसी टीका है! **स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है'...** देखो! **'स्वद्रव्यं ममेदमित्यनुभव'।** यह स्वद्रव्य ज्ञान-दर्शन आनन्दमूर्ति ऐसा द्रव्य है, वह मेरा है—ऐसा अनुभव, यह पर्याय। अनुभव, वह पर्याय है और त्रिकाल ज्ञान-दर्शन उपयोगमय आत्मा, वह द्रव्य। समझ में आया? त्रिकाल ज्ञान-दर्शन उपयोगमय पिण्ड भगवान, वह द्रव्य। उसका अनुभव, वह पर्याय। वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। उसका अनुभव कर। राग और विकल्प का अनुभव तूने अनन्त काल से किया। वह कहीं आत्मा है नहीं। नहीं है, उसका अनुभव किया; है, वह रह गया।

स्वद्रव्य को ही... भाषा देखो! राग तो बिल्कुल नहीं, वह परद्रव्य है। कितना अर्थ किया है। प्रकाश-अन्धकार मिलाया, उपयोग-अनुपयोग मिलाया, जड़-चेतन कहकर भिन्नता कही, फिर स्वद्रव्य और परद्रव्य ऐसी दो भाषा की। भगवान आत्मा जानन-देखन त्रिकाल स्वरूप भगवान स्वद्रव्य और राग, विकल्प, शरीर, कर्म, वे परद्रव्य। आहाहा! समझ में आया? इसमें टीका है, उसका अर्थ होता है, घर के अर्थ नहीं होते।

कितने ही कहते हैं, सोनगढ़वाले निश्चय की बात करते हैं, व्यवहार की बात नहीं करते। परन्तु सुन तो सही, प्रभु! निश्चय अर्थात् सत्य। यह भगवान आत्मा है, ऐसी बात करते हैं। यहाँ मुनि ऐसा कहते हैं, लो। व्यवहार हो, होता है परन्तु उस व्यवहार की यहाँ बात नहीं करने का कारण कि निश्चय, वही सत्य है। उसका अनुभव किया तो राग बाकी रहा, उसका ज्ञान रह गया, ज्ञान रह गया। राग अपने में रहा नहीं। उसकी मुख्यता करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। व्यवहारनय का ग्रन्थ हो, वहाँ बतावे कि ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा व्यवहार होता है। समझ में आया?

यहाँ तो व्यवहार का ज्ञान करने की भी विशेष आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। तेरा ज्ञान हुआ, उसमें राग का भी ज्ञान अपने स्व-परप्रकाशक ज्ञान में हो जाता है, ऐसी बात है। आहाहा! देखो न! यह ऐसा लगे न। कभी अभ्यास नहीं, कभी परिचय नहीं। अन्तर दरकार नहीं, ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं। बंसीलालजी! यह तो एल.एल.बी की बात है, और कितने ही ऐसा कहते हैं। नहीं, प्रभु! यह तो अभी ऐकड़ा की बात है। सम्यग्दर्शनरूपी अंक लगाने की बात है। समझ में आया? पश्चात् जो आत्मा देखा,

अनुभव में आया, उसमें स्थिर स्थिर आनन्द की लहर अन्दर उड़ाना, वह चारित्र है। आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का नित्यानन्द का भोजन करना। बारम्बार अतीन्द्रिय आनन्द का स्पर्श करना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? चारित्र की व्याख्या दूसरी है। चरना। आत्मा आनन्दमूर्ति है, ऐसा अनुभव सम्यग्दर्शन में हुआ, तब उसमें चरना, लीन होना, उसका नाम चारित्र है।

कहते हैं, अरे! प्रभु! एक **स्वद्रव्य को ही...** स्वद्रव्य अर्थात् जीव। **'यह मेरा है' ऐसा अनुभव करो।** यह पर्याय। यह स्वद्रव्य चैतन्यमूर्ति है। उसमें राग नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं। गुलाँट खा, यहाँ से दृष्टि छोड़कर यहाँ ला। और अन्तर चैतन्य भगवान को स्पर्श कर। तो तुझे आत्मा क्या है, (उसका पता लगेगा)। द्रव्य भी आनन्दरूप है, गुण भी आनन्दरूप है, पर्याय में आनन्द आया, उस आनन्द से तेरा पूरा आत्मा आनन्दमय है, ऐसी प्रतीति हो जायेगी। समझ में आया? भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि करने से जो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उस अतीन्द्रिय के स्वाद में द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों आनन्दमय है, ऐसी तुझे प्रतीति हो जायेगी। द्रव्य में राग नहीं, गुण में राग नहीं, पर्याय में अन्धकार नहीं—राग नहीं—ऐसी तुझे प्रतीति हो जायेगी। आहाहा! इसका नाम आत्मा जाना कहा जाता है और इसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! क्यों बाबूलालजी! क्या करना? बस चिल्लाहट मचाते हैं। प्रभु! परन्तु तेरा घर तो देख। यह तेरे घर देखने की बात करते हैं। उसमें तुझे क्यों प्रतिकूलता लगती है? समझ में आया?

ढोर होता है न? पशु। उसे सवेरे जब बाहर निकाले, तब उसे बाहर निकालने में जरा कठिन पड़े। शाम घर आवे न, घर में (तब) दौड़ता हुआ आवे, दौड़ता। दौड़ता समझे न? शाम को जब बाहर से आवे, तब दौड़ता आवे। और उसमें गायें ऐसी हों न दरवाजा बन्द हो तो सिर मारे, खोल! झट अन्दर जाना है। क्योंकि बारह घण्टे यहाँ रहना है। स्थिर स्थिर रहना है।

उसी प्रकार कर्म और राग में तो अनादि काल से तू बाहर भटकने निकल गया है। अब तेरे चैतन्यघर में आने में तुझे देरी कितनी लगे? और उसमें तुझे उत्साह क्यों आता नहीं? समझ में आया? आहाहा! परमात्मप्रकाश में दृष्टान्त दिया है, परमात्मप्रकाश।

एक पशु बारह घण्टे से बँधा हुआ हो, उसे छोड़ने से वह प्रसन्न होता है। तो तुझे तो राग के बन्धन से हम छुड़ाने की बात करते हैं और तू खुशी न हो, प्रसन्न न हो तो तू पशु से गया बीता है। मुनियों को क्या कुछ लेना है? वे तो नग्न मुनि हैं, नग्न दिगम्बर मुनि हैं। उन्हें कहीं सेठिया को प्रसन्न रखना है पैसेवालों को? कि यह सब प्रसन्न रहे तो हमको अच्छा अनाज दे। अरे! आहार तो मिलेगा। शरीर को निभना हो तो नहीं मिलेगा? समझ में आया? दुनिया की क्या पड़ी है? दुनिया दुनिया के घर में रही। हमारे घर में राग नहीं, वहाँ दुनिया कहाँ से आयी? समझ में आया?

कहते हैं, आहाहा! भगवान! तेरे घर में आ तो सही, घर तो देख, घर तो देख। प्रसन्न हो न, भाई! समझ में आया? छूटने की बात करते हैं तो पशु प्रसन्न होते हैं। तुझे राग के बन्धन से भिन्न आत्मा को बतलाते हैं और तू प्रसन्न न हो कि अरे! यह तो भारी कठिन, भारी कठिन बात! अरे! लालचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डोरे का बाप बाँधा है बड़ा मिथ्यात्व। राग का विकल्प, वह मेरा है, वह महा मिथ्यात्व से कठिन बँधा है। अजीव को जीव माना है। ऐसी मान्यता का वज्र बन्धन है। शास्त्र में आता है वज्र मिथ्यादृष्टि। शास्त्र में ऐसा आता है, हों! वज्र मिथ्यादृष्टि ऐसा पाठ है। समझ में आया? आहाहा!

प्रसन्न हो, इसका अर्थ आनन्द में आ जा, ऐसा कहते हैं, हों! प्रसन्न अर्थात् खुशी हो जा, ऐसा नहीं। भगवान! तेरी चैतन्य पूँजी कभी तीन काल-तीन लोक में रागरूप हुई नहीं। ऐसा तुझे प्रकाश और अन्धकार का न्याय देकर तो सुनाया है। ऐसी की ऐसी वस्तु रही है न, नाथ! उसकी सम्हाल करने का तेरा प्रयत्न नहीं और वह प्रयत्न करने में तुझे आकुलता (होती है)। यह कठिन बात है। पाप करना सरल पड़ता है? जिसमें दुःख के पर्वत में जाने का है, वह बात तुझे सरल पड़ती है। यह बात कठिन लगती है। आनन्द का भोजन करने में आना, वह कठिन लगता है। तेरी स्वभाव के प्रति रुचि नहीं। रुचि हो तो रुचि अनुयायी वीर्य आये बिना रहे नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रसन्न होनेवाला प्रसन्न हुए बिना रहे कौन? आहाहा!

स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव कर। कल तो उतावल से ले लिया था न!

भावार्थ :- यह अज्ञानी जीव पुद्‌गलद्रव्य को अपना मानता है;... अब साधारण भाषा, प्रचलित देशभाषा में (कहते हैं)। पण्डित जयचन्द्रजी जयपुर में हुए हैं, उन्होंने (भावार्थ) किया है। **अज्ञानी जीव पुद्‌गलद्रव्य को अपना मानता है;...** वह पुद्‌गल (अर्थात्) राग, शरीर आदि सब पुद्‌गल है, हों! **उसे उपदेश देकर सावधान किया है...** उपदेश करके सावधान किया है कि जाग, जाग भगवान! जाग। तेरी जागृति का काल है। तेरे भव के अभाव करने का भाव है। आहाहा! बापू! यह तो भव और भव के अभाव का काल है। इस भव में भववृद्धि का कारण सेवन करके तू जाये, वह क्या भव है? सोभागभाई!

जड़ और चेतनद्रव्य दोनों सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं,... अकेले परमाणु की बात नहीं, हों! विकार-फिकार सब जड़ और परद्रव्य है। ऐसी बात है। ज्ञान और अज्ञान, बस दो ही चीज़। परमाणु भी जड़ और राग भी जड़ और राग अचेतन और राग अजीव। एक जीव चैतन्यमूर्ति भगवान। इसके अतिरिक्त सब अज्ञान अर्थात् जिसमें ज्ञान नहीं, उसका नाम अज्ञान है। राग, शरीर, कर्म सब अज्ञान। ज्ञान नहीं। **जड़ और चेतनद्रव्य दोनों सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं, कभी भी किसी भी प्रकार से...** कभी और किसी काल में और किसी भी प्रकार से। किसी काल में और किसी भी प्रकार से **एकरूप नहीं होते ऐसा सर्वज्ञ ने देखा है;...** आहाहा! प्रभु सर्वज्ञ भगवान की ज्ञान की दृष्टि में तो ऐसा देखा है। भगवान कभी रागरूप हुआ नहीं, प्रभु! समझ में आया? **ऐसा सर्वज्ञ (भगवान) ने देखा है;...** लोग कहते हैं न, सर्वज्ञ भगवान का आधार नहीं लेना। भगवान का आधार नहीं लेना, ऐसा कहते हैं न? क्रमबद्ध में कहते हैं न? भगवान ने देखा है तो क्रमबद्ध हो गया कि जिस समय में जहाँ जो होनेवाला है (वह होता है)। यहाँ तो सर्वज्ञ का आधार देते हैं। सर्वज्ञ ने-भगवान ने देखा है। समझ में आया?

इसलिए हे अज्ञानी! तू परद्रव्य को एकरूप मानना छोड़ दे;... राग, पुण्य विकल्प

को स्वभाव में एकपने मानना, लाभ मानना छोड़ दे। तेरे हित की बात करते हैं कि राग की एकत्वबुद्धि छोड़ दे। **व्यर्थ की मान्यता से बस कर।** झूठी मान्यता को पूरी (समाप्त) कर। अलम अलम। बस कर, बस कर, बापू! अब अनन्त काल हुआ, हों भाई! आहाहा! भगवान! तुझे भटकते हुए अनन्त काल हुआ, अब बस कर। तुझे कहीं मजा तो आया नहीं। स्वर्ग में, नरक में चारों ओर आकुलता... आकुलता... आकुलता... आकुलता (भोगी है)। समझ में आया? जहाँ शान्ति है, वहाँ कभी नजर की नहीं। बस कर अब। लड़का बहुत तूफान करे, तब उसका पिता कहता है न, अब बस हुई, हों! वरना एक-दूसरे का मरण होगा, ऐसा कहे। ऐसा घर में कहते हैं या नहीं? लड़का बहुत तूफान करे और बहुत सट्टा करता हो, बहुत पैसा ले गया हो, लम्पटी हो गया हो तो कहे, अब रहने दे, हों! तू घर में से ले-लेकर डाल देता है, अब घर नहीं ठहरेगा। चोरकर ले जाता हो। या तू अलग हो जा। इसलिए अब छोड़ दे बात। यहाँ कहते हैं, अब छोड़ दे न, प्रभु! आहाहा!

करुणाबुद्धि से आचार्यों ने कितना कहा है! जैसे पुत्र को कहे न, ऐसा करना नहीं, हों! अपने घर की यह शोभा नहीं होती, हों! अपने घर की यह शोभा नहीं होती, ऐसा कहते हैं या नहीं? उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, बापू! आत्मा के घर की शोभा राग को अपना मानना, राग से लाभ मानना, भगवान! अपने घर की शोभा नहीं।

हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे न, बहुत मीठे थे। बहुत मीठे। धर्म की तो दृष्टि थी ही कहाँ! यह वस्तु ही नहीं थी। परन्तु प्रकृति बहुत लौकिक मीठी। पश्चात् (संवत्) १९७१ के वर्ष में पूरे चातुर्मास एकान्तरा अपवास (किये)। एक बार खाना। ४८ घण्टे में। एक बार आज, कल अपवास फिर परसों एक बार खाना। पूरा चातुर्मास ऐसा किया था। शास्त्र का उपधान करते थे हम। एक बार एक दिन में खाना और कल अपवास और परसों के दिन जीमने का। चोविहारा, हों! पानी-बानी कुछ नहीं। ऐसा पूरा चातुर्मास (किया)। १९७१ का चातुर्मास लाठी में था। ७१। दीक्षा १९७० में हुई थी। दूसरे वर्ष की बात है। फिर किसी समय शरीर में ऐसा कुछ हो जाये न तो हम भगवती सूत्र वाँचते। भगवती सूत्र है न? १६००० (श्लोक)। ऐसे सोते-सोते (वाँचता था)।

फिर ऐसा कहे, भाई! अपने को ऐसा शोभा नहीं देता, हों! ऐसा कहते। मूलचन्दजी और दूसरे सोते-सोते वाँचे। इसलिए कहे, भाई! अपने को यह शोभा नहीं देता। थोड़ी देर सो जा। पुस्तक रख दे। ऐसी बहुत मीठी भाषा। समझे? सेठी आये? शरीर का कारण होगा। .... समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं कि जो कहा, उसे थोड़ा कहो। ऐसा कहते हैं। उसकी सेठाई की ऐसी बात है। ... की बात है।

कहते हैं कि वृथा मान्यता बस कर, प्रभु! बस कर। आहाहा! कितनी करुणा है! अन्दर कहा न? अब प्रसन्न हो, भाई! प्रसन्न हो। यह (गाथा) पूरी हुई।

★ ★ ★

कलश - २३

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(मालिनी)

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्,
अनुभव भव मूर्त्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन,
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्।।23।।

श्लोकार्थ : [अयि] 'अयि' यह कोमल सम्बोधन का सूचक अव्यय है। आचार्यदेव कोमल सम्बोधन से कहते हैं कि हे भाई! तू [कथम् अपि] किसी प्रकार महा कष्ट से अथवा [मृत्वा] मरकर भी [तत्त्वकौतूहली सन्] तत्त्वों का कौतूहली होकर [मूर्तेः मुहूर्तम् पार्श्ववर्ती भव] इस शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ौसी होकर [अनुभव] आत्मानुभव कर [अथ येन] कि जिससे [स्वं विलसन्तं] अपने आत्मा के विलासरूप, [पृथक्] सर्व परद्रव्यों से भिन्न [समालोक्य] देखकर [मूर्त्या साकम्] इस

शरीरादि मूर्तिक पुद्‌गलद्रव्य के साथ [एकत्वमोहम्] एकत्व के मोह को [झगिति त्यजसि] शीघ्र ही छोड़ देगा।

भावार्थ : यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्‌गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करे, (उसमें लीन हो), परीषह के आने पर भी डिगे नहीं, तो घातियाकर्म का नाश करके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, मोक्ष को प्राप्त हो। आत्मानुभव की ऐसी महिमा है, तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है; इसलिए श्रीगुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है।।23।।

कलश - २३ पर प्रवचन

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं :-

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्,
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन,
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥२३॥

श्लोकार्थ :- 'अयि' यह कोमल सम्बोधन का सूचक अव्यय है। कोमल सम्बोधन—हे भाई! हे प्रभु! ऐसा कहते हैं। भगवान कहते हैं, हों! आहा! सन्त तो कहते हैं कि भगवान आत्मा। बापू! यह प्रभु आत्मा को पुण्य-पाप के मलिन भाव शोभा देते हैं? हमारे चेतनजी किसी समय बोलते हैं न? कुछ गायन बोले थे। चेतनजी कुछ बोलते हैं न? ऐसा गायन बोले थे। मैंने कहा, यह चेतन बोले हो, यह गायन लगता है। नहीं था एक बार रात्रि में? शोभा नहीं देता, ऐसा एक बार बोलते थे। नहीं शोभता है, ऐसा कुछ बोले थे। यहाँ कुछ नाटक में था। नवरात्रि थी न नवरात्रि? उस जाति की देशी थी, देशी। नहीं तुझे शोभे रे... कल सुना है या नहीं? तुझे शोभे नहीं .... ऐसी देशी।

यहाँ कहते हैं, देखो! हे भाई! आहाहा! हे प्रभु! **हे भाई!** साधर्मी भाई हो न मानो! तू भी आत्मा है न। तू भी आत्मा है, हम आत्मा हैं। हे भाई! मेरी नात का-जाति का तू आत्मा है। हे भाई! कोमलता का शब्द है। कोमलता। **तू किसी प्रकार महा कष्ट से अथवा मरकर भी...** अर्थात् चाहे जितने परीषह पड़ो, चाहे जितना मरण भी आ

जाओ, परन्तु तेरा अनुभव करने में प्रयत्नशील हो, ऐसा कहते हैं। चाहे जितने कष्ट पड़ो। दुनिया निन्दा करो, ऐसा करो और विचार करने में भी शरीर की स्थिति व्यवस्थित न रहे, उसमें चाहे जितने परीषह आ जायें, दु:ख पड़े, बिच्छू काटे, परन्तु तेरी चैतन्य चीज़ है, उसका पता प्राप्त करने में कष्ट का लक्ष्य छोड़ दे। समझ में आया? मैं ऐसा आसन लगा दूँ। मेरे पैर दु:खते थे। यहाँ ऐसा होता था। भगवान! चाहे जितने कष्ट हों, उनका लक्ष्य छोड़ दे। समझ में आया?

किसी प्रकार महा कष्ट से... कोई तो ऐसा कहे कि यह पागल है? क्या करता है? क्रियाकाण्ड भक्ति, पूजा करते नहीं। ध्यान करते हैं, ध्यान। क्या आया ध्यान में? ऐसे अज्ञानी की निन्दा, शरीर की चेष्टा व्यवस्थित न रहे ऐसा ध्यान, ऐसे सब कष्ट को सहन करके **मरकर भी...** अर्थात् मृत्यु का—देह छूटने का प्रसंग आ जाये तो भी। ऐसे मरकर फिर कौन रहता है? **मरकर भी तत्त्वों का कौतूहली होकर...** एक बार कौतूहल तो कर। तू दुनिया की गुप्त वस्तु को देखने के लिये कैसा कौतूहल करता है। कोई रानी-महारानी बाहर न निकलती हो। पर्दा होता है न? पर्दे में रहती है न। परन्तु खबर पड़े कि आज महारानी पर्दा छोड़कर मोटर में बाहर निकलनेवाली हैं। पूरा गाँव देखने निकले। ओजल समझते हो? पर्दा। महारानी आज पर्दा छोड़कर गाँव में निकलनेवाली हैं। चालीस वर्ष से पर्दे में रहती थीं, आज महारानी पर्दा छोड़नेवाली है। आओ चलो। पूरा गाँव निकले।

कहते हैं, यह देखने के लिये तुझे कौतूहल होता है, यहाँ एक बार देखने के लिये कौतूहल तो कर। सोभागभाई! भगवान अब बाहर निकालता है। अनादि से राग के पर्दे में था। राग और विकल्प के पर्दे में भगवान था। वह विकल्प को तोड़कर अब भगवान बाहर निकलता है। कौतूहल तो कर।

मुमुक्षु : समझाने में किसी प्रकार से मणा (कसर) रखी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कसर रखी नहीं। सन्त आचार्य महा, उसमें यह दिगम्बर मुनियों की क्या बात करना! आहाहा! जिनका हृदय अमृत से भरा है। अतीन्द्रिय अमृत का जिन्होंने अनुभव किया है। चारित्र में तो अमृत का समुद्र उछला है। नित्यानन्द भोजी

आनन्द अमृत का अनुभव करते हैं। एक विकल्प आ गया करुणा का। भाई! प्रभु! अब तो छोड़ न, प्रभु, भाई! आहाहा! पिता भी इसी प्रकार कहे न उसको, भाई! अब यह नहीं होता, हों! अब छोड़।

कौतूहली होकर... चाहे जैसे कष्ट होओ। मरण आने की स्थिति भी दिखाई दे कि यह देह तो छूट जायेगी। परन्तु एक बार अन्दर कौतूहल तो कर? अन्तर की चीज़ को देखने के लिये एक बार कौतूहल तो कर। बाहर देखने में तो तेरा बहुत काल गया, प्रभु! हों! वह बर्बाद (हो) गया, भाई! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान को देखने में भी क्या, यह तो राग है, कहते हैं। समझ में आया? शुभराग होता है। तेरे तत्त्व का कौतूहली हो। यह क्या है? ऐसी-ऐसी बात करते हैं!

जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब
जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में,
कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब
उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब,
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?

यह श्रीमद् राजचन्द्र ने बनाया है। ३० वर्ष की उम्र में। उनकी ३३ वर्ष में देह छूट गयी। सात वर्ष में जातिस्मरण हुआ। (संवत्) १९२४ में जन्म था। १९३१ में जातिस्मरण हुआ। २९ वर्ष की उम्र में आत्मसिद्धि बनायी। आत्मसिद्धि यह सामने है। यह सामने पाट पड़ी है न? उनके हस्ताक्षर हैं। 'जो स्वरूप समझे बिना' पहली लाईन। १४२ श्लोक हैं।

जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त
समझाया उन पद नमुँ श्री सद्गुरु भगवन्त।

ऐसे १४२ श्लोक २९ वर्ष में बनाये। अपने अर्थ हो गये हैं। फिर यह अपूर्व

अवसर बनाया। भाई! भगवान ने आत्मा देखा, अनुभव किया, वह वाणी में पूरा नहीं आ सका, हों! तो सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरे प्राणी की वाणी में यह चैतन्य रतन हीरा कैसा कैसे है, वह किस प्रकार आयेगा? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि एकबार कौतूहल कर तो तुझे हाथ लगेगा। विस्मयता तो कर, विस्मयता तो कर। अरे! परन्तु यह क्या? चैतन्य बादशाह जिसकी महिमा का पार नहीं होता, शास्त्र भी बात कर-करके पूरा पड़ता है कि अब हम पूरा नहीं कह सकेंगे। सर्वार्थसिद्धि के देव ३३ सागर तक, आत्मा प्राप्त सम्यग्दृष्टि जीव चर्चा करते... करते... करते... ३३ सागर जाते हैं। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम में असंख्यात अरब वर्ष। इतने ३३ सागर शास्त्र की स्वाध्याय करे। अन्त में कहे कि यह विकल्प से पार नहीं पड़ता। हम मनुष्य होंगे और समा जायेंगे, तब पार पड़ेगा। समझ में आया? ऐसी चीज़ के लिये कहते हैं, कौतूहल तो कर। पश्चात् क्या कर? कि इसका जरा पड़ोसी हो जा—राग और शरीर का... पड़ोसी कहते हैं न तुम्हारे? **आत्मा का अनुभव कर....** लो! समझ में आया? यह थोड़ी लाईन बाकी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १, रविवार, दिनांक - ३०-१०-१९६६
श्लोक-२३, प्रवचन - ८९

यह समयसार जीव-अजीव अधिकार चलता है। इसका २३वाँ कलश चलता है। २३वाँ है न?

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्,
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन,
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥२३॥

इसका नीचे अर्थ है। ऊपर श्लोक है न? नीचे अर्थ है। हिन्दी। बात जरा अपूर्व सूक्ष्म है। अनादि काल के संस्कार, यह चैतन्यस्वरूप जो आत्मा है, वह अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है। विजयमूर्ति! अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति अन्दर है। यह देह, देह मिट्टी का पिण्ड रजकण है। और अन्दर एक कार्मणशरीर जिसे कर्म कहते हैं, वह भी एक बारीक धूल है। और विकार जो अन्दर पुण्य-पाप का शुभ-अशुभराग जो विकल्प उठते हैं, वह भी विकार दु:खरूप है, वह आत्मा नहीं। आत्मा, वह विकल्प शुभ-अशुभराग और शरीर से अन्तर भिन्न अरूपी चैतन्य विज्ञानघन आनन्दकन्द, ऐसे आत्मा को आत्मा कहते हैं। उस आत्मा का ज्ञान अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी किया नहीं। इसलिए चौरासी लाख अवतार में (भटकता है)। अनादि-अनन्त आत्मा है, ऐसी वस्तु की कभी उत्पत्ति होती नहीं। वह तो अनादि है। है, उसका नाश नहीं और है उसकी नयी उत्पत्ति होती नहीं। ऐसा देह में भिन्न भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप, वह आत्मा है।

यहाँ आचार्य सम्बोधन करते हैं कि अरे! आत्मा! **आचार्यदेव कोमल सम्बोधन से कहते हैं कि हे भाई! तू किसी प्रकार...** किसी भी प्रकार से भगवान आत्मा अन्दर

आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य है, उसकी अन्तर में दृष्टि लगा दे। **किसी प्रकार महा कष्ट से...** बाहर में प्रतिकूलता चाहे जितनी हो परन्तु यह आत्मा क्या चीज़ है, उसे समझने के लिये, अनुभव करने के लिये जरा कौतूहल तो कर। कौतूहल अर्थात् देखने की चाह तो कर। दूसरी चीज़ देखने की चाहना अनादि से तुझे चली आती है। परन्तु यह आत्मा अन्दर क्या चीज़ है, उसे देखने की चाहरूपी कौतूहल तो कर। जिसमें तेरा स्वरूप पूर्णानन्द भरा हुआ है, उसका पता लगे बिना तुझे कभी स्वतन्त्र शान्ति और सुख मिलेगा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि **महाकष्ट से...** कष्ट का अर्थ बाहर में अनेक प्रकार की प्रतिकूलता होने पर भी, **अथवा मरकर भी...** कभी शरीर छूटने का अवसर आ जाये, इतनी प्रतिकूलता हो तो भी **तत्त्वों का कौतूहली होकर...** यह क्या चीज़ है? जिसमें सब पदार्थ ज्ञात होते हैं, यह शरीर है, यह कर्म है, राग है, यह है, यह है, यह है यह जिसमें— जिसकी सत्ता में चैतन्य के अस्तित्व में यह है, ऐसा मालूम पड़ता है, वह चीज़ क्या है? समझ में आया? ज्ञानस्वरूप भगवान ज्ञान चैतन्य मौजूदगी, जिसकी चैतन्यपने की मौजूदगी है, जिसके चैतन्यपने में सब चीज़ें ज्ञात होती हैं तो सब वस्तु जानने में मुख्यता, ऊर्ध्वता भगवान ज्ञान की है। वह ज्ञान ही जानता है कि यह राग है, ज्ञान जानता है कि शरीर है, ज्ञान जानता है कि यह वाणी निकलती है, ज्ञान जानता है कि यह शरीर छूटता है, ज्ञान जानता है कि यह जीव का शरीर बचा। वह जाननेवाला जिसकी सत्ता में मुख्यरूप से अपनी अस्ति न हो तो यह है, ऐसा जाना किसने? समझ में आया? तो यह चैतन्यसत्ता क्या है? एक बार देखने के लिये कौतूहल तो कर। समझ में आया? चन्दुभाई! चन्दुभाई हमारे नरम व्यक्ति हैं, हों! जरा सा ऐसा आवे वहाँ आँख में आँसू आ जाये। यह डॉक्टर हैं, राजकोट के बड़े डॉक्टर हैं। परन्तु इस शरीर के डॉक्टर हैं, आत्मा के डॉक्टर नहीं हैं।

मुमुक्षु : तो आप बना दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनावे? समझ में आया?

कहते हैं कि तू कौन है? और कैसा है? ऐसा देखने की चाह तो कर। दुनिया की

चीज़ देखने की चाहना करता है। एक लाख रुपये का सोने का हार आवे तो पूरा जगत अथवा घर के लोग देखने आवें, ओहो! बहुत सरस आया। एक मकान में साधारण गहना आवे, नया बर्तन लावे। लो न, पाँच-पचास रुपये का नया बर्तन ले आये। कैसा है, कहाँ से लाये। मकान नया लिया हो, लाख रुपये का, पचास हजार का तो ओहो! भगवान! तू बाह्य चीज़ को देखने के लिये कौतूहलता और चाहना उग्रता से करता है, परन्तु जो देखनेवाला है, उसकी चाहना है तुझे? सोभागभाई! आहाहा! कौतूहल में यह कहा है, भाई! तुझे कुतूहल नहीं होता? क्या है, ऐसी चाहना नहीं होती? यह सबकी चाहना होती है, यह क्या है? यह क्या है? यह क्या है? धूल में क्या है क्या, वह तो धूल है, जड़ है, मिट्टी है। परन्तु उसे जाननेवाला शरीर से भिन्न है और पुण्य-पाप का राग जो शुभाशुभ उत्पन्न होता है, वह भी विकार दुःखरूप है। उससे भी भगवान भिन्न है। समझ में आया? तो वह कौन है, उसे जानने का कौतूहल तो कर।

तत्त्वों का कौतूहली होकर... अरे! यह क्या चीज़ है? मैं कौन हूँ? मैं हूँ तो मेरे स्वभाव में कोई चीज़ है या नहीं? मैं स्वभाववान हूँ तो मुझमें कोई स्वभाव है या नहीं? तो मेरा स्वभाव है कैसा? ऐसा एक क्षण भी तूने अनन्त काल में अपना पता लगाने के लिये जिज्ञासा-कौतूहलता कभी की नहीं। बाकी सब किया। क्या? विकारी परिणाम शुभ और अशुभ किये। दूलेरायजी! पुण्य-पाप भाव किये, हों! पर का कुछ किया नहीं। मूढ़ मानता है। शुभ और अशुभराग। वह राग किया। वह तो जड़ है, जड़ को क्या करे? वह तो स्वतन्त्र पदार्थ है। मिट्टी पदार्थ है। जगत का अस्ति पदार्थ—मौजूदगीवाली चीज़ है। वह चीज़ अपने से टिककर स्वयं से बदलती है। उसे बदलनेवाला दूसरा कोई नहीं। मात्र अनादि काल से इसने यह किया कि अपने सच्चिदानन्द प्रभु को भूलकर पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ राग, द्वेष, दया और दान, व्रत और भक्ति के विकारी परिणाम किये। वह विकार परिणाम है, वह दुःखरूप है। वह आत्मा नहीं। आहाहा! विजयमूर्ति! दुःखरूप है? दाँत निकालता है (हँसता है)। समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द—सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पिण्ड है। प्रभु आत्मा, आत्मा जिसे कहते हैं, आदि-अन्तरहित चीज़ शाश्वत् वस्तु नयी उत्पन्न

नहीं होती, संयोग में नाश होकर मिल नहीं जाती, ऐसी आत्मचीज़ क्या है अन्दर? तो कहते हैं कि उसमें अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। उसका कभी कौतूहल अनुभव करने का, वह चीज़ क्या है, उसे प्राप्त करने की, एकत्व करने का कभी कौतूहल तूने किया नहीं।

कहते हैं, **तत्त्वों का कौतूहली होकर...** ऐसे तो कौतूहल करते हैं न? भोग के लिये, पैसे के लिये और धूल के लिये। यह पैसा कमाने के लिये, स्त्री के भोग के लिये, इज्जत के लिये, बड़ी पदवी के लिये अनादि से राग और द्वेष कौतूहल करके नयी पदवी मुझे मिली, ऐसा अनादि से अपने चैतन्य के पद के भान बिना संयोगी पद की विस्मयता करके अपने को नया कोई पद मिला—महीने में पाँच हजार का वेतन। समझ में आया? पाँच-दस लाख की कमाई हुई। उसमें क्या हुआ? तुझे क्या मिला? वह तो धूल है। समझ में आया? शरीर की निरोगता हुई, वह तो मिट्टी है, धूल है। ऐसी कौनसी चीज़ महत्तावाली कि जिसे तू बाहर में महत्ता देता है? बाहर में तो किसी चीज़ की महत्ता नहीं। सोभागभाई! कहते हैं, कौतूहल तो कर कि कोई महत्तावाली चीज़ अन्दर पड़ी है। जो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ भगवान ने आत्मा को... यह आ गया है, उसका यह श्लोक है, हों! आ गया, उसका है न। उसका कलश है।

'**सव्वण्हुणाणदिट्ठो**' भगवान परमेश्वर जिसके ज्ञान का विकास त्रिकाल जाने, ऐसी शक्ति का विकास हो गया, ऐसे परमात्मा ने तेरे आत्मा को तो ज्ञान, आनन्द, दर्शन उपयोगस्वरूप देखा है। तेरा आत्मा तो ऐसा है, ऐसा भगवान ने देखा है। और तू मानता है कि मैं शरीर हूँ, वाणी हूँ, कर्म हूँ, यह पुण्य-पाप के भाव उत्पन्न होते हैं, वह मैं हूँ। तेरी दृष्टि तत्त्वदृष्टि से विरुद्ध है। समझ में आया? कभी अपनी सम्हाल ली नहीं। दूसरे की सम्हाल ले लूँ, ऐसा अभिमान किया। अभिमान, हों! कर सकता नहीं तीन काल-तीन लोक में। समझ में आया? शरीर में भी सफेद बाल आवे तो रोक दे न। तू कर सकता हो तो। सफेद बाल आये। उसकी पर्याय के काल में आते हैं, आत्मा क्या कर सकता है? उन्हें रोक सकता है? समझ में आया? अपने शरीर की पर्याय भी रोक नहीं सकता तो दूसरे पदार्थ की क्रिया या पर्याय आत्मा करे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। मूढ़ ने अनादि से ऐसी मदिरा, मिथ्या भ्रम की मदिरा पी है। शराब पी है, शराब। मैं ऐसा

कर लूँ, मैं ऐसा कर लूँ, मैं ऐसा कर लूँ। किसका करे ? सुन तो सही ! तुझसे भिन्न वस्तु है, वह भी भिन्न शाश्वत् पदार्थ है। और उससे भिन्न तू भी शाश्वत् पदार्थ है। तुझमें पुण्य-पाप के भाव जो उत्पन्न होते हैं, शुभ-अशुभराग, वह भी क्षणिक दुःखरूप विकार है। एकबार कौतूहल तो कर कि विकार और शरीर से (भिन्न) आत्मा आत्मा कहते हैं... समझ में आया ? कौन है यह ? वह शिवलाल पानाचन्द थे न ? आई.सी. क्या कहलाये बड़ी पदवी। आई.सी. वह पदवी पढ़कर (संवत्) १९७७ में आये। शिवलाल पानाचन्द। बड़ी पदवी थी। पहले शुरुआत में ७०० के वेतन में लगे हुए। पश्चात् ३५०० के वेतन में जयपुर में थे। फिर आये। (संवत्) १९७७ के वर्ष की बात है। व्याख्यान हुआ तब। बहुत बुद्धिवाला, हों ! पूरी अलमारियों की अलमारियाँ स्वयं वाँचे तो याद रह जाये, इतनी बुद्धि। कहा, आत्मा है, उसका कुछ किया है ? मैंने ऐसा पूछा। शिवलालभाई ! उसमें आत्मा है, उसका कुछ विचार किया है ? वाँच तो मैंने बहुत है, परन्तु मैं अभी निर्णय पर नहीं आया। विसाश्रीमाली थे शिवलाल पानाचन्द। मूल नाग्नेश के थे। फिर तो बड़े वेतन में चढ़ गये, फिर तो ४८ वर्ष में मर भी गये। छोटी उम्र में देह छूट गयी। यहाँ कुछ (रोग) हुआ। देह छूट गयी। समझ में आया ? मैंने कहा, आत्मा अन्दर वस्तु है, जैसे यह परचीज़ है, वैसी कुछ वस्तु है अन्दर ? तो कहे, वाँचा तो बहुत है, परन्तु अभी है या नहीं, इसका निर्णय किया नहीं। बहुत अच्छी बात है। यह सब उनके पठन। बिना एक के शून्य। रण में शोर मचाने जैसे हैं। और दुनिया तो ऐसा कहे, तीन-तीन हजार का वेतन। ... धूल का वेतन। परन्तु तेरी चीज़ क्या, उसकी तुझे खबर नहीं और तू कहता है कि मैं सुखी हूँ। कहाँ से सुखी हुआ ? तू कहीं पर में है ? अपना आत्मा छोड़कर आनन्द और शान्ति क्या पर में है ? धूल में है ? शरीर में है ? स्त्री में है ? पैसे में है ? वाणी में है ? हजीरा में है ? हजीरा समझे ? यह बँगला। पाँच-दस लाख का बँगला बनाया हो न, उसमें है ? मिट्टी में ? कहते हैं कि एकबार कौतुहल तो कर कि आनन्द क्या है ? आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लगता है अर्थात् क्या ? लगता है ? लगता है अर्थात् क्या ? मूढ़ मानता है कि मुझे इसमें ठीक है, मुझे इसमें ठीक है। वह तो मानता है, कल्पना करता

है। धूल में-शरीर में सुख है? लड्डुओं में सुख है? तीन लड्डु खाने के बाद दो बलजोरी से दे तो कहे, भाईसाहेब! अब नहीं। किसलिए नहीं? सुख तो अधिक होगा, ऐसा अच्छा, सुख तो जैसे अधिक हो वैसे अच्छा। तीन लाख के... यह बनियों में विवाह में रिवाज है न? विवाह हो फिर... दे। खाकर बैठा हो बेचारा, ... वह कहे, मर जायेगा, भाईसाहेब। परन्तु तू कहता था न इन लड्डुओं में सुख है? तीन में सुख थोड़ा, चार में अधिक, पाँच में अधिक, दस में उससे अधिक। घुसा लड्डू दस। नहीं, नहीं, भाईसाहेब नहीं, भाईसाहेब नहीं। समझ में आया? नहीं, नहीं अब नहीं। निद्रा में सुख है न? सो जा। छह घण्टे में जग जाये। किसलिए? सुख था न? सुख में से कैसे निकला? समझ में आया? पानी में सुख है। पानी पीया ही कर। मौसम्बी... मौसम्बी डाल अन्दर। आध मण। नहीं, अब नहीं। क्यों अब नहीं? सुख की मर्यादा है? सुख यदि हो तो उसकी मर्यादा क्या? अब नहीं, अब नहीं, अब नहीं। समझ में आया? स्त्री का भोग। एक बार, दो बार, पाँच बार, दस बार। समझ में आया? फिर कहे, अब नहीं, अब नहीं। किसलिए नहीं? सुख है या नहीं? कर न बारम्बार। मूढ़ मान्यता कल्पना खड़ी करके सुख है, ऐसा मानता है। सुख है नहीं। सुख हो तो...

मुमुक्षु : उसकी ही संख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी संख्या अधिक है जगत में। समझ में आया? आहाहा! अरे भगवान! तुझे तेरी खबर नहीं और तू कहलाये चतुर। यह वह किसके घर की बात?

कहते हैं आचार्य महाराज, अरे प्रभु! तू सच्चिदानन्द प्रभु है न, भाई! उसकी तुझे खबर नहीं और तू ऐसा मानता है कि मैं होशियार हूँ और सुखी हूँ। मूढ़ है। समझ में आया? श्रीमद् ने नहीं कहा? सोलह वर्ष की उम्र में कहा। श्रीमद् राजचन्द्र। सात वर्ष में जातिस्मरण था। यह श्रीमद्। सोलह वर्ष में तो कहा,

'मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?

मैं कौन हूँ? आया कहाँ से?' सोलह वर्ष में कहते हैं। और मेरा रूप क्या?

सम्बन्ध दुःखमय कौन है, वळगणा (सम्बन्ध) अर्थात् प्रतिबन्ध। स्वीकृत करूँ परिहार क्या?

इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिये, सोलह वर्ष में कहते हैं। एक मोक्षमाला बनायी। दूलेरायजी! सुना है न यह तो? पढ़ी है परन्तु दूसरे रास्ते चढ़ गये। सोलह वर्ष में कहते हैं, हों! मोक्षमाला लिखते थे। डेढ़ दिन में लिखी, तीन दिन में। ऐसा लिखते-लिखते एक पाठ में, वह स्याही थी, वह स्याही ढुल गयी। यह क्या हुआ? मैं तो मोक्षमाला बनाता हूँ। फिर यह पाठ उन्होंने लिखा। वरना गद्य लिखनेवाले थे। यह पद्य बनाये। समझ में आया?

बहुत पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला। सोलह वर्ष और चार महीने में १०८ पाठ (लिखे)। ऐसी लाईनें पाँच। ऐसे १०८ पाठ। सोलह वर्ष में। जातिस्मरण सात वर्ष से था। अभी (संवत्) १९५७ में गुजर गये। १९५७ चैत्र कृष्ण पंचमी। तू कौन है, इसकी अभी तुझे खबर है? प्रतिबन्ध क्या है तुझे कुछ खबर है? तुझे खबर है तू कौन है? खबर नहीं। समझ में आया?

'सुख प्राप्त हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।' ऐसा कहा, लो, 'लेश अे लक्षे लहो'। बाह्य में सुख चाहने से तेरे आत्मा का आनन्द लुटता है। आहाहा! 'सुख प्राप्त हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।' ये गुजराती है। 'सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे' इसमें सुख, यहाँ सुख, यहाँ सुख। प्रभु! चैतन्य आनन्दकन्द विराजता है, सच्चिदानन्द त्रिकाल शाश्वत् वस्तु में आनन्द नहीं मानकर उसमें (पर में) आनन्द है, (ऐसा मानता है)। जिसे अपने स्वभाव से दूसरी चीज़ की अधिकता अपने में दिखती है, वह मूढ़ पर में सुख मानता है। समझ में आया? अपनी चीज़ के अतिरिक्त दूसरी चीज़ में जिसे महत्ता, महत्ता दिखाई दे, वाणी की महत्ता, शरीर की महत्ता, इज्जत की महत्ता, शुभाशुभभाव की महत्ता, जिसे उसकी महत्ता दिखे, उसे आत्मा की महत्ता अन्दर में दिखती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, 'सुख प्राप्त हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है।' अन्दर आनन्दकन्द का अनादर हो जाता है। एक बार तो कौतूहल कर। आहाहा! यह आनन्द की मूर्ति प्रभु अन्दर विराजता है। भाई! परन्तु इसे विश्वास कहाँ है? कभी खबर ली नहीं, परीक्षा की नहीं, कभी सुना नहीं। भगवान चैतन्यप्रभु वस्तु है, दल है। जैसे स्फटिक रत्न पत्थर का

है, वैसे चैतन्य स्फटिक रत्न है। देह में स्फटिक रत्न चैतन्य शरीर प्रमाण शरीर से भिन्न, शरीर प्रमाण शरीर से भिन्न। ऐसा चैतन्यदल विज्ञानघन आनन्दकन्द ऐसी चीज़ तू है। उसे देखने, प्रतीति करने, अनुभव करने के लिये कौतूहल तो कर। देखने की तीव्र जिज्ञासा तो कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? पूरी दुनिया देखी। ऐसा देखा और वैसा देखा, धूल में कुछ नहीं। तुझे देखे बिना सब झूठा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मौजूद प्रत्यक्ष दिखता है, लो। क्या दिखता है? किसमें दिखता है? यह दिखता है, यह दिखता है या ज्ञान दिखता है? सुनो! यहाँ ज्ञान की मौजूदगी में यह दिखता है। वहाँ ज्ञान की प्रसिद्धि होती है या उसकी प्रसिद्धि होती है? समझ में आया? यह है, ऐसी प्रसिद्धि में ज्ञान की प्रसिद्धि हुई या नहीं? ज्ञान ने जाना कि यह है। यह किसमें जाना? ज्ञान में। यह है, यह है, यह है—ऐसा अपनी चैतन्यज्योति में यह ज्ञात हुआ। तो जाननेवाले की प्रसिद्धि हुई या ज्ञात हुआ, उसकी प्रसिद्धि हुई? अज्ञानी ऐसा मानता है कि उसकी (ज्ञेय की) प्रसिद्धि हुई, ज्ञानी ऐसा मानता है कि इसकी (-ज्ञान की) प्रसिद्धि हुई। आहाहा! कठिन बात! समझ में आया?

कहते हैं, एक बार तो कौतूहल कर, प्रभु! तूने यह अनन्त काल में कभी किया नहीं। और ऐसा मनुष्यदेह मिला, धूलधाणी और वापाणी हो जायेगा। फू... हो जायेगा। तेरे पाँच-पाँच हजार के वेतन और ऐसा हो और धूल हो, कहीं सुख है नहीं। सुखी है या नहीं? यह रामजीभाई का पुत्र सुखी नहीं? दस हजार वेतन है। मासिक दस हजार। भाई का पुत्र है। सुमनभाई। बड़ी कम्पनी में ऐसो है। चालीस वर्ष की उम्र है। चालीस, इकतालीस, बयालीस। दस हजार वेतन। ऐसो कम्पनी वहाँ ले गये हैं। एक ही पुत्र है। दस हजार मासिक। सुखी होगा न? यह आवे तब कहते हैं। कहीं धूल में भी सुखी नहीं। दस हजार का वेतन क्या धूल में भी नहीं मिलता। मासिक दस हजार, हों! लोगों को लगे आहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। पैसा-बैसा मिले... समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या इसकी यादी है? वह तो बेचारा इनकार करता है, हों!

उसमें कुछ नहीं। अमेरिका जाता था तो खेदखिन्न होकर जाता था, अरे! अब कब मिलूँगा महाराज? यह वेतन तो अधिक हुआ और मैं जाता हूँ। वेतन का अधिक अंक। वह तो नहीं बोले। लोग कहते हैं वह हम सुनते हैं। अब अमेरिका जायेंगे, पहले मद्रास थे, कलकत्ता थे। धूल में भी नहीं। हैरान... हैरान... होता है। कैसे होगा यह? पैसे में कैसे होगा? यह पैसे में होगा या नहीं? तो उसे पैसे में भारो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे में सुख है या नहीं? तो गले में पैसा डालो, यहाँ डालो अन्दर। वहाँ पैसा खूब डाले, रुपये इकट्ठे करके बीच में डालो नीचे। नीचे पाँच लाख, ऊपर पाँच लाख और बीच में डालो। वह कहे, भाईसाहब मर जाऊँगा। किसलिए? सुख है न उसमें? मुफ्त मूढ़ होकर मानता है और कल्पना का रूप दूसरा हो तो कहे, नहीं, नहीं, नहीं। रुपये में सुख नहीं, स्त्री में सुख नहीं। वह तो मर जाये। हमने भोग लिया। एक व्यक्ति था। एक रात्रि में तेरह बार। परन्तु मर जायेगा, स्त्री कहे। मर जायेगा क्षय होकर। क्षय होकर मर गया। सुख कब था उसमें? ऐसे के ऐसे मूढ़ जीव।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द का नाथ है। जिसके स्मरणमात्र से जिसे शान्ति मिले, उसके अनुभवमात्र से जिसे शान्ति हो, ऐसे पदार्थ को तो याद करता नहीं और जिसे याद करने से राग हो और दुःख हो, उसे बारम्बार याद किया करता है। सोभागभाई! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अब कहते हैं, भाई! यदि तुझे हित का कार्य करना हो, तुझे हित का काम करना हो तो **इस शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त पड़ोसी होकर...** क्या कहते हैं? शरीर आदि शब्द पकड़ा है न? यह धूल है, वाणी मिट्टी है। अन्दर में पुण्य-पाप के भाव भी (मूर्त है)। यहाँ तो भाई! मूर्त शब्द लिया है न? वह मूर्त है। बदल-बदलकर भाषा ली है। पहले प्रकाश-अन्धकार, चैतन्य-जड़, उपयोग-अनुपयोग ऐसा लेते-लेते यहाँ मूर्त ले लिया। आहा! आचार्य की रचना! समझ में आया? भगवान! तेरे चैतन्यप्रकाश का नूर। यह पुण्य-पाप के प्रकाश नहीं, वह तो अन्धकार है। पुण्य-पाप के भाव अन्धकार हैं। चैतन्य प्रकाश का नूर है। वह अन्धकार को भी जाननेवाला है।

अन्धकार अपने को नहीं जानता, अन्धकार चैतन्य के नूर के तेज को नहीं जानता। चैतन्यप्रकाश भगवान आत्मा अपने को जानता है और रागादि अन्धकार है, उसे भी जानता है। ऐसा मूर्त... मूर्त कहा न? समझ में आया?

शरीरादि से मूर्त द्रव्य का... ओहो! ऐसा कहते हैं, भाई! यह चीज़ अरूपी विज्ञानघन पिण्ड आत्मा है। उसमें आनन्द है। इसके अतिरिक्त पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं शुभाशुभराग, वह तो दुःखरूप है, अनुपयोगरूप है, मूर्त है, अन्धकार है, जड़ है, रूपी है। आहाहा! गजब बात! चैतन्य के नूर का पूर प्रभु अन्दर पड़ा है न! कोई भी पदार्थ हो, वह पदार्थ उसके स्वभाव बिना खाली नहीं होता। अफीम हो तो वह कड़वाहट से भरपूर है। नमक हो, (वह) खारापन से भरपूर है। खड़ी हो तो सफेदाई से भरी है। उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द के स्वभाव से भरपूर है। खबर नहीं कहाँ होगा? समझ में आया? कहते हैं, एक बार तो शरीरादि, शरीरादि... एक ओर भगवान राम चैतन्यराम तथा एक ओर पुण्य-पाप के विकल्प, राग और शरीरादि सब मूर्त है, सब मूर्त। रूपी है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! दूलेरायजी! कठिन बात है। यह दया, दान के भाव हैं न? कहते हैं कि वे चैतन्य नहीं। जड़ हैं। राग है, वह अन्धकार है, विकार है। कठिन बात, कठोर बात। जगत को आत्मा क्या और क्या आत्मा में है, और मैं क्या कर रहा हूँ, इसकी खबर नहीं।

कहते हैं कि एक बार तो सुन। ऐसा मनुष्यदेह मिला। आँखें मिंच जायेंगी, जायेगा चौरासी के अवतार में। आत्मा कहीं नाश हो, ऐसा नहीं। शरीर नाश होता है, आत्मा नाश होता है? मनुष्य भी मरे तब ऐसा कहते हैं कि ऐ... जीव गया। ऐसा कहते हैं। गया तो कहीं वस्तु रही न! वस्तु थी, वह गयी न! यहाँ थी, अन्यत्र चली गयी। जैसी वासना के प्रमाण में भव किये। भगवान! तूने तेरे स्वरूप को एक क्षण भी अनुभव अर्थात् उसकी महत्ता लाकर, उसे अधिक बनाकर कभी तूने उसका अनुभव किया नहीं। समझ में आया? यह तो जीव-अजीव की बात है या नहीं? पुण्य-पाप के भाव भी वास्तव में तो अजीव हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, रूपी है सब। समझ में आया? जिसमें यह हित मानता है। धूल में हित नहीं। भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु, इस देह के छूटने से वह छूटता है, वह रागरहित स्वरूप आत्मा का है। आहाहा! भगवान आत्मा...

आचार्य महाराज कहते हैं, जैसे पिता पुत्र को कहता है न, भाई! तू चतुर है न, भाई! अपने घर में ऐसा शोभा नहीं देता, हों! ऐसा शोभा नहीं देता। परघर चलना, वह हमारे खानदान को लांछन लगता है। ऐसा कहते हैं कि बापू! तू तो आत्मा है न, भाई! यह पुण्य-पाप के राग तुझे शोभा नहीं देते। और शरीर की अधिकता (करता है) कि मेरा शरीर। बापू! यह तुझे शोभा नहीं देता। जो परचीज़, उससे तू तुझे अधिक मान, महत्ता मान, प्रभु! यह तुझे शोभा नहीं देता। आहाहा! राजेन्द्रजी! यदि परचीज़ हो, किसी की वस्तु हो, उसे अपनी मान ले तो? झबेरी की दुकान हो। माणेक चौक में निकला। यह मेरी है। मूर्ख है। वहाँ है, उसमें तेरी है—ऐसा कहाँ से आया? उसी प्रकार चैतन्यमूर्ति भगवान घूमते... घूमते... घूमते... यहाँ आया, उसमें यह चीज़ संयोग में दिखाई दे तो कहे, मेरी है। मेरी कहाँ से हुई? तेरी हो तो तेरे पास सदा रहे। यह रहती नहीं। यह तो पहले नहीं थी, अब रहेगी नहीं, छूट जायेगी। समझ में आया? बहुत कठिन बात। श्रीगोपालजी!

आबाल-गोपाल को यह करने की चीज़ है, यह किये बिना कभी सुख मिलता नहीं। तीन काल-तीन लोक में मर जाये, सूख जाये दूसरे प्रकार से, परन्तु यह भगवान आत्मा शरीरादि विकल्प से, राग से, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम शुभ हैं, वे भी राग हैं, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना आदि परिणाम, वासना दुर्गन्ध वास है, भगवान उससे भिन्न है। भाई! तूने तेरी भिन्नता कभी पड़ोसी होकर देखी नहीं, देखी नहीं। कहते हैं कि उस द्रव्य का एक मुहूर्त पड़ोसी होकर। मुहूर्त शब्द से थोड़ा काल। पड़ोसी को एकमेक मानता है न। यह शरीर मेरा और यह मेरा। एक हो तो प्रभु! छूटे क्यों? समझ में आया? राग और पुण्य परिणाम, वह अपने साथ एक हो तो छूटे क्यों? वे तो छूट जाते हैं, राग छूट जाता है। पाप आता है, पाप छूट जाता है और पुण्य आता है, पुण्य छूटकर पाप आता है। दोनों कृत्रिम चीज़ है। भगवान आत्मा मूर्त द्रव्य का एक

घड़ी पड़ोसी हो जा। यह राग मैं नहीं, शुभराग मैं नहीं, शरीर की कोई अवस्था की क्रिया में मैं नहीं, ऐसा एक क्षण भी अनन्त काल (में) भी तूने तेरा पता लिया नहीं, इसलिए तुझे धर्म हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

धर्मी ऐसा भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु का आश्रय करके एकबार पुण्य-पाप के भाव का भी पड़ोसी हो जा। आहाहा! शरीर तो ठीक है, वह तो मिट्टी है, परन्तु अन्दर में जो शुभ-अशुभराग उत्पन्न होता है, उस राग का भी पड़ोसी हो जा। पाड़ोशी कहते हैं न? हिन्दी में क्या शब्द है? पड़ोसी, ठीक। हमारे काठियावाड में पाडोशी कहते हैं। पड़ोसी हो जा। परन्तु उसे पड़ोसी... हमारे हैं, हमारे हैं। समझे? **आत्मा का अनुभव कर...** महासिद्धान्त का सार। एक क्षण प्रभु! तेरी प्रभुता की तू सम्हाल कर। बाहर की सम्हाल करने में तो तेरी जिन्दगी गयी, अनन्त अवतार गये। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन विराजमान है, उसका अन्तर अनुभव कर। तो राग का, शरीर का क्षणमात्र में तू पड़ोसी हो जायेगा। साथी हो जायेगा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्बन्ध तोड़ने के लिये। पड़ोसी क्या अपने घर में रहता है? अलग घर में रहता है, उसे पड़ोसी कहते हैं। कहते हैं, भगवान! तूने अनन्त काल में ऐसा किया नहीं। एक समयमात्र किया नहीं कि राग और मैं भिन्न हूँ, शरीर और मैं भिन्न हूँ। जिससे लाभ माने, उसे वह भिन्न नहीं मान सकता। परन्तु ऐसी मान्यता इसने एक समयमात्र (की नहीं) कि प्रभु ज्ञानस्वरूपी चैतन्यज्योति है, उसमें रागादि के विकल्प, वे दुःखरूप हैं। उनका एक क्षण भी पड़ोसी, साक्षी अनुभव करके यह आत्मा है, ऐसा अनुभव करके (पड़ोसी हो)। अभी प्रथम सम्यग्दर्शन की बात है, हों! प्रथम सम्यग्दर्शन इसे कहते हैं। यहाँ धर्म की शुरुआत होती है। इसके बिना धर्म की तीन काल में शुरुआत नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त (दो घड़ी)...** मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त। है न अन्दर शब्द? **'मूर्तेः'** भाषा कैसी की है! देखो न! उसमें कहा, **'मृत्वा'**, **'मूर्तेः'** **'मृत्वा'** एक मुहूर्त भी मर जा। आहाहा! भाई! यह तेरे हित की बात है, हों! तूने

हित की बात कभी सुनी नहीं, प्रभु! तूने अहित की बात सुनी और अहित की बात तूने अनन्त बार अनुभव में ली। यहाँ कहते हैं, एक क्षणमात्र भी भगवान आत्मा पहले इसे ख्याल में ले कि यह कौन है? यह आत्मा है। आत्मा है तो ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ है। शरीरप्रमाण शरीर से भिन्न उसकी आकृति अरूपी भिन्न है। शरीरप्रमाण से शरीर से भिन्न उसका आत्मदल, आनन्ददल, ज्ञान सत्त्व अत्यन्त भिन्न है। ऐसे भगवान आत्मा का अनुभव कर। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उस अनुभव का नाम सम्यग्दर्शन और उसका नाम धर्म। इसके अतिरिक्त धर्म तीन काल में होता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न! आत्मानुभव। आत्मानुभव का अर्थ क्या? आनन्द का अनुभव कर। उसका नाम आत्मा का अनुभव। जो पुण्य-पाप जो विकल्प, राग का जो वेदन और अनुभव है, वह दुःखरूप है। परन्तु तुझे भान नहीं। पागल मदिरा पीये हुए हो, कुत्ता मुँह में पेशाब करे तो मीठा लगे। राजकोट में बहुत लगता। वह था न? भाई! पारसी का। दिशा को हमारे उसकी ओर जाना होता था। बड़ा पारसी का कारखाना है न। दिशा को उसकी ओर जाना। एक व्यक्ति मदिरा पीया हुआ ऐसा पड़ा न तो कुत्ता पेशाब करेगा उसके मुख में। मदिरावाले के मुख में पेशाब आवे तो उसे मीठा लगता है। उसी प्रकार जहाँ आत्मा चिदानन्द है, उसकी जिसे खुमारी है नहीं और मैं पुण्य-पाप, शरीरादि हूँ, ऐसी मिथ्यात्वरूपी मदिरा पी है, उसे अनुकूलता में जहर चढ़ता है। आहाहा! मजा है। धूल में मजा नहीं। यह तो मूल बात है। अनन्त काल में इसने यह किया नहीं। अभ्यास भी किया नहीं। सब अभ्यास दुनिया का कर-करके मर गया। मरते हुए ऊं... ऊं... (होता है)। डॉक्टर भी मर जाते हैं, हों! डॉक्टर मरते होंगे या नहीं? चन्दुभाई! डॉक्टर मर गये।

मुमुक्षु : वह तो आँख के डॉक्टर थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यही सवेरे कहा। आँख के बहुत किये, परन्तु उसकी आँख का ऑपरेशन किया नहीं। रतिलाल शाह। कल बड़ा मर गया न, लो। सबकी

आँख के किये, परन्तु उसकी आँख का ऑपरेशन नहीं किया। पहले जब मिले थे, (संवत्) १९९० के वर्ष में, रतिलाल। तब छोटी उम्र थी। १९९० में। ३२-३३ वर्ष हुए। तब ३३ वर्ष का होगा। ६६ वर्ष हुए। महाराज! तुम धर्म-बर्म कहते हो परन्तु अभी नहीं, तब ऐसा बोलते थे। जवानी में नहीं। तब (कब)? वृद्ध होंगे तब करेंगे। सदर में चातुर्मास था न? तब आये थे। यह सब थे न? इन सबको पढ़ाया था न। देवीदासभाई को पैसे देकर पढ़ाया था। खबर है? पोरबन्दरवाले। पश्चात्? अभी नहीं। बाद में १९९५ में आये थे। यहाँ चातुर्मास में व्याख्यान में आवे। यह महाराज का व्याख्यान सुने यदि दो, तीन, चार बार तो अपने इस संसार के काम में नहीं रहें, ऐसा बोले। संसार के काम के नहीं रहें। यह तो कहते हैं, ... बापू! सुन न अब, काम कौन कर सकता था? धूल? तेरे अँगुल ऐसे-ऐसे हो जाये, ऐं... पक्षघात हो, तब अँगुलियाँ हिला सकता नहीं। वह तो जड़ है। जड़ की अवस्था क्या तेरे अधिकार की बात है? समझ में आया? फिर बोले, फिर किसी-किसी समय आते थे। व्याख्यान में आते थे। शाम को नहीं आते थे। शरीर को कुछ हो गया था। लो, यह उड़ गये। वृद्धावस्था में करूँगा। कब करे? वृद्धावस्था में गोविन्द गाऊँगा, क्या कुछ आता है न? वृद्धपन में गोविन्द गाऊँगा। वायदा कर-करके ही ऐसा का ऐसा मर गया। पैसे में जैसे वायदा करे न? वैसे वायदा करे, अभी नहीं, अभी नहीं, अभी नहीं। वृद्ध होऊँगा (तब बात)। मर जायेगा वृद्ध होने से पहले। तुझे कहाँ खबर है, वृद्ध होगा या नहीं? समझ में आया? 'करना हो तो कर ले प्यारा, अभी करने का है अवसर, पीछे अवसर मिलेगा नहीं।' आहाहा! परन्तु यह दुनिया की दुकान और पेढ़ी और उसमें पाँच-दस लाख मिले, धूल मिले, उसमें कुछ दो-पाँच हजार का, दस हजार का वेतन मिले। और शरीर चमड़ा जरा रूपवान हो। टोपा पहने ऐसा बड़ा। हाथ में लकड़ी (रखे) और एक मोटर यदि अच्छी हो पचास हजार की। और यह बैठा हो। मैं चौड़ा...! आहाहा! अब तो मानो मैं ही भगवान हूँ। अरे! मर जायेगा, सुन न अब। वह कहाँ तेरी चीज़ थी? समझ में आया?

कहते हैं कि एकबार तो तू देखनेवाला हो जा। ऐसा कहते हैं। पड़ोसी। भाई! एकबार तू देखनेवाला हो, ऐसा हो जा। राग का भी देखनेवाला, शरीर का भी देखनेवाला। करनेवाला किसी का नहीं, मैं देखनेवाला सबका। मेरे अतिरिक्त... कैसे चले वकील?

... काम के लिये आये होंगे। वकील है तो काम के लिये (आये होंगे)। नटुभाई थे। समझ में आया? दुनिया के भी घोंसरा... काम के घोंसरा। घोंसरा समझते हो? घुरा। गाड़ा की घुरा होती है या नहीं? बैल की डोरी खींचे नहीं, वहाँ तो अन्दर डाले सिर। परन्तु अब खेंचने तो दे। ऐसे घुरा जहाँ ऊँचा करे, वहाँ (सिर डाले)। इसी प्रकार जहाँ कुछ काम आवे तो कहे, मुझे सौंपना, मुझे करने देना। परन्तु बैल की भाँति किसलिए मर जाता है? खड़ा रह न थोड़ा। मालचन्दजी!

यहाँ कहते हैं, भगवान आचार्य महाराज सन्त जगत की करुणा करके कहते हैं, भाई! ऐसा कहकर बुलाया है न? उसमें तो ऐसा कहा है, मित्र! हे मित्र! ऐसा लिखा है, हों! हे मित्र! उसमें लिखा है। हे मित्र! ऐसा करके सम्बोधन करते हैं अर्थात् हमारी जाति का है, ऐसा मित्र है। मैं भी आत्मा हूँ, तू भी आत्मा है। हमको आत्मा का भान हुआ, तुझे कहते हैं कि यह भान हो सकता है। कर ले। यह करने का अवसर आया, बाद में कुछ नहीं कर सकेगा।

आत्मानुभव कर कि जिससे अपने आत्मा के विलासरूप,... देखो! भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु, उसकी अन्तर में दृष्टि करके राग और शरीर आदि की रुचि छोड़कर, भगवान आत्मा की रुचि करके अन्तर में आनन्द का अनुभव कर **कि जिससे अपने आत्मा के विलासरूप,...** अपने आत्मा के विलासरूप। अन्दर आनन्द का विलास तुझे दिखाई देगा। आहाहा! यह विलास करते हैं न? विलास। अभी मौज मनाते हैं। किसमें? धूल में भी नहीं मिलती। यह आत्मा का विलास। चैतन्य प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से विराजमान अनादि-अनन्त मूर्ति है। कहते हैं कि उसमें एकाग्र हो तो तेरे आत्मा का विलास तुझे खबर पड़ेगी। आत्मा विलासरूप **अपने आत्मा के विलासरूप,...** अपना स्वरूप शुद्ध, उसके अनुभवरूप विलास आनन्द की मौज में तुझे दिखाई देगा कि यह आत्मा है। समझ में आया?

सर्व परद्रव्यों से भिन्न... सर्व शरीर, वाणी, कर्म और पुण्य-पाप के विकल्प। यहाँ द्रव्य लिया, भाई! **परद्रव्यों से भिन्न...** उन परद्रव्यों में रागादि नहीं लिये। समझ में आया? कितने पहलुओं से बात करते हैं! **सर्व परद्रव्यों से भिन्न देखकर इस शरीरादि**

मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ... यह शरीर, पुण्य-पाप के राग के साथ जो एकत्वबुद्धि है, वह मैं हूँ, ऐसी जो मान्यता, भ्रम है, वह तेरा भ्रम भगवान आत्मा का अनुभव करने से छूट जायेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं। **शरीरादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ...** मूर्तिक। समझ में आया? **एकत्व के मोह को...** एकत्वरूपी मोह। राग मैं हूँ, शरीर मैं हूँ और मेरे स्वरूप में वह है और उसमें मैं हूँ, ऐसी जो एकत्वबुद्धि—भ्रमबुद्धि—पाखण्डबुद्धि—दुःखबुद्धि **तू शीघ्र ही छोड़ देगा।** आत्मा के अनुभव से छूटेगी, दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया? भारी ऊँची बात लगे। किसी को ऐसा लगे, यह तो किसकी बात होगी? एल.एल.बी. और एम.ए. और उसकी बड़ी बात होगी? भाई! अभी तो धर्म के एकड़ा की बात है। अरे! भगवान! इसे तो कुछ लगे, यह कहाँ की बात होगी? धर्म अर्थात् पहले यह करे, कुछ सेवा करे और यह करे... दुलेरायजी! यह करे और फिर धर्म हो। धूल में भी नहीं। मर जा न! पर की सेवा करता कौन है? स्त्री मरे ३५ वर्ष की और स्वयं की चालीस वर्ष की उम्र हो, फिर रोवे। अब क्या करोगे तुम? चालीस वर्ष होंगे तुमको, दूसरे देंगे नहीं, मेरी मरने की तैयारी है। और परिवार ... जवान ... फिर विचार ऐसा हो जाये, यह यदि पाँच वर्ष पहले मर गयी होती न। मेरी स्त्री बहू... है। इसकी अपेक्षा पाँच वर्ष पहले मर गयी होती तो दूसरी मिलने की सरलता पड़ती। तू कहता था न मुझे स्त्री के ऊपर बहुत प्रेम है। ऐसे तो गहरे-गहरे तेरी भावना थी कि पाँच वर्ष पहले मर गयी होती तो कुछ होता। अनुकूल तो मिले। अब तो विवाहते हैं ४५ वर्ष में... वह रोती जाये। तुम पीछे से क्या करोगे? रोटियाँ बिना क्या करोगे? फलाना करोगे, विवाह करना। लो, उसे मरकर कहाँ जाना है भटकने। यहाँ कहते हैं, विवाह करना। वह कहे, परन्तु मुझे ४५ वर्ष हुए, कोई नहीं देगा। इसकी अपेक्षा तू जल्दी मर गयी होती तो मुझे मिलती तो सही। यह जगत की प्रीति और यह जगत के प्रिय। मुफ्त का मांडकर बैठा है। आहाहा!

कहते हैं, अरे! **परद्रव्यों से भिन्न देखकर इस शरीरादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ...** एकत्व तो छोड़, एकत्व तो छोड़। भगवान आत्मा, उसकी प्रथम श्रद्धा तो कर कि आत्मा की ओर के एकत्व के अनुभव से ही मिथ्यात्व का नाश होता है। भ्रम का नाश दूसरे किसी कारण से नहीं होता। समझ में आया?

भावार्थ :- यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न... फिर तो इसमें रहता दिखता है, परन्तु है नहीं। स्वयं अपने में है, शरीर शरीर में है। **यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करे...** भगवान आत्मा... रागादि का अनुभव तो कर सकता है या नहीं ? तो राग का अनुभव करता है तो अपने भगवान आत्मा का अनुभव भी हो सकता है। आत्मा ही महिमावन्त भगवान है। समझ में आया ? राग का अनुभव करता है या नहीं ? राग का ध्यान करता है या नहीं ? दो-दो घण्टे तक ऐसे एकान्त स्थान। तो तुझे ध्यान करना तो आता है, परन्तु विकार का। उसे छोड़कर अन्दर चैतन्य का ध्यान नहीं किया जाता है ? ध्यान करने का अभ्यास तो तुझे है, परन्तु उल्टा। उल्टा ध्यान छोड़कर यहाँ अन्दर में जा। समझ में आया ? ... यह क्या चीज़ है ? ... तेरे लिये सब ऊँचे और तू सबसे नीचा। जानबूझकर अपने आप अपनी हीनता करता है या नहीं ? मैं सबमें अधिक हूँ, ज्ञानानन्द हूँ। राग, वह मुझसे हीन है, पृथक् है, शरीर भी मुझसे हीन है, पृथक् है। ऐसे **दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करे, (उसमें लीन हो), परीषह के आने पर भी डिगे नहीं,...** परीषह अर्थात् प्रतिकूलता। परीषह अर्थात् प्रतिकूलता। प्रतिकूलता आने पर भी क्षण में आनन्द का अनुभव करने में डिगे नहीं। **तो घातियाकर्म का नाश करके,...** तो घातिकर्म का नाश हो तो एक समय में तीन काल-तीन लोक का (जाननेवाला) केवलज्ञान हो जाये। ऐसी आत्मा में सामर्थ्य है। समझ में आया ?

जैसे छोटी पीपर में, छोटी पीपर होती है न ? उसमें चौंसठ पहरी चरपराई भरी है अन्दर में। छोटी पीपर तो इतनी होती है। परन्तु अन्दर में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है। उसे घोंटने से प्रगट होती है या नहीं ? पत्थर से होती है ? पत्थर से होती हो तो कंकड़ पीसे। चौंसठ पहरी, छोटी पीपर का दाना है, उसमें चौंसठ पहरी चरपराई अन्दर भरी है। प्राप्त की प्राप्ति है। है तो मिलती है। है, वह प्राप्त होती है। पत्थर से होता नहीं। पत्थर से होता हो तो कोयला पीस डाले। निकले उसमें से चौंसठ पहरी। अब यह तो सौ पैसे का एक रुपया हो गया न। पहले तो चौंसठ पैसे थे न ! चौंसठ पैसे अर्थात् सोलह आना। सोलह आना अर्थात् रुपया, रुपया अर्थात् पूर्ण। एक पीपर के इतने दाने में चौंसठ पहरी चरपराई और हरा रंग पूर्ण भरा है। उसकी उसे प्रतीति है।

यह भगवान आत्मा में पूर्ण आनन्द और पूर्ण केवलज्ञानस्वभाव पड़ा है। समझ में आया? कहते हैं कि एक बार स्वरूप की दृष्टि करके यदि दो घड़ी लीन हो जाये तो केवलज्ञान हो जाये। तीन काल-तीन लोक को देखने की पर्याय प्रगट हो जाये। **मोक्ष को प्राप्त हो।** परमानन्द की प्राप्ति पूर्ण हो जाये। **आत्मानुभव की ऐसी महिमा है, तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है;...** लो! भगवान चैतन्य की एकाग्रता से, जैसे पीपर के दाने को घिसने से चौंसठ पहरी चरपराई प्रगट होती है, बाह्य में व्यक्त होती है, शक्ति में से व्यक्त होती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर में शक्ति में केवलज्ञान सर्वज्ञपद और पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। वह शक्ति में एकाग्रतारूपी घिसावट से उसकी दशा में केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट होता है, ऐसी तेरी सामर्थ्य है। परन्तु उस सामर्थ्य की प्रतीति नहीं।

कहते हैं कि जब केवलज्ञान ऐसा एक क्षण में हो तो उसकी प्रतीति करना, अनुभव करना तो सुगम ही है, ऐसा कहते हैं। सोभागभाई! दियासलाई होती है न? दियासलाई। टोप होती है न? टोप। उसमें अग्नि भरी है या नहीं? दियासलाई कहते हैं न? भड़का हुआ। कहाँ से हुआ? घिसने से हुआ? घिसने से हुआ हो तो लकड़ी घिसे। इस ओर घिसे तो कुछ नहीं होता। उसमें अग्नि शक्तिरूप से पड़ी है। दियासलाई के लाल भाग में अग्नि शक्तिरूप पड़ी है। उसमें से प्रगट-व्यक्त होती है। है, वह प्राप्त होती है। इस ओर की दियासलाई की लकड़ी है, उसमें है? उसी प्रकार यह शरीर लकड़ी है, पुण्य-पाप भाव भी लकड़ी है। उसे घिसने से कोई आत्मज्ञान और केवलज्ञान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? अन्दर चैतन्य अग्नि विराजमान है। चैतन्य प्रकाशमय मूर्ति प्रभु है। उसके अन्दर में एकाग्र होकर शक्ति में से व्यक्तता केवलज्ञान पूर्णानन्द की (प्राप्ति) होती है। जिसे एक बार अनुभव करने से मिथ्यात्व का नाश होता है, यह बात तो सरल है, कहते हैं। समझ में आया?

आत्मानुभव की ऐसी महिमा है, तब मिथ्यात्व का नाश... भ्रमणा। मिथ्यात्व अर्थात् असत्यता। यह राग पुण्य मेरा है, इससे लाभ है, यह मिथ्यात्व है। शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ तो मुझे लाभ होगा, यह मिथ्यात्व असत्य पापदृष्टि-दुःखदृष्टि-

भ्रमदृष्टि है। पापदृष्टि है। शरीर की क्रिया से मुझे लाभ होगा, पुण्य परिणाम से मुझे धर्म होगा, अन्दर शान्ति मिलेगी, यह सब पापदृष्टि है। मार डाला आत्मा को। आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु का अनादर कर डाला। आहाहा! समझ में आया? इसलिए **मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है; इसलिए श्रीगुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है।** लो! कुन्दकुन्दाचार्य महाराज नग्न दिगम्बर मुनि, यह अमृतचन्द्राचार्य महाराज ... मुख्यता से यही उपदेश दिया (कि) तुझे करनेयोग्य हो तो भगवान! एक बार यह तो कर, यह कर। क्षणमात्र में केवलज्ञान प्राप्त करे, इतनी तेरी शक्ति। एक क्षणमात्र में भ्रम का नाश करने की शक्ति अनुभव में न हो, ऐसा कैसे बने? आहाहा! परन्तु इसे इसकी महत्ता नहीं लगती। क्या कहते हैं? किसे कहते हैं? यहाँ तो दिखता नहीं। परन्तु तू देखे तब न! है, उसे देखे बिना? समझ में आया? पूरा समुद्र है ऐसा, आहाहा! ऊपर ऐसे (पट्टी लगा दे)। पानी से भरपूर समुद्र है। मुझे दिखता नहीं। कहाँ से दिखाई दे? आड़ा पर्दा है न इतना थोड़ा। ऐसे चैतन्य समुद्र अन्दर आनन्दकन्द से भरपूर है। परन्तु पुण्य-पाप का राग और शरीर मेरा है, ऐसी आड़ में-मिथ्याभ्रम में भगवान भासित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुलभ है। वह तो तुझे मुख्य करने की वस्तु यह है। यह नहीं किया तो उसमें कुछ नहीं किया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट – इस प्रवचन शृंखला में गाथा २६ से ३० पर प्रवचन नहीं है।

गाथा - ३१

अथ निश्चयस्तुतिमाह। तत्र ज्ञेयज्ञायकसंकरदोषपरिहारेण तावत् –

जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।।31।।

य इन्द्रियाणि जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।
तं खलु जितेन्द्रियं ते भणन्ति ये निश्चिताः साधवः।।31।।

यः खलु निरवधिबन्धपर्यायवशेन प्रत्यस्तमितसमस्तस्वपरविभागानि निर्मलभेदाभ्यास-कौशलोपलब्धान्तःस्फुटातिसूक्ष्मचित्स्वभावावष्टम्भबलेन शरीरपरिणामापन्नानि द्रव्येन्द्रियाणि प्रतिविशिष्टस्वस्वविषयव्यवसायितया खण्डशः आकर्षति प्रतीयमानाखण्डैकचिच्छक्तितया भावेन्द्रियाणि ग्राह्यग्राहकलक्षण-सम्बन्धप्रत्यासत्तिवशेन सह सम्विदा परस्परमेकीभूतानिव चिच्छक्तेः स्वयमेवानु-भूयमानासङ्गतया भावेन्द्रियावगृह्यमाणान् स्पर्शादीनिन्द्रियार्थान्श्च सर्वथा स्वतः पृथक्करणेन विजित्योपरतसमस्तज्ञेयज्ञायकसंकरदोषत्वेनैकत्वे टंकोत्कीर्णं विश्वस्या-प्यस्योपरि तरता प्रत्यक्षो-द्योततया नित्यमेवान्तःप्रकाशमानेनानपायिना स्वतःसिद्धेन परमार्थसता भगवता ज्ञानस्वभावेन सर्वेभ्यो द्रव्यान्तरेभ्यः परमार्थतोऽतिरिक्तमात्मानं सञ्चेतयते स खलु जितेन्द्रियो जिन इत्येका निश्चयस्तुतिः।।31।।

अब, (तीर्थंकर-केवली की) निश्चय स्तुति कहते हैं। उसमें पहले ज्ञेय-ज्ञायक के संकरदोष का परिहार करके स्तुति करते हैं:-

कर इन्द्रियजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्म को।
निश्चयविषैं स्थित साधुजन, भाषैं जितेन्द्रिय उन्हीं को।।३१।।

गाथार्थ : [यः] जो [इन्द्रियाणि] इन्द्रियों को [जित्वा] जीतकर [ज्ञानस्व-भावाधिकं] ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक [आत्मानम्] आत्मा को [जानाति] जानते हैं [तं] उन्हें, [ये निश्चिताः साधवः] जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं [ते] वे, [खलु] वास्तव में [जितेन्द्रियं] जितेन्द्रिय [भणंति] कहते हैं।

टीका : (जो द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों को – तीनों को अपने से अलग करके समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न अपने आत्मा का अनुभव करते हैं, वे मुनि निश्चय से जितेन्द्रिय हैं।) अनादि अमर्यादरूप बंधपर्याय के वश जिसमें समस्त स्व–पर का विभाग अस्त हो गया है (अर्थात् जो आत्मा के साथ ऐसी एकमेक हो रही है कि भेद दिखाई नहीं देता), ऐसी शरीर परिणाम को प्राप्त द्रव्येन्द्रियों को तो निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त अन्तरङ्ग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से सर्वथा अपने से अलग किया; सो वह द्रव्येन्द्रियों को जीतना हुआ।

भिन्न–भिन्न अपने–अपने विषयों में व्यापारभाव से जो विषयों को खण्ड–खण्ड ग्रहण करती हैं (ज्ञान को खण्ड–खण्डरूप बतलाती हैं), ऐसी भावेन्द्रियों को, प्रतीति में आती हुई अखण्ड एक चैतन्यशक्ति के द्वारा सर्वथा अपने से भिन्न जाना, सो यह भावेन्द्रियों का जीतना हुआ।

ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले सम्बन्ध की निकटता के कारण जो अपने संवेदन (अनुभव) के साथ परस्पर एक जैसी हुई दिखायी देती है ऐसी, भावेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये हुवे, इन्द्रियों के विषयभूत स्पर्शादि पदार्थों को, अपनी चैतन्यशक्ति की स्वयमेव अनुभव में आनेवाली असंगता के द्वारा सर्वथा अपने से अलग किया; सो यह इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का जीतना हुआ।

इस प्रकार जो (मुनि) द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों को (तीनों को) जीतकर ज्ञेयज्ञायक–संकर नामक दोष आता था, सो सब दूर होने से एकत्व में टंकोत्कीर्ण और ज्ञानस्वभाव के द्वारा सर्व अन्य द्रव्यों से परमार्थ से भिन्न ऐसे अपने आत्मा का अनुभव करते हैं, वे निश्चय से जितेन्द्रिय जिन हैं। (ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है, इसलिए उसके द्वारा आत्मा सबसे अधिक, भिन्न ही है।) कैसा है वह ज्ञानस्वभाव? विश्व के (समस्त पदार्थों के) ऊपर तिरता हुआ (उन्हें जानता हुआ भी उनरूप न होता हुआ), प्रत्यक्ष उद्योतपने से सदा अन्तरङ्ग में प्रकाशमान, अविनश्वर, स्वत: सिद्ध और परमार्थरूप – ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है।

इस प्रकार एक निश्चयस्तुति तो यह हुई।

(ज्ञेय तो द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का और ज्ञायकस्वरूप स्वयं आत्मा का – दोनों का अनुभव, विषयों की आसक्ति से, एकसा होता था; जब भेदज्ञान से भिन्नत्व ज्ञात किया, तब वह ज्ञेयज्ञायक–संकरदोष दूर हुआ ऐसा यहाँ जानना।)

आसोज कृष्ण २, सोमवार, दिनांक - ३१-१०-१९६६
गाथा-३१, प्रवचन - ९०

आत्मा वह कहीं शरीर, पुण्य और उसके फल, वे कहीं आत्मा नहीं। प्रश्न करते हैं, उसमें से तीर्थंकर और केवली की स्तुति अब कहते हैं। शब्द तो यह है। तीर्थंकर और केवली की सच्ची स्तुति कहते हैं। पाठ ऐसा है। कहेंगे आत्मा की स्तुति। समझ में आया? है न ऊपर? '**निश्चयस्तुतिमाह**' निश्चयस्तुति कहेंगे, जब भगवान की निश्चयस्तुति कहेंगे। तीर्थंकर और केवलज्ञानी की सच्ची स्तुति कहेंगे। अब बात यह है और कहेंगे आत्मा की स्तुति की। समझ में आया? प्रश्न यह है कि सच्ची स्तुति भगवान आत्मा की, केवली की, तीर्थंकर की कहेंगे। उसके उत्तर में यह आत्मा की स्तुति कही है, उसका नाम तीर्थंकर और केवली की स्तुति है। समझ में आया?

उसमें पहले ज्ञेय-ज्ञायक के संकरदोष का परिहार करके स्तुति करते हैं :- उपोद्घात। पहले यह जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड और विषय, ये सब ज्ञेय हैं। जाननेयोग्य ज्ञेय हैं और आत्मा ज्ञायक है। दो का एकपने का सम्बन्ध माना है, वह अनादि का मिथ्यात्व अज्ञानदोष है। यह दो का ज्ञेय और ज्ञायक का भिन्नपना करना, उसका नाम आत्मा की स्तुति अथवा सच्चे तीर्थंकर की स्तुति कही जाती है। कहो, सेठी! प्रश्न यह है, हों! कि तीर्थंकर केवली की स्तुति (कहेंगे)। वापस ऐसा नहीं कि भगवान केवलज्ञानी हैं, भगवान अनन्त दर्शन-ज्ञान के धनी हैं, ऐसा नहीं लिया इसमें। आत्मा जो अखण्डानन्दस्वरूप है, उसमें अन्तर में स्तुति अर्थात् एकाग्र होना, उसका नाम तीर्थंकर और केवली की स्तुति कही जाती है। क्योंकि तीर्थंकर और केवली का आत्मा जो है, ऐसा यह आत्मा है। इस आत्मा की एकाग्रता, वह तीर्थंकर और केवली की स्तुति है। समझ में आया? कोई ऐसा कहे कि देखो, यहाँ पूछा है भगवान की स्तुति का और लगायी है आत्मा की। सुन न! यह ऐसा कहते हैं।

तीर्थंकर और केवली के आत्मा की स्तुति अर्थात् कि उनका आत्मा जो परिपूर्ण अखण्डानन्द है, ऐसा ही यह आत्मा है। ऐसे आत्मा को भावेन्द्रिय जो यह खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय है... यह कहेंगे। पाठ तो इतना है कि '**जो इंदिये जिणित्ता**' परन्तु इन्द्रिय में

यह खण्ड-खण्ड ज्ञान जो होता है पर को जानता हुआ, वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, भावेन्द्रिय भी वास्तव में ज्ञायकस्वरूप आत्मा नहीं। सूक्ष्म बात है। खण्ड-खण्ड जो भावेन्द्रिय द्वारा काम लेते हैं, वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, वह आत्मा नहीं, वह ज्ञायकभाव नहीं। वह तो ज्ञायकभाव में पररूप से ज्ञात हो ऐसी वह चीज़ है, भाई! आहाहा! ध्यान रखना यह स्तुति का वर्णन। स्तुति का अर्थ ऐसा है कि जैसा आत्मा है, वैसा उसमें एकाग्र होना, उसका नाम भगवान केवली की स्तुति है। उसका नाम आत्मा की स्तुति है। उसका नाम आत्मा जैसा है, वैसी एकाग्रतारूप सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया?

कहते हैं कि **पहले ज्ञेय-ज्ञायक के संकरदोष का परिहार करके...** ज्ञेय अर्थात् यह भावेन्द्रिय, यह शरीर द्रव्येन्द्रिय जड़-पाँच, जो शरीर परिणाम को प्राप्त द्रव्येन्द्रियाँ और शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श या साक्षात् तीन लोक के नाथ भगवान या भगवान की मूर्ति या भगवान की वाणी के शब्द—ये सब ज्ञायक में परवस्तु ज्ञेयरूप से हैं। यह ज्ञेय वह ज्ञायकभाव नहीं और ज्ञायकभाव, वह खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और वे परमेश्वर पर, ज्ञायकभाव उन पररूप नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि ज्ञेय-ज्ञायक, उसका संकर अर्थात् संयोग अर्थात् सम्बन्ध अथवा खिचड़ा। दोनों को एक गिनना। ज्ञायकभाव भगवान और खण्ड इन्द्रिय को एक गिनना। ज्ञायक भगवान आत्मा और जड़ इन्द्रिय शरीर परिणाम को प्राप्त, उन्हें एक मानना। और ज्ञायक आत्मा, देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री-कुटुम्ब सब परवस्तु या उनकी वाणी-पर, उसे आत्मा में—ज्ञायक में एक मानना, उसका नाम ज्ञेय-ज्ञायक संकर-खिचड़ा मिथ्यादृष्टि उसे कहा जाता है। समझ में आया? यह संकरदोष का परिहार करते हैं।

भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु, जो केवलज्ञान और तीर्थंकर का आत्मा, वैसा ही यह आत्मा। इसलिए भगवान केवली तीर्थंकर का स्तवन, वही आत्मा का स्तवन और आत्मा का स्तवन, वही तीर्थंकर और केवली आत्मा का स्तवन। समझ में आया? यह ३१ कहते हैं, लो।

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू॥३१॥

नीचे हरिगीत।

कर इन्द्रियजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्म को।
निश्चयविषैं स्थित साधुजन, भाषैं जितेन्द्रिय उन्हीं को॥३१॥

यह लोग, इन्द्रियाँ जीतो... इन्द्रियाँ जीतो—ऐसा कहते हैं न? विषयों को जीतो। आँख बन्द करो, विषय को जीतो, काम बन्द करो विषय को जीतो। यह विषय का जीतना ऐसा है ही नहीं। अब कान बन्द कर या आँख बन्द कर, वह तो जड़ है। उसमें बन्द तूने क्या किया? समझ में आया? अन्दर ज्ञान की वर्तमान दशा खण्ड-खण्डरूप से पर को जाने, ऐसे ज्ञान की खण्ड-खण्ड इन्द्रिय को बन्द कर और ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि कर। तब उसने इन्द्रिय को जीता, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? देखो!

जो मुनि... शब्दार्थ लो पहले। **अन्वयार्थ :- जो इन्द्रियों को...** है न? इन्द्रिय शब्द है। परन्तु अमृतचन्द्राचार्य ने एक 'इन्द्रिय' के तीन अर्थ किये। भावेन्द्रिय—इन्द्रिय का खण्ड-खण्डपना; यह जड़इन्द्रिय और इनके विषय, ये सब इन्द्रियों में जाते हैं। भगवान की वाणी और भगवान भी इन्द्रियों में जाते हैं। भाई! यह आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञायकभाव में वे आते नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर इन्द्रियाँ हैं वे सब। यहाँ तो इन्द्रियाँ हैं, ऐसा कहते हैं। इन्द्रिय के विषय इन्द्रिय, जड़इन्द्रिय इन्द्रिय; खण्ड इन्द्रिय इन्द्रिय। तीनों इन्द्रियाँ। आहाहा! अर्थात्? ये तीनों अणीन्द्रिय आत्मा नहीं, ऐसा। समझ में आया? अणीन्द्रिय आत्मा भगवान जो सम्यग्दर्शन का विषय कि जो खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय, उनसे अधिक अर्थात् भिन्न अर्थात् परिपूर्ण, उससे अधिक-भिन्न परिपूर्ण—ऐसा जो आत्मा, वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय भगवान आदि, वे सब इन्द्रियाँ हैं, उनसे अधिक-भिन्न है, उनसे अधिक (अर्थात्) भिन्न परिपूर्ण है, ऐसे आत्मा में एकाग्र होना, उसे आत्मा की स्तुति कहते हैं।

दूसरे प्रकार से कहें तो उसे जब तक खण्ड-खण्ड इन्द्रिय का बहुमान रहता है,

द्रव्येन्द्रिय का बहुमान रहता है और इन्द्रिय के विषय भगवान आदि तीर्थंकर या उनकी वाणी का बहुमान रहता है, तब तक इन्द्रिय के विषय वह जीता नहीं। गजब बात! ऐई! बाबूलालजी! वह कहते हैं कि सूक्ष्म बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा... देखो!

इन्द्रियों को जीतकर... अर्थात् कि जो भावेन्द्रिय—खण्ड इन्द्रिय भाव, क्षण-क्षण में खण्ड-खण्ड में जो बतलावे वह; शरीर और उसके विषय, वे सब इन्द्रियाँ हैं। उन्हें जीतकर अर्थात् कि उनसे विमुख होकर, अर्थात् कि उनसे भिन्न पड़कर, अर्थात् कि उनसे अधिक परिपूर्ण आत्मा को लक्ष्य में लेकर जो इन्द्रियों को जीते, उसने आत्मा की स्तुति अथवा भगवान की स्तुति की, ऐसा कहा जाता है। सोभागभाई! गजब बात, भाई!

ज्ञानस्वभाव के द्वारा... देखो! **इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव के द्वारा...** भगवान ज्ञानस्वरूपी चैतन्य प्रभु, उसके **द्वारा अन्यद्रव्य से अधिक...** अन्य द्रव्य शब्द से खण्ड इन्द्रिय, शरीर परिणाम प्राप्त द्रव्यइन्द्रिय और भगवान सर्वज्ञ, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और सम्मेदशिखर—इन सब अन्य द्रव्यों से। ये सब इन्द्रियों में जाते हैं।

मुमुक्षु : भगवान की वाणी भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की वाणी इन्द्रिय में जाती है। निश्चित करो। ऐई! राजेन्द्रजी! परद्रव्य है।

भगवान आत्मा अणीन्द्रिय, जिसमें द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय जिसमें एकरूप नहीं, एकरूप नहीं, अभिन्न नहीं; भिन्न है। तो भिन्न है, इतने सबको यहाँ ज्ञेय कहा गया है। ज्ञेय अर्थात् कि यह भगवान ज्ञायकस्वरूप और भावेन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड वह ज्ञेय—जाननेयोग्य है। आत्मा के ज्ञायकभाव में वह भावेन्द्रिय अभिन्न एक नहीं। आहाहा! इसी प्रकार यह शरीर परिणाम प्राप्त इन्द्रियाँ ज्ञायकभाव में एक नहीं। भिन्न है, ज्ञेय है। ऐसे भगवान और भगवान की वाणी, सम्मेदशिखर, शत्रुंजय और सिद्धगिरि वह आत्मा ज्ञायक और ये ज्ञेय हैं। यह ज्ञायक और ज्ञेय एक नहीं, भिन्न हैं। समझ में आया? अरे! गजब बात!

ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक... भगवान ज्ञानस्वभाव कहा है न पाठ में? ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, परिपूर्णस्वभाव, शुद्धस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, एकरूप

ज्ञानमूर्ति स्वभाव, उसके द्वारा। उसका आश्रय लेकर इन इन्द्रियों को **अधिक आत्मा को जानता है...** इन इन्द्रियों को जीतकर भिन्न पड़कर, जीतकर अर्थात् द्रव्येन्द्रिय, खण्ड इन्द्रिय और विषयों से भिन्न पड़कर अपने आत्मा के ज्ञानस्वभाव को, ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा को जानता है। ऐसा लिया। समझ में आया? खण्ड इन्द्रिय, द्रव्यइन्द्रिय और भगवान की वाणी और भगवान से जाने, उसने ज्ञानस्वभाव से आत्मा को जाना नहीं, भाई! समझ में आया? बाबूलालजी! भगवान की वाणी से आत्मा जाने, उसने आत्मा ज्ञानस्वभाव द्वारा जाना नहीं। आहाहा! ऐई! राजेन्द्रजी! क्या है? देखो, इसमें है हों, इसमें।

ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक... 'अधिकं' है न? **'ज्ञानस्वभावाधिकं'** इसका यह अर्थ है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से परिपूर्ण वस्तु, उसे विषय-खण्ड-खण्ड इन्द्रिय और जड़ इन्द्रिय, उनसे भिन्न, भिन्न जाने। क्या (-किसके) द्वारा जाने? ज्ञानस्वभाव द्वारा। खण्ड इन्द्रिय, भावइन्द्रिय अर्थात् खण्ड इन्द्रिय, द्रव्यइन्द्रिय और विषय शब्द, रूप, आदि। चाहे तो शुभ या अशुभ हो, चाहे तो भगवान का समवसरण या भगवान की प्रतिमा, वे सब इन्द्रियों में जाते हैं। इन्द्रिय के विषय इन्द्रिय में जाते हैं, वे अणीन्द्रिय आत्मा में नहीं आते। समझ में आया? ऐसे **आत्मा को जानता है...** आहाहा!

भगवान आत्मा को ज्ञानस्वभाव द्वारा भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और शब्द, रूप, रस आदि पर, उनसे ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा को भिन्न, पृथक्, परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव द्वारा जानता है। **उन्हें, जो निश्चयनय में स्थित साधु...** ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम कहते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। वे तो स्वयं निश्चय में स्थित हैं न। **जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं वे, वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं।** उसे जितेन्द्रिय कहते हैं। पाव सेर दूध पीता है और दो पूड़ी खाता है तो बहुत इन्द्रिय जीती। लोग ऐसा कहते हैं न? ओहो! भाई! इसका जीवन बहुत सादा, बहुत सादा। क्या है? दो पूड़ी और पाव सेर दूध। दूसरा कुछ नहीं। वह भी बकरी का दूध। गाय का नहीं।

मुमुक्षु : .... पचे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : न, पचे नहीं। यह तो कदाचित् सादापन से रहे। समझ में

आया ? तो भी कहते हैं, उसने इन्द्रियाँ जीती हैं, ऐसा हम भगवान, मुनि, सन्त कहते नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव की मूर्ति प्रभु। यह आत्मा स्वभाववान और यह ज्ञानस्वभाव। यह ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा को, ऐसी भाषा है न ? '**ज्ञानस्वभावाधिकं आत्मनम्**' साधन यह कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक्। अधिक अर्थात् पृथक्, भिन्न और परिपूर्ण ऐसा अर्थ हुआ। पर से पृथक् इसका अर्थ कि भिन्न, इसका अर्थ कि परिपूर्ण यहाँ। समझ में आया ? यह तो भगवान की स्तुति में (ऐसा कहा)। एक व्यक्ति कहे, लो, जहाँ व्यवहार स्तुति आवे भगवान की, वहाँ तुम आत्मा को डालते हो। परन्तु स्तुति ही उसे कहते हैं। यों ही स्तुति का शुभराग, भगवान का शुभराग, वह तो वास्तव में पुण्यबन्धन का कारण है। वह कहीं वास्तविक आत्मा की स्तुति नहीं। समझ में आया ?

जो निश्चयनय में... 'निश्चिताः साधवः' भगवान सन्त जो स्वरूप में स्थित हैं, ऐसे सन्त ऐसा कहते हैं कि जो कोई आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव द्वारा जड़ और भावेन्द्रिय और शब्द, रूप आदि से लक्ष्य छोड़कर, उनसे पृथक् पड़कर, उनसे भिन्न पड़ने से अधिकरूप होकर अपने स्वरूप को परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव द्वारा अन्तर में आत्मा को अनुभव करता है, जानता है, वेदता है, उसे जितेन्द्रिय कहा जाता है। सरल भाषा है, हों ! गुजराती बहुत कठिन भाषा नहीं। थोड़ी-थोड़ी समझ लेना। यहाँ तो सदा हिन्दी हो तो सदा ही हिन्दी चले। बेचारे इनको उतारना (रिकॉर्डिंग करना) है तो। नैरोबीवालों को गुजराती समझ में आती है। यह नैरोबीवालों की ओर से समयसार रिकॉर्डिंग होता है। पहले तो अपने रिकॉर्डिंग हो गया है एक बार। इन लोगों ने कुछ पैसे डाले हैं। समझ में आया ?

यह लो ! जीतना। भाई ! चलो अपने मुरमुरा खायें और पानी पी लें। लो, इन्द्रिय जीती कहलाये या नहीं ? स्त्री का विषय न लें इन्द्रिय द्वारा। तो वह इन्द्रिय जीती कहलाये या नहीं ? नहीं। क्यों ? वह इन्द्रिय जड़, उसका लक्ष्य करके कदाचित् तूने उसमें राग मन्द किया और वह क्रिया बाहर में न हुई, परन्तु वह तो सब परलक्ष्यी है।

स्वलक्ष्यी अतीन्द्रिय आनन्द के लक्ष्य से इन्द्रिय का जीतना हुआ नहीं। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक में दिगम्बर जैन साधु मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी गया। हजारों रानियाँ छोड़ी, अकेला रहा, दो-दो महीने के अपवास किये। तथापि वह जितेन्द्रिय नहीं। सेठी! है न नौवाँ ग्रैवेयक? 'मुनि व्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' समझ में आया? नजदीक आओ, नजदीक।

सत्पुरुष, ज्ञानी पुरुष, जितेन्द्रिय पुरुष, ऐसा न लेकर, निश्चय में स्थित सन्त उसे जितेन्द्रिय कहते हैं। दूसरे को जितेन्द्रिय कहते नहीं। पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म है, हों! यह अपने आप वाँचो तो इसमें बहुत समझ में आये, ऐसा नहीं। लगता है ऐसा? लो! यह चतुर मनुष्य कहे, हमको बराबर समझ में आता नहीं। तुम्हारा चौपड़ा समझ में आता है। ऐई! छोटाभाई!

अब टीका। देखो! टीका वह टीका है न, भाई! अमृत प्रवाहित किया है अमृत! अमृतचन्द्राचार्य, कोई भी गाथा उठाओ तुम। परिपूर्ण बात, पूरी अखण्ड बात। **(जो मुनि...)** कोई आत्मा, ऐसा लेना। यहाँ तो मुनि प्रधान कथन करनेवाले हैं न? जो कोई आत्मा **द्रव्येन्द्रियाँ...** यह शरीर परिणाम प्राप्त यह जड़-मिट्टी। **भावेन्द्रियाँ...** जो खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से खण्ड-खण्ड ज्ञान को बतलावे **तथा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों...** अच्छे शब्द या खोटे शब्द या रूप सुन्दर या भगवान का रूप, समवसरण का रूप या गधे का सड़ा हुआ रूप—यह सब इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ हैं। **इन तीनों को अपने से भिन्न करके...** इन तीनों को आत्मा अपने अर्थात् ज्ञायकस्वभाव द्वारा इन तीन को भिन्न करके **सर्व अन्यद्रव्यों से भिन्न...** यहाँ तो भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और दूसरे भगवान वाणी आदि सब, ये सब अन्य द्रव्य हैं। यह भावेन्द्रिय भी अन्य द्रव्य है। लो! समझ में आया? ज्ञान का क्षयोपशम भावेन्द्रिय अन्य द्रव्य है। भगवान! वह तेरी चीज़ नहीं। समझ में आया?

उन **अन्य द्रव्यों से भिन्न अपने आत्मा का अनुभव करते हैं,...** अपना आत्मा, ऐसा वापस। भगवान ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्य अधिक, खण्ड और पर से भिन्न। अधिक अर्थात् भिन्न-पृथक् और यहाँ इनसे भिन्न अर्थात् इससे परिपूर्ण। पर से भिन्न अर्थात् स्व

से परिपूर्ण। ऐसे आत्मा को अन्तरदृष्टि द्वारा अनुभव करते हैं, **वे मुनि निश्चय से जितेन्द्रिय हैं।** यहाँ सम्यग्दृष्टि से बात की है। बात भले मुनि की है। परन्तु मूल सम्यग्दृष्टि यहाँ से शुरु होता है। इस जितेन्द्रिय को सम्यग्दृष्टि कहते हैं और सम्यग्दृष्टि को जितेन्द्रिय कहते हैं। समझ में आया? इस प्रकार जितेन्द्रिय हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं और सम्यग्दृष्टि को जितेन्द्रिय कहते हैं।

अब द्रव्यइन्द्रिय की पहली बात करते हैं। पाठ तो यह है न '**निरवधि**'— अमर्यादरूप, ऐसा। फिर अनादि शब्द प्रयोग किया। '**निरवधि**' अनादि से अमर्याद जिसकी है। अनादि से। **बन्ध पर्याय के वश...** बन्ध कर्म के बन्ध और उसकी पर्याय के आधीन **जिसमें समस्त स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है...** स्व ज्ञायकस्वरूप भगवान और यह पाँच इन्द्रियाँ शरीर परिणाम-शरीर पर्यायरूप से परिणमित यह इन्द्रियाँ। शरीर की पर्याय है यह सब। यह मिट्टी शरीर, इसकी यह पर्यायें इन्द्रियाँ जड़। वह **स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है (अर्थात् जो आत्मा के साथ ऐसी एकमेक हो रही है कि भेद दिखाई नहीं देता)...** मानो कि यह जड़ परिणाम इन्द्रियाँ और आत्मा, मानों दोनों एक हो। क्योंकि उनका लक्ष्य करके मानो ज्ञान उनसे होता हो और वह है, इसलिए ज्ञान होता हो, ऐसे वे एक जैसी हुई दिखती है। समझ में आया?

स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है, अस्त हो गया है। सूर्य अस्त हो गया, ऐसा कहते हैं न? अस्त हो गया। भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य और जड़ शरीर, पर्याय प्राप्त इन्द्रियाँ, दो का मानो एकपना हो, इस प्रकार से स्व-पर की भिन्नता अस्त हो गयी होने से, एक हो रही होने से दोनों के बीच भेद दिखाई नहीं देता। क्योंकि शरीर... भाई! आँख हो तो ज्ञात हो। आँख हो तो ज्ञात हो। दोनों एक हो गये। परन्तु ज्ञान हो तो ज्ञात हो या आँख हो तो ज्ञात हो? जिसमें जिस सत्ता में ज्ञात होता है, वह तो चैतन्य सत्ता है। उसे जानना यह आँख की अस्ति से ज्ञात होता है? समझ में आया? परन्तु ऐसा इसे हो गया है कि यह आँख हो तो ज्ञात हो, कान हो तो सुनाई दे, कान हो तो सुनने का ज्ञान हो, कान हो तो सुनने का ज्ञान हो, नाक हो तो सूँघने का ज्ञान हो, स्पर्श हो तो स्पर्श का ज्ञान हो, रस हो तो यह गुड़ के स्वाद का ज्ञान जीभ हो तो हो। जीभ हो तो खट्टा-खारा

ज्ञात हो। ऐसे इन्द्रियाँ और आत्मा मानो अनादि से एक हो गये हों और दोनों की भिन्नता मानो अस्त हो गयी हो, अर्थात् कि दोनों भिन्न न दिखते हों। आहाहा! मिश्री हो और यदि जीभ छुआवे तो शीघ्र मीठे का ज्ञान होता है। जीभ द्वारा हुआ या नहीं? पहले क्यों नहीं हुआ था मिश्री नहीं थी तब? जीभ द्वारा हुआ, ऐसा एकमेक अज्ञानी को भासित होता है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! आँख द्वारा नहीं दिखता? आँख बन्द करके देख। कौन बन्द करे? परन्तु बन्द कौन करे? उघाड़े कौन? वह तो जड़ की दशा है। वह तो शरीर की पर्याय, वह तो मिट्टी की-जड़ की है। उसके कारण यह जानने का ज्ञान होता है? परन्तु उसे ऐसा होता है कि आँख फूट जाये तो... बस, अब मेरा अवयव टूट गया। मेरा अवयव टूटा। एक इन्द्रिय कम होने पर ऐसा हो गया कि हाय... हाय... अब अपने विकलांग हो गये। यह इन्द्रिय कहाँ तुझमें थी, वह फूटे? तेरा ज्ञान तो तुझमें है। आहाहा! कठिन भाई! फूला पड़े तो ऐसा हो जाये कि मेरी आँख में फूला पड़ा। फूला पड़ता है न? फूला क्या कहलाता है? फूला, मोतिया, वेल। वेल-वेल। वेल हो। भाई! मुझे आँख में वेल पड़ गयी है, हों! तुझे अर्थात् तू कौन? और वेल पड़ी वह कौन? समझ में आया?

यह द्रव्यइन्द्रिय मिट्टी के परिणाम शरीर के। यह स्पर्श हो तो ज्ञात हो। बिच्छू हो तो तुरन्त ऐसा कर ले। बिच्छू-बिच्छू डंक मारे न। अग्नि जैसा लगे। अग्नि... अग्नि। यह इन्द्रिय से ज्ञात हुआ या नहीं? समझ में आया? ऐसा मानते हैं। ऐसा है नहीं। द्रव्येन्द्रियाँ, वे शरीर के परिणाम को प्राप्त जो द्रव्येन्द्रियाँ, उन्हें और आत्मा को मानो एक हो, (ऐसा मानता है), उन्हें अब कैसे जीतना? यह तो क्रम बताते हैं, हों! कहीं द्रव्येन्द्रिय पहले जीती जाये और भावेन्द्रिय बाद में जीती जाये और विषय बाद में जीते जायें, ऐसा नहीं। यह तो समझाने में क्रम डालते हैं। समझने में क्रम नहीं। एकसाथ पर से भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करता है। समझ में आया?

भाई! कान न हो तो कहीं शब्द सुनाई दे? ज्ञान हो? शब्द का ज्ञान हो? इसलिए कान, वह मैं हूँ और वह है तो मुझे ज्ञान होता है। ऐसे जड़ और आत्मा को दो को किसी भी प्रकार से एकरूप मान रहा है। वह अजितेन्द्रिय है। फिर भले दाल-भात, रोटियाँ

खाता न हो, सादा खुराक पूड़ी और रोटी लेगा सब, जाओ। और एक पतली धोती। पहनावा नहीं। नग्न घूमे।

मुमुक्षु : सूखे पत्ते खाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सूखे पत्ते खाये। नीम के सूखे पत्ते। ऐसे फल होते हैं जंगल में। ऐसे फल अकेले खाये। गाँव में आवे नहीं, लो... परन्तु बात यह है कि यह जड़ इन्द्रिय की पर्यायों में यह जो निमित्त से काम होता है, वह काम मुझे मुझमें हुआ, उसके कारण हुआ, उसके कारण हुआ। ज्ञेय के कारण ज्ञान, ऐसा माननेवाले द्रव्येन्द्रिय को और आत्मा को एक मानते हैं। समझ में आया? यह जड़ इन्द्रिय ज्ञेय है। ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य। ज्ञान में पृथक् ज्ञात होनेयोग्य, ज्ञान में भिन्न ज्ञात होनेयोग्य। उसके बदले, इस ज्ञेय से मुझे ज्ञान होता है—ऐसा माननेवाला आत्मा को और शरीर की इन्द्रियों को एक मानता है। समझ में आया? गजब बात, भाई! यह स्तुति...यह आत्मा की व्याख्या है, हों! यह जीव में डाला है। कैसे जीव की एकता से जीव की स्तुति कहलाती है? ऐसा जीव ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण है, उसे बाह्य से अधिक—भिन्न करके स्वभाव में परिपूर्ण की एकता करता है, उसे जितेन्द्रिय कहा जाता है। आहाहा!

कहते हैं, **ऐसी शरीर परिणाम को प्राप्त...** परिणाम अर्थात् पर्याय। शरीर पर्याय है यह द्रव्येन्द्रिय। **जो द्रव्येन्द्रियों को तो...** अब ज्ञेय को जीतता है। किस प्रकार जीतने की पद्धति? **उसको तो निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता...** ऐसा कम खाना और ऐसा करना, ऐसा नहीं, कहते हैं। यह द्रव्येन्द्रिय को जीता, ऐसा नहीं। कान में डाले वह कीला डाले। सुनना नहीं। स्त्री-स्त्री का रूप देखना नहीं। आँखें बन्द कर दो। यह इन्द्रिय का जीतना नहीं, परन्तु (वह) सम्पूर्णतः इन्द्रियों से जीता गया है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **जो द्रव्येन्द्रिय...** जड़ शरीर—परिणाम को प्राप्त है—ज्ञेय। ज्ञायक का ज्ञेय। ज्ञायक का स्वज्ञेय ज्ञायक और उस ज्ञायक का परज्ञेय शरीरपर्याय प्राप्त इन्द्रियाँ। उन पर इन्द्रियों को निर्मल भेद अभ्यास। अन्तर में शरीर की पर्याय से भिन्न हूँ, ऐसा निर्मल भेद-अभ्यास—भिन्न करने की कला, भिन्न करने की टेव, भिन्न करने की आदत। उसकी प्रवीणता से, उसके समझण के चतुराई से प्राप्त। क्या? **अन्तरंग में प्रगट**

अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव... अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म, अतिसूक्ष्म-विकल्प से ग्राह्य न हो। राग से अनुभव में आ नहीं सके, ऐसा अतिसूक्ष्म भगवान चैतन्यस्वभाव। अतिसूक्ष्म चैतन्य ज्ञायकस्वभाव, **उसके अवलम्बन के बल से...** ज्ञायकस्वभाव के अवलम्बन के बल द्वारा द्रव्येन्द्रियों को भिन्न करने के अभ्यास के कारण **सर्वथा अपने से अलग किया;...** है न सर्वथा? अन्तिम शब्द सर्वथा है तो तीनों को लागू किया है। पहले में नहीं था। अन्तिम शब्द एक ही है सर्वथा। एक ही शब्द है। तीन नहीं। परन्तु अन्तिम मूल तो उसके साथ सम्बन्ध है न। तीनों को लागू पड़े। सर्वथा अन्त में है। अन्त में सर्वथा है, भाई! संस्कृत में। इसलिए तीनों को सर्वथा लागू पड़ता है। पहले में सर्वथा अर्थ नहीं था। पाठ में नहीं न। करते... करते... करते... करते... अन्तिम रहे '**भावेन्द्रियावगृह्यमाणान् स्पर्शादीनिन्द्रियार्थांश्च सर्वथा**' यह तीनों में सर्वथा लेना। अब इसमें एक विषय। संस्कृत में सर्वथा अन्त में है। तीनों में सर्वथा ले लेना।

क्या कहते हैं? विशिष्टता तो यह है कि निर्मल **भेदाभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त...** प्रवीणता से प्राप्त—भिन्न करने की प्रवीणता से प्राप्त ऐसा **अन्तरंग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से...** उसके ज्ञान के अवलम्बन के बल द्वारा द्रव्येन्द्रियों को **सर्वथा अपने से अलग किया;...** सर्वथा न रखो, कथंचित् करो, वरना अनेकान्त नहीं होगा। ऐई! जिनेन्द्रदेव में सर्वथा तो कहीं लागू पड़ता नहीं। अरे! सुन तो सही! **सर्वथा अपने से अलग किया;...** कथंचित् इन्द्रियाँ भिन्न और कथंचित् इन्द्रियाँ अभेद, इसका नाम अनेकान्त नहीं। समझ में आया? अनेकान्त को फुदड़ीवाद कर डाला। कथंचित् लगाओ... सर्वत्र कथंचित् लगाओ, वरना अनेकान्त नहीं होगा।

सर्वथा अपने से... भगवान आत्मा अपने सूक्ष्म प्रगट अति चैतन्यस्वभाव के बल द्वारा जड़ इन्द्रियों को भिन्न किया अर्थात्? भिन्न हो गयी। भिन्न किया कि लो यह भिन्न। ऐसा नहीं। परन्तु ऐसे अतिसूक्ष्म चैतन्य के बल द्वारा एकाग्र हुआ, वहाँ जड़ेन्द्रिय की पर्याय भिन्न रह गयी। जो मान्यता में एकत्व मान्यता थी कि यह है तो ज्ञान है, यह है तो जानपना होता है। यह है तो मेरा अस्तित्व है। इन्द्रियाँ फूट जाये तो ... स्पर्श में कोई ताकत न रहे, पक्षघात हो जाये तो शुष्क जड़ जैसा हो जाये। इसलिए मैं जड़ हो गया

अन्दर उसके कारण। ऐसी जो मान्यता थी, वह मान्यता पर की एकत्वबुद्धि में, (वह) पर से भिन्न पड़कर अतिसूक्ष्म चैतन्य के अवलम्बन द्वारा एकाग्र हुआ (और) अपने से भिन्न किया।

सूक्ष्म ज्ञायकस्वभाव, उससे जो द्रव्येन्द्रिय शरीरपरिणाम को प्राप्त ज्ञेय, जिन्हें यहाँ इन्द्रिय कहा, जिन्हें यहाँ ज्ञेय कहा, जिसे संकरदोष था कि ज्ञेय और आत्मा एक मानता था, उस संकरदोष का परिहार किया। समझ में आया ? लो, इसका नाम सम्यग्दर्शन। यह क्या है ? जितेन्द्रिय क्या लिखा है ? जितेन्द्रिय कहो या सम्यग्दृष्टि कहो या अणीन्द्रिय आत्मा को जाननेवाला और अनुभव करनेवाला कहो।

यह तो समयसार है, भाई! यह तो महान गम्भीर शास्त्र। गहरे... गहरे... गहरे... अभिप्राय से भरपूर है। समझ में आया ? बहुत थोड़े में कहना है न! इतने सब शब्दों में इतना अधिक कहने जाये तो पार कहाँ आवे ? ४१५ श्लोकों में पूरा आत्मा अनादि-अनन्त (बतलाया है)। भूल कैसे की, भूल कैसे तोड़े, साधक कैसे हो और सिद्ध कैसे हो ? पूरा नाटक। चार घण्टे में नाटक बताते हैं न ? यह ४१५ श्लोक में पूरा नाटक। यहाँ तो एक-एक श्लोक में बताते हैं। एक-एक गाथा है।

कहते हैं, तुझे तेरा स्वरूप प्राप्त करना हो तो अथवा तू है, वैसा होना हो तो अथवा तूने शरीर, इन्द्रिय और आत्मा को एक माना है, उसकी भूल मिटाना हो तो। दो माना है न ? तो **अन्तरंग में प्रगट अति सूक्ष्म...** भगवान अतिसूक्ष्म-अतिसूक्ष्म। पुण्य-पाप परिणाम भी अभी स्थूल है। पुण्य-पाप परिणाम भी अतिस्थूल है। पुण्य-पाप अधिकार में समयसार में आता है। स्थूल संक्लेश परिणाम और स्थूल विशुद्ध परिणाम। समयसार में पाठ आता है। पुण्य-पाप अधिकार। है न पुण्य-पाप अधिकार ? कितना है वह ? पुण्य-पाप है न ? कर्ता-कर्म के बाद पुण्य-पाप है। इतने में है कहीं देखो न! १५४-१५४ (गाथा)। यह रहा, देखो। वह पुस्तक अलग, देखो। **अत्यन्त स्थूल विशुद्ध परिणामरूप कर्म प्रवर्तते हैं...** अत्यन्त स्थूल संक्लेश परिणाम—कर्म निवृत्त हुए हैं। शुभभाव को भी अत्यन्त स्थूल कहा है। ऐसा पाठ है, हों! संस्कृत पाठ है। '**स्थूलतम-संक्लेशपरिणामकर्मतया प्रवृत्तमानस्थूलतमविशुद्धपरिणामकर्माणः**' ओहो! शुभ-

अशुभभाव। यहाँ तो अपने शुभ लेना है विशेष, शुभभाव भी स्थूल... स्थूल... स्थूल। भगवान आत्मा की पर्याय सूक्ष्म, द्रव्य अति सूक्ष्म। पूरा द्रव्य महा सूक्ष्म। ऐसे अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल द्वारा। लो! इसमें दूसरे अवलम्बन के बल द्वारा नहीं। राग की मन्दता के बल द्वारा इन्द्रियों को जीता जाता है या आत्मा की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं। निमित्त के अवलम्बन द्वारा आत्मा की इन्द्रियों को जीता जाये और आत्मा की प्राप्त हो, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसके बल द्वारा। अन्तर चैतन्य सूक्ष्म वस्तु स्वभाव के अन्तर बल द्वारा शरीर पर्यायरूप परिणमित यह मिट्टी-इन्द्रियाँ जड़... आहाहा! जिसे यहाँ भगवान ने ज्ञायकभाव का परज्ञेय कहा उसे। परज्ञेय, हों! स्वज्ञेय आत्मा। परज्ञेय (इन्द्रियाँ)। उसे अपने सूक्ष्म स्वभाव के बल द्वारा सर्वथा भिन्न किया। अर्थात् कि स्वभाव में एकत्व होना। अर्थात् भिन्न हुई, वह द्रव्येन्द्रियों का जीतना कहा जाता है। समझ में आया? लो, इसे जीतना (कहा जाता है), यह व्याख्या। उन्हें शिथिल कर देना खुराक कम करके, जीर्ण कर देना, यह कर देना, वह इन्द्रिय जीतना नहीं। वह तो जड़-मिट्टी है, उसमें पाना क्या? यहाँ जीर्ण हो तो क्या और आँख फूट जाये और ऐसा हो जाये, उसमें क्या?

मुमुक्षु : सूरदास ने आँख फोड़ डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूरदास ने आँख फोड़ डाली। आँख का क्या दोष है? अन्दर इन्द्रिय से... अन्दर जीत न। बाहर इन्द्रिय भले हो ऐसी की ऐसी। वह तो ज्ञेय परन्तु जड़ है। जड़ की पर्याय ऐसी की ऐसी रहे, उसमें जीतने में उसने क्या अवरोध किया है? उसने कुछ रोका नहीं। तू वहाँ रुककर (ऐसा मानता है कि) ऐ... इससे ज्ञात हुआ, इससे ज्ञात हुआ। वह इन्द्रिय से जीता गया है। समझ में आया? आँख बन्द करो, आँख बन्द करो। महिलाओं-स्त्रियों को देखना नहीं। नौ वाड़ से ब्रह्मचर्य पालना। ऐई! आँख कौन बन्द करे? भगवान! जड़ को बन्द करो अर्थात् जड़ को अटका दो, जड़ को।

यहाँ तो द्रव्येन्द्रिय से भिन्न पड़ना और आत्मा में एकत्व होना, वह इन्द्रिय का

जीतना है। आहाहा! समझ में आया? यह तो समयसार की कला है। ऐसी कला अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती। वे बाबा और योगी ऐसे होते हैं न। एक साधु को देखा था, पालेज में। बारह वर्ष से खड़ा था, ऐसा का ऐसा खड़ा-खड़ा। बारह वर्ष से खड़ा। हमारे पालेज में एक बार आया था। धर्मशाला में था। बाहर गये थे देखने। एक राख से ऐसे बाँधा हुआ पूरे दिन। थोड़ी देर खड़ा रहा और वापस हाथ डालकर पड़ा रहे। बैठे नहीं। बारह वर्ष से। लोग कहे कि ओहो होहो! क्या इसने इन्द्रियों को वश किया है! सेठी! यहाँ तो सब थोड़ा-थोड़ा नमूना छोटी उम्र में देख लिया है। कहा, अब जड़ है, उसमें क्या? खड़ा रहा उसमें क्या? खड़ा रहे या बैठे वह तो जड़ है। आत्मा के भान बिना ऐसे खड़ा रहे। फिर ऐसे नाचता था ऐसे। थोड़ा वस्त्र रखे, डोरी बाँधी हो। वस्त्र डालकर ऐसे (नाचे)। पूरे दिन बैठना और रात्रि में वापस ऐसे पड़ा। लोग कहे, आहाहा! अब यह वृक्ष खड़ा है, देखो न कितने वर्ष से! ऐ सेठी! यह नीम का वृक्ष कितने वर्ष से खड़ा है, लो। ऐसा का ऐसा बेचारा। वृक्ष, हों! वे पत्ते तो और ऐसे-ऐसे हों। इसे जरा ऐसा करे। ... उसमें इन्द्रिय जीतना क्या हुआ?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! शरीर की पर्याय, वह अजीव की दशा, उसे ज्ञानस्वभाव के अन्तर बल द्वारा भिन्न पाड़कर परिणमन भिन्न करना, उसके निमित्त के लक्ष्य को छोड़कर, स्वभाव के लक्ष्य से स्वभाव को पर से भिन्न करना, इसका नाम द्रव्येन्द्रिय शरीर को जीतना, ऐसा कहा जाता है। बाकी है, वह है। वह तो जो है, वह है, रही है। उनमें एकत्व होता था, वह है, वह है। ऐसा करे तो वह है और है। बीच में एकत्व मान्यता थी, उसे छोड़ी, (उसने) इन्द्रिय को जीता कहा जाता है। समझ में आया? कहो, प्रवीणभाई!

बाबा ॐ... ॐ... ॐ... करे। गये थे न वहाँ? ...में। अभी आये नहीं थे वे बेचारे? ...में चौबीस घण्टे धुन लगावे राम की। और तम्बाकू का बड़ा व्यापारी है। जैसा भगवानदास है न, वैसा एक बड़ा... उसका दामाद। ...भाई थे वे गुजर गये अभी, तब थे। सबको भोजन दिया था। पूरे संघ को। वैष्णव। तुम भोजन करना। भोजन करके पाँच सौ रुपये रखे। परन्तु नीचे धुन चलती थी। कहा, यह क्या चलता है? कहे, यहाँ

तो चौबीस घण्टे धुन। परन्तु किसकी? कूटते-कूटते भी राम... राम... राम... कूटे को क्या कहा जाता है? तम्बाकू।... एक लाख रुपये निकाले थे। एक महीने में अमुक धुन लगावे पचास हजार का खर्च। परन्तु किसकी धुन? भगवान! तू कहाँ घुस गया? किसकी वाणी की धुन? लकड़े की धुन? समझ में आया? भगवान को तो देखा नहीं और धुन लगायी किसकी?

चैतन्य भगवान अतिसूक्ष्म आनन्दकन्द प्रभु, उसे अन्तर में बल द्वारा राग, शरीर से भिन्न पड़े, उसे जितेन्द्रिय कहा। उसे जितेन्द्रिय, सन्त उसे जितेन्द्रिय कहते हैं। दूसरे को जितेन्द्रिय नहीं कहते। लोगों को तो बाहर का ऐसा लगे न, ओहो! एक रोटी और पानी दो खाता है। गृहस्थ व्यक्ति। एक बाजरे की रोटी। घी नहीं। सब्जी आदि नहीं। बहुत त्याग। पोपटभाई! बहुत त्याग समकित का। सच्ची तत्त्व की क्या श्रद्धा और तत्त्व क्या है, उसके भान बिना का यह त्याग, वह धर्म का त्याग है। सर्राफजी! आहाहा!

भगवान! ऐसे चैतन्य बादशाह अतिसूक्ष्म स्वभाव स्वरूप से पड़ा है या नहीं तू ऐसा? तो उसके अस्तित्व के अवलम्बन से, ऐसा कहते हैं। उसके अस्तित्व के ऊपर जो तेरी नजर थी। उसके अस्तित्व के अवलम्बन द्वारा उसे भिन्न कर। यह द्रव्येन्द्रिय ऐसी की ऐसी भले रहो, ऐसी की ऐसी हो। भगवान को नहीं रहती केवलज्ञान हुआ न? केवलज्ञान हुआ और द्रव्येन्द्रिय तो भगवान की ऐसी की ऐसी रहती है। चली जाती है इन्द्रिय? ... शरीर ऐसा का ऐसा रहता है। भले हो। यहाँ भी ऐसी की ऐसी इन्द्रिय रहे। भले हो। उससे चैतन्य अतिसूक्ष्म ज्ञान के बल द्वारा भिन्न करना, इसका नाम इन्द्रिय को जीतना कहा जाता है। कम खाये, ऐसे पीवे और ऐसे पड़े और सोवे नहीं। वह मनुष्य कहे, एक व्यक्ति तो एक ही आसन में सोता रहे, हों! कहो, राजेन्द्रजी!

यह द्रव्येन्द्रिय का जीतना हुआ, लो। है न? यह द्रव्य इन्द्रिय का जीतना हुआ। ऐसे स्वरूप को द्रव्येन्द्रिय जीती, ऐसा कहा जाता है। दूसरी विधि और दूसरे प्रकार से शरीर को जीता और द्रव्येन्द्रिय को जीता, ऐसी बात सच्ची है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! सम्यग्दृष्टि भिन्न पड़कर आत्मा को अनुभव करता है। भिन्न रहेगा। उस समय दूधपाक और लड्डू खाने की क्रिया दिखाई दे तो भी वह द्रव्येन्द्रिय को जीता

हुआ आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर खाने में दिक्कत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाता है कौन? वह भी कब खाता था पहले भी? यह तो जो क्रिया जड़ की जड़ में होती है, उसमें अधिकार मानता था कि उसके कारण से मैं और मेरे कारण से वह। शरीर कहीं अपने आप चले? मैं हूँ, प्रेरक हूँ, ऐसा मानता है। ऐसा जो मानता था, वह शरीर तो ऐसा का ऐसा था, क्रिया तो ऐसी की ऐसी थी। भिन्न पड़ने से आत्मा राग से, देह से, जड़ पर्याय से भिन्न पड़ा, तब वास्तव में तो राग से भी भिन्न पड़ गया। आहाहा!

ऐसे बहिर्लक्ष्यी जहाँ दृष्टि थी, शरीर पर्याय के ऊपर, तब तो राग की एकताबुद्धि सहित शरीर की पर्याय को एकरूप मानता था। वह शरीर पर्याय से अतिसूक्ष्म भिन्न चैतन्य मेरा तत्त्व है, ऐसा अन्तर के अवलम्बन में गया, तब शरीर की पर्याय से भिन्न पड़ा, राग से भी भिन्न पड़ा। तब उसने शरीर की इन्द्रियाँ जीती, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, वह तो देह की पर्याय, वह स्थिति होनेवाली नहीं थी। उसमें तूने क्या किया? भाई! शरीर से मैंने विषय सेवन नहीं किया। वह तो जड़ की पर्याय है। उस समय वह संयोगी अवस्था संयोग में होनेवाली नहीं थी। उसमें तूने क्या छोड़ा? तूने क्या छोड़ा? दूलेलालजी! यह बात अलग प्रकार की है।

मुमुक्षु : भिन्न होने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह सब बातें विपरीतता इतनी घुस गयी है बाहर की। यह बात ही बैठती नहीं। वीतराग पुकार करते हैं। भट का पुत्र परन्तु अन्दर आने देता नहीं बात। कुछ न कुछ दूसरा करे, दूसरा करे। यह हो... यह हो... धूल हो... साधु होकर, नाम धराकर जो ऐसा माने कि यह द्रव्येन्द्रिय की पर्याय, देखो! अपने अपवास किये, शरीर सूखाया, इतनी निर्जरा हुई। मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। शरीर की पर्याय में मन्द-तीव्र होना, वह तो जड़ की दशा है। उसे अपनी मानी। वहाँ मन्द पड़ा, तब निर्जरा हुई और तीव्र पुष्ट हो तो मुझे कर्म बँधा। वह शरीर की पर्याय को, आत्मा को एक माननेवाला

मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? इसमें तो बहुत अधिक कहना चाहते हैं। देखो न! कितना समाहित करते हैं आचार्य! आहाहा!

समयसार... समयसार... समयसार... 'समयसार' आया था न? कुछ गीत आया था न? समयसार-समयसार, नहीं था अपने उद्‌घाटन (के समय)। जय समयसार। यह उद्‌घाटन हुआ तब। समझ में आया? आत्मा का अस्तित्व अर्थात् कि... यहाँ तीनों की भिन्न-भिन्न बात करेंगे, हों! यह जड़ परिणाम हैं न शरीर, यह इन्द्रियाँ? इसलिए उसे अतिसूक्ष्म चैतन्य के अवलम्बन द्वारा, ऐसा लिया। यह स्थूल-स्थूल है, इसलिए उसे भिन्न करने में अतिसूक्ष्म चैतन्य के स्वभाव के अवलम्बन द्वारा अन्तर एकाग्र हुआ, तब उसने द्रव्येन्द्रिय का जीतना कहा जाता है। तब उसे समयग्दृष्टि कहा जाता है, तब उसे धर्म के पहले सोपान में चढ़ा, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? यह एक बोल। बोल कहेंगे तीन। पाठ में है इन्द्रिय। यह तो अमृतचन्द्राचार्य ही इसकी टीका इतनी स्पष्ट। दूसरे का तो माने नहीं। यहाँ तो इन्द्रिय का कहा है न? इन्द्रिय में और विषय कहाँ से आ गये? समझ में आया? विषय बाद में लेंगे। तीसरे (नम्बर में) पहले भाव लिया। यह जड़ लिया।

अब अन्दर ज्ञान की जो पर्याय भावेन्द्रिय के क्षयोपशमरूप से खण्ड-खण्ड दिखती है, उसे यहाँ इन्द्रिय कहा जाता है। वह इन्द्रिय और उस भावेन्द्रिय में खण्ड-खण्डपना, वह मेरा है—ऐसा माननेवाला उस ज्ञेय को ज्ञान मानता है। समझ में आया? जड़ एक ओर रहा यहाँ से। ज्ञान में उघाड़ का क्षयोपशम जो ऐसे अंश-अंश इन्द्रिय का काम करता है, वह वास्तव में ज्ञायक का ज्ञेय है। ज्ञायक का एकरूप नहीं। ज्ञायकस्वभाव का एकरूप नहीं। वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, अरूपी इन्द्रिय अन्दर में खण्ड-खण्ड वह जानने का कार्य करे, वह अखण्ड को चूकती है। इसलिए वह खण्ड-खण्ड ज्ञेय इन्द्रिय को अखण्ड ज्ञान द्वारा उसे भिन्न करके ज्ञेय को ज्ञेयरूप से करके ज्ञान को भिन्न करना, इसका नाम भाव इन्द्रिय को जीतना कहा जाता है। इसकी व्याख्या विशेष करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ३, मंगलवार, दिनांक - ०१-११-१९६६
गाथा-३१, प्रवचन - ९१

.... भेदज्ञान की प्रवीणता से प्राप्त। ऐसे दो हैं सामने-सामने। क्या कहा? सेठी! समझ में आया? क्या कहा? खबर नहीं। तुम कहो, कहते हैं।

यह तो अलौकिक बात है! समयसार अर्थात् यहाँ जीव अधिकार में जीव के गुण जो शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसे आत्मा के गुणों में एकाग्र होना, उसे यहाँ जीव स्वभाव कहा जाता है। जीव-अजीव अधिकार है न! समझ में आया? उसमें यह इन्द्रियाँ जो पाँच जड़ हैं, वे अजीव हैं, वे ज्ञेय हैं। वे पाँच इन्द्रियाँ इस शरीर पर्याय को प्राप्त हुई है। शरीर के परिणामरूप इन्द्रियाँ हैं वे। तब उन्हें जीतना कैसे कहा जाये? उनसे **निर्मल भेदाभ्यास की प्रवीणता...** उनसे भिन्न निर्मल, पृथक् करने की कुशलता से प्राप्त। क्या? **अन्तरंग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव...** अन्तर में प्रगट चैतन्य अतिसूक्ष्म भगवान आत्मस्वभाव, उसके अवलम्बन द्वारा अर्थात् उसमें एकाग्र होने से द्रव्येन्द्रियाँ पृथक् हो गयी, उसने द्रव्येन्द्रियों को जीता, ऐसा कहा जाता है। इसमें तो सादी भाषा है। इसमें कहीं बहुत (कठिन नहीं)। भाव भले सूक्ष्म हो, परन्तु भाव तो इसे समझना पड़ेंगे या नहीं? समझ में आया?

दो वस्तुएँ। एक इन्द्रियाँ, एक ओर अतीन्द्रिय आत्मा। अब यहाँ अतीन्द्रिय आत्मा के अन्तरबल द्वारा इन्द्रियों को जीतना, इसका नाम जिन, इसका नाम सम्यग्दृष्टि, इसका नाम वास्तविक भगवान के गुणों का स्तवन, इसका नाम वास्तविक अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा, उसमें एकाग्र-सावधान हो, यह उसकी स्तुति। समझ में आया? कहते हैं कि **अतिसूक्ष्म...** जैसा यह शरीर परिणाम अत्यन्त स्थूल है। भगवान आत्मा अन्तर अतिसूक्ष्म प्रगट चैतन्यस्वभाव है। ज्ञानमूर्ति चैतन्यस्वभाव। उसके अवलम्बन द्वारा, उसके आश्रय द्वारा, **बल से सर्वथा...** अपने से भिन्न किया। कल ही आया था कि वीतरागमार्ग में सर्वथा नहीं होता। यहाँ तो (कहते हैं), सर्वथा भिन्न किया।

सिद्ध पूर्ण और सदा स्वतन्त्र, ऐसा नहीं होता, ऐसा (वे) कहते हैं। सिद्ध पूर्ण और सदा स्वतन्त्र (कहने पर उसमें) एकान्त मिथ्यात्व होता है। उसमें अनेकान्त आता नहीं। कहो, वजुभाई! यहाँ कहते हैं कि सिद्ध भगवान पूर्ण स्वतन्त्र और सुखी हैं और स्वतन्त्र हैं। जरा भी अपूर्णता और परतन्त्रता नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। यहाँ भी भगवान आत्मा अतिसूक्ष्म, उसके अन्तरंग के बल द्वारा अर्थात् अन्तर्मुख होकर स्व के लक्ष्य में जड़ की शरीरप्राप्त इन्द्रियाँ, उनका लक्ष्य छूटने से अन्तर के अतिसूक्ष्म चैतन्य को प्रगटरूप से अवलम्बन करने से वे भिन्न पड़ गयी। आत्मा के ज्ञान में उन देह की इन्द्रियों का परिणमन, उसका अभाव हो गया। परिणमन तो था जड़ में, परन्तु चैतन्य के लक्ष्य से अवलम्बन करने से शरीर परिणाम का परिणमन स्वभाव में निमित्तरूप से भी रहा नहीं। उसने द्रव्येन्द्रियों को जीता, उसने अणीन्द्रिय आत्मा को प्राप्त किया, उसने भगवान की स्तुति की। कहो, राजेन्द्रजी! गजब यह स्तुति का वर्णन! **सर्वथा अपने से भिन्न किया...** ऐसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ५०-५० प्रतिशत रखो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ५०-५० प्रतिशत, कहो, पण्डितजी! ५०-५० प्रतिशत रखो। पण्डितजी बैठ गये एक ओर, अब वे सब मारे गप्पे उल्टे-सुल्टे। क्या करे परन्तु न करे तब। इतनी बात आयी परन्तु अरे! प्रभु! क्या कहते हैं?

परमात्मा सिद्ध प्रभु पूर्णानन्द की प्राप्ति, जिसमें प्रभुत्व नाम का तो गुण है। उस प्रभुत्व नाम के गुण के कारण से... वह प्रभुत्वगुण है न? जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व। सातवाँ गुण है। देखो! उसमें सातवाँ। देखो! यहाँ कहा उसके ऊपर जरा लेना है न। स्वतन्त्र के ऊपर। देखो! स्वतन्त्र स्वतन्त्र। आहाहा! क्या कहे? वह तो सब व्याख्या आ गयी है। अभी अलग प्रकार की आयेगी।

देखो! सातवाँ बोल है—सातवाँ गुण। भगवान आत्मा में एक गुण ऐसा है, भगवान परमेश्वर ने ऐसा गुण आत्मा में देखा है और है, कि जिस गुण का गुण, जिस गुण का गुण, जिस गुण का कार्य। यहाँ गुण का गुण अर्थात् गुण का कार्य। क्या है? **जिसका प्रताप अखण्डित है...** देखो! **किसी से खण्डित नहीं की जा सकती, ऐसे**

स्वातन्त्र्य से (स्वाधीनता से) शोभायमानपना जिसका लक्षण है, ऐसी प्रभुत्वशक्ति। भगवान आत्मा में विराजमान अनादि-अनन्त है।

मुमुक्षु : शालीत्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह शोभायमान है। शालीत्व अर्थात् शोभायमान। समझ में आया? स्वतन्त्रता से शोभायमान, ऐसा कहना है। समझ में आया? '**अखण्डितप्रताप-स्वातन्त्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः**' सम्यग्दृष्टि भी आत्मा को ऐसा जानता-मानता है कि मैं एक प्रभुत्व नाम के गुण से भरपूर हूँ। इसलिए प्रभुत्वगुण के कारण से मेरे प्रताप को कोई खण्ड कर सके, ऐसा है नहीं। मैं अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्रता से शोभायमान भगवान मैं आत्मा हूँ। ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा को मानते हुए ऐसे प्रभुत्व गुणवाला मानता है। है या नहीं? बाबूलालजी! यह क्या हुई गड़बड़ इतनी? क्या कहते हैं? देखो! कितनी स्पष्ट बात की है! '**अखण्डितप्रतापस्वातन्त्र्यशालित्वलक्षणा**' अब उसे कहना कि कथंचित् स्वतन्त्र और कथंचित् परतन्त्र। ऐई! भीखाभाई! है? कहाँ? वाँचो जरा।

मुमुक्षु : जिसका प्रताप अखण्डित है, किसी से खण्डित नहीं किया जा सकता....

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर, अब आ गया। दिक्कत नहीं।

यह प्रभुत्व नाम के गुण का सामर्थ्य ऐसा है कि, प्रभुत्व नाम के एक गुण का सामर्थ्य ऐसा है कि जिससे सब गुणों का सामर्थ्य ऐसा है कि... यहाँ तो भाई! वह गति और स्थिति सब। समझ में आया? जितने आत्मा में गति होने की योग्यता, स्थिर होने की योग्यता, श्रद्धा आदि के गुण है, उन सब गुणों में प्रभुत्वगुण, विभु अर्थात् व्यापक है। समझ में आया? इस प्रभुत्व के पश्चात ही विभुत्व लिया है। भगवान आत्मा में अनन्त गुण में एक प्रभुत्व नाम का गुण है, कि जिसका प्रताप अखण्ड है। जिसके प्रताप को कोई खण्ड कर सके, ऐसी जगत में कोई चीज़ नहीं। और जिसकी स्वतन्त्रता से शालीत्व अर्थात् शोभायमानपना है। उस प्रभुत्व गुण का स्वतन्त्ररूप से शोभायमानपना जिसका लक्षण और स्वरूप है। उसके कारण से आत्मा के अनन्त गुण अखण्ड प्रतापरूप से शोभित और स्वतन्त्ररूप से अखण्ड प्रतापरूप रहे हुए और स्वतन्त्ररूप से शोभित

ऐसे अनन्त गुण हैं। उनकी अनन्त पर्यायें ऐसी हैं। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

जिसका गुण है स्वतन्त्ररूप से शोभित अखण्ड प्रताप, ऐसा आत्मा का गुण है। उस गुण का धारक आत्मा है। ऐसे आत्मा की दृष्टि होने से उस प्रभुत्व नाम के गुण का पर्याय में भी परिणमन हुआ। सेठी! न्याय से समझना, न्याय से। प्रभुत्व नाम के गुण का धारक भगवान आत्मा है। उस प्रभुत्वगुण का कारण धारक अखण्ड प्रताप और स्वतन्त्र से शोभायमान गुण है। ऐसे गुण को धारक द्रव्य, ऐसे द्रव्य की दृष्टि होने से उस द्रव्य में जितने गुण हैं, उनकी सब पर्यायों में यह स्वतन्त्ररूप से शोभायमान ऐसा जो प्रभुगुण द्रव्य में है, गुण में है। द्रव्य के ऊपर दृष्टि होने से पर्याय में उसका व्यापकपना हो गया। आहाहा! प्रभुत्वरूप से पर्याय में अखण्ड प्रतापरूप से स्वतन्त्रता से शोभायमान है, ऐसी पर्याय का परिणमन स्वतन्त्र द्रव्य के आश्रय से इस प्रकार से हो गया। सेठी! अरे! भगवान! क्या करता है यह? ऐसी इतनी सब बात! प्रभु! सिद्ध को भी अभी पूर्ण स्वतन्त्र और सदा स्वतन्त्र मानो तो एकान्त मिथ्यात्व है। कोई पूछनेवाला, कोई कहनेवाला (नहीं)। ऐसी बात प्रभु! तुझे शोभे, बापू! ऐसे जैनदर्शन में ऐसा? देखो तो सही!

एक सम्यग्दृष्टि भगवान आत्मा में रहा हुआ एक गुण और उस गुण में विभुपना है। अनन्त गुण में वह व्यापक हो गया है। इसलिए उस प्रभुत्व नाम के गुण को परमेश्वर नाम का गुण भगवान आत्मा का, उसे धरनेवाला द्रव्य है, वह द्रव्य अर्थात् आत्मवस्तु, उसकी दृष्टि होने से, उस प्रभुत्वगुण की पर्याय में परिणमना हो गया। अनादि द्रव्य-गुण में था, परन्तु दृष्टि द्रव्य की नहीं थी, इसलिए पर्याय में प्रभुत्वगुण का स्वतन्त्र अखण्ड प्रतापरूप से शोभायमानपना पर्याय में नहीं था, वह प्रगट हो गया। आहाहा! समझ में आया? जहाँ तक राग, विकल्प, एक अंश दृष्टि थी, आत्मा का अंश व्यक्त जो ज्ञान अंश, दर्शन अंश, वीर्य अंश आदि उसके ऊपर दृष्टि थी और राग के ऊपर दृष्टि थी, वहाँ तक वह पराधीन खण्ड-खण्डरूप से परिणमता था। वह भी स्वतन्त्ररूप से। कोई उसे परिणमाता था, ऐसा नहीं। समझ में आया?

परन्तु जब भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें प्रभुत्व नाम का गुण पसर रहा है। असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण में प्रभुत्व

पसर रहा है। प्रभुत्व पसर रहा है। पामरता अब रही नहीं। समझ में आया? उस प्रभुत्व नाम के गुण का धारक गुणी ऐसा भगवान आत्मा, उस गुणी को श्रद्धा-अनुभव में, प्रतीति में लेने से प्रभुत्वगुण पर्याय में पसर गया। पर्याय में प्रगट होकर पसरा तो अखण्ड प्रताप, मेरी पर्याय का अखण्ड प्रताप और स्वतन्त्रता से शोभायमान मेरी पर्याय है। आहाहा! ऐसे तो सम्यग्दृष्टि पहले होते ही मानता है। अब सिद्ध का तो क्या कहना? विजयमूर्ति! आहाहा!

कहते है, यहाँ देखो! **शरीर परिणाम को प्राप्त...** उस प्राप्त के ऊपर दो शब्द लिये हैं। यहाँ '**शरीरपरिणामापन्नानि**' और यहाँ '**उपलब्धान्तः**' है। '**अभ्यासकौशलोप-लब्धान्तः**' पण्डितजी! ऐसे '**आपन्नानि**' है, ऐसे '**उपलब्धान्तः**' दोनों प्राप्त हैं, दोनों अर्थ। ऐसे शरीर परिणाम को प्राप्त। एक। तब भगवान आत्मा। देखो! **अन्तरंग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से...** समझ में आया? भेद अभ्यास की प्रवीणता से प्राप्त। प्राप्त अर्थात् उपलब्ध। ऐसे शरीर परिणाम को प्राप्त है, यहाँ भगवान भेदज्ञान के अभ्यास से प्राप्त हैं। अमृतचन्द्राचार्य ऐसे गुलाँट खाकर बात दो-दो करते हैं। उसमें आत्मा में प्रभुत्व नाम का गुण पड़ा हुआ है। अतिसूक्ष्म प्रगट भगवान परमात्मा स्वयं है। उसमें एक प्रभुत्व नाम का स्वतन्त्र अखण्ड प्रताप से शोभायमान ऐसा गुण है। इसलिए उसके गुण का आलम्बन गुणी का लेने से उसकी पर्याय में प्रगट प्रभुता के अखण्ड प्रताप से शोभायमान पर्याय का परिणमन होता है। उसकी पामरता रहती नहीं। खण्ड-खण्ड का आश्रय रहता नहीं। उसकी स्वतन्त्रता में अपूर्णता उसे रहती नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान भी इसे बैठता नहीं। मैं परमेश्वर...? मैं परमेश्वर...? बापू! तू तो अनन्त-अनन्त परमेश्वर। समझ में आया? आहाहा!

सर्वथा अपने से अलग किया;... हों! सर्वथा शब्द है, हों! प्रत्येक को। पीछे शब्द सर्वथा है न। संस्कृतवाले जाने पण्डितजी। सर्वथा अलग है, वह तीनों को लागू पड़ता है। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और ग्राह्य-ग्राहक लक्षण... ऐसा ही होता है न! समझ में आया? आहाहा! थोड़ा उससे भिन्न कर... थोड़ा उससे भिन्न कर, ऐसा होगा? ५० प्रतिशत भिन्न और ५० प्रतिशत मिलावट। भेळसेळ को हिन्दी में क्या कहते हैं? मिलावट। ५० प्रतिशत मिलावट द्रव्येन्द्रिय के साथ। ५० प्रतिशत भिन्न। राजेन्द्रजी!

ऐसा होता नहीं लो, भाई! छोटे पण्डित कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : माल में मिलावट....

पूज्य गुरुदेवश्री : माल में मिलावट करते हैं। आहाहा! देखो तो सही, एक शब्द है।

अब यह द्रव्येन्द्रिय का जीतना हुआ। यहाँ बात क्रम से करेंगे। परन्तु है एक समय में तीनों ही। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, विषयों का लक्ष्य छूटने से यहाँ आत्मा का अवलम्बन होने से एकाग्र होता है, उसे आत्मा की स्तुति अथवा उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। पाठ समझाने में तो क्रम पड़े न! कहीं पहले यह द्रव्येन्द्रिय अलग पड़े और बाद में भावेन्द्रिय (अलग पड़े), ऐसा कहीं अन्दर नहीं। वह तो समझाने की पद्धति है। समझ में आया?

अब भावेन्द्रिय। यह विषय तो कल आया था। उसे तो जरा... अब इस प्रकार से आया। अब उसमें खण्ड और अखण्ड मिलाते हैं। उसमें (द्रव्येन्द्रिय में) ऐसे शरीर परिणाम को प्राप्त, तब भेदज्ञान की प्रवीणता से भगवान प्राप्त—ऐसा द्रव्येन्द्रिय में लिया। अब भावेन्द्रिय। यह द्रव्य इन्द्रिय अर्थात् शरीर परिणाम को प्राप्त। इनसे अतिसूक्ष्म चैतन्य स्वभाव के अवलम्बन से सर्वथा भिन्न करके आत्मा को प्राप्त किया।

भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयों में व्यापारभाव से जो विषयों को खण्ड-खण्ड ग्रहण करती है... यह पहला शब्द। '**आकर्षन्ति**' शब्द है न भाई! संस्कृत में ऐसा है। '**आकर्षन्ति**' अर्थात् ग्रहण करता है। जानता है। **खण्ड-खण्डरूप बतलाती हैं...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह। भिन्न क्या कहते हैं? ध्यान रखकर (समझना)। अपने तो यहाँ अभी तो गुजराती है। कहीं बहत ऐसा पड़े—ऐसा नहीं। और गुजराती भी सादी है। वह कहीं अब उसमें ऐसा कुछ नहीं। ध्यान रखे वह पकड़ में आये, ऐसा है।

भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयों में... भावेन्द्रिय, खण्ड-खण्ड इन्द्रिय। ज्ञान के क्षयोपशमवाला अंश। वह खण्ड-खण्डरूप से अपने को प्रसिद्ध करता है। खण्ड-खण्डरूप से बतलाता है। किसे? **अपने-अपने विषयों में व्यापारभाव से जो विषयों**

को... अर्थात् शब्द, रूप, रस, गन्ध आदि पदार्थ को **खण्ड-खण्ड ग्रहण करती हैं (ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप बतलाती हैं)...** एक अंश अंशरूप से खण्ड-खण्डरूप से बतलाता है। ऐसी जो भावेन्द्रिय वह वास्तव में आत्मा के ज्ञायक का विषय ज्ञेय है। यहाँ संकरदोष का निषेध करना है न? ज्ञेयज्ञायक संकरदोष का परिहार। इसलिए पहला द्रव्येन्द्रिय ज्ञेय, भगवान आत्मा ज्ञायक। उसके अवलम्बन द्वारा संकर अर्थात् दो का एकपना—खिचड़ा माना था, उसके दोष का परिहार हुआ।

दूसरा यह भावेन्द्रिय। ज्ञान का वर्तमान अंश खण्ड-खण्ड विषय को बतलावे अथवा ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप से बतलावे, ऐसा जो ज्ञान का भावेन्द्रिय का विषय, भावेन्द्रिय का अंश, वह ज्ञायकस्वभाव का ज्ञेय है। उस ज्ञेय और ज्ञायक की संकरता अर्थात् एकता मानी है, एकता मानी है, वह भगवान के गुण के स्तवन से उल्टी स्तुति ज्ञेय की स्तुति है। खण्ड-खण्ड की स्तुति है। समझ में आया? आहाहा! कितनी टीका वह कहीं टीका! एक-एक शब्द में कितना भर देते हैं! ऐसी टीका और उसके वाच्य के पीछे कितनी गम्भीरता उसमें! गजब बात है। अमृतचन्द्राचार्य का क्षयोपशम, अनुभव, चारित्र स्थिरता, उनकी दशा। आहाहा! चलते परमेश्वर! चलते... भिन्न, हों! परन्तु वह भिन्न। जब यह टीका होती होगी और उस ज्ञान का उपयोग काम करता होगा न... आहाहा!

भाई! एक-एक ज्ञान का खण्ड भावेन्द्रिय, उसके-उसके विषय को, भिन्न-भिन्न विषयों को एक-एक इन्द्रिय उसके भी ज्ञान को खण्ड-खण्ड भागरूप से, अंशरूप से बतलाती है। ऐसी भावेन्द्रियों को **ऐसी भावेन्द्रियों को, प्रतीति में आती हुई अखण्ड...** उसके सामने यह शब्द है। सामने वह खण्ड है, तब यह अखण्ड है। **प्रतीति में आती हुई अखण्ड...** भगवान आत्मा अखण्ड प्रतीति में आता है, ऐसा कहते हैं। देखो तो सही! यहाँ अखण्ड है। खण्ड खण्ड के सामने अखण्ड है। खण्ड खण्ड, वह ज्ञेय में जाता है; अखण्ड, वह ज्ञायक है। ऐसा अखण्ड भगवान ज्ञायक की दृष्टि होने पर। किस प्रकार? कि **प्रतीति में आती हुई अखण्ड एक चैतन्यशक्तिपने के द्वारा...** अखण्ड एक चैतन्य। फिर भाषा यह है। अखण्ड और एक। दो शब्द प्रयोग किये हैं। अखण्ड-अखण्ड प्रतीति में आते हुए, अखण्ड एक चैतन्य। समझ में आया? यहाँ है न अपने, देखो न!

जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से... श्रीमद् का वाक्य है कौने में। दो शब्द विशेषण प्रयोग किये हैं। उस कौने में एकदम कौने में। ***जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है।*** यह चार लाईन है, इतना चौका। यह उस फूल के उस ओर। है? भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु नहीं ज्ञात होता। यह तो कच्ची आँख है। यह तो मुझे खबर है। उस ओर। वह श्रीमद् के चाँदी के दो पुस्तक रखी न? उसके उस ओर कौने में देखो। ***जीव एक अखण्ड।*** दो शब्द प्रयोग किये हैं। यहाँ यह दो शब्द हुए। ***जीव एक अखण्ड, सम्पूर्ण... सम्पूर्ण द्रव्य होने से।*** वस्तु एक सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान गुण स्वभाव सामर्थ्य अखण्ड है। पूर्ण-सम्पूर्ण है। और सम्पूर्ण वीतराग हो, जो रागरहित सम्पूर्ण हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है। सम्पूर्ण हो, ऐसा क्यों कहा? पहले सम्यग्दर्शन में सर्वज्ञ हूँ—ऐसी प्रतीति हुई। परन्तु सर्वज्ञ पर्याय सम्पूर्ण वीतराग हो, तब सर्वज्ञ पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? श्रीमद् के वाक्य में बहुत-बहुत भरा है, हों! बहुत क्षयोपशम था बहुत। उनकी तो बहुत शक्ति। परन्तु छोटी उम्र में देह छूट गया। पाँच वर्ष (और) होते तो खलबलाहट हो जाती। होवे कहाँ से परन्तु जगत का भाग्य नहीं न!

कहते हैं, **प्रतीति में आती हुई अखण्ड एक...** भाषा यहाँ है। वहाँ एक अखण्ड, ऐसा शब्द है। **प्रतीति में आती हुई...** यह आत्मा प्रतीति में, श्रद्धा में, भरोसा में आने पर। यह प्रतीति लक्षण सम्यग्दर्शन का यहाँ वर्णन किया है। **प्रतीति में आती हुई अखण्ड एक...** अखण्ड एक। अखण्ड और एक चैतन्यस्वभाव, एक चैतन्यशक्ति, एक चैतन्य-सामर्थ्य, चैतन्य-सामर्थ्य। शक्ति कहो या सामर्थ्य कहो। **के द्वारा...** वहाँ ऐसा कहा है, देखो! एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है। यहाँ भी चैतन्यशक्ति सम्पूर्ण है। अखण्ड एक चैतन्यशक्ति सम्पूर्ण भगवान आत्मा है। आहाहा!

उस **द्वारा...** भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड जो ज्ञात होता हुआ ज्ञान, उसे अन्तर में प्रतीति में लेने से अखण्ड एक चैतन्यशक्तिपने द्वारा वह भिन्न हो गयी। सर्वथा भिन्न हो गयी। कोई खण्ड इन्द्रिय थोड़ी इकट्ठी रखी हो और थोड़े अखण्ड का ज्ञान, ऐसा यहाँ

नहीं कहा। आहाहा! ऐसे सर्वथा शब्द तो बहुत प्रयोग किये हैं, भाई ने—राजमलजी ने। बहुत प्रयोग किये हैं। सर्वथा... सर्वथा... यह रहे।... हो? क्षायिक सम्यक्त्व हो (तब) सर्वथा सम्यग्दर्शन स्पष्ट है। और जरा कुछ मिथ्यात्व और जरा कुछ क्षायिक सम्यक्त्व, ऐसा होता होगा? आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य अखण्ड प्रतीति में आते हुए एक अखण्ड चैतन्यशक्ति अर्थात् सामर्थ्य, उसे प्रतीति में लेने से, उस द्वारा भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड को अखण्ड के अवलम्बन से खण्ड-खण्ड भिन्न पड़ गयी। वह ज्ञेय और ज्ञायक एक मानते थे, उस ज्ञेय ज्ञायक के संकरदोष का परिहार हुआ। समझ में आया? आहाहा! तुम तो गुजराती बहुत जानते हो।

मुमुक्षु : श्रीमद् का उत्तराधिकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे? सबका उत्तराधिकार सबके पास। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **अखण्ड एक चैतन्यशक्ति के द्वारा सर्वथा अपने से भिन्न जाना...** पोताथी अर्थात् अपने से, हों! ऐसा लेना। हिन्दी में अपने से। पोताथी अर्थात् अपने आत्मा से वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय का लक्ष्य छोड़कर अखण्ड प्रतीति में आने पर चैतन्यशक्ति का अवलम्बन करने से, वे भिन्न पड़ गयी। भिन्न पड़ गयी। आश्रय रहा नहीं, एकत्व रहता नहीं। समझ में आया? इसका नाम आत्मा की स्तुति, स्तवन और सम्यग्दर्शन कहा जाता है। उसने केवली के गुण गाये। है या नहीं? सेठी! क्या आया? कहो, समझ में आया? यह होशियार व्यक्ति है। कहाँ आया? परन्तु यह उसके सामने पाठ रखा है, उसका कारण यह कि किस शब्द का (अर्थ होता है, खबर पड़े)।

किसी ने कल लिखा है, हों! यह भाई ने लिखा है। धन्यकुमार। वह धन्य सेठ नहीं आये? कटनी के। उन्होंने लिखा है। ये लोग बराबर पुस्तक सामने रखते हैं और उस शब्द का क्या अर्थ, उसे आलस्य न हो, नींद न आवे, इसके लिये सामने पुस्तक रखकर अर्थ करते हैं। ऐसा लिखा है। जैन सन्देश में। कटनीवाले आये थे न? जगमोहनलालजी और वे दो। उन्होंने बहुत लिखा है यहाँ का। वहाँ पुस्तक सामने रखे, इसलिए उसका ध्यान रहे और इसलिए उसे आलस्य न आवे, ऐसा उन्होंने लिखा है,

हों! तुम्हारी ओर से उन्होंने ऐसा लिखा है। तुम ऐसे न रखो और सुनने में ध्यान रखते हो और यहाँ ध्यान नहीं रखते। कहो, समझ में आया? बहुत बात लिखी है। पहले से लिखा है। यह और दूसरा लिखा। अभी बाकी है कुछ। दूसरा बाकी है। ... बाकी है। ...क्रमशः।...सामने परस्पर एक ओर पुरुषवर्ग दूसरी ओर महिलावर्ग बैठने की व्यवस्था है। वहाँ भी सोनगढ़... राजकोट की बात है। सोनगढ़ की तरह स्वाध्याय की प्रवृत्ति है। जितने श्रोता हैं, उन सबके पास एक-एक पुस्तक रहती है। पुस्तक सामने रखकर ही सब लोग व्याख्यान सुनते हैं। यह पद्धति बहुत बड़ा लाभ है। लोग पुस्तक में साथ-साथ पढ़ते जाते हैं और उससे ... बढ़ती है और आलस नहीं आते हैं। यदि ध्यान रखे तो। कहो, समझ में आया?

यह भावेन्द्रिय का जीतना हुआ। द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय का जीतना एक साथ ही है। वह तो जैसे शरीर परिणाम की व्याख्या की तो अतिसूक्ष्म चैतन्य के अवलम्बन को प्राप्त कहा। यहाँ भावेन्द्रिय का कहा तो अखण्ड चैतन्य की प्रतीति का प्राप्त कहा। समझ में आया? अब तीसरा बोल रहा **ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले सम्बन्ध...** शब्द। विशिष्टता तो देखो। पाठ में '**इंदिये जिणित्ता**' है। अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा कहाँ से निकाला? ऐसी टीका? इन्द्रिय का जीतना कहा है वहाँ तो, और तुम कहो भगवान की वाणी और सब शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, वे सब ग्राह्य-ज्ञात होनेयोग्य और आत्मा जाननेवाला। वह परवस्तु शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, ग्राह्य-ज्ञात होनेयोग्य, आत्मा जाननेवाला। ऐसे **ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले...** देखो! यह इन्द्रिय में से निकाला है इन्होंने। **सम्बन्ध की निकटता...** सम्बन्ध की निकटता। ज्ञात होनेयोग्य शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, यह पुस्तक, पृष्ठ, भगवान, वाणी आदि सब। वह ज्ञात होनेयोग्य और ग्राहक—जाननेवाला आत्मा, ऐसे लक्षणवाले सम्बन्ध की निकटता के कारण। बहुत निकटता है न। यह ज्ञात होनेयोग्य और जाननेवाला, ज्ञात होनेयोग्य और जाननेवाला, प्रमेय और प्रमाण, ऐसा। ऐसी निकटता के कारण **जो अपने संवेदन (ज्ञान) के साथ परस्पर एक जैसी हुई दिखायी देती है...** शब्द और शब्द का ज्ञान मानो एक हो गया हो, मानो शब्द से ज्ञान उपजता हो, मानो मूर्ति देखने से शुभभाव होता हो, उस ज्ञेय से मानो यहाँ पर्याय प्रगट होती हो। समझ में आया?

इस प्रकार **जो अपने संवेदन (ज्ञान) के साथ...** भाषा कितनी समाहित कर दी है! ग्राह्य में जितने आत्मा के ज्ञान के अतिरिक्त पदार्थ शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वे सब इन्द्रियों के विषयरूप से उन्हें इन्द्रिय गिनकर, उन्हें ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ—ज्ञेय गिनकर ज्ञान—ज्ञायक भिन्न है, इन ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ से मानो ज्ञान होता हो और ज्ञान इनको अवलम्बन करे तो ही ज्ञान होता हो, ऐसा ग्राह्य ग्राहक का एकपना जैसा अज्ञानी को दिखता है।

ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले सम्बन्ध की निकटता के कारण... दूसरी भाषा में कहें तो ज्ञेय और ज्ञायक मानो निकट सम्बन्ध के कारण **जो अपने संवेदन (ज्ञान) के साथ परस्पर एक जैसी हुई...** हो। मानो कि शब्द का ही ज्ञान हो, मानो कि रूप का ही ज्ञान हो, मानो कि वह है तो यह ज्ञान हो। ऐसे परस्पर एक जैसे हो गये, हों! हुए नहीं। परन्तु मान्यता में इसे ऐसा हो गया है कि यह शब्द है तो ज्ञान हुआ, रूप है तो ज्ञान हुआ, भगवान की वाणी से ज्ञान हुआ। भगवान है, समवसरण है तो यहाँ ज्ञान हुआ। समवसरण ज्ञेय है या नहीं? समवसरण भी ज्ञेय है। आहाहा!

वे **परस्पर एक जैसी हुई दिखायी देती है...** शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अशुभ या शुभ। समझ में आया? यह पुस्तक-पृष्ठ यह पुस्तक भी वास्तव में तो ग्राह्य-ज्ञेय है। यह पुस्तक भी ग्राह्य है। ग्राहक भगवान आत्मा है। परन्तु मानो ग्राह्य और ग्राहक और ज्ञेय और ज्ञान एक हो गये हों। एक काल में ज्ञान उसे निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न होता, तो मानो उसके कारण से हुआ वे दोनों एक हों, उस ज्ञेय से ज्ञान भिन्न न हो, ऐसा अनादि से अज्ञान में विपरीत (अर्थात्) ज्ञेय को अपनेरूप भासित होता है। समझ में आया?

ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले... कितना समाहित किया है! एक फिर टीका (आलोचना) की थी किसी ने। लो! यह तो कहते हैं कि भगवान की वाणी, वह भी विषय कहा जाता है। इन्द्रिय का विषय। यह क्या कहते हैं यहाँ? ऐई! अरे! भगवान! यहाँ ग्राह्य अर्थात् वाणी हो या साक्षात् भगवान हो, वह सब ज्ञेय है, परज्ञेय है। वे इन्द्रिय के विषय हैं। उन्हें तो यहाँ इन्द्रिय कहा है। आहाहा! जगत को तत्त्व के पास जाना ऐसा कठिन पड़ा उसे। बाहर से भटका भटक... भटका भटक (करता है)। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की वाणी हो, समवसरण हो, तीर्थंकर का मन्दिर हो, वे सब तीर्थंकर स्वयं इन्द्रिय का विषय है। ऐई ...लालजी! और उस समय ज्ञान में मानो यह ज्ञात होता है (तो) यह सब एक है, ज्ञेय और ज्ञायक एक है, ऐसा जानने से मिथ्यादृष्टिपना होता है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले... ज्ञात होनेयोग्य और जाननेवाला भगवान दो के सम्बन्ध की समीपता के कारण, दो के सम्बन्ध की निकटता, नजदीकता है, ऐसा ही ज्ञान उस समय। इसलिए मानो कि उस ज्ञेय से ज्ञान हुआ, शब्द से ज्ञान हुआ। भगवान की वाणी खिरी तो यहाँ ज्ञान हुआ, भगवान को देखा, इसलिए इनका ज्ञान हुआ। यह सब भ्रम अज्ञानी का है, कहते हैं। आहाहा! ऐई! मलूकचन्दभाई! क्या करना यह? अभी तो मन्दिर बनाना है तुम्हारे। यहाँ तो कहते हैं, मन्दिर ज्ञेय है।

मुमुक्षु : तो नहीं बनायें?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं बनाये। कौन बनाता था, वह नहीं बनाये? बना सकता है तो नहीं बनाये? अटक जाये। क्या अटका सकता है? जो वस्तु उसकी अवस्था होनेवाली है, उसे रोक सकता है?

यहाँ तो यही कहते हैं। शब्द ज्ञेय, आत्मा ज्ञान। दोनों के निकट सम्बन्ध के कारण ज्ञेय-ज्ञायक का संकरदोष लगा है। संकर अर्थात् खिचड़ा हो गया है। आहाहा! भाई! वीतरागमार्ग, बापू! ऐसा कोई अलौकिक है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। वीतराग ने कहा है, इसलिए है (-ऐसा नहीं)। वह तो वस्तु ऐसी है। इसे खबर नहीं होती, इसलिए सुनी न हो तो कहीं चीज़ दूसरी हो जाये?

यहाँ तो कहते हैं कि शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। भगवान की प्रतिमा (या) तीर्थंकर साक्षात् विराजमान हो तो भी इन्द्रिय के विषय हैं, वे ज्ञेय हैं और आत्मा ज्ञायक है। परन्तु मानो ज्ञेय है, इसलिए ज्ञान हुआ, ऐसे ज्ञेय और ज्ञायक की निकटता के सम्बन्ध के कारण दो की एकता मानी है, उसका नाम भगवान, मिथ्यादृष्टि भ्रान्ति कहते हैं। समझ में आया? उसने इन्द्रियों को जीता नहीं, ऐसा कहते हैं। लो, यह और आया कहाँ से इन्द्रियों को जीतना? भगवान दिखाई दे ऐसे ज्ञान में, वे ज्ञेय और यह ज्ञान। वह

ज्ञेय है, इसलिए यहाँ ज्ञान हुआ, उसने इन्द्रिय जीती नहीं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं। यह तो कहते हैं।

ग्राह्यग्राहकलक्षणवाले सम्बन्ध की निकटता के कारण जो अपने संवेदन (अनुभव) के साथ परस्पर एक जैसी... परस्पर, हों! ज्ञेय और ज्ञान तथा ज्ञान और ज्ञेय। मानो **एक जैसी हुई दिखायी देती है ऐसी, भावेन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये हुवे,...** देखो! भगवान को भी भावेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये हुए। **इन्द्रियों के विषयभूत स्पर्शादि पदार्थों को,...** अब उन्हें जीतने की बात करते हैं। **अपनी चैतन्यशक्ति की स्वयमेव अनुभव में आनेवाली असंगता...** यहाँ असंग के ऊपर जोर है। वह संग, यह असंग। परसंग एव। कल आया था। परसंग एव। तुम खोटा अर्थ करते हो। वहाँ गुना में चर्चा हुई। परसंग है न। वहाँ चर्चा हुई राजेन्द्र के साथ। राजकुमार क्या कहलाता है? राजेन्द्र। उन लोगों की ओर से कहे कि परसंग एव। पर का संग किया है, इसलिए विकार होता है। ऐसा नहीं, खोटा अर्थ करते हो। पर के कारण से विकार होता है, ऐसा अर्थ है। विकार तुझसे होता है, ऐसा नहीं। नहीं, पर के कारण से विकार होता है। और व्याप्ति लाये राजेन्द्रजी। दूसरे के पास। वह कहे, देखो! उदय हो तो विकार होता है। ऐसा लाओ कि विकार हुआ हो और उदय न हो। परन्तु इसका अर्थ क्या? विकार हो, तब विकार करे तो सामने निमित्त होता है। और उदय होने पर भी विकार न करे तो वह विकार नहीं होता। आहाहा! यह कहेंगे, ३२ में कहेंगे। ३२ में लेंगे। उसमें भी उल्टा अर्थ करते हैं। उसका उल्टा अर्थ ही उसमें से खोटा पड़ता है। ३२वीं गाथा में। पहले आया था उसका पत्रिका में। अरे! भगवान! क्या करता है यह?

परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर का विरह पड़ा, भरतक्षेत्र में साक्षात् केवलज्ञानी का विरह पड़ा और कोई अवधि और मन:पर्ययज्ञानी आदि साक्षात् बात करके बतावे कि जिससे इसे भरोसा आवे, उनका विरह पड़ गया। इसलिए जगत के जीव अपनी कल्पना से वीतराग के मार्ग को माने और कल्पे तो बहुत विराधक हो। भाई! यह कहीं अकेला हाँके... यह तो तीन काल के ज्ञानी परमात्मा विराजते हैं। अनन्त केवली विराजते हैं,

लाखों केवली विराजते हैं महाविदेह में। चार ज्ञान के धनी गणधर आदि विराजते हैं, तीन ज्ञान के धनी विराजते हैं, तीन ज्ञान के धनी इन्द्र आदि विराजते हैं। वे कहीं तेरे घर का अकेला करने जाये तो नहीं होगा। मुश्किल पड़ेगी। समझ में आया? आहाहा!

इन्द्रियों के विषयभूत स्पर्शादि... आहाहा! स्पर्श, रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, वे **पदार्थों को, अपनी चैतन्यशक्ति की...** भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव के सामर्थ्यवाला तत्त्व। इसे **स्वयमेव अनुभव में आनेवाली...** देखो! वह परसंग से आता था। यह तो **स्वयमेव अनुभव में आनेवाली...** स्वयमेव अनुभव में आता हुआ, राग और पर की अपेक्षा बिना अनुभव में आता हुआ, ऐसा कहते हैं। **अपनी चैतन्यशक्ति की स्वयमेव अनुभव में आनेवाली असंगता...** भगवान आत्मा यह पाँच इन्द्रिय के विषय शुभ या अशुभ, उनकी ओर का लक्ष्य छोड़कर भगवान आत्मा स्वयमेव अपने से चैतन्यपना जिसके अनुभव में आता हुआ ऐसा चैतन्य का असंगपना **के द्वारा सर्वथा अपने से अलग किया;...** उस द्वारा भगवान की वाणी को, भगवान को भी आत्मा के ज्ञान से भिन्न किया। आहाहा! भगवान को भिन्न किया? इस भगवान के साथ उन भगवान को भिन्न किया। आहाहा! समझ में आया? भगवान ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने देखना छोड़कर तेरे सन्मुख देखकर एकाग्र हो, वह भगवान की स्तुति है। ऐई! विजयमूर्तिजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहते हैं कि सामने देखने के बाद हो, वह बात वस्तु में है नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एक बार तो देखने दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एक बार कब का एक बार? कब का एक बार?

मुमुक्षु : जब करे तब एक बार।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो हो गया एक बार का कुछ मेल नहीं रहा।

यहाँ तो कहते हैं, भाई! देखो! क्या कहते हैं? इन्द्रियों के विषय वे शब्द, यह पुस्तक, भगवान की मूर्ति, सब इन्द्रिय के विषय है। यह सम्मेदशिखर, शत्रुंजय और

गिरनार। साक्षात् तीर्थंकर इन्द्रिय का विषय (कहा), फिर प्रश्न कहाँ? जब तक ऐसे इन्द्रिय के विषय को लक्ष्य में लेकर यह है, वह यहाँ ज्ञान होता है। ज्ञायक का ज्ञेय भिन्न है, ऐसा नहीं जानता। परन्तु यह ज्ञेय है, वह ज्ञान होता है, ऐसे ज्ञेय और ज्ञायक को एकरूप मानता है, उसका नाम इन्द्रिय से जीता गया, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। वह इन्द्रिय से जीता गया कहो, भावेन्द्रिय से जीता गया कहो, पर से जीता गया कहो, ज्ञेय से जीता गया कहो, ज्ञायक भिन्न रहा नहीं। आहाहा! गजब कथनी। **'इंदिये जिणित्ता'** अमृतचन्द्राचार्य ने यदि ऐसी टीका नहीं की होती तो इतना स्पष्टीकरण समझ में नहीं आता। आहाहा! पाठ में तो **'इंदिये जिणित्ता'** (इतना है)। यह इन्द्रियाँ जिसने जीती और अतीन्द्रिय आत्मा का अनुभव दृष्टि की, उसे धर्म कहा जाता है। उसने भगवान की सच्ची स्तुति की। बाकी लय तानकर भगवान के (गीत) गाये और उसमें हो राग शुभ हो और उसमें धर्म माने तो मिथ्यादृष्टि है। सेठी! बहुत ... नहीं आया।

इन्द्रियों के विषयभूत... यहाँ कितने विषय? यह स्त्री, पुत्र, फलाना, वह यहाँ नहीं। यहाँ तो पूरे इन्द्रिय के विषय सर्व। आहाहा! शास्त्र इन्द्रिय का विषय।

मुमुक्षु : सुनना वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनना वह इन्द्रिय का विषय, भगवान को देखना इन्द्रिय का विषय। कहो।

मुमुक्षु : मन में विचार आवे वह भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन का विकल्प ऐसा करना, वह इन्द्रिय का विषय।

मुमुक्षु : अकेला रह सके?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला ही है। रह सके क्या? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे परस्पर एक हो गये जैसे भावेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाते हुए। देखो न! भावइन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाते हैं न यह तो, कहते हैं। ऐसे जो इन्द्रिय के विषयभूत स्पर्शादि पदार्थ उनको। उनकी अस्ति रखी। अपनी चैतन्य शक्ति के स्वयमेव अनुभव में आता हुआ... भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव के सामर्थ्य से भरपूर भगवान

स्वयमेव अनुभव में आता हुआ। अर्थात् क्या कहते हैं? कि निमित्त का सुना, इसलिए अनुभव में आता हुआ, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पहले सुनना तो पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न यह।

मुमुक्षु : .... लक्ष्य छोड़े ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य छोड़ा अर्थात् समाप्त हो गया। उसके कारण से नहीं हुआ। स्वयमेव अनुभव में आता हुआ। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्तर्मुख झुकने से, अन्तर्मुख झुकने से बहिर्मुख के आश्रय और अवलम्बन का ज्ञान भी कहाँ रहा? बहिर्मुख वस्तु तो लक्ष्य में नहीं रही परन्तु उसके (अवलम्बन से) हुआ जो ज्ञान, वह भी लक्ष्य में कहाँ रहा? क्या कहा? बहिर्मुख के भगवान आदि और बहिर्लक्ष्यवाला जो लक्ष्य है, वह तो नहीं रहा, परन्तु परलक्ष्य से कुछ राग की मन्दता, क्षयोपशम ज्ञान, वह भी लक्ष्य में नहीं रहा। ऐसा अखण्ड भगवान असंग चैतन्य प्रभु, उसका अन्तर में अवलम्बन लेने से जो सम्यग्दर्शन होता है, उसने केवली भगवान के गुणग्राम कहे, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह केवली के गुणग्राम, पूछा है ऐसा कि भगवान तीर्थंकर और केवली की स्तुति कैसे होती है? तब कहा कि यह आत्मा द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और उनके विषयों की ओर से हटकर अखण्ड चैतन्य के अवलम्बन में एकाग्र हो, तब उसने केवली के गुणग्राम कहे, किये कहलाते हैं। वापस दोष निकाले कि लो! तुमने भगवान की स्तुति की बात की, वहाँ और आत्मा कहाँ डाला? परन्तु यह भगवान यही आत्मा भगवान है। सुन न! केवली की स्तुति वह तो पर, वह तो शुभराग है। वह कहाँ धर्म था? समझ में आया? आहाहा!

एक व्यक्ति कहता था कि लो, केवली भगवान की स्तुति में कहाँ राग आया? वहाँ कहाँ राग आया? परन्तु वह राग ही स्वयं है। भगवान के सामने देखा और गुणगान गाये, वहाँ शुभराग ही है। और उसमें मुझे धर्म होता है। मिथ्यादृष्टि का धर्म होता है। धर्म अर्थात् स्वभाव मिथ्यात्वपने का प्रगट होता है। बहुत कठिन। ...लालजी! ऐसा भारी कठिन। यह सब बेचारे करते होंगे। कौन करता है वह करते होंगे। करता है कब?

सुन तो सही! वह तो शुभभाव हो तब वह हो। होवे तो उसका अभाव करके दृष्टि करे, तब उसको व्यवहार कहने में आता है। बाकी कैसा व्यवहार-फ्यवहार? आहाहा! समझ में आया? कितनी टीका! एक '**इंदिये जिणित्ता**' की ऐसी टीका है।

उसके द्वारा सर्वथा अपने से अलग किया; भाई! कथंचित् तो भगवान को साथ रखो इसमें। भगवान की वाणी को तो आत्मा के साथ कुछ तो रखो? कथंचित् एक और कथंचित् भिन्न। कैसे होगा? भीखाभाई! ऐसा है? कहते हैं, असंग भगवान आत्मा चिदानन्द ज्योति पड़ी है अन्दर। जिसे राग का संग नहीं, उसे विषय के संग की तो बात किसकी करना? विषय अर्थात् कि यह बाह्य पदार्थ। बाह्य पदार्थ। ऐसे बाह्य पदार्थ से भिन्न भगवान आत्मा अन्तर असंग चैतन्य स्वयमेव अनुभव में आनेयोग्य, उस द्वारा विषय अर्थात् बाह्य पदार्थ को अन्तर पदार्थ के अवलम्बन द्वारा भिन्न किया। उनका आश्रय रहा नहीं, उनका लक्ष्य रहा नहीं, उनका सम्बन्ध रहा नहीं। यहाँ लक्ष्य आत्मा का, आश्रय आत्मा का, सम्बन्ध आत्मा का। आहाहा! कथन वह कथन परन्तु। यह तो अभी पंचम काल के मुनि। अभी ९०० वर्ष पहले हुए। यह पंचम काल के जीव को भगवान की सच्ची स्तुति कैसे हो, उसकी व्याख्या करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

अपने से भिन्न किया... भगवान को अपने से भिन्न किया? वाणी को? समयसार को? शत्रुंजय को? सम्मेदशिखर को? कहते हैं कि साक्षात् भगवान विराजते हों और तेरी नजर ऐसी की ऐसी रहा करे तो वह ज्ञेय है और तू ज्ञान है। उसमें एकाकार हो गयी बुद्धि, वह मिथ्यात्व है। वह ज्ञेय है, इसलिए यहाँ ज्ञान होता है और यह ज्ञान होता है, इसलिए ज्ञेय का उसे आश्रय है, ऐसी ज्ञेय-ज्ञायक की एकपने की बुद्धि, वह मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो समवसरण में बैठा हो तो भी। और सातवें नरक में रहा हुआ हो सम्यग्दृष्टि, उसे परद्रव्य के संग से भिन्न असंग चैतन्य की अनुभव दृष्टि होने पर उसे भगवान आत्मा और भगवान का समवसरण आदि भी आत्मा से भिन्न जिसने जाने हैं। आहाहा! समझ में आया?

शब्द, रूप। रूप में भगवान की मूर्ति और वह। शब्द में वाणी, रस, गन्ध, स्पर्श। बहुत भक्ति हो न, तब ऐसी भक्ति हुई कि ओहोहो! एक व्यक्ति कहे, तीर्थंकरगोत्र बँधेगा। बहुत भक्ति आवे तो ॐ... ॐ... किया करे न? एक है न एक व्यक्ति वह सूरत में?

नहीं एक कोई ... चीमन-चीमन। वह आया था। वह ओ... किया करे। वे कहे, आहाहा! यह धुन लगावे। कहे, आहाहा! तीर्थंकरगोत्र बाँधेगा। कहा, तेतर गोत्र बाँधेगा, सुन न अब। तेरी दृष्टि ही राग के ऊपर और पर के ऊपर पड़ी है। दृटि तो मिथ्यात्व है। तीर्थंकरगोत्र कहाँ से बाँधता था? दृष्टि में राग का तो आदर है। भगवान का आदर है नहीं। ऐसे के ऐसे अन्दर में जैन में... जाओ कल्याण हो गया... कल्याण हो गया। जाओ, भव का अभाव हो जायेगा अब तेरा। भव का अभाव अर्थात् ऐसा भव वापस फिर से मनुष्य का मिलना मुश्किल हो जायेगा। ऐसी बात थी, हों! भाई!

बहुत वर्ष पहले एक स्थानकवासी साधु था। फिर था वह साधु। फिर वे वन्दन करे न। वे और वन्दन करते हैं या नहीं करते, वह देखा करे। उस समय गुलाबचन्दजी हुए थे न गाँधी? उनके कारण कितने ही साधु को वन्दन नहीं करते थे। साधु है नहीं, वह कोई साधु है नहीं। गुलाबचन्दजी थे राजकोट में। फिर देखा करे यह। फिर ऐसा कहे, चरमशरीरी लगता है यह। ऐसा बोले। कोई वन्दन न करे न, इसलिए कहे, यह चरमशरीरी लगता है। चरमशरीरी। इसलिए ऐसा व्यंग-व्यंग (करे)। चरमशरीरी अर्थात् यह अन्तिम शरीर लगता है, अब निगोद में जाने का। भाषा ऐसी बोले। वन्दन न करे इसलिए। तब किसी को वन्दन नहीं करते कितने ही। गुलाबचन्दजी के भगत जो हुए, वे किसी को वन्दन नहीं करते। जितने उपाश्रय साधु प्रयोग करे, वे सब मिथ्यादृष्टि, गृहीत मिथ्यादृष्टि है, जाओ। साधु उपाश्रय उनके लिये बनाया हुआ प्रयोग करे, वह साधु नहीं। ऐसी पुकार करके गुलाबचन्दजी कहते थे। (संवत्) १९६८ के वर्ष में। बोटाद में। इसलिए कितनों ने वन्दन करना बन्द कर दिया। उनको वन्दन न करे तो कहे चरमशरीरी लगता है। वे मानो कि महिमा करते हैं। परन्तु चरमशरीरी अर्थात् अन्तिम भव लगता है अब। ऐसे के ऐसे।

यहाँ कहते हैं, बापू! इस आत्मा को भगवान से भी भिन्न किया, ऐसा आत्मा का भान हुआ, उसका नाम भगवान की स्तुति कही जाती है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ४, बुधवार, दिनांक - ०२-११-१९६६
गाथा-३१, ३२, प्रवचन - ९२

यह जीव-अजीव अधिकार। ३१वीं गाथा। इसमें ज्ञेय-ज्ञायक के एकपने के दोष का परिहार है। समझ में आया इसमें ? ३१वीं गाथा में ज्ञेय, वह परचीज़ है और ज्ञायक, वह स्व है। उसमें अनादि से जो ज्ञेय और ज्ञायक का एकपने मानना, उसका नाम मिथ्यादृष्टिपना है। उस एकपने की मान्यता का परिहार, अभाव, उसका नाम आत्मा की स्तुति कही जाती है अथवा वे ज्ञेय द्रव्येन्द्रियाँ, भावेन्द्रिय ज्ञेय खण्ड-खण्ड ज्ञान और विषय, उन सबको इन्द्रिय कहा गया है। इन तीनों को अपने ज्ञानस्वभाव के अतिसूक्ष्म स्वभाव द्वारा, अखण्ड ज्ञान द्वारा और असंग ज्ञान द्वारा। अपने आत्मा को पर से भिन्न अनुभव करना, इसका नाम इन्द्रिय का जीतना कहा जाता है, इसका नाम धर्मात्मा केवलज्ञानी के गुण का स्तवन कहा जाता है, इसका नाम आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया ?

यह जीव अधिकार है न ? कि जीव में जीवपने की स्तुति की मर्यादा क्या, वह बताते हैं। जीव अधिकार है न ? वास्तव में जड़ इन्द्रियाँ, वे अजीव; भावेन्द्रिय भी वास्तव में जीव नहीं, इसलिए अजीव; और इन्द्रियों के सब विषय, यह जीव नहीं, इसलिए सब अजीव। समझ में आया ? भगवान इस अपेक्षा से अजीव। भगवान सर्वज्ञ का आत्मा इस जीव की अपेक्षा से अजीव। ऐई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के अनन्त गुण में अखण्ड... तीन बोल लिये न ? अतिसूक्ष्म, अखण्ड और असंग, ऐसा परिपूर्ण आत्मा, उसे खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय तीनों जो ज्ञेय हैं, अजीव हैं, उनसे अपने आत्मा को अन्दर में शुद्ध में एकाग्र होकर साक्षात् आत्मा के शान्ति और आनन्द का वेदन, इसका नाम भगवान की स्तुति कही जाती है। कल नहीं थे ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसलिए ... कल बात हो गयी थी न! सेठी! समझ में आया? ... कहो, समझ में आया इसमें? ...क्या कहा? इतने बोल इसमें समाहित किये हैं, हों! यह वस्तु तो अलौकिक गम्भीर है।

स्तुति कैसे कही? यह जीव अधिकार के अन्दर, इस जीव अधिकार में स्तुति क्यों वर्णन की? समझ में आया? कि जीव अधिकार में स्तुति का वर्णन अर्थात् कि जीव जो ज्ञायकस्वरूप अखण्ड, असंग, अभेद एकाकार स्वरूप। उसके अन्दर एकाग्रता, उसका नाम जीवस्वरूप, उसका नाम जीवस्तुति, उसका नाम भगवान की स्तुति, उसका नाम ज्ञायकस्वभाव की स्तुति अर्थात् गुणग्राम अर्थात् एकाग्रता। नहीं पकड़ में आता? ऐई... सेठी! क्या नहीं पकड़ में आता है? वन्स मोर करते हैं यह। आहाहा! यहाँ जीव-अजीव अधिकार है। उसमें यह स्तुति का वर्णन लिया। यह स्तुति लेंगे बारहवें गुणस्थान तक।

मुमुक्षु : बारहवें की ऐसी न

पूज्य गुरुदेवश्री : बारहवें तक कहा। बारहवें की यह नहीं कहा। यह तो चौथे गुणस्थान से है। वह बारहवें तक स्तुति लेंगे। पश्चात् तो स्तुति का फल परमात्मा है, ऐसा लेंगे। वह बारहवें की नहीं। यह तो चौथे की ही है। परन्तु मुनि हैं तो मुनिप्रधान से बात की है। बाकी है चौथे गुणस्थान से यह ३१वीं गाथा। ३२ में उपशमश्रेणी की है, ३३ में क्षपकश्रेणी की है। इन तीनों में जीव भगवान आत्मा अखण्ड... यह तीन विशेषण दिये न, इसलिए लिया। अतिसूक्ष्म प्रभु, चैतन्यस्वभाव, असंग स्वभाव और अखण्ड स्वभाव। उसके स्वभाव द्वारा अन्तर एकाकार होकर जो आत्मा के स्वभाव की स्तुति शब्द से गुणग्राम जो किये, उसे जीव की दशा के वर्णन में उसे जीव कहा। उसे जीव कहा। इसके अतिरिक्त खण्ड इन्द्रिय—भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर भी इन्द्रिय के विषय। उन्हें इस ज्ञायकभाव से अन्य ज्ञेयरूप से कहा, उन्हें जीवस्वभाव से अन्य अर्थात् इस जीवस्वभाव से अन्य—यह नहीं, ऐसा अजीवस्वभाव उसे कहा। सेठी! एक '**इंदिये जिणित्ता**' इसमें से यह निकाला है। इतना शब्द। आहाहा! टीका वह कुछ गजब बात है न!

'जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं' जो कोई आत्मा, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि कोई भी आत्मा इन्द्रिय को जीतकर ज्ञानस्वभाव द्वारा अधिक अर्थात् भिन्न अर्थात् परिपूर्ण प्रभु ऐसे आत्मा को जो अनुभव करता है, वेदता है, जानता है, साक्षात् अन्तर में आनन्द के वेदन से आत्मा को जानता है, उसे जितेन्द्रिय सन्त उसको जितेन्द्रिय कहते हैं। समझ में आया? भारी कठिन! एक-एक वाक्य सूक्ष्म सब। समझ में आया या नहीं इसमें? वजुभाई! ज्ञेय-ज्ञायक संकर, जीव-अजीव की एकता, भिन्नता की बात, एकता है, उसकी भिन्नता का यह वर्णन है।

भगवान आत्मा अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव द्वारा द्रव्येन्द्रियाँ जो जड़ यह मिट्टी, उसका लक्ष्य छोड़कर अथवा वह और मैं, ऐसा एकत्व जो ऐसे एक समय में दोनों मानो साथ में है, इसलिए एकत्व है, ऐसी मान्यता छोड़कर। छोड़कर का अर्थ? यहाँ जहाँ स्वभाव की एकाग्रता करे, तब वह मान्यता छूट जाती है। समझ में आया? और यह आत्मा असंग, अखण्ड, एकरूप आत्मस्वभाव चैतन्य अकेली डली परिपूर्ण स्वभाव, पर से भिन्न स्वभाव, पर से अधिक स्वभाव, पर से अधिक—भिन्न पूर्ण स्वभाव, ऐसे स्वभाव का आश्रय और लक्ष्य करके जो ज्ञायकस्वभाव में एकाग्र होना, वही वास्तव में परमेश्वर की स्तुति, परमेश्वर स्वयं और उनकी स्तुति कहने में आती है। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, भीखाभाई! आहाहा! लो, यहाँ तक आया, देखो!

उसके द्वारा सर्वथा अपने से अलग किया; यहाँ तक आया। तीनों की बात। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, इन्द्रिय के विषय, तीनों को इन्द्रियरूप से यहाँ गिनने में आया है। दूसरी भाषा में कहें तो तीनों को भगवान ज्ञायकस्वभाव के लक्ष्य से उन्हें ज्ञेय-परज्ञेय गिनने में आया है। दूसरे प्रकार से कहें कि ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ज्ञायकस्वभाव, जीवस्वभाव के आश्रय से उन्हें जीवस्वभाव से अन्य स्वभाव गिनने में आया है। इसलिए उन्हें अजीवस्वभाव—यह जीवस्वभाव नहीं, ऐसा गिनने में (आया है)। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय और भगवान परमेश्वर या सम्मेदशिखर आदि सबको इस जीवस्वभाव की अपेक्षा से उन्हें अजीवस्वभाव गिनने में आया है। समझ में आया?

इस प्रकार जो **इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का जीतना हुआ।** तीन हो गये तीन।

इस प्रकार जो... इस प्रकार जो आत्मा **द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों को...** चाहे तो भगवान की वााणी हो, साक्षात् समवसरण हो, भगवान हो—वे सब इन्द्रिय के ही विषय हैं। ऐई! पाटनीजी!

मुमुक्षु : भगवान की प्रतिमा तो नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा और कहाँ रह गयी। वह तो नीचे रह गये। साक्षात् भगवान को इन्द्रिय का विषय कहा वहाँ। सेठी! इसकी टीका (आलोचना) आयी थी। लो! यह तो अभी भगवान और प्रतिमा को परमात्मा को विषय कहते हैं। अरे! भगवान! सुन तो सही। यह स्व अखण्ड विषय के अतिरिक्त सब परविषय, वे पर हैं। सुन न, भाई! तुझे खबर नहीं। वे भगवान ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सौ इन्द्रों की उपस्थिति में ऐसा फरमाते हैं कि भाई! जो कोई आत्मा हमारा परलक्ष्य छोड़कर, इन्द्रिय जड़ का लक्ष्य छोड़कर, भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड का लक्ष्य छोड़कर जो अखण्ड ज्ञायकस्वभाव सन्मुख जाकर एकाग्र होगा, उसने वास्तविक भगवान की—परमात्मा की स्तुति की, ऐसा हम कहते हैं। ऐसा भगवान कहते हैं। राजेन्द्रजी! कहो, समझ में आया इसमें?

इन तीनों को जीतकर... जीतकर, इसकी व्याख्या यह। जीतकर अर्थात् क्या? अर्थात् क्या समझे न? अर्थात् क्या? ऐसा तुम्हारे समझ लेना थोड़ी-थोड़ी हिन्दी भाषा। द्रव्येन्द्रिय यह जड़; भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड अंश और इन्द्रियों के विषय **इन तीनों को जीतकर...** अर्थात् कि तीन की ओर के लक्ष्य को छोड़कर भगवान ज्ञायकस्वरूप परिपूर्ण प्रभु के लक्ष्य में आकर एकाग्र होता है, उसने इन तीन को जीता, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? **ज्ञेयज्ञायक-संकर नामक दोष आता था...** इन तीनों को जीतकर। भगवान ज्ञायकस्वरूप आत्मा चैतन्यबिम्ब आत्मा, उसे और इन भावेन्द्रिय ज्ञान को खण्ड-खण्ड बतलावे पदार्थ को अथवा ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप से बतलावे, वह भी ज्ञान का वास्तव में परज्ञेय है। परज्ञेय समझ में आता है? स्वज्ञेय नहीं। ऐसा जो भाव इन्द्रिय का परज्ञेयपना, द्रव्येन्द्रिय का परज्ञेयपना और विषयों का परज्ञेयपना। समझ में आया?

भावेन्द्रिय के खण्ड-खण्ड ज्ञान द्वारा ज्ञायकभाव ज्ञात नहीं होता। द्रव्येन्द्रिय द्वारा वह ज्ञात नहीं होता। तथा द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के विषय भगवान आदि देव-गुरु-शास्त्र या कुटुम्ब-स्त्री-परिवार आदि, उन द्वारा ज्ञायकभाव ज्ञात नहीं होता। उन तीन की ओर के भाव के परज्ञेय की ओर के लक्ष्य को छोड़कर स्वज्ञेय ऐसा जो ज्ञायकभाव, उसके लक्ष्य से एकाग्र हो, उसने इन तीनों को जीता अर्थात् ज्ञेय-ज्ञायक की एकता जो थी, वह टूटी। ज्ञेय-ज्ञायक संकर। संकर अर्थात् खिचड़ा। खिचड़ा कहते हैं तुम्हारे में? मिलावट, मिलावट। दाना-दाना। दाना होता है न? दाना में कंकड़। मूँग की सब्जी बनाते हैं न मूँग की? उसमें डाले थोड़े कंकड़। खींचड़ा कहलाता है। यहाँ तो खिचड़ा दूसरा कहे। बहुत दाने हों। यहाँ तो यह खिचड़ा। यह तो दाना और कंकड़। वरना तो यह खिचड़ा अभी ऐसा कहे बाजरा, गेहूँ, मूँग, उड़द, ऐसा सब डाले, उसे खिचड़ा कहे। परन्तु वह तो नहीं।

हमारे भाई के साथ बात चलती थी। वे थे न पण्डित लालन। ९५ वर्ष की उम्र। १६ वर्ष से अभ्यास वह ९५ वर्ष तक अभ्यास। सब ज्ञान खिचड़ा। बारह महीने यहाँ रहे थे। मलूकचन्दभाई के मकान में रहते न? रहे थे। फिर बुलाया। कहा, क्या करते हो तुम यह? उल्टा। फिर रोवे। हम भी उल्टा सीखे। ऐसा कहे, हों! और किसी समय धुन चढ़ जाये। हमारे ऐडवर्ड क्या कहलाता है तुम्हारे? जॉर्ज को एक रानी और चक्रवर्ती को छियानवें हजार रानियाँ! नहीं। यह बात नहीं। क्या है? पण्डितजी! क्या है? किसी के रजकण अधिक शरीर में और किसी को थोड़े, इसलिए ऐसा कैसे? ऐसा करना है तुम्हारे? वह तो संख्या बाहर की किसी को अधिक हो और किसी को थोड़ी हो, उसमें उसके साथ सम्बन्ध क्या है? परन्तु वह बहुत उन अंग्रेजी का किया। महाराज! जॉर्ज को एक रानी, चक्रवर्ती तुम बड़े धर्मात्मा क्षायिक समकिती, उसके छियानवें हजार? नहीं, खोटी बात है। सब व्यभिचार है। भाई! सुन तो सही। प्रभु! और कहे, और वापस ... समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि, अकेला ज्ञायकभाव खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय को ज्ञेयरूप से जानकर, ज्ञेय लाख स्त्री हो न, छियानवें हजार। समझ में आया? साक्षात्

तीन लोक के नाथ हो या स्त्री हो, ज्ञानरूप से परविषय रूप से हैं वे। समझ में आया? वह स्वविषय ज्ञायक नहीं। इसलिए कहते हैं कि ऐसा ज्ञेय और ज्ञायक का संकर अर्थात् एकपने का मान्यता का मिथ्याभाव था, वह दोष आता था, वह सम्पूर्ण दूर होने से। लो! कैसे दूर हुआ? ज्ञायकस्वभाव की एकाग्रता में खण्ड इन्द्रिय, द्रव्यइन्द्रिय और उसकी एकता के भाव को यहाँ एकता से नाश किया। इसलिए **सब दूर होने से...** क्या हुआ? क्या रहा? क्या हुआ और क्या रहा?

भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय, उनमें जो ज्ञायक प्रभु, उस ओर मुड़कर, ढलकर उसे अपना स्वरूप और वह स्वयं है, ऐसा मानता था, उससे हटकर स्वभाव सन्मुख की एकता से वह पर की एकता टली, तब क्या रहा? कि **एकत्व में टंकोत्कीर्ण...** अपना ज्ञायकस्वभाव, एकत्व में जैसा टंकोत्कीर्ण... नीचे (फुटनोट में अर्थ) है। 'पत्थर में टाँकी से उत्कीर्ण मूर्ति की भाँति एकाकार जैसा का तैसा स्थित।' चिदबिम्ब, चिद्घन अनादि-अनन्त जैसा शुद्ध ध्रुव है, वैसा इस **ज्ञानस्वभाव द्वारा...** यहाँ तो आत्मा कहना है, हों! टंकोत्कीर्ण ऐसा कौन? कि ज्ञानस्वभाव द्वारा। ऐसे ज्ञानस्वभाव द्वारा **सर्व अन्यद्रव्यों से परमार्थ से भिन्न...** देखो! यहाँ वापस द्रव्य लिये। **सर्व अन्यद्रव्यों से परमार्थ से भिन्न...** यह भावेन्द्रिय भी अन्यद्रव्य है, द्रव्येन्द्रिय अन्यद्रव्य है और इन्द्रिय के विषय भी अन्यद्रव्य है। बहुत-बहुत पद्धति से आचार्य का कथन गम्भीर! ज्ञेय कहा, अन्यद्रव्य कहा, वह जीव नहीं, ऐसा अजीव भी कहा। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु, पर के एकत्व से हटकर स्व के एकत्व में आया, स्व के एकत्व में आया तो **ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों से परमार्थ से भिन्न ऐसे अपने आत्मा का...** ऐसे अपने आत्मा को **अनुभव करता है...** भगवान आत्मा अपने परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा को अनुभव करता है तो परद्रव्य ज्ञेय—जो भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय आदि बाह्य शब्द, शास्त्र आदि पुस्तक, पृष्ठ, भगवान की मूर्ति और यात्रा इन सबसे भिन्न पड़कर आत्मा के आत्मा के ज्ञानस्वभाव द्वारा टंकोत्कीर्ण एकत्वपने को प्राप्त होकर आत्मा को अनुभव करे, उसे आत्मा प्राप्त हुआ, ऐसा कहा जाता है। उसे आत्मा मिला, उसे आत्मा प्राप्त हुआ, उसे आत्मा का साक्षात्कार हुआ, उसे आत्मा का अनुभव

हुआ, उस आत्मा के आनन्द का वेदन हुआ, उस आत्मा को सम्यग्दर्शन और स्वसंवेदन ज्ञान और चारित्र आदि हुआ। समझ में आया?

अन्य द्रव्यों से परमार्थ से भिन्न ऐसे अपने आत्मा का अनुभव करते हैं, वे निश्चय से जितेन्द्रिय जिन हैं। लो! उसे भगवान जितेन्द्रिय जिन कहते हैं। उसने इन्द्रियों को जीता और वह जिन कहा गया है। लो, वह जिन कोई सम्प्रदाय नहीं, जिन कोई वाड़ा नहीं। जिन अर्थात् ज्ञायकभाव द्वारा इन तीन का एकत्वपना छूटकर स्वभाव की एकता होना, उसे जितेन्द्रिय जिन कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? जिन शब्द प्रयोग किया। पाठ में जितेन्द्रिय है। '**तं खलु जिदिंदियं**' इसमें आचार्य ने अधिक शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? जितेन्द्रिय में से निकाला यह। है न, यह है न अन्तिम? '**स खलु जितेन्द्रियो जिन इत्येका निश्चयस्तुति**' अन्तिम शब्द है। '**स खलु जितेन्द्रियो जिन इत्येका निश्चयस्तुति**' क्या कहते हैं? ... ओहोहो! सन्तों की कथन पद्धति और थोड़े में गागर में सागर भर देने की सामर्थ्य। स्वभाव में, हों!

मुमुक्षु : स्वभाव में या लेखन में?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव में। लेखन तो लेखन के कारण से (होता है)। केवलज्ञान समाहित किया है अन्दर आत्मा में।

कहते हैं कि धर्म कैसे हो, उसकी यह बात है। अथवा जीव स्वभाव की प्राप्ति कैसी हो तो उसे जीव प्राप्त हुआ कहा जाये। अथवा जीव स्वभाव की कैसी एकता से उसे गुण की स्तुति की गयी, ऐसा कहा जाता है। अब इसमें तो राग भी चला गया। भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय, इनसे लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकभाव में आया तो राग के कारण, अन्दर में आया, ऐसा आया नहीं। कहो, यह व्यवहार कब कहलाया? कि जब खण्ड इन्द्रिय की ओर से छूटकर अखण्ड भगवान, यह द्रव्येन्द्रिय छूटकर अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव को पकड़ा और विषयों के संग का लक्ष्य छोड़कर असंग चैतन्य को पकड़ा। ऐसे ज्ञायकस्वभाव द्वारा, ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा को जाना। ऐसा कहा है न! ज्ञानस्वभाव द्वारा कहा है। राग द्वारा, निमित्त द्वारा, व्यवहार द्वारा, ऐसा नहीं कहा। ऐसा नहीं होता। यह तो फिर कथन व्यवहारनय के बहुत आते हैं। परन्तु

वस्तुस्थिति यह है। समझ में आया? है या नहीं परन्तु? देखो न, इसमें पाठ के अर्थ में सब भरा है। राजेन्द्रजी! है या नहीं इसमें?

भगवान आत्मा ऐसे ज्ञानस्वभाव को रागभाव से भी भिन्न पड़ा, खण्ड इन्द्रिय से द्रव्येन्द्रिय से भिन्न पड़ा, तब ज्ञानस्वभाव द्वारा आत्मा को जाना। अर्थात् ज्ञानस्वभाव द्वारा, है न! पाठ में भी यह है न? '**णाणसहावधियं मुणदि आदं**' ज्ञानस्वभाव द्वारा करके अधिक अर्थात् भिन्न और परिपूर्ण भिन्न जाने, उसे जितेन्द्रिय जिन भगवान कहते हैं। इसमें कहाँ, यह तो वस्तु का स्वरूप है। यह कहे, तुम्हारा जिन का यह धर्म है। परन्तु वस्तु ही यह है। जिनधर्म क्या? भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्दस्वरूप, उसका अन्तर आश्रय लेकर पर का एकत्व टूटना, छूटना और स्व में एकत्व होना, उसे जितेन्द्रिय जिन कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! उसे भी अपनी अन्तर महत्ता की महिमा सूझती नहीं। उसकी अपनी महत्ता की महिमा आती नहीं। उसे यह राग और यह खण्ड और यह और यह और इसकी महिमा उसे आती है। जहाँ पर की महत्ता आवे, वहाँ स्व की महत्ता रहती नहीं।

पहले श्रद्धा में तो कहे, स्वीकार कर कि भगवान आत्मा... राग और खण्डइन्द्रिय, वह सब, यह सब पर है। उनसे भिन्न पड़कर स्वभाव की एकाग्रता होना, उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र कहते हैं। उसका नाम भगवान मोक्ष का मार्ग कहते हैं और उसे जिन—जितेन्द्रिय कहा जाता है। इन्द्रिय को फोड़ डाले, थोड़ा खाये, दो रोटी खाये, दूध पीवे, सादा वस्त्र पहने, इसलिए जितेन्द्रिय है, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो लोग ऐसा कहे कि कितना खाता है। एक बाजरे की आधी रोटी घी चुपड़े बिना और छाछ। बहुत जितेन्द्रिय है। छाछ समझते हो? मठ्ठा। मठ्ठा और रोटी। ऐसा हमारे हुआ था भाई! (संवत्) १९८३ के वर्ष में। वस्त्र पहने न। ...ओहोहो! क्या सादापन! क्या सादापन! ऐसा एक व्यक्ति कहता था। मैंने कहा, सादापन की व्याख्या क्या? समझ में आया? बड़ा सेठ हो न, इसलिए एक वस्त्र

साधारण पहने, रोटी और दाल खाये। क्या सादापन! परन्तु वह सादापन कहाँ था? सादापन तो उसे कहते हैं कि जिसे राग और खण्डइन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय के विषयों का लक्ष्य छोड़कर ज्ञायक में—चैतन्य (में) एकाग्र हो, उसे सादा जीवन और सात्विक जीवन और सम्यग्दर्शन जीवन कहा जाता है। सेठी!

मुमुक्षु : न्यारी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भिन्न पड़ने की बात है। न्यारी कहो या पृथक्। आहाहा!

अपने आत्मा का अनुभव करते हैं,... भगवान आत्मा के लक्ष्य में अकेला भगवान पूरा परिपूर्ण लिया स्वयं ने। उसकी वेदना—उसका वेदन जो हुआ पर्याय में, उसे जितेन्द्रिय जिन कहा जाता है। **(ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है...)** यह भगवान ज्ञानस्वभाव यहाँ ज्ञानस्वभाव को भगवान कहेंगे, हों! नीचे। **ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है।** नीचे कहेंगे। अन्तिम। समझ में आया? '**परमार्थसता भगवता ज्ञानस्वभावेन**' संस्कृत है। यहाँ भगवान आत्मा को ज्ञानस्वभाव को भगवान कहा। ज्ञानस्वभाव महिमावन्त प्रभु, उसका ज्ञानस्वभाव है, ऐसा महिमावन्त भगवान ज्ञानस्वभाव **अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है...** अर्थात् कि ज्ञानस्वभाव, वह राग में नहीं, खण्ड इन्द्रिय में नहीं। यह ज्ञानस्वभाव परपदार्थ में नहीं। परमेश्वर परमात्मा हो वह सामने तो भी यह ज्ञानस्वभाव उनमें नहीं।

मुमुक्षु : .... अचेतन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो। अचेतन कहो, अजीव कहा। इस जीव की अपेक्षा से अजीव कहो, इस चेतन की अपेक्षा से अचेतन कहो। क्या है? वीतरागमार्ग तो अलौकिक है, भाई! समझ में आया?

यहाँ तो चैतन्य के दर्शन-ज्ञान उपयोग की अपेखा से चैतन्य भी कहा जाता है और दूसरे गुण की अपेक्षा से उसे अचेतन, एक को अचेतन कहा जाता है। सप्तभंगी जहाँ चली है... समझ में आया? जानने-देखने का उपयोग वह जीव। बाकी सब गुण जानने-देखने का काम नहीं करते, इसलिए अजीव। इसकी सप्तभंगी। तो अब यह

भगवान चैतन्यस्वभाव की अपेक्षा से दूसरे सब अचेतन। यह चेतन नहीं, इसलिए सब अचेतन, इसलिए सब ज्ञेय और इसलिए सब पर। आहाहा! समझ में आया?

(ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है...) यह भगवान ज्ञानस्वभाव... यह खण्ड इन्द्रिय भी वास्तव में अचेतन है। आहाहा! चेतनस्वभाव त्रिकाली नहीं इसलिए। राग अचेतन है, पर अचेतन है। भगवान आत्मा चैतन्यदल, चैतन्यस्वभाव, वह अन्य अचेतन पदार्थ... **इसलिए उसके द्वारा आत्मा सबसे अधिक,...** इसलिए उस द्वारा। समझ में आया? किसके द्वारा? ज्ञानस्वभाव। **अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है, इसलिए उसके द्वारा...** अर्थात् ज्ञानस्वभाव द्वारा **आत्मा सबसे अधिक,...** उस द्वारा अर्थात्? **ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है, इसलिए उसके द्वारा...** अर्थात् ज्ञानस्वभाव द्वारा। ज्ञान-जानने (के) स्वभाव द्वारा **आत्मा सबसे अधिक,...** सबसे भिन्न और परिपूर्ण भगवान भिन्न है। समझ में आया? आहाहा! यह मेहनत—प्रयत्न अन्दर में करना चाहिए, वह करे नहीं और वाद-विवाद के झगड़े (करे)। अरे! भगवान! समझ में आया? जहाँ प्रयत्न करना चाहिए वहाँ करता नहीं और वाद-विवाद पढ़-गुनकर... पढ़-गुनकर... 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।' बनारसीदास ने कहा। बनारसीदास का।

भगवान आत्मा, भाई! प्रभु परिपूर्ण चैतन्यस्वभाव है न! और वस्तु हो, वह परिपूर्ण न हो तो क्या हो? और उसमें उसका ज्ञानस्वभाव तो सबको जाने, अपने को जाने, ऐसा एक असाधारण स्वभाव कि दूसरे गुण ऐसे नहीं। एक गुण दूसरे में तो नहीं, वह ज्ञानस्वभाव असाधारण दूसरे में वह तो नहीं, परन्तु वह स्वभाव दूसरे अनन्त गुणों में भी नहीं। ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव, उसके द्वारा पर से भिन्न, अधिक / पृथक् करके जानना, उसका नाम आत्मा जानना कहा जाता है। ऐसे आत्मा... आत्मा तो सब बातें करे। आत्मा ऐसे जानो... आत्मा जानो। अन्यमति बहुत बातें करे। वह इस प्रकार से हो, उसका नाम आत्मा। ऐसे आत्मा कहे, वह क्या काम आवे? समझ में आया? भिन्न किया, तब उसका अर्थ हुआ कि दूसरी चीज़ है। एक ही है, ऐसा है नहीं। एक में दो भाग किये यहाँ तो खण्ड इन्द्रिय भी पर और स्वभावज्ञायक, वह स्व। समझ में आया?

चैतन्यभाव ऐसा स्वभाव जीवन जिसका जानना-देखना ऐसा जिसका जीवन। जिसका जीना अर्थात् ऐसा चेतना, उसका स्वभाव। ऐसे द्वारा आत्मा को पर से अत्यन्त भिन्न, पर से भिन्न—अधिक ऐसा जो जाने, वह **कैसा है वह ज्ञानस्वभाव ? विश्व के ऊपर तिरता हुआ...** देखो! वापस डाला। दूसरी चीज़ है। खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय दूसरी चीज़ें हैं। उसे जानने पर भी उसरूप नहीं होता। तैरता अर्थात्? स्वयं ज्ञायकस्वभाव स्वयं अपने को और पर को जानने पर भी पररूप हुआ नहीं। अपने में जाननेरूप रहकर पर को जानता और पररूप नहीं होता, वह विश्व के ऊपर तैरता, ऐसा कहा जाता है। अर्थात् कि जैसे पानी में ऊपर तैरता मनुष्य पानी में डूबता नहीं। डूबता नहीं कहते हैं? बूडता नहीं, डूबता नहीं। पानी के ऊपर तैरे, वह अन्दर डूबता नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव से भिन्न करके जानता हुआ उस पर में डूबता नहीं अर्थात् पररूप होता नहीं। आहाहा!

विश्व के ऊपर तिरता हुआ... भाषा कैसी है! विश्व अनन्त। सब हो। अनन्त आत्मा, अनन्त रजकण, परन्तु वह उन्हें जानने पर भी, उन्हें जानता होने पर भी उनमें एकत्व नहीं होता, उनमें डूब नहीं जाता, उनसे भिन्न रहता है। आहाहा! उसने आत्मा के वास्तविक गीत सुने नहीं। आहाहा! क्यों सर्राफजी! आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ... कहा ने? '**णिच्छिदा साहू**' इन्द्रियों को जीता है जिसने, ऐसे सन्त उसे जिन को जितेन्द्रिय कहते हैं। अज्ञानी चाहे जो कहे, उससे वस्तुस्वरूप दूसरा कहाँ से हो जाये? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? '**जिदिंदियं साहू णिच्छिदा**' निश्चित जो जितेन्द्रिय आत्मायें परमात्मा हैं, ऐसे परमात्मा या सन्त ऐसे भगवान आत्मा को परिपूर्ण स्वभाव द्वारा अपने को अनुभव करे। पर को जानने पर भी पररूप नहीं होता, पर से भिन्न रहता है, पर से तैरता रहता है, पर से भिन्न रहता है, पर से एकत्व नहीं होता, वह विश्व के ऊपर तैरता हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! राग से तैरता हुआ। समझ में आया? रागादि हो, उसे भी राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान राग को पररूप से जानने पर भी, रागरूप ज्ञान होता नहीं। समझ में आया? इसका नाम आत्मा की स्तुति और आत्मा जाना और अनुभव किया और आत्मा है, उसे प्राप्त किया—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

विश्व के ऊपर तिरता हुआ, प्रत्यक्ष उद्योतपने से... कैसा है भगवान आत्मा? प्रत्यक्ष है। वह कहीं परोक्ष रह जाता है, ऐसी चीज़ है ही नहीं। उसके गुण में ही प्रत्यक्ष होना, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? प्रकाशत्व नाम का उसमें गुण है। ४७ गुण हैं जीव में। ऐसे अनन्त हैं। उसमें एक १२वाँ गुण प्रकाशत्व है। गुण है उसका कि जो प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही उसका गुण है। परोक्ष रहे, ऐसा उसका गुण है नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा पर से भिन्न पड़कर प्रत्यक्ष उद्योतपने से। स्वसंवेदनज्ञान में प्रत्यक्षरूप से प्रगट हुआ भगवान आत्मा। प्रत्यक्ष उद्योत जिसका है। प्रगट है।

सदा अन्तरंग में प्रकाशमान,... सदा ही अन्तरंग में चैतन्यसूर्य से प्रकाशमान भगवान आत्मा है। कैसा है वह? समझ में आया? यहाँ ज्ञानस्वभाव वर्णन करना है, हों! कैसा है ज्ञानस्वभाव? **विश्व के ऊपर तिरता...** एक बोल। **प्रत्यक्ष उद्योतपने से सदा अन्तरंग में प्रकाशमान,...** ज्ञानस्वभाव। आहाहा! प्रत्यक्ष परमात्मा स्वयं अपने से प्रत्यक्ष हो, ऐसा उसका स्वरूप है। प्रवीणभाई! बात सुनना ऐसी बड़ी-बड़ी लगे मानो ऐसा। इतना बड़ा मैं? अरे! भाई! बड़ी नहीं। वह जैसी है, यह वह है। जैसा है, वह वही बात है। दूसरी बात नहीं। बड़ी कहे, छोटी कहे, बिचली कहे। जो कहे वह यह है। उसे कुछ वह आता नहीं कि राग करो, व्यवहार करो, यह करो... यह करो... तो वह होगा। ऐसी बातें (आती नहीं)। यह तो बड़ी बातें... यह टीका की है। समझ में आया? दिग्पट ८४ बोल में। भाई! ऐसा नहीं, भाई! तू तेरी महत्ता को छोड़कर किसी की महत्ता द्वारा तेरी महत्ता प्रगटे, उसमें तुझे लज्जा नहीं? समझ में आया? लज्जा नहीं तुझे?

भगवान आत्मा सीधा प्रत्यक्ष स्वभाव से उद्योतमान प्रकाशमान ज्ञानस्वभाव है। समझ में आया? **सदा अन्तरंग में प्रकाशमान,...** है। सदा ही त्रिकाल अन्तरंग में प्रकाशमान ज्योति है। अविनश्वर है। ज्ञानस्वभाव नाश हो, ऐसा नहीं। स्वत:सिद्ध भगवान ज्ञानस्वभाव, चैतन्यस्वभाव स्वत:सिद्ध है। स्वत:सिद्ध है। अपने से ही निश्चितरूप से रहा हुआ है। वह किसी के कारण से है नहीं। **स्वत:सिद्ध...** स्वत:सिद्ध **और परमार्थ सत्—**परमार्थरूपी आत्मा का ज्ञानस्वभाव परमार्थरूप है। ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा का परमार्थरूप है। यह परमार्थ करना-करना, वह परमार्थ कोई करता नहीं। इस परमार्थ

का ज्ञानस्वभाव परमार्थरूप है। **ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है।** आहाहा! समझ में आया?

'णाणसहाव' शब्द था न, **'णाणसहावधियं मुणदि आदं' 'आदं'** ऐसा है न? आत्मा को ज्ञानस्वभाव से अधिक—पर से भिन्न अनुभव करना। वह ज्ञानस्वभाव ऐसा, ऐसा वर्णन किया। उस द्वारा आत्मा जाना। उस द्वारा आत्मा ज्ञात होता है। बाकी कोई विकल्प और राग और निमित्त तथा संयोग किसी के कारण से, शास्त्र के ज्ञान से भी वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? लो! यह एक श्लोक पूरा हुआ। ३१ (गाथा)।

इस प्रकार एक निश्चयस्तुति तो यह हुई। स्तुति का वर्णन है न? समझ में आया? इसके कोष्ठक में कहा है। **ज्ञेय तो द्रव्येन्द्रियों,...** परज्ञेय, हों! परज्ञेय, वह तो **द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रियों...** खण्ड-खण्ड ज्ञान **तथा इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों...** वह ज्ञेय। **और ज्ञायकस्वरूप स्वयं आत्मा का** - भगवान आत्मा जाननेवाला और वह पररूप से ज्ञात हो, ऐसा ज्ञेय। पररूप से ज्ञात हो, ऐसा ज्ञेय। **दोनों का अनुभव,...** उन दोनों की एकता का अनुभवन **विषयों की आसक्ति से, एकसा होता था;...** परलक्ष्यी भगवान का भजन करे न भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... कहते हैं कि वह भी परज्ञेय है। राग परज्ञेय है। उसके साथ आत्मा का एकत्व था, वह संकरदोष था। खिचड़ा होता था। राग और ज्ञानस्वभाववाला आत्मा दोनों एक मानता था। अथवा जिसके द्वारा आत्मा को लाभ होना माने, उससे भिन्न है, ऐसा वह नहीं मान सकता। तो वह खण्ड इन्द्रिय और राग-पुण्यादि के भाव से जीव को लाभ होता है, ऐसा माने, वह जीव को उससे भिन्न नहीं कर सकता। समझ में आया? घर में बैठे यह बहुत समझ में आये, ऐसा नहीं, नहीं? चन्द्रकान्तभाई! अपने आप क्या समझ में आता है? क्या होगा यह? ऐसो में काम करे, परन्तु उसमें काम न कर सके, हों! नहीं? ऐसा यह समयसार होगा? बापू! यह तो अध्यात्म शास्त्र है। अकेला आत्मा को बतलानेवाला अद्वैत अजोड़ आँख है। अद्वैत अजोड़ चक्षु है। समझ में आया? इन दोनों का विषयों की आसक्तता से। अर्थात् कि ज्ञेय खण्ड-खण्ड इन्द्रिय की आसक्ति, द्रव्येन्द्रियों में एकाग्रता, विषयों में लीनता। अर्थात् उनमें एकाग्रता। **एकसा होता था;...** ज्ञये और ज्ञायकभाव एक जैसा लगता था।

भेदज्ञान से भिन्नत्व ज्ञात किया... ज्ञेय-राग, खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय। उन्हें भेदज्ञान से पर से भिन्न पड़कर भिन्नपना जाना। **तब वह ज्ञेयज्ञायक-संकरदोष दूर हुआ...** तब वह भगवान जाननेवाला आत्मा और परज्ञेयरूप से ज्ञेय खण्ड इन्द्रिय आदि जो पर थे, उन्हें एकरूप मानता था, वह पर से भेदज्ञान करके दो का संकरदोष दूर हुआ। अर्थात् मिथ्यादृष्टिपने का दोष दूर हुआ। दोनों को एक मानने का दोष था मिथ्यात्व का, वह दूर हुआ। **ऐसा यहाँ जानना।** इसका नाम भगवान आत्मा की स्तुति कही जाती है। कहो, समझ आया इसमें?

★ ★ ★

गाथा - ३२

अथ भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण –

जो मोहं तु जिणित्ता णाण–सहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिद–मोहं साहुं परमट्ठ–वियाणया बेंति।।32।।

यो मोहं तु जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।
तं जितमोहं साधुं परमार्थविज्ञायका ब्रुवन्ति।।32।।

यो हि नाम फलदानसमर्थतया प्रादुर्भूय भावकत्वेन भवन्तमपि दूरत एव तदनुवृत्तेरात्मनो भाव्यस्य व्यावर्तनेन हठान्मोहं न्यक्कृत्योपरतसमस्तभाव्यभावक–संकरदोषत्वेनैकत्वे टंकोत्कीर्णं विश्वस्याप्यस्योपरि तरता प्रत्यक्षोद्योततया नित्य–मेवान्त:प्रकाशमानेनानपायिना स्वत:सिद्धेन परमार्थसता भगवता ज्ञानस्वभावेन द्रव्यान्तरस्वभावभाविभ्य: सर्वेभ्यो भावान्तरेभ्य: परमार्थतो–ऽतिरिक्तमात्मानं सञ्चेतयते स खलु जितमोहो जिन इति द्वितीया निश्चयस्तुति:।

एवमेव च मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचनकाय–सूत्राण्येकादशपञ्चानां श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणामिन्द्रियसूत्रेण पृथग्व्याख्यातत्वाद्–व्याख्येयानि। अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि।।32।।

अब, भाव्यभावक–संकरदोष दूर करके स्तुति कहते हैं:–

कर मोहजय ज्ञानस्वभाव रु, अधिक जाने आत्मा।
परमार्थ विज्ञायक पुरुष ने, उन हि जितमोही कहा।।32।।

गाथार्थ : [य: तु] जो मुनि [मोहं] मोह को [जित्वा] जीतकर [आत्मानम्] अपने आत्मा को [ज्ञानस्वभावाधिकं] ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यभावों से अधिक [जानाति] जानता है [तं साधुं] उस मुनि को [परमार्थविज्ञायका:] परमार्थ के जाननेवाला [जितमोहं] जितमोह [ब्रुवन्ति] कहते हैं।

टीका : मोहकर्म फल देने की सामर्थ्य से प्रगट उदयरूप होकर भावकपने से

प्रगट होता है, तथापि तदनुसार जिसकी प्रवृत्ति है, ऐसा जो अपना आत्मा-भाव्य, उसको भेदज्ञान के बल द्वारा दूर से ही अलग करने से इस प्रकार बलपूर्वक मोह का तिरस्कार करके, समस्त भाव्यभावक-संकरदोष दूर हो जाने से एकत्व में टंकोत्कीर्ण (निश्चल) और ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों के स्वभावों से होनेवाले सर्व अन्य भावों से परमार्थत: भिन्न अपने आत्मा को जो (मुनि) अनुभव करते हैं, वे निश्चय से जितमोह (जिसन मोह को जीता है) जिन हैं। कैसा है वह ज्ञानस्वभाव? समस्त लोक के ऊपर तिरता हुआ, प्रत्यक्ष उद्योतरूप से सदा अन्तरङ्ग में प्रकाशमान, अविनाशी, अपने से ही सिद्ध और परमार्थरूप ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है।

इस प्रकार भाव्यभावक भाव के संकरदोष को दूर करके दूसरी निश्चयस्तुति है।

इस गाथासूत्र में एक मोह का ही नाम लिया है; उसमें 'मोह' पद को बदलकर उसके स्थान पर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय रखकर ग्यारह सूत्र व्याख्यानरूप करना और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, तथा स्पर्शन - इन पाँच के सूत्रों को इन्द्रियसूत्र के द्वारा अलग व्याख्यानरूप करना; इस प्रकार सोलह सूत्रों को भिन्न-भिन्न व्याख्यानरूप करना और इस उपदेश से अन्य भी विचार लेना।

भावार्थ : भावक मोह के अनुसार प्रवृत्ति करने से अपना आत्मा भाव्यरूप होता है, उसे भेद ज्ञान के बल से भिन्न अनुभव करनेवाले जितमोह जिन हैं। यहाँ ऐसा आशय है कि श्रेणी चढ़ते हुए जिसे मोह का उदय अनुभव में न रहे और जो अपने बल से उपशमादि करके आत्मानुभव करता है, उसे जितमोह कहा है। यहाँ मोह को जीता है; उसका नाश नहीं हुआ।

गाथा - ३२ पर प्रवचन

अब दूसरी स्तुति। यहाँ किस ढंग से बात ली है, किस प्रकार से? कि आत्मा की स्तुतिरूप से यह एक पहली श्रेणी की, पश्चात् उपशमश्रेणी की दूसरी श्रेणी की स्तुति। क्योंकि वह विशेष ऊँचा चढ़ा। और पश्चात् क्षपकश्रेणी की। यह स्तुति है। स्तुति का फिर फल आवे केवलज्ञान। वह स्तुति नहीं कहलाती। स्तुति तो यहाँ तक, जहाँ तक ऐसे तीन प्रकार का भाव, अधूरा भाव है, उसे स्तुति कहा जाता है। जीव के पूर्ण स्वभाव

की स्तुति। उसके बाद पूर्ण की प्राप्ति हो जाये, फिर स्तुति नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्तुति से....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? यह तो चौथे से माँडी है। छठवें की कहाँ बात है? चौथे से यह बारहवें तक की स्तुति का वर्णन है। उसमें पहले यह चौथे गुणस्थान की बात की है। मुनि है तो मुनिप्रधान से बात की है।

अब, यहाँ आत्मा की स्तुति अर्थात् विशेष गुणग्राम और एकाग्रता, विशेष आत्मा में एकाग्रता। जो भाव्यभावक दोष है, उसका जीतना। अभाव नहीं। अभाव ३३ में आयेगा। जो कर्म का उदय आवे... भिन्न पड़ा है, भिन्न पड़ा है, भान हुआ है, परन्तु अभी अपनी पर्याय में कर्म का उदय हो, उसे अनुसरकर स्वयं अपने में भाव्य-विकार की पर्याय हो, उसे छोड़कर अपने स्वभाव में एकाग्र हो, उसे दूसरे नम्बर की ऊँची स्तुति गिनने में आयी है। समझ में आया?

भाव्यभावक। भाव्य अर्थात् आत्मा में पर से भिन्नपने का भान हुआ होने पर भी, अभी कर्म के उदय के काल में उसकी ओर के झुकाववाला जो भाव है, उसे भाव्य कहा जाता है और कर्म के उदय को भावक कहा जाता है। इन दो की जो अन्दर में एकताबुद्धि नहीं, परन्तु अभी अस्थिरबुद्धि के कारण जो होता है, ऐसे भाव्यभावक का नाश-अभाव करना अथवा जीतना, उसे दूसरे प्रकार की शुद्धता की वृद्धि हुई अन्दर, इससे उसे दूसरे प्रकार की स्तुति कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? भाव्य अर्थात् विकारी होनेयोग्य आत्मा की दशा। सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ होने पर भी अभी दशा में भाव्य है या नहीं? और भावक-कर्म का उदय। उसका संकर अर्थात् उसके उदय में ऐसे जाता है, वह संकर। उस दोष को दूर करके स्वभाव में स्थिर होता है, उसे यहाँ भाव्यभावक दोष को दूर करके स्तुति कहा जाता है। समझ में आया इसमें? इसमें कोई भाषा ऐसी कठिन नहीं आती। परन्तु जरा ख्याल तो आना चाहिए या नहीं? इसे ऐसा लगता है कि यह सूक्ष्म है, ऐसा करके निकाल डाले। यह पकड़ने देता नहीं। सूक्ष्म नहीं, बापू! यह तेरे घर की सादी और सीधी बात है। मीठी, सादी सीधी बात। यह शरणभूत क्या है, उसकी बात है, भाई!

कोई शरणभूत नहीं। मर जा बाहर में। कल लड़का मर गया नहीं? २८ वर्ष का लो। क्या हुआ कौन जाने उल्टी हुई। समाप्त। फँस गया यहाँ। ऐसे अनन्त भव किये, भाई! अनन्त अवतार किये, बापू! तेरी अनन्तता की आदि कहाँ है तेरी? अनादि की आदि कहाँ? इतना अधिक काल कहाँ बिताया? कहाँ व्यतीत किया? प्रभु! तूने पर की एकताबुद्धि में व्यतीत किया, भाई! उसमें कहीं शरण था नहीं। आहाहा! अरे! शरण का काल आया। उस समय यह शरण न करे तो शरण करेगा कब? समझ में आया? यह मनुष्य का भव मुश्किल से दुःख से बाहर आकर मिला। आहाहा! इसमें यदि यह बात इसकी दृष्टि में, लक्ष्य में और अनुभव में न ले तो कहीं शरण नहीं, भाई! चौरासी के अवतार पाट पड़ी है, पाट चौरासी की। इसलिए भगवान और परमेश्वर और सन्त कुन्दकुन्दाचार्य करुणा से यह बात करते हैं, भाई! भगवान! तू एकत्वरूप से मानकर पर से भिन्न हुआ नहीं, इसलिए भटकता है। पर से पर को एकत्व की मान्यता है, इसलिए इसका अर्थ कि भिन्न पड़ना नहीं। अर्थात् पर में एकत्वरूप से भटकना है। बापू! ऐसा तो तूने अनन्त बार किया है अब। यह तूने नया क्या किया? समझ में आया? नया तो भगवान! तेरे स्वभाव को सम्हाल और एकत्वता को तोड़, यह नया है। यह एकत्व टूटा तो भिन्न पड़ा, उसे मुक्ति हुए बिना नहीं रहती। उसे पर के साथ एकत्व रहेगा नहीं। समझ में आया? ३२ (गाथा)।

जो मोहं तु जिणित्ता णाण-सहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिद-मोहं साहुं परमट्ठ-वियाणया बेंति॥३२॥

वहाँ (गाथा ३१ में) '**जो इंदिये जिणित्ता**' था।

कर मोहजय ज्ञानस्वभाव रु, अधिक जाने आत्मा।
परमार्थ विज्ञायक पुरुष ने, उन हि जितमोही कहा॥३२॥

यह यहाँ डाला, देखा! परमार्थ के जाननेवाले परमेश्वर अथवा महासन्त, उसे जीतना, यह कहते हैं। कि जिसने ज्ञेय और ज्ञायक के एकपने की बुद्धि तो तोड़ी है, परन्तु जिसे उदय के साथ की अपनी भाव्य होने की दशा को भी छोड़ा है। समझ में आया? जिसने राग और खण्ड इन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय की एकता तो छोड़ी है। परन्तु

जिसने अभी कर्म के उस काल के उदय की ओर के अपने झुकाव को मोड़ता है, ऐसी अवस्था जिसने छोड़ी नहीं, वह उसका दोष है। वह जो परसन्मुख के झुकाव की दशा को छोड़कर स्वभाव में एकाग्र होता है, उसके दूसरे नम्बर की—ऊँचे नम्बर की। दूसरी नम्बर की अर्थात्? नम्बर पहला ऊँचा और दूसरा हल्का, ऐसा नहीं। दूसरे प्रकार की एक स्तुति, उसे भगवान कहते हैं।

टीका। देखो! इसमें विवाद। इस शब्द में विवाद। एक पत्र में आया था। अरे! भगवान! सुन न प्रभु! क्या कहते हैं? अरे! तुझे शास्त्र के अर्थ करने की पद्धति की भी खींचतान! यह तुझे अन्दर से खींचतान कैसे मिटेगी? आहाहा! समझ में आया? यह शब्द आये थे पत्रों में, कि देखो! इसमें ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं? कि **मोहकर्म फल देने की सामर्थ्य से प्रगट उदयरूप होकर भावकपने से प्रगट होता है...** लो! ऐसा कि कर्म आया भावकरूप से। जीव को विकार कराने के लिये समर्थ। परन्तु सुन तो सही, यह क्या कहते हैं?

यहाँ धर्मात्मा मुनि हैं, सन्त हैं, अभी कर्म बाकी है। सम्यग्दर्शन-चारित्र आदि हुए हैं। अब उन्हें कर्म का उदय ऐसे आया है। कैसा कर्म? कि फल देने का सामर्थ्य। फल देने का अर्थात्? अनुभाग उसे प्रगट होता है, उसकी पर्याय में। किसकी पर्याय में? कर्म के उदय में। ऐसा **प्रगट उदयरूप होकर...** अर्थात् सत्तारूप था, वह प्रगट उदय में आया। वह **भावकपने से...** भावकपने से अर्थात् यहाँ भाव्य होता है तो उसे भावक कहा जाता है। यहाँ भाव्य, उसको अनुसरकर। अनुसरकर अर्थात्? तत्प्रमाण, ऐसा नहीं, परन्तु ऐसे अनुसरना छोड़कर ऐसा जो अनुसरे—कर्म के उदय की ओर को अनुसरे तो उसको भावक कहते हैं और अनुसरने की पर्याय को भाव्य कहते हैं। समझ में आया?

फिर से। **मोहकर्म फल देने की सामर्थ्य से...** भाषा तो ऐसी है कि मानो फल देने का सामर्थ्य हो। इसका अर्थ क्या? किसे फल दे? उसकी सत्ता में जो था, वह अनुभाग के विपाकरूप से पाकरूप से आया। समझ में आया? वह **प्रगट उदयरूप होकर...** देखो! इस प्रकार से प्रगट उदय हुआ वहाँ। जड़ की पर्यायों में वह पर्याय प्रगट हुई कर्म में।

भावकपने से प्रगट होता है... अब **तथापि...** वजन यहाँ है, उसके बदले वहाँ वजन देता है। देखा! यह भावकर्म (कर्म ने) भाव कराया, इसलिए भाव होता है। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा अपने स्वभाव-सन्मुख की एकता दृष्टि हुई है, परन्तु अभी अस्थिरता टली नहीं। उस अस्थिरता का भाव्यभाव अपने पुरुषार्थ के कारण से कमजोरी रह गयी है। उस भाव्य में निमित्तरूप से भावककर्म है। तो भावककर्म के **तदनुसार जिसकी प्रवृत्ति है...** देखो! कर्म का उदय आया, उसका ऐसे होने को, उसे अनुसरकर। स्वभाव को अनुसरकर नहीं, परन्तु अभी भाव्य, विकार होने की योग्यता से उसे—पर को अनुसरकर होने की योग्यता अपने में। ऐसी **जिसकी प्रवृत्ति है...** यहाँ लेना। **भावकपने से प्रगट होता है, तथापि तदनुसार...** अर्थात् कि आत्मा की वर्तमान दशा में निमित्त की ओर के झुकाववाली जिसकी दशा है, ऐसी प्रवृत्ति **ऐसा जो अपना आत्मा...** समझ में आया? फिर से, हों! विशेष (लेंगे) यह तो....

यह तो वस्तुस्थिति है, भाई! इसमें किसी के घर की यह बात है, ऐसा मानना चाहिए। ऐसा नहीं। समझ में आया? यह तो लो, यह तो इसके घर की बात सिद्ध करते हैं, इसमें से निकालकर। परन्तु जो है, ऐसा तो कहे। मान तो सही अब। इसके घर की और इसके घर की पड़ी रही इसे।

यहाँ तो कहते हैं, कर्म भावकरूप से उदय में आया, उसे भावक कहा जाता है। परन्तु भावक होने पर भी, ऐसा कहते हैं न? **तथापि तदनुसार...** अर्थात् अभी आत्मा की पर्याय इस ओर ढली नहीं। स्थिरता। **तदनुसार...** निमित्त के लक्ष्य से अपने में विकार होने की, भाव्य होने की योग्यता है, **ऐसा जो अपना आत्मा...** भाषा देखो! **ऐसा जो अपना आत्मा-भाव्य, उसको भेदज्ञान के बल द्वारा...** अर्थात् कि भाव्य होने देता नहीं भेदज्ञान से, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है इसमें? कुछ बात भी नहीं। हो गया रामा-रामड़ी? कहा न वह कि क्या हुआ? लंका में क्या हुआ? कि भाई समझे? रावण ने ली रामडी, राम ने ली गामडी, हो गई रामा रामडी। बड़ी रामायण की बात। रामायण में क्या था?

रामायण आती है न रामायण ? रामायण में क्या था ? यह रावण ने ली रामडी। रामडी अर्थात् सीता। यह राम ने मार ली गामडी। अर्थात् लंका। हो गयी रामा-रामडी। पूरी रामायण इसमें है। ऐसा इसमें है।

भावक यहाँ है। स्वभाव की दृष्टि है, परन्तु अभी अस्थिरता की भाव्य होने की योग्यता है। यह तो योग्यता है अभी। अब योग्यता तोड़ेगा। यहाँ तो कहते हैं कि यहाँ जो भाव्य होने की उसके अनुसार जिसकी प्रवृत्ति जो अब अभी तक। कर्म का उदय है, उसके अनुसार, उसके अनुसार अर्थात् उसके झुकाववाली; उसके प्रमाण में—ऐसा नहीं। उसके झुकाववाली अभी प्रवृत्ति है, जिसकी वहाँ तक, उसे यह उपशमश्रेणी की जो स्तुति है, वह स्तुति दूसरे नम्बर की उसे प्रगट नहीं हुई। अब कैसे प्रगट हो ? इसकी बात यहाँ लेना है। समझ में आया ? हो गया समय, हों ! बहुत बढ़ा। यह कैसे लेंगे, यह अब आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ॐ

मैं परमात्मा हूं ऐसा नक्की कर।
मैं परमात्मा हूं ऐसा निर्णय कर।
मैं परमात्मा हूं ऐसा अनुभव कर।